SARASVATI—Reg. No. A248

वार्षिक मूल्य ४)   सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी   [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची । पृष्ठ

चित्र-सूची ।

चंद्रमुखीकरण

यह दवा विलायती मुश्कदार फूलों की रूह है, इसे विलायत के एक मशहूर डाक्टर ने बनाकर अभी अभी रवाना की है । सात दिन बदन और चेहरे पर मल कर नहाने से, स्याह रंगत भी गुलाब के फूल की भाँति सुर्ख़ व सफ़ेद, मक्खन की माफ़िक मुलायम हो जाती है। जिस्म से ख़ुशबू की प्यारी २ लहर निकलने लगती है, सीतला माता के दाग, आँखों और गालों के स्याह दाग, झाँई, छीप, झुर्रियाँ, मुहासे आदि को मिटाकर ऐसी ख़ूबसूरती आ जाती है कि चेहरा चाँद की माफ़िक चमकने लगता है । तारीफ़ यह है कि जो रंगत और ख़ूबसूरती इससे पैदा होती है हमेशा क़ायम रहती है क्योंकि यह वह पौडर नहीं है जिसे बाज़ारी औरतें लगा कर घड़ी दो घड़ी को सफ़ेद चमड़ी कर लेती हैं । अपनी प्राणप्यारी को चन्द्रमुखी बनाना है तो इसे अवश्य मँगाइये । क़ीमत फ़ी बोतल १॥) तीन बोतल एक साथ लेने से पारसल ख़र्च माफ़ ।

मिलने का पता—

रमेशचंद्र एण्ड को०,

स्वामीघाट (श्री झांप) मथुरा ।

सुनिए ! सुनिए !!

दो रुपये में तीन रत्न

हीरा ! मोती ! पन्ना !

देर मत कीजिये झटपट पं० रमाकान्त व्यास; राजवैद्य कटरा, प्रयाग के बनाये हुए रत्नों को मँगा कर परीक्षा कीजिये ।

१—यदि आपके सिर में दर्द हो, सिर घूमता हो, मस्तिष्क की गरमी और कमज़ोरी आदि हों और सब किसी तेल से भी फ़ायदा न हो तो समझिये कि सिर्फ़ व्यासजी का बनाया हुआ "हिमसागर तैल" ही इसकी अकसीर दवा है ।

यदि अधिक पढ़ने में अधिक मानसिक परिश्रम से थक जाते हों और परीक्षा में पास हुआ चाहते हों तो हिमसागर तैल रोज़ लगायें इससे मस्तिष्क ठण्डा रहेगा । घंटों में समझनेवाली बातें मिनटों में समझ सकोगे । दाम ॥) शीशी ।

२—पौष्टिक चूर्ण—शीत ऋतु के लिए अत्युपयोगी । दाम १) डिब्बा ।

३—यदि आपको मन्दाग्नि हो, भूख न लगती हो, भोजन के बाद वायु से पेट फूलता हो, जी मचलाता हो, कब्ज़ रहता हो तो "पीयूष वटी" अथवा पाचक वटी मँगा कर सेवन कीजिये । वटी डिब्बी जिस में ५० गोली रहती हैं । मूल्य ॥)

दूसरी दवाओं के लिए हमारा बड़ा सूचीपत्र मँगवाकर देखिये ।

दवा मंगाने का पता—

पं० रमाकान्त व्यास, राजवैद्य

कटरा—इलाहाबाद

आधा दाम ! आधा दाम !! आधा दाम !!!

रेल महसूल माफ़।

केवल एक महीने के लिये।
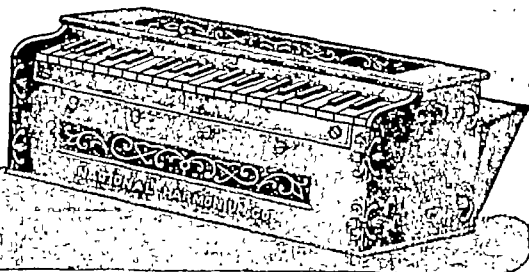
यदि सुमिष्ट सुरवाला और मज़बूत हारमोनियम खरीदना चाहो, यदि आधे दाममें उत्कृष्ट बाजा चाहो, यदि बाज़ार की अपेक्षा सबसे अच्छा बाजा खरीदना चाहो, यदि एक ही बाजा चार वर्ष तक बिना मरम्मत बजाना चाहो, तो और विज्ञापनों के आडम्बरों को न भूल कर हमारा सुवर्णपदक प्राप्त आदि अकृत्रिम शटिशफेक्शन फ्लूट हारमोनियम खरीदिए। आपका धन सफल होगा। इसे खरीदने से किसी प्रकार के ठग जाने की सम्भावना नहीं। सिङ्गल रीड असली दाम ४५) ५०) अभी २२॥) २५) डबल रीड असली दाम ७०) ८०) और ९०) अभी ३५) ४०) और ४५) आर्डर के साथ ५) रु० पेशगी भेजकर नाम, गाँव, पो० ज़ि० रेलवे स्टेशन इत्यादि साफ़ साफ़ लिखिये। उत्तम सितार असली दाम ३०) अभी १५) रु० केवल हिंदुस्तान के लिये रेल महसूल माफ।

पता—नेशनल हारमोनियम कम्पनी, पो० आ० शिमला (८) कलकत्ता।

नये चित्र

श्री श्री रामकृष्ण परमहंस देव

आकार—१८″ × १८″ मूल्य डेढ़ रुपया।

वनविलासिनी

आकार—१८″ × १३″ मूल्य एक रुपया।

मन्दिर-पथ में एक रमणी

आकार—१८″ × १३″ मूल्य एक रुपया।

नक़्शा मैदान जंग

यह हमने हिन्दी-उर्दू में छपाया है। घर बैठे लड़ाई की सैर कीजिए। मूल्य आठ आने।

मिलने का पता—

मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग।

नकालों से सावधान।

प्रख्यात शिलाजीत कार्य्यालय।

२४ वर्ष से शास्त्रविधि से सूर्य्यताप में शोधित शिलाजीत तमाम अपने सच्चे गुणों के लिए ख्याति पा चुकी है। अनुपान विधान से हर तरह के सरल तथा जटिल रोगों को हाथों हाथ लाभ दिखाती है। कभी धोखा न होगा। मू० नं० १ का १॥) रु० तोला नं० २ का ॥) तोला ४ तोला एक साथ लेने से १) मुफ़्त। बिना शोधित शिलाजीत भी भेज सकते हैं।

पं० महेशानन्द (नौटीयाल)

रुद्रप्रयाग हिमालय गढ़वाल।

क्षेपकरहित असली रामायण

रामचरितमानस ।

दुबारा छप कर तैयार होगई ।

आज तक भारतवर्ष में जितनी रामायण छपीं और आज कल छप कर बिक रही हैं वे सब नक़ली हैं, क्योंकि उनमें कितने ही दोहे-चौपाइयाँ लोगों ने पीछे से लिख कर मिला दिये हैं। असली रामायण तो केवल इंडियन प्रेस की छपी रामचरित-मानस ही है। क्योंकि इसका पाठ गुसाईं जी के हाथ की लिखी पोथी से मिला कर शोधा गया है। और भी कितनी ही पुरानी लिखित पुस्तकों से पाठ मिला मिला कर इसमें से कूड़ा-करकट अलग निकाल दिया गया है। यही विशुद्ध रामायण हमने बड़े सुन्दर और मध्यम अक्षरों में, बढ़िया काग़ज़ पर, छापी है। जिल्द भी बँधी हुई है। मूल्य केवल २) दो रुपये।

अयोध्या-काण्ड ।

(सटीक)

(अनुवादक—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०)

यों तो रामचरितमानस को हिन्दूमात्र अपना धर्मग्रन्थ समझते एवं उसका आदर करते हैं। पर उसमें से अयोध्या-काण्ड की प्रशंसा सबसे अधिक है। इसी से हमने इसे उसी असली रामचरितमानस से अलग करके मूल को बड़े टाईप में और उसका अनुवाद छोटे टाईप में छाप कर प्रकाशित किया है। अनुवाद के विषय में अधिक कहने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। पुस्तक बड़े साईज़ में है और उसके पेज तीन सौ के क़रीब हैं; तो भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत ही कम केवल १।) एक रुपया चार आने।

अयोध्या काण्ड—मूल ।

इसे इलाहाबाद की यूनीवर्सिसिटी ने मेट्रिक्यूलेशन में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए नियत किया है। सब के काम की चीज़ है। मूल्य ।।।) बारह आने।

मानस-कोष ।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ।

यह पुस्तक काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित कराई गई है। इसको सामने रख कर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। [illegible] आकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया है, जो पुस्तक की लागत और [illegible] के सामने कुछ भी नहीं है।

कविता-कलाप ।

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)

इस पुस्तक में ४६ प्रकार की सचित्र क[illegible] का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि [illegible] देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल, पण्डित [illegible] शङ्कर शर्म्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मै[illegible] लीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को [illegible] पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रंगीन भी हैं। [illegible] केवल २।।) रुपये।

ऋद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वा-वलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'अद्भुतउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः किस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

राजर्षि ।

मूल्य ॥।≈) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप-कर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़या-लात से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान् उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं।

रॉबिन्सन क्रूसो ।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ता-कर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है। कूपमण्डूक की तरह घर पर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। मूल्य १।)

❀ ❀ ❀ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❀ ❀ ❀

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार दुबारा छप कर तैयार हो गया । प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदीजी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए । मूल्य केवल ।) चार आने ।

मानस-दर्पण ।

(लेखक—श्री॰ पं॰ अम्रमीमसि शुक्ल, एम॰ ए॰)

इस पुस्तक को हिन्दी-साहित्य का अलङ्कारग्रन्थ समझना चाहिए । इसमें अलङ्कारों आदि के लक्षण संस्कृत-साहित्य से और उदाहरण रामचरितमानस से दिये गये हैं । प्रत्येक हिन्दी-पाठक को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए । मूल्य ।–)

सौभाग्यवती ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए । इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं । मूल्य =)॥

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम॰ ए॰ और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी॰ ए॰ के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है । यह समस्त इतिहासमाला कोई २०,२२ संख्याओं में पूर्ण होगी । अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।=)
३—रूस का इतिहास	...	।=)
४—इँगलैंड का इतिहास	...	॥=)
५—जापान का इतिहास	...	॥)
६—स्पेन का इतिहास	...	।=)

बालसखा-पुस्तकमाला ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं । इस 'माला' में अब तक इतनी पुस्तकें निकल चुकी हैं ।

बालभारत—पहला भाग

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं । यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए । मूल्य ॥) आठ आने ।

बालभारत—दूसरा भाग ।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं । हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है । मूल्य ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड ।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है । इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है । मूल्य ॥)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण ।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आना

बालगीतावलि ।

१९—इसमें महाभारत में से ९ गीताओं का संग्रह किया गया है। उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

रामचन्द्र ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

भाग १७, खण्ड २] जुलाई १९१६—आषाढ़ १९७३ [संख्या १, पूर्ण संख्या १९९

हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा।

(२)

परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया।

(Evolution and Dissolution.)

अर्थात्

संसार की उत्पत्ति और संसार के लय के नियम।

संसार में जितने परिवर्तन होते हैं सब प्रकृति और गति के भिन्न भिन्न प्रयोगों के कारण होते हैं। मुख्य परिवर्तन दो प्रकार के हैं एक परिणाम-परिवर्तन और दूसरा लय-परिवर्तन। किसी वस्तु का स्पष्ट रूप में आना और उसके आकार में भिन्नता होना परिणाम-परिवर्तन का प्रभाव है और किसी वस्तु का नाश हो जाना लय-परिवर्तन का प्रभाव है। वृक्ष का उगना, उसके अवयवों का पुष्ट होना, उसमें पत्तियाँ, फूल और फल लगना—यह सब परिणाम-परिवर्तन का कार्य है। किसी वृक्ष का सूख कर नष्ट हो जाना लय-परिवर्तन का कार्य है।

समस्त संसार में ये दोनों परिवर्तन होते रहते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु में भी ये, साथ ही साथ, होते रहते हैं। किसी वस्तु में जब तक परिणाम-परिवर्तन की अधिकता रहती है तब तक लय-परिवर्तन का प्रभाव नहीं दिखाई देता। जब परिणाम की न्यूनता हो जाती है—वह कम हो जाता है—तब लय-परिवर्तन की अधिकता दिखाई देती है। यहाँ तक कि इस अधिकता के कारण उस वस्तु का नाश

रामचन्द्र।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भाग १७, खण्ड २] जुलाई १९१६—आषाढ़ १९७३ [संख्या १, पूर्ण संख्या १९६

हर्बर्ट स्पेन्सर की ज्ञेय-मीमांसा।

(१)

परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया।

(Evolution and Dissolution.)

अर्थात्

संसार की उत्पत्ति और संसार के लय के नियम।

संसार में जितने परिवर्त्तन होते हैं सब प्रकृति और गति के भिन्न भिन्न प्रयोगों के कारण होते हैं। मुख्य परिवर्त्तन दो प्रकार के हैं एक परिणाम-परिवर्त्तन और दूसरा लय-परिवर्त्तन। किसी वस्तु का स्पष्ट रूप में आना और उसके आकार में भिन्नता होना परिणाम-परिवर्त्तन का प्रभाव है और किसी वस्तु का नाश हो जाना लय-परिवर्त्तन का प्रभाव है। वृक्ष का उगना, उसके अवयवों का पुष्ट होना, उसमें पत्तियाँ, फूल और फल लगना—यह सब परिणाम-परिवर्त्तन का कार्य्य है। किसी वृक्ष का सूख कर नष्ट हो जाना लय-परिवर्त्तन का कार्य है।

समस्त संसार में ये दोनों परिवर्त्तन होते रहते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु में भी ये, साथ ही साथ, होते रहते हैं। किसी वस्तु में जब तक परिणाम-परिवर्त्तन की अधिकता रहती है तब तक लय-परिवर्त्तन का प्रभाव नहीं दिखाई देता। जब परिणाम की न्यूनता हो जाती है—वह कम हो जाता है—तब लय-परिवर्त्तन की अधिकता दिखाई देती है। यहाँ तक कि इस अधिकता के कारण उस वस्तु का नाश

भी हो जाता है। यदि समस्त संसार की दशा इन परिवर्तनों की दृष्टि से देखी जाय तो ज्ञात होगा कि संसार में अभी परिणाम-परिवर्तन की अधिकता है। लय-परिवर्तन के चिह्न भी दिखाई देते हैं, परन्तु परिणाम-परिवर्तन की अधिकता होने से उसका प्रभाव इतना नहीं है कि संसार प्रलय को प्राप्त हो जाय। कभी न कभी ऐसा समय अवश्य आवेगा जब परिणाम-परिवर्तन की न्यूनता अथवा उसका अवसान होने से लय-परिवर्तन की अधिकता हो जायगी; और, अन्त में, उसके प्रभाव से संसार का नाश हो जायगा।

अब परिणाम-परिवर्तन और लय-परिवर्तन के स्वरूप, थोड़े में, सुनिए—

परिणाम-परिवर्तन (Evolution).

परिणाम-परिवर्तन के व्यापक लक्षण ये हैं—

प्राकृतिक परिमाणुओं का एकत्र होना और उनकी गति का लोप होना। (Integration of matter and dissipation of its motion).

परिणाम-परिवर्तन दो प्रकार का है—साधारण (Simple) और संयुक्त (Compound) यदि किसी वस्तु के प्राकृतिक अंश अपनी गति को छोड़कर एकत्र हो जायँ और उस वस्तु का रूपान्तर हो जाय, परन्तु प्रत्येक अंश का भिन्न भिन्न रूप न हो, तो यह साधारण परिणाम-परिवर्तन है। जैसे जल का बर्फ़ के रूप में परिणत हो जाना। यदि किसी वस्तु के अंश एकत्र होकर उस वस्तु का रूप भी बनावें और अपने अपने अंशों के भी भिन्न भिन्न रूप निर्मित करें तो यह संयुक्त परिणाम-परिवर्तन है। जैसे वृक्ष के अंश केवल वृक्ष के शरीर को ही नहीं बनाते, बल्कि उसकी डालियों, पत्तियों, पत्तों आदि को भी बनाते हैं। इस उदाहरण में एक परिवर्तन तो प्रधान है और जितने ही परिवर्तन गौण हैं। अर्थात् एक परिवर्तन का उद्देश तो वृक्ष को बनाना है और दूसरे परिवर्तनों का, जो वृक्ष प्रत्येक अंश में होते हैं, उन अंशों को भिन्न भिन्न रू में लाना है। अतएव संयुक्त परिणाम-क्रिया में ए प्रधान (Main) परिवर्तन होता है और एक एक से अधिक गौण (Secondary) परिवर्तन।

प्राकृतिक अंशों में से जब तक गति लोप न होगा तब तक उनका एकत्र होना असम्भ है। इसलिए किसी वस्तु की परिणति होने से य अर्थ समझना चाहिए कि उसके अंशों में जो ग विद्यमान थी उसका लोप होगया है।

लय-परिवर्तन (Dissolution)

लय-क्रिया इस परिणाम से विपरीत है, अर्था परिणाम-क्रिया में किसी वस्तु के अंशों का एकत्र होता है और उनकी गति का लोप होता है। पर लय-क्रिया में उस वस्तु के अंशों का विश्लेष—पृथक्करण—और उनकी गति का सञ्चार होता है। जल से ब बनना परिणाम-क्रिया का उदाहरण है और बर्फ़ जल हो जाना लय-क्रिया का। बर्फ़ के जो अं आपस में गति-लोप होने से एकत्र हुए थे, ग बढ़ने से वे क्रमशः अलग होने लगे, यहाँ तक कि फिर भी जल के रूप में होगये।

सूर्य की किरणें किसी ठोस वस्तु पर गिरीं उनके गिरने से उस वस्तु के अन्तर्गत जो गति थी उसकी वृद्धि हुई। गति-वृद्धि होने से वह वस्तु पिघलने लगी। यदि यह गति-वृद्धि बराबर—अनुक्रम—होती रही तो वह वस्तु, जो पहले एक दृढ़ (Solid)—ठोस—पदार्थ के रूप में थी, द्रव अथवा रस का रूप धारण कर लेगी। यदि यह वृद्धि और भी होती रही तो वह द्रव पदार्थ वायु (Gas) रूप में बदल जायगा। ठीक इसके विपरीत, अर्थात् इस वायु-रूप में गति कम होते ही, वह फिर द्रव (Liquid) रूप में आ जायगा। ज्यों ज्यों और भी गति कम होती जायगी त्यों त्यों यह रस या द्रव पदार्थ

के रूप में बदलता जायगा। अन्त में वह फिर दृढ़ पदार्थ बन जायगा। इस उदाहरण में पहली क्रिया का नाम लय-क्रिया है और दूसरी का नाम परिणाम-क्रिया। अच्छा और आगे देखिए। उष्णता का परिमाण (Temperature) सदा समान नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक वस्तु उष्णता के कम या ज़ियादह होने से कभी दृढ़ और कभी ढीली हो जाती है। यह समझना कि परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया पृथक् पृथक् समय में होती हैं, असत्य है। प्रत्येक वस्तु में दोनों क्रियायें साथ ही साथ होती रहती हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे इस तरह कह सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु से गति का लोप भी होता रहता है और उसमें गति का प्रवेश भी होता रहता है। ये दोनों परिवर्तन साथ ही साथ होते रहते हैं। बालू के कण से लगा कर पृथ्वी के गोले तक, सभी वस्तुओं में, ये दोनों परिवर्तन होते रहते हैं। अर्थात् इन सब पदार्थों से गरमी निकलती भी रहती है और उनमें आती भी रहती है। इनसे निकली हुई गरमी दूसरे पदार्थों में प्रवेश करती रहती है और दूसरे पदार्थों से निकली हुई गरमी इनमें प्रवेश करती रहती है। गरमी निकलने से तो ये वस्तुयें दृढ़ और घनी हो जाती हैं और गरमी आने से ढीली हो जाती हैं। जड़ पदार्थों में इन परिवर्तनों का प्रभाव बहुधा एक दम नहीं प्रतीत होता; क्योंकि उनका रूपान्तर शीघ्र नहीं होता। इन वस्तुओं में एक बादल ही ऐसी वस्तु है जिसमें इनका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

सूर्य की गरमी पहुँचने से बादल बिखर जाता है। परन्तु जब वह ठण्डे पर्वतों के शिखर पर पहुँचता है तब उसमें बाहर से गरमी नहीं आने पाती। इस कारण वह भाफ बन जाता है और भाफ से पानी बन कर गिरने लगता है। इन क्रियाओं का प्रभाव जीव-धारियों पर बहुत जल्दी मालूम होने लगता है। इन दोनों क्रियाओं में, अर्थात् परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया में, एक अधिक और दूसरी कम होती है। इसलिए कहीं परिणाम-क्रिया प्रधान होती है और कहीं लय-क्रिया। प्रारम्भ में परिणाम-क्रिया प्रधान रहती है, बीच में दोनों एक दूसरे के पीछे रहती हैं, और अन्त में लय-क्रिया अधिक और परिणाम-क्रिया मन्द हो जाती है। मृत्यु के पश्चात्, जो काम पहले परिणाम-क्रिया ने किया था, विपरीत क्रम से उसका नाश हो जाता है। किसी वस्तु में परिणाम-क्रिया और लय-क्रिया समान नहीं हो सकती। यह बात प्रायः असम्भव है। इसलिए बहुधा यही देखा जाता है कि किसी वस्तु में कभी परिणाम-क्रिया अधिक होती है और कभी लय-क्रिया।

लय-क्रिया के जो लक्षण हम कह आये हैं वे निरन्तर पाये जाते हैं। वे उस क्रिया के सर्व-व्यापक लक्षण हैं। परन्तु परिणाम-क्रिया की पूरी परिभाषा यह है—

१—परिणाम-क्रिया वह है जिसमें प्राकृतिक अंशों का सङ्कलन (Integration of matter) और उनकी गति का लोप (Dissipation of motion) हो। इस क्रिया में प्रकृति अपनी (२) अलक्षित (Indefinite)—अनिश्चित—और (३) असम्बद्ध (Incoherent) एकजातीय अवस्था (Homogeneity) को छोड़ कर लक्षित (Definite), सम्बद्ध (Coherent) और भिन्नताविशिष्ट (Hetrogeneity) अवस्था को प्राप्त हो जाती है। साथ ही साथ उससे प्राकृतिक अंशों की (४) गति का भी ऐसा ही परिवर्तन (Parallel Changes in Motion) होता है।

इस परिभाषा का आशय यह है कि परिणाम-क्रिया में किसी वस्तु के अंश अपनी गति छोड़ने से एकत्र होते हैं। परिणाम से पहले, वस्तु रूप-लक्षण-रहित एक सी होती है। परिणाम प्रारम्भ होने से उसमें भिन्नता उत्पन्न होती है। इससे उसका रूप और लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। जिस तरह प्रकृति के परमाणुओं का रूपान्तर होता है उसी

तरह उसके अन्तर्गत गति का भी रूपान्तर होता है। इस परिभाषा को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करना आवश्यक है। परन्तु उदाहरण देने से पहले यह बताना ज़रूरी है कि संसार में जितनी परिणाम-क्रिया हो रही है उसके यही लक्षण हैं। ब्रह्माण्ड, सवितृ-मण्डल, पृथिवी, जीवधारी, समाज, भाषा, विज्ञान-शास्त्र, कलायें आदि—सब की रचना में यही परिणाम-क्रिया देख पड़ती है। यदि इनमें से प्रत्येक के सविस्तर उदाहरण दिये जायँ तो यह लेख एक पुस्तक बन जायगा। इसलिए इनमें से हम एक ही दो के व्यापक उदाहरण देते हैं। उसी तरह दूसरे उदाहरण भी समझ लेने चाहिए।

पृथिवी-परिणाम का उदाहरण।

१—जो जल इस समय समुद्रों के रूप में पृथिवी के ¾ भाग में वर्तमान है वह अत्यन्त प्राचीन काल में भाफ के रूप में था। ज्यों ज्यों पृथिवी की गति कम होती गई, वह भाफ जमती गई। यहाँ तक कि उसका अधिक भाग जम गया और बहुत थोड़ा भाग शेष रह गया। यह थोड़ा भाग भी जम जाता, यदि सूर्य के तेज के कारण परमाणुओं की गति में वृद्धि न होती। इस तरह समुद्र बने। पृथिवी का तल बनने में भी ऐसा ही परिवर्तन हुआ। पृथिवी पिघले हुए पदार्थ का पिण्ड-समूह ("A Molten Mass of Matter") थी। गति की न्यूनता से उसके ऊपर का भाग सूख गया और वह एक पतली झिल्ली—पपड़ी—के रूप में हो गया। इस झिल्ली में स्थान स्थान पर छिद्र थे। यह झिल्ली भी पहले हिलती सी रही। परिवर्तन-क्रिया से यह दृढ़ होती गई। अब यह ऐसे दृढ़ और कठिन तल के रूप में हो गई है कि इसे बड़ी बड़ी प्राकृतिक घटनाओं से भी विशेष हानि नहीं पहुँचती। इस धरातल के बनने में पहली बात प्राकृतिक परमाणुओं का एकत्र होना है। दूसरी बात उनकी गति का क्षय होना। इस प्रधान परिवर्तन के साथ दूसरे गौण परिवर्तन भी होते हैं। प्रधान परिवर्तन से तो गोल धरातल बना, जिस पर जल और स्थल दोनों को स्थान मिला। परन्तु यह धरातल इतना ऊँचा और मोटा न हुआ जिस पर उपद्वीप बन सकें। जब तक धरातल बहुत मोटा और दृढ़ न हो तब तक उसका समुद्रों में विभक्त होना असम्भव है। इसी तरह पर्वत-श्रेणियों का बनना भी असम्भव है। जो धरातल शीतल और सङ्कुचित होता और धँसता गया उससे पहाड़ियाँ और पर्वत बनते गये। जब तक धसकी हुई पृथिवी बहुत गहरी और मज़बूत न हो गई तब तक उच्च पर्वत-श्रेणियों का बनना असम्भव था।

इस उदाहरण में दो बातें दिखाई गई हैं—एक तो प्रधान परिणाम-क्रिया से पृथिवी के गोले के ऊपर धरातल बनाना और दूसरे धरातल के अंशों का किसी रूप-विशेष में परिवर्तन होना—जैसे पर्वत आदि। पिछला परिवर्तन गौण है और पहला प्रधान। इसलिए पृथिवी संयुक्त परिणाम-क्रिया वाली है, साधारण परिणाम वाली नहीं। अर्थात् इस परिणाम-क्रिया में प्रधान और गौण परिवर्तन दोनों विद्यमान हैं।

२—पृथिवी किसी समय पिघले हुए धातुओं के रूप में थी, यह सभी भूतत्ववेत्ता मानते हैं। प्रारम्भ में यह गोला एक रूप का था, अर्थात् उसके आकार में भिन्नता न थी। सब द्रव्यों में आन्तरिक समत्व-शक्ति रहती है। पृथिवी के गोले में भी उस दशा में यह शक्ति विद्यमान थी। कारण, उसकी उष्णता का परिमाण एक सा था। वायु, जल और दूसरे तत्त्व, जो प्रखर उष्णता के कारण वायु के रूप में हो जाते हैं, इस पृथिवी के गोले के चारों तरफ़ विद्यमान थे। गरमी निकलने से गोले का ऊपरी भाग ठण्ढा होकर भीतर के तप्त भाग से जुदा हो

युद्ध-सामग्री बनाने वाले कारख़ाने में एक स्त्री ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।
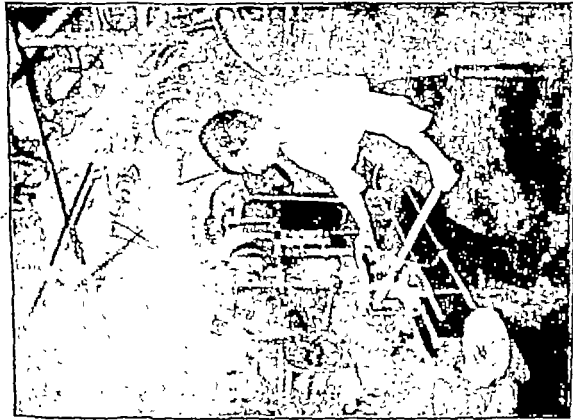
रेल की वर्दी पहने हुए लन्दन की कुमारियाँ ।

गया। इस भाग के ठण्डे होने से जो तत्त्व आकाश में व्याप्त थे वे जल और वायु के रूप को प्राप्त हो गये। इस प्रकार भिन्नता का विकाश होने लगा और जिन भागों में शीत अधिक था वहाँ जल जमने लगा, जैसा कि ध्रुव प्रदेशों में होता है। सारांश यह कि उष्णता की अधिकता और न्यूनता के कारण पृथिवी की बनावट में भिन्नता प्रतीत होने लगी। भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार पृथिवी के तल एक के ऊपर एक रक्खे हुए हैं। धीरे धीरे ये तल मोटे होते गये। इससे पृथ्वी के आकार में भिन्नता बढ़ती गई। पृथिवी के केन्द्र में आकर्षण-शक्ति है। उसका प्रभाव पृथिवी-तल पर पड़ता रहता है। इस कारण भी भिन्नता में अधिकता होती गई। इन दोनों कारणों से पृथिवी के तल में तरह तरह की धातुयें और दूसरी वस्तुयें उत्पन्न हो गई। भूगर्भ-शास्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि पृथिवी का तल अनेक प्रकार से बढ़ता जाता है। जो पर्वत इस समय सब से ऊँचे हैं वे सबसे छोटे थे। अमेरिका का एन्डीज़ और भारत का हिमालय-पर्वत और सब पर्वतों से नवीन हैं। इसी तरह समुद्रों की गहराई में भी परिवर्तन होता गया है। यहाँ तक कि पृथिवी के आकार में स्थान स्थान पर भिन्नता हो गई और देश देश के जल-वायु में भी अन्तर हो गया।

३—ज्यों ज्यों पृथिवी ठण्डी होती गई और उसका तल कड़ा होता गया त्यों त्यों उन देशों की उष्णता के परिमाण में भी, जो सूर्य के सामने और सूर्य से दूर हैं, अन्तर होता गया और उन देशों में भिन्नता भी होती गई। अर्थात् कई देशों को ऐसी दशा प्राप्त हो गई जहाँ सदैव बर्फ़ जमी रहती है, कई देशों में सदैव गरमी ही बनी रहती है। कई देश ऐसे भी बन गये जहाँ गरमी और सरदी क्रमशः होती है। संयुक्त परिणाम-परिवर्तन के ये प्रधान लक्षण हैं—पहले पृथिवी के गोले के तल का बनना; फिर उस धरातल की वस्तुओं में भिन्नता होना; तदनन्तर उन वस्तुओं के प्रत्येक अंश का पृथक् पृथक् रूप होना और उन अंशों का आपस में भिन्न भिन्न होना। केवल अंशों में भिन्नता होने से ही काम नहीं चलता। किन्तु उस भिन्नता में रूप की स्पष्टता का होना भी आवश्यक है। गीली मिट्टी का बना गोला गीला होता है। उसमें पूरी गुलाई साफ़ साफ़ नहीं देख पड़ती। अर्थात् वह कुछ चिपटा होता है। परन्तु सूखने पर उसमें दृढ़ता और रूप-विशेषता आ जाती है। इसी तरह पृथिवी-तल ज्यों ज्यों कड़ा होता गया, उसमें भिन्न भिन्न स्थल निश्चित रूप से प्रतीत होने लगे। जब पृथिवी-तल पतला था तब न ऊँचे पर्वत थे, न गहरे समुद्र थे और न जल-प्रवाह के साधन ही थे, जिससे बड़ी बड़ी नदियाँ ऊँचे स्थलों से गिर कर नीचे के स्थानों में दूर तक बहती रहें।

४—अब तक जो कुछ लिखा गया वह इस सिद्धान्त का प्रमाण है कि वस्तुओं का परिणाम उनके प्राकृतिक अंशों के सङ्कुचन और उनकी गति के लोप से होता है। अब यह बताना है कि जैसे सङ्कुचन से परिवर्तन होता है वैसे ही गति के सञ्चार से भी परिवर्तन होता है। जिस समय पृथिवी का गोला पिघला हुआ था उस समय वायु-मण्डल की गरमी से ऊपर जाने वाली लहरें और वे लहरें जो पिघली हुई द्रव वस्तु के नीचे की ओर बहने से उत्पन्न होती थीं, थोड़े स्थान में थीं और लगभग एक ही सी थीं। बहुत समय के पश्चात् जब पृथिवी-तल कड़ा और ठण्डा हो गया तब सूर्य के तेज से पृथिवी के उष्ण और शीत देशों के ताप में भिन्नता होने लगी। ध्रुवप्रदेशों से मध्य-रेखा तक एक प्रकार की वायु बन गई और मध्य-रेखा से ध्रुवों तक दूसरे प्रकार की। इसी तरह, दूसरी तरह की कितनी ही वायुयें, जैसे व्यापार-सञ्चारक वायु (Trade Wind), मानसून इत्यादि। ऋतुओं का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार हुआ है। जल-तरङ्गों के

घटक गुणों पर—भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। सूर्य्य की किरणें चारों तरफ़ एक सी निकलती हैं। उनमें से कुछ किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं। चन्द्रमा के धरातल के अनेक कोणों से ये किरणें चमकती हुई पृथिवी पर पड़ती हैं। जो किरणें पृथिवी पर आती हैं वे अनेक प्रकार से फैल जाती हैं, अर्थात् कुछ आकाश में फैल जाती हैं और कुछ पदार्थों पर। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रकृति के साथ शक्ति का सम्पर्क होने से वह अनेक तरह की और अनेक तरफ़ जाने वाली शक्तियों में बँट जाती है। एक मोमबत्ती जलाइए। पहले उसका ताप बढ़ने लगेगा जिससे बत्ती के परमाणुओं का परिवर्तन होगा। बाहर की गरमी पहुँचने से उसके भीतर कई चीज़ें बनने लगेंगी। जैसे कोयला (Carbon), जल आदि। इन वस्तुओं के बनने के साथ ही साथ गरमी भी पैदा होगी। रोशनी भी पैदा होगी। गरम गैस का धुआँ ऊपर को उठेगा। चारों तरफ़ की हवा में लहरें भी पैदा होंगी। इस प्रकार के प्रत्येक परिवर्तन से और और परिवर्तन भी होने लगेंगे। कोयला किसी और चीज़ से मिल जायगा अथवा सूर्य्य की गरमी से किसी पेड़ की पत्तियों में चला जायगा। पानी के कारण उस जगह की हवा में कुछ परिवर्तन हो जायगा। यदि गरम वायु का धुआँ किसी ठण्डी चीज़ से मिलेगा तो वह जम जायगा। उत्पन्न हुई गरमी से मोम पिघल जायगा। जो प्रकाश पैदा होगा वह बहुत सी वस्तुओं पर गिरेगा, और विविध रङ्ग उत्पन्न हो जायँगे। इस प्रकार अनेक तरह के कार्य्य एक ही कारण से होंगे। देखिए, पृथिवी की घटती हुई गरमी से अनेक कार्य्य उत्पन्न हो गये। अर्थात् जितने ही सूक्ष्म तत्त्व प्रत्यक्ष रूप में आ गये। यथा—पृथिवी और पानी आदि का बनना। पृथिवी की उष्णता कम होने से वह सिकुड़ती जाती है, क्योंकि उसके भीतर का जलता हुआ गोला कम होता जाता है। बाहर का धरातल कड़ा होने से वह गोला चलता जाता है। सेब सूखता जाता है और उसके ऊपर के छिलके में सिकुड़न पड़ती जाती है। पृथिवी की सतह का भी ऐसा ही हाल है। ज्यों ज्यों पृथिवी ठण्डी होती जाती है त्यों त्यों उसके ऊपर का बकल मोटा होता जाता है। जब यह बकल सिकुड़ता है तब पहाड़ियाँ और पर्वत बन जाते हैं। इस लिए जो पहाड़ पीछे बने हैं वे अधिक ऊँचे ही नहीं, लम्बे भी हैं। इस उदाहरण से मालूम हो जायगा कि केवल एक कारण से, अर्थात् गरमी के लोप से, पृथिवी के धरातल में कितनी भिन्नता आ गई है।

अब तक जो कुछ लिखा जा चुका उससे यह सिद्ध हुआ कि एक अवस्था से भिन्न अवस्था होने के क्या कारण हैं। इसके दो कारण बताये गये हैं—एक तो शक्ति की असमानभावता, दूसरा, एक कारण से अनेक कार्यों का होना। अब भिन्नता कैसे स्पष्ट होती है, यह सुनिए—

किसी पेड़ पर नज़र डालिए। उसकी सूखी और मुरझाई हुई पत्तियों को हवा उड़ा ले जाती है और कोमल और हरी पत्तियाँ अपनी जगह पर लगी रहती हैं। सूखी पत्तियाँ उड़ कर कहीं कहीं जमा हो जाती हैं। हवा की शक्ति सूखी और हरी पत्तियों पर एक ही सी थी। परन्तु सूखी पत्तियाँ गिर गईं और हरी लगी रहीं। गेहूँ से भूसी अलगाने में भी पवन का गेहूँ और उसके छिलके पर अलग प्रभाव पड़ता है। यह दोनों चीज़ें अलग अलग हो जाती हैं। किसी चीज़ को कूट कर हाथ में लीजिए और हवा में उड़ाइए। उसकी भारी डलियाँ ज़मीन पर एक जगह गिरेंगी। उनसे कुछ छोटी डलियाँ कुछ दूरी पर जा गिरेंगी और हलका हुआ बारीक भाग हवा में उड़ जायगा। अगर कुछ कङ्कड़, कुछ बालू—रेत—और कुछ धूल—मिट्टी—को मिला कर हवा में छोड़ें तो कङ्कड़ एक जगह गिर कर इकट्ठे होते जायँगे, रेत कुछ दूरी पर गिर कर एक

फ़िलीपाइन्स में बढ़ईगिरी का एक स्कूल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

वह इकट्ठी होगी, और धूल हवा में उड़ जायगी। इन दृष्टान्तों का मतलब यह है कि कुछ शक्ति ऐसी है जो चीज़ों को अलग अलग कर देती है।

समान-भारता।

लुढ़कती हुई गेंद कुछ दूर जाकर ठहर जाती है। बादलों से पानी गिरता है। वह नदियों और नालियों से वह कर ऐसी जगह ठहर जाता है जहाँ से वह और नीचे नहीं आ सकता। अर्थात् हर चीज़ की गति अपने विश्राम की तरफ़ है। किसी लट्टू को फिराइए। उसकी कील में डोरी बाँध कर फेंकिए। इससे तीन चालें पैदा होंगी। जिस जगह से फिराया गया है उस जगह से वह दूर जा सकता है। यह पहली चाल हुई। अपनी कील पर उसमें झूले की सी चाल भी है। यह उसकी दूसरी चाल है। तीसरी चाल वह है जिससे वह फिरता है। पहली दोनों चालें इस तीसरी चाल के अधीन हैं। तीसरी चाल निरन्तर जारी रहती है। पर पहली दो चालें, कुछ देर के बाद, बन्द हो जाती हैं। वह शक्ति जो मेज़ पर फिराते ही लट्टू को मिल जाती है, हवा के प्रभाव से और ख़ास कर धरातल की असमानता से, लोप हो जाती है। वह शक्ति जो कीली की वजह से झूले की सी चाल पैदा करती है तीसरी चाल के धरातल के कारण रहती है। सिर्फ़ तीसरी चाल रह जाती है, उस पर हवा का दबाव पड़ता है और कीली की रगड़ लगती है। इस चाल में कभी कभी लट्टू खड़ा—स्थिर—दिखाई देता है। गति की इस अवस्था का नाम गति-समानता है। इससे यह नतीजा निकला कि एक वस्तु में जो अनेक चालें होती हैं उनके ठहरने की समानता अलग अलग होती है—अर्थात् जो चाल कम होती है या जिसमें अधिक रुकावट होती है वह पहले बन्द हो जाती है। जो चाल बड़ी होती है या जिसमें कम रुकावट होती है वह पीछे बन्द होती है। दूसरी बात यह है कि जब उस वस्तु के अंशों की चालें एक दूसरी से ऐसी मिल जाती हैं कि उनमें बहुत कम रुकावट हो तो गति की स्थिति मालूम होने लगती है। तीसरी बात यह है कि यह गति-स्थिति वास्तव में विराम को पहुँच जाती है। पृथिवी की और छोटी चालें तो, लट्टू की चाल के सदृश, नष्ट हो गई हैं, किन्तु वह अपनी धुरी पर लट्टू के समान घूमती ही है। हाँ, उसकी धुरी की चाल में भी कमी होती जाती है। विज्ञानवेत्ताओं ने लिखा है कि किसी समय अपनी धुरी के चारों तरफ़ की पृथिवी की चाल ज्वार-भाटे की लहरों के कारण जाती रहेगी। इस तरह धीरे धीरे जब पृथिवी की सब गरमी निकल जायगी तब पृथिवी की चाल बिलकुल बन्द हो जायगी। सारांश यह कि शक्तियों के कारण परिणाम-क्रिया होती है। पहली बात यह है कि एक रूप की वस्तु में होने वाली शक्ति की असमान स्थिति से उस वस्तु में भिन्नता होती है। दूसरी यह कि शक्ति-प्रयोग से अनेक प्रकार के कार्य पैदा होते हैं और चीज़ों में पृथक्ता आ जाती है। तीसरी बात यह है कि जब चालें एकसी मिल जाती हैं तब विरामता आ जाती है।

लय-क्रिया (Dissolution)

जब किसी चीज़ की भीतरी शक्तियाँ अपना काम करते करते विराम पर पहुँच जाती हैं तब उस चीज़ में अपनी ताक़त नहीं रहती। चारों तरफ़ विद्यमान बाहर की चीज़ों का असर वस्तु-विशेष पर सदा ही होता रहता है। इस कारण उस वस्तु-विशेष की अपनिष्ट भीतरी चाल की वृद्धि होती है। इस वृद्धि के कारण उस चीज़ का कभी न कभी नाश हो जाता है। किसी वस्तु के नाश होने का काल उसके आकार, गुण आदि दशाओं पर अवलम्बित है। इन कारणों से कोई वस्तु जल्दी नष्ट होती है

और कोई लाखों वर्ष पीछे । इसका उदाहरण लीजिए। जब पृथिवी की सब चालें विराम को पहुँच जायँगी तब उसके बाहर की चीज़ों का असर उन पर पड़ता रहेगा । उनका असर पड़ने से पृथिवी का कभी न कभी बिलकुल नाश हो जायगा। पृथिवी के बाहर एक ऐसी शक्ति है जो पृथिवी को सूर्य्य तक ले जायगी । यह शक्ति खींचते खींचते पृथिवी को सूर्य्य में मिला देगी ।

सारांश ।

प्रकृति और गति का आपस में अनेक प्रकार मिलने से परिवर्त्तन होता है । परिवर्त्तन दो प्रकार के हैं—एक परिणाम-परिवर्त्तन, दूसरा लय-परिवर्त्तन । पहले परिवर्त्तन से संसारोत्पत्ति होती है और दूसरे से उसका नाश ।

परिणाम-परिवर्त्तन के लक्षण ये हैं—

(१) प्राकृतिक अंशों का सङ्कठन होना और उनकी गति का लोप होना ।

(२) रूप-लक्षण-रहित एक-जातीय वस्तु का भिन्नता प्राप्त करना ।

(३) इस भिन्नता का रूप स्पष्ट होना ।

(४) जैसे प्राकृतिक अंशों के रूपान्तर होते हैं वैसे ही गति के अंशों के भी होते हैं । वस्तुओं में जितने ही परिवर्त्तन साथ ही साथ हुआ करते हैं । पृथिवी वस्तु है । एक परिवर्त्तन के कारण उसका धरातल बनता है । कई परिवर्त्तनों के कारण धरातल के रूप में भिन्नता आती है—अर्थात् पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप आदि बनते हैं । इन परिवर्त्तनों में पहला परिवर्त्तन प्रधान है और दूसरे परिवर्त्तन गौण । यदि प्रधान और गौण दोनों परिवर्त्तन साथ ही साथ हों तो वह संयुक्त-परिणाम कहा जाता है । यदि कोई प्रधान ही परिवर्त्तन हो, जैसे जल का बर्फ़ के रूप में परिवर्त्तन होना, तो वह साधारण परिणाम कहलाता है ।

परिणाम-क्रिया का आधार, शक्ति-संयोग है । एक-जातीय वस्तु में समान-भावता का अभाव होता है । इस कारण उसमें परिवर्त्तन होता है और इस परिवर्त्तन से उसके रूप में भिन्नता आती है । इसके सिवा, शक्ति-आघात का नियम है कि जब उसका किसी वस्तु से संसर्ग होता है तब वह और आघात उस वस्तु में अनेक कार्य्य उत्पन्न कर देता है । इससे भिन्नता और भी बढ़ जाती है । तीसरे, शक्ति के आघात का यह भी धर्म है कि वह एक सी वस्तुओं को इकट्ठा कर देता है । इस लिए भिन्नता का रूप स्पष्ट हो जाता है ।

अब प्रश्न यह है कि जो परिवर्त्तन-क्रियायें किसी वस्तु के भीतर हुआ करती हैं उनका कभी अन्त भी होता है या नहीं । उत्तर यह है कि संसार को देखने से मालूम होता है कि किसी समय वस्तु में समान-भावता उत्पन्न हो जाती है । तब परिवर्त्तन-क्रिया बन्द हो जाती है ।

परिणाम-क्रिया के विपरीत लय-क्रिया भी है । उसमें गति की वृद्धि होती है और प्राकृतिक अंशों का विश्लेषण होता है । ये दोनों क्रियायें सदैव प्रत्येक वस्तु में होती रहती हैं, परन्तु जब परिणाम-क्रिया बन्द हो जाती है तब लय-क्रिया की प्रधानता होती है । इससे उस वस्तु का नाश हो जाता है ।

कन्नोमल, एम० ए०

साकेत ।

द्वितीय सर्ग ।

लेखनी ! अब किस लिए विलम्ब ?
　　बोल, अब भी [illegible], अब अवलम्ब !
उधर वे [illegible] हुआ [illegible]—
　　[illegible], कैसे [illegible] ?
[illegible]—
　　[illegible] ।

बढ़े क्यों आज न हर्षोद्रेक,
　　राम का कल होगा अभिषेक॥
दशों दिक्पालों के गुण-केन्द्र—
　　धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र।
त्रिवेणी-तुल्य रानियाँ तीन—
　　बहातीं सुख-प्रवाह नवीन॥

मोद का आज न ओर न छोर,
　　आम्र-वन-सा फूला सब ओर।
किन्तु हा! फला न सुमन-क्षेत्र,
　　कीट बन गये मन्थरा-नेत्र!
देख कर कैकेयी यह हाल,
　　आप उससे बोली तत्काल—
"अरी, तू क्यों उदास है आज,
　　वत्स अब बनता है युवराज?"
मन्थरा बोली निस्संकोच—
　　आपको भी तो है कुछ सोच!"
हँसी रानी सुन कर यह बात,
　　उठी अनुपम आभा अवदात।
"सोच है मुझको निस्सन्देह,
　　भरत जो है मामा के गेह।
पलक करके निज निर्मल दृष्टि,
　　देख वह सका न यह सुख-सृष्टि!"

ठोक कर अपना कूट कपाल,
　　(बता कर यही कि फूटा भाल।)
किंकरी ने तब कहा तुरन्त—
　　"हो गया भोलेपन का अन्त!"
न समझी कैकेयी वह बात,
　　कहा उसने—"यह क्या उत्पात?
वचन क्यों कहती है तू वाम?
　　नहीं क्या मेरा बेटा राम?"
"वीर वे धीरस भरत कुमार?"
　　कु-दासी बोली कर फटकार।
कहा रानी ने पाकर खेद—
　　"भला दोनों में है क्या भेद?"
"भेद?—दासी ने कहा सतर्क—
　　सवेरे दिखला देगा अर्क।
राजमाता होंगी जब एक—
　　दूसरी देखेंगी अभिषेक!"
रोक कर कैकेयी ने रोष,
　　कहा—"देती है किसको दोष?
राम की माँ क्या कल या आज—
　　कहेगा मुझे न लोक-समाज?"
कहा दासी ने धीरज त्याग—
　　"लगे इस मेरे मुँह में आग!
मुझे क्या, मैं होती हूँ कौन?
　　नहीं रहती हूँ फिर क्यों मौन!

देख कर किन्तु स्वामि-हित-घात,
　　निकल ही जाती है कुछ बात।
इधर भोली हैं जैसी आप,
　　समझतीं सबको वैसी आप।
नहीं तो यह सीधा षड्यन्त्र—
　　रचा क्यों जाता भला स्वतन्त्र!
महारानी कौसल्या आज,
　　सहज सज बोलीं क्या सब साज!"
कहा रानी ने—"क्या षड्यन्त्र?
　　वचन हैं तेरे मायिक मन्त्र।
हुई जाती हूँ मैं उद्भ्रान्त,
　　खोल कर कह तू सब वृत्तान्त॥"
मन्थरा ने फिर ठोका भाल,
　　"सोच है अब भी क्या कुछ हाल?
सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
　　समझ जो सके न अर्थानर्थ॥

भरत को करके घर से त्याज्य,
　　राम को देते हैं नृप राज्य।
भरत-से सुत पर भी सन्देह!
　　बुलाया तक न उन्हें हा! स्नेह!!"
कहा कैकेयी ने सक्रोध—
　　"दूर हो, दूर अभी निर्बोध!
सामने से हट, अधिक न बोल,
　　द्विजिह्वे! रस में विष मत घोल॥
उड़ाती है तू घर में कीच,
　　नीच ही होते हैं बस नीच।

और कोई लाखों वर्ष पीछे । इसका उदाहरण लीजिए। जब पृथिवी की सब चालें विराम को पहुँच जायँगी तब उसके बाहर की चीज़ों का असर उस पर पड़ता रहेगा । उनका असर पड़ने से पृथिवी का कभी न कभी बिलकुल नाश हो जायगा। पृथिवी के बाहर एक ऐसी शक्ति है जो पृथिवी को सूर्य्य तक ले जायगी। यह शक्ति खींचते खींचते पृथिवी को सूर्य्य में मिला देगी।

सारांश ।

प्रकृति और गति का आपस में अनेक प्रकार मिलने से परिवर्त्तन होता है। परिवर्त्तन दो प्रकार के हैं—एक परिणाम-परिवर्त्तन, दूसरा लय-परिवर्त्तन। पहले परिवर्त्तन से संसारोत्पत्ति होती है और दूसरे से उसका नाश।

परिणाम-परिवर्त्तन के लक्षण ये हैं—

(१) प्राकृतिक अंशों का सङ्कुचन होना और उनकी गति का लोप होना।

(२) रूप-लक्षण-रहित एक-जातीय वस्तु का भिन्नता प्राप्त करना।

(३) इस भिन्नता का रूप स्पष्ट होना।

(४) जैसे प्राकृतिक अंशों के रूपान्तर होते हैं वैसे ही गति के अंशों के भी होते हैं। वस्तुओं में कितने ही परिवर्त्तन साथ ही साथ हुआ करते हैं। पृथिवी वस्तु है। एक परिवर्त्तन के कारण उसका धरातल बनता है। कई परिवर्त्तनों के कारण धरातल के रूप में भिन्नता आती है—अर्थात् पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप आदि बनते हैं। इन परिवर्त्तनों में पहला परिवर्त्तन प्रधान है और दूसरे परिवर्त्तन गौण। यदि प्रधान और गौण दोनों परिवर्त्तन साथ ही साथ हों तो यह संयुक्त-परिणाम कहा जाता है। यदि कोई प्रधान ही परिवर्त्तन हो, जैसे जल का बर्फ़ के रूप में परिवर्त्तन होना, तो यह साधारण परिणाम कहलाता है।

परिणाम-क्रिया का आधार, शक्ति-प्रयोग ही है। एक-जातीय वस्तु में समान-भारता का अभाव होता है। इस कारण उसमें परिवर्त्तन होता है और इस परिवर्त्तन से उसके रूप में भिन्नता आती है। इसके सिवा, शक्ति-आघात का नियम है कि जब उसका किसी वस्तु से संसर्ग होता है तब वह शक्ति-आघात, उस वस्तु में अनेक कार्य्य उत्पन्न कर देता है। इससे भिन्नता और भी बढ़ जाती है। तीसरे, शक्ति के आघात का यह भी धर्म है कि वह एक सी वस्तुओं को इकट्ठा कर देता है। इस लिए भिन्नता का रूप स्पष्ट हो जाता है।

अब प्रश्न यह है कि जो परिवर्तन-क्रियायें किसी वस्तु के भीतर हुआ करती हैं उनका कभी अवसान भी होता है या नहीं। उत्तर यह है कि संसार को देखने से मालूम होता है कि किसी समय वस्तु में समान-भारता उत्पन्न हो जाती है। तब परिणाम-क्रिया बन्द हो जाती है।

परिणाम-क्रिया के विपरीत लय-क्रिया भी है। उसमें गति की वृद्धि होती है और प्राकृतिक अंशों का विश्लेषण होता है। ये दोनों क्रियायें सर्वत्र प्रत्येक वस्तु में होती रहती हैं, परन्तु जब परिणाम-क्रिया बन्द हो जाती है तब लय-क्रिया की प्रधानता होती है। इससे उस वस्तु का नाश हो जाता है।

कन्नोमल, एम० ए०

साकेत ।

द्वितीय सर्ग ।

लेखनी ! अब किस लिए विलम्ब ?
बोल, सब भारति, अब आरम्भ !
प्रकट हो जिसने हुआ प्रकाश—
कहा, कैसे बीती वह रात ?
धरा पर धर्म्मादर्श-निकेत—
धन्य है स्वर्ग-सदृश साकेत !

बढ़े क्यों आज न हर्षोद्रेक,
  राम का कल होगा अभिषेक॥
दशों दिक्पालों के गुण-केन्द्र—
  धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र।
त्रिवेणी-तुल्य रानियाँ तीन—
  बहातीं सुख-प्रवाह नवीन॥

मोद का आज न ओर न छोर,
  आम्र-वन-सा फूला सब ओर।
किन्तु हा! फला न सुमन-क्षेत्र,
  कीट बन गये मन्थरा-नेत्र!
देख कर कैकेयी यह हास,
  आप उससे बोली सोल्लास—
"अरी, तू क्यों उदास है आज,
  वत्स जब बनता है युवराज?"
मन्थरा बोली निस्संकोच—
  "आपको भी तो है कुछ सोच!"
हँसी रानी सुन कर यह बात,
  हुई अनुपम आभा अवदात।
"सोच है मुझको निस्सन्देह,
  भरत जो है मामा के गेह।
प्रसन्न करके निज निर्मल दृष्टि,
  देख पर सका न यह सुख-सृष्टि!"

ठोंक कर अपना क्रूर कपाल,
  (बता कर यही कि फूटा भाल।)
किंकरी ने तब कहा तुरन्त—
  "हो गया भोलेपन का अन्त!"
न समझी कैकेयी यह बात,
  कहा उसने—"यह क्या उत्पात?
वचन क्यों कहती है तू वाम!
  नहीं क्या मेरा बेटा राम?"
"धीर वे वीरसु भरत कुमार?"
  कु-दासी बोली कर फटकार।
कहा रानी ने पाकर खेद—
  "भला दोनों में है क्या भेद?"
"भेद?—दासी ने कहा सतर्क—
  सवेरे दिखला देगा अर्क।

राजमाता होंगी जब एक—
  दूसरी देखेंगी अभिषेक!"
रोक कर कैकेयी ने रोष,
  कहा—"देती है किसको दोष!
राम की माँ क्या कल था आज—
  कहेगा मुझे न लोक-समाज?"
कहा दासी ने धीरज त्याग—
  "लगे इस मेरे मुँह में आग!
मुझे क्या, मैं होती हूँ कौन!
  नहीं रहती हूँ फिर क्यों मौन!

देख कर किन्तु स्वामि-हित-घात,
  निकल ही आती है कुछ बात।
इधर भोली हैं जैसी आप,
  समझतीं सबको वैसी आप।
नहीं तो यह सीधा षड्यन्त्र—
  रचा क्यों जाता भला स्वतन्त्र!
महारानी कौसल्या आज,
  सहज सज होतीं क्या सब साज?"
कहा रानी ने—"क्या षड्यन्त्र?
  वचन हैं तेरे मायिक मन्त्र।
हुई जाती हूँ मैं उद्भ्रान्त,
  खोल कर कह तू सब वृत्तान्त॥"
मन्थरा ने फिर ठोका भाल,
  "सोच है अब भी क्या कुछ हाल!
सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
  समझ जो सके न अर्थानर्थ॥

भरत को करके घर से त्याज्य,
  राम को देते हैं नृप राज्य।
भरत-से सुत पर भी सन्देह!
  बुलाया तक न उन्हें हा! स्नेह!!"
कहा कैकेयी ने सक्रोध—
  "दूर हो, दूर अभी निर्बोध!
सामने से हट, अधिक न बोल,
  द्विजिह्वे! रस में विष मत घोल॥
उड़ाती है तू घर में कीच,
  नीच ही होते हैं बस नीच।

हमारे आपस के व्यवहार—
कहाँ से समझे तू अनुदार !"
हुआ भ्रू-कुञ्चित भाल विशाल,
कपोलों पर दिखते थे लाल।
प्रकट थी मानो शासन-नीति,
मन्थरा सहमी देख सभीति॥

तीक्ष्ण थे लोचन अरुण अलोल,
लाल थे लाली भरे कपोल।
न दासी देख सकी उस ओर,
जला दे कहीं न कोप कठोर !
किन्तु वह हटी न अपने आप,
खड़ी ही रही मग्न चुपचाप।
अन्त में बोली स्वर-सा साध—
"क्षमा हो मेरा यह अपराध॥
स्वामि-सम्मुख सेवक या भृत्य—
आप ही अपराधी हैं नित्य।
दण्ड दें कुछ भी, आप समर्थ,
कहा क्या मैंने अपने अर्थ ?
समझ में आया जो कुछ मर्म—
उसे कहना था मेरा धर्म।
न था यह मेरा निज का कृत्य,
मरूँ हूँ मरूँ, भृत्य हूँ भृत्य॥"
मही पर अपना माथा टेक,
(भरा था जिसमें अति अविवेक)
किया दासी ने उसे प्रणाम,
और फिर चली गई अविराम॥

गई दासी, पर उसकी बात—
दे गई मानो कुछ आघात।
"भरत-से सुत पर भी सन्देह !
बुलाया तक न उन्हें हा ! स्नेह !!"
पवन भी मानो उसी प्रकार—
शून्य में करने लगा पुकार—
भरत-से सुत पर भी सन्देह !
बुलाया तक न उन्हें हा ! स्नेह !!"
गूँजने से रानी के कान,
तीर-सी लगती थी वह तान—
"भरत-से सुत पर भी सन्देह !
बुलाया तक न उन्हें हा ! स्नेह !!"
मूर्त्ति-सी बनी हुई उस ठौर,
खड़ी रह सकी न तब वह और।
गई शयनालय में तत्काल,
गभीरा सरिता-सी थी चाल॥
न सह कर मानो तनु का भार,
लेट कर करने लगी विचार।
कहा तब उसने—"हे भगवान !
आज क्या सुनते हैं ये कान ?

मनोमन्दिर की मेरी शान्ति,
बनी जाती है क्यों उद्भ्रान्ति ?
जगा दी किसने आकर आग,
कहाँ था तू संशय के नाग !
नाथ ! कैकेयी के प्रिय वित्त !
चीर कर देखो उसका चित्त।
स्वार्थ का जहाँ नहीं है लेश,
बसे हो एक तुम्हीं प्राणेश !
सदा थे तुम भी परमोदार,
हुआ क्यों सहसा आज विकार ?
भरत-से सुत पर भी सन्देह !
बुलाया तक न उसे हा ! स्नेह !!
न थी हम माँ-बेटे की चाह,
आह ! तो सुनती न थी क्या राह ?
मुझे भी भाई के घर नाथ !
भेज क्यों दिया न सुत के साथ !

राज्य का अधिकारी है ज्येष्ठ,
राम में गुण भी हैं सब श्रेष्ठ।
भला फिर भी क्या मेरा वत्स—
शान्त रस में बनता बीभत्स !
तुम्हारा अनुज भरत है राम !
नहीं है क्या नितान्त निष्काम ?
जानते जितना तुम कुलधन्य !
भरत को कौन जानता अन्य ?
भरत ! हे भरत ! शील-अनुराग !
तुम्हें दे आज मेरे हाथ !

खड़ी हँसती है बारंबार,
हँसी है वह अथवा अग्नि-पात!
कभी कम्पित कैकेयी काँप,
अधर दंशन करके कर चाप।
भूमि पर पटक पटक कर पैर—
लगी प्रकटित करने निज बैर॥
अन्त में सारे अङ्ग समेट,
गई वह वहीं भूमि पर लेट।
छोड़ती थी अब सब हुङ्कार,
चुटीली फणिनी-सी फुङ्कार।
इधर यों हुआ रङ्ग में भङ्ग,
उर्म्मिला उधर प्राणपति सङ्ग—
भरत-विषयक ही वार्त्तालाप—
छोड़ कर सुनती थी चुपचाप॥
बताते थे लक्ष्मण वह भेद—
कि "इसका है सबको ही खेद।
किन्तु अवसर था इतना अल्प,
न आ सकते थे ग्रामसङ्कल्प।
इधर थी धीर न ऐसी लग्न,
पिता भी थे उत्कण्ठा-मग्न।
चलो, अविभिन्न आर्य्य की मूर्त्ति—
करेगी भरत-भाव की पूर्त्ति॥"
इस समय क्या करते थे राम?
हृदय के साथ हृदय-सङ्ग्राम।
जब हिमगिरि से भी वे धीर,
सिन्धु-सम थे सम्मति गम्भीर॥
उपस्थित वह अपार अधिकार,
दीखता था बस उनको भार।
पिता का निकट देख वन-वास,
हो रहे थे वे आप उदास॥
हाय! यह पितृ-वत्सलता-योग,
और निज बाल्यभाव का योग।
विगत-सा समझ एक ही साथ,
सोच करते थे सीतानाथ॥
कोपना कैकेयी की बात—
किसी को न थी अभी तक ज्ञात।

न आते पृथ्वी पर प्रच्छन्न—
कहाँ क्या होता है प्रतिपन्न!
भूप क्या करते थे इस काल?
लेखनी! लिख उनका भी हाल।
भूप बैठे थे कुल-गुरु-सङ्ग,
भरत ही का था छिड़ा प्रसङ्ग॥
कहा नरपति ने—"निस्सन्देह—
खेद है, भरत नहीं जो गेह।
किन्तु यह अवसर था उपयुक्त—
कि मैं हो जाऊँ चिन्ता-मुक्त॥
इधर कुछ दिन से मेरा चित्त—
विकल था आप्त-अनिष्ट-निमित्त।
इसी से था मैं अधिक अधीर,
जान है शेष बच नहीं शरीर।
मार कर धोखे से मुनि-बाल—
हुआ था मुझको शाप कराल।
कि तुमको भी निज पुत्र-वियोग—
बनेगा प्राण-विनाशक रोग!
अस्तु, यह भरत-विरह अविशिष्ट—
दुःखमय होकर भी था इष्ट।
इसी मिस पा जाऊँ चिरशान्ति—
सहज ही समझूँ तो निर्भ्रान्ति॥"
दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य्य,
कहा—"यह उचित नहीं अस्थैर्य।
ईश के इङ्गित के अनुसार—
हुआ करते हैं सब व्यापार॥"
"ठीक है" इतना कह कर भूप,
शान्त हो गये सौम्य शुभ-रूप।
हो रहा था बस समय दिनान्त,
वायु भी था मानों कुछ श्रान्त।
गोमुख और देव भी आप—
ध्वनि-युत पाकर आर्य्य सनाथ—
गये तब अपना था प्रिय धोर;
बजे धुर भी भीतर इस ओर॥
अरुण-सन्ध्या को आगे देख,
देखने को इस मङ्गल मेख।

सजे विधु की बेंदी से भाल,
    यामिनी आ पहुँची तत्काल।
सामने कैकेयी का गेह—
    शान्त देखा नृप ने सस्नेह।
न जाना किन्तु गई थी ताड़,
    कि यह है ज्वालामुखी पहाड़!
पधारे तब भीतर भूपाल,
    वहाँ जाकर देखा जो हाल।
हुए बस उससे वे जड़-तुल्य,
    कहाँ भय-विस्मय का बाहुल्य!

न पाकर मानो आज शिकार—
    सिंहनी सोती थी सविकार!
कोप क्या इसका यह एकान्त—
    प्राण लेकर भी होगा शान्त?
कुशल है यदि ऐसा हो जाय,
    भूप-मुख से निकला बस "हाय!"
दूर कर यह तामस इस रात—
    न जाने करे न क्या उत्पात!
पड़ी थी बिजली-सी विकराल,
    लपेटे थे घन जैसे बाल।
कौन छेड़े ये काले साँप?
    अवनिपति उठे अचानक काँप!
किन्तु क्या जाते? धीरज धार—
    बैठ पृथ्वी पर पहली बार!
मिलाते-से वे व्याल विशाल,
    विनयपूर्वक बोले भूपाल—
"प्रिये! किस लिए आज यह क्रोध?
    नहीं होता कुछ मुझको बोध।
तुम्हारा धन है मान अवश्य,
    किन्तु हूँ मैं तो यों ही वश्य॥
ज्ञात होता यह नहीं विनोद,
    यदपि है आज सभी को मोद।
मने जाते हैं सुख के साज,
    तुम्हें क्या दुःख हुआ है आज?
हुआ हो यदि कुछ रोग-विकार,
    बुलाऊँ वैद्य करूँ उपचार।
अमृत भी मुझको नहीं अलभ्य,
    कि मैं हूँ अमर-सभा का सभ्य॥
किया हो कहीं किसी ने दोष,
    कि जिसके कारण हो यह रोष।
बता दो तो तुम उसका नाम,
    दैव को समझो उस पर वाम॥
हुआ हो यदि मुझसे अपराध,
    उठो तो तुम हो आप अबाध।
दण्ड-हित मैं भी हूँ सन्नद्ध,
    करो निज बाहु-पाश से बद्ध॥

खींच कर कानों तक धनु-बाण,
    भले ही भिद्ध करो ये प्राण।
किन्तु क्यों पाकर इतना ताप,
    बढ़ाती हो फिर फिर भ्रू-चाप?
सुनूँ मैं उसका नाम सुनिष्ट,
    कौन सी वस्तु तुम्हें है इष्ट!
जहाँ तक दिनकर-कर-प्रसार,
    वहाँ तक समझो निज अधिकार॥
किसी को करना हो कुछ दान,
    करो तो दुगना आज प्रदान।
भरा रत्नाकर-सा भाण्डार,
    रीत सकता है किसी प्रकार?
माँगना हो जो तुमको आज—
    माँग लो, करो न कोप न लाज।
तुम्हें पहले ही दो वर-दान—
    प्राप्य हैं, फिर भी क्यों यह मान?

याद है वह संबर-रण-रङ्ग—
    विजय जब मिली सखी के संग?
किया था किसने मेरा त्राण?
    विकल क्यों करती हो अब प्राण?"
हुआ सचमुच यह प्रिय संचार,
    आ गई कैकेयी को याद।
मिला छोने फिर भी वह क्षेम,
    बहाने लगी वचन मय नेत्र!
"बचो, रहने दो झूठी प्रीति,
    जानती हूँ मैं यह छल-नीति।

दिया तुमने मुझको क्या मान !
वचन भय यदि न दो वर-दान ?"
कहा नृप ने कि—"न मारो बोल,
दिखाओ कहो, हृदय को खोल !
तुम्हीं ने माँगा कब, क्या, आप ?
मिले फिर भी क्यों यह अभिशाप ?
कृपा, कुछ माँगो तो इस बार—
कि क्या दूँ दान—नहीं, उपहार ?"
मानिनी बोली निज अनुरूप—
"न होंगे वे दो वर भी भूप !"

कहा नृप ने लेकर निश्वास—
"दिखाऊँ मैं कैसे विश्वास ?
परीक्षा कर देखो कमलाक्षि !
सुनो, तुम भी सुरगण ! चिरसाक्षि !
सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार।
राज्य ही नहीं, प्राण, परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार ॥"
सरल नृप को छल कर इस भाँति,
गरल उगले उरगी जिस भाँति।
भरत-सुत मणि की माँ सुरधाम,
माँगने लगी उभय वर-दान ॥
"भूप ! मुझको दो यह वर एक—
भरत का किया जाय अभिषेक।
दूसरा यह दो—न हो त्रास—
चतुर्दश वर्ष राम-वनवास ॥"

वचन सुन कर यों क्रूर, कराल,
देखते ही रह गये भूपाल।
वज्र-सा पड़ा अचानक टूट,
गया उनका शरीर-सा छूट !
उन्हें यों हतज्ञान-सा देख,
खेंचती-सी पानी पर रेख।
पुनः बोली वह भौंहें तान—
"मौन हो गये ? कहो, हाँ या न ॥"
भूप फिर भी न सके कुछ बोल,
मूर्त्ति-से बैठे रहे अडोल।

दृष्टि ही अपनी कष्ट-कठोर—
उन्होंने डाली उसकी ओर।
कहा तब उसने देकर क्लेश—
"सत्य पालन है यही नरेश ?
उलट दो बस तुम अपनी बात,
मरूँ मैं करके अपना घात ॥"
कहा तब नृप ने किसी प्रकार—
"मरो तुम क्यों, भोगो अधिकार।
मरूँगा तो मैं अगति-समान,
मिलेंगे तुम्हें तीन वर-दान !

जिसे चिन्तामणि-माला मान—
हृदय पर दिया प्रधान स्थान।
अन्त में लेकर यों विषदन्त—
नागिनी निकली वह हा हन्त !
राज्य का ही न तुझे था लोभ—
राम पर भी था इतना क्षोभ !
न था यह निस्पृह तेरा पुत्र ?
भरत ही था क्या मेरा पुत्र ?
राम-से सुत को भी वनवास !
सत्य है यह अथवा परिहास ?
सत्य है तो है सत्यानाश,
हास्य है तो भी हत्या-पाश ॥
दूर हो, अरी अनार्ये, दूर ;
नहीं तू मेरी भार्या, दूर !
तुझे त्यागा, प्रण-भृत्य, दूर,
न मुँह दिखला, कुल-कृत्या, दूर ॥"

प्रतिध्वनि-मिस ऊँचा प्रासाद,
निरन्तर करता था अनुवाद !
पुनः बोले मुँह फेर महीप—
"राम ! हा राम ! वत्स ! कुल-दीप !"
हो गये गद्गद वे इस बार,
तिमिरमय भव पड़ा संसार !
गृहागत चन्द्रालोक-विचार,
ऊँचा निज भावी राज-परिवार !
सौख्य बन गया श्मशान-समान
मृत्यु-सी पड़ी केकयी म्लान।

पिछा के झरमे-से दीप,
बजाते थे प्रज्वलित समीप।
"हाय! क्या क्या होगा?" कह कांप,
रहे थे धुरमें में मुँह ढांप।
आप से ही अपने को पाक—
छिपाते थे मानों भरराव!
कभी पहले कि भेजें राम को वन में,
समय विष मृत्यु निश्चित जान कर मन में।
हुए जीवन-मरण के मध्य चल-से थे,
रहे सब अर्द्ध जीवित, अर्द्ध मृत-से थे!
इसी दशा में रात कटी,
पाली-सी थी मात फटी!
अरुण रवि प्रतिभात हुआ,
समाहराब-सा शात हुआ!!
मैथिलीशरण गुप्त
[आगे के सर्ग फिर कभी

महाभारत के प्रधान पात्र।

संस्कृत-साहित्य में इतिहास की दृष्टि से कृष्णद्वैपायन-वेदव्यास-विरचित "महाभारत" का सिंहासन बहुत ऊँचा है। उसकी कथायें अतिशय पवित्र, मनोहारिणी, हृदयग्राहिणी तथा शिक्षा-प्रदायिनी हैं। उनके पाठ से मनुष्य को बहुत से लाभ हो सकते हैं। कर्मकाण्ड, नीति, धर्म, भक्ति, प्रेम, नवरस आदि कितने ही विषय बड़ी सुन्दरता के साथ उसमें लिखे गये हैं। कथा की रचना ऐसी सुहावनी है कि बिना समाप्त किये जी नहीं मानता। समस्त उपनिषदों की मूल-तत्त्व "श्रीमद्भगवद्गीता" ने इस ग्रन्थ की महिमा को और भी बढ़ा दिया है। इसमें जिन जिन महापुरुषों की कथायें हैं वे सभी अपने अपने विषय में अद्वितीय और आदर्श हैं। आज हम उन्हीं महापुरुषों के विषय में कुछ बातें लिखते हैं।

१ श्रीकृष्णचन्द्र—इनको पुराण-मतावलम्बी लोग पूर्ण परब्रह्म और षड्दर्शन के समस्त विद्वान् पूर्णावतार तथा योगीश्वर मानते हैं। कट्टर नास्तिक तथा विधर्मी लोग भी इनको महापुरुष तथा वेदान्ततत्त्वज्ञ कहते हैं। जो हो, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि ये महापुरुष अवश्य थे। इनकी महत्ता सर्वस्वीकृत है।

यदि महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म इस भूमण्डल पर न होता तो भारतवर्ष का इतिहास किसी और प्रकार लिखा जाता। इन्हीं की कूटनीति से, कौरवों से सब प्रकार निर्बल पाण्डवों की विजय-घोषणा सकल भूमण्डल पर प्रतिध्वनित हुई। इन्हीं की चतुरता से आबाल्यब्रह्मचारी दृढ़प्रतिज्ञ भीष्म-पितामह धराशायी हुए, द्रोणाचार्य मारे गये, कर्ण किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बाणविद्ध हुए और दुर्योधन-दुःशासन आदि महावीरों का नाश हुआ। इन्हीं की सलाह से युधिष्ठिर ने मिथ्याभाषण किया; अर्जुन ने शस्त्रत्यागी भीष्मपितामह पर बाणों की वर्षा की, विरथ कर्ण पर बाण-प्रहार किया, और युद्ध से विरक्त होने पर भी बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया।

आप सङ्गीतशास्त्र के भी पूर्ण ज्ञाता थे। नाचना, गाना, वंशी, मृदङ्ग आदि बाजों का बजाना भी भली भाँति जानते थे।

ये योगिराज थे। योगबल से इन्होंने द्रौपदी की दशा जान कर उसका वस्त्र बढ़ा दिया और सभा में उसकी लज्जा रख ली। ये अद्वितीय विद्वान् थे। इन्होंने "गीता" ऐसे अद्भुत ग्रन्थ की रचना करके भारतवर्ष को वेदान्त तथा आत्मज्ञान की भूमि होने का वह गौरव प्रदान किया जो इस भूमण्डल पर किसी देश को प्राप्य नहीं। गीता के सहारे हम लोग यह दावा करते हैं कि प्राचीन समय में हम पूर्ण सभ्य हो गये थे। इसमें श्रीकृष्णचन्द्रजी ने

चारों वेदों, छहों शास्त्रों, समस्त उपनिषदों और नीति-शास्त्रों के गूढ़तत्त्व कूट कूट कर भर दिये हैं। इसके अधिकांश सिद्धान्त सर्वमान्य हैं। यथार्थ में गीता एक विलक्षण ग्रन्थ है। इसकी सामग्री प्रस्तुत करके श्रीकृष्ण ने अपने को सदा के लिए अमर कर दिया।

ये राजनीति के अद्वितीय ज्ञाता थे। जिस नीति का अवलम्बन इन्होंने किया था उसी नीति के अनुसार आज कल के पाश्चात्य राजनीतिज्ञ चलते और राज्यशासन करते हैं। उदाहरण के लिए हम इनकी दो चार बातें यहाँ लिखते हैं। कौरव और पाण्डव दोनों ही इनके फुफेरे भाई थे और दोनों ही समान थे। पर इन्होंने पाण्डवों का पक्ष लिया। इन्होंने विचार किया कि कौरव बड़े बुद्धिमान हैं। वे मेरा आदर पूर्णरूप से न करेंगे। इनके पास कर्ण ऐसे आत्माभिमानी, शकुनि ऐसे कानाफूसी करने वाले, और सञ्जय ऐसे बहुदर्शी मनुष्य विद्यमान हैं। दुर्योधन भी चतुर और परिजनों को अनेक उपायों—साम, दाम, दण्ड, विभेद—से अपने वश में करने वाला, तथा आत्मबल का विश्वास रखने वाला है। पर पाण्डव सीधे सादे, धर्मभीरु हैं। यदि मैं इनका पक्ष लूँगा तो मेरा माहात्म्य बढ़ जायगा। इस काम में ये सफलमनोरथ हुए। जब उन्होंने देखा कि पाण्डव ही भारत के सम्राट् होंगे तब उन्होंने अपनी बहन सुभद्रा के साथ तृतीय पाण्डव अर्जुन का विवाह कर दिया। उन्हीं की प्रेरणा से श्रीबलदेवजी, ऋषियों द्वारा, भारत-युद्ध के समय, भूमण्डल की परिक्रमा करने के लिए भेजे गये। इनको भय था कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे बड़े भाई बलदेव इस महायुद्ध में दुर्योधन की सहायता करें। तब तो पाण्डवों का विजय होना कठिन होगा। इन्हीं की कूटनीति से महायुद्ध में जरासन्ध मारा गया।

श्रीकृष्णचन्द्र अपना काम निकालने में भी बड़े प्रवीण थे। जिस समय कौरवों ने व्यूह की अद्भुत रचना की उस समय उसमें घुस जाना महा कठिन काम था। उस व्यूह के द्वार पर महाबली द्रोणाचा[र्य] खड़े थे। उनको पराजित करना एक प्रकार अस[म्भव] नहीं, तो अति परिश्रम-साध्य, अवश्य था। [जब] श्रीकृष्ण अर्जुन का रथ लेकर वहाँ पहुँचे तब द्रो[णा]चार्य ने कहा—"मुझे पराजित करके या अपनी [पीठ] दिखा कर और अपने को मुझसे पराजित स्वी[कार] करके व्यूह में प्रवेश कर सकते हो।" यह सुन[कर] अर्जुन चुप हो गये। पर कृष्ण ने कहा—"अर्जु[न,] गुरु से पराजित होना कोई अप्रतिष्ठा की बात न[हीं।] इसलिए यहाँ अपना परिश्रम व्यर्थ नष्ट न करो। गुरु[को] पीठ दिखा कर व्यूह के भीतर प्रवेश करो और अ[न्य] वीरों से युद्ध करो। इसी में तुम्हारी भलाई है।" [अन्त] में बात भी यही हुई। कई बार इन्होंने स्वयं भी यु[द्ध] से भाग कर अपना मतलब सिद्ध किया। का[ल]यवन को मुचकुन्द-द्वारा निहत कराया। शिशुपा[ल] को मारना इनका अभीष्ट था। इसलिए इन्होंने उस[की] माता की प्रार्थना के अनुसार उसके सौ अपराध[—सौ] गालियाँ—क्षमा करने के बाद अपने सुद[र्शन] चक्र से उसका मस्तक काट डाला।

इन्होंने जो काम किये उन सब में कुछ न कु[छ] गूढ़ रहस्य अवश्य था।

२ भीष्मपितामह—ये अद्वितीय वीर थे। इन्होंने एक बार युद्ध में परशुराम को भी दब[ा दि]या था। यदि ये आन्तरिक हृदय से कौरवों [की] विजय चाहते तो निस्सन्देह कौरवों की ही [जीत] होती। ये बाल-ब्रह्मचारी थे। अपने पिता के सांसा[]रिक विषय-सुख के लिए स्वयं जन्मभर ब्रह्मचा[री] बने रहे। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस शरीर [से] विवाह न करूँगा। यह प्रतिज्ञा इन्होंने अपनी विमात[ा] योजनगन्धा के पिता को सन्तोष देने के लिए की थी। उसने भीष्म के पिता शान्तनु से कहा था कि [जब] आपसे अपनी पुत्री का विवाह तब करूँगा जब आ[प] प्रतिज्ञा करेंगे कि मेरा दौहित्र—मेरी पुत्री का पुत्र—

ही आपका राजसिंहासन पावे। जो हम इनकी वीरता पर ध्यान देते हैं तो जान पड़ता है कि उस समय इनके समान वीर दूसरा कोई न था। भारत का महायुद्ध अट्ठारह दिनों में समाप्त हुआ। उसमें दस दिन तक केवल भीष्मपितामह ही प्रधान सेनापति बन कर बड़ी वीरता के साथ पाण्डवों से लड़ते रहे। इनकी अलौकिक वीरता देख देख कर पाण्डव सदा हताश रहा करते थे। परन्तु इस महापुरुष में एक महादोष यह था कि प्रत्यक्ष में तो ये दुर्योधन की ओर थे, पर गुप्तभाव से पाण्डवों की हित-चिन्तना करते थे। इनका तन दुर्योधन की ओर था और मन युधिष्ठिर की ओर। तभी तो इन्होंने अर्जुन से कृष्ण के सामने अपनी मृत्यु का उपाय बतलाया। और, मरे भी उसी उपाय से। यह बात भीष्म ऐसे वीर पुरुष को शोभा नहीं देती। इन्होंने दूसरा अनुचित कार्य्य यह किया कि—जब दुर्योधन की आज्ञा से सभा में दुःशासन द्रौपदी का वस्त्रहरण करने लगा तब इन्होंने कुछ भी न कहा। उचित तो यह था कि द्रौपदी का अपमान न होने देते। यदि दुर्योधन न मानता तो उससे अलग हो जाते। यदि इन्हें दुर्योधन की चाल न पसन्द थी तो इन्होंने क्यों न उसे छोड़ पाण्डवों का पक्ष अवलम्बन किया? क्या पाण्डव इनका सत्कार न करते? अच्छा होता यदि ये दुर्योधन को छोड़ कर प्रत्यक्षभाव से पाण्डवों की ओर हो जाते। दुर्योधन भी जैसा आन्तरिक प्रेम कर्ण तथा शकुनि पर रखता था वैसा इन पर नहीं। यह इन्हीं दोनों से गुप्त-मन्त्रणा किया करता था। हाँ, ऊपर से दिखलाने के लिए, और पाण्डवों पर विजय पाने की इच्छा से, इनका भी आदर-सत्कार करता था।

ये बड़े नीतिज्ञ तथा धर्मज्ञ थे। जिस समय ये शरशय्या पर पड़े थे उस समय इन्होंने युधिष्ठिर को धर्म तथा नीति के बड़े बड़े गूढ़ तत्त्व बतलाये। ये कृष्ण के भी बड़े भक्त थे। इनके चरित्र में गुण ही गुण अधिक मिलते हैं। जो दोष हैं वे नहीं के बराबर हैं। वैसे तो ईश्वर के सिवा किसी का चरित्र निष्कलङ्क नहीं हो सकता।

३ युधिष्ठिर—इन्हें लोग धर्मराज कहते हैं। ये अधर्म से बहुत डरते थे। अपनी जान में कोई अधर्म न करते थे। श्रीकृष्ण के बहुत आग्रह करने और पराजित होने का भय दिखलाने पर एक बार इन्होंने झूठा वचन ("अश्वत्थामा हतः") ज़ोर से और ("कुञ्जरो वा नरो वा") धीरे से कहा था।

इनमें विवेक कुछ कम था। नीच कर्म में विजय पाने की अपेक्षा पराजय पाना या उसमें योग न देना कोई अप्रतिष्ठा की बात नहीं। अतएव, जिस समय दुर्योधन ने इन्हें जुआ खेलने के लिए बुलाया उस समय यदि ये न जाते तो क्या इन्हें महापातक होता या अप्रतिष्ठा होती? जुआ में अपनी स्त्री को दाँव पर रख देना या उस पर बाज़ी लगाना कौन सी बुद्धिमत्ता है? भरी सभा में द्रौपदी को नग्न करने के लिए दुःशासन वस्त्र खींच रहा है, द्रौपदी त्राहि त्राहि पुकार रही है, और अपने पाँचों पतियों की ओर देख देख कर अविरल अश्रुधारा बहा रही है, उस समय नीची गर्दन किये बैठे रहना, और उसका प्रतीकार करने के लिए उद्यत भीम, अर्जुन आदि भ्राताओं को रोकना कौन सी विवेकशीलता है? नीति उच्च स्वर से पुकार कर कह रही है कि ऐसे कठिन समय में धर्मबन्धन को शिथिल कर देना या उसका निरादर करना अनुचित नहीं। जो राज-नीति के गूढ़ तत्त्व नहीं समझता वह कभी राज्य-शासन भली भाँति नहीं कर सकता।

पहले तो इन्होंने बड़ी दीनता से राज्य का अर्धभाग कौरवों से माँगा। कृष्ण के उद्योग से वह अर्धभाग इनको मिल गया। पर ये उसको भी जुए में हार गये। फिर उसी के लिए युद्ध करने को उद्यत हुए। अच्छा होता यदि ये जुआ ही न खेलते और पूरे जुआरी के समान स्त्री को दाँव पर न रखते।

लड़ाई में विजय पाने पर भी यह निन्दा न मिटी जो उनके सम्मुख द्रौपदी की दुर्दशा होने से हुई थी। हम इनको हरिश्चन्द्र आदिक के समान धर्मात्मा नहीं समझ सकते। हमें यह भी नहीं मालूम होता कि आप कैान सा उग्र धर्म करने के कारण धर्म-राज कहलाये!

४ दुर्योधन—बड़ा बुद्धिमान् था। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, शल्य आदि महारथियों का पूर्ण सत्कार करता था। यह सदा शत्रुनाश करने के उपाय सोचा करता था। इसने अपने परम शत्रु पाण्डवों का विनाश करने में कोई यत्न उठा न रक्खा। यह किसी को अपने समान बुद्धिमान् न समझता था। इसी से भीष्म, धृतराष्ट्र आदि के मना करते रहने पर भी अपने ही मन की बातें करता था। यह अपने शुभचिन्तकों का पूर्ण सत्कार करता था। कर्ण को अपना सच्चा शुभचिन्तक जान कर इसने अङ्ग देश का राजा बना दिया। यह पाण्डु के बड़े भाई धृतराष्ट्र का पुत्र था। इसलिए अपने का ही राज्य का पूर्णाधिकारी समझता था। यह भी भीष्मपितामह का आन्तरिक विचार भली भाँति जानता था। इसलिए इसने कई बार भीष्म से कहा—"आप मन देकर नहीं लड़ते, इसीलिए मेरी सेना का ह्रास हो रहा है।"

यह अपने मान का बहुत ध्यान रखता था। मय ने युधिष्ठिर के लिए जो सभा बनाई थी उसमें जल की जगह थल, और थल की जगह जल मालूम पड़ता था। दुर्योधन को वहाँ भ्रम हुआ और वह जल को थल समझ कर उसमें फिसल पड़ा। भीम ने सबके सामने—"अन्धे का लड़का अन्धा ही होता है"—कह कर हँस दिया। इस पर यह बहुत ही लज्जित हुआ। अन्त में इसी हँसी का बदला लेने के लिए इसने भरी सभा में द्रौपदी का नग्न करना चाहा। यह बड़ा साहसी था। पाण्डवों ने कई बार हार कर भी उनको पराजित करने का यत्न स[...] किया करता था। इसे विश्वास था कि अन्त पाण्डव अवश्य पराजित होंगे। जिस समय भीष्म बाण-विद्ध होकर शरशय्या पर पड़े, समस्त वीर और इसके अन्य शुभचिन्तक नृपतिगण हताश [...] गये। उस समय भी यह निराश न हुआ। शीघ्र [...] इसने द्रोण को सेनापति बना कर युद्ध आरम्भ [...] दिया। द्रोण के मरने पर कर्ण को, और कर्ण [...] बाद शल्य को प्रधान सेनापति बना कर युद्ध करता ही गया। जब तक इसके शरीर में प्राण रहा त[...] तक इसने अपना साहस न छोड़ा। यद्यपि बहुत लोग इसे नीच और पापी समझते हैं तथापि दू[...] दर्शी और कूटनीतिज्ञ लोग इसे कदापि नीच न समझेंगे। इसने जो काम किये थे सब अपने अभ्यु[...] के लिए। तथापि इसकी दो चार बातें—द्रौपदी-वस्त्र हरण, विषप्रयोग, लाक्षागृहदाह, कपटद्यूत आ[...] अनुचित जान पड़ती हैं। हाँ, इतना अवश्य कहा [...] सकता है कि यदि यह चाहता तो महाभारत-यु[...] न होता, बड़े बड़े वीर व्यर्थ नष्ट न होते, और उन[...] के साथ धनुर्विद्या तथा प्राचीन युद्ध-कला स[...] के लिए विलीन न हो जाती। दुर्योधन का स्वभा[...] *रावण के स्वभाव से बहुत कुछ मिलता जुलता है।* विद्या, बुद्धि, पराक्रम, साहस, शत्रुनाशोद्योग, निर्भयता, धीरता, परोत्कर्षासहिष्णुता आदि सभी गुण दुर्योधन में रावण ही के समान थे। दुर्योधन गदायुद्ध में बहुत ही निपुण था।

५ भीमसेन—इनका शारीरिक बल प्रशंसनीय था। ये गदा-युद्ध में बड़े प्रवीण थे। बलदेवजी ने दुर्योधन और भीम की गदा-युद्ध-सम्बन्धिनी निपुणता के विषय में कहा था—"एकः प्राणाधिको मत्तो ऽन्यः शिक्षाधिकस्तथा" अर्थात्—"ये एक (भीमसेन) को अधिक प्यारा समझता है और एक (दुर्योधन) को अधिक शिक्षित। यानी भीमसेन में अधिक बल व[...]
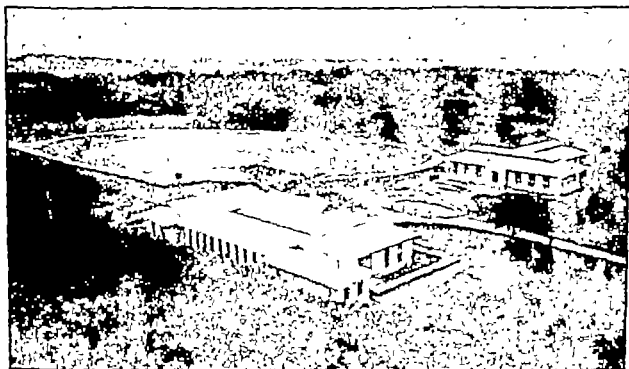
फ़िलीपाइन द्वीप का एक स्कूल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

होता तो ये दुर्योधन को कभी न जीत सकते। भीमसेन सच्चे वीर थे। युद्ध में प्राण देना अच्छा समझते थे, पर पराजित होना अच्छा नहीं। कौरवों के व्यूह में जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को भीतर न जाने दिया तब कृष्ण के कहने से द्रोण को पीठ दिखला कर और उनसे अपने को पराजित स्वीकार कर अर्जुन व्यूह में घुस गये। पर जब भीमसेन ने उस व्यूह में प्रवेश करना चाहा और जब द्रोणाचार्य ने कहा कि बिना पीठ दिखलाये भीतर न जा सकोगे, तब भीमसेन ने क्रुद्ध होकर—"ऐसा कभी नहीं हो सकता"—कहा और घोड़े तथा सारथि सहित द्रोण के रथ को उन्होंने बहुत दूर उठा कर फेंक दिया। द्रोण का रथ जब तक व्यूह-द्वार पर पहुँचे तब तक इधर भीमसेन व्यूह में घुस गये। सच्चे वीरों के लक्षण इनमें पूर्ण रूप से विद्यमान थे।

भीमसेन युधिष्ठिर की नम्रता देख कर बहुत दुखी रहते थे। ये युधिष्ठिर से कहा करते थे कि मेरे जीते जी आप इस दीनावस्था में क्यों पड़े रहते हैं? आप आज्ञा दीजिए, मैं अतिशीघ्र शत्रुओं का नाश कर दूँ। ये बड़े भ्रातृ-भक्त थे। यद्यपि जुआ खेलना, भरी सभा में द्रौपदी की अप्रतिष्ठा अपनी आँखों देखना, और असहायता वीरता विसर्जन कर दुःख पाना इनको तनिक भी अच्छा न लगता था तथापि बड़े भाई युधिष्ठिर के सङ्कोच से इन्होंने सब दुःख सहन किये। यदि इनकी चलती और बड़े भाई का सङ्कोच न होता तो निस्सन्देह ये अपने बल से भरी सभा में द्रौपदी की लज्जा रख लेते। कभी कभी क्रुद्ध कर ये युधिष्ठिर को दुर्वाक्य भी कह देते थे। कौन ऐसा आत्माभिमानी होगा जो व्यर्थ अप्रतिष्ठा सहन करता रहे? भीमसेन को युधिष्ठिर की दुर्बलता और अनुचित सहनशीलता आदि पर बहुत क्रोध और दुःख हुआ करता था। तो भी भीमसेन युधिष्ठिर के प्रतिकूल कभी कोई आचरण न करते थे। भीमसेन सीधे सादे सच्चे वीर थे। उन्हें छल करना, दाँव-पेच लगाना और समय की प्रतीक्षा करना न आता था। उनके हृदय में अपने बल पर पूर्ण विश्वास था। इसलिए उन्हें वीरतापूर्वक निष्कपट युद्ध करके विजय पाना ही अच्छा लगता था। इन्हीं कारणों से बहुत लोग उन्हें अदूरदर्शी कहते हैं। पर हम उनसे सहमत नहीं।

६ कर्ण—ये बड़े दानी समझे जाते हैं। जब इनकी माता कुन्ती ने इनसे अभेद्य कवच माँगा तब इन्होंने बिना सङ्कोच उसे माता को दे दिया। यद्यपि ये जानते थे कि इस कवच से मेरी पूर्ण रक्षा होती है और इस पर कोई शस्त्र नहीं लगता तो भी ये इतने उदार थे कि याचक को विमुख नहीं जाने दिया। इन पर दुर्योधन का आन्तरिक प्रेम था। वह इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करता था और इन पर पूरा भरोसा रखता था। कर्ण भी उसके उपकारों का प्रत्युपकार करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। एक बार कुन्ती ने एकान्त में इनसे आकर कहा—"तुम मेरी कन्यावस्था के पुत्र हो। आओ, अब पाण्डवों से मिल कर कौरवों के साथ युद्ध करो। आशा है, तुम्हारी ही जीत होगी। तुम्हीं इस साम्राज्य के सम्राट् बनोगे। युधिष्ठिर, भीम आदि पाँचों पाण्डव तुम्हारा दासत्व करने को प्रस्तुत हैं। वे कभी तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल काम न करेंगे।" उत्तर में कर्ण ने कहा—"माता! अब तुम मुझसे कुछ आशा मत करो। तुमने ही मेरी जन्म-कथा गुप्त रख कर मुझे शूद्र—सूतपुत्र—कहलाया। तुम्हारे ही कारण भरी सभा में कई बार मेरी गर्दन लज्जा से नीची हुई। तुम मेरी माता नहीं, किन्तु शत्रु हो। दुर्योधन ने जो मेरे साथ उपकार किये हैं उनका बदला मैं इस जीवन में तो क्या जन्मान्तर में भी नहीं दे सकता। अर्जुन सदा मेरा प्रतिद्वन्द्वी रहा है। मैं उसको मारने के लिए यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। यदि मैं मरूँगा तो तुम्हारे पाँचों पुत्र—

युधिष्ठिरादि जीवित रहेंगे। और, यदि अर्जुन मरेगा तो भी तुम्हारे पाँच पुत्र—मुझ सहित—जीवित रहेंगे। दुर्योधन ही के अन्न से मेरा शरीर पला है, मेरा यह शरीर उसी का है। इसलिए यह उसी के काम में लगेगा।"

ये बड़े असहिष्णु थे। अर्जुन की प्रतिष्ठा देख कर सदा कुढ़ा करते थे। ये बड़े अहङ्कारी भी थे। अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझते थे। यद्यपि अर्जुन उस समय धनुर्धरों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे तथापि कर्ण अपने को अर्जुन से उत्तम धनुर्धर समझते थे। यही नहीं, परम प्रसिद्ध और अद्वितीय वीर, आबाल्यब्रह्मचारी, प्रतिज्ञापालक, श्रीभीष्मपितामह—शस्त्रविद्या के प्रधान आचार्य, वीर-ब्राह्मण, गुरुवर द्रोणाचार्य—और वीराग्रगण्य ब्राह्मण कृपाचार्य तक को ये अपने समान वीर न समझते थे।

७ अर्जुन—ये *शस्त्रविद्या में सर्वश्रेष्ठ समझे* जाते थे। निस्सन्देह इस विद्या में थे भी ये बड़े सिद्धहस्त। इनकी इस निपुणता की प्रशंसा सब वीरों ने की है। द्रौपदी-स्वयंवर में विचित्र "मत्स्य-लक्ष्य" भेदन करना इन्हीं का काम था। जहाँ जहाँ पाण्डवों पर सङ्कट पड़ा वहाँ वहाँ इन्होंने अपनी वीरता से उनको उद्धार किया। युधिष्ठिर इन्हीं के भरोसे अपने को निर्भय और विजयी समझते थे। बात भी *ऐसी ही थी। यदि अर्जुन न होते तो* कभी युधिष्ठिर की जीत न होती। इन्होंने बड़ी बड़ी कठिन तपस्यायें करके पाशुपतास्त्र, ऐन्द्रास्त्र आदि अमोघ अस्त्र प्राप्त किये।

ये कृष्णचन्द्र के बड़े भक्त थे। सदा उनकी आज्ञा में रहा करते थे। कृष्ण से बिना पूछे कोई काम न करते थे। इनको दृढ़ विश्वास था कि कृष्णचन्द्र बड़े बुद्धिमान् और उनके शुभचिन्तक हैं। वे जो करते हैं सब पाण्डवों की भलाई ही के लिए करते हैं। इसी लिए वे कृष्ण की आज्ञा का पालन बिना सोचे विचारे ही कर देते थे। जब कोई सन्देह इनके मन में उत्पन्न होता तब ये कृष्ण से ही जाकर पूछते थे। महाभारत-युद्ध में भीष्म, द्रोण आदि अपने पूज्य और प्रिय पुरुषों से युद्ध करने की इनकी तनिक भी इच्छा न थी। यहाँ तक कि इन्होंने शस्त्र रख कर विलाप करना प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु श्रीकृष्ण के ज्ञानोपदेश—गीता के कथन—से इन्होंने माया-मोह छोड़ कर, घोर युद्ध किया। कृष्ण ही के कथनानुसार सब कार्य करने से उस महायुद्ध में अर्जुन की जीत हुई।

कृष्णचन्द्र भी इनको बहुत प्यार करते थे। इन्हीं की रक्षा के निमित्त उन्होंने सारथि बनना स्वीकार किया। इन्हीं की भलाई के लिए दुर्योधन को छलने की इच्छा से वे बनावटी निद्रा से निद्रित हुए। जागने पर उन्होंने पहले अर्जुन से ही सम्भाषण किया और युद्ध में सम्मिलित होने का वचन दिया। जब दुर्योधन ने कहा—"मैं यहाँ पहले आया हूँ, इसलिए आप को मेरा निमन्त्रण स्वीकार करके मेरी ओर से युद्ध में सम्मिलित होना चाहिए—" तब कृष्ण ने उत्तर दिया—"पायताने की ओर बैठने के कारण मैंने पहले अर्जुन ही को देखा। इसीलिए मैंने अर्जुन को वचन दे दिया। अब दो बातें हो सकती हैं। तुम दोनों में से एक तो मुझे ले ले और दूसरा मेरी नारायणी सेना को। परन्तु मैंने प्रण किया है कि मैं इस युद्ध में शस्त्र न ग्रहण करूँगा।" दुर्योधन नारायणी सेना को लेकर सन्तुष्ट हुआ और अर्जुन श्रीकृष्ण को।

कृष्ण ने आन्तरिक प्रेम ही के कारण अर्जुन को अपनी प्यारी बहन सुभद्रा के हरण करने की राय दी। फिर क्रोधान्धीभूत बड़े भाई बलदेवजी को अर्जुन के साथ युद्ध करने से रोका।

ये बड़े रूपवान् थे। तभी तो इनको देखते ही "सुभद्रा" मोहित हो गई। इसके अतिरिक्त समय समय पर अनेक अप्सरायें तथा अन्य युवतियाँ भी इनके रूप पर मोहित हुई हैं। द्रौपदी भी इनके रूप पर मोहित होकर सब भाइयों से इनको अधिक प्यार करती थी।

अर्जुन भी परम भ्रातृभक्त थे। ये युधिष्ठिर के प्रतिकूल कोई कार्य न करते थे। यद्यपि इनको युधिष्ठिर का सिद्धान्त अच्छा न लगता था, तथापि भ्रातृगौरव का ध्यान रख कर सब दुःख सहन करते थे। ये अपने बड़े भाई की आज्ञा का विना विलम्ब पालन करते थे।

महाभारत में यही सात पुरुष प्रधान हैं। इसलिए इन्हीं पर हमने अपने विचार प्रकट किये हैं।

भद्रयदट मिश्र

—:०:—

कर ।

मनुष्य की भाँति राज्य का खर्च भी उसी की आमदनी से चलता है। किन्तु मनुष्य और राज्य की आमदनी और खर्च में भेद है। मनुष्य की आमदनी प्रायः बँधी होती है। उसी के अनुसार खर्च किया जाता है। परन्तु राज्य की आमदनी उसके ख़र्च के अनुसार बाँधी जाती है। विद्वानों का ऐसा ही मत है। यह बात कुछ कुछ सत्य भी है। बड़े बड़े राज्यों में राज-मन्त्री अपने आय-व्यय के लेखे के प्रस्तावों को, व्यय का ख़याल रख कर, किया करते हैं। परन्तु विशेष अवस्था में राज्यों में भी कर की एक सीमा होती है। कर के अतिरिक्त राज्य की आमदनी के अन्य द्वार अत्यन्त छोटे होते हैं और क़र्ज़ लेना तो भविष्यत् आमदनी को गिरवी रखना है।

राज्य के आय और व्यय में बड़ा भेद यह है कि व्यय को राज्य के कर्तव्यानुसार चाहे जितना बढ़ावें। प्रजा भी ऐसे ही कार्यों के लिए प्रस्ताव करती रहती है। किन्तु उसकी आमदनी की सीमा होती है और टैक्स अर्थात् कर लगाने और बढ़ाने के समय सैकड़ों उज्र किये जाते हैं। बचत को ख़र्च करने में कभी दिक्कत नहीं होती, परन्तु कमी पूरी करने में सर्वत्र दिक्कत होती है।

टैक्स और दूसरे प्रकार के देने में सब से बड़ा भेद यह है कि टैक्स ज़बरदस्ती लिया जाता है। वह माँगने या फुसलाने से नहीं मिलता। उसको कभी कभी ऐसे मार्गों से पुकारते हैं कि उसे वसूल करने की ज़बरदस्ती लोगों को मालूम न हो। प्रायः सभी देशों के इतिहासों से यह भली भाँति विदित है कि राजा अपनी प्रजा से भाँति भाँति के कर, तथा दूसरी जीती हुई जातियों और छोटे छोटे राजाओं से भी कई प्रकार के कर, युद्ध के बाद, हरजाने के तौर पर, बलात्कार ही से लिया करते हैं।

जब कभी टैक्स से बच जाने की सम्भावना होती है तब विशेष गड़बड़ नहीं होती। दो प्रकार से लोग बच सकते हैं। एक तो अन्याय से। जैसे चोरी से माल उतारने या नगर में लाने से, अथवा अपनी आमदनी कम बतलाने से। ऐसे बचने के लिए रोक है। वह रोक भाँति भाँति के दण्ड हैं। दूसरे न्याय से। जैसे अफ़ीम खाना, तमाकू खाना, शराब पीना इत्यादि छोड़ देने या जिन वस्तुओं पर कर हो उनको न बरतने से। परन्तु इस प्रकार बचाव बहुत कम होता है। लोग कहते हैं कि वस्तुओं पर टैक्स मन से दिया जाता है; क्योंकि बर्तनेवाले अगर टैक्स न देना चाहें तो वे उन वस्तुओं को न बरतें। परन्तु इस तरह तो इन्कम टैक्स (आमदनी पर कर) देने वाले रुपया कमाना भी छोड़ सकते हैं। कुछ वस्तुओं की वासना और आवश्यकता ऐसी होती है कि उनको टैक्स के कारण लोग छोड़ नहीं देते। इस लिए वस्तुओं पर टैक्स भी बेबस होकर दिया जाता है। कभी कभी राज्य को ऐसी आमदनी होती है जिसको टैक्स नहीं कह सकते हैं। जिन वस्तुओं पर राज्य का हक़ है, उनका मूल्य यदि बढ़ा दिया जाय तो इस बाढ़ को टेक्स कहना चाहिए। यदि दूसरे लोगों से स्पर्धा कर के स्पर्धा-स्थापित मूल्य पर वस्तुओं को बेचना राज्य स्वीकार करे तो ऐसी आमदनी को टैक्स नहीं कह सकते। परन्तु आमदनी राज्य में अवश्य होती है। यदि कभी कोई राज्य तैयारी की लागत से भी कम मूल्य पर कोई चीज़ बेचे तो ऐसी कमी को राज्य अन्य टैक्सों से पूरा करता है। यह कमी पारितोषिक की तरह होती है।

प्रजा का वह रुपया जो सार्वजनिक काम के वास्ते लिया जाता है और जिसमें देने वाला अपने किसी ख़ास काम के वास्ते नहीं देता उसे कर कहना सबसे अधिक समीचीन है। जैसे इन्कम टैक्स देने वाले अपने रुपये को किसी ख़ानगी काम के लिए नहीं देते। दूसरे प्रकार के भी

टैक्स हैं जिनमें सर्वसाधारण के लाभ पर अधिक ध्यान देते हुए भी व्यक्तीय लाभ का कुछ अंश होता है। जैसे योरोपीय देशों में विवाह पर कर—अर्थात् विवाह की रजिस्टरी की फ़ीस। और भी कर हैं जिनमें सार्वजनिक लाभ का और भी कम ख़याल रहता है और स्वार्थ की ओर करदाता का ध्यान अधिक रहता है। जैसे सरकारी रेलों का ख़र्च। रेलें कभी कभी लड़ाई के वक़्त काम देने के लिए बनाई जाती हैं। परन्तु आम तौर पर व्यापार के काम में भी लाई जाती हैं।

और भी टैक्स हैं जिनमें राज्य के या सर्वसाधारण के लाभ को आकस्मिक समझना चाहिए। करदाता इन करों को केवल अपने लाभ के लिए देता है। चाहे वो समझे कि वह इनको मज़दूरी समझ कर देता है—जैसे चिट्ठी, पारसल आदि पर महसूल।

वर्तमान काल में वह आमदनी जो सर्वसाधारण के लाभ के लिए धन से ली जाती है राज्य-ऋण से होती है। जैसे लड़ाई, दुर्भिक्ष इत्यादि के समय राज्य को ऋण लेना पड़ता है। परन्तु इस सूरत में भी वास्तव में टैक्स बलात्कार से ही लिया जाता है।

टैक्स सदा मनुष्यों पर लगाये जाते हैं। वस्तुओं पर टैक्स केवल नाम मात्र के लिए होते हैं। क्योंकि जब चीज़ें बेची जाती हैं तब ख़रीदनेवालों को मूल्य में टैक्स भी देना पड़ता है। अर्थात टैक्स के कारण मूल्य बढ़ जाता है।

एक या अधिक मनुष्यों की सम्पत्ति के धन का बलात्कृत अंश, जो राज्यशासकों और प्रबन्धकर्ताओं के कार्य के बदले उनको दिया जाता है, टैक्स कहलाता है।

समाज को एक तरह का ठेकेदार समझना चाहिए। ठेके में प्रायः दो तीन मनुष्य आपस में मिलकर शर्तें मान कर एक दूसरे का काम पहुँचाते हैं। मकानवाले का मकान बनता है, कारीगर मज़दूर इत्यादि का भी काम चलता है। किसान को जुलाहा कपड़ा बुन देता है, जुलाहे को किसान बदले में अनाज लाने को देता है। परन्तु समाज-संस्था एक बड़ी भारी ठेकेदारी है, जिसमें आदमी बहुधा मानी हुई या लिखी हुई शर्तों के अनुसार मिलजुल कर एक दूसरे का उपकार करते हैं। जो मनुष्य ऐसे ठेके में शामिल होते हैं उनको अपने धन, जायदाद अथवा जीवन इत्यादि की रक्षा के लिए भी एक शर्त माननी पड़ती है। यह भारी काम किसी एक या बहुत से मनुष्यों को, जो उसको उत्तम रीति से कर सकते हैं, दिया जाता है। और इन मनुष्यों को उनके कार्य और परिश्रम के बदले धन अवश्य देना पड़ता है। आशा है कि भविष्यत् में राज के सभी लोग राज्य-शासकों को उनके परिश्रम का बदला दे दिया करेंगे। विद्वान् और समझदार पुरुष तो राज-प्रबन्ध-कर्ताओं को मज़दूरी या वेतन देना आवश्यक और न्यायसङ्गत समझते हैं। उन्हीं की राय से बहुधा क़ानून बनाये और टैक्स बाँधे जाते हैं। बाक़ी और लोग इन क़ानूनों और टैक्सों को बहुधा बिना समझे मान लेते हैं। इसलिए वे उन्हें दुःखित मन से ज़बरदस्ती देते हैं।

पुराना हो जाने पर टैक्स कभी कभी सरकारी मिलकियत हो जाता है। जैसे भारतवर्ष में ज़मीन का लगान। टैक्स अन्त में आकर असली मालिक पर पड़ता है। जब टैक्स लगाया जाता है तब उस जायदाद की क़ीमत उतनी कम हो जाती है जितनी टैक्स की पूरी क़ीमत होती है।

टैक्स के अनेक वर्गीकरण हैं। पर टैक्स का अन्त-र्गत प्रजा के असली माल या आमदनी के कुछ हिस्से को राज्य के कार्यों के हेतु लेना है। मिस्टर आडम स्मिथ ने टैक्स का वर्गीकरण आमदनी के तीन बड़े भागानुसार किया है। अर्थात् लगान, लाभ और मज़दूरी। परन्तु लगान, मुनाफ़ा और मज़दूरी की सीमायें ऐसी एक दूसरी से मिली हुई हैं कि अच्छी भाँति पृथक् पृथक् नहीं की जा सकतीं। इस कारण सब टैक्स सीधे सादे तीन हिस्सों में विभक्त नहीं हो सकते। अँगरेज़ी राज्य में आमदनी के कर में तीन प्रकार की आमदनी मानी जाती है—ज़मीन का लगान, रुपये पर ब्याज और मिहनत की मज़दूरी। वास्तव में ये कर ऐसी रीति से नहीं लिये जाते हैं जैसा बहुधा ख़याल किया जाता है। बल्कि कुछ मनुष्यों से वे इस आशा और इरादे से लिये जाते हैं कि वे लोग और दूसरों पर बाँट देंगे। कितनों के टैक्स भी अन्त में ख़र्च्चों ही पर पड़ते हैं।

कुछ समय पहले के योरोपीय अर्थशास्त्रियों ने टैक्स को दो भागों में बाँटा था। प्रत्यक्ष (Direct) और परोक्ष (Indirect)।

भिन्न भिन्न प्रकार कर की परिभाषा यों लिखते हैं—"प्रत्यक्ष कर वह है जो उस मनुष्य से लिया जाय जिससे ऐसे

फ़िलीपाइन्स का एक स्कूल।

फ़िलीपाइन्स की एक प्रदर्शिनी—अनाज-सम्बन्धिनी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

की इच्छा और आशा हो"। अर्थात् कर का अन्तिम भार उसी पर डालने का इरादा हो।

उन्हीं के परिभाषानुसार—"परोक्ष कर वह है जो एक मनुष्य से इस आशा और इच्छा से लिया जाय कि वह उस कर को दूसरों पर डाल कर वसूल कर लेगा"। अर्थात् उसका अन्तिम भार उस पर प्रायः न रहेगा, परन्तु सम्भव है कि किसी ख़ास कारण से रह जाय। यह पहचान आम तौर पर ठीक है, परन्तु और आर्थिक परिभाषाओं की भाँति इसकी भी सीमा ठीक तौर पर निश्चित नहीं है। जैसे कम्पनियों के मुनाफ़े, सरकारी, म्यूनीसिपैलटी या बैंक इत्यादि के क़र्ज़ें या शेयर के सूद पर टैक्स कम्पनियों या बैंकों से लिया जा सकता है उसी तरह जायदाद के मालिक पर लगाया गया टैक्स जायदाद के बसनेवाले किरायेदार या पट्टेदार किसान से लिया जा सकता है। बसनेवाला, किराया या लगान देते समय, टैक्स काट लेगा। इसी तरह मज़दूरी पर टैक्स मज़दूर लगानेवाले मालिक से वसूल किया जा सकता है। इन हालतों में ये लोग मालिक या बैंक या कम्पनी के मुनीम का काम करते हैं।

परन्तु कर के भार के अतिरिक्त उसका असर बहुत पेंचीदा होता है और कभी कभी उसका मतलब भी गूढ़ होता है। परोक्ष करों में इन बातों की ओर अधिक ध्यान देना पड़ता है। किसी वस्तु पर जो टैक्स लगाया गया है वह दूसरों पर डाल दिया जायगा या नहीं, इसके लिए बहुत सी बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। जैसे किसी वस्तु की आमदनी और ख़र्च का विचार, उसमें स्पर्धा है या नहीं, एकाधिकार तो नहीं है, मज़दूर और पूँजी लगानेवाले एक स्थान से दूसरे स्थान को सरलता-पूर्वक जाते आते हैं या नहीं, इत्यादि। टैक्स की छूट करते समय यह भी सोचना होता है कि कर के कारण उस वस्तु के व्यवसाय पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, और नफ़ा और मज़दूरी में तो उससे कमी न होगी?

ऐसा कह सकते हैं कि टैक्स का वर्गीकरण सरकार के इच्छानुसार नहीं, बल्कि टैक्स के असल में दूसरों पर डाल दिये जाने या न डाल दिये जाने के अनुसार होना चाहिए। अर्थात् उन्हीं टैक्सों को परोक्ष टैक्स कहना चाहिए जो वास्तव में दूसरों पर डाल दिये जाते हैं। परन्तु इसके वास्ते टैक्स के भार को वर्गीकरण से अलग मानना पड़ता है। और यह बात सिद्धान्त में ठीक नहीं।

प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का एक और अर्थ हो सकता है। प्रत्यक्ष कर वे हैं जो धन की प्राथमिक अथवा बुनियादी सूरतों पर लगाये जायँ। जैसे मनुष्य, आमदनी, जायदाद, आदि। परोक्ष कर वे हैं जो देने वाले के धन की दूर की यानी दूसरे दर्जे की हालतों पर लगाये जायँ। जैसे वस्तुओं के हस्तान्तर होने और ख़र्च पर।

इस पहचान के अनुसार टैक्स की परिभाषा जो राज्य-प्रबन्ध में मानी जाती है यह है—प्रत्यक्ष कर वे हैं जो स्थायी और बार बार आनेवाले मौक़ों पर नियमानुसार लोगों से लिये जायँ। परोक्ष कर वे हैं जो किसी शुल्कसूची (Tariff) के अनुसार लेन-देन, ख़रीद-फ़रोख़्त इत्यादि के मामलों पर लिये जायँ और इस कारण उनका भार मनुष्यों पर पहले से न मालूम हो।

प्रत्यक्ष और परोक्ष कर के सिवा करों की और भी पहचानें हैं। कभी कभी कुल मालगुज़ारी को तय कर उसको कर सब लोगों पर बाँट देते हैं। इस में कर देनेवाले को ठीक ठीक कर की दर नहीं मालूम हो सकती। कुल तय की हुई मालगुज़ारी को सब पर फैलाने की जगह हर एक मनुष्य पर कुछ कर बाँध कर मालगुज़ारी वसूल की जा सकती है। इस तरह मालगुज़ारी ठीक ठीक मालूम नहीं हो सकती। परन्तु हर एक मनुष्य का कर ठीक ठीक मालूम हो जाता है।

कर कई सूरतों में लिये जा सकते हैं। उन वस्तुओं में जो पैदा की जायँ, मज़दूरी की उन सूरतों में जो प्रथा करती हो, या रुपये में। प्राचीन काल में वस्तुओं और मज़दूरी की सूरतों में कर बहुधा लिया जाता था। गाँवों में ये रीतियाँ अब भी थोड़ी बहुत प्रचलित हैं।

कर को कभी कभी वास्तविक (Real) और व्यक्तिगत (Personal) करों में विभक्त हुआ मानते हैं। वास्तविक कर वे हैं जो मालिक या बसनेवाले की ओर ध्यान न देकर वस्तुओं पर लगाये जाते हैं। पर अन्त में उनका भी भार मनुष्यों ही पर पड़ता है। जैसे आमदनी और ज़मीन पर। व्यक्तिगत कर वे हैं जो मनुष्यों पर उनकी आर्थिक अवस्था, कारोबार, पेशा इत्यादि के अनुसार सीधे लगाये जायँ।

पद, अधिकार इत्यादि के बेचने से भी आमदनी हुआ करती है। पुराने समय में पद बहुधा बेचे जाते थे। मिस्टर ऐडम्स ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि पहले जेम्स के समय में बैरन (Baron) की पदवी प्राप्त करने के लिए दस हज़ार पौंड देने पड़ते थे। वाइकाउंट (Viscount) होने की फ़ीस पन्द्रह हज़ार और अर्ल (Earl) होने की फ़ीस बीस हज़ार पौंड थी। बैरोनेट के पद की क़ीमत एक हज़ार पच्चानबे पौंड थी और तिरानबे नये बैरोनेट बनाये गये थे। प्रथम चार्ल्स अपने पिता से एक क़दम आगे बढ़े। उन्होंने इन पदवियों को बलात्कार से बिकवाया और आमदनी के अतिरिक्त व्यापारियों को भी दीं। उन्होंने नाइट (Knight-सरदार) बनाने की पुरानी रीति फिर प्रचलित की। ऐसे कारणों से इन प्रतिष्ठा और मानवाले पदों का व्यापार जारी रहता है। पोप के यहाँ कुछ ऐसे पद हैं जिनमें कुछ कार्य नहीं करना पड़ता, पर वेतन मिलता है। ये पद जीवन भर के लिए दिये जाते हैं। कभी कभी ये बेचे भी जाते हैं।

कहीं कहीं ऐसे पद होते हैं जैसे रोम के पुराने राज्य में थे, जिनके पाने से लोगों को बहुत से लाभदायक अधिकार और हक़ मिल जाते हैं। इनको लोग ख़रीद लेते हैं। फ़्रांस में, १७८९ के ग़दर के पहले, पादरी लोगों और सरदारों पर कोई कोई टैक्स माफ़ थे। किसी किसी पदवाले मनुष्य से कोई टैक्स न लिया जाता था। और प्रकार के राजनैतिक भार भी उन पर कम थे। ये पद भी बेचे जाते थे। परन्तु उत्तम राजनीतिज्ञ इस रीति को बुरा कहते हैं। इससे राज्य की आर्थिक दीनता सूचित होती है। इससे यह मतलब सूचित होता है कि टैक्स के हक़ को राज्य बेच रही है, या उस टैक्स को एक दम से बहुत समय के लिए वसूल कर रही है।

राज्य में कभी कभी व्यापार से भी लाभ होता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापार और राज्य-प्रबन्ध दोनों काम करती थी। आयव्यय के लगान और बिक्री से ही राज्य के लिए पूरी पूरी आमदनी होना कठिन है। क्योंकि लोग लेने वाले जानते हैं कि राज्य अपने प्रबन्ध से असली धन का आधा भी पैदा नहीं कर सकता है। इसलिए वे बहुत कम क़ीमत या किराया देते हैं। जब ऐसे कामों में राज्य का यह हाल है तब व्यापार में तो और भी ख़राब दशा होगी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का न तो प्रबन्ध ही अच्छा था और न उसका व्यापार ही उत्तम श्रेणी का था। क्योंकि जब व्यापार करते हैं तब बहुत से कामों में राजनीति नहीं बर्त सकते, और न राजा होने के कारण कम्पनी के अफ़सर व्यापारियों की भाँति बहुत मितव्यय कर सकते थे, और सदमशीलता भी न धारण कर सकते थे। यदि राज्य की केवल पूँजी ही पूँजी लगाई जाय तो भी हानि ही होती है। व्यापार का प्रबन्ध तो और भी हानिकारक होगा। भारतवर्ष में सरकारी रेलें कदापि लाभदायक नहीं निकलीं और सरकार को अनेक रेलों का काम कम्पनियों को दे देना पड़ा। राज्य की बनावट पर बहुत सी बातें अवलम्बित हैं। जर्मनी में राज्य का हाथ व्यापार में बहुत है। वहाँ रेलें भी सरकारी हैं। रूस में सरकार की ओर से शराब खींची जाती थी, जो अब बन्द हो गई है। मिस्र में सरकार की ओर से शक्कर साफ़ की जाती है। भारत सरकार को कई करोड़ की आमदनी अफ़ीम से ही हो जाया करती है।

राज्य में एकाधिकार बेचने से अक्सर बहुत आमदनी हुआ करती है। आज कल के समय में लोग व्यापार में स्पर्धा को पसन्द करते हैं। तो भी बहुत से एकाधिकार बने हुए हैं। बाज़ बाज़ रोज़गार तो एकाधिकार के ढंग के ही हैं। पुराने एकाधिकार और प्रकार के थे। नये और प्रकार के हैं। पहले समय में छोटे छोटे व्यापारों में भी एकाधिकार थे। अब केवल बड़े, लाभदायक और उन कारख़ानों में एकाधिकार रह गया है जिनमें एकाधिकार हो जाने की सम्भावना है। एकाधिकार से यहाँ मतलब Monopoly से है अर्थात् जिस पर और किसी का अधिकार न पहुँचता हो। जैसे वे कारोबार जिनमें अधिक पूँजी की आवश्यकता होने के कारण स्पर्धा अच्छी तरह से न हो सके। एकाधिकार कई प्रकार के होते हैं—चीज़ें बनाने के, बेचने के, लेनदेन करने के, इत्यादि।

अप्रतिबद्धव्यापार (Free Trade) के पोषक भी स्वीकार करते हैं कि रेल एकाधिकार व्यापार है। उसमें पूरी पूरी स्पर्धा नहीं हो सकती। इस कारण राज्य को चाहिए कि उसको एकाधिकार मान कर उस पर एकाधिकार का टैक्स ले। मिस्टर बेन्थम एकाधिकार के बड़े दुश्मन थे। परन्तु उनकी भी राय थी कि रेलों को किसी ख़ास ज़िले या प्रान्त में एकाधिकार दे दिया जाय और उनसे एकाधिकार

गये हैं, तो भी वे उल्लिखित काव्यों को साहित्य न कहेंगे। कहें कैसे? वे तो काव्य और साहित्य को भिन्न भिन्न समझते हैं। पर सच पूछिए तो साहित्य-शब्द रस, गुण, रीति, अलङ्कार आदि के निर्णायक ग्रन्थ में एक प्रकार से रूढ़ हो गया है। इसी से काव्य-ग्रन्थ को साहित्य-ग्रन्थ कहने में पण्डित लोग प्रायः हिचकिचाते हैं।

यही दशा काव्य की भी है। काव्य कहने से अनेक लोग प्रायः पद्य ही समझते हैं। यद्यपि वे समझते हैं कि गद्य-पद्य दोनों ही काव्यों के अन्तर्गत हैं, तथापि यदि संस्कृत या हिन्दी-गद्य की कोई छोटी मोटी पुस्तक उनके सामने रख दी जाय तो वे उसे, चाहे वह कितनी ही भावभरी और रस-भरी हो, काव्य कहने से प्रायः मुख मोड़ते हैं। हिन्दी के कुछ ज्ञाता जहाँ कहीं चमत्कृत पदावली देखते हैं फिर उसमें कुछ भाव हो या न हो, उसे कविता ही समझते हैं। यदि गद्य कैसा ही सुन्दर हो—कैसा ही भावमय हो—उसे लोग न कविता कहेंगे और न उसके बनानेवाले को कवि ही कहेंगे।

यह अन्धपरम्परा बहुत दिनों से चली आती है। सच पूछिए तो साहित्य और काव्य एक ही चीज़ है। उसमें कुछ भेद है तो केवल नाम मात्र का। किसी भाषा में हो, किसी शैली में हो, किसी रूप में हो, गद्य में हो या पद्य में, रसवती रचना ही साहित्य और काव्य कहाती है।

अच्छा तो साहित्य क्या चीज़ है—साहित्य कहने से समझा क्या जाता है? सहित-शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय करने से साहित्य-शब्द बनता है। इस शब्द के प्रकरणानुसार कई अर्थ होते हैं। (१) साहित्यं मेलनम्। (२) परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यम् इति श्राद्धविवेकः। (३) तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वं बुद्धिविशेषविषयित्वं वा साहित्यम्—इति शब्दशक्तिप्रकाशिका। (४) मनुष्यकृतश्लोकमयग्रन्थविशेषः साहित्यम्—इति शब्दकल्पद्रुमः। साहित्य शब्द के इतने अर्थ होने पर भी यथार्थतः निर्दोष शब्दार्थ, गुण, रस, अलङ्कार, रीति-विशिष्ट विषय को ही साहित्य कहते हैं। इसका दूसरा नाम काव्य भी है। साहित्य के दो भेद हैं। एक लक्ष्य-लक्षणात्मक और दूसरा केवल लक्ष्यात्मक। पहले में काव्यप्रकाश आदि और दूसरे में रघुवंश आदि हैं। एक अनुशासक है, दूसरा अनुशिष्ट। पहला साहित्य-शास्त्र से और दूसरा काव्य-शब्द से व्यवहृत होता है।

साधारणतः साहित्य शब्द का यह अर्थ होता है—सहितस्य भावः साहित्यं—अर्थात् साथ का जो भाव है वही साहित्य है। जो संयुक्त, संहत, मिलित, परस्परापेक्षित और सहगामी है उसके भाव का नाम साहित्य है।

साहित्य का एक अर्थ सहगमन तो हुआ ही। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जो हित के साथ वर्तमान है वह हुआ सहित। उसका जो भाव वह हुआ साहित्य। अर्थात् जो हमारे हितकारी भाव हैं वही साहित्य है। इस अर्थ के अनुसार काव्य, इतिहास, भूगोल, पुराण, दर्शन, [illegible] आदि सभी साहित्य के अन्तर्गत आजाते हैं। इति-हासों में ऐसे ही अर्थ में साहित्य-शब्द प्रयुक्त हुआ है—जैसे लिखते हैं कि अमुक के राज्य-काल में साहित्य की दशा अच्छी रही। इससे नाना प्रकार के ग्रन्थों की रचना ही सूचित होती है।

अब साहित्य की कुछ व्याख्या सुनिए। हम लोगों की आत्मा चिदानन्द-स्वरूप है। प्रीति, स्नेह, दया और भक्ति ही सात्त्विक भावों की अवस्थायें हैं। इन भावों के प्रकाशन में प्रायः काव्य ही हमारी सहायता करता है। आत्मा के [illegible] मयात्मक सूक्ष्म शरीर है उसमें हम श्रेष्ठ काव्यों के अनुशीलन द्वारा [illegible] का संग्रह कर सकते हैं। काव्य ही लोकोत्तरानन्द का दाता है। यद्यपि हम दर्शन आदि ग्रन्थों से [illegible]

ज्ञानी हो सकते हैं, पर आनन्द और सौन्दर्य्य के साम्राज्य-पथ पर ले जाने वाला काव्य ही है।

दर्शन और विज्ञान साहित्य के अन्तर्गत हैं अवश्य; पर वे हमारे प्रकृत साहित्य नहीं कहे जा सकते। क्योंकि ज्ञान की अपेक्षा आनन्द-जनक भाव ही प्रधानता रखता है। सत्य ही भाव-रूप से हृदय में प्रस्फुटित होता है। जो कुछ सत्य, शिव और सुन्दर है उसका अनुभव भावमुग्ध मनुष्य अपने अन्तर्हृदय से करता है। जिसकी प्राप्ति का उपाय ज्ञान बतलाता है वह भाव ही से प्राप्त होता है। भाव भीतर ही भीतर हमें लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति के योग्य बना देता है, पर ज्ञान नहीं। वेद भी यही कहता है—"आनन्द ही ज्ञान का सार है" क्योंकि विज्ञानमय कोष के भीतर ही आनन्दमय कोष है। उस आनन्द का मूल कारण भाव है। भावव्यञ्जक होने ही के कारण हमारे साहित्य में काव्य को प्रधान और प्रथम स्थान मिला है। आधुनिक दर्शन, विज्ञान, इतिहास आदि का स्थान उसके पीछे है। श्रेष्ठ भाव ही हमारे सूक्ष्म शरीर का पोषक है। भाव ही द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है और भाव-ही द्वारा वह विज्ञान में परिणत होता है। भाव-प्राप्ति के लिए भावना की आवश्यकता होती है। फिर—"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"।

मतलब यह कि श्रेष्ठ भाव ही हमारा सहगामी और सदा का साथी है। सुन्दर भावों का जहाँ संग्रह है वही काव्य है और वही हमारा प्रधान साहित्य है। सभी भाव हमारे लिए हितकर नहीं। जो भाव हमारे प्रकृत सहायक और प्रकृत हितकर हैं उन्हीं का संग्रह साहित्य है। अच्छे कवियों और ग्रन्थकारों के ग्रंथों में श्रेष्ठ भावरत्न भरे रहते हैं। उनसे उपादेय आध्यात्मिक भावों का संग्रह करके हम अपने सूक्ष्म शरीर को परिपुष्ट कर सकते हैं। अतएव ऐसे ही ग्रन्थ प्रकृत साहित्य के पोषक हैं।

जिन जिन भावों का संग्रह करके हम अपने को उत्तम और उन्नत बना सकते हैं, जिनका अवलम्बन करके हम अपने परम पुरुषार्थ के लिए गन्तव्य पथ पर अग्रसर हो सकते हैं, तथा जिनके ऊपर हमारा मनुष्यत्व अवलम्बित है उन्हीं का संग्रह साहित्य है। जिससे चित्त सानन्द, स्वच्छ और निर्मल हो कर क्रमशः परम लाभ का अधिकारी हो सके वही हमारा साहित्य है। आज कल वैसे ही साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

एक जाति के साहित्य के साथ दूसरी जाति के साहित्य का कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। रहता भी है तो नाम मात्र के लिए ही। प्रत्येक जाति और प्रत्येक समाज का ज्ञान और भाव-भाण्डार भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जो जाति जैसी होती है उसका साहित्य भी वैसा ही सङ्गठित होता है। किसी जाति विशेष की गति और उन्नति जानने के लिए उसका साहित्य पढ़ना पड़ता है। उस साहित्य के साथ उस जाति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। साहित्य में उस जाति की भलाई बुराई, उन्नति अवनति, अच्छी तरह प्रतिबिम्बित रहती है। यदि हम लोग अपना जातीय भाव नष्ट नहीं करना चाहते तो हमें उचित है कि अपने जातीय साहित्य की हम रक्षा करें। जातीय जीवन के सङ्गठन के लिए जातीय साहित्य की रक्षा की बड़ी आवश्यकता है।

रामदहिन मिश्र

ईश्वरता।

(१)

दुखड़ा रोवे सती और असती सुख पावे,
यज्ञ करें यमधाम, विप्र भूखों मर जावें।
दुर्जन महल बनावें, सुजन हैं सब खाते—
तो भी है जगदीश! यहाँ तुम धनिक कहाते॥

(२)

विविध भाँति के नाच जगत में हम पाते हैं,
किन्तु सुधा का नाममात्र सुनते आते हैं।

दिये गये हैं। यहाँ तक कि फ्रांस में बच्चों और बूढ़ों के सिवा फ़ौजी काम को छोड़ कर और किसी भी काम पर कोई मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। तमाम कामों को स्त्रियों ने अपने हाथ में ले लिया है।

इँगलेंड में अभी तक फ़ौज में भर्ती होकर युद्ध पर जाना मनुष्य की इच्छा पर था। कोई किसी को लाचार न कर सकता था। दूसरे, इस देश का मुख्य काम इस युद्ध में लगे हुए अपने मित्रों को युद्ध की सामग्री तैयार करके उसे देना था; अधिक फ़ौज तैयार करना न था। पर अब युद्ध के अधिक फैलने और विकराल रूप धारण करने के कारण इस देश को भी अधिक फ़ौज तैयार करने और युद्ध की सामग्री अधिक बनाने की ज़रूरत पड़ी है। इस कारण यहाँ भी यह क़ानून बनाने की आवश्यकता हुई है कि सैनिक विभाग जिसे चाहे उसे युद्ध पर भेज सकता है। इस क़ानून के अनुसार, लाखों अविवाहित युवक लड़ाई पर भेज दिये गये हैं। अब तो विवाहित भी भेजे जा रहे हैं। इन सब आदमियों के कामों को जारी रखने के लिए यह ज़रूरी है कि स्त्रियाँ नियुक्त की जायँ।

यहाँ भी अब हज़ारों स्त्रियाँ पुरुषों के काम कर रही हैं। आज कल ख़ास कर लन्दन में जिधर जाइए उधर ही सभी कामों पर प्रायः स्त्रियाँ ही दिखलाई पड़ती हैं। डाकख़ानों और रेल के टिकट-घरों में स्त्रियाँ काम करती हुई पहले भी दिखलाई पड़ती थीं। किन्तु उनके साथ बड़े और प्रधान पदों पर पुरुष काम करते थे। अब तो छोटे बड़े सभी पदों पर स्त्रियाँ ही हैं। इसके अतिरिक्त रेल के महकमे में स्त्रियाँ टिकेट-कलेक्टर, स्त्रियाँ कुली, स्त्रियाँ गार्ड, सभी तरफ़ स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रेल की नीली वर्दी पहने दिखाई देती हैं।

"बस" गाड़ी या ट्रामवे पर स्त्रियाँ ही गार्ड का तथा किराया लेने का काम करती हैं। एक दिन बाज़ार से घर आने के लिए मैं एक "बस" पर जा बैठा। कुछ देर बाद "बस" गाड़ी की नीली वर्दी पहने और उस पर टिकटों के बन्डल कमर से लटकाये हुए एक स्त्री "Fare, please" कह कर किराया माँगती हुई आ गई। मैंने उसे दो आने देकर टिकट लिया। वह आगे बढ़ गई। इतने में अपने नियत स्थान पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई। गाड़ी के एकाएक खड़े हो जाने पर वह बेचारी थक कर मेरे आगे गिर पड़ी। मैंने उसे उठाया। वह अफ़सोस करती हुई आगे बढ़ गई। इस प्रकार मर्दों के काम करने में इन्हें बड़ा कष्ट होता है। किन्तु यह बात प्रमाणित हो गई है कि स्त्रियाँ मर्दों के अनेक काम अच्छी तरह सफलतापूर्वक कर सकती हैं।

मोटर चलाने के काम में भी अब स्त्रियाँ देखने में आती हैं। मर्दों को लड़ाई पर भेज कर बड़े बड़े मनुष्यों ने अपनी मोटर गाड़ी चलाने के लिए अब औरतें रक्खी हैं।

घर से निकल कर नौ बजे सबेरे जब मैं कालेज जाता हूँ तब मुझे हाथ की गाड़ी पर दूध रक्खे, ग्वालिन की सफ़ेद पोशाक पहने, लड़कियाँ मिलती हैं। युद्ध के पहले लड़के दूध बेचते थे। तार इत्यादि की ख़बरें पहुँचाने वाली (Messenger) अब बालिकायें ही होती हैं। डाक लाने वाले डाकिये का भी काम अब यही करती हैं।

बड़ी बड़ी दुकानों के दरवाज़ों पर रास्ता दिखलाने और किवाड़ खोलने के लिए दरबान रहते थे। अब यह काम लम्बे कोट पहने और दुकान की चपरास कमर पर डाले औरतें ही करती हैं। दुकान के भीतर सामान बेचने तथा हिसाब रखने इत्यादि के कामों पर एक दो मर्दों को छोड़ कर और सभी औरतें ही हैं।

बड़े बड़े दफ़्तरों में—चाहे सरकारी हों चाहे ग़ैर-सरकारी—जगह औरतों ही को मिली है। भारत के शासन-विभाग वाले दफ़्तर (India Office) इण्डिया आफ़िस में भी बहुत से मर्द क्लर्क हटा कर औरतें रक्खी गई हैं। क्या ही अच्छा हो यदि युद्ध पर गये

दिये गये हैं। यहाँ तक कि फ्रांस में बच्चों और बूढ़ों के सिवा फ़ौजी काम को छोड़ कर और किसी भी काम पर कोई मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। तमाम कामों को स्त्रियों ने अपने हाथ में ले लिया है।

इंग्लैंड में अभी तक फ़ौज में भर्ती होकर युद्ध पर जाना मनुष्य की इच्छा पर था। कोई किसी को लाचार न कर सकता था। दूसरे, इस देश का मुख्य काम इस युद्ध में लगे हुए अपने मित्रों को युद्ध की सामग्री तैयार करके उसे देना था; अधिक फ़ौज तैयार करना न था। पर अब युद्ध के अधिक फैलने और विकराल रूप धारण करने के कारण इस देश को भी अधिक फ़ौज तैयार करने और युद्ध की सामग्री अधिक बनाने की ज़रूरत पड़ी है। इस कारण यहाँ भी यह क़ानून बनाने की आवश्यकता हुई है कि सैनिक विभाग जिसे चाहे उसे युद्ध पर भेज सकता है। इस क़ानून के अनुसार, लाखों अविवाहित युवक लड़ाई पर भेज दिये गये हैं। अब तो विवाहित भी भेजे जा रहे हैं। इन सब आदमियों के कामों को जारी रखने के लिए यह ज़रूरी है कि स्त्रियाँ नियुक्त की जायँ।

यहाँ भी अब हज़ारों स्त्रियाँ पुरुषों के काम कर रही हैं। आज कल ख़ास कर लन्दन में जिधर जाइए उधर ही सभी कामों पर प्रायः स्त्रियाँ ही दिखलाई पड़ती हैं। डाकख़ानों और रेल के टिकट-घरों में स्त्रियाँ काम करती हुई पहले भी दिखलाई पड़ती थीं। किन्तु उनके साथ बड़े और प्रधान पदों पर पुरुष काम करते थे। अब तो छोटे बड़े सभी पदों पर स्त्रियाँ ही हैं। इसके अतिरिक्त रेल के महकमे में स्त्रियाँ टिकेट-कलेक्टर, स्त्रियाँ कुली, स्त्रियाँ गार्ड, सभी तरफ़ स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रेल की नीली वर्दी पहने दिखाई देती हैं।

"बस" गाड़ी या ट्रामवे पर स्त्रियाँ ही गार्ड का तथा किराया लेने का काम करती हैं। एक दिन बाज़ार से घर जाने के लिए मैं एक "बस" पर जा बैठा। कुछ देर बाद "बस" गाड़ी की नीली वर्दी पहने और उस पर टिकटों के बण्डल कमर से लटकाये हुए एक स्त्री "Fare, please" कह कर किराया माँगती हुई आ गई। मैंने उसे दो आने देकर टिकट लिया। वह आगे बढ़ गई। इतने में अपने नियत स्थान पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई। गाड़ी के एकाएक खड़े हो जाने पर वह बेचारी धक कर मेरे आगे गिर पड़ी। मैंने उसे उठाया। वह अफ़सोस करती हुई आगे बढ़ गई। इस प्रकार मर्दों के काम करने में इन्हें बड़ा कष्ट होता है। किन्तु यह बात प्रमाणित हो गई है कि स्त्रियाँ मर्दों के अनेक काम अच्छी तरह सफलतापूर्वक कर सकती हैं।

मोटर चलाने के काम में भी अब स्त्रियाँ देखने में आती हैं। मर्दों को लड़ाई पर भेज कर बड़े बड़े मनुष्यों ने अपनी मोटर गाड़ी चलाने के लिए अब औरतें रक्खी हैं।

घर से निकल कर नौ बजे सबेरे जब मैं कालेज जाता हूँ तब मुझे हाथ की गाड़ी पर दूध रक्खे, ग्वालिन की सफ़ेद पोशाक पहने, लड़कियाँ मिलती हैं। युद्ध के पहले लड़के दूध बेचते थे। तार इत्यादि की ख़बरें पहुँचाने वाली (Messenger) अब बालिकायें ही होती हैं। डाक लाने वाले डाकिये का भी काम अब यही करती हैं।

बड़ी बड़ी दुकानों के दरवाज़ों पर रास्ता दिखलाने और किवाड़ खोलने के लिए दरबान रहते थे। अब यह काम लम्बे कोट पहने और दुकान की चपरास कमर पर डाले औरतें ही करती हैं। दुकान के भीतर सामान बेचने तथा हिसाब रखने इत्यादि के कामों पर एक दो मर्दों को छोड़ कर और सभी औरतें ही हैं।

बड़े बड़े दफ़्तरों में—चाहे सरकारी हों चाहे ग़ैर-सरकारी—जगह औरतों ही को मिली है। भारत के शासन-विभाग वाले दफ़्तर (India Office) इण्डिया आफ़िस में भी बहुत से मर्द क्लर्क हटा कर औरतें रक्खी गई हैं। क्या ही अच्छा हो यदि युद्ध पर गये

सारे द्वीप-पुञ्ज की जन-संख्या के सामने यह कुछ भी नहीं। नेग्रिटो अभी तक आदिम अवस्था में ही हैं। ये कपड़े बहुत ही कम पहनते हैं, कन्द, मूल और फल पर गुज़र करते हैं और शिकार से भी पेट पालते हैं। शिकार ये तीर-कमान से खेलते हैं। इनके हथियार भद्दे और बदसूरत होते हैं। तीरों की नोकों को ये ज़हर से बुझाते हैं। ये किस धर्म या मत के अनुयायी हैं, यह मालूम नहीं। हाँ, ये भूत-प्रेत आदि की पूजा अवश्य करते हैं।

फ़िलिपाइन में रहने वाली एक दूसरी जाति का नाम है—इन्डोनेशियन (Indonesian) इस जाति के लोग विशेष करके मिंडानो टापू में रहते हैं। निग्रेटों की अपेक्षा इनमें शरीर-सामर्थ्य अधिक है। इनके और इनके शरीर की बनावट में भी बहुत भेद है। इंडोनेशियनों का क़द लम्बा, कन्धे चौड़े, चेहरा भूरापन लिये हुए, बाल घिरते हुए, मस्तक सुडौल और नाक झुकीली होती है। ये स्वभावतः बुद्धिमान्, तेज़-शरीर, परिश्रमी और मितव्ययी हैं। इनकी संख्या कोई ढाई लाख है।

तीसरी जाति का नाम मलायन है। इसकी जन-संख्या सबसे अधिक है। इस जाति वालों के पुरखे मलाया के रहने वाले थे। मलाया से चल कर इन्होंने कितने ही द्वीपों के निवासियों पर अपना आधिपत्य जमाया और अन्त को फ़िलिपाइन द्वीप-पुञ्ज में बस गये। इन्हीं लोगों का यहाँ अधिक प्राबल्य है। मलायनों का विवाहादि सम्बन्ध द्वीप-पुञ्ज की निग्रेटो, इंडोनेशियन आदि जातियों से भी होता है। इन्हीं जातियों से क्यों, यहाँ की चीनी, अरब, तथा यूरोपियन जातियों में भी ये मिल गये हैं, अर्थात् इनका और उनका आपस में रोटी-बेटी-व्यवहार जारी है। इस सम्मिश्रण के कारण फ़िलिपाइन-निवासी मलायनों के रङ्ग, रूप और शरीर की बनावट में बहुत कुछ अन्तर हो गया है। तथापि ये प्रायः मध्यम क़द के होते हैं। उनका शरीर न बहुत चौड़ा और न बहुत झुका हुआ ही होता है। चेहरे का रङ्ग गेहुँआ—न काला न गोरा—नाक ज़रा छोटी और कुछ चिपटी होती है; ठुड्डी मध्याकार—यदि बाल हुए भी तो बहुत थोड़े। मलायनों की संख्या कोई ५२ लाख है। इनमें अधिकांश अपने को क्रिश्चियन कहते हैं। कुछ लोग इस्लाम और कुछ अन्य धर्मों को भी मानते हैं। मुसलमानों को यहाँ मोरोस (Moros) कहते हैं। यहाँ क्रिश्चियन लोग नहीं, विशेष करके उन्हीं प्रान्तों में इनकी अधिक बस्ती है।

इन तीन जातियों के सिवा फ़िलिपाइन में कुछ चीनी भी रहते हैं। उनकी संख्या कोई चालीस पचास हज़ार होगी। चीनियों में से कुछ लोग तो व्यापार—दूकानदारी—करते हैं और कुछ बन्दरों पर कुलियों का काम। फ़िलिपिनो कुली तो हलका ही बोझ उठा सकते हैं, पर चीनी कुली कठिन परिश्रम कर सकते हैं—भारी बोझ उठा सकते हैं। कुछ चीनी क्रिश्चियन भी हो गये हैं, पर अधिकांश अपने परम्परागत धर्म्म को ही मानते हैं। क्रिश्चियन भी वही लोग हुए हैं जिन्होंने फ़िलिपिनो स्त्रियों से शादी कर ली है। क्योंकि फ़िलिपिनो शादी करने से पहले ही वर को क्रिश्चियन होने के लिए मजबूर करते हैं।

कुछ अमेरिका और कुछ यूरोप वाले भी यहाँ रहते हैं। इन सब गोरे लोगों की संख्या शायद बीस हज़ार से अधिक न होगी। इनमें अमेरिका वाले ही ज़ियादह हैं। पर दोनों में से किसी ने भी फ़िलिपाइन को अपना देश नहीं बनाया। इनमें से कोई तो सरकारी नौकर हैं और कोई व्यापारी अथवा पादरी। अतएव इन्हें समय पाकर कभी न कभी स्वदेश लौट जाना ही पड़ेगा।

जापान, चीन और भारत-निवासियों के सदृश फ़िलिपिनों की सभ्यता प्राचीन नहीं। फ़िलिपिनों से मेरा अभिप्राय फ़िलिपाइन-निवासियों से है; इन विदेशियों से नहीं जो थोड़े समय से यहाँ रहने लगे हैं। इनके पास बुद्धि के लिए उपयोगी सामग्री नहीं। इनके यहाँ ग्रन्थ-साहित्य भी कम है। जो थोड़ा बहुत साहित्य है भी तो उसमें उच्च तत्त्व-ज्ञान और कला-कौशल-सम्बन्धी पुस्तकें नहीं।

छोटी छोटी असभ्य या आदिम जातियों को छोड़ कर फ़िलिपिनों को सभ्य कह सकते हैं। ये सब बातों को बड़ी जल्दी और अच्छी तरह समझ लेते हैं और स्वभाव से चतुर मालूम होते हैं। यदि इन्हें उचित शिक्षा दी जाय तो ये अपने निजी और सार्वजनिक कामों का भी अच्छे प्रकार सम्पादन कर सकें।

फ़िलिपाइन्स की स्थिति यदि अनिश्चित न होती, यदि इसे अमेरिकन गवर्नमेंट प्राप्त हुई होती, तो फ़िलिपिनो

का इतिहास आज कुछ का कुछ दिखाई देता। फ़िलिपिनो ने आप ही अपनी प्रतिभा की उन्नति कर ली होती। वे सभ्यता में भी बहुत कुछ बढ़ गये होते। परन्तु उनके निठुर दुर्भाग्य ने उन्हें उत्कर्ष-लाभ से वञ्चित ही रक्खा। इसकी करुण-कहानी सुनिए—

बहुत पहली सदियों में मलायनों का आगमन इस द्वीप-पुञ्ज में हुआ। इस कारण वहाँ के निवासियों को शान्ति-पूर्वक रहने का अवसर न मिला। वे अपने मनोऽनुसार अपने धन्धों, कलाओं और शासन-विषयक प्रबन्धों में भी उन्नति न कर पाये। इस सङ्घर्ष का फल यह हुआ कि मलायनों की बन बैठी और नेग्रिटों को भिन्न भिन्न टापुओं के पहाड़ों और जङ्गलों में भाग जाना पड़ा। पर इंडोनेशियन दूर दक्षिणी द्वीप-पुञ्जों में ही बस गये। मलायनों का दख़ल हो जाने के बाद भी बहुत दिनों तक अनेक अन्तर्जातीय उत्पात होते ही रहे।

यूरोप-निवासियों में पहले पहल सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में फरनेण्डो मेगलिन नाम के पोर्तुगीज़ यात्री ने फ़िलिपाइन-द्वीप-पुञ्ज का पता पाया। फ़िलिपिनों ने इस यात्री को मार डाला। इस द्वीप-पुञ्ज का हाल यूरोप को मालूम होने के थोड़े ही दिन पीछे स्पेन वालों ने उस पर चढ़ाई की। स्पेन वालों का हेतु यह था कि द्वीप-पुञ्ज पर अपना आधिपत्य जम जाय। कोई पचास वर्ष बाद उनका मनोरथ सिद्ध हुआ और यहाँ के निवासियों को विदेशी अधिकारियों के आगे सिर झुकाना पड़ा। वे लोग अलबत्ता इस बात से बच गये जो दुर्गम भू-भागों में जा रहे थे।

द्वीप-पुञ्ज का वर्तमान नाम—फ़िलिपाइन्स—स्पेनिश लोगों का दिया हुआ है। वे उसे इसी नाम—फ़िलिपाइन्स—से सम्बोधन करते थे। अपने राजपुत्र फ़िलिप के नामानुसार उन्होंने उसका नामकरण किया था।

स्पेन वालों ने द्वीप-पुञ्ज के तत्कालीन शासन-प्रबन्ध को नष्ट कर दिया और अपने स्वच्छन्द शासन की नींव डाली। उन्होंने वहाँ की प्रजा को क्रिश्चियन-धर्म स्वीकार करने पर भी बाध्य किया। इस काम के लिए धर्मोपदेशक नियत किये गये। बहुत ज़ोर-ज़ुल्म करने पर भी कुछ फ़िलिपिनों ने अपने बाप-दादों के धर्म को न छोड़ा। मुसलमान मलायन उन्हीं के संतान हैं, जिनका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अँगरेज़ों ने स्पेन वालों को फ़िलिपाइन द्वीप की राजधानी मनीला से निकाल दिया। पर अँगरेज़ों ने द्वीपवासियों को सदा के लिए अपने अधीन न रक्खा। दो ही वर्ष के भीतर उन्हें स्पेन वालों के फिर अधीन कर दिया।

स्पेन के शासकों ने द्वीप की प्रजा पर न्याय और सुव्यवस्थित शासन न किया। फल यह हुआ कि उनके शासन से फ़िलिपिनो असन्तुष्ट रहे। स्पेनिश महन्तों ने फ़िलिपिनों पर बहुत ज़ुल्म किया। उनकी जायदाद को भी वे लोग छीनने लगे। इस कारण फ़िलिपिनों की अशान्ति और भी बढ़ गई।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में स्थानीय अधिकारियों के ख़िलाफ़ कई बार बलवे हुए। शासकों ने बलवा दबाने की चेष्टायें कीं। उन्होंने बलवाइयों को कड़ी से कड़ी सज़ायें दीं। पर फिर भी उसकी जड़ न कटी। बल्कि बलवे की आग और भी भड़क उठी। अन्त में, तङ्ग आकर, स्पेन वालों ने उनसे प्रतिज्ञा की कि अब शासन का प्रबन्ध अच्छा किया जायगा। पर उन्होंने इस वचन को अधिक दिन तक न निबाहा। इस कारण यहाँ के अधिकारियों और प्रजा में बहुत दिनों तक अनबन बनी ही रही।

जिन दिनों फ़िलिपाइन्स में शान्ति थी और शासकों तथा प्रजा में मेल था उस समय भी शासक शिक्षा के प्रचार के लिए यथेष्ट यत्न न करते थे। मदरसों और मुदर्रिसों की संख्या उँगली पर गिनने योग्य थी। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक यही दशा रही। उन दिनों समस्त द्वीप-पुञ्ज में प्रारम्भिक शिक्षा देने वालों की संख्या कोई दो हज़ार से भी कम थी। अथवा मदरसे जाने योग्य उम्र के लड़कों की संख्या दस लाख से कम न थी। इसका अर्थ यह है कि हर ५०० लड़कों पीछे एक शिक्षक वहाँ था। शिक्षकों और शिक्षालयों की अल्प-संख्या के कारण फ़िलिपिनों की अधिकांश सन्तान उस समय की त्रुटिपूर्ण शिक्षा से भी वञ्चित रही। एक और भी अड़चन थी। जो थोड़े से मदरसे थे वे भी शहरों में थे। देहात में तो लोगों उनका पता न था।

इसके सिवा जो लोग शिक्षक का काम करते थे वे बहुत ही थोड़ा पढ़े-लिखे थे। लड़कों को पढ़ाना कैसे चाहिए— इसकी शिक्षा उनमें से बहुत ही कम लोगों ने पाई थी। उन्हें तनख़्वाहें भी बहुत ही थोड़ी दी जाती थीं। उनमें कैसे

फ़िलीपाइन्स के विद्यार्थियों के खेल—एक दौड़ की समाप्ति।

फ़िलीपाइन्स के एक सम्मिलित मदरसे का बाग़।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

दर्जे के शिक्षकों को तो इतनी थोड़ी तनख़्वाह दी जाती थी कि उस पर किसी भले आदमी का मिलना बहुत ही दुर्लभ था। शिक्षक प्रायः अपने ही घरों के किसी कमरे में बैठ कर लड़कों को पढ़ाया करते थे।

जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा का यह हाल है वहाँ उच्च और शिल्प-शिक्षा की आशा कहाँ ? हाँ, ऐसे कुछ शिक्षालय सरकार और धर्मोपदेशकों—पादरियों—की तरफ़ से अवश्य खोले गये थे, पर उनमें कुछ सार न थी। इस कारण न तो लोग उन्हें अच्छी नज़र से देखते थे और न अधिक लड़के ही उनमें पढ़ने जाते थे।

फ़िलिपिनो को अधिक शिक्षा न देने का एक कारण था। स्पेनिश अधिकारी यह सोचते थे कि फ़िलिपिनो को यदि ऊँचे दर्जे की शिक्षा दी जायगी और उन्हें विदेश भेजा जायगा तो वे घमण्डी हो जायँगे और फिर उन्हें अपने अधिकार में रखना कठिन हो जायगा। अतएव वे सदा इसी बात की चेष्टा किया करते थे कि वहाँ वाले पढ़-लिख न जायँ, विदेशी भाषाओं में प्रावीण्य प्राप्त न कर लें और समुद्र-यात्रा न किया करें। कुछ लोग ऐसे भी थे जो यह चालबाज़ी समझ गये। अतएव उन्होंने उच्च शिक्षा पाने का प्रयत्न किया। पर इसके लिए उन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा। कुछ लोगों को तो ज़रा ज़रा सी बातों के लिए फाँसी पर लटक जाना पड़ा।

सरकारी बड़े बड़े पदों पर फ़िलिपिनो नियत नहीं न किये जाते थे। अपने नगर के प्रबन्ध के विषय में भी वे चूँ तक न कर सकते थे। फिर राष्ट्रीय-शासन की बात कहाँ ? स्पेनिश अधिकारी फ़िलिपिनो के साथ, फिर वे चाहें अमीर हों चाहे ग़रीब, धनी हों चाहे निर्धन, बहुत ही बुरा बर्ताव करते थे। जङ्गलियों के सदृश उन्हें वे असभ्य समझते थे। उनके साथ किसी प्रकार की रियायत न करते और हमदर्दी न रखते थे।

ऐसी दशा में फ़िलिपिनो के लिए किसी प्रकार की उन्नति करना तथा सुख और सन्तोष-पूर्वक रहना असम्भव था। हाँ, फ़िलिपिनो के स्पेनिश अधिकारियों से असन्तुष्ट रहने के चिह्न अवश्य दिखाई देते थे। वे चिह्न शीघ्र ही रङ्ग दिखाने लगे। कुछ देश-भक्त अगुओं ने स्पेन वालों को अपने यहाँ से निकाल बाहर करने के प्रयत्न शुरू कर दिये।

फ़िलिपाइन की प्रजा और राजा के ये झगड़े उन्हीं दिनों हो रहे थे जब उन्नीसवीं सदी के अन्त में—अमेरिका के संयुक्त-राज्यों और स्पेन वालों से लड़ाई छिड़ चुकी थी। क्यूबा नाम के एक द्वीप के कारण यह लड़ाई छिड़ी थी। यह टापू संयुक्त-राज्यों के दक्षिण-पूर्व है। इसका क्षेत्रफल ४४,१०८ वर्गमील और आबादी कोई २० लाख है। उस समय क्यूबा स्पेन वालों के अधिकार में था। ११ अप्रैल १८९८ को अमेरिका ने लड़ाई छेड़ दी। इसके थोड़े ही दिन बाद लड़ाई की आग फ़िलिपाइन्स तक भभक उठी। इस कारण अमेरिका ने द्वीप-पुञ्ज को आसानी से अपने अधिकार में ले लिया। अमेरिका को अधिक बल-पौरुष दिखाने की भी आवश्यकता न पड़ी। यह उपद्रव थोड़े ही दिनों में शान्त हो गया। १८९९ ईसवी में अमेरिका के संयुक्त-राज्यों और स्पेन में सन्धि हो गई। फ़िलिपाइन-द्वीप-पुञ्ज अमेरिका के अधिकार में चला गया। तब से आज तक अमेरिका के संयुक्त-राज्यों ही की सत्ता वहाँ पर है।

जब संयुक्त-राज्यों ने द्वीप-पुञ्ज पर अधिकार पाया तब बड़े बड़े अमेरिकन राजनीतिज्ञों ने तजवीज़ें पेश कीं कि अमेरिका को अपनी नवीन प्रजा से कैसा व्यवहार करना चाहिए। प्रेसिडेण्ट मेक-किनले ने, १८९९ ईसवी में, फ़िलिपिनो-कमीशन नियुक्त किया। इसका उद्देश यह बताना था कि अमेरिका वाले फ़िलिपिनो के लाभ के लिए क्या क्या करना चाहते हैं। कमीशन ने एक घोषणापत्र जारी किया। उसका कुछ अंश सुनिए—

"यह कमीशन फ़िलिपाइन-द्वीप-पुञ्ज के निवासियों को यह विश्वास दिलाता है कि × × × अमेरिकन लोग तुम्हारे हितचिन्तक हैं और तुम्हें बन्धुभाव से देखते हैं। अमेरिकन सरकार ने फ़िलिपाइन-द्वीपों का सार्वभौमत्व ग्रहण किया है। इस नाते अपना जो कर्तव्य तुम्हारे प्रति है उसका पालन तो यह करेहीगी, पर इसके अतिरिक्त यह यह भी चाहती है कि फ़िलिपाइन-द्वीप-निवासियों की दशा सुधरे, उनकी उन्नति होती जाय और वे सुख-चैन से रहें। यहाँ नहीं, वे अपनी उन्नति इतनी कर लें कि संसार की सभ्यतम जातियों में उनकी गिनती होने लगे।

"सुशासन और शान्ति के द्वारा फ़िलिपाइन की प्रजा के × × × सुख-साधनों की पूर्ति की जायगी। इस लिए

करने वाले अन्य आवश्यक कार्यों में शिक्षा विभाग सुधार किये जावेंगे। इसमें प्रजा के स्वार्थों पर ध्यान रक्खा जायगा। सुधार ऐसे ढंग से किये जावेंगे जिससे फ़िलिपाइन की प्रजा की सब आकांक्षायें पूरी हो सकें"।

यह घोषणा ४ अप्रैल १८९९ को की गई थी। इस सत्रह ही वर्षों में अमेरिकनों ने फ़िलिपाइन-निवासियों की उन्नति के लिए खूब ही काम कर दिखाया। इन कामों से सिद्ध होता है कि अमेरिकन सरकार ने फ़िलिपाइन की प्रजा के सुख और कल्याण के लिए भिन्न भिन्न सुधारों के करने का संकल्प किया था उसको पूरा करने में वह कितनी सचेष्ट है।

राष्ट्रीय उन्नति की जीवनी-शक्ति शिक्षा ही है। अतएव पहले यही सुनिए कि अमेरिकनों ने स्कूलों—कालेजों तथा अध्यापकों के लिए क्या क्या प्रबन्ध किये हैं। सबसे पहले प्रारम्भिक स्कूलों का वृत्तान्त सुनिए—

फ़िलिपाइन-सरकार ने हाल ही में मेरे पास द्वीप-पुञ्ज के शिक्षा-विभाग की पन्द्रहवीं वार्षिक रिपोर्ट भेजी है। उसमें लिखा है कि द्वीप-पुञ्ज में ३,८२१ प्रारम्भिक मदरसे हैं। १९१३—१४ में २,७७,०१२ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। शिक्षकों की संख्या ७,६६० थी। शिक्षकों में सिर्फ़ १२ शिक्षक अमेरिकन थे, बाक़ी के सब फ़िलिपिनो। २०-२२ वर्ष पहले, स्पेन वालों के समय में, मदरसों और छात्रों आदि की जितनी तादाद थी उससे इस संख्या की तुलना कीजिए। आपको पता लग जायगा कि अमेरिकनों ने फ़िलिपिनो के लाभ के लिए कितना अधिक शिक्षा-प्रचार किया है।

प्रारम्भिक पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को मामूली ढंग की साधारण शिक्षा दी जाती है। स्कूल वाले दिन पहले दरजे के विद्यार्थी २½ घन्टे पढ़ते हैं। उन्हें अक्षरों और विशेष प्रकार की प्रायमरों के द्वारा वर्णबोध, व्याकरण, हिज्जे, गिनती, सीना और बुनना (सिर्फ़ लड़कियों को) सिखाया जाता है। दूसरे दरजे के विद्यार्थी ४ घन्टे पढ़ते हैं। उन्हें पढ़ना, लिखना, व्याकरण, व्यायाम, अङ्कगणित, संगीत और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी कुछ कामों की शिक्षा भी दी जाती है। तीसरे दरजे के विद्यार्थी भी पाँच ही घन्टे स्कूल में पढ़ते हैं। वहाँ वे पढ़ना-लिखना, भाषा, (शब्द और वाक्य) और व्याकरण, अङ्कगणित, फ़िलिपाइन्स का भूगोल, हाथ से ड्राइङ्ग, गाना और छोटे छोटे उद्योग-धन्धे सीखते हैं। चौथे दरजे में भी पाँच ही घन्टे पढ़ना पड़ता है। उसमें तीसरी पुस्तक पढ़ाई जाती है। इसके सिवा भाषा, खेलना, ड्राइङ्ग, अङ्कगणित, छोटे छोटे उद्योग-धन्धे, संगीत, नागरिक-विद्या, आरोग्य-शास्त्र, स्वच्छता और भूगोल पढ़ाये जाते हैं।

प्रारम्भिक मदरसों के अतिरिक्त वहाँ मध्यम श्रेणी के स्कूल भी हैं। उनमें कुछ ऊँचे दरजे की पढ़ाई होती है। इन स्कूलों में पाँचवीं, छठी और सातवीं—ये तीन श्रेणियाँ हैं। विद्यार्थी नीचे लिखे हुए छः विषयों में से किसी एक को चुन लेता है—

(१) साधारण-शिक्षा।
(२) अध्यापन-कार्य।
(३) गृह-प्रबन्ध-शास्त्र।
(४) व्यापार-शिक्षा।
(५) कृषि-शिक्षा।
(६) व्यवसाय-शिक्षा।

साधारण-शिक्षा के विद्यार्थियों को पाँचवीं श्रेणी में व्याकरण, वाक्य-रचना, पढ़ना, लिखना, हिज्जे, ड्राइङ्ग, गाना और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी काम सिखाये जाते हैं। टोकरियाँ बनाना और दरी-बुनाई लड़कों को और गृह-प्रबन्ध लड़कियों को सिखाया जाता है। छठी श्रेणी में अध्ययन के विषय वही हैं, पर शिक्षा ज़रा ऊँचे दरजे की दी जाती है। अर्थात् उन्हीं विषयों का अधिक और ऊँचा ज्ञान कराया जाता है। औद्योगिक काम में सिर्फ़ बाग़बानी सिखाई जाती है। सातवीं श्रेणी में विद्यार्थियों को पूर्वोक्त विषयों के सिवा इतिहास और आरोग्य-रक्षा, स्वच्छता और शरीर-विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती है। औद्योगिक श्रेणी में लड़कों को बढ़ई-गीरी और लड़कियों को गृह-व्यवस्था सिखाई जाती है।

अध्यापन-कार्य के शिक्षार्थियों की पढ़ाई, पाँचवीं और छठी श्रेणी में वैसी ही होती है जैसी कि साधारण शिक्षा के विद्यार्थियों की। उन्हें सिर्फ़ अङ्कगणित नहीं सिखाया जाता। सातवीं श्रेणी में ड्राइङ्ग और औद्योगिक कामों के बदले स्कूल-प्रबन्ध सिखाया जाता है और विद्यार्थी को शिक्षा देने का अभ्यास कराया जाता है।

उन्हें खेती और वाणिज्य कामों में स्वतन्त्रता दी जायगी, न्यायालयों की स्थापना की जायगी, उन्हें ज्ञान, विज्ञान और कला-कौशल की शिक्षा दी जायगी, विदेशी जातियों से उनका परिचय और सम्पर्क कराया जायगा, व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योग-धन्धों का विस्तार किया जायगा, आन्तरिक व्यवसायों के साधनों की उन्नति और वृद्धि की जायगी, नये नये यन्त्रों की सहायता से सम्पत्ति-वृद्धि की जायगी। किम्बहुना उच्चतम सभ्यता प्राप्त करने के लिए जिन उच्च विचारों और उपयोगी साधनों की आवश्यकता है उनकी प्राप्ति के लिए फ़िलिपाइन-निवासियों का ध्यान पूरी तरह आकर्षित किया जायगा—इस ओर झुकी हुई उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को उत्तेजना दी जायगी।

"कमीशन विश्वास दिलाता है कि फ़िलिपाइन-द्वीपों में सुशासन की व्यवस्था के लिए संयुक्त-राज्य हृदय से चेष्टा करेगा। उस व्यवस्था के अनुसार फ़िलिपाइन की प्रजा बड़े बड़े स्वराज्य-साधनों को प्राप्त करेगी और सर्व्वाङ्गीण स्वतन्त्रता के सुख का उपभोग करेगी। अर्थात् संयुक्त-राज्यों ने अपने अन्य अधिकृत देशवासियों को जितनी स्वतन्त्रता और शासन-सम्बन्धी जितने उच्च अधिकार प्रदान किये हैं वे सब द्वीप-पुञ्ज की प्रजा को दिये जायँगे।

"*फ़िलिपाइन-द्वीप के निवासियों के कल्याण और उत्कर्ष* के लिए संयुक्त-राज्य पूर्णतया प्रयत्न कर रहा है। फ़िलिपाइन की प्रजा के स्वत्वों और स्वतन्त्रता में ज़रा भी कमी न आने पावेगी। द्वीप-पुञ्ज पर अपना अधिकार अक्षुण्ण रखने के लिए संयुक्त-राज्य जैसे यथेष्ट पुलिस तथा जल और थल की सेना रखने को तैयार है उससे भी अधिक द्वीप में शान्ति रखने और उसकी समृद्धि बढ़ाने का यत्न करने के लिए तैयार है। यही नहीं, द्वीप-वासियों को यथेष्ट स्वातन्त्र्य देना, उनके लिए सब तरह के सुभीते कर देना, उनको धीरे धीरे स्वयं शासन के अधिकार देना, और प्रजा-सत्ताक-राज्य-विषयक उनकी उच्च आकांक्षाओं, विचारों और आदर्शों को उत्तेजना देना भी संयुक्त-राज्य को अभीष्ट है।

"अब फ़िलिपाइन की प्रजा का ध्यान उन सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया जाता है जिनके आधार पर संयुक्त-राज्य उन पर शासन करेगा। उनमें से कुछ मुख्य मुख्य सिद्धान्त नीचे दिये जाते हैं—

(१) सारे द्वीप-पुञ्ज पर संयुक्त-राज्यों की सत्ता रहेगी। जो इसमें बाधा डालना चाहेगा वह अपना अनिष्ट करा लेगा।

(२) फ़िलिपाइन की प्रजा को स्वयं शासन करने की यथा-सम्भव यथेष्ट स्वाधीनता दी जायगी। फ़िलिपाइन की प्रजा को इस स्वाधीनता का उपयोग इस तरह करना होगा कि शासन का काम उत्तम, न्यायसङ्गत और कम ख़र्च से हो।

(३) फ़िलिपाइन की प्रजा को पूरे पूरे हुक़ूक़ देने की प्रतिज्ञा की जायगी और उन अधिकारों की रक्षा की जायगी।

(४) भलमनसी, न्यायनिष्ठा और मैत्रीभाव का व्यवहार प्रजा के साथ किया जायगा। अपने फ़ायदे के लिए संयुक्त-राज्य कोई काम द्वीप-पुञ्ज में न करेगी। जो कुछ करेगी द्वीप-निवासियों के फ़ायदे के लिए करेगी। क्योंकि संयुक्त-राज्यों का एकमात्र उद्देश यह है कि द्वीप-पुञ्ज की प्रजा का कल्याण और बढ़ती हो।

(५) फ़िलिपाइन की प्रजा से यह भी प्रतिज्ञा की जायगी कि उनको अपने यहाँ प्रबन्ध और न्याय के मामलों में, जहाँ तक उचित समझा जायगा, बड़े बड़े पद दिये जायँगे।

(६) सभी कर सुभीते और आवश्यकता पर ध्यान रख कर लगाये और वसूल किये जायँगे।

(७) सर्वसाधारण द्वारा प्राप्त धन, फ़िलिपाइन-सरकार की स्थापना और रक्षा के लिए, फ़िलिपाइन-निवासियों की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए, उचित और आवश्यक कामों में ख़र्च किया जायगा। शासन-कार्य न्यायपूर्वक होगा। कोई काम ऐसा न होगा जिससे बुराइयाँ पैदा हों और प्रजा कष्ट मिले।

(८) पक्की सड़कों और रेलों की तथा अन्य सार्वजनिक कामों की उन्नति की जायगी।

(९) देशी और विदेशी वाणिज्य-व्यवसाय, कृषि और उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए यथेष्ट प्रबन्ध किया जायगा।

(१०) शिक्षा-वृद्धि के लिए भी काफ़ी प्रबन्ध किया जायगा। ऊँचे दरजे की शिक्षा के लिए भी उचित चेष्टा की जायगी।

(११) शासन के सभी विभागों तथा प्रजा में

करने वाले अन्य आवश्यक कार्यों में बिना विलम्ब सुधार किये जायँगे। इसमें प्रजा के स्वार्थों पर ध्यान रक्खा जायगा। सुधार ऐसे ढंग से किये जायँगे जिससे फ़िलिपाइन की प्रजा की सब आकांक्षायें पूरी हो सकें"।

यह घोषणा ७ अप्रैल १८९९ को की गई थी। इस तरह ही वर्षों में अमेरिकनों ने फ़िलिपाइन-निवासियों की उन्नति के लिए ख़ूब ही काम कर दिखाया। उन कामों से सिद्ध होता है कि अमेरिकन सरकार ने फ़िलिपाइन की प्रजा के सुख और कल्याण के लिए जिन जिन सुधारों के करने का सङ्कल्प किया था उनको पूरा करने में वह कितनी सचेष्ट है।

राष्ट्रीय उन्नति की जीवनी-शक्ति शिक्षा ही है। अतएव पहले यही सुनिए कि अमेरिकनों ने स्कूलों—कालेजों तथा अध्यापकों के लिए क्या क्या प्रबन्ध किये हैं। सबसे पहले प्रारम्भिक स्कूलों का वृत्तान्त सुनिए—

फ़िलिपाइन-सरकार ने हाल ही में मेरे पास द्वीप-पुञ्ज के शिक्षा-विभाग की पन्द्रहवीं वार्षिक रिपोर्ट भेजी है। उसमें लिखा है कि द्वीप-पुञ्ज में ४,८२१ प्रारम्भिक मदरसे हैं। १९१३—१४ में ५,००,०१२ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। शिक्षकों की संख्या ७,९६० थी। शिक्षकों में सिर्फ़ १२ शिक्षक अमेरिकन थे, बाक़ी के सब फ़िलिपिनो। २०-२१ वर्ष पहले, स्पेन वालों के समय में, मदरसों और छात्रों आदि की जितनी तादाद थी उससे इस संख्या की तुलना कीजिए। आपको पता लग जायगा कि अमेरिकनों ने फ़िलिपिनों के लाभ के लिए कितना अधिक शिक्षा-प्रचार किया है।

प्रारम्भिक पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को मामूली ढंग की साधारण शिक्षा दी जाती है। स्कूल वाले दिन पहले दर्जे के विद्यार्थी ४½ घण्टे पढ़ते हैं। उन्हें अक्षरों और विशेष प्रकार की प्रायमरों के द्वारा वर्णबोध, उच्चारण, लिखने, गिनती, सीना और बुनना (सिर्फ़ लड़कियों को) सिखाया जाता है। दूसरे दर्जे के विद्यार्थी ५ घण्टे पढ़ते हैं। उन्हें पढ़ना, लिखना, व्याकरण, उच्चारण, अङ्कगणित, सङ्गीत और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी कुछ कामों की शिक्षा दी जाती है। तीसरे दर्जे के विद्यार्थी भी पाँच ही घण्टे स्कूल में पढ़ते हैं। वहाँ वे पढ़ना-लिखना, भाषा, (शब्द और वाक्य) और उच्चारण, अङ्कगणित, फ़िलिपाइन्स का भूगोल, हाथ से ड्राइङ्ग, गाना और छोटे छोटे उद्योग-धन्धे सीखते हैं। चौथे दर्जे में भी पाँच ही घण्टे पढ़ना पड़ता है। उसमें तीसरी पुस्तक पढ़ाई जाती है। इसके सिवा भाषा, लेसन, ड्राइङ्ग, अङ्कगणित, छोटे छोटे उद्योग-धन्धे, सङ्गीत, नागरिक-शिक्षा, आरोग्य-शास्त्र, स्वच्छता और भूगोल पढ़ाये जाते हैं।

प्रारम्भिक मदरसों के अतिरिक्त वहाँ मध्यम श्रेणी के स्कूल भी हैं। उनमें कुछ ऊँचे दरजे की पढ़ाई होती है। उन स्कूलों में पाँचवीं, छठी और सातवीं—ये तीन श्रेणियाँ हैं। विद्यार्थी नीचे लिखे हुए छः विषयों में से किसी एक को चुन लेता है—

(१) साधारण-शिक्षा।
(२) अध्यापन-कार्य्य।
(३) गृह-प्रबन्ध-शास्त्र।
(४) व्यापार-शिक्षा।
(५) कृषि-शिक्षा।
(६) व्यवसाय-शिक्षा।

साधारण-शिक्षा के विद्यार्थियों को पाँचवीं श्रेणी में व्याकरण, वाक्य-रचना, पढ़ना, लिखना, हिज्जे, ड्राइङ्ग, गाना और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी काम सिखाये जाते हैं। टोकरियाँ बनाना और बढ़ई-गुनाई लड़कों को और गृह-प्रबन्ध लड़कियों को सिखाया जाता है। छठी श्रेणी में अध्ययन के विषय वही हैं, पर शिक्षा ज़रा ऊँचे दर्जे की दी जाती है। अर्थात् उन्हीं विषयों का अधिक और ऊँचा ज्ञान कराया जाता है। औद्योगिक काम में सिर्फ़ बाग़बानी सिखाई जाती है। सातवीं श्रेणी में विद्यार्थियों को पूर्वोक्त विषयों के सिवा इतिहास और आरोग्य-रक्षा, स्वच्छता और शरीर-विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती है। औद्योगिक श्रेणी में लड़कों को बढ़ई-गीरी और लड़कियों को गृह-व्यवस्था सिखाई जाती है।

अध्यापन-कार्य्य के विद्यार्थियों की पढ़ाई, पाँचवीं और छठी श्रेणी में वैसी ही होती है जैसी कि साधारण शिक्षा के विद्यार्थियों की। उन्हें सिर्फ़ अङ्कगणित नहीं सिखाया जाता। सातवीं श्रेणी में ड्राइङ्ग और औद्योगिक कामों के बदले स्कूल-प्रबन्ध सिखाया जाता है और विद्यार्थी को शिक्षा देने का अभ्यास कराया जाता है।

गृह-प्रबन्ध-सम्बन्धी विषय पढ़ने वाले विद्यार्थियों को—व्याकरण, भाषा-रचना, पढ़ना, लिखने करना, अङ्कगणित, ड्राइङ्ग, सीना, भोजन बनाना, घर की सफ़ाई रखना सिखाया जाता है। व्यापार-विषयक शिक्षा में दूकान का काम-काज ही मुख्य करके सिखाया जाता है। अन्य मामूली विषयों की भी कुछ शिक्षा दी जाती है।

कृषि-विषयक शिक्षा पाने वाले छात्रों को पढ़ना, लिखना और अङ्कगणित सीखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त किसानी का काम—हल जोतना आदि—बढ़ई-गीरी, लुहार-गीरी तथा कुछ रसायन-शास्त्र के भी स्थूल नियमों की शिक्षा दी जाती है।

व्यवसाय-सम्बन्धी शिक्षा-क्रम में सुलिखित लिखना, टाइप राइटिङ्ग, बहीखाता रखना आदि सिखाया जाता है। व्यवसाय-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार की भी शिक्षा दी जाती है। इसके सिवा इतिहास भी पढ़ना पड़ता है।

१९१४-१५ में फ़िलिपाइन-द्वीपों में ३०१ मध्यम श्रेणी के स्कूल थे। इनमें ४१,८८८ विद्यार्थी थे। इन स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या १७० थी।

मध्यम श्रेणी के स्कूलों की शिक्षा समाप्त करके जो विद्यार्थी ऊँचे दरजे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें वे या तो प्रान्तीय हाईस्कूल में या स्पेशल हाईस्कूल में भरती होते हैं। हाईस्कूल के पाठक्रम का हाल सुनिए—

प्रथम वर्ष—बीजगणित, साहित्य, निबन्ध-रचना और साधारण इतिहास।

द्वितीय वर्ष—सामान्य रेखागणित, साहित्य और निबन्ध-रचना, प्राकृतिक भूगोल, राज्यशासन-शिक्षा, सामान्य इतिहास और संयुक्त-राज्यों का इतिहास।

तृतीय वर्ष—अङ्कगणित की आलोचना, ऊँचे दरजे का बीजगणित (ऐच्छिक), साहित्य और निबन्ध-रचना, जीवन-शास्त्र, औपनिवेशिक इतिहास और व्यापारिक भूगोल।

चतुर्थ वर्ष—रेखागणित, (वैकल्पिक), केमिस्ट्री (वैकल्पिक), साहित्य, निबन्ध-रचना, अलङ्कार-शास्त्र, व्यवसायोपयोगी अँगरेज़ी भाषा, पदार्थ-विज्ञान और फ़िलिपाइन का सम्पत्ति-शास्त्र।

स्पेशल हाईस्कूलों में अध्यापन-कार्य की शि[क्षा दी] जाती है। इनमें कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य, घरेलू उद्योग-धन्धे और प्राकृतिक विज्ञान सिखाया जा[ता है]। अध्यापन की शिक्षा बिलकुल व्यावहारिक दी जाती है[।] है, स्थानाभाव के कारण इसका सविस्तर वृत्तान्त नहीं [दिय]ा जा सकता।

प्रान्तीय हाईस्कूल, स्पेशल स्कूल और मनीला [में] स्थापित एक अन्धों और बहरों के स्कूल को मिला[कर] १९१४—१५ में द्वितीय श्रेणी के ७१ स्कूल वहाँ थे। १८६ शिक्षक थे। छात्रों की संख्या ७,६१५ थी।

इन सब स्कूलों के सिवा मनीला में एक विश्ववि[द्यालय] भी है। इसमें एक औषध और शस्त्र-क्रिया—अर्था[त्] [डाक्टरी]—की शिक्षा देने वाला कालेज, एक कृषि-कालेज, एक चिकित्सा-कालेज, एक क़ानूनी कालेज, एक इंजिनि[यरिङ्ग] कालेज, और एक उच्च श्रेणी के कला-कौशल का का[लेज] है। इसमें डाक्टरी और जङ्गल के काम की शिक्षा देने का प्रबन्ध है। फ़िलिपाइन्स के विश्वविद्यालय की स्थापना [इस] लिए की गई है कि साहित्य, तत्त्वज्ञान, विज्ञान, [कला]-कौशल और सब तरह के उद्योग-धन्धे की शिक्षा [प्राप्त] हो जाय।

समस्त सरकारी और म्युनिसिपल शिक्षालयों की सं[ख्या] ४,२०१ है। इनमें ६,८६,९१० विद्यार्थी और ११,२[..] शिक्षक हैं। अर्थात् द्वीप-पुञ्ज के मदरसे जाने योग्य [बालकों में से] कोई आधे विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं।

वहाँ शिक्षा इस प्रयोजन से नहीं दी जाती है कि बड़े विद्वान् तैयार किये जायँ। किन्तु इस लिए दी जाती [है] कि लोग अर्थकरी विद्या पढ़ें, वे अपनी शक्तियों का [उप]योग कर सकें, और सुख-पूर्वक अपनी ज़िन्दगी बसर [कर] सकें। कृषि, बढ़ई-गीरी और उद्योग-धन्धों की शिक्षा वि[द्यार्थि]यों को बचपन ही से दी जाती है। समस्त श्रेणियों [में] पढ़ने वाली बालिकाओं को गृहिणी का कर्तव्य और [सी]ना-पिरोना आदि सिखाया जाता है।

द्वीप-पुञ्ज में समय समय पर प्रदर्शिनियाँ भी होती [रहती] हैं। इनमें विद्यार्थियों ने अपने शिक्षकों की राय से जो [चीज़ें] तैयार की हैं वे दिखलाई और बेची जाती हैं। इससे [जो] आमदनी होती है वह, ख़र्च काट कर, विद्यार्थियों को [दी जाती है]।

दी जाती है। भिन्न भिन्न स्कूलों के ग्रेजुएटों और उनके सम्बन्धियों को, गवर्नमेंट स्कूलों में उनके सीखे हुए उद्योग-धन्धों का काम शुरू करने के लिए, उत्तेजना और सहायता दी जाती है। यही नहीं, उन्हें अपने स्वीकृत कार्य्यों में सफलता प्राप्त कराने के लिए कठिन से कठिन प्रयत्न भी किये जाते हैं।

द्वीप-पुञ्ज की सरकार वहाँ के निवासियों को केवल लिखा-पढ़ा कर ही नहीं रह जाती। यह वहाँ के विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति पर भी विशेष ध्यान देती है। प्रत्येक मदरसे में एक एक लम्बा-चौड़ा मैदान खेलने के लिए रहता है। जब तक शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को यह निश्चय नहीं हो जाता है कि स्कूलों में खेलने के मैदानों के लिए काफ़ी जगह है तब तक वे इमारतें बनाने के लिए मंज़ूरी नहीं देते। व्यायाम, जिम्नेस्टिक, ड्रिल तथा अन्य प्रकार की कसरतें सिखाने के लिए अच्छे अच्छे शिक्षक नियत किये जाते हैं। हर तरह के खेल बड़े उत्साह से सिखाये जाते हैं।

कुछ समय पहले शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने खेलों को लोक-प्रिय बनाने के लिए पूर्वी देशों के खेल सिखाने का भी प्रबन्ध किया था। चीन और जापान से बड़े बड़े खिलाड़ी बुलाये गये थे। इससे बहुत उत्साह-वृद्धि हुई थी।

फ़िलिपिनो लोगों को अँगरेज़ी सिखाने के लिए शिक्षा-विभाग ने विशेष प्रयत्न किये हैं। क्योंकि वहाँ कोई व्यापक भाषा न थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए ही यह व्यवस्था की गई। इससे एक और लाभ भी हुआ। वह यह कि अँगरेज़ी-भाषा-भाषी अँगरेज़ों और अमेरिकनों से उनका परिचय बढ़ गया तथा अँगरेज़ी-साहित्य से लाभ-लाभ करने का द्वार भी खुल गया। इसमें शिक्षा-विभाग को पूरी पूरी सफलता हुई। अब ७२ लाख में से कोई १० लाख फ़िलिपिनो अँगरेज़ी बोलते और लिखते हैं।

संयुक्त-राज्यों ने शिक्षा-विभाग में काम करने के लिए फ़िलिपाइन्स में कितने ही अमेरिकन कर्म्मचारियों को भेजा था। उनमें से कुछ तो स्कूलों और कालेजों में शिक्षकों तथा अध्यापकों का कार्य करते थे और कुछ अन्य उच्च पदों पर नियुक्त थे। इन सब ने अपना कर्त्तव्य अत्यन्त उत्साह से पालन किया। उसी का यह फल है कि इतनी थोड़ी अवधि में फ़िलिपाइन्स में शिक्षा की इतनी अधिक उन्नति हो गई।

वहाँ राज-कर्म्मचारियों की यही इच्छा रहती है कि अमेरिकन शिक्षक अपने कर्त्तव्यों का स्वरूप बहुत व्यापक समझें। अर्थात् वे केवल १-२ घण्टे मदरसे आकर लड़कों को किताबें पढ़ा देना ही अपना कर्त्तव्य न समझें; किन्तु अपने को वयस्क लड़कों की उन्नति का आधार मानें। इसी तरह वे अपने को छोटे छोटे विद्यार्थियों का उपदेशक और पथ-प्रदर्शक भी समझें। उनसे यह कहा गया है कि भगवान् ने उन्हें ऐसी श्रेष्ठ जाति में जन्म देने की कृपा की है जो फ़िलिपाइन वालों से प्रत्येक बात में बढ़ी चढ़ी है। अतएव उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने से कम उन्नत फ़िलिपिनों को अन्य उन्नतिशील जातियों से टक्कर लेने योग्य बनाने का भरसक उद्योग करें। अथवा यह कहना चाहिए कि फ़िलिपिनों को अमेरिकन साँचे में ढालने के लिए अमेरिकन शिक्षक प्रधान साधन का काम करते हैं।

जिस उत्साह और जिस तत्परता से धर्म्मोपदेशक काम करते हैं, शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध रखने वाले अमेरिकन स्त्री-पुरुष उसी उत्साह से फ़िलिपाइन्स में काम करते हैं। वे समझते हैं कि हम एक उच्च और उन्नत सभ्यता के प्रतिनिधि हैं। हम उस देश के निवासी हैं जहाँ की सभ्यता बहुत ऊँची और बढ़ी चढ़ी है। अतएव हमें चाहिए कि हम फ़िलिपिनों को उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने के लिए उत्साहित करें।

शिक्षक-समुदाय तथा फ़िलिपाइन्स-निवासी अन्य अमेरिकन—विशेष करके किसी न किसी रूप में शासन से सम्बन्ध रखने वाले—यह समझते हैं कि हमें ईश्वर के सौंपे हुए एक बड़े काम को करना है। इसी से वे कष्ट सह कर भी अपना काम किया ही करते हैं—उसे छोड़ते नहीं। पर वहाँ कुछ ऐसे भी अमेरिकन हैं जो अपने ही लाभ पर अधिक ध्यान देते हैं और दूसरी बातों की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। तथापि ऐसे लोग बहुत कम हैं।

फ़िलिपिनो स्त्री-पुरुषों को अध्यापन-कार्य्य की शिक्षा देने के लिए भी अमेरिका वाले हर प्रकार के उद्योग कर रहे हैं। छात्र-वृत्तियाँ देकर वे उनका उत्साह बढ़ाते हैं। जो लोग पढ़ाने के काम में अच्छे पाये जाते हैं, उन्हें बड़ी बड़ी तनख़्वाहें दी जाती हैं। स्पेन वालों के ज़माने में शिक्षा केवल रिवा

जाता था अब उससे बहुत अधिक दिया जाता है। इससे अमेरिकन शासन की उदारता का अच्छा परिचय मिलता है। फ़िलिपिनो दिन पर दिन शिक्षा-विभाग के ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त होते जाते हैं और बड़ी बड़ी तनख़्वाहें पाते हैं। वे लोग भी इस प्रणाली के दिन पर दिन अधिकाधिक पसन्द करने लगे हैं। स्त्रियों के यहाँ धातृ-कर्म्म और उपचार आदि विषय ख़ूब पढ़ाये जाते हैं। प्रति वर्ष सभायें होती हैं। उनमें शिक्षक परस्पर अपने अपने कार्यों का मुक़ाबला करते हैं। स्कूलों में पढ़ाते पढ़ाते शिक्षकों का जी ऊब उठता है। अतएव ऐसी सभाओं में शरीक होने से उनका दिमाग़ फिर तरोताज़ा हो जाता है और कितने ही सज्जनों के दर्शन का लाभ होता है।

अमेरिकनों ने शिक्षा-विभाग की उन्नति के लिए जिस उदारता, उत्साह और शुभचिन्तना का परिचय दिया है, शासन-सम्बन्धी अन्य कामों में भी अपने कर्तव्य का उन्होंने उसी तरह पालन किया है। पहले के उच्च ग़ैर-क़ानूनी बातें अब वहाँ नहीं होतीं। अब तो वहाँ शान्ति ही का दौर दौरा है। जङ्गली जातियों की भी शरारत अब कम होती जाती है। क्योंकि अब वे समझने लग गये हैं कि अमेरिकनों को दङ्गे-फ़िसाद और उपद्रव पसन्द नहीं।

क़ानून बन गये हैं और अदालतें क़ायम हो गई हैं। क़ानून की नज़र में शासक और शासित दोनों समान रक्खे गये हैं।

बड़ी बड़ी रकमें ख़र्च करके बड़ी बड़ी सार्वजनिक इमारतें बनाई गई हैं। यथा—अदालतें, सभा-गृह, स्कूल और कालेज, अस्पताल, बन्दर बन्दरगाह(?), रेलवे, ट्रामवे आदि।

नगरों और क़सबों की सफ़ाई तथा वहाँ के निवासियों की आरोग्य-रक्षा के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ सुधार किये गये हैं। पहले की अपेक्षा मृत्यु-संख्या अब बहुत कम हो गई है। लोगों की तन्दुरुस्ती अब पहले से बहुत अच्छी है।

कृषि, उद्योग-धन्धे और व्यापार में भी ख़ूब उन्नति हुई है। खेत जोतने, दूध निकालने और घरेलू व्यवसायों में वैज्ञानिक उपायों और नई नई कलों से काम लिया जाता है। जो उद्योग-धन्धे पहले से जारी हैं उनकी जाँच होती है और यथासम्भव उनकी उन्नति के प्रयत्न होते रहते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए नये नये साधनों की सृष्टि की जाती है।

ज्यों ज्यों शान्ति का साम्राज्य होता जाता है और ज्यों ज्यों शिक्षा के परिमाण में वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों अमेरिकन लोग प्रजा के अधिकाधिक अधिकार देते जाते हैं। आज कल स्थानिक शासन का भार म्युनिसिपैलिटियों के प्रान्तीय सरकारों के अधीन है। म्युनिसिपल बोर्ड्स के मेम्बर फ़िलिपिनो ही हैं, जो अपने देश-भाइयों ही के द्वारा चुने जाते हैं। सिर्फ़ द्वीप-पुञ्ज की राजधानी मनीला में ही ऐसा नहीं होता। क्योंकि वह व्यवसाय-वाणिज्य का केन्द्र और द्वीप-पुञ्ज की राजधानी है। अतएव उसका प्रबन्ध एक बोर्ड करता है जिसमें चार अमेरिकन और दो फ़िलिपिनो हैं।

प्रान्तीय गवर्नमेंटों में एक गवर्नर और उसके दो मददगार होते हैं। पहला सहकारी ख़ज़ान्ची कहलाता है और दूसरा थर्ड मेम्बर। गवर्नर और थर्ड मेम्बर का चुनाव होता है और ख़ज़ाञ्ची को गवर्नर जनरल नियुक्त करते हैं। सरकार ख़ज़ाञ्ची के पद पर उसी फ़िलिपिनो को नियुक्त करती है जो इस पद के योग्य होता है। अन्यथा अमेरिकनों के ही यह जगह दी जाती है।

सेन्ट्रल गवर्नमेंट, इन्सुलर गवर्नमेंट के नाम से प्रसिद्ध है। गवर्नर जनरल और फ़िलिपाइन-कमीशन मिल कर ऐसा गवर्नमेंट बनी है। फ़िलिपाइन-कमीशन में नौ मेम्बर रहते हैं। इनमें ४ मेम्बर फ़िलिपिनो होते हैं।

क़ानूनी सभा (Legislature) के दो विभाग हैं। पहले का नाम अपर हाउस और दूसरे का लोअर हाउस है। फ़िलिपाइन-कमीशन ही अपर हाउस का काम करता है। लोअर हाउस, फ़िलिपाइन एसेम्बली कहलाता है। इसमें ८१ मेम्बर हैं। सब मेम्बर चुने जाते हैं। इनके चुनने का अधिकार द्वीप-पुञ्ज के उन्हीं प्रान्तों को है जहाँ के लोग सभ्य हैं। ये प्रान्त क्रिश्चियन प्रान्तों के नाम से प्रसिद्ध हैं। एसेम्बली सिर्फ़ इन्हीं प्रान्तों के लिए क़ानून बना सकती है। बाक़ी प्रान्तों के लिए क़ानून गवर्नर-जनरल बनाते हैं।

दो फ़िलिपिनो वाशिङ्गटन में रहते हैं। वे हाउस आफ़ रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज़ (प्रतिनिधि-मण्डल) में वाद विवाद के समय उपस्थित रहते हैं। वे फ़िलिपाइन-सभा के द्वारा चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं।

संयुक्त राज्यों के कांग्रेस ने हाल ही में फ़िलिपाइन सिविल-गवर्नमेंट-बिल में एक सुधार किया है। इसके द्वारा फ़िलिपाइन ने चार ही वर्षों में अमेरिकनों के

साम्राज्य बन जायगा। अर्थात् फ़िलिपिनो अपने द्वीप-पुञ्ज के शासन का प्रबन्ध आप ही करेंगे। पर यह तभी होगा जब संयुक्त राज्यों के राष्ट्रपति फ़िलिपिनो को पूर्वोक्त अवधि के पश्चात् इस योग्य पावेंगे कि वे अमेरिकन सरकार की सहायता के बिना ही अपना शासन कर सकें। यदि वे उचित न समझेंगे तो अगली कांग्रेस तक इस अवधि को बढ़ा देंगे। तब उस कांग्रेस में इस पर पुनर्विचार होगा। इस संशोधन पर अभी तक हाउस आव् रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज़ के 'वोट' नहीं लिये गये। अतएव यह प्रस्ताव अभी राष्ट्रपति महोदय के सामने भी दस्तख़त के लिए पेश नहीं हुआ। फ़िलिपाइन्स में अमेरिकन सत्ता रहे चाहे न रहे, फ़िलिपिनो अपने शासन में बहुत-भाग लेते हैं।

१८९८ ईसवी में द्वीप-पुञ्ज स्पेन वालों के पास से अमेरिकनों के हाथ में आया। तब से फ़िलिपाइन्स के जीवन का प्रत्येक अंग शिक्षा, शासन, राजनीति और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी उन्नति के बड़े बड़े चिह्न प्रकट कर रहा है। इसका एकमात्र कारण अमेरिकनों की उदारता है।

समाज-शास्त्र की कठिनाइयाँ।

नितान्त असभ्य व्यक्ति धीरे धीरे किन अभावों के कारण अपना समाज अलग बना लेते हैं, समाज की बनावट में धीरे धीरे किन नियमों के अनुसार परिवर्तन होता है, समाज के भिन्न भिन्न अङ्ग, उन अङ्गों के कार्य और उनके परस्पर सम्बन्ध कैसे विकसित होते हैं, पेचीदा समाजों की उत्पत्ति और अवनति के परिवर्तन के क्या नियम हैं, यह दिखलाना समाज-शास्त्र का उद्देश है। इस उद्देश की सिद्धि के लिए समाज-शास्त्री का कर्तव्य है कि संसार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की, पुराने से पुराने समय से लेकर आज तक की, असभ्य से असभ्य और सभ्य से सभ्य जातियों के विषय में जितनी बातें जानी जा सकती हैं वे सब जाने; उन बातों का—उन सामाजिक सत्यों का—वर्गीकरण करे, उनकी परस्पर तुलना से परिणामों का अनुमान करे, और, फिर, परीक्षा की कसौटी पर कस कर उन अनुमानों—सिद्धान्तों—के सत्यासत्य का निर्णय करे।

आज कल वैज्ञानिक गवेषणा में सदा इसी प्रणाली का उपयोग किया जाता है। हाँ, रसायन-शास्त्र, कृषि-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र इत्यादि शास्त्रों में निरीक्षण (Observation) के सिवा प्रयोग (Experiment) से भी काम लिया जा सकता है। अर्थात् प्रकृति ने चीज़ों को जिस रूप में हमारे सामने रक्खा है उस रूप में तो हम उनका निरीक्षण कर ही सकते हैं; किन्तु उन चीज़ों को—रासायनिक पदार्थ आदि को—जैसे चाहें एक दूसरे से मिला भी सकते हैं और इस प्रयोगावस्था में पहले की तरह उनका निरीक्षण कर सकते हैं। वनस्पति-शास्त्र और जन्तु-शास्त्र में चीर-फाड़ के प्रयोग किये जाते हैं। पर समाज-शास्त्र में प्रयोग के लिए स्थान नहीं। यह इस शास्त्र की पहली कठिनाई है।

जिन बातों को जानने की आवश्यकता समाज-शास्त्री को है उनका घटना-क्षेत्र सारा भूमण्डल है और घटना-काल हज़ारों वर्ष का है। सृष्टि के आरम्भ से संसार में सैकड़ों हज़ारों जातियाँ रह चुकी हैं। उनमें से कितनी ही जातियों का अब नाम मात्र भी शेष नहीं और कितनी ही का केवल नाम शेष है; और कितने ही जातियों के विषय में बहुत ही थोड़ा ज्ञान है। ऐसा तो एक भी जन-समुदाय इतिहास में नहीं दिखाई देता जिसकी सभी ज्ञातव्य बातें हम जानते हों। सैकड़ों वर्षों के निरन्तर परिश्रम और आश्चर्यजनक बुद्धि-प्रयोग करके खँडहर, शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के और साहित्य से पुराने लोगों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म-कर्म, इत्यादि की बहुत सी बातें हमने ढूँढ़ निकाली हैं और निकाल भी रहे हैं। नव

भी प्राचीन जन-समाज के विषय में हम बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह बात भी इस शास्त्र के ज्ञान-सम्पादन के विषय में बड़ी रुकावट डाल रही है।

इसके अतिरिक्त जो कुछ ज्ञान हमको है उसका कुछ अंश अब भी सन्दिग्ध है। बहुत सी बड़ी बड़ी प्राचीन पुस्तकों में—जैसे रामायण, महाभारत, पुराण, इलियड, आडेसी, ईनियड इत्यादि में—ऐतिहासिक सत्य काल्पनिक कथाओं में इस तरह मिश्रित कर दिया गया है—एक मनुष्य और एक काल की रचना को दूसरे मनुष्यों और दूसरे कालों की रचनाओं से इस तरह मेल कर दिया गया है—कि सत्य को असत्य से अलग करना और इस बात का निश्चय करना कि पुस्तक का कौन सा भाग किस समय बना और उससे उस समय की अवस्था के विषय में क्या निष्कर्ष निकल सकता है, बहुत ही कठिन हो गया है। इतिहास कहलाने वाली बहुत सी पुरानी पुस्तकों में—जैसे हीरोडोटस, एरियन, लिवी इत्यादि की कृतियों में—लेखकों ने अज्ञान, आलस्य, जातीय या व्यक्तिगत राग, द्वेष, ईर्ष्या, पक्षपात आदि के कारण बहुत से असत्य या अर्द्ध सत्य विषय सत्य की तरह लिख दिये हैं। इतिहासकारों ने बड़े अनुसन्धान के बाद निश्चय किया है कि पहले जो संस्थायें, जो नियम और जो स्मृतियाँ मनु, लाइकरगस, रोम्युलस इत्यादि की बनाई मानी जाती थीं वे वास्तव में सैकड़ों वर्षों के भीतर धीरे धीरे बनी थीं। ऐतिहासिक अनुसन्धान करने वाले लोग भी कभी कभी असावधानी अथवा पूर्व-कल्पित [illegible] के कारण बड़ी बड़ी भूलें कर जाते हैं।

[illegible], भूतकाल की बातें जाने दीजिए। वर्तमान काल की बातों को ही लीजिए। वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाली बातों का भी ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने में कितनी कठिनाइयाँ होती हैं। [illegible] के [illegible] रखने वालों के विषय में कुछ बातों तो कहते हैं कि वे चतुर, वीर और निर्दयी होते हैं, पर कुछ कहते हैं कि वे निर्बल, डरपोक और दया-शील होते हैं। दूसरे यात्री या लेखक कुछ और ही कहते हैं। भारतीय सभ्यता और आचार-विचार पर स्वयं भारत-वासियों ने, सरकारी अफ़सरों ने, मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट लिखने वालों ने और पादरियों आदि ने जो बातें लिखी हैं वे एक दूसरे से बहुत नहीं मिलतीं। समाज-शास्त्री प्रत्येक देश में जाकर प्रत्येक बात का निरीक्षण आप तो कर ही नहीं सकता। उसे दूसरे की देखी और लिखी हुई बातों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। यह उसकी और बड़ी कठिनाई है।

समाचार-पत्रों के सम्पादक और लेखक या किसी विशेष कार्य्य के लिए आन्दोलन करने वाले लोग, अपने मत को पुष्ट करने वाली बातें तो खूब सी और ज़ोर शोर से प्रकाशित करते हैं, पर विरुद्धियों की बातों को बहुधा दबा डालते हैं। ऊपर कहे गये किसी दोष से, या जोश के कारण, लोग कुछ का कुछ देखने लगते हैं और बहुधा अनुमान को प्रत्यक्ष मान बैठते हैं।

जब इन सब कठिनाइयों को पार करके अच्छी सामग्री मिल जाती है तब उसका उपयोग करने में नये नये प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समाज-शास्त्र जितना विस्तृत है उतना और कोई शास्त्र नहीं। यह जितना जटिल है उतना जटिल और कोई शास्त्र नहीं। भौतिक-शास्त्र (Physics) रसायन-शास्त्र (Chemistry) इत्यादि में दूरबीन, ख़ुर्दबीन आदि अनेक यन्त्रों से सहायता तो ली जा सकती है, पर इस गूढ़ शास्त्र में यन्त्रों के लिए स्थान ही नहीं। यही कारण है कि इस शास्त्र के मोटे मोटे सिद्धान्त भी लोगों को बड़ी देर में सूझते हैं।

साधारण-शिक्षा पाये हुए लोगों के लिए समाज-शास्त्र की रचना करना असम्भव है। स्व

अध्यापक जमशेद जी नौरोजी कतवाला, एम० ए०।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

विशेष-शिक्षा पाये हुए वैज्ञानिकों के मार्ग में भी एक बड़ी रुकावट है। सरल विषयों पर शास्त्रों की मीमांसा करते करते वैज्ञानिकों की प्रकृति में कुछ विशेषता आजाती है। इस कारण समाज-शास्त्र जैसे व्यापक, गूढ़ और पेचीदा विषय में उनकी बुद्धि ठीक ठीक काम नहीं देती। अन्य शास्त्रों के अध्ययन या अनुसन्धान से मनुष्य में कुछ विशेष मानसिक गुण विकसित हो जाते हैं और कुछ गुण वैसे ही रह जाते हैं। वे विकसित नहीं होने पाते। उनकी उन्नति नहीं होती। समाज-शास्त्र में इन दूसरी तरह के गुणों की भी बहुत ज़रूरत पड़ती है। हज़ारों वर्षों से सैकड़ों देशों में फैली हुई कितनी ही तरह की नई नई बातों की साधारण कल्पना करना ही पहले तो कठिन है। फिर ठीक ठीक कल्पना करना तो और भी कठिन है और गौरव-लाघव का विचार रख कर कल्पना करना तो अत्यन्त ही कठिन है।

सब प्रकार की वैज्ञानिक मीमांसाओं में इन दो बातों की आवश्यकता है। (१) पूर्ण मानसिक शान्ति और (२) पक्षपात-राहित्य। जिस राष्ट्र, देश या जाति में हम पैदा हुए हैं, जिसके हम अङ्ग हैं, जिसको हम अपना समझते हैं, जिसके सम्बन्ध में हमें बहुत सी अच्छी या बुरी लगने वाली धारणायें बचपन ही से करा दी गई हैं, जिसके विषय में हम अपने कुछ कर्तव्य स्थिर कर चुके हैं उस पर इस ढँग से विचार करना कि मानो उससे हमारा किसी प्रकार का कुछ सम्बन्ध ही नहीं, बड़ा कठिन काम है। पर समाज-शास्त्री के लिए यह परम आवश्यक है कि वह सब समाजों को उसी दृष्टि से देखे जिस दृष्टि से रसायन-शास्त्री सोना, चाँदी, लोहा इत्यादि धातुओं को देखता है। शिक्षा, धर्म, परम्परा, स्वार्थ, परमार्थ से उत्पन्न हुए पक्षपात और राग-द्वेष को वह तिलाञ्जलि दे दे। थोड़ी देर के लिये देश-भक्ति और सेवा-भाव को भी भूल जाय, अर्थात् शुद्ध सत्य की खोज में वह पूर्ण वीतराग संन्यासी हो जाय।

इस मानसिक अवस्था तक पहुँचना साधारण जनों के लिए ही नहीं, शिक्षित कहलाने वाले फ़ी सदी ९९ लोगों के लिए भी असम्भव है। वैज्ञानिकों के लिए भी यह बात बड़े परिश्रम और अभ्यास से ही सिद्ध हो सकती है। इन कठिनाइयों से यह भी स्पष्ट है कि समाज-शास्त्री होने के लिए कितनी ज़ियादह तैयारी की ज़रूरत है।*

सत्यशोधक

श्रेयोमार्ग ।

(१)

बस बस श्रेयोमार्ग यही है,
उन्नति की बस राह यही है।
आत्मनिष्ठ बन सन्मार्गी बन,
बन दयालु तू मधुभाषी बन।
श्रेष्ठ सत्य बन स्वाध्यायी बन,
सत बन सत का अनुयायी बन।
व्यसन-हीन बन बुद्धिमान् बन,
देशभक्त बन सावधान बन॥
बस बस श्रेयोमार्ग•

(२)

शिष्ट समाज सुख का स्वामी हो,
स्वच्छ-हृदय, गुण-अभिलाषी हो।
परम विवेकी हो, प्यारा हो,
सच्चा हो जग-दृग-तारा हो।
निज-चरित्र का विश्वासी हो,
महावीर हो, गुणग्राही हो॥
बस बस श्रेयोमार्ग•

(३)

बन सम्मान्य साफ़ सुथरा बन,
पढ़ने में अनुराग भरा बन।
सारे जग का सुखकारी बन,
आत्मनिष्ठ बन उपकारी बन।

---

* स्पेन्सर के समाज-शास्त्र के आधार पर।

स्वार्पण करने का प्रेमी मन,
गिरिधर प्रभुपद का प्रेमी मन ॥
बस यह प्रेममार्ग यही है,
उन्नति की बस राह यही है।
श्रीगिरिधर शर्म्मा

भाषा-विज्ञान ।

(लेखक—अध्यापक लक्ष्मण-स्वरूप, एम॰ ए॰, एम॰ आर॰ ए॰ एस॰)

संसार परिवर्तनशील है। कोई भी वस्तु स्थायी नहीं। एक भी पदार्थ ऐसा नहीं जो विकृति के प्रभाव के बाहर हो। जितने पदार्थ हैं सभी, प्रतिदिन, एक नहीं, दो नहीं, अनेकानेक अवस्थाओं को प्राप्त होते रहते हैं। अभी, कल, आकाश पर बादल छाये हुए थे; काली काली घनघोर घटा घिरी थी; ठण्डी ठण्डी वायु वेग से चल रही थी। थोड़ी ही देर बाद टपाटप बूँदें पड़ने लगीं और एक ही घण्टे में सारी पृथ्वी जलमय हो गई। आज कुछ और ही बात है। सूर्य भगवान् अपने प्रचण्ड प्रताप से मानो अग्नि की वर्षा कर रहे हैं। नीचे से पृथ्वी तप रही है; ऊपर से आकाश जल रहा है। शरीर को भस्म कर देने वाली लू चल रही है। प्राणिमात्र व्याकुल हैं। पक्षी चोंच खोले अपने घोसलों में बैठे हैं। पशु मुँह फैलाये हाँप रहे हैं। कुत्ते जीभ निकाले घूम रहे हैं। भैंसों को देखिए, वे तालाबों में घुसी जाती हैं। पानी बहुत ही थोड़ा है, तो भी वे कीचड़ में ही लोट लगा रही हैं। मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? प्यास से दम निकला जाता है। पानी पीते पीते पेट फूल गया है। फिर भी प्यास कम नहीं होती। पसीना झरने की तरह बह रहा है। इस प्रकार का विकार, जो बाह्य संसार में दृष्टिगोचर होता है, प्राकृतिक परिवर्तन कहलाता है।

किन्तु केवल प्रकृति ही परिवर्तन के अधीन नहीं। बाह्य अथवा शारीरिक परिवर्तन के साथ ही साथ मानसिक परिवर्तन भी होता रहता है। कभी हमारा मन प्रफुल्ल कमल के सदृश प्रसन्न होता है, कभी शोक से व्याकुल; कभी उत्साह, प्रयत्न और उद्योग के कारण अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न; और कभी निरुत्साह और निरुद्योग से बलहीन। किन्तु इससे केवल यही न समझना चाहिए कि ये अवस्थायें आती हैं और आकर चली जाती हैं। इनका आना जाना तो स्वाभाविक है। दर्पण पर भिन्न भिन्न पदार्थों के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। पर पदार्थों के अन्तर्हित होजाने से वे भी अन्तर्हित हो जाते हैं। किन्तु इन अवस्थाओं का हमारे विचारों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण प्रत्येक परिवर्तन विचारों पर कुछ न कुछ असर अवश्य छोड़ जाता है और कुछ काल के पश्चात् नाना प्रकार की घटनायें विचारों को परिवर्तित कर देती हैं। इसका उदाहरण लीजिए—यौरप का घोर सङ्ग्राम एक अद्भुत घटना है। उसने संसार में बहुत से प्राचीन विचारों का नाश करके नये नये विचारों का प्रादुर्भाव कर दिया है। इसी प्रकार जब भिन्न भिन्न सभ्यता और भिन्न भिन्न साहित्य, धर्म्म, तथा कर्म्म वाली जातियाँ परस्पर मिलती हैं तब विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। कला-कौशल आदि में भी इसी तरह परिवर्तन होता रहता है। कोई बात, कोई विचार, ऐसा नहीं जो परिवर्तनशील न हो। विचारों को प्रकट करने का सबसे उत्तम साधन भाषा है। विचारों के परिवर्तन के साथ ही साथ उसमें भी परिवर्तन हो जाता है।

संसार में दो प्रकार का परिवर्तन होता है—(१) प्राकृतिक और (२) मानसिक। भाषा की और

दृष्टि देने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसमें भी परिवर्तन के यही दो मुख्य कारण हैं।

प्राकृतिक प्रभाव—संसार में प्रत्येक कार्य्य के सदृश भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। आज हमारी भाषा ठीक वैसी ही नहीं है जैसी हमारे माता-पिता की थी। हाँ, वह वैसी प्रतीत अवश्य होती है; किन्तु उसमें भेद अवश्य हो गया है। वह भेद बहुत सूक्ष्म है। अतएव वह इस समय स्पष्ट देख नहीं पड़ता। किन्तु कुछ काल के पश्चात्—पाँच-सात पीढ़ियों के पश्चात्—उस भेद की झलक स्पष्ट दिखाई देने लगेगी और दो तीन शताब्दियों में पता लगेगा कि भाषा में कितना परिवर्तन हो गया है। यदि महाराज पृथ्वीराज के समय की हिन्दी से आज कल की हिन्दी की तुलना की जाय तो तुरन्त ही भेद देख पड़ेगा। वास्तव में तत्कालीन भाषा आज इस प्रकार भिन्न दिखाई देती है जैसे वह कोई दूसरी ही भाषा हो। बात यह है कि शरीर के जिन अवयवों से भाषा बोली जाती है वे बदलते रहते हैं। हर एक के शरीर का रूप, रङ्ग, आकृति, जुदा जुदा है। अतएव, शब्दों के उच्चारण-स्थान—कण्ठ, तालु, दन्त, ओष्ठ आदि—जुदा होने के कारण शब्दों के उच्चारण में भेद हो जाता है। देखिए, प्रत्येक मनुष्य की आवाज़ एक दूसरे से नहीं मिलती। वह भिन्न होती है। यहाँ तक कि आवाज़ के सुनने मात्र से ही पुरुष पहचाने जाते हैं। इस प्रकार, भेद पड़ते पड़ते, कुछ काल के पश्चात्, शब्द के उच्चारण में इतना फ़र्क़ पड़ जाता है कि उसका असली रूप जानना कठिन हो जाता है। यह तो हुआ काल का असर। अब देखना चाहिए कि भाषा पर देश का क्या असर पड़ता है।

देश भी भाषा के परिवर्तन में एक बहुत बड़ा कारण है। प्रत्येक देश का जल-वायु प्रायः भिन्न भिन्न होता है। इस कारण शब्दोच्चारण-स्थान में ऐसी भिन्नता आ जाती है जिससे कोई कोई शब्द उच्चारण ही नहीं किये जा सकते। बङ्गालियों के 'व' का ही उदाहरण लीजिए। वे कभी 'व' उच्चारण नहीं कर सकते, वे सर्वदा 'व' को 'ब' ही बोलते हैं। यथा—'वेद' को 'बेद' और 'सर्वदा' को 'सर्बदा' आदि। इसी प्रकार वे 'अ' को 'ओ' उच्चारण करते हैं। यथा—'कमल' को 'कोमोल'। इसी तरह फ़ारिस वाले संस्कृत के 'स' को 'ह' बोलते हैं—जैसे

'सिन्धु' को 'हिन्धु'
'सोम' को 'होम'
'सप्त' को 'हप्त' (हफ़्) इत्यादि।

इससे ज्ञात होता है कि देश और काल के कारण भाषा में परिवर्तन हो जाता है और यह परिवर्तन इतना अधिक हो जाता है कि एक ही भाषा दो भिन्न भिन्न समयों में, प्राकृतिक विकार के कारण, भिन्न भिन्न भाषाओं के समान प्रतीत होने लगती है। जैसे—

(क) संस्कृत ⟶ पाली ⟶ प्राकृत ⟶ वर्तमान भाषायें।

(ख) लैटिन ⟶ इटली की भाषा
⟶ फ़्रान्सीसी भाषा
⟶ स्पेन की भाषा—इत्यादि।

किन्तु स्मरण रहे कि ये परिवर्तन अन्धाधुन्ध नहीं हो जाते। जिस प्रकार संसार के बाह्य परिवर्तन—वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म, ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा, वर्षा के पश्चात् शरद् ऋतु आदि नियम-बद्ध हैं—उसी प्रकार भाषा का प्राकृतिक परिवर्तन भी नियमानुसार एक सूत्र में ग्रथित है। उदाहरण लीजिए—'में' एक साधारण शब्द है। उसके अर्थ हैं—अन्दर या अभ्यन्तर; जैसे गाँव में।

अब देखना यह है कि जिस भाव को प्रकट करने के लिए हम इस समय 'में' शब्द का प्रयोग करते हैं वही भाव प्राचीन काल में कौन से शब्द से प्रकट किया जाता था? क्या हमारे पूर्वज भी 'में' ही

बोलते थे या किसी दूसरे शब्द का प्रयोग करते थे ? यदि यह शब्द भिन्न था तो उस शब्द में और इस शब्द में कुछ समानता है अथवा नहीं। यदि है तो किस प्रकार की है।

साहित्य से पता लगता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी के समय में 'में' शब्द ही प्रयोग में आता था। जैसे—एक एक सिंह लड़े लाखहि म्लेच्छन सों।

तिनहों पै धाऊ जैसे शेर मृगान में॥

किन्तु 'में' से प्राचीनतर शब्द 'मैंह' है, जैसे—

एक मास मैंह नगर बसायो,

इसी शब्द 'मैंह' के साथही 'माँहि' का भी प्रयोग मिलता है। यथा—

पिय रन माँहि मरे, नारी सती न होय।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'माँहि' 'माँही' का रूपान्तर मात्र है और 'माँही' या 'माही' का प्रयोग अधिकतर देख पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदासजी तथा उनके समकालीन अन्य कवियों की रचनाओं में यह शब्द मिलता है—जैसे

(क) रामायण आकरहि प्रिय नाँही।
मृथा जन्म ताको जग माँही॥

(ख) प्राण नाथ तुम बिन जग माँही।
मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाँही।

(ग) मैं पुनि समुझि दीख मन माँही।
पिय-वियोग सम दुख जग नाहीं।

'माँहि' शब्द से प्राचीनतर शब्द 'मँह' है, जैसे—

रामायण मँह मेद न जाको।
जीवित शाप मम आनिय ताको॥

अच्छा तो अब 'मँह' बना किस शब्द से ? यह 'मैंभ' से बना और 'मैंभ' के ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। देखिए—

परं पर उज्जेन मंभ

अर्थात्—विशाल उज्जैन के बीच।

किसी किसी स्थान पर 'भ' का 'थ' हो गया है, कहीं एक रेफ पीछे लग गया है, जैसे—

उपभांग माँभ चलि गये आप—

अर्थात् आप उद्यान में चले गये।

अरि भाजि गये गिरिवन मँभार—

अर्थात् शत्रु पर्वतों और वनों में भाग गये।

और आगे चलिए। अब 'मभि' के रूप में 'मँभ' मिलता है, जैसे—

सुभेय परिय 'मभि' बिल अपाय

अर्थात् अथाह बिल में गिर पड़ा

और, जोगिनी गई रगिनी मद्धि—

हजार सु खीन परे धर मधि

और अन्त में—इह बोल्यी माधी वृक्ष मध्य पर

इन उदाहरणों से पता लगा कि 'में' श[ब्द] संस्कृत-शब्द 'मध्य' से निकला है। अर्थात् जो श[ब्द] किसी समय में 'मध्य' उच्चारण किया जाता था [वह] प्राकृतिक परिवर्तन के कारण कालान्तर में ग[...] से उच्चारणों को प्राप्त होता हुआ अन्त में 'मैं' उच्चरित होने लगा। अब देखिए कि ये सब रूपान्[तर] किसी शृङ्खला में पिरोये जा सकते हैं या नहीं। मध्य का रूपान्तर इस प्रकार है—

मध्य ⟶ मद्धि ⟶ मधि ⟶ मंभि ⟶ मँ[भ] (माँभ, मझार) ⟶ मँह (महि) ⟶ माँहि (माँ[ही,] माँहे, मँह) ⟶ में

इन रूपान्तरों में पहली बात यह देखी जाती [है] कि संस्कृत-शब्द 'मध्य' का संयुक्त अक्षर 'ध्य' मु[ख] के भिन्न भिन्न स्थानों से उच्चारण किया जाता है। 'ध' का उच्चारण जिह्वा को दाँतों से स्पर्श करने [से] होता है और 'य' जिह्वा को तालु पर स्पर्श करा[ने] से। संयुक्त अक्षर के उच्चारण में जिह्वा एक स्था[न] से एक दम दूसरे स्थान पर ले जानी पड़ती थी [और] इससे कुछ अधिक परिश्रम पड़ता था। अतएव इस परिश्रम से बचने के लिए स्वभावतः 'ध' [...]

जेब-उन्-निसा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बदल गया। इस प्रकार द और ध के उच्चारण-स्थान का ऐक्य हो जाने से सुभीता हो गया । यही नियम इससे भिन्न शब्दों में भी प्रायः देखा जाता है—

जैसे—मार्ग ——→ मग्ग, धर्म ——→ धम्म, आत्मा——→अत्ता इत्यादि ।

इन रूपान्तरों को देखने से दूसरा परिवर्त्तन यह प्रतीत होता है कि जब 'ध्य', 'ज्झ' और फिर 'झ' रह गये तब 'ध' के स्थान में 'झ' का प्रादुर्भाव हो गया। इससे भिन्न शब्दों को देखने से मालूम होता है कि यह भी एक नियम ही है। संस्कृत-शब्दों में जहाँ कहीं 'ध्य' संयुक्त अक्षर होता है वहाँ उसमें ऊपर लिखे प्रकार से झ हो जाता है, जैसे—

संस्कृत—सन्ध्या——→संझा और साँझ

„ —वन्ध्या,——→बाँझ

तीसरा परिवर्तन यह हुआ है कि मँझ के पश्चात् केवल मँह शब्द रह गया है। अर्थात् 'झ' वर्ण के स्पर्शात्मक भाग का लोप हो गया और केवल महा-प्राण (Aspirate) अर्थात् 'ह' शेष रह गया है। पाली तथा प्राकृत भाषाओं पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि यह एक आवश्यक नियम है और इसी नियम के कारण पाली और प्राकृत दोनों भाषाओं में शब्दों की संख्या बढ़ गई है, जैसे—

संस्कृत——→मुख——→मुह——→मुँह + स्पर्शात्मक भाग का लोप और महाप्राण का शेष रहना

„ मधु——→महु

„ सौभाग्य ——→ सोहाग्ग ——→ सोहाग——→सुहाग

„ कुम्भकार ——→ कुम्भार ——→ कुम्हार, कोहार

चौथा परिवर्तन जो 'मध्य' शब्द के रूपान्तरों में देखा जाता है यह है कि अन्त में उच्चारण के सुभीते के लिए कतिपय स्वर-विकारों के पश्चात् महाप्राण स्वयं ही लुप्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुत काल के पश्चात् एक शब्द 'मध्य' नाना रूपों को धारण करके अन्त को 'मैं' शब्द में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे और भी कितने ही शब्द हैं।

यदि 'मध्य' शब्द की तुलना संसार की अन्य भाषाओं के शब्दों से करें तो और भी नई नई बातें ज्ञात होती हैं जैसे—

संस्कृत——मध्य

एङ्लो-सेक्सन—मिध (Mid)

आईस्लेंडिक—मिदर (Midr)

लेटिन—मेडयुस (Medius)

ग्रीक—मसोस(Mesos)

जर्मन—मिट्टल (Mittel)

डेनिश—मिडल(Middle)

अँगरेज़ी—मिडल (Middle, Midst, Medial, Median, Mediate, Mediœval)

इन शब्दों की तुलना करने से पता लगता है कि ये सारे शब्द एक ही शब्द के रूपान्तर हैं और देश तथा काल-भेद के कारण ये रूपान्तर हो गये हैं। इससे यह भी जाना जाता है कि एक समय था जब हम भिन्न भिन्न जातियों के पूर्व-पुरुष एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही भाषा बोलते थे।

शिक्षालयों में हिन्दी के द्वारा शिक्षा देने की आवश्यकता ।

(लेखक, राय-साहब पण्डित अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी)

न्दी में एक नया शब्द "माध्यम" प्रयुक्त होने लगा है। इससे तात्पर्य्य उस भाषा से है जिसमें छात्रों को शिक्षा दी जाय। शिक्षा का अभिप्राय यह है कि शिक्षक अपने अनुभव को छात्र के मन में उतार दे। मनुष्यों को अपने मनोभाव परस्पर प्रकट करने और समझने के लिए एक ऐसी भाषा

की आवश्यकता होती है जिसे बोलने और सुनने वाले, दोनों, अच्छी तरह समझते हों। बालकों को समझने में मातृ-भाषा ही स्वाभाविक और सुगम भाषा होती है। इस लिए बालकों को उनकी मातृ-भाषा ही में शिक्षा देना आवश्यक है।

योरप के छोटे छोटे देशों में, जिनमें स्वतन्त्र भाषाओं का प्रचार है, सम्पूर्ण शिक्षा—बाल-बोध से लेकर विश्वविद्यालयों की डिग्रियों तक—अधिकतर उनकी मातृ-भाषा ही में दी जाती है। यही रीति पूर्वकाल में भारतवर्ष में भी थी। पर वर्तमान काल में मिडिल-स्कूल से लेकर ऊपर की सभी क्लासों में शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी है। अधिक प्रान्तों में मिडिल-स्कूल के तीसरे दर्जे (VIII Class of A. V. Schools) तक गणित, विज्ञान, इतिहास और भूगोल की शिक्षा का माध्यम प्रान्तिक भाषायें हैं। उसके ऊपर सम्पूर्ण शिक्षा अँगरेज़ी भाषा में दी जाती है। भारतवर्ष को छोड़ कर दुनिया में शायद ही कोई इतना बड़ा या सभ्य देश होगा जहाँ इस स्वाभाविक नियम के विरुद्ध शिक्षा दी जाती हो। इससे केवल यही एक लाभ है कि अँगरेज़ी भाषा में छात्रों को कुछ योग्यता प्राप्त हो जाती है, पर इस लाभ के साथ हानि भी बहुत होती है। ऐसी कुछ हानियों का उल्लेख सुनिए—

सब से भारी हानि यह होती है कि विदेशी भाषा की पुस्तकों के पृष्ठ पर पृष्ठ कण्ठाग्र करने से छात्रों पर बहुत बोझ पड़ता है, जिससे उन मा के लिए उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। एक तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामतों से बढ़ कर मानी जाती है। वही तन्दुरुस्ती इस हानिकर रीति से नष्ट हो जाती है। कण्ठाग्र करने का कारण यह है कि बालकों में इतना सामर्थ्य नहीं होता कि अँगरेज़ी शब्दों ही को नहीं, अधिकांश मुहावरों को और वाक्यों को भी कण्ठाग्र किये बिना वे अपना आशय व्यक्त कर सकें। फिर, अँगरेज़ी भाषा का सीखना भी आसान नहीं। स्वर्गवासी जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे और रायबहादुर लाला बैजनाथ जैसे विद्वान् भारत के शिक्षित जनों को अकाल मृत्यु के कारण शोक छोड़ कर मर गये। तब कहीं समझदार लोग अब यह सोचने लगे हैं कि इस आपत्ति के कारणों में से निःसन्देह एक कारण भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली भी है। शिक्षा का मुख्य अभिप्राय ज्ञान-प्राप्ति है। जिन विषयों की शिक्षा विदेशी भाषा में दी जाती है उनका यथार्थ ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त नहीं होता। शब्दों को तोते की तरह रट लेने से उतना काम नहीं होता जितना पाठ का मतलब जान लेने से होता है। इस क्रै—क्रैमिंग (Cramming) की इस कुरीति को—यूरप के सभी विद्वान् एक स्वर से बुरा बतलाते हैं। रटने से परिश्रम अधिक और काम कम होता है। स्वाभाविक रीति है जिससे छात्रों को पाठ का सारांश अपनी बोली में समझा दिया जाय। इस तरह एक बार अच्छी तरह समझ लेने से बहुत समय तक याद रहता है और, प्रसंग के अनुसार काम आता है। इस रीति से बालकों में विचार-शक्ति बढ़ती है। तोते की तरह बिना समझे कण्ठाग्र की बातें विचार-मार्ग में आती ही नहीं। यथार्थ में शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी भाषा रखने से भारतवासियों की उन्नति में बड़ी कठिन बाधा पड़ रही है।

प्रकृति-विरुद्ध अस्वाभाविक रीति से शिक्षा देने में समय अधिक लगता है। मतलब को समझने और याद करने में उतना समय नहीं लगता जितना कि वाक्यों या शब्दों को कण्ठाग्र करने में लगता है। यही कारण अधिक शिक्षा का भी है। मनुष्य की शक्तियों की हद है। हद के बाहर कोई काम नहीं कर सकता। हर एक को अधिक समय लगाने से नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी ऊँची शिक्षा प्राप्त करने में पीछे पड़ जाते हैं। सिविल-सर्विस आदि की परीक्षाओं में शामिल न हो सकने पर देश को उनकी बड़ी हानि होती है। यदि प्रतियोगिता (Competitive) वाली परीक्षाओं में वे शामिल न भी हों तो भी व्यवसाय के काम सीखने में वे पिछड़ जाते हैं अथवा उन्हें सीखने का मौक़ा ही नहीं मिलता। विश्वविद्यालय की परीक्षायें पास करके हज़ारों नवयुवक एकमात्र सरकारी नौकरी के पीछे दौड़ते फिरते हैं। उनकी संख्या अधिक होने के कारण उनमें से बहुतों को या तो नौकरी मिलती ही नहीं, और यदि मिलती भी है तो वे थोड़े वेतन पर काम करने को लाचार होते हैं। भारत में ऐसी दशा इस ज़माने में हुई है जैसी किसी और देश में नहीं। इसका विशेष कारण यही है कि युवकों को बेहतर रोज़गार के सीखने का मौक़ा ही नहीं मिलता। योरप में बहुत कम लोग सरकारी नौकरी का

अधिकांश लोग दफ़्तरी-पेशा करके अपना और अपने का गौरव बढ़ाते हैं। यदि भारत में शिक्षा का माध्यम भाषा हो जाय तो छात्रों का जो समय अँगरेज़ी-भाषा ने में जाता है वह दस्तकारी या कल-कारख़ाने-सम्बन्धी में जावे। इससे उनको रोज़गार शीघ्र मिल जाय और ई का काम पाने के लिए उन्हें दौड़-धूप न करनी पड़े।

मनुष्य की आयु परिमित है। विद्याप्राप्ति की शक्ति की सीमा है। विश्वविद्यालय और सरकार ने ख़ास ख़ास क्षाओं के लिए अथवा ख़ास ख़ास पदों पर भरती करने लिए उम्र की हद भी नियत कर दी है। उस हद के ले कोई उम्मेदवार उन परीक्षाओं में शामिल नहीं किया ता। इन परीक्षाओं में विषय भी गहन रक्खे गये हैं। एव उनका ज्ञान नियत अवधि के भीतर प्राप्त करना श्यक है। पर यह आसान नहीं, केवल परिश्रमी और ग्र-बुद्धि विद्यार्थी ही उन विषयों को अवधि के भीतर ल सकते हैं। जो पहले ही से शीघ्रगामी मार्ग से शिक्षा हीं पाते वे उन परीक्षाओं के लायक़ ही नहीं होते। इसका नुभव विशेष करके सिविल-सर्विस के सदृश परीक्षाओं के ए तैयारी करने वाले विद्यार्थियों को ख़ूब मिलता है। ंगरेज़ों के लड़कों की शिक्षा का माध्यम उनकी मातृ-भाषा अँगरेज़ी) ही है। इस सहज मार्ग से वे भिन्न भिन्न विषय ल्प ही में नियत अवधि के भीतर सीख लेते हैं। बेचारे न्दुस्तानी युवकों को पहले तो अँगरेज़ी भाषा सीखने में कई र्ष नष्ट करने पड़ते हैं और फिर बड़े बड़े गहन विषयों को ँगरेज़ी भाषा में सीखना पड़ता है। अँगरेज़ी भाषा-द्वारा उनको न विषयों का यथेष्ट ज्ञान जल्दी नहीं होता। अतएव उनको त्येक विषय के सीखने में अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं, और अधिक समय भी लगाना पड़ता है। क्योंकि हिन्दुस्तानी वद्यार्थियों का माध्यम अस्वाभाविक (Unnatural) है। स प्रकार का माध्यम दुनिया के किसी सभ्य देश में नहीं ाया जाता। इस अस्वाभाविक माध्यम से बालकों का समय क एक विषय के सीखने में चला जाता है और दूसरी वषयों की शिक्षा से वे वञ्चित रह जाते हैं। इस भारी दोष े कारण हिन्दुस्तानी नवयुवक, अपना समय और द्रव्य व्यय रके भी, शिक्षा में कच्चे रह जाते हैं और रोज़गार के लिए मुँह बाये घूमा करते हैं। उन्हें योग्य काम नहीं मिलते, क्योंकि उन्हें अपना अमूल्य बाल्य-समय, जो ज्ञान-प्राप्ति के लिए उपयुक्त है, अँगरेज़ी भाषा सीखने में बिता देना पड़ता है। उधर योरप के बालक यही समय विज्ञान और दुनिया के अन्य साधारण ज्ञानों को प्राप्त करने में लगाते हैं। इस ज्ञान को वे अपनी मातृ-भाषा द्वारा शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे साधारण ज्ञान से उनको कितने ही व्यवसायों में बड़ी सहायता मिलती है। योरप के देशों में साधारण पाठशालाओं के सिवा व्यापार, कृषि और उद्योग-धन्धों की शिक्षा के लिए रात और दिन के अलग अलग स्कूल जगह जगह पर खुले हुए हैं। वहाँ बालकों और बालिकाओं को तत्सम्बन्धिनी शिक्षा दी जाती है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि बालकों को गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सम्पूर्ण विषय आरम्भ से ही अँगरेज़ी-भाषा में पढ़ाने से वे अँगरेज़ी में निपुण हो जायँगे। वे समझते हैं कि इससे विद्यार्थी सब तरह के ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। पर उनको याद रखना चाहिए कि स्कूल के विषयों में गणित अथवा इतिहास का विषय गणित अथवा इतिहास सिखाने ही के लिए है, अँगरेज़ी-भाषा सिखाने के लिए नहीं। गणित आदि विषय मातृ-भाषा ही में सिखाने चाहिए, जिससे उन विषयों का ज्ञान सहज ही में बालकों के मन में अङ्कित हो जाय और उन पर अधिक बोझ न पड़े। अँगरेज़ी-भाषा में योग्यता प्राप्त करने के लिए उस भाषा ही की पूरे तौर से शिक्षा देना उचित होगा। सो भी उन्हीं बालकों को जिनको अँगरेज़ी भाषा में विशेष काम पड़ने वाला हो। अँगरेज़ी भाषा में बातचीत करना, अँगरेज़ी साहित्य और व्याकरण की पुस्तकों का पढ़ाना, अँगरेज़ी में चिट्ठी-पत्री के मुहावरे सिखाना इत्यादि विधान अँगरेज़ी भाषा में बालकों को निपुणता प्राप्त कराने के लिए हो सकते हैं।

गणित के सदृश कठिन विषयों को विदेशी भाषा में सिखाना कोमल-हृदय बालकों पर असहनीय भार डालना है। इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और उन विषयों का यथार्थ ज्ञान भी उनको नहीं होता। गणित के पारिभाषिक शब्दों और नियमों को अँगरेज़ी भाषा में कण्ठाग्र कर लेने से बालकों को अँगरेज़ी-भाषा में कहाँ तक निपुणता प्राप्त होती होगी, यह चिन्त्य है। मेरी राय में तो ऐसे नियमों को कण्ठाग्र करने की कोई आवश्यकता नहीं। इससे पाठकों का

ल इन्जिनियरिङ्ग, वकालत, वाणिज्य, कृषि, मर्केनिकल इन्जिनियरिङ्ग, इलेक्ट्रिकल इन्जिनियरिङ्ग इत्यादि के लिए। डाक्टरी के पेशे में भी कुछ ज़रूरत बनी रहेगी। पर जितने लोग आज कल इस पेशे की तरफ़ दौड़ते हैं उनकी संख्या बहुत कमी होने की आवश्यकता है। उनकी संख्या घट जाने से इन्हीं पेशों के बाज़ार का मन्दापन भी मिट जायगा।

अँगरेज़ी-भाषा अनेक गुण-सम्पन्न है। दुनिया की भाषाओं में वह बहुत उच्च भाषा है। उसका साहित्य भारत की वर्तमान भाषाओं में सबसे श्रेष्ठ है। भिन्न भिन्न भावों को प्रकट करने के लिए काफ़ी शब्दसमूह उसमें है। हर एक विषय के जितने ही उपयोगी ग्रन्थ इस भाषा में मौजूद हैं। उसका साहित्य उच्च भावों से परिपूर्ण है। राष्ट्र के उच्च भावों को इसी ने हिन्दुस्तान में फैलाया है और भारत-वासियों को सैकड़ों वर्ष की नींद से उठने की चितावनी दी है। हम जिन प्राचीन उपनिषदों के उदार, पवित्र और व्यापक सिद्धान्तों को भूल गये थे, उनका प्रादुर्भाव फिर हमारे हृदयों में करने का अवसर इसी ने दिया है। विविध ज्ञान-विज्ञान, जो इस युग में पश्चिमी देशों ने आविष्कार किये हैं, उनका प्रचार भी हमारे देश में इसी ने किया है। यह अँगरेज़ी भाषा ही का प्रभाव है कि भारत के जुदा जुदा प्रान्तों के शिक्षित जन आपस में बातचीत, पत्र-व्यवहार, सभा-समितियाँ और कांग्रेस आदि करके परस्पर सहानुभूति प्रकट करते हैं और उन्नति का मार्ग विस्तृत और सुगम करते जाते हैं। अँगरेज़ी-भाषा ही की बदौलत भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावों का उदय हुआ है। हम लोगों में स्वतन्त्रता, ऐक्य, सहकारिता, समता आदि उच्च गुणों पर अँगरेज़ी-साहित्य के द्वारा ही फिर से अनुराग हुआ है।

ऐसी आवश्यक अँगरेज़ी-भाषा का प्रचार अभी भारतवर्ष में और अधिक होना चाहिए। अपनी मातृ-भाषा की उन्नति करते हुए हम अँगरेज़ी-भाषा के प्रचार को रोकना नहीं चाहते। बल्कि उच्च व्यवसायों और उद्यमों की शिक्षा के लिए अँगरेज़ी-भाषा के उत्तम ज्ञान की अतीव आवश्यकता है। राज्य-भाषा तो यह रहेगी ही, राज्य के बड़े बड़े काम भी इसी में होते रहेंगे। हमारी मातृ-भाषा की उन्नति और उसके अधिक प्रचार से भारत के साधारण जनों में प्राथमिक और दूसरी श्रेणी की शिक्षा का प्रचार शीघ्रता और आसानी से हो जायगा। टेकनिकल शिक्षा, कृषि, व्यापार, दस्तकारी आदि में विशेष उन्नति होगी। इन्हीं की यथेष्ट उन्नति न होने से भारत, दिन पर दिन, कङ्गाल हो रहा है। इस दरिद्रता को रोकने के लिए ही हम मातृ-भाषा की उन्नति की इतनी अधिक आवश्यकता समझते हैं। शिक्षा के बिना भारतवासी अँधेरे में ग़ोते खा रहे हैं। अँगरेज़ी-भाषा में सर्व-साधारण को उचित रूप से शिक्षा दिया जाना असम्भव सा प्रतीत होता है। पर लोगों को शिक्षा देना परम आवश्यक है। योरप की उन्नति शिक्षा के प्रचार से ही हुई है। वहाँ के लोगों में कोई अपढ़ नहीं। प्रत्येक बालक और बालिका को ६-७ वर्ष की अवस्था से १२-१३ वर्ष की अवस्था तक पाठशाला में अवश्य जाना पड़ता है। उनकी शिक्षा का सारा ख़र्च राज्य से दिया जाता है। भारतवासियों की शिक्षा-विषयक आवश्यकता को पूरा करने में हमारी मातृ-भाषा ही समर्थ है, कोई विदेशी भाषा इस कमी को पूरा नहीं कर सकती।

अब आपने समझ लिया होगा कि हमारे देश में अँगरेज़ी-भाषा और शिक्षा के अधिक प्रचार की तो आवश्यकता हई है, पर उससे भी अधिक आवश्यकता हमारी देशी भाषाओं की उन्नति की और उन्हीं के द्वारा शिक्षा दिये जाने की है। न दोनों भाषाओं का प्रचार, आवश्यकता के अनुसार, देश भर में होना चाहिए। अर्थात् जो विद्यार्थी उच्च उद्यमों के लिए तैयार हों उन्हें मातृ-भाषा के साथ अँगरेज़ी-भाषा अवश्य पढ़ाई जाय। शेष लोगों को अपने प्रान्त की देशी भाषा में स्वीकृत विषयों की शिक्षा का पूरा प्रबन्ध हो। देशी भाषा के साथ अँगरेज़ी का भी कुछ ज्ञान इनको प्राप्त हो जाय तो सोना और सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हो जाय। हर हालत में अँगरेज़ी दूसरी भाषा (Second Language) के तौर पर पढ़ाई जाय। शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा ही हो।

यह रीति तीनों दरजों के स्कूलों में हो। अर्थात् प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो। अँगरेज़ी दूसरी-भाषा के तौर पर पढ़ाई जाय। सो भी उन्हीं बालकों को जिनका ज़ेहन आला दरजे की तालीम पाने के लायक़ हो। जिनकी बुद्धि मन्द हो उनका अधिक समय अँगरेज़ी-भाषा सीखने में गँवाना व्यर्थ है।

ही आवश्यकता होती है। ऐसे लोग अपनी इच्छा के अनुसार अन्य भाषायें सीखते हैं। हाँ वे लोग भी अन्य भाषायें सीखते हैं जो अपनी मातृ-भाषा का भाण्डार बढ़ाने के लिए अन्य भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अनुवाद करना चाहते हैं।

पूर्व-कथित कारणों से हमारे देश के सब स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी या अन्य प्रान्तिक भाषा होनी चाहिए और अँगरेज़ी दूसरी भाषा के तौर पढ़ाई जानी चाहिए। जो विद्यार्थी ऊँची शिक्षा के लिए कालेजों में जावें उनकी शिक्षा का माध्यम उनकी रुचि के अनुसार हिन्दी या अँगरेज़ी हो। जो हिन्दी को माध्यम के लिए पसन्द करें उनकी दूसरी भाषा अँगरेज़ी हो। जो अँगरेज़ी को माध्यम बनावें उनके लिए हिन्दी दूसरी भाषा अनिवार्य रहे। हिन्दी की उन्नति और हिन्दी के ग्रन्थकार पैदा करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि कालेजों और विश्व-विद्यालयों में हिन्दी अवश्य पढ़ाई जाय।

वर्तमान प्रणाली से तीन प्रकार की हानियाँ हैं—एक तो आज कल के शिक्षित जन मन्दाग्नि के सदृश रोगों के कारण सामर्थ्य-हीन हो जाते हैं, दूसरे उनको मातृ-भाषा का पूरा अभ्यास न होने से वे अपनी प्राप्त विद्या को देश के सर्व-साधारण में फैला नहीं सकते। इसका परिणाम यह होता है कि वर्तमान विद्या कुछ थोड़े ही लोगों में रहती है। यदि देशी भाषाओं की पूरी उन्नति होती तो शिक्षित और अशिक्षित जनों में इतना अधिक अन्तर न देख पड़ता जितना कि आज कल दिखाई देता है।

भारत के समस्त विद्वान् एक स्वर से हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा बनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दे रहे हैं। इस विचार के उपयोगी और हितकर होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं, पर कमी है सिर्फ़ समय की। समय पाकर यह विचार फलीभूत अवश्य होगा। नदी की नैसर्गिक धारा को रोकने में कोई समर्थ नहीं होता। अतएव हमारी जातीय उन्नति की यह धारा किसी के रोके रुक नहीं सकती। देरी सिर्फ़ इसलिए हो रही है कि हमारे देश-वासियों को इस विषय का ज्ञान पूरे तौर से नहीं है।

हिन्दी किस भाषा का नाम है और उसका रूप क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि हिन्दी हिन्दुस्तान के रहने वालों की मातृ-भाषा है। इसका रूप वही है जिसको इस देश के साधारण निवासी अपनी बात-चीत और नित्य के कामों में लाते हैं। इसके शब्द सरल हैं। उनको सुनने से वक्ता या लेखक का आशय तुरन्त समझ में आ जाता है। हिन्दी वह नहीं है जिसको समझने में संस्कृत अथवा फ़ारसी अथवा अरबी के ज्ञान की ज़रूरत हो। हिन्दी, हिन्दुस्तानी या उर्दू ये तीनों नाम उस एक ही भाषा के समझने चाहिए। उर्दू से फ़ारसी-अरबी के वे शब्द निकाल दीजिए जिनका समझना साधारण जनों के लिए मुश्किल है। वैसे ही हिन्दी में संस्कृत के कठिन शब्द न मिलाइए। बस यही सार्व-जनिक सरल हिन्दी भाषा है। उसे हिन्दू, मुसल्मान तथा ईसाई आदि सभी भारतवासी समझ लेंगे।

हिन्दी बेशक संस्कृत की बेटी या पोती है। इसमें बहुत से शब्द यही हैं जो इस देश में प्रायः बोले जाते हैं। इसमें कुछ शब्द फ़ारसी के भी सम्मिलित हैं। यही क्यों? खुद फ़ारसी में भी संस्कृत से बने हुए अनेक शब्द विद्यमान हैं। दुनिया में शायद ही कोई ऐसी भाषा होगी जिसने कुछ न कुछ शब्द-समूह संस्कृत से न लिया हो। बँगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पञ्जाबी इत्यादि भी भाषायें हिन्दी की बहनें हैं। क्योंकि ये भी, हिन्दी की तरह, संस्कृत से ही निकली हैं।

पिछली सदियों में जितने सुलेखक और कवि—हिन्दू या मुसलमान—हुए हैं सभी ने उसी सरल हिन्दी को अपभाषा है जिसको सर्व-साधारण समझते हैं। हमारी जातीय भाषा का स्वरूप हमारे महात्माओं तथा कवियों ने सैकड़ों वर्ष पहले ही से स्थिर कर रक्खा है। कबीर साहब की बानी, गोसाईं तुलसीदासजी की रामायण, गुरु नानक साहब के ग्रन्थजी, सूरदासजी का सूर-सागर, ग़ाज़ीपुर के मुसल्मान कवि की चित्रावली, स्वामी दादू-दयाल की बानी और उन के शिष्यों के वृहद् ग्रन्थ, जो अभी तक छपे नहीं हैं—ये सब ग्रन्थ हिन्दी-भाषा के सरल-रूप के आदर्श हैं।

हिन्दी उसी संस्कृत की बेटी है जो अपने सौभाग्य-काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रकाशमान थी, जिस ने सारे भारतवर्ष को, काश्मीर से लेकर रामेश्वर तक, और द्वारिका से लेकर जगन्नाथ-पुरी तक, एक दिल बना रक्खा था, जिसमें एक जाति और एक ही राज्य था। इसकी गवाही हमारी

स्मृतियाँ व्यवहृत हो रही हैं। जो स्मृति काश्मीर में मानी जाती है वही मदरास आदि दूर दूर के प्रान्तों में भी मानी जाती है। ऐसे ही भिन्न भिन्न जातियों के आचार-व्यवहार अब भी एक से प्रचलित हैं।

जिस भारत की ख्याति समस्त भूमि मण्डल में थी, जिस भारत का मान सभी देशों के लोग करते थे, अभाग्य से अब वही भारत अविद्या के अन्धकार में सो रहा है। इस अविद्या से जगाने के लिए एक मात्र उपाय अपनी जातीय भाषा हिन्दी की उन्नति है। इसी की उन्नति से देश में यथार्थ ज्ञान-दीपक पुनः प्रज्वलित होगा, और भारत के सम्पूर्ण कष्टों को निवारण करने में पूरा सहायक होगा। बिना हिन्दी की उन्नति के हमारी उन्नति कभी न होगी। भारत की अविद्या बिना मातृ-भाषा की उन्नति के मिटेगी नहीं, यह बात हम अच्छी तरह से समझ गये हैं। शिक्षा के प्रसार का सुगम मार्ग मातृ-भाषा ही है। इसलिए हम सब को मातृ-भाषा की उन्नति के लिए—मातृ-भाषा के सार्वत्रिक प्रचार के लिए—अपना तन, मन, धन अर्पण करना उचित है।

भारत के विविध कष्टों का कारण हमारे देश-भाइयों की दरिद्रता है। इस दरिद्रता के नाश का एक ही उपाय है। वह यथार्थ शिक्षा है। हमको ऐसी शिक्षा देने में मातृ हिन्दी-भाषा ही समर्थ है। इसी लिए हमें अपनी मातृ-हिन्दी का ही आश्रय लेना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो जाने से देश में शि[illegible] शीघ्र विस्तार होगा। शिक्षा फैलने से लोगों में सुमति [illegible] ही जावेगी। अतएव "जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना" गुसाईं जी के इस वाक्यानुसार उचित रोज़गार बढ़ जावेंगे और रोज़गार से धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होगी। सम्पत्ति से लोगों को बलदायक भोजन और वस्त्रान्नादि मिलेंगे। शरीर बलवान् होने से दिमाग़ [illegible] होगा। तन-मन के सुधार से देश सब तरह उन्नत होगा। कल, दस्तकारी, व्यापार आदि सभी व्यवसायों की [illegible] होगी। दरिद्रता दूर भाग जावेगी। प्रजा में सुखों का [illegible] होगा। इससे राज्य की और राज्य-शासकों की [illegible] कठिनाइयाँ कम हो जावेंगी। और अनेक लाभ भी होंगे। ये सब बातें मातृ-भाषा की उन्नति से ही सम्भव हैं। [illegible] सुनलो! इस दशा को प्राप्त करने के लिए विशेष यत्न करो। क्योंकि इससे सभी को लाभ होगा।

मेघागम।

अन्यायी का राज्य नहीं स्थायी होता है, दुष्कृत का परिणाम दुखदायी होता है।
ग्रीष्म अकारण सकल जगत को जला रहा था, मनमाना दुख-पुञ्ज सब को खला रहा था।
इस कारण वह शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट ही हो गया।
और उसी के साथ सब ताप मही का खो गया ॥ १ ॥

किन्तु कभी दुष्कर्मी नहीं सुख को पाता है, उसके सिर पर सदा दुःख आता जाता है।
कुम्भकार के पास रहे या धोबी के घर, जहाँ रहेगा वही भार निज ढोवेगा सर।
[illegible] यद्यपि गयी, ग्रीष्म अपर इस देश में।
तदपि दुखी वह हो गया मेघागम के क्लेश में ॥ २ ॥

"ग्रीष्म-गर्व को चूर कर दिया जिसने क्षण में, तू था अपना रङ्ग जमाया जिसने रण में।
मेरे मन है खेद दूसरा कहीं नहीं पर, मेरे मन क्या सुनी गुनी है और कहीं था।"
मेघ गरज करके मनो इससे कहते हैं यही।
मथुरा पाकर भी कभी गया ज़माना लौटा नहीं ॥ ३ ॥

जिस कारण से सकल सभी को सुख होता है, उसी ग्रीष्म से सदा सभी को दुख होता है।
सुख मिलता है मेरा मलिन मेघेन्द्रन में क्यों, हाँ उदास हो मत रहे हैं राजहंस [illegible]।

तम वाञ्छित है उलूक को किन्तु चकोरक को नहीं।
जिसके जो अनुकूल है उसको प्रियतम है वही ॥ ४ ॥

होता है उपकार खलों से सदा खलों का, होता है अपकार खलों से सदा भलों का।
पर इसमें निज भाव किसी का दोष नहीं है, समझ देखिए नित्य प्रकृति का नियम यही है।
जलनिधि से जल जलद ने खारा ले मीठा दिया।
सर से पाया मधुर जल, पर उसको गँदला किया ॥ ५ ॥

यदि अन्यायी-राज्य सदा अन्यायी पावे, क्यों न वहाँ की प्रजा और भी कष्ट उठावे।
आकर जग को प्रथम ग्रीष्म ने खूब जलाया; हा! ज्यों ही यह टला क्रूर वारिदगण आया।
सुख-साधन जो थे बचे उनको भी घन ने लिया।
अपने काले हृदय का सब को परिचय दे दिया ॥ ६ ॥

दुष्टों का अधिकार जहाँ पर हो जाता है, रवि-मण्डल भी नहीं चैन करने पाता है।
देश निकाला किन्तु सज्जनों को मिलता है; ईति, भीति का फूल यहाँ अतिशय खिलता है।
श्रुति-कटु कैसा हो रहा दादुर-गण का शोर है।
जानें राक्षस हैं कहाँ समय पड़ा यह घोर है ॥ ७ ॥

तारागण के सहित शशी का पता नहीं है, पर नभ में खद्योत-मण्डली चमक रही है।
हिंसक, लम्पट, चोर, सदा स्वच्छन्द सुखी हैं, व्यापारी बलहीन दीन हैं, सन्त दुखी हैं।
नीच नृपति की नीति की रीति सिखाने के लिए।
आये हैं ये घन मनो कैसे सुख को मेटिए ॥ ८ ॥

चमक दमक कर वशीभूत कर लिया सभी को; वर्षा ने कर-हीन मनो कर दिया सभी को।
कर्मवीर निज कर्म नहीं करने पाते हैं, अपने मन की क्षुधा नहीं हरने पाते हैं।
पर, हाँ, दुख-दायक कहीं सुस्थिर रहता है नहीं।
जो आया वह जायगा अटल भरोसा है यही ॥ ९ ॥

घन-किङ्कर से भेक यहाँ पर जबसे आये; तोड़ पुराने मार्ग इन्होंने नये चलाये।
दिनकर की कमनीय कान्ति खो गई सभी से; जलज-जाल की प्रभा मलिन हो गई तभी से।
आगे बढ़ने के लिए पैर ठहरते हैं नहीं।
पङ्क-पिच्छिला हो गई सुपथ और सुन्दर मही ॥ १० ॥

अगणित अल्पक जीव मही पर घूम रहे हैं, अल्प काल के लिए गर्व से झूम रहे हैं।
पर जब तक ये बने रहेंगे दुख देवेंगे, स्वार्थ-निरत ये नीच हमें क्या सुख देवेंगे।
इनका प्रादुर्भाव तो हुआ हमारे पाप से।
पर ये स्थायी हैं नहीं मिट जावेंगे आप से ॥ ११ ॥

रुका हुआ है अन्य देश का आना जाना; कह भी सकते नहीं किसी से कुछ मनमाना।
दृग के आगे सदा हमारे तम छाया है; बहुत दिनों के बाद समय ऐसा आया है।
पहली सी फिर शरद ऋतु कब आवेगी देश में!
हम विरही कब तक बिना पड़े रहेंगे क्लेश में! ॥ १२ ॥

रामचरित उपाध्याय

जर्म्मनी के जहाज़ी बेड़े की उन्नति के लिए टिरपिट्ज़ ने अत्यन्त परिश्रम किया। उपाय भर उसने कुछ भी कसर नहीं की। उसने अख़बारों में लेख लिखे, सभा-समितियाँ स्थापित कीं, जहाज़ी शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था कराई, पुस्तकें प्रकाशित कराईं और व्याख्यान दिलवाये। अँगरेज़ों का जहाज़ी बेड़ा दुनिया में अपना सानी नहीं रखता। अतएव विद्यार्थियों को इँगलैंड भेज भेज कर अँगरेज़ों के जहाज़ी बेड़े का ज्ञान अपने और ज्ञान प्राप्त कराने की भी उसने बड़ी चेष्टा की। फल यह हुआ कि आज जर्म्मनी के ड्रेडनॉटों, टूबमार और पनडुब्बी नावों की धूम मच रही है।

टिरपिट्ज़ में अपने पक्ष की बात का प्रतिपादन करने की शैली अद्भुत है। प्रतिपक्षियों के विचारों का खण्डन और अपने मतों का मण्डन जब वह करने लगता है तब भी चाहता है कि सभी की बात मान लें। अपने तथा अन्य राष्ट्रों के जहाज़ी बेड़ों के विषय का ज्ञान वह पूरा पूरा रखता है। किस देश में कितने जहाज़ हैं, उनके लिए वहाँ कितना ख़र्च किया जाता है, वहाँ के मुख्य अधिकारी कौन कौन हैं, इत्यादि सभी बातें उसे मालूम हैं।

क्रोध तो उसे छु तक नहीं गया। वह सदा हँसमुख देख पड़ता है। पार्लियामेंट में क़ानूनी मसविदे पेश करते समय वह सदा कहा करता है कि "किसी बात को जिस दृष्टि से मैं देखता हूँ उसी दृष्टि से जब तक सभासद न देखेंगे तब तक उन्हें उसके कथन की यथार्थता न मालूम होगी।"

एकनिष्ठ टिरपिट्ज़ रोज़ सबेरे सात बजे आफ़िस में पहुँचता है आते ही वह काम में भिड़ जाता है। पार्लियामेंट में अपने क़ानूनी मसविदे पास हो जाने का उसे इतना निश्चय रहता है कि मंज़ूरी मिलने के पहले ही वह उन मसविदों के सम्बन्ध के काम कम्पनियों को ठीके पर दे दिया करता है।

उसके काम से प्रसन्न हो कर कैसर ने उसे "आर्डर आव दि ब्लैक ईगल" (Order of the Black Eagle) नाम की प्रतिष्ठित पदवी प्रदान की है। अच्छे कामों के लिए उसे कितने ही पदक दिये गये हैं और भिन्न भिन्न प्रकार से उसका सम्मान किया गया है।

अब तक वही जर्म्मन जहाज़ी बेड़े का प्रधान अधिकारी था। पर हाल में उसे अपना पद त्याग करना पड़ा है। सुनते हैं, सब-मैरीन नामक जहाज़-नाशिनी पनडुब्बी नावों द्वारा मित्र-मित्रप के जहाज़ नाश करने की निन्द्य नीति के सम्बन्ध में कैसर से उसकी अनबन हो गई है। इसी से उसने अपने पद से इस्तेफ़ा दे दिया है।

टिरपिट्ज़ जैसा निपुण जलयुद्ध-विशारद और राजनीतिज्ञ है वैसा ही दूरदर्शी भी है। वर्तमान महासंग्रामरूपी विनाश और अहित वट-वृक्ष का सूक्ष्म बीज टिरपिट्ज़ ही का बोया हुआ है।

टिरपिट्ज़ सत्रह वर्ष तक इस पद पर रहा। बिस्मार्क को छोड़ कर इतनी अधिक अवधि तक कोई जर्म्मन अधिकारी आज तक इतने बड़े पद पर नहीं रहा। जर्म्मनी और इँगलैंड, इन दोनों की मित्रता पर पानी फेरने का दोष उसी पर है।

टिरपिट्ज़ अब बुड्ढा हो चला है। उसकी उम्र इस समय ६८ वर्ष की है। जर्म्मनी के वर्तमान जहाज़ी बेड़े को टिरपिट्ज़ का जीता जागता स्मारक ही समझिए।

वृक्ष की आँखें।

बाहर शरीर पर आघात करने से प्राणियों की तरह वृक्ष भी उसका अनुभव करते हैं। इस बात को हमारे ही देश के सुप्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता आचार्य्य जगदीशचन्द्र वसु महाशय ने परीक्षा-द्वारा प्रत्यक्ष दिखा दिया है। लाजवन्ती नामक वनस्पति की किसी डाल को स्पर्श कीजिए अथवा उसके किसी भाग को झुकाइए तो उसके दूर दूर तक के भी पत्ते इस अत्याचार की वेदना से कुछ देर के लिए मुरझा जायँगे। यह वेदना उसे कैसी मालूम होती है, यह हम नहीं जान सकते और न इसके जानने का हमारे पास कोई उपाय ही है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि आघात और अत्याचार से वनस्पति के शरीर में एक प्रकार का परिवर्तन अवश्य शुरू हो जाता है और शरीर के भीतर ही भीतर जाकर पत्तों को एकदम मुरझा देता है। अब तो वसु महा-

द्वाय ने यह भी सिद्ध कर दिखाया है कि प्राणियों के शरीर की तरह उद्भिदों का शरीर भी स्नायु-समूहों से बना हुआ है। प्राणी के शरीर के किसी भी भाग को कष्ट पहुँचाने से जिस प्रकार स्नायु-तन्तुओं द्वारा उस कष्ट का अनुभव उसके सारे शरीर को होने लगता है उसी प्रकार वृक्ष के शरीर पर भी आघात करने से उसकी वेदना उसके शरीर भर में व्याप्त हो जाती है। किन्तु उद्भिदों के भी प्राणियों की तरह आँखें होती हैं, यह बात बिलकुल ही नई है।

मनुष्य इत्यादि उच्च श्रेणी के प्राणियों के शरीर और इन्द्रियाँ एक ही दिन में इतनी उन्नत अवस्था को नहीं पहुँची हैं। विज्ञान की बात मानने से स्वीकार करना पड़ेगा कि लाखों वर्षों के अनेक परिवर्तनों द्वारा मनुष्य ने अपनी इस समय की सुन्दर और सुव्यवस्थित इन्द्रियाँ प्राप्त की हैं। अतएव जो प्राणी इस समय भी जीव-धारियों की बहुत ही नीची श्रेणी में हैं उनकी इन्द्रियाँ, मनुष्यों के नाक, कान और आँख इत्यादि की तरह, सुव्यवस्थित नहीं हो सकतीं। मनुष्य की आँखों से कीट-पतङ्गों आदि की आँखों की तुलना कीजिए। आपको भेद स्पष्ट मालूम हो जायगा। प्राणितत्त्ववेत्ताओं ने उद्भिदों को जीवधारियों की सबसे नीची श्रेणी में रक्खा है। इस दशा में मनुष्य जिस प्रकार अपनी आँखों से अनेक वस्तुओं और अनेक रङ्गों को देख कर प्रकृति की अद्भुत सुन्दरता का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार उद्भिद अपनी आँखों से नहीं कर सकते। अन्धकार और प्रकाश का भेद जान लेना और किस ओर से प्रकाश आ रहा है, इसका निर्णय कर लेना जिस प्रकार नीची श्रेणी के जीवधारियों की आँखों का काम है, उद्भिदों की आँखों का काम भी प्रायः उसी प्रकार का है। वृक्ष की आँखों की तुलना मनुष्य की आँखों से नहीं की जा सकती, किन्तु

जर्मनी के अध्यापक हेबरलेंट (Haberlandt) उद्भिदों की शरीर-सम्बन्धिनी अनेक बातें प्रकाशित करके बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। वृक्षों के आँखें होने की बात भी उन्होंने कुछ दिन हुए प्रकाशित की है। आँखों का मुख्य काम क्या है, इस बात का अनुसन्धान करने से पता लगता है कि बाहर की अनेक वस्तुओं के रूप-रङ्ग आदि का ज्ञान दिमाग़ तक पहुँचा देने ही से आँखों का काम समाप्त हो जाता है। मनुष्य इत्यादि उच्च श्रेणी के प्राणियों की आँखें जिस प्रकार अद्भुत हैं, उनका कार्य भी वैसा ही अद्भुत है। किन्तु अन्यान्य प्राणधारियों की आँखों का जो काम है, उसका पता लगाने से वही बात सत्य मालूम होती है जिसका उल्लेख हमने यहाँ पर किया है।

पाठकों को शायद मालूम होगा कि बाहर के दृश्यों को जब हम किसी सङ्कीर्ण स्थान में स्थापित करना चाहते हैं तब हमें उन्नतोदर काँच (Convex lens) का उपयोग करना पड़ता है। फोटोग्राफर जब किसी देह गज़ के मनुष्य की तसवीर एक छोटे से काँच के टुकड़े पर बनाना चाहता है तब वह भी इसी काँच का उपयोग करता है। यह काँच उसके कैमरे के सामने लगा रहता है। इसी पर पड़ कर बाहर की बड़ी वस्तु की छोटी आकृति कैमरे के भीतर आती है। हमारी आँखें भी जब बाहर की वस्तु की आकृति छोटी करके अपने भीतर लेती हैं तब इसी सिद्धान्त का अवलम्बन करती हैं। आँखों के भीतर उन्नतोदर काँच तो नहीं है। किन्तु एक काँच ही के सदृश एक स्वच्छ तथा तरल पदार्थ है। यह पदार्थ आँखों के भीतर उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार कैमरे के भीतर उन्नतोदर काँच रहता है। आँखों की पुतलियों पर यह पदार्थ बाहर की वस्तुओं की आकृति छोटी करके उपस्थित करता ही [illegible] है। इस दशा में यदि वृक्ष [illegible]

जाय कि यह बाहर के दृश्य को छोटा करके वृक्ष के भीतर ले जाता है तो स्वीकार करना पड़ेगा कि वृक्ष के भी आँखें होती हैं। हाल ही में जर्म्मनी के पूर्वोक्त अध्यापक महाशय ने वृक्ष की शाखाओं और पत्तों की त्वचा में ठीक इसी प्रकार की आँखें ढूँढ़ निकाली हैं। त्वचा के ऊपरी भाग पर जो बिन्दु सदृश छोटे छोटे कोश होते हैं उन्हीं में से कितने ही कोश एक प्रकार के अत्यन्त स्वच्छ रस से भरे रहते हैं। यह रस उपत्वोदर काँच का ही काम देता है। बाहर के दृश्यों की छोटी आकृति का प्रतिबिम्ब ही इन कोशों के भीतर नहीं पहुँचता, किन्तु सूर्य की किरणों की गरमी भी उस स्वच्छ रस की सहायता से इन कोशों में भर जाती है। इसी गरमी से उद्भिदों के ये कोश अपना काम करते हैं।

वृक्षों के पत्तों और डालियों की त्वचा में व्याप्त ये हज़ारों आँखें बाहर के दृश्यों की आकृति भीतर ले जाकर उससे क्या लाभ उठाती हैं, यह बतलाना बहुत कठिन है। किन्तु इससे हम यह नहीं कह सकते कि इन आँखों के द्वारा इस प्रकार कोश में आकृति का अङ्कित होना बिलकुल ही व्यर्थ है। पाठकों को मालूम होगा कि साधारण मक्खियों के सिर की दोनों तरफ़ जो दो बड़ी बड़ी आँखें होती हैं वे छोटी छोटी अनेक आँखों के संयोग से बनी हैं। मक्खी की हर आँख बहुत छोटी छोटी लगभग चार हज़ार आँखों की समष्टि है। साधारण ख़ुर्दबीन यन्त्र द्वारा देखने से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। तितली के तो इससे भी अधिक आँखें होती हैं। उसके सिर की दोनों तरफ़ जो दो आँखें होती हैं उनमें से प्रत्येक आँख सत्रह सत्रह हज़ार छोटी छोटी आँखों के संयोग से बनी हैं। मक्खियाँ और तितलियाँ आदि जीवधारी इन हज़ारों आँखों की सहायता से अपने चारों ओर के दृश्यों को किस प्रकार देखते हैं, यह हम नहीं जानते। किन्तु शरीर-रक्षा के लिए इन सब आँखों की उन्हें कोई न कोई आवश्यकता अवश्य है, इस बात का अनुमान हम अवश्य कर सकते हैं। अध्यापक हेबरलेंड कहते हैं कि उद्भिदों के पत्तों और उनकी टहनियों पर जो असंख्य आँखें हैं उनका काम वही है जो मक्खियों और तितलियों की आँखों का है। जिस दिन इन जीवधारियों की आँखों का तत्त्व हमारी समझ में आ जायगा, सम्भवतः उसी दिन वृक्षों की आँखों का तत्त्व भी समझ में आ जायगा।*

विविध विषय।

१—कालिदास की जन्मभूमि।

हार एंड उड़ीसा-रीसर्च-सोसाइटी-जर्नल—नाम की एक सामयिक पुस्तक अँगरेज़ी में निकलती है। उसमें महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री, एम॰ ए॰, सी॰ आई॰ ई॰ ने कालिदास की जन्मभूमि के विषय में एक गवेषणापूर्ण लेख प्रकाशित कराया है। शास्त्रीजी ने योग्यता-पूर्वक अपने साध्य की सिद्धि की चेष्टा की है। आपकी राय है कि कालिदास १२४ ईसवी के कुछ पहले विद्यमान थे। कालिदास के लिखे हुए जितने काव्य और जितने नाटक उपलब्ध हैं उनका ध्यान-पूर्वक पाठ करके आपने यह निश्चय किया है कि कालिदास ने प्रायः सारे भारत में भ्रमण किया था। कोई प्रान्त, कोई पर्वत, कोई नगर, ऐसा न था जिससे कालिदास परिचित न थे। पूर्व में आसाम, पश्चिम में पञ्जाब, उत्तर में हिमालय के आसपास का प्रदेश और दक्षिण में मलाबार तक के पेड़-पौधों और फल-फूलों से वे परिचित थे। यह बात उनके ग्रन्थगत वर्णनों से सिद्ध होती है। जिस जगह का उन्होंने वर्णन किया है, ऐसा सत्य किया है मानो वे वहाँ भर वहीं रहे हों। यद्यपि हिमालय के दृश्यों का बहुत ही अच्छा वर्णन उन्होंने किया है—वहाँ के जङ्गलों, नगरों, नदियों और निवासियों को सजीव सा सामने लाकर

---

* श्रीजगदानन्द-राय-प्रणीत "प्राकृतिकी" से अनुवादित।

३—प्राचीन पाटलिपुत्र में ईरानी आधिपत्य का स्वप्न।

श्रीयुत रतन ताता की उदारता के बल पर डाक्टर स्पूनर पुराने पाटलिपुत्र के खँडहर, कई मास से, खुदा रहे हैं। इस खुदाई के विषय में कई नोट सरस्वती में निकल चुके हैं। खोदने से जो ईंट, पत्थर, टूटी हुई मूर्तियाँ और लकड़ियाँ आदि निकली हैं उनके, तथा वहाँ की प्राचीन इमारतों के अवशिष्ट अंशों के आधार पर डाक्टर स्पूनर ने यह अनुमान किया है कि किसी समय पाटलिपुत्र में पारसियों का ही आधिपत्य था। यहाँ तक कि पाटलिपुत्र का प्रासाद भी पारसी ही कारीगरों ने अपने ही देश के ढँग पर बनाया था। आपके इन अनुमानों का कई विद्वानों ने खण्डन किया है। इस बात का भी उल्लेख सरस्वती की पिछली संख्या में हो चुका है। अब कई महीने से एक लेख मार्डर्न-रिव्यू में लगातार निकल रहा है। यह लेख किसी गुमनाम महाशय ने निमराड (Nimrod) नाम से लिखा है। लेखक अच्छे विद्वान और पुरानी इमारतों आदि के अच्छे ज्ञाता मालूम होते हैं। उन्होंने डाक्टर स्पूनर की रिपोर्ट से मुख्य मुख्य अंश उद्धृत कर के उनकी विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। आलोचना में उन्होंने डाक्टर साहब की ऐसी-वैसी बातों को निर्मूल सिद्ध किया है। कहीं कहीं तो उन्होंने डाक्टर साहब के अनुमानों और सिद्धान्तों को उन्हीं के लेखों के प्रतिकूल सिद्ध कर दिखाया है। पूर्वापर-विरोध दिखाने के सिवा उन्होंने यह भी दिखाया है कि डाक्टर साहब ने कहीं कहीं कुछ का कुछ लिख मारा है और इतनी बड़ी बड़ी भूलें की हैं जितनी कि पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों से कभी होनी ही न चाहिए। निमराड महाशय की लेख-माला अभी तक बराबर प्रकाशित हो रही है। आप ने अब तक जो कुछ लिखा है उससे भी, डाक्टर फ्लीट के लेख की तरह, यही सिद्ध होता है कि प्राचीन पाटलिपुत्र में न कभी पारसियों का प्राधान्य रहा और न उन लोगों ने वहाँ कोई इमारत ही बनाई। मार्डर्न-रिव्यू के लेखक ने अपने लेख में इस बात का भी सङ्केत किया है कि किस उद्देश की सिद्धि के लिए डाक्टर स्पूनर ने पूर्वोक्त अनुमानों का प्रकाशन किया है और उनसे ऐसी ऐसी भूलें किस कारण हुई हैं। जिनको इस सम्बन्ध में अधिक जानने का चाव हो वे मार्डर्न-रिव्यू में पूर्वोक्त लेख-माला पढ़ें।

४—अध्यापक मुग्धानलाचार्य और वेद-प्रचार।

आक्सफ़र्ड के संस्कृत-अध्यापक मुग्धानलाचार्य से सरस्वती के पुराने पाठक विशेष परिचित होंगे। आचार्य्य महाशय का ध्यान अब वेद-प्रचार की ओर गया है। आज कल ऋग्वेद के अनेक गद्यपद्यात्मक अनुवाद, जर्मन और अँगरेज़ी भाषाओं में, हो चुके हैं। परन्तु आप कहते हैं कि उन अनुवादों में त्रुटियाँ हैं। उनके प्रकाशन के अनन्तर और भी कितनी ही नई नई बातें मालूम हुई हैं। उनको ध्यान में रख कर वे अनुवाद नहीं किये गये। इसके सिवा वे अनुवाद सम्पूर्ण नहीं, ऋग्वेद के कुछ ही अंश के हैं। यही देख कर और वेद-ज्ञान के प्रचार की बड़ी आवश्यकता समझ कर आप ऋग्वेद का अँगरेज़ी अनुवाद करना चाहते हैं। सम्भव है, आपने अनुवाद करना आरम्भ भी कर दिया हो और बहुत कुछ कर भी चुके हों।

वेद पढ़ने वालों के लिए आपने एक और भी सुभीता कर दिया है। आपने विद्यार्थियों के लिए एक वैदिक व्याकरण लिख डाला है। उसका नाम है—Vedic Grammar for Students यह शीघ्र ही क्लारेंडन प्रेस (Clarendon Press) से निकलने वाला है। इस व्याकरण के निकल जाने पर आप एक वैदिक "रीडर" (Vedic Reader) भी लिख कर प्रकाशित करेंगे। आपकी राय है कि इन दो पुस्तकों के प्रकाशित होजाने पर बिना गुरु की सहायता के भी लोग वेदों का मर्म समझने में बहुत कुछ कृत-कार्य्य होंगे।

आपने स्वयं ही ये सब बातें लिख कर लन्दन के प्रधान समाचार-पत्र "टाइम्स" में प्रकाशित की हैं। आशा है, वेदपाठी और वेदप्रेमी भारतवासी आचार्य्य महाशय की दोनों पुस्तकें ख़रीद कर उनका परिश्रम सफल करेंगे। यों तो शूद्रों, और, हिन्दुओं के अन्य स्पृश्य जनों, को अब भी वेद पढ़ने से कोई नहीं रोक सकता। पर आचार्य्य महोदय की इन पुस्तकों के निकल जाने पर स्पृश्य और अस्पृश्य सभी लोग, शायद वेदाध्ययन की ओर खूब झुकेंगे। भगवान् जाने, उस समय हमारे वेदज्ञ विद्वान् क्या करेंगे? वे अपने वेदज्ञान को शूद्रों के हृदय-कुम्भ में तो भरें ही गे नहीं; अन्य वर्णों के काम के लिए भी तत्सम्बन्धिनी कोई पुस्तक न लिखेंगे। सम्भव है, उसे वे अपने शरीर के साथ ही नष्ट कर देना बहुत बड़ा पुण्यकार्य्य समझते हों। अस्तु, जीते रहें मुग्धानलाचार्य्य के सदृश जर्मन और अँगरेज़ विद्वान् जिनकी बदौलत अँग-

भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड हार्डिंग महोदय की प्रतिमा का फ़ोटो।

(मूर्तिकार विनायकराव बाग)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

न सुयोग्य शासक थे। आपके पुत्र, जापान के वर्तमान सम्राट्, आपका एक भव्य स्मृति-मन्दिर बनवा रहे हैं। स्मृति-मन्दिर जापान की राजधानी टोकियो में तैयार हो रहा है। मन्दिर के साथ ही एक संग्रहालय भी बनाया जा रहा है। इसमें मृत सम्राट् से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुएँ रक्खी जायँगी। आशा है, मन्दिर १९२७ ईसवी तक बन कर तैयार हो जायगा। मन्दिर के बनवाने में एक करोड़ रुपये के लगभग खर्च होगा। मन्दिर की बनावट न बहुत भारी और न बहुत शानदार होगी।

जिस जगह स्मृति-मन्दिर बन रहा है वह कोई १८० फ़ुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। मन्दिर की कारीगरी में सोने और ताँबे के सिवा और भी कितनी ही धातुएँ काम में लाई जायँगी। वस्तुसंग्रहालय की इमारत जापान, चीन, भारतवर्ष, मिस्र, यूनान और रोम की इमारतों के ढंग की बनाई जायगी।

मन्दिर के काम की देख भाल के लिए एक कमिटी बनाई गई है। जापान के प्रधान मन्त्री उसके अध्यक्ष हैं।

जापानियों का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् वीर नर ईश्वर के अंश में मिल जाता है। यह स्मृति-मन्दिर इसी विश्वास की दृढ़ता का सूचक है। जापान के मृतपूर्व सम्राट् की दयालुता और उदारता का एक उदाहरण सुनिए।

एक बार जापान के कुछ राज-विद्रोहियों ने गुप्त षड्-यन्त्र रचा। युवराज कत्सुरा (Katsura) ने इसकी ख़बर सम्राट् को दी। युवराज ने सम्राट् से यह भी कहा कि मैं राज-विद्रोहियों को मृत्यु-दण्ड देना चाहता हूँ। इस पर दयालु सम्राट् ने उत्तर दिया कि नहीं। उन्हें जीवित रहने दो। हमारे राजकीय प्रबन्ध में ही कुछ त्रुटियाँ हैं जिनके कारण यह अपराध हुआ है। पर युवराज के अत्यन्त आग्रह करने पर उन्होंने सिर्फ़ मुखियों को फाँसी की सज़ा देने की आज्ञा दी, सो भी शासन-प्रबन्ध के सुभीते के ख़याल से। तथापि सम्राट् के दिल में इसका दुःख बना ही रहा। इसी दुःख के आवेश में आपने कुछ कवितायें लिखीं। उनसे सम्राट् की दया-वत्सलता और उनके मन की स्वाभाविक कोमलता का अच्छा परिचय मिलता है।

ऐसे अनुकरणीय गुणों से मण्डित सम्राट् के स्मृति-मन्दिर की योजना करके जापान के वर्तमान सम्राट् ने सचमुच ही बड़ा प्रशंसनीय कार्य्य किया है।

८—सिक्ख-गुरुओं का भविष्य-कथन।

इस समय यूरोप में जो घमासान युद्ध हो रहा है उसमें हमारे भारतीय वीर भी लड़ रहे हैं। सिक्ख-जाति स्वभावतः ही वीर है। भारत का मध्यकालीन इतिहास सिक्खों की रण-निपुणता के निदर्शनों से भरा पड़ा है। इन्हीं सिक्खों की कितनी ही पलटनें ब्रिटिश गवर्नमेंट की तरफ़ से युद्ध-क्षेत्र में अपनी वीरता दिखा रही हैं। शत्रु जर्मन भी उनकी रण-चातुरी की प्रशंसा कर रहे हैं। कुछ समय हुआ, अपनी सेना की शूरता की बड़ाई करते समय जर्मनी के बादशाह स्वयं क़ैसर ने सिक्खों की वीरता की बड़ाई की थी।

सिक्ख रिव्यू नामक अख़बार में किसी ने एक लेख लिखा है। उसमें लेखक ने कहा है कि वर्तमान महायुद्ध में सिक्ख लोग जो अँगरेज़ों का पक्ष लेकर इतनी वीरता प्रकट कर रहे हैं उसका कारण है। वह यह कि सिक्खों के धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि भारतवर्ष में अँगरेज़ों का आगमन होगा और अँगरेज़ों तथा सिक्खों में गाढ़ी मैत्री होगी।

औरङ्गज़ेब ने (१६५८ से १७०७ ईसवी तक) अपनी तलवार के बल से हिन्दुओं को मुसलमान करना चाहा। जो लोग इसलाम-धर्म्म को ग्रहण करने से इनकार करते थे उन्हें वह लोमहर्षण दण्ड देता था। सिक्खों के नवें गुरु तेग़बहादुरजी से यह क्रूर अत्याचार न देखा गया। उन्होंने उसका विरोध किया। इस कारण औरङ्गज़ेब ने उन्हें जेल में डाल दिया। एक रोज़ गुरु तेग़बहादुर शाही महलों की ओर देख रहे थे। बादशाह ने उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे हरम की स्त्रियों को न देखता था, किन्तु पश्चिम दिशा की ओर देखता था। वहाँ मुझे ज़िरह-बख़्तर पहने हुए गोरे मनुष्यों का दल भारत में आता और अत्याचारी तुर्कों के राज्य का नाश करता हुआ दिखाई देता था।

थोड़े ही दिनों के बाद गुरु की यह भविष्यद्वाणी सच निकली। इस पर औरङ्गज़ेब ने तेग़बहादुर को मरवा डाला। तेग़बहादुर के पुत्र गुरु गोविन्दसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए। गुरु गोविन्दसिंह ने भी यह भविष्यत्-कथन किया कि अँगरेज़ यहाँ आवेंगे और ख़ालसा लोगों से मिल कर पूर्व और पश्चिम में राज्य करेंगे। सिक्खों और अँगरेज़ों की संयुक्त सेना बड़े बड़े काम कर दिखावेगी। इसी

...रहते थे। उनके साथ वे मित्रवत् बर्ताव करते थे। उन के सुख-दुःख में वे शरीक रहते और सदुपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर लाते थे। आप बड़े उत्साही थे। काशी में इस वर्ष गर्मी का ज़ोर असाधारण था। तिस पर भी आप अध्यापक [illegible] मृत्यु के दो दिन पहले तक ८-१० घण्टे परिश्रम कर प्राचीन भाषाओं के व्याकरणों का अध्ययन करते थे। यह [illegible] की प्रबल ज्ञान-पिपासा का प्रबल उदाहरण है। शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जिसमें आपकी गति न हो और उसका कुछ ज्ञान आप से जिज्ञासुओं को न मिला हो। आप शिक्षा, भाषा, साहित्य और धर्म-सम्बन्धिनी कितनी ही सभा-समितियों के सदस्य थे। आप प्रायः सभी सार्वजनिक आन्दोलनों में शरीक हुआ करते थे। हिन्दू-धर्म्म, जाति और आचार-विचार से आप सदा सहानुभूति रखते थे। आपकी स्पृहा "जय काशी विश्वनाथ" थी। भारत-माता से आपको प्रेम था। उस पर आपकी असीम श्रद्धा थी। आप भारत-भूमि को अपनी मौसी और भारत को मौसेरा भाई कहते थे। "मा मरो पर जीवो मौसी" इस कहावत का उल्लेख करके आप सर्वदा कहा करते थे कि पारसियों पर जब विपत्ति के बादल उमड़े तब इसी भारत-भूमि ने उन्हें शरण दी। अतएव भारत-भूमि हमारी आश्रय-दायिनी जननी है।

आपका स्वभाव बहुत सरल और विनोदशील था। आप बड़े ही मिष्ट-भाषी और उदार-हृदय थे। इस कारण काशी में आप बहुत लोक-प्रिय थे।

ऐसे विद्वान्, ऐसे देशप्रेमी, ऐसे विद्याव्यसनी और ऐसे साधु-स्वभाव सज्जन की मृत्यु से किसे दुःख न होगा? परमात्मा आपकी आत्मा को शान्ति-प्रदान करे और विद्यार्थियों को आपकी जीवन-चर्य्या से उत्साह ग्रहण करने की स्फूर्ति दे।

१०—मूर्त्तिकार विनायकराव वाघ।

देशी तथा विदेशी महान् पुरुषों की स्मृति-प्रतिमायें बनवाने के लिए प्रति-वर्ष भारत का लाखों रुपया बाहर जाया करता है। तिस पर मज़ा यह कि भरपूर दाम देने पर भी प्रतिमायें ठीक नहीं बनतीं। उदाहरणार्थ, हाल ही में मदरास के प्रसिद्ध विद्वान् सर कृष्णस्वामी आइयर की प्रतिमा को लीजिए। यह किसी स्वर्गीय अपरिचित मनुष्य की सी मालूम होती है। उसमें विलायती मूर्त्तिकार ने एक कमाल और कर दिया है। वह यह कि ब्राह्मण के पैरों पर पुस्तकों का ढेर लगा दिया है। उसके चरणों पर सरस्वती लोट रही है! इसके पहले माइसोर के भूत-पूर्व महाराज की प्रतिमा विलायत से बन कर आई तो कोई उसे पहचान ही न सका। सरस्वती के सुपरिचित मिस्टर म्हात्रे ने जब उसका सिर अलग करके दूसरा लगाया तब कहीं उसमें महाराजा की मुखचर्य्या का भाव आया। यह दशा देख कर मदरास निवासियों ने महात्मा गोखले की प्रतिमा बनवाने का आर्डर मिस्टर म्हात्रे को दिया है। म्हात्रे इस समय भारत के प्रधान मूर्त्तिकार हैं।

हमें यह लिखते हर्ष होता है कि एक और होनहार मूर्त्तिकार बम्बई में विख्यात हो रहे हैं। उनका नाम विनायकराव वाघ (V. V. Wagh) है। आपने कई प्रतिमायें देशी तथा विदेशी महानुभावों की बहुत अच्छी बनाई हैं। कोई दो वर्ष हुए, आप भारत के भूत-पूर्व वायसराय, लार्ड हार्डिंज, महोदय की प्रतिमा बनाने देहली गये थे। उस प्रतिमा को देख कर श्रीमती स्वर्गीया लेडी हार्डिंज बहुत प्रसन्न हुईं और उन्हें प्रशंसा-पत्र प्रदान किया। इस भाव-भरी प्रतिमा का फ़ोटो सरस्वती के पाठकों की भेंट किया जाता है।

मिस्टर वाघ ने हाल ही में बम्बई के वर्तमान गवर्नर महोदय की भी एक बड़ी अच्छी प्रतिमा बनाई है। आपको परलोकवासी गिरीशचन्द्र घोष की प्रतिमा बनाने का आर्डर भी मिला है। भारतवासियों को चाहिए कि ऐसे प्रतिभाशाली ललितकला-विशारदों का हृदय से अभिनन्दन करें और उनसे मूर्त्ति-निर्म्माण का काम लें।

बालकृष्ण शर्मा

११—ज़ेबुन्निसा।

ज़ेबुन्निसा औरङ्गज़ेब की सबसे बड़ी लड़की थी। १६३८ ईसवी में उसका जन्म हुआ। ६३-६४ वर्ष की उम्र में वह मरी। वह अविवाहित ही रही। उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि सात ही वर्ष की उम्र में उसने सारा क़ुरान कण्ठ कर लिया। इस ख़ुशी में उसके पिता, औरङ्गज़ेब, ने देहली में एक बहुत बड़ा उत्सव किया। शाह रुस्तम ग़ाज़ी नाम के एक विद्वान् ने, और और विषयों के अतिरिक्त, कविता लिखना भी उसे सिखाया। स्वभाव ही से उसके हृदय में कवित्व का बीज था। वह शीघ्र ही अङ्कुरित हो गया।

१५—इलाहाबाद-विश्वविद्यालय का परीक्षा-फल।

इस वर्ष प्रयाग-विश्वविद्यालय की भिन्न भिन्न परीक्षाओं में जितने विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए उनकी तालिका नीचे दी गई है—

परीक्षा का नाम	परीक्षार्थियों की संख्या	उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	उत्तीर्ण विद्यार्थियों का फ़ी सदी औसत	उत्तीर्ण विद्यार्थियों के फ़ी सदी औसत की तफ़सील		
							प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
म० ए० (अन्तिम)	१०३	६१	१	१७	४३	५९.२	१.६	२७.९	७०.५
„ (आदिम)	१०७	८३	२	२०	६१	७७.६	२.४	२४.१	७३.५
म० एस-सी० (अन्तिम)	२२	१४	१	४	९	६६	७.१	२०	६२.८
„ (आदिम)	२४	१४	०	४	१०	५८.३	०	२८.२	७१.४
एल० टी०	६०	४२	६	२६	१०	७०	१४.२	६२.०	२३.८
बी० ए०	१,२४२	५५०	१	९८	४५१	४२.३	.१८	१८.२	८१.२
बी० एस-सी०	१८२	६४	२	३०	४२	५१.६	२.३	२०	४४.६
एफ़० ए०	२,४४२	९६०	२४	२६४	७०६	४०.७	२.४	२६.२	७१.१
मैट्रिकुलेशन	७,६६६	३,३२४	७	९८३	६६४	२७.३	.२१	२८.२	७१.१

मैट्रिकुलेशन-परीक्षा का फल अत्यन्त असन्तोषजनक है। फ़ी सदी केवल २७ विद्यार्थी पास! मैट्रिकुलेशन ही नहीं, अन्य परीक्षाओं में भी अधिकांश विद्यार्थी तीसरी श्रेणी में पास हुए हैं। कुछ वर्षों से मैट्रिकुलेशन ही की नहीं, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं में भी कड़ी की जा रही है। यों तो कलकत्ता, बम्बई और मदरास के विश्वविद्यालयों के परीक्षा-फल की अपेक्षा इस विश्वविद्यालय का परीक्षा-फल प्रायः सदा ही बुरा होता है। पर इस वर्ष तो प्रयाग-विश्वविद्यालय का परीक्षा-फल बहुत ही परिताप-जनक हुआ। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा में इस वर्ष, सिर्फ़ प्रथम श्रेणी में, ४,३६६ छात्र पास हुए हैं। द्वितीय और तृतीय श्रेणी की तो बात ही जाने दीजिए। हमारे विश्वविद्यालय में कुल ७,६६६ विद्यार्थी इस परीक्षा में शरीक भी हुए थे। उनमें से प्रथम श्रेणी में सिर्फ़ ७ पास हुए! प्रायः यही हाल ऊँचे दरजे की परीक्षाओं का भी है। प्रयाग-विश्वविद्यालय से कम विद्यार्थी ही नहीं पास होते, उसमें शिक्षा पाने वाले छात्रों को कितनी ही और असुविधाओं का सामना भी करना पड़ता है। इस विद्यालय ने ऐसे कितने ही नियम बनाये हैं जिनकी पाबन्दी मुश्किल से होती है। फल यह होता है कि अनेक छात्र

। पलासी का युद्ध, और (२) सुवीमा का युद्ध। पुस्तक के
। विषय पढ़ने लायक़ हैं।

※

३—रिर्पेट ऑफ़ द टीचर्स सम्मेलन। आकार बड़ा, पृष्ठ-
या डेढ़ सौ के लगभग, मूल्य चार आने, मिलने का
—सेक्रेटरी, टीचर्स ट्रेनिंग-क्लास, जबलपुर। नाम इस
क का आधा-अंग्रेज़ी है और शायद अशुद्ध भी है। पर
र बड़े अच्छे अच्छे लेख हैं। अध्यापकों को सुधारा अध्या-
-कार्य सिखाने का कोई स्कूल जबलपुर में है। उसी के
कों का एक सम्मेलन, १९१२ में, जबलपुर में, हुआ था।
ी का यह कार्य-विवरण है। पाठक कहते हैं, पाठ करने
पढ़ने वाले को; पर इस विवरण के सम्पादक महाशय ने
अध्यापक के अर्थ में लिखा है। मध्यप्रदेश में अध्यापक,
रिंग या शिक्षक, शायद पाठक ही कहलाते हैं। पूर्वोक्त
मेलन में जो व्याख्यान हुए और जो लेख पढ़े गये थे उन्हीं
इसमें संग्रह है। भूगोल, इतिहास, गणित, प्रकृति-पाठ,
गम-पाठ, भाषा-साहित्य, ड्राइंग आदि अनेक उपयोगी
यों पर अनेक लेख इस विवरण में हैं। इसके सिवा
की स्कूलों से सम्बन्ध रखने वाली और भी कितनी ही
ें हैं। इस सम्मेलन के साथ एक प्रदर्शिनी भी हुई थी।
का भी वर्णन है। स्कूलों के अध्यापकों, छात्रों तथा अन्य
गों के भी जानने योग्य अनेक बातें इस विवरण में हैं।

※

४—शिक्षण-कौमुदी—यह एक सामयिक पत्रिका है
र जबलपुर से निकली है। यह हर दूसरे महीने
कलेगी। अतएव साल में इसके ६ अङ्क निकलेंगे। वार्षिक
ल्य दो रुपया है। अब तक दो अङ्क निकल चुके हैं।
में—"केवल शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर विचार किया
यगा। शिक्षा-विचारकों तथा शिक्षा-प्रेमियों के सुलेखों के
तिरिक्त मानसी तथा मिडिल स्कूल के पाठ्य विषयों पर
कृतियों तथा चित्रों सहित आदर्श पाठ रहा करेंगे।" पहले
ड्र में कोई साठ सत्तर पृष्ठ हैं। लेख और चित्र सब इस
त्रिका के उद्देश के अनुरूप हैं। अतएव शिक्षकों और
द्यार्थियों के यह बड़े काम की है।

५—भावविलास। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या
८४+११, मूल्य ४ आने, सम्पादक मुंशी गोविन्दशरण
मदनमोहन अग्रवाल, जयपुर, से प्राप्य। यह प्रसिद्ध कवि देव
की रचना है। इसमें नामानुसार भावों के लक्षण और लक्ष्य
हैं। हिन्दी में अपने विषय की अच्छी पुस्तक है। अन्त
में इन्हीं देव-कवि-कृत प्रेमशतक भी है। यह शतक प्रेमदर्शन,
तपदर्शन, आत्मदर्शन, जगद्दर्शन—इन चार भागों में विभक्त
है। प्रत्येक दर्शन में पचीस पचीस सवैये या घनाक्षरियाँ हैं।
इस पुस्तक से सूचित होता है कि देव-कवि को वेदान्त में
भी दख़ल था।

※

६—Raja Sir Dinkar Rao, K. C. S. I.,
लेखक—मुकुन्द वामनराव बर्वे, बी० ए०, जज, नाज़िम
अदालत इन्दौर। आकार डबल क्राउन सोलह पेज, पृष्ठ-
संख्या २२२, मूल्य ढाई रुपया, मिलने-का-स्थान लिखा नहीं।

पुस्तक की भाषा अँगरेज़ी है। इसमें ग्वालियर-राज्य के
भूतपूर्व नामी दीवान राजा सर दिनकरराव के० सी० एस०
आई० का जीवन-चरित है। ये वही सर दिनकरराव हैं जिन्होंने
सिपाही-विद्रोह के समय ब्रिटिश गवर्नमेंट की सहायता की
थी और जिनकी योग्यता, नीतिमत्ता, शासन-चातुर्य आदि
से ग्वालियर-दरबार और ग्वालियर की प्रजा ने बहुत लाभ
उठाया है। पुस्तक में सर दिनकरराव के जीवन की प्रायः समस्त
मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन है। यह तेईस अध्यायों
में पूरी हुई है। बड़ी खोज से लिखी गई है। राजनीति और
इतिहास, दोनों दृष्टियों से पुस्तक महत्त्व की है। पर, सिर्फ़
अँगरेज़ी जानने वाले ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

※

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच
गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) श्रीगीता-रहस्य—लेखक पण्डित परशुराम तिवारी,
बी० ए०, जबलपुर।

(२) नारायणबलि-प्रतिमादि-व्याप्ति-मार्तण्ड—लेखक, महा-
महोपाध्याय पं० जगदीश्वर विद्यासागर,
जम्बू, काश्मीर।

अक्षर-विज्ञान।

इस पुस्तक में तीन प्रधान विषय हैं (१) इवोल्यूशन या विकासवा की समालोचना। इसमें दिखलाया गया है कि बन्दर ही मनुष्य नहीं ब गया—किन्तु वह आदि सृष्टि में इसी रूप तथा ईश्वरीय वैदिक ज्ञान के भाषा के साथ पैदा हुआ था। (२) वह भाषा वैदिक भाषा थी जिस संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, अंगरेज़ी, चीनी, और जापानी आदि अनेकों भाष ओं के सैकड़ों शब्दों से सिद्ध किया गया है। (३) प्रत्येक अक्षर की ध्वनि उसका अर्थ तथा रूप दिखलाया गया है।

इस पुस्तक की समालोचना भारत-प्रसिद्ध **पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी** ने अगस्त सन् १९१४ की सरस्वती में इस प्रकार की है:—आज हमें एक ऐसी पुस्तक का परिचय पाठकों से कराना है जिसका अधिकां बिलकुल ही नया है जिसके लिखने में लेखक ने अपने दिमाग से बहुत कु काम लिया है, जिसमें जगह जगह पर लेखक की चिन्ताशीलता का प्रमा मिलता है, जिसको लिखने के पहले लेखक को भिन्न २ भाषाओं की अनेकानेक पुस्तकों का परिशीलन करना पड़ा है। अक्षर-विज्ञान नामक पुस्त ऐसी ही है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखने के कारण लेखक महाशय क बहुत बहुत साधुवाद। बेचारे डारविन के कीर्ति-चन्द्र पर खग्रास ग्रहण लग के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। प्रोफ़ेसर बेटसन, प्रोफ़ेसर मेंडल और मेड हेनरी आदि के युक्ति-समूह राहु बन कर उसका ग्रास करने के इरादे में ही कि अक्षर-विज्ञान के लेखक के युक्तिवाद भी उनकी सहायता के लि तैयार होकर निकल पड़े। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि अक्षर-विज्ञान क कर्त्ता ने अपने विषय का विशेष मनन किया है। उनकी विद्याभिरुचि औ गवेषणाशक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है। उन्हों ने यह पुस्तक लिख कर अपनी योग्यता और चिन्ताशीलता का अच्छा परिचय दिया है। इस कारण हम साधुवाद से आपका पुनर्वार अभिनन्दन करते हैं।

(आगे का पृष्ठ भी पढ़ो)

पं० भीमसेन शर्मा वेदव्याख्याता, कलकत्ता यूनीवर्सिटी,— यह पुस्तक अपने ढँग की एक ही है। इसके पढ़ने से वेद का महत्त्व मालूम पड़ेगा।

पं० तुलसीरामस्वामी, मेरठ—वेद सब से प्राचीन, वेद के अक्षर सब से प्राचीन, होने के लिये इस में बहुत प्रमाण हैं। विदेशियों की सम्मति, युक्ति अच्छी है। पुस्तक अच्छा, काम का है।

राय देवीप्रसाद "पूर्ण" बी. ए. बी. एल. कानपुर—पुस्तक में अनेक भाषाओं के शब्दों और अनेक बड़े बड़े मज़हबों के मिलान से दिखला दिया गया है कि संसार की सब भाषाओं से प्राचीन भाषा वैदिक भाषा है और संसार के समस्त सभ्य मतों का आदि रूप वैदिक-मत है।

महात्मा मुंशीराम गुरुकुल कांगड़ी—पुस्तक पर अभी एक साधारण दृष्टि डाली है, पुस्तक उपयोगी प्रतीत होता है।

मास्टर आत्माराम एजुकेशनल इन्स्पेक्टर बड़ोदा—जहां तक मैंने इस पुस्तक को पढ़ा है उत्तम प्रतीत होती है और निस्सन्देह उपयोगी तथा विचारपूर्ण है।

ज. सी. स्वामीनारायण एम. ए. प्रोफ़ेसर गुजरात कालेज, अहमदाबाद—अक्षरों के अर्थ और रूप निकालने में कमाल किया गया है। भाषा-विज्ञान का ऐसा दूसरा ग्रन्थ देखने में नहीं आया। यह आर्य जाति का महान् उत्कर्ष सिद्ध करता है।

इनके अतिरिक्त बंगवासी, राजपूत, सत्य, सद्धर्मप्रचारक, आर्यमित्र, श्रीवेंकटेश्वर, निगमागमचन्द्रिका आदि पत्रों ने भी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है और भारतधर्म-महामण्डल ने ग्रन्थ-कर्त्ता को "साहित्यभूषण" की उपाधि से विभूषित किया है। मूल्य १) रुपया।

पता—**शूरजी वल्लभदास, बड़गादी**
मुम्बई।

बालभोजप्रबन्ध।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का साररूप यह "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

बाल-कालिदास।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल।) चार आने है।

भारतीय विदुषी।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

तारा।

यह नया उपन्यास है। बँगला में "शैशवसहचरी" नामक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुकरण पर इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद और सामाजिक है। यह बढ़िया टाईप में छापा गया है। २५० पेज की पोथी का मूल्य केवल ।।।=)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, अभी तक कहीं नहीं छपी। इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य।)

शकुन्तला नाटक।

कविशिरोमणि कालिदास के शकुन्तला नाटक को कौन नहीं जानता? संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। मूल्य १)

नूतनचरित्र।

(बाबू रामकृष्ण बी॰ ए॰ वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

हिन्दी-शेक्सपियर।

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर यारप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। उसी जगत्प्रसिद्ध कवि के नाटकों पर से ये कहानियाँ बिलकुल नये ढँग से लिखी गई हैं। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।।) आने है और छः हों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया।

कादम्बरी।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम संस्कृत-उपन्यास का अत्युत्तम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह वर्मा ने किया है। कलकत्ता की यूनिवर्सिटी ने इसको एफ० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। दाम ।।), सचित्र संस्करण में ।।।)

गीताञ्जलि।

मूल्य १) रुपया।

डाकृर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में बड़ा भारी आदर है; इस पुस्तक की अनेक कविताएँ बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बंग-भाषा-माधुर्य का रसास्वादन करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

षोडशी।

बँगला के प्रसिद्ध आख्यायिकालेखक श्री प्रभातकुमार बाबू की प्रभावशालिनी लेखनी से लिखी गई १६ आख्यायिकाओं का यह संग्रह बँगला में बड़ा प्रसिद्ध है। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। ये कहानियाँ हिन्दी में एकदम नई हैं, पढ़ने योग्य हैं। मूल्य ३२७ पृष्ठ की पोथी का १)

युगलांगुलीय।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास स्त्री, पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य =)

धोखे की टट्टी।

मूल्य ।=)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नौकरी और नेकचलनी और एक धनाढ्य लड़के की बदचलनी और बरबादी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय भाई इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, और कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास।

जिन्होंने "आरब्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार यह उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला बद्रीनाथ एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर राघव कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द्र कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

प्रेम

यह पुस्तक कविता में है। पण्डित मन्नन द्विवेदी बी० ए० गजपुरी को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। उन्हीं ने पाँच सौ पद्यों में एक प्रेम-कहानी लिख कर इसकी रचना की है। मूल्य ।) चार आने।

भाषा-पत्र-बोध।

यह पुस्तक बालकों और स्त्रियों के ही उप-योगी नहीं सभी के काम की है। इसमें हिन्दी में पत्रव्यवहार करने की रीतियाँ बड़ी उत्तम रीति से लिखी गई हैं। मूल्य –)॥

व्यवहार-पत्र-दर्पण।

काम-काज के दस्तावेज़ और अदालती काग़ज़ों का संग्रह।

यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आज्ञानुसार उसी सभा के एक सभासद् द्वारा लिखी गई है। इसमें एक प्रसिद्ध वकील की सलाह से अदालत के सैकड़ों काम-काज के काग़ज़ों के नमूने छापे गये हैं। इसकी भाषा भी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। इसकी सहायता से लोग अदालत के ज़रूरी कामों को नागरी में बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। क़ीमत ॥)

हिन्दी-व्याकरण।

(बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० कृत)

यह भी नये ढंग का व्याकरण है। इसमें भी व्याकरण के सब विषय अँगरेज़ी ढंग पर लिखे गये हैं। उदाहरण देकर हर एक विषय को ऐसी अच्छी तरह से समझाया है कि बालकों की समझ में बहुत जल्द आ जाता है। मूल्य ≡)

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक चीज़ है। मूल्य ।≈)

इन्साफ़-संग्रह—दूसरा भाग।

इसमें ३७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।≈) छः आने।

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार, जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा ।

[डाक्टर दम्मूलाल-सम्पादक पुस्तकावली सं० १]

जब किसी आदमी के चोट लग जाती है और शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है तब उसको बड़ा कष्ट होता है। जहाँ डाक्टर नहीं होते वहाँ और भी दिक्कत होती है। इन्हीं सब बातों को सोच कर, इन्हीं सब दिक्कतों के दूर करने के लिए, हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सब प्रकार की चोटों की प्रारम्भिक चिकित्सा, घावों की चिकित्सा और विषचिकित्सा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में आघातों के अनुसार शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की ६५ तसवीरें भी छाप कर लगा दी हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य ।।।)

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा ।

यह पुस्तक सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की लिखी हुई है। बिल्हण-कविरचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण-कवि की कविता के नमूने भी जहाँ तहाँ दिये हुए हैं। इनके सिवा इसमें बिल्हण-कवि का भी संक्षिप्त जीवनचरित लिखा गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य ≈)

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

बहराम-बहरोज़ ।

यह पुस्तक मुंशी देवीप्रसादजी, मुंसिफ़ की लिखी हुई है। उन्हों ने इसे तवारीख़ रोज़ेतुलसफ़ा से उर्दू भाषा में लिखा था, उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। उर्दू पुस्तक को यू० पी० के विद्याविभाग ने पसन्द किया, इसलिए यह कई बार छापी गई। अनेक विद्याविभागों में उसका प्रचार रहा। बहराम और बहरोज़ दो भाई थे। उन्हीं का इसमें वर्णन क़िस्से-रूप में है। तेरह क़िस्सों में यह पूरी हुई है। पुस्तक बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। लड़कों के बड़े काम की है। मूल्य ≈) तीन आने।

नाट्य-शास्त्र ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, आशय, जवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

लड़कों का खेल ।

(पहली किताब)

ऐसी किताब हिन्दी में आज तक कहीं छपी ही नहीं। इसमें कोई ८४ चित्र हैं। हिन्दी पढ़ने के लिए बालकों के बड़े काम की किताब है। कैसा ही खिलाड़ी बालक क्यों न हो और कितना ही पढ़ने से जी चुराता हो इस किताब से हिन्दी पढ़ना लिखना बहुत जल्द सीख सकता है। मूल्य ≈)।।

आरोग्य-विधान ।

नीरोग रहने के सुगम उपायों का वर्णन। मूल्य ≈)।।

बाला-पत्र-कौमुदी ।

मूल्य ≈) आने

इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

बालापत्रबोधिनी ।

इसमें पत्र लिखने के नियम आदि बताने के अतिरिक्त नमूने के लिए पत्र भी ऐसे ऐसे छपाये गये हैं कि जिनसे लड़कियों को पत्र आदि लिखने का तो ज्ञान होगाही, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायँगी। मूल्य ।≈)

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ॥)

सचित्र—शरीर और शरीर-रक्षा ।

मूल्य ॥) आठ आने

यह पुस्तक पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल एम० ए० की लिखी हुई है। इसमें शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। मनुष्य के स्वास्थ्य-सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये। पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

श्रीगौरांगजीवनी ।

मूल्य ≈) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गाल ही में नहीं भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे [illegible] धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भ[illegible] इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाप्र[illegible] जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। [illegible] साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; [illegible] वैष्णव-धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य ए[illegible] पढ़ना चाहिए।

यवनराजवंशावली ।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़)

इस पुस्तक में आप को यह विदित हो[illegible] कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्प[illegible] से हुआ। किस किस बादशाह ने किस[illegible] तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी [illegible] बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। बादशा[illegible] मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें [illegible] किया गया है। मूल्य ≈)

कालिदास की निरङ्कुशता ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्र[illegible] द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका के [illegible] "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक [illegible] प्रकाशित की थी वही पुस्तकाकार प्रकाशित [illegible] गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्त[illegible] मँगा कर अवश्य देखेंगे। मूल्य केवल ।) [illegible]

❀ ❀ ❀ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❀ ❀ ❀

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती ।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥।)

चारण ।

(एक पद्यमय कहानी)

जो लोग अँगरेज़ी साहित्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि Romantic poetry रोमेन्टिक कविता का उस भाषा में कितना प्रचार और आदर है। हिन्दी में ऐसी कथाओं का अभाव ही है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक नई पुस्तक है। इसका ढँग नया है और कथा बड़ी ही रोचक और सरल है। प्राकृतिक दृश्यों का मनोरंजक वर्णन, प्राचीन राजपूत-गौरव का निदर्शन तथा चारण की आत्म-जीवनी पढ़ने ही योग्य है। प्रेम के उद्गार, कृतज्ञता तथा स्वाभिमान से डूबे हुए पद्य पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक देखनी चाहिए। क्योंकि इसमें सबके काम की बातें और उनके पूर्वजों की अतीत काल की वीरता का वर्णन है। मूल्य केवल ≡)

पार्वती और यशोदा ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी गई हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा अच्छा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित कामता-प्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास लिख कर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार किया है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।=)

बाला-बोधिनी ।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हों जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों में बालाबोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

उपदेश-कुसुम ।

यह गुलिस्ताँ के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक और शिक्षा-दायक है। मूल्य =)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

श्रीयुत महाराजा दरभङ्गा नरेश, महाराजा अलीपुर, महाराजा मनीपुर आदि बड़े बड़े राजाओं से प्रशंसा प्राप्त
अलीगढ़ शहर के प्रसिद्ध खानदानी वैद्य, गवर्नमेन्ट संस्कृत परीक्षा पास

पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री की

वैद्यक शास्त्र के अनुसार अर्क रूप में स्वादिष्ट मीठी बनाई गई है। इसके पिलाने से बालक पुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं और सब रोगों से बचे रहते हैं। कमज़ोर बालक मोटे ताज़े और ताक़तवर हो जाते हैं। रोगी बालकों के ज्वर, अजीर्ण, दस्त, पेंठा, सर्दी, कफ, खाँसी, पसली चलना, दूध उलटना, पाख़ाने में कीड़े आमा, पेट बढ़ना, शरीर घटना और दाँत निकलने के सब विकार निश्चय आराम होते हैं। मूल्य फी शीशी ॥) डाक महसूल ।) एक दर्जन का ४॥) महसूल अलग देना होगा।

हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की अनोखी पुस्तकें

" अश्रुधारा "

यह बंगभाषा का अनुपम रत्न हिन्दी के सुलेखक पं० मन्मथनप्रसाद मिश्र द्वारा अनुवादित होकर अभी प्रकाशित हुआ है। यदि आप के हृदय में प्रेम है, यदि आप सत्प्रेम में डूबे हुए मनुष्य की वियोग-दशा का पूरा और सच्चा स्वरूप देखने की इच्छा रखते हैं, यदि आप प्रणयिनी-वियोग से उत्पन्न होने वाले समस्त भावों को जानना चाहते हैं तो अवश्य मँगाइये। पुस्तक के विषय इतने हृदय-ग्राही हुए हैं कि आप अपने ज़रूरी से ज़रूरी कामों और बढ़िया से बढ़िया उपन्यासों को छोड़ कर इसे पूरी बिना पढ़े कदापि न मानेंगे। मूल्य सिर्फ ।~) मात्र डाक महसूल ~)

श्रीमद् भगवद्गीता

गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामायण के ढंग पर दोहा-चौपाइयों में भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेश का आनन्द लेना है तो मँगाइये। इसे श्रीमान् बाबू सुशीलाल जी वकील ने बड़े परिश्रम से बनाया है मूल्य ॥) डाक महसूल ~)

ब्रह्मचर्य

यह निबन्ध पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री की ओजस्विनी भाषा का उत्तम शिक्षाप्रद नमूना है। यह इतना उत्तम हुआ है कि षष्ठ वैद्यसम्मेलन कलकत्ता से मेडिल इसी को प्राप्त हुआ था। कुमार, विद्यार्थी और नव-युवकों को अवश्य देखनी चाहिये। मूल्य ≈) डाक महसूल ~)

इङ्गलिशटीचर

इसकी सहायता से हिन्दी जाननेवाला भली भाँति इङ्गलिश लिख पढ़ और बोल सकता है। मूल्य १) डाकमहसूल ~)

पता—पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री, सुधावर्धक औषधालय नं० ७ अलीगढ़ सिटी।

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड २] अगस्त, १९१६ [संख्या २, पूर्ण संख्या २००

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची ।

पृष्ठ

चित्र-सूची ।

अक्षर-विज्ञान ।

इस पुस्तक में तीन प्रधान विषय हैं (१) इवोल्यूशन या विकासवाद की समालोचना। इसमें दिखलाया गया बन्दर से मनुष्य नहीं बन गया—किन्तु वह आदि सृष्टि में इसी रूप तथा ईश्वरीय वैदिक ज्ञान और भाषा के साथ [illegible] था। (२) वह भाषा वैदिक भाषा थी जिसमें संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, चीनी, और जापानी आदि भाषाओं के सैकड़ों शब्दों से सिद्ध किया गया है। (३) प्रत्येक अक्षर की ध्वनि से उसका अर्थ तथा रूप दिखलाया गया है।

इस पुस्तक की समालोचना भारत प्रसिद्ध पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने अगस्त सन् १९१५ ई० में इस प्रकार की है :—"आज, हमें एक ऐसी पुस्तक का परिचय पाठकों से कराना है जिसका अधिकांश बिलकुल नया है। जिसके लिखने में लेखक ने अपने दिमाग़ से बहुत कुछ काम लिया है, जिसमें जगह जगह पर लेखक की विद्वत्ता का प्रमाण मिलता है, जिसको लिखने के पहले लेखक को भिन्न भिन्न भाषाओं की अनेकानेक पुस्तकों का परिशीलन करना पड़ा है। अक्षर-विज्ञान नामक पुस्तक ऐसी ही है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखने के कारण लेखक महाशय को बहुत बहुत धन्यवाद। बेचारे डार्विन के कीर्ति-स्तम्भ पर लगातार प्रहार लगने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। प्रोफ़ेसर [illegible], [illegible] और मेडम [illegible] आदि के युक्ति-समूह रूपी गढ़ का ध्वंस करने के इरादे में थे ही कि अक्षर-विज्ञान के ये युक्तिवाद भी उनकी सहायता के लिये तैयार होकर निकल पड़े। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि अक्षर-विज्ञान के [illegible] अपने विषय का विशेष मनन किया है। उनकी विचारशक्ति और गवेषणाशक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है। उन्होंने यह लिख कर अपनी योग्यता और विचारशीलता का अच्छा परिचय दिया है। इस कारण हम साधुवाद से उनका अभिनन्दन करते हैं।

पं० भीमसेन शर्मा वेदव्याख्याता, कलकत्ता यूनीवर्सिटी.—यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है पढ़ने से वेद का महत्त्व मालूम होगा।

पं० तुलसीराम स्वामी, मेरठ—वेद सब से प्राचीन, वेद के अक्षर सब से प्राचीन, दोनों के लिए इसमें प्रमाण हैं। विद्वानों की सम्मति, युक्ति अच्छी है। पुस्तक अच्छा, काम का है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' बी. ए. बी. एल. कानपुर—पुस्तक में अनेक भाषाओं के शब्दों और अनेक मज़हबों के मिलान से दिखला दिया गया है कि संसार की सब भाषाओं में प्राचीन भाषा वैदिक भाषा है और ये समस्त सभ्य मतों का आदि रूप वैदिक-मत है।

महात्मा मुंशीराम गुरुकुल कांगड़ी—पुस्तक पर अभी एक साधारण दृष्टि डाली है, पुस्तक उपयोगी होती है।

ाधा दाम! आधा दाम!!

केवल एक महीने के लिये।

पसन्द न होने से मूल्य वापस।

हमारे नये चालान की रेलवे रेगुलेटर वाच, देखने में सुन्दर, मज़बूत, और सफ़रियों के लिए बड़ी ही उपयुक्त है। मूल्य ७) अभी आधा ३॥)। सुपिरियर निकल सिलवर वाच, असली दाम ११) रु० अभी ५॥), अठ-[illegible]ड़ी वाच (हफ्ते में एक दफ़े चाभी की) असली [illegible]ाम १८) अभी ९), सोने की छोटे साइज़ की असली [illegible]० ३२) अभी १६), कलाई में बांधने की घड़ी चमड़े [illegible]हित व० दा० १०) अभी ५), हर एक घड़ी के [illegible]ाथ एक चेन और ६ घड़ी एक साथ लेने से एक [illegible]ड़ी इनाम दी जाती है।

फूटबाल।

मुफस्सिल वासियों का अनेक दिन का अभाव दूर करने के लिये हमने अनेक प्रकार के फूटबाल मँगाये हैं। आशा है इससे स्कूल, कालेज के विद्यार्थियों का अभाव दूर हो जायगा। इसके भीतर का रबड़ का ब्लाडर और बाहर का चमड़ा खूब मज़बूत तथा सुन्दर है। जल्दी खराब होने का बिल्कुल डर नहीं। दाम १नं० ३), २नं० ४), ३ नं० ५), ४ नं० ६), ५ नं० ७॥), पीतल का पम्प २॥).

पता—कम्पीटीशन वाच कम्पनी

२५ नं० मदनमित्र लेन, (S) कलकत्ता।

तिनके की ओट पहाड़।

यदि आप सहज में ही तरह तरह के सुख भोगना तथा अनेकानेक प्रकार के लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो परमोपयोगी अद्भुत आठ रत्न-मंत्र-सिद्धि (१ अमरजंत्री, २ मुद्रित धूपबत्ती, ३ धंधक का हिपारा, ४ विजयी कवच, ५ कायापलट, ६ विलास रहस्य, ७ प्रेमप्रसार, ८ अनुभवता) आठ पर्चे हम से मँगाकर अपने मनोरथ शीघ्र पूर्ण कर लीजियेगा। मूल्य ॥) आठ आना मात्र डाकव्यय ≈) दो आना।

किताब नमूना 'हँसीघर' मुफ़्त मिलेगा।

मँगाने का पता—हितैषीकार्यालय आगरा (AGRA)

शारदा

यह उपन्यास शिवनाथ शास्त्री के 'मेजबउ' का अनुवाद है। बँगला में ११ बार छप चुका है। बहुत उत्तम, शिक्षाप्रद और स्त्रियोपयोगी है। मू० ।≈)।

जननी जीवन—प्रत्येक माता या माता बननेवाली जननी के पढ़ने योग्य। मू० ।≈), भारतीय नीतिकथा ॥), आदर्शचरितावली ।−), मेरे गुरुदेव ।), स्वर्गीयजीवन ॥≈), अमेरिका का व्यवसाय ।≈), प० कुसुमांजलि −), महेन्द्रकुमार नाटक ॥), मोहनी ≈), जननी ।−), स्वर्ग के रत्न १), कृपकक्रन्दन −)॥, भारतभारती १), उपवासचिकित्सा ॥≈), आदि—

पता—हिन्दी-हितैषी कार्यालय, देवरी (सागर) सी०पी०

नकली से सावधान। असली खरीदिये। असली वही है जिनकी उम्दगी और मज़बूती पर बहुत से प्रशंसापत्र (सार्टीफिकट) आदि मिल चुके हैं। पसंद न हों तो दाम वापिस।

हाथरस के असली पक्के चाकू विलायती चाकुओं से अच्छे, सस्ते और मज़बूत हैं की० लकड़ी मूठ ॥) ।−) ।) ≈)॥ −)॥ चंदन मूठ ॥−) ।≈) ।−) ।) ≡) ≈)॥ ≈) सरोता ।≈) ॥) ।≈) उस्तरा ॥) ।≈) ।) सूचीपत्र मंगा देखिये।

पता—भारतहितकारी का० नं० ७१, हाथरस

हाथरस सिटी० Hathras, U. P.

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती ।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ।।।)

न्यारा ।

(एक पद्यात्मक कहानी)

जो लोग अँगरेज़ी साहित्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि Romantic poetry रोमेन्टिक कविता का उस भाषा में कितना प्रचार और आदर है। हिन्दी में ऐसी कथाओं का अभाव सा है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक नई पुस्तक है। इसका ढँग नया है और कथा बड़ी ही रोचक और सरल है। प्राकृतिक दृश्यों का मनोरंजक वर्णन, प्राचीन राजपूत-गौरव का निदर्शन तथा न्यारा की आत्म-जीवनी पढ़ने ही योग्य है। प्रेम के उद्गार, कृतज्ञता तथा स्वाभिमान से डूबे हुए पद्य पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक देखनी चाहिए। क्योंकि इसमें सबके काम की बातें और उनके पूर्वजों की अतीत काल की वीरता का वर्णन है। मूल्य केवल ≡)

पार्वती और यशोदा ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी गई हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा अच्छा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित कामता-प्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास लिख कर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार किया है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।≈)

बाला-बोधिनी ।

(पांच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों में बालाबोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।≈), है।

उपदेश-कुसुम ।

यह गुलिस्तां के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक और शिक्षा-दायक है। मूल्य ≈)

चित्रकला, संगीतविद्या और कविता, इनमें देखा जाय तो
बहुत ही लगाव मिलेगा। जैसे अच्छे कवि की कविता मन को मोह
है, अच्छे गवैये का संगीत हृदय को प्रफुल्लित कर देता है वैसेही
चित्रकार का बनाया चित्र भी सहृदय को चित्र-लिखित सा बना देत
बड़े बड़े लोगों के चित्रों को भी सदा अपने सामने रखना परम उप
होता है। ऐसे उत्तम चित्रों के संग्रह से अपने घर को, अपनी बैठ
सजाने की इच्छा किसे न होगी ? अच्छे चित्रों को बनानेवाले ही ए
कम मिलते हैं, और अगर एक आध खोज करने से मिला भी तो
बनवाने में एक एक चित्र पर हज़ारों की लागत बैठ जाती है। इस
उन को बनवाना और उनसे अपने भवन को सुसज्जित करने की अभि
पूर्ण करना हर एक के लिए असंभव है। हमारे यहाँ से प्रकाशित
वाली सरस्वती मासिक पत्रिका में जैसे सुन्दर मनोहर चित्र निकल
सो बतलाने की ज़रूरत नहीं है। हमने उन्हीं चित्रों में से उपयोगी
चुने हुए कुछ चित्र (बँधा कर रखने के लायक़) बड़े आकार में छपवाये
चित्र सब नयनमनोहर, आठ आठ दस दस रंगों में सफ़ाई के साथ छपे
एक बार हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। चित्रों के नाम,
और परिचय नीचे लिखा जाता है। शीघ्रता कीजिए, चित्र थोड़े ही छपे हैं।

शुक-शूद्रक-परिचय

(१४ रंगों में छपा हुआ)

आकार—१०½"×१०" दाम १) रु०

संस्कृत कादम्बरी की कथा के आधार पर यह चित्र बना है। महा प्रतापी शूद्रक राजा की भारी भव्य सभा लगी हुई है। एक परम सुन्दरी चाण्डाल-कन्या राजा को भेंट करने के लिए एक तोते का पिंजड़ा लेकर आती है। तोते का मनुष्य की वाणी में आशीर्वाद देना देख कर सारी सभा चकित हो जाती है। उसी समय का दृश्य इसमें दिखाया गया है।

शुक-शूद्रक-संवाद

(१४ रंगों में छपा हुआ)

आकार—११"×१८½" दाम १) रु०

संस्कृत कादम्बरी की कथा के आधार पर यह चित्र भी बना है। इस चित्र में राजभवन—[illegible] का दृश्य बहुत अच्छे ढंग से दिखाया गया है। शूद्रक बैठा है। रानियाँ बैठी हैं। [illegible] है। चाण्डालकन्या के दिये हुए तोते [illegible] के वार्तालाप करने का सुन्दर दृश्य दिखाया [illegible]

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भक्ति-पुष्पांजलि

आकार—१३½" × १२" दाम ॥-)

एक सुन्दरी शिवमन्दिर के द्वार पर पहुँच गई है। सामने ही शिवमूर्ति है। सुन्दरी के साथ एक बालक है और हाथ में पूजा की सामग्री है। इस चित्र में सुन्दरी के मुख पर, इष्टदेव के दर्शन और भक्ति से होने वाला आनन्द, श्रद्धा और सौम्यता के भाव बड़ी ख़ूबी से दिखलाये गये हैं।

चैतन्यदेव

आकार—१०½" × ९" दाम ।-) मात्र

महाप्रभु चैतन्यदेव बंगाल के एक अनन्य भक्त वैष्णव हो गये हैं। वे कृष्ण का अवतार और वैष्णव धर्म के एक आचार्य माने जाते हैं। वे एक दिन घूमते विचरते जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ गरुड़स्तम्भ के नीचे खड़े होकर दर्शन करते करते वे भक्ति के आनन्द में बेसुध होगये। उसी समय के सुन्दर दर्शनीय भाव इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

बुद्ध-वैराग्य

आकार—१८३" × ११" दाम २) रु०

संसार में अहिंसा-धर्म का प्रचार करने वाले महात्मा बुद्ध का नाम जगत् में प्रसिद्ध है। उन्होंने राज्यसम्पत्ति को लात मार कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इस चित्र में महात्मा बुद्ध ने अपने राज-चिह्नों को निर्जन में जाकर त्याग दिया है। उस समय के, बुद्ध के मुख पर, वैराग्य और अनुचर के मुख पर आश्चर्य के चिह्न इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

अहल्या

आकार—१३½" × १८३" दाम १) रु०

गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या अलौकिक सुन्दरी थी। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक फूल हाथ में लिये खड़ी कुछ सोच रही है। सोच रही है देवराज इन्द्र के सौन्दर्य को—उन पर वह मोहित सी हो गई है। इसी अवस्था को इस चित्र में चतुर चित्रकार ने बड़ी कारीगरी के साथ दिखलाया है।

शाहजहाँ की मृत्युशय्या

आकार—१४" × १०" दाम ॥)

शाहजहाँ बादशाह को उसके कुपथी बेटे औरंग-ज़ेब ने धोखा देकर क़ैद कर लिया था। उसकी प्यारी बेटी जहाँनारा भी बाप के पास क़ैद की हालत में रहती थी। शाहजहाँ का मृत्युकाल निकट है, जहाँ-नारा सिर पर हाथ रक्खे हुए चिन्तित हो रही है। उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है। शाहजहाँ के मुख पर मृत्युकाल की दशा बड़ी ही ख़ूबी के साथ दिखलाई गई है।

भारतमाता

आकार—१०½" × ९" दाम ।-)

इस चित्र का परिचय देने की अधिक आवश्य-कता नहीं। जिसने हमको पैदा किया है, जो हमारा पालन कर रही है, जिसके हम कहलाते हैं, और जो हमारा सर्वस्व है उसी जननी जन्मभूमि भारत-माता का तपस्विनी वेष में यह दर्शनीय चित्र बनाया गया है।

मुसल्मान आक्रमणकारी दिल्ली के स्वामी बने तब हिन्दू क्या करते रहे ? मुग़लों के साथ बर्ताव करने में हिन्दुओं की क्या नीति थी ? उसमें क्या दोष और क्या गुण थे ? अन्ततः हिन्दुओं में ऐसी क्या चीज़ थी जिससे हिन्दू प्रबल हो गये और उन्होंने मुग़लों से अपना राज्य छीन लिया ? सारांश यह कि उन पुस्तकों में मुख्य बात यह न होनी चाहिए कि भारत में कौन आये और उन्होंने कैसा बर्ताव किया, बल्कि यह लिखा होना चाहिए कि यहाँ के निवासियों ने नवागतों के साथ कैसा बर्ताव किया और उसका प्रभाव देश-वासियों पर क्या हुआ ?

हमारे इतिहास पर जितनी पुस्तकें आज कल प्राप्य हैं उनमें से किसी में भी उपर्युक्त बातें नहीं मिलतीं। इतिहास के ये ग्रन्थ आक्रमणों की भरमार, दलबन्दी की कहानियों और अत्याचारों के लम्बे चौड़े वर्णनों से भरे पड़े हैं। उनमें राजाओं के नामों, उनके जन्म-मरण की तिथियों और देवी-देवताओं के अपमान-सूचक क़िस्सों ही की भरमार है। उनमें भारत की धर्म्म-बुद्धि के विकास का कहीं नाम भी नहीं। हमारे नव-युवकों के हाथ में तो ऐसी पुस्तकें आनी चाहिए जिन्हें किसी सच्चे भारतवासी ने पूर्वोक्त लक्ष्यबिन्दु पर ध्यान रख कर लिखा हो।

आचार, सुधार और नीति-शिक्षा के लिए भी इतिहास की परम आवश्यकता है। ऐतिहासिक घटनायें भिन्न नैतिक नियमों की दृष्टान्त-दर्शक होती हैं उनको ढूँढ निकालने से पाप और पुण्य, केवल यही दो शब्द नहीं रह जाते, जिनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु आँधी और तूफ़ान से भी बढ़ कर कोई बड़ी वस्तु मालूम होने लगती है। सदाचार, देश-भक्ति और धर्म्म सच्चों के मित्र और झूठों के शत्रु दिखाई देने लगते हैं। औरङ्गज़ेब के जीवन के अन्तिम काल का प्रहस्त आताप मराठों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करना ही नहीं, किन्तु पक्षपात और असहिष्णुता का कड़वा फल भोगना है। अकबर द्वारा चित्तौड़ की लूट पर मुग़ल-साम्राज्य के विस्तार से सम्बन्ध रखने [illegible] उपाख्यान मात्र नहीं, किन्तु उन वीरों [illegible] कलाप-वर्णन से सम्बन्ध रखने वाला [illegible] महाकाव्य है जो प्रबल शत्रु के मुक़ाबले [illegible] आपस की फूट को नहीं भूल सके। मुग़ल [illegible] का पतन एक ऐसे वंश की अपरिहार्य [illegible] जिसने राज-काज से मुख मोड़ कर विषय-[illegible] ही महान् अन्तिम साध्य समझा था। [illegible] इतिहास की प्रत्येक घटना से व्यक्तियों और [illegible] को शिक्षा मिलती है। ऐसी ही शिक्षा देना [illegible] का प्रधान कर्तव्य है।

सन्तराम, बी० ए०

नेपाली भाषा।

यों तो नेपाल में कितनी ही [illegible] बोली जाती हैं, पर उनमें [illegible] तीन ही हैं—(१) नेवारी। [illegible] भोटिया और (३) गोरखा [illegible] यही तीन भाषायें [illegible] परिमाण में यहाँ विशेष रूप से प्रचलित [illegible] नेवारी-भाषा के बोलने वाले नेपाल नगर [illegible] में बहुत हैं। नेपाल के उत्तरी और पूर्वी [illegible] के निवासी भोटिया-भाषा बोलते हैं। पर [illegible] भाषा असभ्यों की भाषा समझी जाती है। [illegible] गोरखा-भाषा का हाल सुनिए—

गोरखा-भाषा ही नेपाल की प्रधान भाषा [illegible] राजा तथा प्रजा के सब काम इसी भाषा में [illegible] हैं। नेपाल को जीत कर जब गोरखालियों ने [illegible] माण्डू को अपनी राजधानी बनाया तभी से [illegible] गोरखा-भाषा कहलाने लगी। इसकी उत्पत्ति [illegible] वाली संस्कृत से हुई जान पड़ती है। क्योंकि [illegible] और नेपाली भाषा के शब्दों में बहुत कुछ [illegible]

मानोप्लेन (१) (एकही सतह का वायुयान)
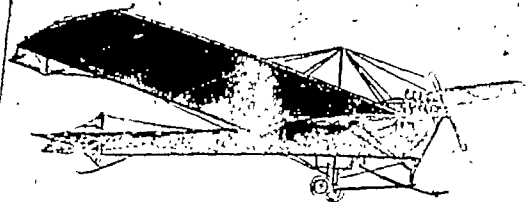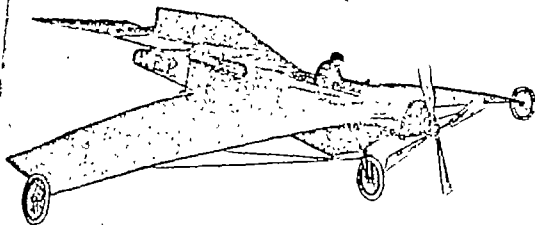
मानोप्लेन (२) दूसरा ढंग।

पड़ता है। नेपाली-भाषा के साहित्य में काफ़ी
द-समूह नहीं। अतएव बँगला, उर्दू, हिन्दी,
कृत इत्यादि भाषाओं के कितने ही शब्द इसमें
ा जाते हैं।

कहा जाता है कि कोई साठ वर्ष पूर्व तक इस
षा में कोई ग्रन्थ न था। विक्रम-संवत् १९११
महाराज सर जङ्गबहादुर ने नेपाली भाषा
क़ानून की पुस्तकों का अनुवाद कराया। उस
वर्ष भी इस भाषा में १००—५० फुटकर पद्यों
छोड़ कर साहित्य-सम्बन्धी एक भी ग्रन्थ न
।इसी समय नेपाली-भाषा के आदि-कवि
नुभक्ताचार्य्य, किसी कारण, नेपाल-सरकार
कोपपात्र हुए। अतएव आप को ४ महीने तक
वालात में रहना पड़ा। उस दशा में आपने
पाली-भाषा में रामायण के तीन काण्ड सानुप्रास
लोक-बद्ध लिखे। लिख कर आपने नेपाल-राज्य
तत्कालीन चीफ़ साहब, कृष्ण-बहादुर-जङ्ग
ना को भेंट किये। चीफ़ साहब ने आपकी रचना-
क्ति की ख़ूब प्रशंसा की। तब आप ही की सहा-
ता से कविजी हवालात से छूटे। छूट कर रामा-
ण के शेष काण्ड भी आप ने लिख डाले। पर उस
मय यह ग्रन्थ न छप सका। इस कारण उसका
चेष्ट प्रचार न हुआ। पीछे—संवत् १९४८ में—उदार
श्री मोतीराम भट्ट ने पूर्वोक्त रामायण को छपा कर
काशित किया। लोगों ने उसे ख़ूब आदृत किया।
मोतीराम भट्ट ने आदि-कवि का जीवन-चरित और
नके लिखे अन्यान्य निबन्धों को भी प्रकाशित
किया। मोतीराम भट्ट नेपाली-साहित्य के प्रतिभा-
शाली कवि थे। आपने कितने ही रोचक प्रबन्धों की
रचना की। गद्य-लेख और सङ्गीत-साहित्य का प्रचार
नेपाल में सब से पहले आप ही ने किया। खेद है,
आप अल्पवय में ही स्वर्ग-सदन को सिधार गये।

आपके पश्चात् नेपाल में कई कवि हुए।
उन्होंने उपयोगी ग्रन्थ भी लिखे। नेपाल के पाशुपत
प्रेस ने ऐसे कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित किये।
काशी के पण्डित हरिहरजी ने भी कुछ ग्रन्थों को
प्रकाशित किया। इसी समय काशी में "रसिक-
समाज" की स्थापना हुई। सुन्दरी नाम की एक
मासिक पत्रिका भी इस समाज ने निकाली; पर अब
न यह समाज ही जीवित है और न पत्रिका ही।
समाज के निर्माण के तीन ही साल बाद पत्रिका भी
बन्द हो गई। परन्तु यह पत्रिका नेपाली समाज में
कितने ही लेखक उत्पन्न कर गई।

बम्बई से पण्डित हरिहरजी ने गोरखा-ग्रन्थ-
रत्नाकर-कार्य्यालय स्थापित करके बहुत से उप-
योगी ग्रन्थ निकाले। इस कार्यालय से माधवी नाम
की एक मासिक पत्रिका का भी जन्म हुआ था। पर
यह भी, खेद है, मृत्यु को साथ ही लेती आई थी।

नेपाली-साहित्य दिन पर दिन उन्नति करता
गया। पर व्याकरण, पिङ्गल अथवा काव्य-शास्त्र पर
अब तक कोई पुस्तक न लिखी गई थी। अतएव
कवि मनमानी उच्छृङ्खलता और निरङ्कुशता से
काम लिया करते थे। यह देख कर कलकत्ता-विश्व-
विद्यालय ने घोषणा कर दी कि जब तक व्याकरण
आदि के उचित नियम न बन जायँ नेपाली भाषा
विश्वविद्यालय में स्थान न पावे। बस, फिर क्या
था, व्याकरण-रचना होने लगी। अब तक दो व्याक-
रण प्रकाशित भी हो चुके हैं—(१) श्रीहेमराज
पण्डित का बनाया चन्द्रिका नामक सोपपत्तिक
बृहद् व्याकरण और (२) पण्डित विश्वमणि का
लिखा हुआ गोरखा-भाषा का व्याकरण। व्याकरण-
सम्मत लेख लिखे जाने के उद्देश से हमारे साहित्य-
प्रेमी महाराज सर चन्द्रशमशेरजङ्ग बहादुर राना
ने एक साहित्य-समिति स्थापित की है। इस प्रबन्ध
से अब नेपाली भाषा में व्याकरण-सम्मत लेख लिखे
जाने लगे हैं। अतएव, आशा है, यह भाषा फिर से
कलकत्ता-विश्वविद्यालय में स्थान पा जायगी।

नेपाली भाषा अब प्रति दिन उन्नति कर रही

है। उसके भिन्न भिन्न अङ्गों की पूर्ति के लिए लोग सचेष्ट हैं। कुछ समय से काशी में एक नेपाली पुस्तकालय खुला है। यह नेपाली भाषा की उन्नति का प्रमाण है।

इस समय नेपाली भाषा में चार सामयिक पत्र निकल रहे हैं—(१) गोरखा नेपाल से (२) गोरखालि बनारस से (३) गोरखे और (४) ... दार्जिलिङ्ग से। नेपाल में ८ मुद्रणालय—... हैं। उनसे नई नई पुस्तकें प्रकाशित हुआ ...

दीपकेश्वर शर्मा ...

अकृतज्ञता ।

(१)

जिसने जीवन-दान दिया जग में अपनाया, सुख-साधन सब दिये कहो क्या नहीं बनाया ।
जिसने बुद्धि दे मार्ग समुन्नति का दिखलाया, सोच समझ सब तर्क समीक्षा यह सिखलाया ॥
जिसका यह संसार है, जिसने दी यह देह है ।
उसके ही अस्तित्व में कभी कभी सन्देह है ।

(२)

जिसकी रज में लोटे बढ़े जिसका रस पीके, जिसमें पाकर पवन प्रकाश पड़े न फीके ।
पालित पोषित हुए पुष्ट बन जिस अवनी के, जिसने पूरे किये हौसले सारे जी के ॥
उसे भूल कर भी कभी करते दिल से याद हैं ?
हा उसकी सब नेकियाँ भूल हुईं बरबाद हैं ।

(३)

शिशु कुछ था असमर्थ न चल फिर भी सकता था, पड़ा मूढ़ सा मौन पराया मुख तकता था ।
तब जिसने मुख चूम चूम कर हृदय लगाया, प्रेम-मत्त हो झूम झूम कर हृदय बसाया ॥
जननी का वात्सल्य वह सारे सुख का मूल है ।
पापिष्ठे अकृतज्ञता तू अनर्थ की मूल है ॥

(४)

जिससे सन्तत प्रीति-रीति पथ कर प्रतिपाली, जिसके होकर रहे आज भोगों में डाली ।
गिरा पसीना जहाँ वहाँ पर लहू गिराया, किन्तु कृतघ्न यह हाय! अन्त में हमने पाया ॥
पिता वत्स की बात में इस प्रकार वे फिर गये ।
जामे से बाहर हुए मनुष्यत्व से गिर गये ॥

(५)

पकड़ पकड़ कर हाथ ककहरा जिन्हें सिखाया, बैठा कर के बातचीत का ढंग सिखाया ।
शुभ-चिन्तक बन सदा सुपथ जिनको दिखलाया, इति उनको यह कभी कि पथ जिनको दिखलाया ॥
ऐसी पट्टी पढ़ गये करते स्वयं पाठ हैं ।
आज इसी से कह रहे सोलह दूने आठ हैं ॥

(६)

बुरा समझ कर जिन्हें बहुत बन्दगी बजाई, पाँव-दबा कर "जी हुजूर" की झड़ी लगाई ।
बन कर दास गुलाम रहे जिनका मुख तकने, खुशामदों से रहे सदा जिनका रुख तकने ॥

वे ही बनते शत्रु हैं यत्न नहीं है दर्प का।
हे विधि ऐसा था उचित रूप बनें बस सर्प का ॥

(७)

करके खेती विविध धान्य जो उपजाते हैं, कष्ट सहन कर काम निरन्तर जो पाते हैं।
जो माने नहीं जानते पूछा पता, करते फिर भी मार मार उनका सर गता ॥
हा! हा! यह जड़ भरत से क्या न कृपा के पात्र हैं?
किन्तु जानते लोग बस इन्हें सताना मात्र हैं।

(८)

देख दशा यह महा हृदय को क्लेश हुआ है, कृतघ्नता से पूर्ण हाय यह देश हुआ है—
जहाँ दया उपकार परम कर्त्तव्य, धर्म थे, जहाँ शील, सौजन्य सतत स्वीकृत सुकर्म थे ॥
जहाँ शान्ति, सुख, प्रेम के भवन हुए निर्म्मेय थे।
जहाँ स्वल्प उपकार का मूल्य एक बस प्राय थे ॥

(९)

अहो विधाता! कहो रहो मत मौन साथ के, कार्म्य मात्र कम नहीं कुटिल हैं एक बात के।
रसाभास में तुम्हें कहो क्या रस मिलता है? रच कर ऐसे मनुज कौन सा फल मिलता है?
माना हमने यह कि यह नीच नरों का काम है।
किन्तु हुआ क्या आपका नाम नहीं बदनाम है?

(१०)

अहो पितामह! इस मत के भ्रम में न फँसाओ, जो न बने तो नर न रचो कुछ और बनाओ।
जो मनुष्य ही करो न कुछ सम्बन्ध लगाओ, होवे जो सम्बन्ध तो न अवसर यह लाओ—
साथ किसी के किसी का कोई जब उपकार हो।
हो ऐसा तो साथ ही कृतघ्नता से प्यार हो ॥

"सनेही"

अँगरेज़ों के लिए भारतवर्ष-विषयक ज्ञान की आवश्यकता।

मदरास से अँगरेज़ी में एक मासिक पत्र निकलता है। उसका नाम है—इंडियन रिव्यू। उसमें पण्डित श्यामशङ्कर, एम, ए०, बारिस्टर-एट्-ला की एक वक्तृता प्रकाशित हुए कुछ समय हुआ। उसकी बातें बड़े काम की हैं। इस कारण उसका मतलब थोड़े में सुन लीजिए—

भारतवर्ष में अँगरेज़ों का राज्य है। इस कारण अँगरेज़ों को इस देश के निवासियों का जितना ही अधिक ज्ञान होगा उतना ही अधिक सुभीता होगा। भारत-वासियों के विषय में यथेष्ट ज्ञान होने से शासन-सम्बन्धिनी बहुत सी कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। जब तक राजा को प्रजा का पूर्ण ज्ञान नहीं होता तब तक उसे पद पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शासकों के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वे प्रजा के रीति-रिवाजों को जानें, उनकी मनो-वृत्तियों को पहचानें और उनमें कौन दोष और कौन गुण हैं, इससे अभिज्ञ

न रहें। बिना इन बातों को जाने शासन करना वैसा ही कष्ट-साध्य है जैसा कि काँटे बिछे हुए कँकरीले पहाड़ पर अन्धे आदमियों का चढ़ना।

बिलायत में कितने ही लोगों का यह ख़याल है कि भारतवासी असभ्य हैं। कितने ही तो इतना भी नहीं जानते कि अमुक मनुष्य हिन्दू है या मुसल्मान। भारत-वर्ष-विषय का अज्ञान यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा है कि पार्लियामेंट के कुछ ही मेम्बर यह जानते होंगे कि हमारे देश में युक्त-प्रान्त कहाँ पर है और बनारस तथा लखनऊ किस लिए प्रसिद्ध हैं।

बिलायत में एक बात और भी होती है। उसका ख़याल करके दुःख होता है। वह यह है कि वहाँ कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भारतवर्ष के विषय में अकारण ही भ्रमपूर्ण बातें फैलाते हैं। इससे भी बिलायत वालों का चित्त भारतवर्ष के विषय में कलुषित हो जाता है। इससे बड़ी हानि होती है।

इस सारे भ्रम को दूर करने के लिए इन बातों की बड़ी आवश्यकता है—

बिलायत वालों को भारतवासियों के रीति-रिवाज अच्छी तरह जान लेना चाहिए। उन्हें ऊपरी बातों को ही जान कर सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए, हर बात की तह तक पहुँचने और तत्त्व को जानने की चेष्टा करनी चाहिए। बड़ी बड़ी परीक्षायें पास करके जो लोग बिलायत से भारतवर्ष आते हैं और यहाँ ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत किये जाते हैं वे बहुधा भारतीय सभ्यता से बिलकुल ही अनभिज्ञ रहते हैं। उन्हें भारत के प्राचीन गौरव, कला-कौशल, साहित्य-सम्पत्ति और सामाजिक सङ्गठन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। इसका ज्ञान-सम्पादन करके उन्हें यहाँ आना चाहिए।

पार्लियामेंट के कितने ही मेम्बर यह समझते हैं कि भारतवासियों को एक-तन्त्र-शासन की पद्धति ही अधिक पसन्द है। परन्तु उनका यह ख़याल ठीक नहीं। भारतवर्ष ने स्वेच्छाचारी राजा कभी पसन्द नहीं किया। यहाँ के राजा सदा नियमानुसार शासन करते रहे हैं। उनके शासन के नियम मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि में जो चाहे अब भी देख सकता है। ये नियम सदा एक से न रहते थे रिवाज और आवश्यकता के अनुसार उनमें परिवर्तन हुआ करता था। यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिता—मनमानी—करता था तो विद्वान् ब्राह्मण मिल कर वैसा करने से उसे रोक देते थे। यहाँ तक कि कितने ही स्वेच्छाचारी राजा सिंहासन से भी उतार दिये गये थे।

भारत की साम्पत्तिक स्थिति का ज्ञान सम्पादन करना भी बिलायत वालों के लिए बहुत आवश्यक है। हमारे देश में अत्यन्त उपयोगी चीज़ें पैदा होती हैं। परन्तु विदेशी प्रति-स्पर्द्धा के कारण हमें उद्योग-धन्धों में यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त होती। इस दशा में भारत के उद्योग-धन्धे की उन्नति के लिए बिलायत वालों को हमारी सहायता करनी चाहिए। बिना उनकी सहायता के प्रति-स्पर्द्धा के दबाव से यह देश नहीं बच सकता और जब तक प्रतिस्पर्द्धा बेरोक टोक चली जायगी तब तक इस सम्बन्ध में विशेष उन्नति होना असम्भव सा है।

बिलायत से बड़े बड़े विद्वान् अध्यापक बना कर यहाँ भेजे जाते हैं। वे शेक्सपियर के नाटक और मिल्टन के काव्य हमें पढ़ाते हैं। परन्तु ऐसी पढ़ाई से हम लोगों को बहुत कम लाभ पहुँचता है। हमें तो कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय आदि की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए। काव्य और नाटक पढ़ने और योरप के बड़े बड़े तत्त्ववेत्ताओं के ग्रन्थ चाट जाने से भारत-वासियों की भूख नहीं मिट सकती।

भारत का धर्म क्या है और कैसा है तथा समाज का सङ्गठन यहाँ किस आधार पर किया गया है, इन बातों को जानने की भी बिलायत वालों को बड़ी आवश्यकता है। इनको न जानने से आज तक न मालूम कितनी भूलें हुई हैं और आगे भी होंगी
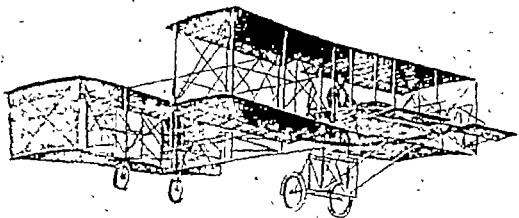
बाई-प्लेन (१) (दो सतहों का वायुयान)

बाई-प्लेन (२) दूसरा ढंग।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
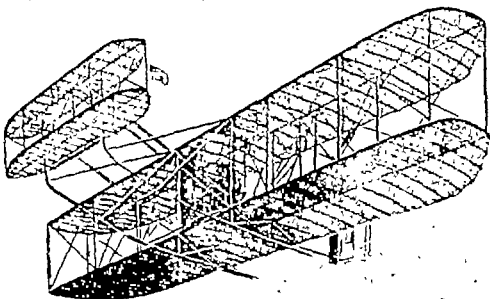
की सम्भावना है। भारतवर्ष के धार्मिक भावों और धार्मिक सम्प्रदायों में ऐसी कितनी ही बातें हैं जिनको जाने बिना मतमतान्तर के झगड़ों का न्याय-सङ्गत निपटारा हो ही नहीं सकता।

विलायत वालों को भारतवर्ष की भाषाओं का यथेष्ट ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। जो लोग यहाँ विलायत से बड़े बड़े पदों पर नियत होकर आते हैं उनमें से कितने ही यहाँ की भाषा बिल्कुल ही नहीं समझते। जो थोड़ा बहुत समझते भी हैं वे अच्छी तरह बोल नहीं सकते। उनकी टूटी फूटी हिन्दी या हिन्दुस्तानी उनके खानसामा और बहरे के सिवा और कोई नहीं समझ सकता। यदि ऐसे अधिकारियों के कारिन्दे और कारकुन इस देश के पढ़े लिखे लोग न हों तो इनका काम न चले। भारत-वासी काम-काज में इन अधिकारियों की सहायता भी करते हैं और दुभाषिये का भी काम देते हैं। सोचने की बात है कि अधिकारी यदि यहाँ की भाषा अच्छी तरह न समझेंगे तो यहाँ वालों के दुःख और कष्ट की बात वे समझ कैसे सकेंगे?

इस दुरवस्था को किसी हद तक दूर करने के लिए विलायत के विश्व-विद्यालयों की प्रवेश-परीक्षा के नियमों में सुधार होना चाहिए। जो लोग उनमें प्रवेश पाना चाहें उनके लिए भारत की प्रधान भाषा हिन्दी अनिवार्य्य कर दी जाय।

दूसरी बात यह है कि जो अफ़सर भारतवर्ष आवें वे भारत-वासियों से परिचय बढ़ाने का यत्न करें। बिना उनसे परिचय किये और उनके साथ खुल कर बात-चीत किये आपस में हेल-मेल नहीं बढ़ सकता। परस्पर आलाप करने से एक दूसरे का हाल अच्छी तरह मालूम हो जाता है। अतएव कभी भ्रम होने का डर नहीं रहता।

अँगरेज़ी राज्य से भारत ने बहुत लाभ उठाया है। इस पर उसकी भक्ति है। क्योंकि इस राज्य का आधार न्याय और नीति की अचल भूमि है। इतना विस्तृत राज्य पृथ्वी पर दूसरा नहीं। इसीसे भारत-वासियों को इस बात का अभिमान है कि ऐसे प्रताप-शाली राज्य से हमारा सम्बन्ध है। अतएव विलायत वालों को चाहिए कि वे भारत के विषय में सभी ज्ञातव्य बातें जान लें, जिससे भारत और ब्रिटिश जाति का सम्बन्ध दिन पर दिन अधिक सुदृढ़ होता जाय।

बालकृष्ण नारायण मुधोलकर

वर्षा और निर्धन।

काली काली घटा निराली घिर घिर आती,
बरस बरस कर अपना अनुपम रङ्ग दिखाती।
हरी भरी धरती ने होकर पानी पानी,
हरियाली के मिस से धानी चादर तानी ॥ १ ॥
रुचिर चमेली के फूलों की सेज सजाई,
जुगनूरूपी दीप-शिखा ने शोभा पाई।
रङ्ग-बिरङ्गे धरे धरा ने रूप मोहने;
उत्कण्ठित हो लगी जलद की बाट जोहने ॥ २ ॥
कोकी कोकी बोल बतावें लगीं कूजने,
चमक दमक कर विमल तरुओं के वदन चूमने।
नीरद मधुर को देख मोर भी पर फैलाता;
अपना सुन्दर नाच मोरनी को दिखलाता ॥ ३ ॥
कड़े ताप से पड़े पेड़ पौधे मुरझाये,
मुँह पर छींटे देकर मानो गये जगाये।
जगजीवन-सञ्चार हुआ पावस-आगम में,
सब हो गये निहाल भूमि-तल के सदन में ॥ ४ ॥
सूखे सर-वापी-नालों ने जीवन पाया;
दौड़-धूप की, शोर किया; विस्तार बढ़ाया।
अन्नपास सम्पत्ति मिली इससे मद छाया;
हुई स्वच्छता दूर मैल ने पैर जमाया ॥ ५ ॥
जब हमने पग दिया हृदय में वर्षा ने जब,
सभी हुए आनन्द मनाने को आतुर तब।
सैर-सपाटे की बातों में मिल कर ज्ञानी,
उद्यानों में चले मौज करने मनमानी ॥ ६ ॥

नहीं, परन्तु उसकी छाया लेकर लिखे गये एक बँगला-ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद छप भी चुका है।

राजपूताने में अँगरेज़ी अमलदारी होने के बाद, वहाँ के रजवाड़ों का एक ही बड़ा इतिहास लिखा गया है। वह कर्नल टाड का ही ग्रन्थ है। उसमें इतने रजवाड़ों का इतिहास है—

(१) उदयपुर
(२) जोधपुर
(३) बीकानेर
(४) जेसलमेर
(५) बूँदी
(६) कोटा
(७) जयपुर

कर्नल टाड ने अपना इतिहास लिखने के लिए जो सामग्री इन सातों रजवाड़ों से माँगी थी उसकी सूची देखने से ज्ञात होता है कि वे सब काव्य-ग्रन्थ थे। उनमें कवियों ने सातों रजवाड़ों की वंशावलियों और ऐतिहासिक घटनाओं को साहित्य-शास्त्र की शैली के अनुसार चुना चुनी से बना बना कर वर्णन किया है। इससे टाड साहब के इतिहास में बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं, क्योंकि कवि लोग, जो वास्तव में गप्पी होते हैं, राई का पर्वत और पँखड़ी का फूल बना देते हैं।

टाड के राजस्थान के यथार्थ अनुवाद में उन अशुद्धियों के शुद्ध करने में जो परिश्रम मेरे मित्र पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा को उठाना पड़ा है उसको मैं ही जानता हूँ। इस अनुवाद के ग्राहकों में से विरले ही कोई महाशय जानते हों तो जानते हों। यह अनुवाद अभी पूर्ण नहीं हुआ, धीरे धीरे छप रहा है।

यहाँ पर यह पूछा जा सकता है कि क्या उन पद्यात्मक काव्य-ग्रन्थों के सिवा इन रजवाड़ों में कोई और शुद्ध इतिहास-ग्रन्थ न था? मारवाड़ के विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि एक क्या अनेक गद्य-ग्रन्थ वहाँ हैं, जिनमें मारवाड़ के सिवा और भी कई देशों तथा राज्य करने वाली जातियों के इतिहास भी लिखे हैं।

मैंने जब राजपूताने के इतिहास लिखने की सामग्री एकत्र की थी तब पद्य-ग्रन्थों के दोष देख कर गद्य-ग्रन्थों की शरण ली। उनमें मैंने बहुधा वही गुण पाये जो सच्चे इतिहास में होने चाहिए। इस कारण मैंने उन्हीं की बातें अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों में लिखीं, क्योंकि उनकी पुष्टि उस समय के शिलालेखों तथा अरबी, फ़ारसी में लिखे हुए ग्रन्थों से भी होती है।

ऊपर लिखे हुए गद्य-ग्रन्थों में एक ग्रन्थ मूता नैणसी की ख्यात है। मूता नैणसी जोधपुर के महाराजा, बड़े जसवन्तसिंह जी, का दीवान था। उसको इतिहास से बड़ी रुचि थी। इसीसे उसने यह इतिहास, संवत् १७१६ से १७२२ तक, मारवाड़ी भाषा में लिखा। इसके आधार पर और भी कई इतिहास लिखे गये हैं। इसके दो भाग हैं। एक में तो उन परगनों का वृत्तान्त है जो उस समय जोधपुर-राज्य में थे। मूता ने पहले तो एक एक परगने का इतिहास लिखा है। उसमें यह दिखाया है कि परगने का ऐसा नाम क्यों हुआ, उसमें कौन कौन राजा हुए हैं, उन्होंने क्या क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुर के अधिकार में आया। इसके बाद उसने एक एक गाँव का थोड़ा थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है। फ़सल एक ही होती है या दो। कौन कौन सी धान्य किस फ़सल में होती है। खेती करने वाले किस किस जाति के लोग हैं। जागीरदार कौन हैं। गाँव कितनी जमा का है। पाँच वर्षों में कितना कितना रुपया बढ़ा है। तालाब, नाले और नालियाँ कितनी हैं। उनके इर्द गिर्द किस प्रकार के वृक्ष हैं। इस तरह इस विभाग की पूर्ति हुई है। यह कोई चार पाँच सौ पत्रों का ग्रन्थ है। इसमें जोधपुर के राजाओं का इतिहास, राव सियाजी से महाराजा बड़े जसवन्तसिंह जी के समय तक का, है।

दूसरे भाग में अनेक राजपूत राजाओं के इतिहास हैं। पर उनकी सूची ठीक ठीक नहीं जानी गई। क्योंकि यह भाग पूरा नहीं मिलता। एक प्रति दूसरी से कम ज़ियादह है। इसका कारण यह है कि लोग इस ग्रन्थ को छिपाते बहुत थे। जो किसी को देखने के लिए देते भी थे तो पूरा न देते थे, खण्ड खण्ड करके देते और ले लेते थे। इसी कारण कर्नल टाड को भी शायद यह न मिला होगा।

मूता नैणसी के घर वाले तो अब इस ग्रन्थ को, जो कई लोगों के पास है, मूता नैणसी का बनाया हुआ ही नहीं बताते। वे कहते हैं कि मूता का बनाया हुआ असल ग्रन्थ तो हमारे पास है। मगर जब कोई उनसे देखने को माँगता है तब इधर उधर एक दूसरे के पास होना बता कर टाल जाते हैं।

यह भी सुना गया है कि मूता नैणसी की असल ख्यात, उसी के हाथ की लिखी हुई, बीकानेर-राज्य के पुस्तकालय में है। क्योंकि मूता नैणसी के पीछे, जब उसके घर वाले जोधपुर से निकाले जाकर वहाँ गये थे तब, यह पुस्तक उन्होंने राज्य को दे दी थी।

कुछ भी हो, इस समय दूसरे विभाग की जितनी प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं उनमें इतनी राजपूत-जातियों के इतिहास हैं—

(१) गहलोत
(२) सीसोदिया—उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और देवलिया प्रतापगढ़ के
(३) पँवार—उज्जैन और धार आदि के
(४) चौहान—अजमेर आदि के
(५) पड़िहार—मण्डोर के
(६) ईंदाजाति के पड़िहार
(७) सोलंखी, डोडा आदि
(८) चौहान वागड़िया
(९) हाड़ा
(१०) खुंमेरा
(११) गढ़-बान्धव के बघेला
(१२) सिरोही के चौहान देवड़ा
(१३) जालोर के सोनगरा चौहान
(१४) साचोर के साचोरा चौहान
(१५) बोड़ा चौहान
(१६) खीची चौहान
(१७) सोलंखी, पाटन के
(१८) सोलंखी, नाथावत
(१९) भायड़ा
(२०) गोयल, गौड़ के
(२१) सांखला पँवार
(२२) सोढ़ा पँवार
(२३) भायल पँवार
(२४) झाला मकवाना
(२५) राव-सियाजी राठौड़ का वृत्तान्त
(२६) राव कान्हड़देव का वृत्तान्त
(२७) सरवैया
(२८) बीबा
(२९) भाटी—जैसलमेर, बरसलपुर और पूँगल के
(३०) कछवाहे
(३१) गौड़

यह पुस्तक मारवाड़ी भाषा में है। मारवाड़ियों को अपनी मातृ-भाषा की उन्नति का ध्यान ही नहीं। इसी से यह अब तक नहीं छपी और न इसका अनुवाद ही भारत की किसी दूसरी भाषा में हुआ। अतएव इतिहास-प्रेमी भारतवासियों को इसके दर्शन भी अभी तक नहीं हुए, पढ़ कर इससे लाभ उठाना तो दूर की बात है। मारवाड़ी भाषा भी इसमें वह है जो कोई तीन सौ वर्ष पहले बोली जाती थी। अब तो भाषा और की और हो गई है। इससे टीका-टिप्पणियों की भी ज़रूरत है। जितनी ही अनुश्रुतियाँ भी, बात—ख्यात् और भावी गया घट-नाओं के सम्बन्ध की, ऐसी हैं जो इतिहास-लेखकों के
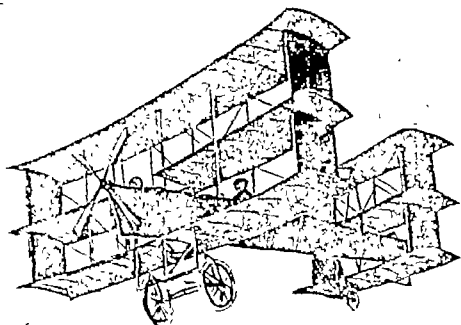
ट्राई-प्लेन (तीन सतहों का वायुयान)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ही शुरू करने योग्य है। इस अवस्था में यदि इसका हिन्दी में अनुवाद किया जाय तो कोई सुयोग्य सम्पादक दरकार होगा। यह काम या तो किसी बड़े इतिहास-रसिक या देश-हितैषी मारवाड़ी धनिक के करने योग्य है या किसी बड़े प्रेस के। इसमें सन्देह नहीं है कि इस अपूर्व ग्रन्थ के प्रकाशित होने से इतिहास की कुछ कमी अवश्य पूरी हो जायगी। सम्भव है, प्रकाशक को लाभ भी हो। क्योंकि रजवाड़ों में मूथा नेणसी और उसकी ख्यात का नाम बहुत विख्यात है।

देवीप्रसाद

विरक्त विज्ञानानन्द ।

(१)

राजीवलोचन जिस दिन एक साथ एम॰ ए॰ और बी॰ एल॰ की परीक्षाओं में अच्छे नम्बरों से पास हुआ उस दिन उसके मित्रों ने बधाई के ढेर लगा दिये। उसके बूढ़े चचा के दिमाग़ में उसकी चमकती हुई वकालत के अनेक सुखमय चित्र खिंच खिंच कर बिगड़ने लगे। राजीवलोचन इस डबल पास होने की ख़ुशी में फूला न समाता, यदि इस घटना के कुछ सप्ताह पहले एक मानसिक व्यथा उसके सामने न आ खड़ी हुई होती। इस व्यथा के कारण वह सदा के लिए वकील बनने की आशा को छोड़ बैठा था। पर विधि के इस विचित्र विधान का भेद अभी तक राजीव और कमला के सिवा और किसी को मालूम न था।

राजीवलोचन बहुत दिनों से कमला के प्रेम-पयोधि में डुबकियाँ लगा रहा था। कमला भी उससे प्रेम करती थी। मतलब यह कि—"दोनों तरफ़ थी आग बराबर लगी हुई"।

कमला के पिता सुखानन्द शिक्षित व्यक्ति थे। उन्होंने कमला को काम-चलाऊ हिन्दी भाषा, हिसाब, इतिहास और घरेलू काम की ख़ूब शिक्षा दी थी। कमला-राजीव के प्रेम की बात भी उनसे छिपी न थी। समय आने पर कमला का हाथ राजीवलोचन से ग्रहण कराने में उनको कोई आपत्ति न थी। कमलकिशोर, पद्माकर और भास्कर के भेद, वर्ण और गोत्र के झगड़ों के पचड़े में पड़ने वाले सुखानन्द शुक्ल को महा ढोंग और स्वार्थ के मंसूबों के सिवा और कुछ न मालूम होते थे। यही कारण था कि पूरे बीस बिस्वे के शुक्ल सुखानन्द अपने एक मात्र कन्या-रत्न का विवाह पाँच बिस्वे वाले पाठक राजीव के साथ करने में कुछ भी दोषापत्ति न देखते थे। मनुष्य के बनाये अपूर्ण, दोषयुक्त और क्षणभङ्गुर नियमों के समक्ष वे प्रकृति के स्वाभाविक, सरल और शाश्वत नियमों का अधिक मान करते थे। पर जो संसार में सब तरह के भेदाभेद को क्षण में दूर कर देती है उसी मृत्यु के द्वारा सरल-चित्त सुखानन्द इन भावों को कार्य्य में परिणत किये बिना ही इस लोक से चल बसे।

सुखानन्द की मृत्यु से वास्तव में घर का सुख-आनन्द नष्ट हो गया। कमला के पिता के न रहने पर घर गृहस्थी के कर्णधार उसके चचा राधाचरण बने। राधाचरण की प्रकृति अपने भाई से अनेक बातों में प्रतिकूल थी। वे कमलकिशोर के बड़े क़ायल थे। भाई के मरने पर घर की सब चीज़ों पर राधाचरण का आधिपत्य हो गया—नहीं हुआ सिर्फ़ सरला कमला के प्रेम-भावपूर्ण अर्ध-स्फुटित चित्त पर। कमला अपने चचा का आदर न करती हो, उनकी आज्ञा को पिता की आज्ञा की तरह न मानती हो—यह बात नहीं। तथापि कमला का धर्म-भीरु मन राधाचरण के आडम्बर-पूर्ण मत से न मिलता था क्यों—वह उससे दबी हुई घृणा करता था।

कमला के विवाह के विषय में राधाचरण की मति भिन्न थी। वे वज्रमूर्ख कमलकिशोर को पाकर राजीव एम॰ ए॰, बी॰ एल॰ से अतिशय पवित्र और आदरणीय समझते थे। वे किसी ऐसे ही कुलीन अट्टधर लड़के की तलाश में चिट्ठियाँ भाई को कभी इस ओर कभी उस गाँव को भेजते रहते थे। स्त्रियाँ 'हक्कार' (अहङ्कार) पढ़ कर बिगड़ जाती हैं—इस बाबा-वाक्य के अनुसार भाई की मृत्यु के बाद उन्होंने सबसे पहले जो काम किया वह यह था कि मूल्य समाप्त होने से पहले ही कमला के नाम आने वाली कई पत्रिकाओं को बन्द कर दिया। यह सब होने पर भी राधाचरण ब्राह्मण थे, विद्वान् थे, धार्मिक थे और भले थे।

थी तो स्वामीजी के वाक्य दोनों पक्ष वालों को मान्य होते थे। स्वामीजी को अपनी न्याय-पद्धति के अनुसार कभी कभी खुद भी अर्थदण्ड भोगना पड़ता था। एक बार रामू कोरी के बैल चेता काछी की बाड़ खा गये। चेता ने स्वामीजी के पास शिकायत की। रामू ने अपनी ग़लती स्वीकार की। चेता की कोई चार रुपये की हानि हुई थी। रामू निर्धन था, इस कारण स्वामीजी ने चारस बोल कर चेता को अपने पास से चार रुपये दे दिये। चेता ने बहुत कहने सुनने पर यह क्षतिपूर्ति स्वीकार की। रामू और चेता के हृदय में हिंसा के जो सोये हुए भाव जाग उठे थे वे स्वामीजी के इस प्रेम-पूर्ण और उदार व्यवहार के कारण सदा के लिए सो गये। उनकी जगह स्वामीजी के विषय में भक्ति का भाव, अग्निदग्ध भूमि में हरे भरे खेत की तरह, लहलहाने लगा।

इस तरह की बातें वहाँ रोज़ ही हुआ करती थीं। इनसे कोरियों के हृदय में कर्मयोगी स्वामी विद्यानन्द की प्रतिष्ठा दिन दिन गाढ़ रूप से जमती जाती थी।

(३)

कमला का पत्र पा कर राजीव ने बड़ी घबराहट से उसे खोला। कुछ दिनों से राजीव का मन सुस्त रहता था। उसको कमला की प्राप्ति में संशय होने लगा था। प्रेमिक राजीव को कमला के बिना सारा विश्व शून्य दिखाई पड़ता था। आज कई दिनों के सख्त इन्तज़ार के बाद उसको कमला का पत्र मिला है। इसी लिए पत्र खोलते खोलते उसके हृदाकाश में अनेक धूमकेतुओं का उदय होने लगा। पत्र में लिखा था—

"प्रियतम,

आज जो बात आपसे कहा चाहती हूँ उसको मैं कह सकूँगी, यह स्वप्न में भी मैंने न सोचा था। मैं अबला हूँ, पर इतना कठोर व्यवहार किये जाने पर भी ज़िन्दा हूँ। आप पुरुष हैं। इससे आशा होती है कि इस कुलिश-कठोर व्यवहार का समाचार सुन कर आप उसको किस तरह सहन कर लेंगे। मेरे चचा नहीं चाहते कि मेरा विवाह आपके साथ हो। मेरे हृदय की अनेक गुत्थियाँ आपने सुलझाई हैं। कृपा करके इस समय भी मुझे पथप्रदर्शन कीजिए जिससे मैं ठीक मार्ग को पहचान सकूँ। मैं क्या करूँ, समझ में नहीं आता। आपकी आज्ञा पर ही मेरा भविष्यत् जीवन अवलम्बित है। जैसा लिखें करने को तैयार हूँ।

अनुगता
कमला।"

ग्रीष्मकाल की दोपहरी का सूर्य राजीव की आँखों में काला पड़ गया। कुछ देर के लिए तो मानों उसके शरीर का रक्तसञ्चालन भी बन्द हो गया। मूर्त्तिमान् नैराश्य राजीव ने बड़े ज़ोर से 'आह' की। मानों उस आह के साथ ही भीतर का बहुत बड़ा बोझ हट गया। उसने अत्यन्त नैराश्य-दशा में भी किसी अलौकिक सुख का स्वाद पाया। शुद्ध प्रेम की निर्मल ज्योति ने फिर उसके मलिन मन को प्रकाशित कर दिया। उसने बड़ी शान्ति से नीचे लिखा उत्तर कमला के पास भेजा—

"कमले,

संसार में सभी पूर्ण सुखी नहीं। बहुत कम आदमियों के भाग्य में पूर्ण सुख बदा है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि तुम अपने चचा की आज्ञा का पालन करो। ईश्वर तुम्हें मुझको भूलने का बल प्रदान करे। कमला, सच जानो— मैं अपने हृदय से ये बातें लिख रहा हूँ।

विरक्त
राजीव।"

दूसरे दिन लोगों ने सुना कि राजीवलोचन पिता का गया-श्राद्ध और तीर्थयात्रा करने चला गया है।

(४)

संन्यासी होकर विद्यानन्द मासिक पत्रिका चलाते हैं, इस बात को बहुत आदमी सोच कर भी नहीं सोच पाते थे। समझदार आदमी उनसे ऐसा प्रश्न करने का साहस न कर सकते थे, पर उद्दण्ड प्रकृति के कोई कोई पुरुष उनसे पूछ ही बैठते थे—

"स्वामीजी, पत्रिका के लिए आप दिन रात परिश्रम करते हैं, बखेड़ा करते हैं—इससे आपके परमार्थ-साधन में ज़रूर विघ्न होता होगा।"

विद्यानन्द स्वाभिमान-सुलभ उपेक्षा के साथ उत्तर देते—"मनुष्य-समाज की सेवा करना भी ईश-सेवा करना ही है। मनुष्य-प्रेम और ईश-प्रेम में कुछ भी भेद नहीं। मासिक पत्रिका द्वारा मातृ-भाषा के साहित्य का उपकार

स्वामीजी के वाक्य दोनों पक्ष वालों को मान्य होते
ामीजी को अपनी न्याय-पद्धति के अनुसार कभी कभी
ी अर्थदण्ड भोगना पड़ता था। एक बार रामू कोरी
चेता कांछी की बाड़ खा गये। चेता ने स्वामीजी
: शिकायत की। रामू ने अपनी ग़लती स्वीकार की।
ी कोई चार रुपये की हानि हुई थी। रामू निर्धन
ा कारण स्वामीजी ने अपने पास से चेता को अपने
। चार रुपये दे दिये। चेता ने बहुत कहने सुनने पर
तिपूर्ति स्वीकार की। रामू और चेता के हृदय में
के जो सोये हुए भाव जग उठे थे वे स्वामीजी के इस
ई और उदार व्यवहार के कारण सदा के लिए सो
उनकी जगह स्वामीजी के विषय में भक्ति का भाव,
ग्य भूमि में हरे भरे खेत की तरह, लहलहाने लगा।

इस तरह की बातें वहाँ रोज़ ही हुआ करती थीं।
कोरियों के हृदय में कर्मयोगी स्वामी विज्ञानानन्द
ेवा दिन दिन गाढ़ रूप से जमती जाती थी।

(३)

कमला का पत्र पा कर राजीव ने बड़ी घबराहट से उसे
। कुछ दिनों से राजीव का मन सुस्त रहता था।
: कमला की प्राप्ति में संशय होने लगा था। प्रेमिक
। को कमला के बिना सारा विश्व शून्य दिखाई पड़ता
आज कई दिनों के सख़्त इन्तज़ार के बाद उसको कमला
त्र मिला है। इसी लिए पत्र खोलते खोलते उसके
नस में अनेक धूमकेतुओं का उदय होने लगा। पत्र
खा था—

स्वम,

आज जो बात आपसे कहा चाहती हूँ उसको मैं कह
ी, यह स्वप्न में भी मैंने न सोचा था। मैं अबला हूँ,
ठना कठोर व्यवहार किये जाने पर भी ज़िन्दा हूँ।
ुरुष हैं। इससे आशा होती है कि इस कुटिल-कर्कश
ार का समाचार सुन कर आप उसको जिस तरह होगा
। कर लेंगे। मेरे चचा नहीं चाहते कि मेरा विवाह
के साथ हो। मेरे हृदय की अनेक गुत्थियाँ आपने
झाई हैं। कृपा करके इस समय भी मुझे प्रकाशदान
िए जिससे मैं ठीक मार्ग को पहचान सकूँ। मैं क्या
, समझ में नहीं आता। आपकी आज्ञा पर ही मेरा
भविष्यत् जीवन अवलम्बित है। जैसा लिखें करने को
तैयार हूँ।

अनुगता

कमला।"

ग्रीष्मकाल की दोपहरी का सूर्य राजीव की आँखों में
काला पड़ गया। कुछ देर के लिए तो मानों उसके शरीर
का रक्तसञ्चालन भी बन्द हो गया। मूर्तिमान् नैराश्य राजीव
ने बड़े ज़ोर से 'आह' की। मानों उस आह के साथ ही
भीतर का बहुत बड़ा बोझ हट गया। उसने अत्यन्त नैराश्य-
दशा में भी किसी अलौकिक सुख का स्वाद पाया। शुद्ध
प्रेम की निर्मल ज्योति ने फिर उसके मलिन मन को
प्रकाशित कर दिया। उसने बड़ी शान्ति से नीचे लिखा
उत्तर कमला के नाम भेजा—

"कमले,

संसार में सभी पूर्ण सुखी नहीं। बहुत कम आदमियों
के भाग्य में पूर्ण सुख बदा है। मेरी आन्तरिक इच्छा है
कि तुम अपने चचा की आज्ञा का पालन करो। ईश्वर तुम्हें
मुझको भूलने का बल प्रदान करे। कमला, सच जानो—
मैं अपने हृदय से ये बातें लिख रहा हूँ।

विरक्त

राजीव।"

दूसरे दिन लोगों ने सुना कि राजीवलोचन पिता का
गया-श्राद्ध और तीर्थयात्रा करने चला गया है।

(४)

संन्यासी होकर विज्ञानानन्द मासिक पत्रिका चलाते हैं,
इस बात को बहुत आदमी सोच कर भी नहीं सोच पाते
थे। समझदार आदमी उनसे ऐसा प्रश्न करने का साहस न
कर सकते थे, पर उद्दण्ड प्रकृति के कोई कोई पुरुष उनसे
पूछ ही बैठते थे—

"स्वामीजी, पत्रिका के लिए आप दिन रात परिश्रम
करते हैं, बखेड़ा करते हैं—इससे आपके परमार्थ-साधन में
ज़रूर विघ्न होता होगा।"

विज्ञानानन्द स्वाभिमान-सूचक उपेक्षा के साथ उत्तर
देते—"मनुष्य-समाज की सेवा करना भी ईश-सेवा करना
ही है। मनुष्य-प्रेम और ईश-प्रेम में कुछ भी भेद नहीं।
मासिक पत्रिका द्वारा मातृ-भाषा के साहित्य का उपकार

द्वार पर लगे नीम के बड़े वृक्ष पर एक तख़्ता लटक रहा है। पाठक आप जानते हैं उस पर क्या लिखा है। उस पर लिखा है—राजीवलोचन शर्म्मा, एम॰ ए॰, बी॰ एल॰—कमला-सम्पादक।

ज्वालादत्त शर्म्मा

वेदों में फलित ज्योतिष।

कुछ समय से कुछ लोग फलित ज्योतिष को अविश्वसनीय, निर्मूल, तथा ब्राह्मणों की जीविका का आधार-स्वरूप मानने लगे हैं। वे लोग आधुनिक अधपढ़े ज्योतिषियों के कहे हुए फलों से असन्तुष्ट होकर इस विद्या ही का मूलोच्छेद करना चाहते हैं। कुछ विचारशील विद्वान् भी इसे आर्ष नहीं मानते। वे कहते हैं कि इस विद्या को भारतवर्ष ने यवनों से सीखा है। इन महानुभावों के विनोदार्थ हम अथर्व्ववेद से कुछ मन्त्र उद्धृत करके यह दिखाने की चेष्टा करते हैं कि यह विद्या आर्ष है, वैदिक समय में विद्यमान थी, मानी जाती थी, और उसके चिह्न अब तक वेदों में मिलते हैं। तथापि हम यह नहीं कह सकते कि उस समय इसका आधिपत्य भारतनिवासियों के चित्तों पर उतना ही था जितना कि अब है। यह उसी समय निश्चय हो सकता है जब उस काल का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ हाथ लगे। ऐसे ग्रन्थ की अनुपस्थिति में कोई बात इस विषय में सप्रमाण नहीं कही जा सकती। परन्तु शकुन-अपशकुन मानना, नक्षत्रों के पाप-क्रूरादि भेद बताना, उनके अधिकारी देवताओं का उल्लेख करना, जो ऋक् से लेकर अथर्व तक में विद्यमान है, यह साबित करता है कि उस समय भी इस विद्या का प्रचार था। अथर्ववेद में लिखा है—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥

अथर्व—६-११०-२

इस पर सायण-भाष्य का सारांश यह है—ज्येष्ठ बड़े को मारने वाले का नाम ज्येष्ठघ्नी है। इस नक्षत्र-विशेष में उत्पन्न पुत्र अपने ज्येष्ठ पिता, माता आदि का मारक होता है। वैसे ही विचृत अर्थात् विवर्तन-शील मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र सारे कुल का नाश-कर्त्ता होता है। इसलिए पापी नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र की रक्षा मूलोच्छेद-दोष से करो। इस पुत्र के दीर्घायु होने के लिए (१०० वर्ष जीने के लिए) सभी उपाय करो।

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्रमिनीज्जनित्रीम्।

अथर्व—६-११०-३

व्याघ्र के समान क्रूर नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र शुभ हो और बढ़ कर—बड़ा होकर—माता-पिता का हन्ता न हो।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनुजानन्तु विश्वे।

अथर्व—६-११२-१

हे अग्नि! यह अपने बड़े भाई को न मारे। मूलोच्छेदन दोष से इसकी रक्षा करो, अर्थात् इस दोष का शमन करो। हे अग्नि! तू इस पाश से विमुक्त करने वाले उपाय को जानता है। उन पाशों को खोल। सब देवता इस विमोचन में तेरा अनुकरण करें।

इन मन्त्रों में स्पष्टतया मूल-नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र का फल कहा गया है। ऐसे ही प्रमाण अन्य स्थलों पर भी मिलते हैं। इससे यह मानना पड़ता है कि वैदिक काल में भी फलित ज्योतिष का बीज विद्यमान था।

दिवाकर शुक्ल

फहराता हुआ दिखता रहेगा। यदि तख़्ती के उस टुकड़े को कुछ थोड़ा सा उठा कर रक्खें तो एक बड़ा आश्चर्यजनक वैज्ञानिक नतीजा निकलेगा। वह यह कि तख़्ती का टुकड़ा ऊपर उठने की कोशिश करेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी चिपटी वस्तु को वायु की चाल की ओर, सतह से कुछ उठा कर रक्खें, तो उसमें ऊपर की ओर कुछ बोझ ले जाने की शक्ति आ जाती है। इसका कारण यह है कि वह वस्तु वायु को नीचे की ओर धक्का देती है। इससे वह स्वयं ऊपर को उठती है—ठीक वैसे ही जैसे गेंद दीवार को धक्का मार कर पीछे लौटती है।

वायु में उड़नेवाला पक्षी ऊपर जाते समय सदैव ऊपर की ओर झुका हुआ उड़ता है और नीचे आते समय नीचे की ओर झुका रहता है। कभी कभी पक्षी वायु में ऊपर की ओर झुक कर अपने पङ्खों को बिना हिलाये—केवल उन्हें फैलाये हुए ही एक ही स्थान पर ठहरा रहता है और नीचे नहीं गिरता। इसी नियम के आधार पर सब "एरोप्लेन" इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे वायु में कुछ ऊपर को उठे रहें।

ऊपर दो नियम बताये गये हैं। एक तो यह कि वायु-यान को ऊपर की ओर कुछ उठा हुआ होना चाहिए, जिससे वह ऊपर आकाश में चढ़ सके और वायु को नीचे की ओर धक्का मार सके। उसी धक्के के बल वह ऊपर चढ़ता है। दूसरा यह कि पक्षी की तरह उसमें ऐसे पङ्ख हों जो सदैव वेग से हिलते रहें।

बिना एक प्रकार की शक्ति लगे किसी दूसरे प्रकार की शक्ति पैदा नहीं हो सकती। पक्षी पङ्ख हिलाने में अपने शरीर की शक्ति को ऊपर उड़ने की शक्ति प्राप्त करता है। यद्यपि वायु की शक्ति, पक्षी के ऊपर की ओर झुके रहने के कारण, उसे वायु में किसी क़दर स्थिर रख सकती है, तथापि वह शक्ति इतनी नहीं है कि पक्षी को पृथ्वी से ऊपर मनमाना ले जा सके।

किसी चलती हुई नाव को देखिए। कोई मल्लाह डाँडों के द्वारा जल को पीछे की ओर ढकेलता है, जिससे नाव स्वयं आगे को चली जाती है। बड़े बड़े जहाज़ों में, पीछे, दुम की ओर, एक पङ्खा लगा रहता है। वह पानी को पीछे की ओर ढकेलता है, जिससे जहाज़ धक्का खा कर आगे बढ़ता जाता है।

वायु-यान में भी इसी प्रकार पङ्खे होते हैं। वे एञ्जिन-द्वारा बराबर चलते रहते हैं। इससे वायु-यान हवा को पीछे धक्का मारता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यदि एञ्जिन बन्द हो जाय और पङ्खों का चलना रुक जाय तो वायु-यान उसी प्रकार ऊपर की ओर झुका रह कर, कुछ देर वायु में ठहरा रह सकता है जिस प्रकार पक्षी अपने पङ्खों को बिना हिलाये कभी कभी वायु में ठहरे रहते हैं। इसी तरह नीचे आने के लिए भी वायु-यान को नीचे की ओर झुक जाना पड़ता है।

एरोप्लेन बिलकुल पक्षी की सूरत-शक्ल का होता है। इसका शरीर, इसके पङ्ख और इसकी दुम पक्षी ही की तरह होती है और पक्षी के पैरों के सदृश इसके पहिये भी होते हैं। नीचे उतरते समय इन पहियों की सहायता दरकार होती है।

प्रधान एरोप्लेन दो प्रकार के होते हैं। एक को मोनोप्लेन कहते हैं और दूसरे को बाइप्लेन। मोनोप्लेन की सतह, शरीर, पङ्ख इत्यादि सब साधारण पक्षी के सदृश इकहरे, अर्थात् एक ही एक होते हैं। पर बाइप्लेन में ये सब दोहरे—एक के ऊपर एक—होते हैं।

इन वायु-यानों में पक्षी की तरह दोनों बाज़ुओं में पङ्ख लगाने से इनके तेज़ी से घुमाने में दिक़्क़त पड़ती है। इसलिए इनमें एक ही पङ्खा आगे या पीछे लगा दिया जाता है। वह वायु को धक्का मारता

पहलगाँव (कश्मीर) में लिदर नदी का दृश्य। यह स्थान श्रीनगर से बहुत दूर नहीं।
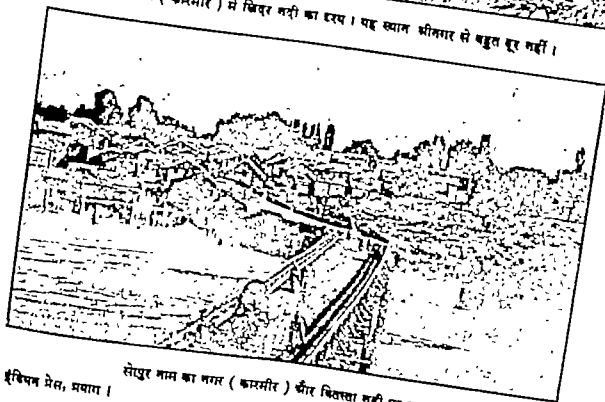
सोपुर नाम का नगर (कश्मीर) और वितस्ता नदी पर पुल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हुआ वायु-यान को जहाज़ के सदृश आगे बढ़ा ले जाता है। इस पङ्ख की चाल इतनी तेज़ होती है कि यह साधारणतः दिखाई ही नहीं पड़ता।

वायु-यान प्रायः लकड़ी का बनाया जाता है। इससे वह हलका रहता है। उसमें सबसे प्रधान वस्तु एञ्जिन है। वही उसे शक्ति दे कर आगे बढ़ाता है। एञ्जिन जितना ही छोटा, पर शक्तिमान हो, वायु-यान उतना ही अच्छा और शक्ति-शाली होगा।

ऊपर बताये हुए दो प्रकार के वायुयानों के अतिरिक्त एक प्रकार का वायुयान और भी होता है। उसे सामुद्रिक वायु-यान (Hydro-Aeroplane or Seaplane) कहते हैं। उसमें और पूर्वोक्त वायुयानों के आकार-प्रकार में केवल इतना भेद होता है कि पहले प्रकार के वायुयानों का आकार-प्रकार पृथ्वी से ऊँचे उठने और पृथ्वी पर उतरने के योग्य बनाया जाता है और इनका आकार-प्रकार समुद्र में चलने योग्य होता है। अर्थात् ये इस प्रकार बनाये जाते हैं कि समुद्र से ऊपर उठ सकें और समुद्र में ही उतर सकें। उड़ने के नियम सबके एक ही से हैं। मानोप्लेन और बाइप्लेन के पेट में पहिये होते हैं। उनके सहारे वे बिना चोट खाये पृथ्वी पर उतर पड़ते हैं। पर सीप्लेन के नीचे खोखले तम्बूरे होते हैं। उनके सहारे से पानी पर तैरते रहते हैं।

चौथे प्रकार का भी एक एरोप्लेन होता है। उसे ट्राइप्लेन कहते हैं। उसके शरीर में तीन सतहें होती हैं। इस प्रकार के वायु-यान बहुत भारी होते हैं। इस कारण उनके चलने की शक्ति कम हो जाती है।

ये वायु-यान भिन्न भिन्न आकार के बनते हैं। परन्तु जिन नियमों के आधार पर इनकी रचना की जाती है वे सब असल में एक ही हैं।

जगन्नाथ खन्ना, बी० एस्०-सी०, ई० ई०, लन्दन

पावस-परमा।

ऊष्मा बढ़ी थी, देह से था स्वेद का सोता बहा,
था पवन भी तो स्थगित सा जिससे न कुछ होता रहा।
जो प्रेमव्यापी विपद है वह है किसे खलती नहीं ?
बचते नहीं बालक कोई चाल फिर चलती नहीं ॥१॥

चिड़ियाँ व्याकुल-चित्त आकर नीड़ में रक्षित हुईं ;
अण्डे सँभाले, ज्यूँ दिखीं भगती हुई कम्पित हुईं।
आती विपद जब सब कुछ त्याग करना चाहिए,
पावस-कथा हो मैल-चौपाई न मरना चाहिए ॥२॥

सहसा प्रकृति ने रङ्ग फिर पुरवा हवा चलने लगी,
फिर जान सी आई पवन में कुछ व्यथा टलने लगी।
सुख यदि सदा रहता नहीं तो दुःख का भी अन्त है,
यह सोच कर मित्र चित्त में विचलित न होता सन्त है ॥३॥

काले काले दल बादलों के गगन में घिरने लगे,
मद-मत्त-गज से घन गरजते घूमने फिरने लगे।
आकाश पर चढ़ कर किसे होता नहीं अभिमान है ?
सुख यह पतन की सूचना जिसका कि अभ्युत्थान है ॥४॥

अब हो गया शीतल पवन बूँदें विपुल पड़ने लगीं ;
भूपर वनस्पति-पत्र पर मणि-जाल से जड़ने लगीं।
जो पतित होकर भी सदा इस तरह पर-हित-रत रहे,
तो बाद में उसको न क्यों संसार चातकवत् रहे ॥५॥

करती हुई गुरु गर्जना बिजली चमक कर चञ्चला ;
नभ-रङ्गभू में यह नटी सी कर रही क्या क्या कला।
मानो सुरपति-साम्राज्य पाकर नाचती आनन्द से,
पुलकित मन होते सभी के स्वयम् श्री-मुखचन्द्र से ॥६॥

रज-कण-मिश्रित जल भर गया नद तीव्र-गति से बह चले,
वे विकल से जाते हुए यह बात तट की कह चले।
आये जहाँ से फिर वहीं हम विमल होने जा रहे ;
इस बीच की ही कीच से हो कर मलिन दुख पा रहे ॥७॥

वह दूब जो सूखी हुई थी हरी मखमल बन गई,
बिगड़ी हुई उसकी सभी पा कर विमल जल बन गई।
मित्र सुहृद से शोभित हुआ है जो—भला किसका नहीं ?
पा कर मनोहर मन हरा होता भला किसका नहीं ! ॥८॥

वे पेड़ जिनकी आज के ये ताप से झुलसे पड़े,
अब लहलहाते झूमते हैं मुदित मतवाले खड़े।

बारामूला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बारामूला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कोर्ट आव् वार्ड्स के कुछ रजिस्टर।

कोर्ट आव् वार्ड्स में ज़िले के दफ़्तरों का हिसाब दो बड़े भागों में विभक्त है। एक तो वह जिसका सम्बन्ध सदर, अर्थात् मैनेजर के दफ़्तर, से होता है। दूसरा वह जिसका सम्बन्ध मुफ़स्सिल (बाहर) के मुलाज़िमों से होता है। हिसाब रखने की इन दोनों प्रणालियों का वर्णन लिखने के पहले हम यह आवश्यक समझते हैं कि कुछ मुख्य मुख्य रजिस्टरों का परिचय पाठकों से करा दिया जाय। क्योंकि हिसाब रखने की रीति के वर्णन में बारम्बार रजिस्टरों का नाम आवेगा।

मुफ़स्सिल के रजिस्टर।

(१) बहीखाता—इनमें सबसे अधिक उपयोगी बहीखाता है। जब कोई नई रियासत कोर्ट में आती है तब पटवारी की खतौनी की एक नक़ल कोर्ट में करा ली जाती है, जो सदा के लिए रक्खी रहती है। इस खतौनी का मिलान रियासत के काग़ज़ात से करके बहीखाता बनाया जाता है। बहीखाता मौज़ेवार होता है। अर्थात् प्रत्येक गाँव का बहीखाता अलग अलग होता है। हाँ, अनेक बहीखाते एक जिल्द में भी बँधा लिये जा सकते हैं। प्रत्येक कृषक के नाम जो देना होता है वह इसमें लिखा रहता है; चाहे वह देना जिस सीग़े का हो। अपने देन में से किसान जो कुछ अदा करता है वह भी लिख लिया जाता है और प्रत्येक रक़म के आगे, उस समय तक जो कुछ दिया गया है उसका जोड़ लिख दिया जाता है—अफ़ज़ूं लगा दी जाती है। इससे यह लाभ होता है कि उस व्यक्ति-विशेष के ज़िम्मे जो कुछ बाक़ी होता है वह झट मालूम हो जाता है।

बहीखाता सालाना काग़ज़ है। अर्थात् वह प्रति वर्ष नया बनता है। नया बहीखाता पिछले बहीखाते के आधार पर बनाया जाता है। पटवारी की खतौनी से उसका *मिलान प्रति वर्ष* किया जाता है। मिलान के बाद पटवारी और ज़िलेदार, दोनों मिल कर, मिलान कर लेने का सर्टीफ़िकेट बहीखाते पर देते हैं। बहीखाते में लिखे गये देन में बिना मैनेजर के हुकुम के कुछ भी न्यूनाधिक्य नहीं हो सकता। इसलिए जो घटी बढ़ी देने में होती है उसके लिए मैनेजर का हुकुम ज़िलेदार को दिखाना पड़ता है। सरबराहकार नये बहीखाते का मिलान पुराने से करके एक और सर्टीफ़िकेट उस पर लिखता है कि नये खाते पर देना सही सही लिखा गया है। पिछले खाते में जो देना बाक़ी रह गया था वह नये खाते पर लिख लिया गया है, और, इसी तरह जो पिछले साल अगले साल के लिए वसूल हो चुका है—अर्थात् पेशगी—वह भी बहीखाते पर लिख लिया गया है।

देने अर्थात् मतालबे का वैसा ही रजिस्टर प्रायः प्राइवेट रियासतों में भी देखा जाता है, जिसे कहीं खाता और कहीं खतौनी कहते हैं। परन्तु पटवारी के काग़ज़ से उसका मिलान अक्सर नहीं होता और न उसमें न्यूनाधिक करने की बाबत ही इतने कड़े नियम का पालन होता है। परिणाम यह होता है कि कृषक के भाग्य का फ़ैसिला केवल ज़िलेदार के हाथ में रहता है।

(२) खतौनी और खेवट—बहीखाते में लिखे देने की जाँच के लिए कोर्ट में पटवारी की खतौनी और खेवट (मालगुज़ारी और पुख्तेदारी) की प्रतियाँ रहती हैं। हम पहले ही कह आये हैं कि इन्हीं से मिलान होकर पहला बहीखाता बनता है और प्रति वर्ष नये नये खाते का मिलान पुराने खाते

से हो जाने से उसके सही होने का इतमीनान हो जाता है।

(३) खसरा—दो प्रकार का होता है—एक नक़दी, जिसमें नक़द रुपया लिया जाता है; दूसरा गल्लई, जिसमें अनाज बाँट लिया जाता है, अथवा उसके दाम ले लिये जाते हैं। अनाज बाँटने को "बटाई" और उसके दाम ले लेने को "कनकूत" कहते हैं। कोर्ट में प्रायः कनकूत पसन्द की जाती है। हाँ, कहीं कहीं बटाई भी होती है। कनकूत करने के भी नियम कोर्ट आफ़ वार्ड्स ने बनाये हैं। पहले पटवारी के काग़ज़ से एक खतौनी बनाई जाती है, जिसमें सब गल्लई खेत लिख लिये जाते हैं। जिस खेत में फ़सल न बोई गई हो, अथवा उपजी न हो, अथवा उपज कर नष्ट हो गई हो, उसका मतालबा खतौनी में लिखा जायगा और उसके लिए जो व्यवस्था हुई होगी वह भी उसके सामने लिख दी जायगी। खतौनी पर पटवारी एक सर्टीफ़िकेट देता है कि सब गल्लई खेत खतौनी में लिख गये हैं और जो खेत ख़ाली या उफ़तादा लिखे हैं उनमें बीज बोया ही नहीं गया था, अथवा यदि बोया गया था तो नष्ट हो गया है। इसी खतौनी में अनाज का कनकूत और उसके दाम भी लिखे जाते हैं। कनकूत खसरे में लिया जाता है। खसरा वह रजिस्टर है जिसमें ज़िलेदार हर एक खेत पर जाकर पटवारी और कनकूत करने वाले पञ्चों के सामने अनाज का कनकूत लिख लेता है। शाम को पटवारी और कनकूत करने वाले पञ्चों के दस्तख़त खसरे पर ले लिये जाते हैं और तारीख़ लिख दी जाती है। इस खसरे की एक प्रति ज़िलेदार को उसी दिन तहसीलदार के पास भेजनी पड़ती है। तहसीलदार उसकी यथोचित जाँच करता है। फिर अपनी राय लिख कर मैनेजर के पास भेज देता है। मैनेजर उसे मञ्ज़ूर करता है और अपना हुक्म लिख कर उस प्रति को ज़िलेदार के पास लौटा देता है। ज़िलेदार मैनेजर के मञ्ज़ूर किये हुए देने को बहीखाते में लिख लेता है। उस देने का वसूल फिर नहीं लिखा जाता।

(४) सायर रजिस्टर—ज़मींदार कुछ मुफ़स्सिल कर ऐसा लेता है जिसका सम्बन्ध भूमि की जुताई से नहीं होता। जैसे—बाग़ की फ़सल के दाम, परती पर उगी घास के दाम, कुम्हार, गड़रिये आदि प्रजा से घड़े या कमली आदि लेना इत्यादि। इनको सायर कहते हैं। कुछ सायर प्रति वर्ष बदलता रहता है, अर्थात् सालाना होता है और कुछ मुस्तक़िल होता है। वह एक ही दर से वसूल होता है। पेड़ की फ़सल के दाम, लकड़ी के दाम, घास के दाम, प्रति वर्ष उसकी उपज पर अवलम्बित रहते हैं। अतएव ये प्रति वर्ष बदलते रहते हैं। समझना चाहिए कि वह सालाना सायर है। गड़रिये आदि से कर बाँध लेना—उदाहरणार्थ एक कमली प्रति वर्ष ले लेना मुस्तक़िल सायर है। सालाना सायर के भी कुछ मुस्तक़िल ज़रिये होते हैं, जैसे—बाग़, ताल, आदि। उनसे कुछ न कुछ प्रति वर्ष मिलता ही है। कुछ ज़रिये मुस्तक़िल नहीं होते। यथा—किसी घर की लकड़ी के दाम और नई प्रजा के बसने के समय घर का नज़राना आदि। सायर के मुस्तक़िल ज़रियों का एक रजिस्टर प्रत्येक ज़िलेदार अपने पास रखता है, जिसे सायर-रजिस्टर कहते हैं। इसमें हल्क़े का मौज़ा, आमदनी का ज़रिया और गत पाँच वर्षों की आमदनी का औसत लिखा रहता है। उसी के सामने साल की आमदनी लिखी जाती है। मैनेजर का काम है कि वह गत ५ साल की आमदनी से वर्तमान साल की आमदनी का मिलान करे, और यदि विशेष घटी बढ़ी हुई हो तो उसका कारण पूछे। लेखक की राय में यह रजिस्टर बहुत उपयोगी है और जिन प्राइवेट रियासतों में न हो वहाँ भी इसका प्रचार होना चाहिए।

(५) रेमिटेन्स रजिस्टर—दिन भर जो रुपया वसूल होता है उसे जोड़ कर उसका योगफल इस रजिस्टर में लिखा जाता है तथा पिछले दिन का रुपया जो ज़िलेदार के हाथ में रहा हो वह भी लिख कर उसमें जोड़ दिया जाता है। जो रुपया ज़िलेदार ख़ज़ाने में भेजता है उसे घटा कर बाक़ी निकाल देता है। सप्ताह के अन्त में सात दिन का, और महीने के अन्त में महीने भर का जोड़ इसमें लिख दिया जाता है। इसी तरह वर्ष के अन्त तक हुए वसूल का जोड़ बढ़ता जाता है।

(६) स्याहा और गोशवारा—किसी असामी से जो रुपया जिस मद में वसूल होता है उसकी रसीद ब्योरेवार उसी वक़ उसे दी जाती है। रसीदों से मौज़ेवार वसूल स्याहा में प्रति दिन लिख लिया जाता है। स्याहा में वसूल ब्योरेवार लिखा जाता है। वसूल का जोड़ भी उसमें लिख दिया जाता है। सप्ताह के अन्त में प्रत्येक मौज़े का वसूल जोड़ कर गोशवारे में लिखा जाता है और सब मौज़ों का, सप्ताह भर का, वसूल जोड़ लिया जाता है। इसका मिलान रेमिटेन्स से होता है।

मुफ़स्सिल के यही मुख्य रजिस्टर हैं। इनके अतिरिक्त ज़िलेदार को माफ़ी का रजिस्टर, रसीद की किताब, पट्टे और क़बूलियत की किताब, चीज़ों का स्टाक-रजिस्टर, चालानबही, स्टाम्प-रजिस्टर, पेशगी का हिसाब भी, रखना पड़ता है। इनका विषय इनके नाम ही से प्रकट है। ज़िलेदार चिट्ठी-पत्री का रजिस्टर और बेदख़ली का रजिस्टर भी रखता है। बेदख़ली का रजिस्टर भी उपयोगी रजिस्टर है। इस रजिस्टर से यह पता चलता है कि अमुक वर्ष अमुक गाँव में क्यों ज़ियादह इस्तेफ़े हुए या बेदख़लियाँ लगानी पड़ीं। इससे यह भी जाना जाता है कि इस तरह ख़ाली हुई ज़मीन का क्या इन्तज़ाम ज़िलेदार ने किया।   अमिक

वनस्थली।

स्वार्थ-सिद्धि के लिए विविध व्यापारी तो हैं,
किन्तु धन्य वे पुरुष देश-हितकारी जो हैं।
अपने ही से दुखी अन्य को करने वाले,
दुर्लभ हैं पर मैं भी निज गुण भरने वाले।
ये सघन वन निज देश को करते हैं सुरभित सदा;
इनसे मिल कर कौन सरस हुआ न इनके सम कदा ॥१॥

रूपवान का नाम मनोहर यद्यपि पड़ा है,
तो क्या वह इस हेतु किसी से कभी बड़ा है?
बन सकता है बड़ा वही जो है गुण वाला;
उसका चाहे रूप रहे गोरा या काला।
चारु पत्र पा कर घूमा, गर्वित हुआ अशोक है;
फल-विहीनता पर उसे होता तनिक न शोक है ॥२॥
पर-पालन का पाठ नहीं जो पढ़े हुए हैं,
वीर वेश में शुष्क व्यर्थ वे खड़े हुए हैं।
कोई उनके निकट कहो क्यों आ सकता है?
आता है जग वहीं जहाँ कुछ पा सकता है।
इन बातों को हास-तरु सिखलाते मानो हैं हमें,
निज जीवन की व्यर्थता या दिखलाते हैं हमें ॥३॥

नारिकेल भी यद्यपि ताड़ ही के भाई हैं,
निज छाया से नहीं किसी को सुखदायी हैं।
तो भी रस से भरे हुए ये फल देते हैं,
पहले निज काठिन्य हमें दिखला देते हैं।
ज्ञानी जन की निठुरता सह सकता संसार है,
पर अति सूखे हृदय का जीवन भू का भार है ॥४॥
यथा भीरु का हृदय सदा कम्पित रहता है;
कभी न वह रिपु-शक्ति स्वल्प भी सह सकता है।
कायरपन के कर्म सभी को सिखलाता है,
या वह अपनी व्यर्थ तुच्छता दिखलाता है।
उसी भाँति अश्वत्थ ये स्थिर होकर रहते नहीं,
कभी वायु के वेग को दृढ़ होकर सहते नहीं ॥५॥
ज्यों भविष्य में देश-दशा की देख अधोगति,
देश-हितैषी की न कभी रहती है स्थिर मति।
नहीं दुष्ट उत्कर्ष सहन उसको होता है,
अश्रुपात कर सदा भ्रमित हो वह रोता है।

पहले दरजे का हाउस-बोट (काश्मीर)।

हरा-पर्वत का दृश्य (काश्मीर)।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पाठक भी पत्र के मज़मून से मालूम कर सकते हैं कि इस तरह का पत्र किस हैसियत का मनुष्य लिख सकता है। कारण सुनिए—

(१) प्रथम—"बाद इसके पहिले ख़ुलूसख़्वाह और शुक्रिया करम व फ़ज़्ले हुज़ूरे अनवर के वाज़े हो कि अगरचे ख़ैर-तलब ख़िदमते हुज़ूरे आला से मुफ़ारिक़त हो गया है"।

महाराजा जसवन्तसिंहजी कभी "ख़िदमते आला" से मुफ़ारिक़त नहीं हुए, और महाराना राजसिंहजी ने सन्धि तोड़ कर बादशाह के विरुद्ध खड़े होने का साहस किया था। परिणाम यह हुआ कि संवत् १७३७ में बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और दैवारी घाट के भयङ्कर युद्ध में बादशाह परास्त होकर भाग निकला।

(२) दूसरे—"अकबर रामसिंह से जो हुनूद में मुक़द्दम समझा जाता है मतालिबा किया जावे"—

ये लफ़्ज़ महाराजा जसवन्तसिंहजी नहीं लिख सकते। आमेर-नरेश मिरज़ा राजा जयसिंहजी और महाराजा जसवन्तसिंहजी में बड़ी मित्रता थी। इस दशा में अपने मित्र के पुत्र रामसिंहजी पर इस प्रकार कटाक्ष करना और उनके विषय में बादशाह को उत्तेजित करना उनके लिए असम्भव था। पर महाराना राजसिंहजी यह कटाक्ष-पूर्ण वाक्य महाराजा रामसिंहजी के लिए लिख सकते थे। क्योंकि आमेर और उदयपुर में उन दिनों घोर वैर-भाव था। महाराना इन वाक्यों से मानो आमेर-नरेश को धिक्कार दे रहे हैं।

(३) तीसरे—"बाद अज़ाँ इस ख़ैरतलब की याद फ़रमाया जाय क्योंकि मेरे मुक़ाबिले में हुज़ूर को कम मुशकिलात पायेंगी"।

महाराजा जसवन्तसिंहजी औरङ्गज़ेब की अधीनता में रहते हुए ऐसे शब्द लिख सकते थे या नहीं, यह विचारने योग्य बात है। महाराना के इस लिखने का ही फल संवत् १७३७ का युद्ध था।

इन तथा और कारणों से यह पत्र महाराजा जसवन्तसिंहजी का लिखा हुआ प्रतीत नहीं होता। इसके लेखक महाराना राजसिंहजी ही प्रमाणित होते हैं। आशा है कि कोई इतिहास-प्रेमी इस बात का निर्णय करने की कृपा करेंगे।

नीचे उस ख़त का मज़मून दिया जाता है जिसे महाराना राजसिंहजी ने शाहनशाह औरङ्गज़ेब आलमगीर ग़ाज़ी के नाम लिखा था—

बाद इसके पहिले ख़ुलूसख़्वाह और शुक्रिया करम व फ़ज़्ले हुज़ूरे अनवर के वाज़े हो कि अगरचे ख़ैर-तलब ख़िदमत हुज़ूरे आला से मुफ़ारिक़त हो गया है मगर इताअत और ख़ैरख़्वाही की हर एक वाजबी ख़िदमत के अंजामदिही में हमातन सर-गरम है। मेरी दिली ख़्वाहिश और शबाना रोज़ी कोशिश इसमें है कि शाहान व उमरा व मिरज़ायान व राजगान मुमालिके हिन्दोस्तान और फ़रमाँरवायान ईरान व तूरान व रूम व शाम व बाशिंदगाने हफ़्त अक़्लीम और सइयाहान बहर व बर की आफ़ियत व बहबूदी में तरक़्क़ी हो। चुनांचे मेरा यह शौक़ मशहूर व मारूफ़ है कि हुज़ूर के हमराज़ व दिल को भी इसमें मुझसे इख़्तिलाफ़ नहीं हो सकता। इस वास्ते अपने सबक़ ख़िदमाते साबिक़ा और हुज़ूर के इल्तिफ़ात पर ऐतबार करके मैं हुज़ूर से ऐसे मामले पर मुत्तफ़िक़ होने की इल्तजा करता हूँ जिस में ज़ाते ख़ास व ख़वासुआम के फ़वाइद मुज़्मिर हैं।

मुझको दरयाफ़्त हुआ है कि इस ख़ैरख़्वाह के ख़िलाफ़ जो तदबीरें हुई हैं उनकी तामील व अंजामदिही में बहुत कसीर ख़र्च हुआ है और ख़ज़ानए आमिरए शाही में जो कमी वाक़े हुई उसके रफ़ा करने के वास्ते हुज़ूर ने ख़िराज वसूल करने का हुक्म दिया है। वाज़ेह राय आलिये हुज़ूर हो कि आपके अज़ीमुश्शान बुज़ुर्ग मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ख़ुल्द-मक़ाम मुरफ़्फ़द ने पूरे बावन बरस तक कारोबार सल्तनत को बड़े इत्तिफ़ाक़ और इन्साफ़ से अंजाम दिया था, और हर फ़िरक़ा रिआया के आराम व आसाइश में कोशिश की थी। ख़्वाह कोई ईसाई हो या जन दहरियों के फ़िरक़े से हो जो दवामियत मादे से मुनकिर हैं या उस से जो ज़ुहूरे आलम को मुनहसर इत्तफ़ाक़ समझते हैं। उनकी सब पर

प्रभात कारण।

एक-सेवा है मत रजनी का, इससे वह आती चुपचाप
और विपिन की सब कलियों को विकसित कर हट जाती आप।
पुष्प, सुबह हट कर, सब कहते—हम हैं उषा काल के फूल;
और बोलती उषा मुसुकरा—ठीक, ठीक—इसमें क्या भूल?

असम्पूर्ण संवाद।

रोकर बोली कभी चकोरी—हे हे पूर्ण चन्द्र राकेश!
विरह-भय-वादी सुन मुझको होता है सन्देह विशेष;
क्या तेरा भी हो जावेगा प्रभात-काल आने पर अन्त?
चको निशापति! गति तब मेरी, सोचो, क्या होगा हा हन्त!!
कहा शशी ने—मेरी चिन्ता मत कर, जा पिऊों के पास
और एक या कब तक तेरे लिखा भाग्य में भोग-विलास!

अनुवादक—पारसनाथसिंह, बी० ए०।

काश्मीर की यात्रा।

कुछ दिनों से स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण मेरा विचार था कि किसी पहाड़ी स्थान में इस साल की गरमी बिताऊँ। मन में शिमला, नैनीताल, अल्मोड़ा अथवा दार्जिलिङ्ग जाने का विचार कर ही रहा था कि मेरे एक मित्र ने काश्मीर की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। उनके मुख से वहाँ के दृश्य और जलवायु की प्रशंसा सुन कर मेरे हृदय में यह प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हुई कि इस बार काश्मीर की सराई का दर्शन अवश्य करूँ। समय आने पर मैं कानपुर से चल कर लखनऊ और लाहौर होता हुआ रावलपिण्डी पहुँचा। पास ही एक धनी सज्जन की बनाई हुई धर्मपुरा नाम की धर्मशाला है। उसमें ठहरने का अच्छा प्रबन्ध है। प्रबन्धकर्ता महाशय भी सत्पुरुष हैं। जाते ही आपने मेरी बड़ी मदद की।

सवारी।

दूसरे दिन, अर्थात् पाँचवीं मई को, सन्ध्या-समय, मैं महाराज काश्मीर के दरबार के एक प्रतिष्ठित ज्योतिषी के साथ ताँगे पर रवाना हुआ। उनके साथ एक नौकर भी था। कुल ताँगे का किराया ४५) था। उसमें से मुझे ११=)॥ देने पड़े। रावलपिण्डी से श्रीनगर जाने के लिए पाँच तरह की सवारियाँ मिलती हैं।

(१) मामूली ताँगा—इसमें साधारणतः तीन आदमी बैठते हैं। ऐसे ताँगे लखनऊ, बरेली, मेरठ, लाहौर और रावलपिण्डी आदि सभी उत्तर-पश्चिमीय भारत के बड़े बड़े शहरों में पाये जाते हैं। इसका किराया प्रायः ३०-३५) होता है। एक आदमी को उसका तिहाई देना पड़ता है। अप्रिल के अन्त और मई के प्रारम्भ में महाराजा साहब का दफ़्तर जम्मू से उठ कर श्रीनगर जाता है। इस लिए ताँगे की दर बढ़ जाती है। एक आदमी को १६) या १७) तक देने पड़ते हैं। मामूली ताँगे के लिए यात्री को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। क्योंकि ताँगे वाले खुद ही धर्मशाला में आते और यात्रियों को तलाश करते हैं।

(२) धनजी भाई का ताँगा—धनजी भाई की एक इम्पीरियल कैरिंग कम्पनी (Imperial Carrying Company) है जो चिट्ठियाँ और माल आदि रावलपिण्डी से श्रीनगर और श्रीनगर से रावलपिण्डी ले जाने का प्रबन्ध करती है। इसके लिए साधारण ताँगे हैं। यात्री भी पूरा किराया देने से उनमें बैठ सकते हैं। एक सवारी का किराया २१०) है। यह ताँगा तीसरे दिन श्रीनगर पहुँचता है और मामूली ताँगा पाँचवें दिन। इसके घोड़े और हाँकने वाले प्रति पाँच मील पर बदलते हैं। ये ताँगे रात दिन चला करते हैं। मामूली ताँगे रात को नहीं चलते।

(३) धनजी भाई की फ़िटिन—इसका किराया सौ रुपये है। इसमें चार आदमी बैठते हैं। यह भी श्रीनगर तीन चार रोज़ में पहुँचती है। पर इसमें अधिक सामान रखने की गुञ्जायश नहीं। इसके यात्रियों को सामान के लिए प्रायः इक्के करने पड़ते हैं। इनका किराया मामूली ताँगे के किराये के प्रायः बराबर होता है।

(४) इक्का—इसमें भी, मामूली ताँगे की तरह, तीन आदमी बैठते तो हैं, पर ज़रा तकलीफ़ से। इससे फ़ायदा सिर्फ़ इतनाही है कि इसमें बहुत सामान रक्खा जा सकता है। बैठने की तकलीफ़ के सिवा इसकी सवारी कुछ ख़तरनाक भी है। क्योंकि बैठने की जगह बहुत ऊँची होती है।

(५) मोटरकार—इसका किराया कोई १२०) है। यह

समय आपके भतीजे सेवासिंहजी यहाँ थे। आप पर ही अतिथि-सत्कार का भार था।

झेलम नदी ।

रावलपिण्डी से ही काश्मीर का राज्य नहीं शुरू होता। यहाँ से ११ मील पर एक स्थान कोहाला है। यहीं पर ब्रिटिश राज्य का अन्त और काश्मीर राज्य का आरम्भ होता है। यहीं से झेलम की घाटी भी शुरू होती है और सड़क लगातार बारामूला तक, अर्थात् लगभग १०० मील तक, झेलम नदी के किनारे किनारे जाती है। इस नदी में बारामूला तक किश्ती नहीं चल सकती। क्योंकि यहाँ इसे पत्थरों के टुकड़ों पर से उछलते कूदते आना पड़ता है। बारामूला से आगे की सड़क, नदी का किनारा छोड़ कर, दूसरे रास्ते से जाती है। जब तक यह सड़क न बनी थी तब तक लोग बारामूला से किश्ती पर ही श्रीनगर जाते थे। बारामूला से आगे कुछ दूर पर प्रसिद्ध झील वूलर नाम की है। वूलर झील से निकलने पर झेलम नदी का नाम झेलम है। जहाँ तक वह इस झील में नहीं गिरती तब तक उसका नाम वितस्ता है। वह श्रीनगर से कोई ५० मील दक्षिण वीरनाग नामक एक झरने से निकलती है और श्रीनगर होती हुई वूलर में गिरती है।

मकान ।

श्रीनगर पहुँचने पर, अनजाने यात्रियों को सिक्खों की धर्म्मशाला में उतरना चाहिए। वहाँ उतर कर वे अपने रहने के लिए मकान अथवा हाउस-बोट (गृह-नौका) ठीक कर सकते हैं। यहाँ के मकान प्रायः काठ के हैं। दीवारें भी काठ की हैं, जिन पर मिट्टी का पलस्तर रहता है। कारण यह है कि यहाँ पहले भूकम्प अधिक हुआ करते थे और काठ सस्ता था। पर अब भूकम्प कम हो जाने और लकड़ी का ठेका हो जाने से ईंट के मकान बनने लगे हैं। मकानों में लगी हुई लकड़ी पर नक्काशी खूब होती है। इस काम में यहाँ के काश्मीरी मुसलमान बड़े चतुर हैं। मकानों की छत नक्काशी की हुई लकड़ी से मढ़ दी जाती है। इसमें अधिक खर्च भी नहीं पड़ता। मकानों का किराया यहाँ कम नहीं। जिस मकान में मैं १० दिनों तक ठहरा था उसका किराया (सिर्फ़ तीन छोटे कमरों का) ७॥) था। चार-पाँच मामूली कमरे लेने से ५), १०) देने पड़ते हैं। जिस तरह कलकत्ते आदि बड़े शहरों में एक कमरे में कई परिवार रहते हैं उसी तरह यहाँ भी होता है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही है कि यहाँ एक कमरा किराये पर नहीं मिलता। एक परिवार के लिए जितने कमरे चाहिए उतने ज़रूर लेने होंगे, चाहे आप उन्हें काम में लावें चाहे न लावें। किराया अधिक होने के प्रधान कारण ये हैं कि यहाँ, सिर्फ़ चार छः ही, मकानों की माँग, पाँच छः महीनों के लिए, बे-हद बढ़ जाती है। क्योंकि इन्हीं दिनों महाराजा साहिब का दफ़्तर जम्मू से उठ कर यहाँ आता है। जो लोग साल भर या और अधिक समय के लिए मकान किराये पर लेना चाहते हैं उन्हें वही मकान जिसका मैं ७॥) देता था, २॥), ३) पर मिल जायगा। बिजली की रोशनी भी ॥) महीना देने से मिल जाती है। मकानों की छत समतल नहीं होती, ढलवाँ मकानों के सदृश होती है। उस पर छत नहीं होती; मामूली मिट्टी या टीन होता है। इससे बर्फ़ फिसल कर नीचे गिर जाती है।

हाउस-बोट ।

किश्तियाँ छः तरह की होती हैं—(१) हाउस-बोट, (२) डूँगा-हाउस-बोट, (३) डूँगा, (४) कुकिङ्ग-बोट, (५) शिकारा और (६) बहत (बाबर)।

(१) हाउस-बोट—इनमें काठ के बने कई कमरे होते हैं। उनकी छत लकड़ी के तख़्तों की होती है। प्रायः सभी हाउस-बोटों पर एक ओर खुली छत रहती है, जिस पर बैठ कर यात्री चारों ओर का दृश्य देख सकते हैं। दरजे के मुताबिक कुर्सी, मेज़, चारपाई और बरतन आदि भी इनमें होते हैं। पहले दरजे के हाउस-बोट में ड्राइङ्ग-रूम, (बैठक) दो-तीन स्लीपिङ्ग-रूम, (शयनागार) एक डाइनिङ्ग-रूम, (भोजन-गृह) दो बाथ-रूम, (स्नानघर) एक सामान रखने का कमरा और दो-एक फ़ालतू कमरे होते हैं। इनमें अच्छी कुर्सियाँ और मेज़ें होती हैं। मेज़ों पर बेल-बूटेदार कपड़ा पड़ा रहता है और खिड़कियों और दरवाज़ों में सुन्दर पर्दे लगे रहते हैं। बात यह है कि रहनेवालों को मकान में जिन जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वे सब इनमें मिल जाती हैं। किराया इनका तीस चालीस रुपये महीना होता है। दूसरे, तीसरे

समय आपके भतीजे सेवासिंहजी वहाँ थे। आप पर ही अतिथि-सत्कार का भार था।

झेलम नदी ।

रावलपिण्डी से ही काश्मीर का राज्य नहीं शुरू होता। वहाँ से ६१ मील पर एक स्थान कोहाला है। यहीं पर ब्रिटिश राज्य का अन्त और काश्मीर राज्य का आरम्भ होता है। यहीं से झेलम की तराई भी शुरू होती है और सड़क लगातार बारामूला तक, अर्थात् लगभग १०० मील तक, झेलम नदी के किनारे किनारे जाती है। इस नदी में बारामूला तक किश्ती नहीं चल सकती। क्योंकि यहाँ इसे पत्थरों के टुकड़ों पर से उछलते कूदते जाना पड़ता है। बारामूला से आगे की सड़क, नदी का किनारा छोड़ कर, दूसरे रास्ते से जाती है। जब तक यह सड़क न बनी थी तब तक लोग बारामूला से किश्ती पर ही श्रीनगर जाते थे। बारामूला से आगे कुछ दूर पर प्रसिद्ध झील वूलर नाम की है। वूलर झील से निकलने पर झेलम नदी का नाम झेलम है। वहाँ जब तक वह उस झील में नहीं गिरती तब तक उसका नाम विडस्ता है। यह श्रीनगर से कोई २० मील दक्षिण वीरनाग नामक एक झरने से निकलती है और श्रीनगर होती हुई वूलर में गिरती है।

मकान ।

श्रीनगर पहुँचने पर, अनजाने यात्रियों को सिक्खों की धर्मशाला में ठहरना चाहिए। वहाँ ठहर कर वे अपने रहने के लिए मकान अथवा हाउस-बोट (गृह-नौका) ठीक कर सकते हैं। यहाँ के मकान प्रायः काठ के हैं। दीवारें भी काठ की हैं, जिन पर मिट्टी का पलस्तर रहता है। कारण यह है कि यहाँ पहले भूकम्प अधिक हुआ करते थे और काठ सस्ता था। पर अब भूकम्प कम हो जाने और लकड़ी का ठेका हो जाने से ईंट के मकान बनने लगे हैं। मकानों में लगी हुई लकड़ी पर नक्काशी खूब होती है। इस काम में यहाँ के काश्मीरी मुसलमान बड़े चतुर हैं। मकानों की छत नक्काशी की हुई लकड़ी से मढ़ दी जाती है। इसमें अधिक खर्च भी नहीं पड़ता। मकानों का किराया यहाँ कम नहीं। जिस मकान में मैं १० दिनों तक ठहरा था उसका किराया (सिर्फ़ तीन छोटे कमरों का) ७॥) था। चार-पाँच मामूली कमरे लेने से १५), २०) देने पड़ते हैं। जिस तरह कलकत्ते आदि बड़े शहरों में एक कमरे में कई परिवार रहते हैं उसी तरह यहाँ भी होता है। फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है कि यहाँ एक कमरा किराये पर नहीं मिलता। एक परिवार के लिए जितने कमरे चाहिए उतने ज़रूर लेने होंगे, चाहे आप उन्हें काम में लावें चाहे न लावें। किराया अधिक होने के प्रधान कारण ये हैं कि यहाँ, सिर्फ़ चार छः ही, मकानों की माँग, पाँच छः महीनों के लिए, बेहद बढ़ जाती है। क्योंकि इन्हीं दिनों महाराजा साहिब का दफ़्तर जम्मू से उठ कर यहाँ आता है। जो लोग साल भर या और अधिक समय के लिए मकान किराये पर लेना चाहते हैं उन्हें वही मकान जिसका मैं ७॥) देता था, ३॥) ४) पर मिल जायगा। बिजली की रोशनी भी ॥) महीना देने से मिल जाती है। मकानों की छत समतल नहीं होती; छप्पर वाले मकानों के सदृश होती है। उस पर गच नहीं होती; मामूली मिट्टी या टीन होता है। इससे बर्फ़ ढुलक कर नीचे गिर जाती है।

हाउस-बोट ।

किश्तियाँ छः तरह की होती हैं—(१) हाउस-बोट, (२) डूँगा-हाउस-बोट, (३) डूँगा, (४) कुकिङ्ग-बोट, (५) शिकारा और (६) बहत (या बर)।

(१) हाउस-बोट—इनमें काठ के बने कई कमरे होते हैं। उनकी छत लकड़ी के तख़्तों की होती है। प्रायः सभी हाउस-बोटों पर एक ओर खुली छत रहती है, जिस पर बैठ कर यात्री चारों ओर का दृश्य देख सकते हैं। दरजे के मुताबिक कुर्सी, मेज़, चारपाई और बरतन आदि भी इनमें होते हैं। पहले दरजे के हाउस-बोट में ड्राइङ्ग-रूम, (बैठक) दो-तीन स्लीपिङ्ग-रूम, (शयनागार) एक डाइनिङ्ग-रूम, (भोजन-गृह) दो बाथ-रूम, (स्नानसदन) एक सामान रखने का कमरा और दो-एक फ़ालतू कमरे होते हैं। इनमें अच्छी कुर्सियाँ और मेज़ें होती हैं। मेज़ों पर बेल-बूटेदार कपड़ा पड़ा रहता है और खिड़कियों और दरवाज़ों में सुन्दर पर्दे लगे रहते हैं। बात यह है कि रहनेवालों को मकान में जिन जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वे सब इनमें मिल जाती हैं। किराया इनका तीस चालीस रुपये महीना होता है। दूसरे, तीसरे

को उसका सा उद्योग करके उन्नति करने का उत्साह होगा।

फ्रैंकलिन उत्तरी अमेरिका के बोस्टन नगर में सन् १७०६ ई० में उत्पन्न हुआ था। उसका बाप बीस बरस पहले इँगलेंड से अमेरिका में आ कर बसा था। उसका कुटुम्ब बड़ा था, इस लिए वह सोच समझ कर चलता था। वह बुद्धिमान् और उद्योगी था और अपने लड़कों को विद्वान् बनाने के लिए सदा यत्न किया करता था।

फ्रैंकलिन के बड़े भाई ने एक छापाख़ाना खोला। उस समय फ्रैंकलिन की अवस्था केवल बारह बरस की थी। उसके बाप ने उसे भाई के अधीन कर दिया। फ्रैंकलिन को लड़कपन से ही पुस्तकें पढ़ने की बड़ी रुचि थी। इस कारण जो द्रव्य वह कमाता उसे बहुधा पुस्तकें मोल लेने में लगाता था। छापेख़ाने में रहने के कारण बहुत से पुस्तक बेचने वालों से उसकी जान पहचान हो गई। वह शाम को उनसे पुस्तकें माँग लाता और रात में पढ़ कर सबेरे लौटा आता था। इस रीति से उसकी बुद्धि दिन दिन बढ़ती गई और वह अपने भाई की विशेष सहायता करने लगा।

सोलह बरस की उम्र में बेंजमिन के हाथ एक पुस्तक लगी, जिसका आशय यह था कि अन्न और वनस्पतियों का आहार मनुष्यों के लिए सस्ता और हितकारी है। तब उसने इसी प्रकार का भोजन करने का निश्चय किया। अपने भाई से उसने कहा कि जितना व्यय मेरे भोजन में पड़ता है उसका आधा ही ख़र्च किया जाय, शेष रक्खा रहे, काम पड़ने पर माँग लिया करूँगा। भाई ने उसका कहना मान लिया। उसकी आधी कमाई बचने लगी, जिससे नई नई पुस्तकें लेने में उसे बड़ी सुगमता हुई। जब उसका भाई और छापेख़ाने के नौकर भोजन करने जाते तब वह वहीं रहता और खाकर कुछ न कुछ सीखा करता। जब वह कोई नई विद्या सीखने पर उतारू होता तब धीरज से अवश्य ही उसे सीख लेता। एक दिन की बात है कि उसे गणित का एक प्रश्न हल करने की आवश्यकता हुई। पर वह उसे न कर सका। इस पर वह बहुत लज्जित हुआ। उसी दिन से वह गणित के अभ्यास में तत्पर हो गया और जब तक उसमें निपुण न हो गया उसने दूसरे विषय के सीखने को मन न चलाया।

फ्रैंकलिन का भाई उसके साथ निठुरता का बर्ताव करता था। इस लिए वह नौकरी की खोज में फ़िलाडेलफिया गया। उस समय उसकी गाँठ में बहुत ही थोड़ा धन था। इस लिए वह वहाँ थोड़े दिन एक छापेख़ाने की नौकरी करके लन्दन गया और वहाँ नौकर हो गया। वह समय पर उपस्थित रह कर छापेख़ाने के अपने काम को बड़े ध्यान से करता था। इसलिए उसका स्वामी उससे बहुत सन्तुष्ट रहता था। वह अक्षर बड़ी फ़ुर्ती से जोड़ता था। इस लिए जल्दी के काम उसी को मिला करते थे। ऐसे कामों में धन भी अधिक मिलने लगा और ख़र्च के परहेज़ से धीरे धीरे उसके पास कुछ धन इकट्ठा भी हो गया।

लन्दन में डेढ़ बरस रह कर वह फ़िलाडेलफिया को लौट आया और फिर अपने पुराने स्वामी के यहाँ नौकरी करके बहुत सा रुपया कमाया। उस रुपये से उसने निज का छापाख़ाना खोल लिया और एक समाचार-पत्र निकालने लगा। इस समाचार-पत्र के चारों ओर ग्राहक हो गये और उसकी प्रतिष्ठा दिन दिन बढ़ने लगी। सम्पत्ति होने पर भी उसने अपने व्यवहार में तनिक भी अन्तर न पड़ने दिया। बहुधा हीन दशा से जो उन्नति पाते हैं वे इतराने और औरों को तुच्छ समझने लगते हैं। परन्तु फ्रैंकलिन ऐसा न था। ज्यों ज्यों उसकी बढ़ती होती गई त्यों त्यों वह और भी नम्र होता गया। वह यहाँ तक निरभिमानी था कि बाज़ार से काग़ज़ मोल लेकर, ठेले पर रख कर, आप ही उसे खींच

लाता था । कुछ दिन पीछे उसने विवाह किया । उसकी स्त्री भी शील-स्वभाव की अच्छी थी । इस कारण उन दोनों में बड़ा प्रेम था । उसने एक बड़ा पुस्तकालय साधारण लोगों के लिए खोला । उसमें चन्दा देने वालों को पुस्तकें देखने के लिए मिला करती थीं । अमेरिका में इस ढंग का यह पहला ही पुस्तकालय था । उसने "दि वे टु वेल्थ" (The Way to Wealth) अर्थात् धन उपार्जन करने का मार्ग नामक एक ग्रन्थ रचा । इस पुस्तक की अमेरिका में बड़ी बिक्री हुई । सन् १७२९ में वह गाँव के कामों पर ध्यान देने लगा । उन दिनों पुलिस की व्यवस्था अच्छी न थी । उसके सुधार के लिए बड़ा प्रयत्न करके उसने सरकार से अच्छा प्रबन्ध कराया । उसने आग से हानि होने का बीमा करने वाली कम्पनियाँ खड़ी करने के लिए लोगों को उत्साहित किया । उसने शिक्षा के लिए पाठशालायें खुलवाईं और अपने देश की रक्षा के लिए सेना रखवाई ।

इस समय फ़्रैंकलिन का मन पदार्थ-विज्ञान की ओर झुका । उसने यह सिद्ध कर दिया कि कृत्रिम बिजली, जो पदार्थों की रगड़ से उत्पन्न होती है, और स्वाभाविक बिजली (जो आकाश से गिरती है) में कुछ भेद नहीं है, और स्वाभाविक बिजली को आकाश से उतार सकते हैं । जब यह बात निश्चित हो गई तब उसने बिजली से बड़े बड़े ऊँचे घरों के बचाव की युक्ति अपनी बुद्धि से सोच निकाली । यह युक्ति यह थी कि ऊँचे ऊँचे मकानों में लोहे की छड़ें लगाई जायें, जिसका एक सिरा धरती में गड़ा रहे और दूसरा सिरा मकान के ऊपर निकला रहे । बिजली इसी छड़ के ऊपर गिर कर धरती में समा जाय और मकान को कुछ भी हानि न पहुँचे ।

उस समय फ़्रैंकलिन से बढ़ कर प्रतिष्ठित और कोई भी न था । इस असाधारण मनुष्य ने केवल विद्या ही के बल से इतनी प्रतिष्ठा पाई । इसकी विशेषता यह थी कि उसने किसी पाठशाला में किसी अध्यापक से कुछ नहीं पढ़ा । जो कुछ विद्या उसको प्राप्त हुई वह उसके ही परिश्रम का फल था । वह निर्धन था, तो भी अपने जेब-ख़र्च में से पुस्तकों के लिए कुछ बचा रखता था और जिन पुस्तकों को वह न मोल ले सकता था उन्हें औरों से कुछ काल के लिए माँग लाता था । जीविका के लिए दिन भर तो वह काम काज में लगा रहता और आधी रात तक पुस्तकें देखा करता था ।

फ़्रैंकलिन जैसा विद्वान् था वैसा ही स्वदेश-हितैषी भी था । इस कारण उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि राज्य-सम्बन्धी सभाओं में उसको कुर्सी मिलने लगी । अमेरिका के निवासी अँगरेज़ों ने स्वाधीन होने के लिए इँगलैंड से युद्ध आरम्भ किया । उस समय उन्होंने फ़्रैंकलिन को फ़्रांस के दरबार में अपनी ओर से प्रतिनिधि बना कर भेजा । उसने वहाँ जाकर अपने देश वालों से फ़्रांस वालों की मित्रता कराई । इस कारण फ़्रांस और इँगलैंडवालों में युद्ध हुआ । जिस समय फ़्रैंकलिन फ़्रांस देश के पेरिस नगर में था उस समय एक आयर्लैंड-निवासी, जो वहाँ रहता था, बड़ी दुर्दशा में था । उसने एक बार फ़्रैंकलिन से कुछ सहायता माँगी । फ़्रैंकलिन ने उसे लिखा कि पत्र के साथ दस मोहरों की थैली तुम्हारे पास भेजी जाती है । ये मोहरें मैंने तुम्हें दे नहीं डालीं, किन्तु तुम इनको उधार समझो । आशा है कि जब तुम अपने देश लौट जाओगे तब तुम्हारी जीविका का कहीं न कहीं ठिकाना हो ही जायगा । उस समय तुम अपना ऋण भी चुका सकोगे । रुपया सामर्थ्य होने पर जब तुम किसी मनुष्य को ऐसी ही अवस्था में देखो जैसी अवस्था में तुम इस समय हो तब उसे यही मोहरें दे देना, और उससे कह देना कि जैसे तुम्हें मिला है, वह देना । ऐसा करने से तुम उऋण हो जाओगे । मैं चाहता हूँ कि इसी तरह इन

रुपये से बहुतों का काम निकले। मैं बड़ा धनी नहीं हूँ। तो भी थोड़े ही धन से, जहाँ तक बन पड़े, दीन-दुखियों का उपकार करना चाहता हूँ। इस लिए मैंने तुमको यह पत्र लिखा है।

अन्त में इँगलेंड और अमेरिका वालों में सन्धि हो गई, जिससे अमेरिका के निवासी स्वतन्त्र हो गये। उस सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए अमेरिका वालों ने बेंजमिन को ही भेजा। दो बरस इँगलेंड में रह कर वह अपने देश को लौट आया। लौट आने पर, उसके उपकारों का स्मरण करके, उसके देश-निवासियों ने उसे अपना प्रेज़िडेन्ट अर्थात् सभापति बनाया।

यह महान् पुरुष पचासी बरस की अवस्था में, अप्रैल की सत्रहवीं तारीख़ को, सन् १७९० में, परलोक सिधारा।

"—सिंह—शर्म्मा"।

बाबू।

मैंने पहले पहल बङ्गाल के विचित्र जन्तु "बाबू" का नाम कानपुर में सुना। अब तो उसके विषय में बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। एक दिन मैं अपने एक मित्र की प्रतीक्षा में बैठा था कि वे अत्यन्त झल्लाये हुए आये और आराम-कुरसी पर चित पड़ गये। मैंने धीरे से पूछा कि आप आज क्रुद्ध क्यों हैं? उन्होंने कहा—हमारा बाबू हमारा प्राण लेकर ही छोड़ेगा। मुझे विस्मय हुआ कि यह बाबू कौन है? मैंने अफ़रीक़ा देश के 'बबून' आदि कई जन्तुओं को तो देखा था, पर बाबू जन्तु का नाम तक न सुना था, देखने की तो बात ही दूर रही। मैंने अपने मित्र से पूछा—क्यों जी, बाबू कैसा जन्तु है? इस पर वे इतना हँसे कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। किसी प्रकार हँसी रोक कर वे बोले—"भाई क्या जन्म भर में कभी बाबू नहीं देखा?" बाबू एक विचित्र और भयानक जन्तु है।

अब तो मुझे इस जन्तु को देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। मैंने अपने मित्र से कहा—उसके पोषक से कहिए, वह बाबू को लाकर मुझे दिखा दे। पर उन्होंने कहा—बाबू को पोषक की आवश्यकता नहीं होती। वह तो यथेच्छ घूमा फिरा करता है। यह सुन कर मुझको और भी विस्मय हुआ। इस पर फिर भी अत्यन्त उत्सुक होकर मैंने पूछा—वाह भाई! वह कौन सा जन्तु है? मेरे मित्र ने उत्तर दिया—यह जन्तु बङ्गाल में पाया जाता है। इसके कारण मुझे दारुण दुःख उठाना पड़ता है। कभी कभी तो मुझे इतना क्रोध आ जाता है कि मैं आपे से बाहर हो जाता हूँ। बाबू ऐसा विचित्र जन्तु है कि बिना ही बुलाये आपके पास आ जायगा। फिर कभी वह आपका पिण्ड ही न छोड़ेगा। यहाँ तक कि आपको उल्लू बना डालेगा।

मुझ से रहा न गया। बात काट कर मैं बोल उठा कि ऐसे जन्तु को आपने रक्खा ही क्यों? उत्तर मिला कि झखमार कर रखना ही पड़ा। प्रत्येक साहब* के पास एक एक बाबू रहता है। क्योंकि बाबू के बिना इस देश में हम से कोई काम ही नहीं हो सकता। बाबुओं के द्वारा काम बड़ा सस्ता होता है। बाबू सचमुच ही बड़े काम का पशु है।

मेरी उलझन बढ़ती ही गई। उनकी बात ज़रा भी मेरी समझ में न आई। तब मैंने और भी उत्कण्ठित होकर पूछा कि जब बाबू ऐसे दुष्ट जन्तु हैं तब वे मार क्यों नहीं डाले जाते?

मित्र—दुष्ट तो वे अवश्य हैं, पर उन्हें मारे कौन? मुझे तो इतना साहस नहीं। बाबू ऐसे वैसे

---

* अँगरेज़

गाड़ी चल देती थी। इससे मैं समझता कि ये लोग बाबू बाबू को इस लिए पुकारते हैं कि गाड़ी खींचने में उनकी हिम्मत कम न हो जाय।

गाड़ी में एक मैजिस्ट्रेट साहब मेरे पास ही बैठे थे। मैंने उनसे धीरे से कहा कि मुझे बाबू को देखने की बड़ी उत्कण्ठा है। पर साहब ने उत्तर दिया कि ऐसा मत करना। उनको छूना ही पाप है। मैं सर्वदा उनसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ और अभिलाषा रखता हूँ कि इसमें सफल होऊँ। इस पर मैंने पूछा कि ऐसा है तो आप उनको अपने पास ही क्यों आने देते हैं?

साहब ने भुनभुनाते हुए उत्तर दिया—"उनको रोकना मेरी शक्ति के बाहर है।"

इसी डब्बे में एक पादरी साहब भी थे। बाबू जन्तु का नाम लेते ही पादरी साहब बोल उठे कि इन्हीं के कारण मैं ईसाई मत का प्रचार अच्छी तरह नहीं कर सकता। मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा कि ये बाबू सिविलियनों के तो सब से बड़े शत्रु हैं। चाहे जो हो, इनको अवश्य दबाना चाहिए। गाड़ी में एक डाक्टर साहब भी बैठे थे। उन्होंने भी शपथ-पूर्वक कहा कि मैं बाबू-शून्य स्थान में बदली कराने की भरसक चेष्टा करूँगा। मैं अवसर को कदापि हाथ से न जाने दूँगा। क्योंकि एक बाबू ने मेरी नाक में दम कर रक्खा है। यह मेरी जीविका में बाधा डाल रहा है। इस पर उसी डब्बे में बैठे हुए एक इञ्जिनियर साहब तो इतने बिगड़े कि एक बाबू को गाली देते देते घूँसे से किवाड़ पीटने लगे, यहाँ तक कि बेचारा किवाड़ टूटते टूटते बचा। मतलब यह कि मैजिस्ट्रेट, पादरी, डाक्टर, इञ्जिनियर सभी को बाबू से नफ़रत थी और सभी उससे दूर रहा चाहते थे।

मेरे लिए इतना मसाला काफ़ी से भी अधिक था। मेरा रिवालवर बिगड़ गया था। अतएव ऐसे समय में मैं कदापि बाबू का सामना करने को प्रस्तुत न होता। मैं सोच ही रहा था कि मैजिस्ट्रेट ने कहा—भाई! हवड़े के स्टेशन पर ढेर के ढेर बाबू मिलेंगे। सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा। मुझ पर मानों बिजली सी गिरी। अब मुझ पर बड़ी भारी चिन्ता सवार हो गई। मैं उसी में निमग्न था कि स्टेशन आ गया। मेरे सहयात्री तो साहस-पूर्वक किवाड़ खोल उतर पड़े। पर उन लोगों की बात-चीत सुन कर मैं इतना डर गया था कि तत्काल बाबू के सामने जाने को उद्यत न हो सका। अतएव मैं गाड़ी ही में घूमता रहा। मैं चारों तरफ़ आँखें उठा उठा कर देखने लगा कि कहीं बाबू दिखाई दे। पर, कुली बहुत तङ्ग करने लगे। मैंने उनसे अँगरेज़ी में पूछा कि क्या कोई बाबू यहाँ है? बस, फ़ौरन कुली दौड़ कर एक हिन्दुस्तानी को बुला लाया। उस मनुष्य ने बड़े ही आदर-पूर्वक, जैसा कि इन लोगों का व्यवहार सदा ही साहबों के साथ होता है, मुझ से पूछा—आपको क्या चाहिए? मैं कहता क्या? आख़िर मैंने कहा—मैं उतरूँगा। वह मनुष्य आदरपूर्वक मेरा असबाब स्टेशन पर रखने लगा। परन्तु मैं तब तक गाड़ी ही में रहा और उत्कण्ठा-पूर्वक इधर उधर देखता रहा।

उस मनुष्य ने फिर पूछा—आपको क्या चाहिए? मैंने काँपते हुए कहा—अरे! भा—भाई! क्या सब बा—बा—बाबू चले गये? उसने उत्तर दिया—नहीं, सब नहीं गये। मैंने उसके कान में मुँह लगा कर धीरे से पूछा कि वे कहाँ हैं। उसने कहा—क्यों, आप चाहते क्या हैं? मैंने कहा—अ—अरे! भा—भा—भाई! मैं योंहीं पूछता हूँ, ज़ोर से न बोलो। उसने उत्तर दिया—महाशय! मैं स्वयं बाबू हूँ। इतना सुनते ही मेरे मुँह से निकला—आप! बाबू!

नाना फड़नवीस।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

प्रकार की होती है वैसी ही इस ग्रन्थ की है। इसमें निरीश्वर-वाद का आभास भी नहीं है, प्रत्युत चौथे सूत्र में सेश्वरवाद ही का निरूपण है। अन्य सांख्य ग्रन्थ इसी मूल सांख्य-ग्रन्थ के विस्तार-रूप मालूम होते हैं—

अथाध्यात्मिकादित्रिविधदुःख-कर्म-वासना-समुद्रपतितान् अनाथान् दीधीर्षुः परमकृपालुः स्वतःसिद्धज्ञानो महर्षिर्भगवान् कपिलो ब्रह्मसुतो द्वाविंशतिसूत्राण्युपादिशत्। सूचनात्सूत्रमिति हि व्युत्पत्तिः। एतैः सूत्रैः समस्ततत्त्वानां संक्षपरिगणनमात्रं सूचनं भवति। तस्मादेव सकलसांख्यतीर्थमूलभूतम्। तीर्थान्तराण्यपि चैतत्प्रपञ्चभूतान्येव। सूत्रषडध्यायी तु वैश्वानरावतारभगवत्कपिलप्रणीता। इयन्तु द्वाविंशतिसूत्री तस्या अपि बीजभूता ब्रह्मसुतमहर्षिभगवत्कपिलप्रणीतेति वृद्धा वदन्ति।

ऊपर के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि क्लेश-कर्म-वासनाओं के समुद्र में निमग्न जीवों के उद्धारार्थ परम कृपालु, स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, ब्रह्माजी के पुत्र, महर्षि कपिलदेवजी ने इस सूत्रमय सांख्य-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें तत्त्व-समूह की सूचना है। इसीसे इसे सूत्र-रूप कहते हैं। यही आदि-सांख्य-सूत्र सांख्य-शास्त्र का मूल-रूप अर्थात् बीज है। सांख्य-शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ क्यों न हों, ये सब इन्हीं २२ सूत्रों के विस्तार रूप हैं। "सूत्र-षडध्यायी सांख्य"—जो वर्तमान समय में सांख्य-प्रवचन नाम से प्रसिद्ध है, अग्नि के अवतार भगवान् कपिल का बनाया हुआ है। वह भी द्वाविंशति-सूत्र आदि सांख्यग्रन्थ का प्रपञ्च-रूप है।

इससे सिद्ध है कि तत्त्वसमास अथवा द्वाविंशतिसूत्री नामक आदि-सांख्य-ग्रन्थ ब्रह्मा के पुत्र महर्षि-कपिल का बनाया हुआ है और सांख्य-प्रवचन, जो आधुनिक समय में प्रचलित है, वैश्वानरावतार कपिल का बनाया हुआ है। इस पिछले ग्रन्थ में निरीश्वर-वाद की तर्कना है।

आदि विद्वान् ब्रह्म-पुत्र कपिल-ऋषि मूल-सांख्य-प्रणेता हैं। उनके शिष्य आसुरि और वोढु हुए। आसुरि के शिष्य पञ्च-शिखाचार्य और पञ्च-शिखाचार्य के शिष्य ईश्वरकृष्ण हुए, जिनकी बनाई हुई कारिकायें बहुत मान्य समझी जाती हैं। इस प्रकार क्रमशः सांख्य मत का प्रचार हुआ। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तन्त्र इत्यादि समस्त ग्रन्थ सांख्य-मत से भरे हुए हैं। ऐसा कोई ऋषि नहीं जो सांख्य-मत का अङ्गीकार न करे। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने भी सांख्य-मत का अवलम्बन किया है। वैश्वानरावतार कपिल का वर्णन महाभारत में है—

सगरस्यात्मजा वीरा मन्त्रहीनाः सुदारुणाः।
अकल्मषाः क्रमपापां कर्तां क्रोधान्वितस्तु सः।
कपिलं परमर्षिं च प्राहुर्वेदविदः सदा।
अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः॥

शङ्कराचार्यजी ने अपने शारीरक-भाष्य में लिखा है कि यही कपिल-ऋषि सांख्य-प्रवचन-सूत्र के बनाने वाले तथा सगर राजा के ६०००० पुत्रों के भस्म-कर्त्ता हुए हैं।

तीसरे कपिलदेवजी के विषय में श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कन्ध, के २४—३३ अध्याय देखिए—

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात्।
प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने॥

अध्याय २४—श्लोक ३६

इन्हीं कपिलदेवजी ने अपनी माता देवहूति को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। ये ईश्वर के अवतार थे। इन्होंने स्वयं अपनी माता से यह बात कही है। इससे ये सांख्य-शास्त्र-प्रणेता कपिलदेव नहीं, किन्तु वेदान्तादि के उपदेशकर्त्ता हैं। इस कारण मूल सांख्य-शास्त्र के रचयिता ब्रह्माजी के पुत्र कपिलदेव ही हैं। उन्हीं के सांख्य-सूत्रों का अनुसरण करके सांख्य-प्रवचन आदि ग्रन्थ बनाये गये हैं।

श्रीकृष्णशास्त्री तैलङ्ग

———

प्रकार की होती है वैसी ही इस ग्रन्थ की है। इसमें निरीश्वर-वाद का आभास भी नहीं है; प्रत्युत चौथे सूत्र में सेश्वरवाद ही का निरूपण है। अन्य सांख्य ग्रन्थ इसी मूल सांख्य-ग्रन्थ के विस्तार-रूप मालूम होते हैं—

अथाज्ञानादिक्लेश-कर्म-वासना-समुद्रपतितान् अनाथान् दिदीर्षुः परमकृपालुः स्वतःसिद्धज्ञानो महर्षिर्भगवान् कपिलो ब्रह्मसुतो द्वाविंशतिसूत्राण्युपादिक्षत्। सूचनात्सूत्र-मिति हि व्युत्पत्तिः। तत एतैः समस्ततत्त्वानां सकलषष्टि-तन्त्रार्थानां सूचनं भवति। ततश्चेदं सकलसांख्यतीर्थमूल-भूतम्। तीर्थान्तराण्यपि एतत्प्रपञ्चभूतान्येव। सूत्रषडध्यायी तु वैश्वानरावतारभगवत्कपिलप्रणीता। इयन्तु द्वाविंशतिसूत्री तस्या अपि बीजभूता ब्रह्मसुतमहर्षिभगवत्कपिलप्रणीतेति वृद्धा वदन्ति।

ऊपर के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि क्लेश-कर्म-वासनाओं के समुद्र में निमग्न जीवों के उद्धारार्थ परम कृपालु, स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, ब्रह्माजी के पुत्र, महर्षि कपिलदेवजी ने इस सूत्रमय सांख्य-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें तत्त्व-समूह की सूचना है। इसीसे इसे सूत्र-रूप कहते हैं। यही आदि-सांख्य-सूत्र सांख्य-शास्त्र का मूल-रूप अर्थात् बीज है। सांख्य-शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ क्यों न हों, वे सब इन्हीं २२ सूत्रों के विस्तार रूप हैं। "सूत्र-षडध्यायी सांख्य"—जो वर्तमान समय में सांख्य-प्रवचन नाम से प्रसिद्ध है, अग्नि के अवतार भगवान् कपिल का बनाया हुआ है। यह भी द्वाविंशति-सूत्र आदि सांख्यग्रन्थ का प्रपञ्च-रूप है।

इससे सिद्ध है कि तत्त्वसमास अथवा द्वाविंशतिसूत्री नामक आदि-सांख्य-ग्रन्थ ब्रह्मा के पुत्र महर्षि-कपिल का बनाया हुआ है और सांख्य-प्रवचन, जो आधुनिक समय में प्रचलित है, वैश्वानरावतार कपिल का बनाया हुआ है। इस पिछले ग्रन्थ में निरीश्वर-वाद की तर्कना है।

आदि विद्वान् ब्रह्म-पुत्र कपिल-ऋषि मूल-सांख्य-प्रणेता हैं। उनके शिष्य आसुरि और वोढु हुए। आसुरि के शिष्य पञ्च-शिखाचार्य्य और पञ्च-शिखाचार्य्य के शिष्य ईश्वरकृष्ण हुए, जिनकी बनाई हुई कारिकायें बहुत मान्य समझी जाती हैं। इस प्रकार क्रमशः सांख्य मत का प्रचार हुआ। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तन्त्र इत्यादि समस्त ग्रन्थ सांख्य-मत से भरे हुए हैं। ऐसा कोई ऋषि नहीं जो सांख्य-मत का अङ्गीकार न करे। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने भी सांख्य-मत का अवलम्बन किया है। वैश्वानरावतार कपिल का वर्णन महाभारत में है—

> सगरस्यात्मजास्तेन ये विमर्दिं हुताशनम्।
> अकल्मषः कल्मषारी कर्त्ता क्रोधाश्रितस्तु सः।
> कपिलं परमर्षिञ्च यं प्राहुर्यतयः सदा।
> अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः॥

शङ्कराचार्य्यजी ने अपने शारीरक-भाष्य में लिखा है कि यही कपिल-ऋषि सांख्य-प्रवचन-सूत्र के बनाने वाले तथा सगर राजा के ६०००० पुत्रों के भस्म-कर्त्ता हुए हैं।

तीसरे कपिलदेवजी के विषय में श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कन्ध, के २४—३३ अध्याय देखिए—

> एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात्।
> प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने॥
>
> अध्याय २४—श्लोक ३६

इन्हीं कपिलदेवजी ने अपनी माता देवहूति को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। ये ईश्वर के अवतार थे। इन्होंने स्वयं अपनी माता से यह बात कही है। इससे ये सांख्य-शास्त्र-प्रणेता कपिलदेव नहीं, किन्तु वेदान्तादि के उपदेशकर्त्ता हैं। इस कारण मूल सांख्य-शास्त्र के रचयिता ब्रह्माजी के पुत्र कपिलदेव ही हैं। उन्हीं के सांख्य-सूत्रों का अनुसरण करके सांख्य-प्रवचन आदि ग्रन्थ बनाये गये हैं।

श्रीकृष्णशास्त्री तैलङ्ग

———

पारस पत्थर।

रसायन-शास्त्र का इतिहास देखने से पता लगता है कि एक समय कुछ मनुष्य पारस नामक पत्थर की खोज में व्यस्त थे। उस समय आधुनिक रसायन-शास्त्र की नींव भी न पड़ी थी। इस प्रकार के मनुष्यों का यह दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी में अवश्य ही कोई ऐसी वस्तु है जिसके स्पर्श से लोहा आदि धातुयें सुवर्ण हो जाती हैं। उन लोगों में इस प्रकार का विश्वास कैसे पैदा हुआ, इसका पता नहीं लगता। वे वर्तमान समय के वैज्ञानिकों की तरह बिजली की भट्ठी तथा उष्णता और वायु मापने वाले यन्त्रों का व्यवहार न करते थे। वे लोहे को सोना बनाने के लिए अनेक प्रकार के वृक्षों के रस, तन्त्र-मन्त्र और पूजा-पाठ आदि का आश्रय लेते थे। सुनते हैं, इस प्रकार उन्होंने इस कार्य में *सिद्धि* भी प्राप्त कर ली थी। किन्तु इस श्रेणी के रसायन-शास्त्रवेत्ता अब संसार में नहीं, उनके पोथी-पत्रे भी नष्ट हो गये। इस दशा में यह जानने का अब कोई उपाय नहीं कि उन्होंने पारस पत्थर की खोज में किस मार्ग का अवलम्बन किया था। उन लोगों का केवल नाम रह गया है। अँगरेज़ी में वे अलकेमिस्ट कहाते हैं।

वर्तमान समय के वैज्ञानिकों ने उन अलकेमिस्टों के अद्भुत विचारों और पागलपन की बातों का स्मरण करके उनकी कितनी हँसी उड़ाई है, इसकी सीमा ही नहीं। किन्तु गत दस वर्षों के भीतर रसायन-शास्त्र में कई एक अद्भुत अद्भुत आविष्कार हुए हैं। उनसे इन हँसने वालों को पता लग गया है कि अलकेमिस्ट लोग पागल न थे। उन्होंने भी कई प्रकार की साधनाओं का अवलम्बन किया था और उनके द्वारा उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी। इँगलेंड के प्रसिद्ध रसायन-शास्त्रवेत्ता रेमज़े साहब (Sir William Ramsay) यह बात अब साफ़ साफ़ स्वीकार करने लगे हैं कि लोहे का सोना और ताँबे की चाँदी बनाना असाध्य काम नहीं। इस दशा में कई वैज्ञानिकों पहले जिस प्रकार अलकेमिस्ट लोग पारस की खोज में व्यतिव्यस्त थे उसी प्रकार वर्तमान समय के वैज्ञानिक भी उस खोज में दौड़धूप करने लगे हैं।

रेमज़े साहब के आविष्कार की बात जानने के लि[ए] पहले एक भूमिका की आवश्यकता है। सृष्टि-तत्व की च[र्चा] करते ही बहुत पहले समय के पण्डित लोग पञ्चभूतों [का] नाम सुनाने लगते थे। उन लोगों का विश्वास था [कि] पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच तत्वों [से] ही इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। ये पाँचों तत्व मू[ल] पदार्थ हैं, अर्थात् इनका और कोई रूपान्तर नहीं [हो] सकता। ये वृक्ष और लतायें, पशु और पक्षी, स्त्री [और] पुरुष सब इन्हीं पाँच पदार्थों के ही विचित्र संयोग से [बने] हुए हैं। वे सब जब नष्ट होते हैं तब इन्हीं पाँच पदार्थों [में] मिल जाते हैं। पुराने पण्डितों का यह सिद्धान्त वर्तमा[न] समय के वैज्ञानिकों के सामने स्थिर न रह सका। पि[छली] उन्नीसवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाल्टन् साहब [ने] यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि पृथ्वी, अप् आदि मूल पदा[र्थ] नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक का विश्लेषण किया जा सक[ता] है और विश्लेषण करने पर प्रत्येक में एक से अधिक पदा[र्थ] दृष्टिगोचर होते हैं। डाल्टन् साहब ने सिद्ध किया कि ब्र[ह्म]ाण्ड पञ्च-महाभूतों से नहीं बना। इसकी उत्पत्ति हा[इ]ड्रोजन, आक्सिजन आदि वायव, गन्धक, अङ्गार आदि कठिन और स्वर्ण, रौप्य आदि धातव पदार्थों से हुई है। उन्होंने यह भी प्रत्यक्ष दिखला दिया कि वायु, जल आदि पदार्थ आक्सिजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन आदि से ब[ने] हैं। इस दशा में प्राचीन समय के पञ्च महाभूतों के स्थान पर और भी अनेक भूतों की कल्पना हुई। वैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया कि हाइड्रोजन, आक्सिजन, गन्धक, स्वर्ण और रौप्य आदि कोई अस्सी पदार्थों से इस विश्व की सृष्टि हुई है। ये अस्सी पदार्थ ही वास्तव में मूल पदार्थ हैं। इनका नाश ... नहीं

परीक्षा की। उन्होंने देखा कि यह धातु अपने आप विश्लिष्ट होकर परमाणु से भी अधिक छोटे छोटे कणों में विभक्त हो जाती है। रेडियम धातु मूल पदार्थ मानी गई थी। मूल पदार्थ का इस प्रकार विश्लिष्ट होना देख सारे संसार के विज्ञानवेत्ता चकित हो गये। क्यूरी साहब रेडियम का ही विश्लेष दिखला कर शान्त न हुए। उन्होंने थोरियम, यूरेनियम आदि अनेक धातु-सम्बन्धी मूल पदार्थों का भी विश्लेषण कर दिखाया। ये सब पदार्थ विश्लिष्ट होकर एक अनन्त सूक्ष्म पदार्थ में परिणत हो गये, यह भी विद्वानों ने प्रत्यक्ष देखा। परमाणु के इन अनन्त सूक्ष्म टुकड़ों का नाम इलेक्ट्रान अथवा अति-परमाणु रक्खा गया।

क्यूरी साहब के पूर्वोक्त आविष्कार को हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। तथापि, इतने थोड़े समय में ही इस आविष्कार की बात सुन कर रदरफोर्ड, सडि, टामसन आदि वर्तमान समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने इस विषय पर अलग अलग विचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके इस विचार का अन्त आज तक नहीं हो सका। तथापि इस विचार की बदौलत विज्ञान की नई नई बातें रोज़ ही मालूम हो रही हैं। इन वैज्ञानिकों को परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि रेडियम विश्लिष्ट होकर केवल इलेक्ट्रान, अर्थात् अति-परमाणु, में ही परिणत नहीं हुआ, किन्तु साथ ही साथ वह नाइटन (Niton) नामक एक और नवीन धातु में भी रूपान्तरित हो गया। रेडियम से रूपान्तरित होने पर यह नाइटन नामक पदार्थ हेलियम तथा रेडियम जाति के एक और पदार्थ (Radium-A) में भी परिणत हो जाता है। इस प्रकार जो पदार्थ इस समय तक मूल पदार्थ माने गये थे उन्हीं को विश्लिष्ट और रूपान्तरित होते देख इन वैज्ञानिकों के आश्चर्य की सीमा न रही।

ऊपर के इन आविष्कारों से डाल्टन् साहब का परमाणु-सम्बन्धी सिद्धान्त एकदम डाँवाडोल हो गया। वैज्ञानिक लोग कहने लगे कि हाइड्रोजन, आक्सिजन आदि धातु और अधातु-सम्बन्धी सत्तर ही पदार्थ जगत् के मूल पदार्थ नहीं। जगत् का मूल पदार्थ केवल इलेक्ट्रान अर्थात् अति-परमाणु है। वह, न्यूनाधिक संख्या में सम्मिलित होकर हमारे सुपरिचित आक्सिजन, हाइड्रोजन तथा सुवर्ण, लोह आदि को उत्पन्न करता है। इन विज्ञानवेत्ताओं को यह भी निश्चय हो गया कि इस ब्रह्माण्ड में केवल रेडियम, अथवा उसी की जाति का कोई अन्य पदार्थ ही रूपान्तर ग्रहण करके अति-परमाणु में परिणत नहीं होता, किन्तु सृष्टि की सभी अन्यान्य वस्तुयें धीरे धीरे नष्ट होकर अति-परमाणु में परिणत हो जाती हैं। यह अति परमाणु ही पुनः इकट्ठा होकर संसार में एक नई वस्तु उत्पन्न करता है। ये लोग अब अपनी कल्पना-दृष्टि से देखने लगे कि संसार की यह सृष्टि इसी प्रकार के उत्थान-पतन द्वारा अस्तित्व में आती है। इस उत्थान-पतन का न आदि है, न अन्त।

जिस समय संसार के अन्यान्य वैज्ञानिक पूर्वोक्त आविष्कारों की ओर आकृष्ट हो रहे थे उस समय इँगलैंड के सुप्रसिद्ध रसायन-शास्त्री सर विलियम रैमज़े एकमात्र रेडियम के सम्बन्ध में ही शान्तिपूर्वक मनन कर रहे थे। उन्होंने परीक्षा द्वारा देखा कि रेडियम रूपान्तरित होकर नाइटन में परिणत हुआ और नाइटन अपनी बहुत कुछ उष्णता का परित्याग करके हेलियम हो गया। यह सब लीला रेडियम की ही अन्तर्निहित शक्ति से हुई। उन्होंने हिसाब लगा कर देखा कि एक घन सेंटिमेटर (One Cubic Centimeter) स्थान में रक्खा हुआ नाइटन जब विश्लिष्ट होकर हेलियम आदि में परिणत होता है तब उस आयतन के चालीस लाख गुने हाइड्रोजन को जलाने से जितना ताप उत्पन्न होता है, उतना ही ताप उससे आप ही पैदा होता है। उन्होंने निश्चय समझ लिया कि यह अत्यधिक शक्ति रेडियम ही के भीतर छिपी रहती है। रेडियम विश्लिष्ट होकर जिस समय लघु पदार्थ में परिणत होता है, उस समय उसकी यह शक्ति ताप उत्पन्न करने लगती है। रैमज़े साहब को विश्वास हो गया कि ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों में इसी प्रकार अत्यधिक शक्ति संचित है। बलपूर्वक संचित उस शक्ति के लुकाने का द्वार खोल कर ही प्रकृति देवी संसार में उत्थान-पतन के नये नये तमाशे दिखाती है। रेडियम जैसी गुरु वस्तु जब अपनी अन्तर्निहित शक्ति को त्याग कर नाइटन और हेलियम आदि लघु वस्तुओं में परिणत हो जाती है तब लघु वस्तुओं पर अधिक शक्ति डाल कर क्या वह उन्हें वैसी ही गुरुतर नहीं बना सकती? यह प्रश्न रैमज़े साहब के चित्त में उदित हुआ। यदि ऐसी रासायनिक प्रक्रिया का आविष्कार हो जाय तो

लोहे से सोना बनाना सहज हो जायगा। सभी विज्ञान-वेत्ता रैमज़े साहब की इस बात से सहमत हो गये।

प्रकृति के कार्यों की प्रणाली का आविष्कार करना कठिन बात नहीं, किन्तु जिन उपकरणों और जिन अपरिमित शक्तियों के प्रयोग द्वारा प्रकृति संसार का काम चलाती है उन सब का अनुकरण करना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है। रैमज़े साहब इस कठिनाई से अनभिज्ञ न थे। तथापि वे किसी कृत्रिम उपाय से शक्ति-प्रयोग द्वारा लघु पदार्थ को एक स्वतन्त्र शुद्ध पदार्थ में परिणत करने की चेष्टा करने लगे। पर उन्हें इस प्रकार के किसी भी कृत्रिम उपाय का पता न लगा। साथ ही, विश्लिष्ट होने के समय रेडियम अपने पिण्ड से जो विपुल शक्ति उत्पन्न करता है उसका भी अनुसन्धान वे न कर सके। इसी समय रैमज़े साहब के मन में एक बात पैदा हुई। वे सोचने लगे कि विश्लिष्ट होते समय नाइटन अपने पिण्ड से जो शक्तिराशि बाहर निकालता है उसका यदि और किसी लघु पदार्थ पर प्रयोग किया जा सके तो शायद वह पदार्थ शुद्ध पदार्थ बन जाय। इस प्रकार का सोच-विचार करके ही वे शान्त न हुए। उन्होंने परीक्षा भी आरम्भ कर दी। पहले वे विशुद्ध जल की कुछ बूँदों में नाइटन डाल कर यह देखने लगे कि जल के हाइड्रोजन और आक्सिजन में कुछ परिवर्तन होता है या नहीं। जल यथारीति विश्लिष्ट होकर हाइड्रोजन और आक्सिजन उत्पन्न करने लगा और नाइटन से हेलियम पैदा होने लगा। जल के पात्र से इन सब प्रकार की भाफों को अलग करके रैमज़े साहब देखने लगे कि और कोई नया पदार्थ तो नहीं पैदा हो गया। अन्त में उन्होंने देखा कि पूर्वोक्त भाफों के अतिरिक्त नियन् (Neon) नामक एक मूल पदार्थ भी उत्पन्न हो गया है। यह देख कर रैमज़े साहब के आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। उनको दृढ़ विश्वास हो गया कि जब हाइड्रोजन और आक्सिजन की गुरुता बढ़ कर वे नियन् में परिणत हो गये तब किसी न किसी दिन इसी उपाय से लोहा भी सोने में अवश्य परिणत हो जायगा।

रैमज़े साहब के इस आविष्कार का प्रचार हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। इतने में ही उसका वृत्तान्त सुन कर संसार के वैज्ञानिकों में एक अद्भुत हलचल मच गई है। ऐसी हलचल और ऐसी आनन्द-ध्वनि वर्तमान समय के और किसी भी आविष्कार के समय नहीं हुई। इस समय में विज्ञान-सम्बन्धी सामयिक पत्रों तथा सभा-समितियों में इस आविष्कार पर वाद-विवाद हो रहा है। बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता इस आविष्कार पर बड़े ध्यान से विचार कर रहे हैं। किन्तु सभी वैज्ञानिक रैमज़े साहब के आविष्कार को सन्देह-हीन नहीं समझते। बेकरेल साहब, जिन्होंने सब से पहले रेडियम जाति के पदार्थों के गुणों की परीक्षा की थी, अब इस संसार में नहीं हैं। क्यूरी साहब भी परलोक सिधार गये। क्यूरी साहब की पत्नी, रदरफ़र्ड, टामसन और [illegible] साहब ही इस समय इस आविष्कार पर अपनी सम्मति देने के अधिकारी हैं। रदरफ़र्ड ने तो रैमज़े साहब के इस आविष्कार की बात सुन कर कहा है कि उनकी परीक्षा के समय सम्भवतः जल में वायु का प्रवेश हो गया होगा। वायु-प्रवेश के कारण जल में वायु का ही नियन् बन गया होगा। रैमज़े साहब ने इसी नियन् को नवीन उत्पन्न किया मान कर भूल की है। क्यूरी साहब की पत्नी भी इस आविष्कार पर अविश्वास करती हैं। किन्तु पहले कही हुई परीक्षाओं के बाद रैमज़े साहब ने और कई परीक्षायें कीं। उनके द्वारा उन्होंने अनेक पदार्थों का रूपान्तर प्रत्यक्ष दिखला दिया। इस कारण, मालूम होता है, वैज्ञानिकों का सन्देह अब इस सम्बन्ध में दूर हो रहा है।

कुछ समय हुआ, रैमज़े साहब ने तांबा, नाइट्रोजन और आक्सिजन मिले हुए एक यौगिक पदार्थ (Copper Nitrate) में नाइटन डाला। वह यौगिक पदार्थ परिवर्तित हो गया। इससे आर्गन (Argon) नामक एक मूल पदार्थ की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त, सिलिकन्, जिर्कोनियम्, थोरियम आदि पदार्थों से घटित और भी अनेक यौगिक पदार्थों पर इसकी परीक्षा हुई। फल यह हुआ कि वे सब पदार्थ परिवर्तित हो गये। इनमें से प्रत्येक से कारबन (Carbon) नामक पदार्थ का जन्म हुआ। बिस्मिथ घटित एक पदार्थ (Bismuth Perchloride) का रूपान्तर भी अद्भुत रूप में होता देखा गया है।

रैमज़े साहब की ये सब परीक्षायें एक दिन पर नहीं हुईं। उन्होंने कई अच्छे अच्छे विज्ञान-वेत्ताओं के सामने ये परीक्षायें की हैं। कई परीक्षायें तो उन्होंने इंगलैंड की केमिकल सोसायटी की सभा में ही की हैं। अतएव रैमज़े

साहब की इन परीक्षाओं की सत्यता के विषय में सन्देह करने का कोई कारण नहीं। आप अब समझ जायँगे कि प्रकृति की यह लीला नब्बे मूल पदार्थों द्वारा नहीं हो रही। केवल एक ही पदार्थ उसका मुख्य आधार है। सोना, चाँदी, हीरा, लोहा और ताँबा आदि सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न रूप हैं। अलकेमिस्ट लोगों ने लोहे को सोने में परिणत करने का जो प्रयत्न प्रारम्भ किया था, वास्तव में वह दुस्साध्य न था। लोहे को सोना बनाने वाला पारस पत्थर इस भूमण्डल में इस प्रकृति के ही भीतर विद्यमान जान पड़ता है।*

जातियों का संघर्षण।

सृष्टि के प्रायः समस्त चेतन पदार्थ एक दूसरे को पद-दलित करके उस पर विजय पाने की चेष्टा करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। एक के विजय से दूसरे का नाश, एक के सुख से दूसरे का दुख, यही सृष्टि का नियम है। जिस पेड़ को हम आज इतना बड़ा और ऊँचा देख रहे हैं, मालूम नहीं, वह कितने पौधों का नाश करके इतना बड़ा हुआ होगा। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक ह्वेल मछली कितने जीवों का भक्षण करके इतनी बड़ी हुई है। धन के मद में चूर जिस धनी मनुष्य को हम अभिमान के साथ मोटर पर जाते हुए देखते हैं, मालूम नहीं, उसने अपने धन को कितने मनुष्यों का संहार करके—कितने आदमियों की जीविका छीन कर—पैदा किया होगा। सारांश यह कि सृष्टि के आदि-काल से यह प्राकृतिक नियम चला आ रहा है कि वास्तव में ज़िन्दा वही रहता है जो बुद्धि में, विद्या में, बल में बढ़ा चढ़ा होता है। इसी प्राकृतिक नियम को लोग "Survival of the Fittest" and "Struggle for Life" अर्थात् "जीवन-सङ्ग्राम", "ज़िन्दगी के लिए कशमकश," या "संघर्षण" इत्यादि भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। केवल व्यक्तियों ही में नहीं, किन्तु व्यक्तियों के समूहों अर्थात् जातियों, में भी यही नियम काम कर रहा है। संसार में आज कौन सी सभ्यताभिमानी, उन्नतिशील तथा बढ़ी-चढ़ी जाति है जिसने दूसरी जातियों को पद-दलित न करके अपनी उन्नति की हो? जिस तरह एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों से जीवन-सङ्ग्राम में बाज़ी ले जाने का यत्न किया करता है, उसी तरह एक जाति दूसरी जातियों से आगे बढ़ जाने की चेष्टा में लगी रहती है। जो जाति जितने ही जोश के साथ इस जीवन-सङ्ग्राम में प्रविष्ट होकर विजय पाने का यत्न करती है वह उतनी ही अधिक उन्नति की दौड़ में आगे बढ़ती है, और जो जाति इस सङ्ग्राम से डर कर पीठ दिखाती है वही मुर्दा जातियों में गिनी जाती है।

यह संसार एक माला के समान है, जिसकी प्रत्येक जाति एक एक गुरिया है। जिस तरह माला की एक गुरिया दूसरी गुरिया से गुँथी रहती है, उसी तरह संसार की एक जाति दूसरी जाति से एक सूत्र में बँधी हुई है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। इस पारस्परिक सम्बन्ध से जातियों के गुण-स्वभाव में बड़ा रद्दोबदल हो जाता है। जिस तरह एक मनुष्य के गुण-स्वभाव में दूसरे मनुष्यों के साथ से भारी परिवर्तन हो जाता है उसी तरह एक जाति के गुण-स्वभाव में दूसरी जातियों के सम्बन्ध से अनेक महान् परिवर्तन हो जाते हैं। दूसरी जातियों के सम्बन्ध से किसी जाति में कितना परिवर्तन हो जाता है, इसके अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। बिना फ़ारिस के सम्बन्ध के यवनस (यूनान) की उन्नति असम्भव थी।

जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध में जीवन के

---

* श्रीजगदानन्द-राय-प्रणीत "प्राकृतिकी" से अनुवादित।

लिए सङ्ग्राम (Struggle for Existence) करना दूसरा मुख्य कारण है। प्राचीन समय से लेकर अब तक इतिहास के पन्नों में जिन युद्धों का ज़िक्र है उन सब की जड़ में यही जीवन-सङ्ग्राम दिखाई पड़ता है। इस विषय में जातियों की प्रकृति वनस्पतियों से मिलती-जुलती है। यदि हम दोनों की वृद्धि में कोई रुकावट न डाली जाय और इनको ख़ूराक और बढ़ने के लिए स्थान भरपूर इन्हें मिलता जाय तो इनके बढ़ने की कोई हद न रहे। यदि पृथ्वी पर दूब को छोड़ कर और कोई वनस्पति न होती तो अपनी उत्पादिका शक्ति से समस्त पृथ्वी पर दूब ही दूब छा जाती। इसी तरह यदि अँगरेज़-जाति को छोड़ कर और कोई जाति इस पृथ्वी-तल पर न होती तो केवल यही एक जाति बढ़ते बढ़ते समस्त पृथ्वी पर फैल जाती। प्रकृति ने वनस्पतियों तथा जातियों को बड़ी उदारता के साथ बढ़ने की शक्ति दी है। किन्तु इसके साथ ही उनके बढ़ने के लिए स्थान और आहार में, बड़ी अनुदारता के साथ, कमी कर दी है। पृथ्वी में उपजाऊ और रहने योग्य स्थान बहुत ही परिमित है। इसी उपजाऊ और बसने योग्य स्थान के लिए ही प्राचीन समय से अब तक संसार की जातियों में युद्ध होता चला रहा है। इँग्लैंड और फ्रांस के बीच जो सात वर्ष तक युद्ध हुआ था, और जो "Seven Years War" के नाम से प्रसिद्ध है, किस लिए हुआ था? उस युद्ध का दारोमदार इस प्रश्न पर था कि फ्रांस और इँगलैंड में से कौन सा देश ऐसा सौभाग्यशाली है जो हिन्दुस्तान और कनाडा की सम्पत्ति और वैभव का अधिकारी हो। हाल में रूस-जापान-युद्ध, अमरीका और जापान के बीच में बढ़ता हुआ मनमुटाव और वर्तमान योरोपीय महासमर का क्या कारण है? यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो हम सबकी जड़ में उसी जीवन-सङ्ग्राम की ज्वाला देख पड़ेगी। युद्ध से प्रत्येक जाति का उद्देश यही रहता है कि उसकी बढ़ी हुई जन-संख्या को भोजन और रहने के लिए काफ़ी स्थान मिले।

यहाँ तक हमने दिखाया कि जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध किस तरह होता है—अर्थात् एक जाति का दूसरी जाति के साथ संघर्षण किस हालत में होता है। अब हमें यह देखना है कि इस पारस्परिक सम्बन्ध से जातियों को क्या हानि और क्या लाभ होता है, और इससे जातियों की उन्नति और अधःपतन में क्या सहायता मिलती है।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष करके ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि जब कोई जाति कूप-मण्डूक बन कर अन्य जातियों से सम्बन्ध तोड़ देती है, अपने को सर्व-श्रेष्ठ मान कर अन्य जातियों को म्लेच्छ, बर्बर और असभ्य समझने तथा उनसे घृणा करने लगती है, और साथ ही यह भी समझने लगती है कि हमारे यहाँ सभी कुछ है, हमें दूसरी जातियों से कुछ सीखने की कोई ज़रूरत नहीं, तब उस जाति में एक तरह की स्थिरता शुरू हो जाती है, जिसे हम कई नामों से पुकार सकते हैं—यथा मुर्दापन, अकर्मण्यता, आलस्य, तन्द्रावस्था इत्यादि। अँगरेज़ी में इस हालत को "Period of Stagnation" कहते हैं। अन्त में इसका परिणाम नाश अथवा अधःपतन होता है। स्पार्टा इसी अवस्था को अन्त में पहुँच गया था। स्पार्टा की प्राकृतिक तथा भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी, और स्पार्टन जाति को सैनिक उन्नति करने की इतनी आवश्यकता थी कि स्पार्टा को दूसरी जातियों से सम्बन्ध करने और उनसे कुछ सीखने का न तो अवसर ही मिलता था और न उसकी प्रवृत्ति ही उस तरफ़ थी। फल यह हुआ कि उस जाति में घुन लगना शुरू हुआ और अन्त में स्पार्टा का नाम मात्र शेष रह गया, उसकी सैनिक उन्नति का कोई चिह्न बाक़ी न रहा। भारतवर्ष का भी यही हाल हुआ। जब से भारतवासियों ने दूसरे देशों से सम्बन्ध रखना छोड़ दिया, और तथा गुण-

छूत के फेर में पड़े और उन्हें यह अभिमान होने लगा कि हमारे बराबर पृथ्वी में कोई नहीं, सारा ज्ञान और विज्ञान हमारे वेदों और शास्त्रों में मौजूद है, अतएव हमें दूसरों से कुछ सीखने की कोई आवश्यकता नहीं—तभी से देश का अधःपतन शुरू हुआ। अब जो कुछ जागृति देश में होने लगी है उसका मुख्य कारण यही है कि फिर से भारतवर्ष का नाता संसार के साथ होने लगा है।

जब किसी जाति का दूसरी जातियों से घनिष्ठ लगाव होता है तभी वह जाति कर्मशील तथा सजीव होती है। पशु-संसार में भी यदि एक प्रकार के पशुओं का दूसरे प्रकार के पशुओं से कोई लगाव न रक्खा जाय तो उन पशुओं में दूसरे पशुओं के गुण तथा अन्य बातें नहीं आ सकतीं और न उनके शरीर इत्यादि में कोई उन्नति या विकाश हो सकता है। एक जाति के पशुओं का दूसरी जाति के पशुओं के साथ जोड़ा खिलाने और एक साथ रखने से पशुओं में बहुत अधिक उन्नति और अनेक गुणों का विकाश होता हुआ दिखाई पड़ा है। इसी तरह जातियों की उन्नति तथा जीवन बहुत कुछ पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध पर—उनके वर्ण-सङ्कर होने पर—अवलम्बित है। क्या कोई इस बात को अस्वीकार कर सकता है कि हिन्दू-जाति के अब तक जीवित रहने का कारण यही है कि वह प्राचीन समय से ही द्रविड़, शक, हूण आदि अनेक अनार्य्य जातियों को अपने में मिलाती रही है? यूनान में भी वही जातियाँ सबसे अधिक उन्नतिशील थीं जो सबसे अधिक दूसरी जातियों से सम्बन्ध रखती थीं। इटली में भी रोमन जाति, जो उन्नति के शिखर तक पहुँच गई थी, लैटिन, इट्रस्कन और सेबाइन इन तीन भिन्न भिन्न जातियों के मिश्रण से बनी थी। अँगरेज़-जाति का गुण-स्वभाव भी डेन, सैक्सन, केल्ट और नार्मन, इन भिन्न भिन्न जातियों के मेल से बना है। अमरीका की वर्तमान अत्यधिक उन्नति का मुख्य कारण यह है कि उस देश में प्रति वर्ष अँगरेज़, आइरिश, इटालियन, स्वीडिश, जर्मन इत्यादि योरप की जातियों का नया ख़ून मिलता जा रहा है।

जो लाभ व्यक्तियों को परस्पर वार्तालाप करने और एक दूसरे के विचारों को सुनने से होता है वही लाभ जातियों को दूसरी जातियों से मिलने जुलने से होता है। अँगरेज़ी साहित्य की क्या दशा होती, यदि विदेशी भाषाओं के साथ उसका सम्पर्क न होता? चासर से लगा कर स्पेंसर के समय तक की अँगरेज़ी कविता अधिकतर या तो फ्रेंच भाषा की कविताओं का अनुवाद है या उसके ढंग पर लिखी गई है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि मिल्टन अपनी कविता के लिए इटली तथा लैटिन भाषा के बहुत कुछ ऋणी थे। शेक्सपियर की कविता से भी पता लगता है कि उन्होंने भी दूसरी भाषाओं से—और ख़ास कर लैटिन भाषा से—बहुत कुछ मसाला लिया था। उनकी कविता से पता लगता है कि वे विदेशों की और ख़ास कर इटली की ख़ूब सैर किये हुए थे।

सभ्यता धीरे धीरे एक जाति से दूसरी जाति में प्रवेश किया करती है। स्वाभाविक तौर पर उसकी चाल एक ही तरफ़ को होती है। अब तक सभ्यता की दौड़ पूर्व से पश्चिम की ओर थी। जब योरप सभ्यता का नाम भी न जानता था तब भी पूर्व दिशा के भारत, आसीरिया, बेबीलोनिया, मीडिया, पर्शिया और फ़िनीशिया इत्यादि देश सभ्यता की चरम सीमा को पहुँच चुके थे। इनमें से फ़िनीशिया के द्वारा सभ्यता का प्रवेश पश्चिम के देशों में हुआ। फ़िनीशिया के लोग बहुत बड़े व्यवसायी, नाविक-विद्या में निपुण और कला-कौशल में दक्ष थे। दैवात् उन्होंने एक बहुत बड़े उद्देश को भी पूरा किया। वह उद्देश योरप के देशों को सभ्यता का सबक़ सिखलाना था। जहाँ कहीं वे जाते थे

पूर्वीय सम्यता और पूर्वीय ज्ञान फैलाते जाते थे। उन्होंने केवल अक्षरों ही का ज्ञान नहीं, किन्तु अनेक प्रकार की कलाओं और विद्याओं को भी ईजियन और मेडिटरेनियन सागर के किनारे रहनेवाली अर्द्ध-सभ्य जातियों को दिया। जब फ़िनीशियन लोगों की शक्ति का ह्रास होने लगा तब उस शक्ति का बहुत बड़ा हिस्सा ग्रीस के हाथ लगा। सामुद्रिक शक्ति के सिवा फ़िनीशिया की राज्यप्रणाली, कलाकौशल तथा दर्शनशास्त्र आदि अनेक बातें ग्रीस के हाथ लगीं। इसके पश्चात् रोम ने ग्रीस को परास्त करके उसे अपने अधीन कर लिया और फ़िनीशिया से पाई हुई शक्ति और सम्यता का मालिक बन बैठा। रोम ने पूर्वीय सम्यता और ज्ञान को सुरक्षित ही न रक्खा, बल्कि उसमें स्वयं अपनी बुद्धि से अनेक बातें मिला कर उसका विस्तार पश्चिमीय देशों में किया। रोमन लोगों ने क़ानून और न्यायशास्त्र में बहुत उन्नति की। वे इस विषय में अब भी यारप के गुरु समझे जाते हैं। इसके उपरान्त पूर्व की बारी एक दफ़े फिर आई। अरब लोगों ने भी इस सम्यता के विस्तार में कन्धा लगाया। जहाँ कहीं वे जाते थे वहाँ वे अपनी विचित्र बुद्धि और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का प्रकाश करते थे। अरब के पुस्तकालय और विश्वविद्यालय योरप के विद्यारसिक छात्रों से भरे रहते थे। वैद्यकशास्त्र, रसायन-शास्त्र, दर्शनशास्त्र और गणितशास्त्र में अरब देश के लोगों ने अपूर्व उन्नति की थी।

दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में उन्नति की लहर फिर इटली के किनारे से उठी। इटली के जेनोआ और पीसा इत्यादि नगर धीरे धीरे बहुत महत्त्व के स्थान हो गये। ये व्यवसाय के केन्द्र भी बन गये। इटली के नाविक इँगलेंड इत्यादि योरोपीय देशों के साथ व्यवसाय करते थे। विशेष करके वीनिस के हाथ में उस समय संसार के व्यवसाय का बहुत बड़ा भाग था। पूर्वीय देशों का म[ाल] पहले वीनिस आता था, वहाँ से सारे योरप [में] जाता था। वीनिस से धीरे धीरे संसार [का] वाणिज्य जर्मनी के हाथ चला गया। जर्मनी [के] नगरों ने भी इटली के वीनिस इत्यादि नगरों [की] तरह केवल धन और ऐश्वर्य ही की वृद्धि नहीं [की] किन्तु बुद्धि, विद्या, बल, सम्यता, शिल्प और कला[-] कौशल में भी अपने समय में सबसे आगे बढ़े रहे। [कु]छ समय बाद क्रम क्रम से स्पेन, हालेंड और फ्रांस [ने] भी ख़ूब उन्नति की। किन्तु इन सब की उन्न[ति] अँगरेज़ों की अतुलनीय सम्पत्ति, पराक्रम [और] सम्यता के आगे फीकी पड़ गई। यही सम्य[ता] जिसे इँगलेंड ने क्रम क्रम से पूर्वीय जातियों [से] प्राप्त की थी अठारहवीं शताब्दी में अमरीका पहुँची। इस प्रकार पचास बरस में सम्यता की [धा]रा समस्त योरप और अमरीका का चक्कर लगा [कर] फिर पूर्व की ओर बारही है। नये वेश में उ[सी] पुरानी सम्यता के सम्पर्क से आज पूर्वीय देशों [की] जातियाँ सैकड़ों वर्षों की निद्रा त्याग कर उठने [का] यत्न कर रही हैं।

सम्यता की इस महान् दौड़ पर सरसरी [तौर] से नज़र डालने से पता लगता है कि सम्यता पू[र्व] की ओर से पश्चिम की ओर गई है, और जिन [जिन] जातियों ने इस दौड़ में भाग लिया सभी ने कुछ [न] कुछ इस सम्यता में अपनी बुद्धि से मिला कर [उ]से इसकी वर्तमान अवस्था को पहुँचाया है। ग्रीक लोगों ने फ़िनीशियन सम्यता को केवल ग्रहण ही नहीं किया, किन्तु अपनी बुद्धि, प्रतिभा और कल्पना शक्ति से उसमें न जाने कितनी बातें जोड़ कर उसे उन्नत भी किया। ग्रीक लोगों से उस सम्यता को रोम ने ग्रहण किया और उसका विस्तार करके कार्य-कुशल और व्यावहारिक बुद्धि से किया। इसके उपरान्त अरब, इटालियन, जर्मन, फ्रेंच और अँगरेज़—इन सभी ने उसी एक सम्यता को बढ़ाने

में कुछ न कुछ सहायता की। इस प्रकार प्रत्येक जाति अपनी सभ्यता तथा उन्नति के लिए दूसरी जातियों की थोड़ी या बहुत अवश्य ऋणी है। जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध के बिना, मालूम नहीं, संसार की बहुत सी जातियों की सभ्यता इस समय किस अवस्था में होती।

अब हमें देखना है कि जातियों के संघर्षण से संसार को क्या लाभ होते हैं। यह तो स्पष्ट ही प्रकट है कि वे जातियाँ, जो सर्वथा अयोग्य तथा ज़िन्दा रहने के लायक़ नहीं, संसार से बहुत शीघ्र उठ जाती हैं। वह जाति, जो उन्नति की दौड़ में पिछड़ी है—जो आगे जाने की अपेक्षा पीछे की ओर जाती है, जो संसार की जीती जागती जातियों से नाता तोड़ कर अपने रङ्ग में मस्त रहती है—जो न तो स्वयं कोई नया आविष्कार करती है और न दूसरों के आविष्कारों से फ़ायदा उठाती है, और जिसमें राष्ट्रीयता और देशभक्ति का अभाव है, अवश्य ही नाश को प्राप्त होती है। जिस तरह कमज़ोर पौधे और प्राणी जीवन-सङ्ग्राम के प्राकृतिक नियम के अनुसार जड़ से नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह निर्बल और अयोग्य जातियाँ भी ज़िन्दगी की लड़ाई में हार कर उच्छिन्न हो जाती हैं और दूसरी जातियाँ उनका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। संसार के इतिहास में न मालूम कितनी जातियाँ दुनिया के परदे से उठ गईं और उनकी जगह नई नई जातियाँ अस्तित्व में आ गईं। अतएव पहला लाभ, जो संसार की जातियों को जीवन-सङ्ग्राम से होता है, यह है कि योग्यता, बल और पौरुष को आदर-सम्मान और पुरस्कार मिलता है और अयोग्यता तथा निर्बलता का निरादर तथा निन्दा होती है। अतएव देखादेखी दूसरी जातियाँ भी योग्यता तथा बल-पौरुष आदि गुणों के सम्पादन में यत्नशील होती हैं।

जब किसी जाति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दूसरी जाति से लड़ना पड़ता है तब उस जाति के लोगों में अपूर्व एकता का भाव आ जाता है और जाति की जाति एक ही भाव से प्रेरित होकर अपने दोषों के दूरीकरण और जातीय सुधार में तन मन से लग जाती है। जब कभी इस तरह का सङ्कट किसी जाति पर आता है तब उस जाति में बड़े बड़े सुधार के काम होते हैं। यदि बाहरी शत्रुओं का भय न होता तो रोम में पेट्रीशियन (कुलीन) और प्लीबियन (नीच) के झगड़े का तय होना असम्भव था। इस बात का ताज़ा उदाहरण वर्तमान महासमर है। प्रत्येक मनुष्य इस बात को देख सकता है कि किस तरह इँगलेंड के भिन्न भिन्न दल तथा समस्त साम्राज्य के भिन्न भिन्न देश इस महान सङ्कट के समय एकमत होकर तन, मन, धन से शत्रु का मुक़ाबला कर रहे हैं। युद्ध के पहले किस तरह इँगलेंड और आयरलेंड में भिन्न भिन्न दल आपस में लड़ रहे थे और युद्ध छिड़ते ही वे किस तरह पुरानी बातों को भूल कर एक हो गये। यह बात किसी से छिपी नहीं। इँगलेंड में अनिवार्य सैनिक-सेवा, आयरलेंड में होमरूल और भारतवर्ष में इंडस्ट्रियल कमिशन की नियुक्ति इसी युद्ध का परिणाम है। युद्ध के बाद इँगलेंड में तथा आयरलेंड, भारतवर्ष इत्यादि साम्राज्य के भिन्न भिन्न अङ्गों में जो कितने ही सुधार और परिवर्तन होंगे उनका हम अभी अनुमान भी नहीं कर सकते। ये सब लाभ हैं जो जातियों के जीवन-सङ्ग्राम से होते हैं।

इस लेख से जो सिद्धान्त निकलते हैं वे ये हैं—(१) जातियों का संघर्षण, अथवा संसार में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संग्राम, एक प्राकृतिक नियम है जो सृष्टि के प्रारम्भ-काल से चला आ रहा है, (२) जो जाति जितने ही उत्साह के साथ जीवन-सङ्ग्राम में डट कर संसार की दूसरी जातियों पर विजय पाने का यत्न करती है वह उतनी ही अधिक और जातियों से आगे बढ़ी रहती

व्याख्याता	विषय
(४) ,, विश्वनाथ बलवन्त नाइक	सभ्यता का कार्य
(५) ,, हरि रामचन्द्र दिवेकर	भारतवर्ष का पौराणिक इतिहास
(६) ,, वामन गोविन्द काळे	साम्पत्तिक उन्नति का मार्ग
(७) डाक्टर वामनराव देसाई, एम॰ डी॰	आयुर्वेद और यूरोपियन वैद्यक की तुलना
(८) अध्यापक अण्णा बापजी भट्टे	नीच जातियों का सुधार
(९) श्रीयुत जनार्दन सखाराम करन्दीकर बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	भारतीय स्वराज्य और गवर्मेंट
(१०) श्रीयुत वामन मल्हार जोशी, एम्॰ ए॰	अद्वैत के अनेक अर्थ
(११) अध्यापक हरि गोविन्द लिमये	कापूर और इराकी का शुद्धीकरण
(१२) श्रीयुत काशीनाथ नारायण दीक्षित	पुराण-वस्तु-संशोधन
(१३) ,, नारायण कृष्ण आगाशे, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	१९११ ईसवी में जर्मनी और इँगलैंड की दशा
(१४) ,, श्रीकृष्ण नीलकण्ठ चापेकर, एम॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	वाङ्मयात्मक टीका का महत्त्व और नीति
(१५) श्रीयुत भास्करराव भावेराव	हिन्दी-साहित्य
(१६) ,, सदाशिव बालकृष्ण हुरकीकर, एम॰ ए॰	शिक्षा में दृष्टि-शास्त्र का महत्त्व
(१७) मिसेज़ एनी बेसेन्ट	भारत का भविष्य
(१८) श्रीयुत ठाकुर रामचन्द्र भागवत, एल्॰ सी॰ ई॰	पानी बहाने की नालियाँ (Drainage System)
(१९) श्रीयुत रामचन्द्र गणेश प्रधान, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य-पद्धति
(२०) ,, विट्ठल रामजी शिन्दे, बी॰ ए॰	[illegible] जातियों की उन्नति
(२१) ,, नारायण मल्हार जोशी, बी॰ ए॰	राष्ट्रकार्य में समाज-सेवा का महत्त्व
(२२) [illegible] शास्त्री	प्राचीन वैद्य
(२३) श्रीयुत नीलकण्ठराव पाटणकर, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	मराठा-पुरोहित-प्रथा और समाज-सुधार
(२४) अध्यापक केशवराव [illegible]	शिक्ष[illegible]
(२५) श्रीयुत नागेश वासुदेव गुणाजी, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	कर्नाटकी [illegible]
(२६) मिस्टर बैप्टिस्टा, बी॰ ए॰, बारिस्टर-एट-ला	वर्तमान महायुद्ध [illegible] कारण और १८ [illegible]
(२७) श्रीयुत अच्युत बलवन्त कोल्हटकर, बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰	हिन्दू धर्म के [illegible] सामाजिक [illegible]

इस नामावली से ही पाठक व्याख्यानों की गम्भीरता और उपयोगिता का यथेष्ट अनुमान कर सकेंगे। यह व्याख्यान-माला, जैसा है, स्वर्गीय राव बहादुर गणेश व्यंकटेश जोशी के शब्दों में, सचमुच "विद्या-महोत्सव" ही है। एक सज्जन ने "हिन्दी-साहित्य" पर भी व्याख्यान दिया। उस दिन सभापति का स्थान ग्रहण किया था—श्रीयुत दत्तात्रय बलवन्तराव पारसनीस ने। आप महाराष्ट्र प्रान्त के नामी ग्रन्थकार और इतिहासज्ञ हैं। हिन्दी-भाषा के विषय में उस दिन सभापति की हैसियत से आपने जो उदारतापूर्ण विचार प्रकट किये वे हिन्दी से मुँह मोड़ने और उसकी उन्नति का नाम सुन कर नाक भौं सिकोड़ने वाले प्रत्येक भारतवासी के ध्यान देने योग्य हैं। आपने कहा—"हिन्दी-भाषा में मीठापन और सरलता, ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं। हिन्दी-भाषा अधिकांश भारतवर्ष में बोली और समझी जाती है। अतएव भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासियों के विचार-विनिमय के लिए वही राष्ट्र-भाषा होनी चाहिए।" आपका यह विचार [illegible] और प्रान्त वालों के लिए भी अनुकरणीय है।

४—मराठी में विश्वकोश।

मराठी भाषा के विद्वानों ने मिल कर अपनी भाषा में एक विश्वकोश (Marathi Encyclopaedia) तैयार करने का संकल्प किया है। कोश के प्रधान सम्पादक हैं—डाक्टर श्रीधर व्यङ्कटेश केतकर, एम॰ ए॰, पीएच्॰ डी॰। इसकी सिद्धि के निमित्त नागपुर में एक समिति स्थापित हुई है। उसकी रजिस्ट्री भी करा ली गई है। ४० हज़ार रुपये के मूलधन से यह समिति अपना काम करेगी। इसके एक एक हिस्से (शेयर) का मूल्य १००) रक्खा गया है।

(१) [illegible] की क़बरों में प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन।

(२) [illegible] की क़बरों में प्राप्त हुए मिट्टी के बर्तन।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

यह कोश २० भागों में समाप्त होगा। प्रत्येक भाग में २०० पृष्ठ रहेंगे। आशा है, कार्य्यारम्भ होने के कोई २ वर्ष बाद यह निकल जाय।

श्रीयुत तिलक, प्रोफ़ेसर शिवराम महादेव पराञ्जपे, डॉक्टर भेलकर, श्रीयुत हरि नारायण आपटे, श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सम्पादक केसरी और मराठा, श्रीयुत कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, बी० ए०, श्रीयुत माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि कितने ही मराठी के सुप्रसिद्ध विद्वान् कोश के भिन्न भिन्न भागों का सम्पादन करेंगे। इस कार्य्य के लिए आवश्यक पुस्तकसंग्रह का यथेष्ट प्रबन्ध कर लिया गया है। समिति के रङ्ग ढँग से जान पड़ता है कि यह कोश बहुत अच्छा बनेगा और यथासमय प्रकाशित होकर मराठी भाषा के गौरव को बढ़ावेगा—"उत्साहवन्तो हि नरा न लोके सीदन्ति कर्म्मस्वतिदुष्करेषु"।

५—रोमन-लिपि के प्रचार का प्रयत्न।

सरस्वती के पाठक पादरी जे० नोल्स के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। भारतवर्ष की मूर्खता और निरक्षरता देख कर पादरी साहब दुखी हैं। वे चाहते हैं कि सारा भारतवर्ष शिक्षित हो जाय और उसकी निरक्षरता बहुत ही शीघ्र दूर हो जाय। परन्तु इस देश की बुरी लिपियों के कारण उनकी यह कमनीय कामना नहीं सफल होने पाती। वे चाहते हैं कि यहाँ की दोषपूर्ण लिपियों के बदले एक निर्दोष और शीघ्र सीखी जाने योग्य लिपि का प्रचार किया जाय। ये गुण उन्हें रोमन-लिपि में देख पड़ते हैं। आपका कथन है कि थोड़े ही फेर-फार से रोमन-लिपि सर्वथा निर्दोष हो जायगी और इस देश के अनुकूल सभी ध्वनियों को व्यक्त करने की शक्ति उसमें आ जायगी। आज तक आपने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रयत्न किया है। आपका प्रयत्न अब तक बराबर जारी भी है।

हाल ही में आपने टाइम्स आव् इंडिया में एक चिट्ठी प्रकाशित की है। उसमें जापान के टोकियो-विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर की सम्मति का उल्लेख आपने किया है। ये प्रोफ़ेसर महाशय विलायत के एम० ए० पास हैं। इन्होंने कहीं लिखा है कि चीनी-लिपि के मिश्रण से बनी हुई जापानी-लिपि में अनेक दोष हैं। अतएव उसके बदले रोमन, अर्थात् वह लिपि जिसमें अँगरेज़ी लिखी जाती है, क्यों न जापान में जारी की जाय? पादरी साहब का कथन है कि चीन के विद्वान् भी चीनी-लिपि की अपेक्षा रोमन-लिपि को अधिक पसन्द करते हैं। आप यह भी कहते हैं कि विलायत के कुछ बड़े बड़े विद्वान् शिक्षा-सम्बन्धी एक कमीशन नियत कराने के लिए हस्ताक्षर एकत्र कर रहे हैं। उस कमीशन द्वारा वे अँगरेज़ी शब्दों के हिज्जों और अँगरेज़ी वर्णों के दोष दूर करने के लिए भी चेष्टा करेंगे। यह सब लिख कर आपने भारतीय गवर्नमेंट से प्रार्थना की है कि भारत-निवासियों को निरक्षरता के गढ़े में पड़े बहुत दिन हो गये। अब तो उनके लाभ के लिए रोमन-लिपि के किसी सुधरे हुए रूप का प्रयोग स्कूलों और कचहरियों में ज़रूर होना चाहिए। इस के आगे आपने रोमन-लिपि के गुण और अरबी, फ़ारसी, बँगला, गुरमुखी आदि लिपियों के दोष दिखाये हैं।

पादरी साहब की युक्तियों का खण्डन सरस्वती में एक नहीं कई बार किया जा चुका है। चीनी और जापानी-लिपियाँ निस्सन्देह ही अनेक दोषों से पूर्ण हैं—उन लिपियों के ज्ञाता यही कहते हैं। लिपियों की दोष-पूर्णता के कारण ही पूर्वोक्त देशों में उनको सीखने में बहुत समय लगता है। अँगरेज़ी अथवा रोमन-लिपि भी दोषों से खाली नहीं। पर वह इतनी सदोष नहीं, जितनी चीनी और जापानी लिपियाँ हैं। यह बात स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे तक जानते हैं। अतएव उन लिपियों के बदले यदि रोमन-लिपि जारी की जाय तो बुरा नहीं। उससे शिक्षा-प्राप्ति में सुभीता हो सकता है। परन्तु देवनागरी-लिपि के सम्बन्ध में पादरी साहब की युक्तियाँ ठीक नहीं। रोमन-लिपि के मुक़ाबले में देवनागरी-लिपि बहुत ऊँचा दरजा रखती है। वह बहुत शीघ्र सीखी भी जा सकती है। उसमें सब तरह की ध्वनियाँ प्रकट करने की शक्ति भी है। इसी देश की होने के कारण यहाँ वालों की श्रद्धा भी उस पर अधिक है। इसके सिवा न मालूम कितने काल से उसका प्रचार इस देश में चला आ रहा है। ऐसी दशा में यहाँ रोमन-लिपि का प्रचार करने के लिए पादरी साहब का प्रयत्न कभी उस दृष्टि से नहीं देखा जा सकता जिस दृष्टि से उसे दिखाने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। जिस तरह वे रोमन-लिपि को स्कूलों और कचहरियों में ऐच्छिक लिपि के तौर पर जारी कराना चाहते हैं उसी तरह देव-नागरी-लिपि क्यों न जारी की जाय? और प्रान्तों में वहाँ की लिपियों के साथ यदि
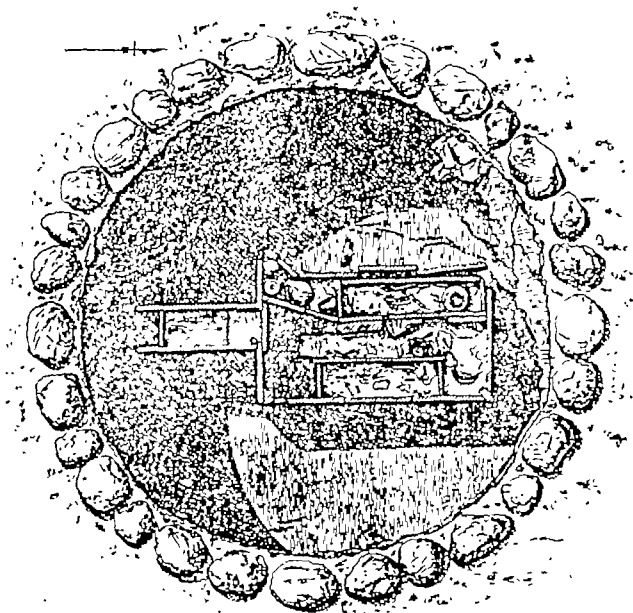
दुर्गाशङ्कर केवलराम शास्त्री का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है—प्राचीन वैदिक परिषदें। इसमें शास्त्रीजी ने उपनिषदों से लेकर अन्य कितने ही संस्कृत-ग्रन्थों से श्लोक उद्धृत करके इस बात को अच्छी तरह पुष्ट किया है कि प्राचीन काल में भी सभा-समितियाँ होती थीं। छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है—

श्वेतकेतुर्ह वारुणेयः पञ्चालानां परिषदमाजगाम।

जनक वैदेह ने जो यज्ञ किया था उसमें पाञ्चाल के ब्राह्मणों की एक वृहत् परिषद् हुई थी। बृहदारण्यक उपनिषद् में उसका वर्णन है। महाभारत और रामायण में भी परिषदों का उल्लेख है। रामचन्द्र के राज्याभिषेक की कुल तैयारी हो चुकने पर राजा दशरथ ने उनके पास दूत-द्वारा यह शुभ समाचार भेजा। उस समय रामचन्द्र सीता से कहते हैं—

याद्यी परिषत् सीते वृद्धमार्यं समाविशः।

ध्रुवमद्यैव राजा मां यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥

धर्म का निर्णय करने के लिए भी प्राचीन काल में सभायें होती थीं। देखिए, प्रायश्चित्त-विवेक नामक ग्रन्थ में लिखा है—

एकविंशतिसंख्यातैर्मीमांसान्यायपारगैः।

वेदान्त-कुशलैश्चैव परिषत्वं प्रकल्पयेत्।

इस प्रकार वैदिक-साहित्य, संस्कृत-धर्म-शास्त्र, रामायण, महाभारत और उपनिषद् इत्यादि का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि कम से कम ईसवी सन् के कोई छः सौ वर्ष पहले से भारत में समय समय पर सभायें होती आई हैं। चरकसंहिता में भी भिन्न भिन्न प्रकार की कितनी ही परिषदों का उल्लेख है।

१२—एक प्रलयङ्कर आविष्कार।

आज तक तारों के द्वारा ही बिजली की शक्ति एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जाती थी। पर हाल ही में एक वैज्ञानिक ने बिना तार के ही विद्युत्प्रवाह बहाने का आविष्कार किया है। इस आविष्कार का नाम है—Transmission of Energy by Wireless.—अर्थात् बे-तार का विद्युत्-प्रवाह। इसके आविष्कर्ता हैं—इटली के नेकोला टेसला नाम के एक वैज्ञानिक। इस आविष्कार की तात्त्विक बातें अभी आविष्कर्ता महाशय ने गुप्त रक्खी हैं। इससे क्या क्या काम होंगे—संसार को इससे क्या लाभ अथवा क्या हानि होगी—यह अलबत्ते आपने प्रकट कर दिया है। आप का कथन है कि इस आविष्कार की बदौलत बिजली की प्रचण्ड शक्ति एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जा सकेगी। आप अपनी जगह पर ही बैठे बैठे उस शक्ति को अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचा सकेंगे। उसे वहाँ ले जाने के लिए न तार ही दरकार होंगे न अन्य ही कोई साधन। यह शक्ति आकाश-मार्ग से गमन करेगी। किसी को देख भी न पड़ेगी। पर ठीक निशाने पर जाकर लगेगी। एक हज़ार मील की दूरी पर भी यह निर्भ्रान्त निशाने पर लगेगी। शक्ति कई प्रकार की होगी। एक शक्ति ऐसी होगी जिसकी सहायता से आप सैकड़ों कोस दूर स्थित भी अपने शत्रु को निकम्मा कर सकेंगे। उसके प्रभाव से शत्रु चौकन्ना होकर जहाँ के तहाँ खड़े रह जायँगे। यह शक्ति ठीक वही काम करेगी जो पुराण-वर्णित सम्मोहनास्त्र करता था। इससे पौराणिक अग्नि-बाणों या आग्नेय अस्त्रों का भी काम लिया जा सकेगा। मनोवेग से भी अधिक वेगवती इस शक्ति के प्रकट होते ही शत्रुओं की पलटनें की पलटनें जल कर खाक हो जायँगी और उनकी सब खाद्य पदार्थ तथा अम्युनिशन का अपरिमित असबाब नष्ट हो जायगा। इससे सहसा जहाज़, व्योमयान तथा रेलें भी जला दी जा सकेंगी। यह सारा संहार-कार्य सैकड़ों कोस दूर बैठे बैठे, बिना किसी को ज़रा भी ख़बर हुए, किया जा सकेगा। यह आविष्कार वही काम करेगा जो महादेव का सर्वसंहारी तीसरा नेत्र कर सकता है। टेसला साहब ने स्वयं ही अपने आविष्कार को—A Terrible Engine of Destruction. अर्थात् भयङ्कर विध्वंसकारी यन्त्र बताया है। आविष्कारक का ख़याल है कि इस आविष्कार के डर से भविष्यत् में वर्तमान महायुद्ध के सदृश भीषण युद्ध न हुआ करेंगे। पर संसार की गति को देखते यह बात असम्भव सी है। इससे भी बढ़ कर संहार-कारी आविष्कार क्या न हो सकेंगे? यदि कोई वैसा आविष्कार हो गया तो वर्तमान युद्ध से भी अधिक भयङ्कर युद्ध हो सकेंगे। वर्तमान शस्त्रास्त्रों से तो धीरे धीरे और थोड़ा ही धन तथा जन-नाश होता है। आगे तो इन प्रलयङ्कर आविष्कारों के द्वारा एक पक्ष के लोग दूसरे पक्ष को चुटकी बजाते बजाते भस्म कर देंगे। तब तो धन-जन-विध्वंस की इयत्ता ही न रहेगी।

आगरे के वर्तमान मेडिकल स्कूल में ही यह नये ढँग की शिक्षा दी जायगी। पुरानी पढ़ाई उठ जायगी, नई पढ़ाई जारी होगी। जो छात्र इस समय उस स्कूल में हैं उन्हें अपनी शिक्षा पुराने ढँग से ही समाप्त करनी पड़ेगी। नये भरती होने वालों को ही नई शिक्षा मिलेगी।

आगरे के मेडिकल स्कूल पर विश्वविद्यालय की देख रेख न रहेगी। यह काम एक मेडिकल बोर्ड करेगा। अभी रुपये की कमी है। इस कारण नये प्रबन्ध के अनुसार स्कूल के कर्मचारियों और अध्यापकों की संख्या न बढ़ाई जायगी। युद्ध खतम होने पर यह बात होगी। तब तक प्रबन्ध और पढ़ाई-सम्बन्धी काम काज की तैयारी होती रहेगी।

इस नये प्रबन्ध की कुछ बातों से लोग नाराज़ हैं। वे तरह तरह की सूचनायें कर रहे हैं। पर उनकी सूचनाओं का शायद ही कुछ फल हो। क्योंकि गवर्नमेंट को तो जो कुछ करना था उसने कर दिया। यदि वह सर्वसाधारण की सलाह की आवश्यकता समझती तो अपना निश्चय प्रकाशित करने के पहले ही वह सर्वसाधारण को सलाह देने का मौक़ा देती।

डाक्टरों की संख्या अब बढ़ेगी, यह प्रजा के लिए सन्तोष की बात है। असन्तोष सिर्फ़ इस कारण से हो तो हो सकता है कि बेचारे वैद्यों और हकीमों का कोई पुरसां नहीं।

यह नोट लिख चुकने पर मालूम हुआ कि गवर्नमेंट ने इस नये प्रबन्ध को अभी विचाराधीन रक्खा है। कौंसिल के कुछ मेम्बरों की प्रार्थना पर यह बात हुई है।

१५—गवर्नमेंट की की हुई साहित्यालोचना।

१९१७-१८ से सम्बन्ध रखने वाली, संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट की, शासन-रिपोर्ट गत जुलाई में निकली है। उसमें पूर्ववत् साहित्य की भी आलोचना है। उसकी मुख्य मुख्य बातें नीचे लिखी जाती हैं—

१९१६-१७ में कुल १००८ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। १९१७-१८ में उनकी संख्या बढ़ कर २०९२ हो गई। अर्थात् ११६ पुस्तकें अधिक निकलीं। किस विषय की कितनी पुस्तकें अधिक निकलीं। इसका हिसाब देखिए—

कविता	१२१
धर्म	१८
फुटकर	७२
क़ानून	१६
इतिहास और भूगोल	११
उपन्यास	९८

उपन्यास कम निकले, यह अच्छा ही हुआ। पर रही कविता ने ज़ोर पकड़ा, यह बुरा हुआ।

१९१६-१७ में उर्दू की केवल १०८ पुस्तकें निकली थीं। पर १९१७-१८ में उनकी संख्या २२१ हो गई। अर्थात् ११३ की वृद्धि हुई। हिन्दी-पुस्तकों की भी संख्या बढ़ी। वे ८०१ से ९२१ हो गईं। अर्थात् १२० अधिक निकलीं। यह वृद्धि यथेष्ट सन्तोषजनक नहीं। हिन्दी बोलने वालों की संख्या के लिहाज़ से हिन्दी-पुस्तकों की और वृद्धि होनी चाहिए थी। यह वृद्धि तो उर्दू-पुस्तकों की संख्या-वृद्धि के प्रायः तुल्य ही है। उर्दू बोलने वाले कम, हिन्दी बोलने वाले अधिक हैं। अतएव बोलने वालों की संख्या के परिमाण से हिन्दी-पुस्तकों की वृद्धि नहीं हुई।

सामयिक पुस्तकों और समाचार-पत्रों की संख्या २६० से ३१० हो गई। अर्थात् सिर्फ़ २० की वृद्धि हुई। यह वृद्धि यथेष्ट नहीं, विशेष कर इस लिहाज़ से कि १६ पत्र-पुस्तकें १९१७-१८ में बन्द हो गईं। किस भाषा में कितनी पत्र-पुस्तकें निकलीं, इसका हिसाब नीचे दिया जाता है—

अँगरेज़ी	६८
उर्दू	१२६
हिन्दी	१००

बाक़ी और भाषाओं में निकलीं।

यहाँ हिन्दी से उर्दू बढ़ी हुई है। यह अवस्था अस्वाभाविक है। बोलने वालों की संख्या के अनुरूप ही हिन्दी में पत्र-पुस्तकें निकलनी चाहिए थीं। हिन्दी की उन्नति हो तो रही है, पर धीमी गति से। यह उसकी उन्नति का प्रारम्भिक काल है। आशा है, धीरे धीरे, अधिकाधिक उन्नति होती जायगी।

गवर्नमेंट का कहना है कि कथा-कहानियों में हिन्दू-लेखक मुसल्मान-विजेताओं के चरित्र मन्द दिखाते हैं और मुसल्मान-लेखक हिन्दुओं के चरित्र में बल और साहस की कमी सूचित करते हैं। ऐतिहासिक सत्य की ओर इन लोगों का ध्यान बहुत कम रहता है।

पुस्तक-परिचय ।

१—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें—इस कम्पनी ने और पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—भर्तृहरि-कृत नीतिशतक। इस शतक के सिवा भर्तृहरि के दो शतक और हैं—शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक। नीतिशतक तीनों में श्रेष्ठ है। इन शतकों के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो गये हैं। अँगरेज़ी और जर्मन भाषाओं तक में इनके अनुवाद विद्यमान हैं। इनका एक बहुत विस्तृत अनुवाद हिन्दी में भी है। यह पुरोहित गोपीनाथजी एम॰ ए॰ का किया हुआ है। इसमें अँगरेज़ी भी है। टिप्पणियाँ और साहित्य-सम्बन्धिनी अन्यान्य बातें भी इसमें बड़े महत्त्व की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मूल संस्कृत के नीचे उसका पद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद है, फिर उसका गद्यात्मक भावार्थ है। तदनन्तर उसका अँगरेज़ी अनुवाद है। मूल को छोड़ कर यह सब पाण्डेय लोचनप्रसाद और पण्डित सखाराम दुबे, बी॰ ए॰, बी॰ एल॰ की रचना है। पद्यात्मक अनुवाद अनेक छन्दों में हुआ है। एक नमूना—

> बरनति जिनको है जिन हेतो कविन ।
> कन घर घर देति सन्तुष्ट धि न दिन ?
> [illegible] जाति [illegible] है [illegible], धारे ।
> [illegible] जाते है [illegible] ॥

यह अनुवाद शाब्दिक नहीं, मूल का भावार्थ मात्र है। पर है अच्छा। पृष्ठ-संख्या १२० और मूल्य ८ आने है। दूसरी पुस्तक का नाम है—महाकवि ग़ालिब। इसकी पृष्ठ-संख्या १०२ और मूल्य ५ आने है। इसके लेखक पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा हैं। इसमें ग़ालिब के जीवनचरित के सिवा उनकी कविता के उत्तमोत्तम नमूने भी हैं। ग़ालिब उर्दू के नामी शायर थे। शर्म्माजी उर्दू-कविता के नामी रसिक हैं। आपने ग़ालिब की कविता की ख़ूबी ख़ूब ही दिखाई है। आपकी आलोचना योग्यतापूर्ण है। यदि आप उर्दू के अन्यान्य शायरों की कविता की भी ऐसी ही समालोचनायें प्रकाशित कर दें तो हिन्दी-कविता के रसिकों को उर्दू-कवियों की कविता से पहचान होजाय। दोनों पुस्तकें अच्छी छपी हैं। पूर्वोक्त कम्पनी को २०१ हैरिसन रोड, कलकत्ते, के पते पर पत्र लिखने से मिलती हैं।

२—सिक्खों का परिवर्तन। पृष्ठ-संख्या तीन सौ के ऊपर, जिल्द बँधी हुई, मूल्य १½ रुपया, मिलने का पता—पुस्तक-भाण्डार, लाहौर। डाक्टर गोकुलचन्द नारंग, एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰ की लिखी हुई एक पुस्तक अँगरेज़ी में है। उसका नाम है—Transformation of Sikhism. उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं—स्वामी सोमेश्वरानन्द, बी॰ ए॰। अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करके डाक्टर साहब ने अपनी पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने सिक्ख-धर्म्म का आदि से इतिहास लिख कर यह दिखाया है कि किस प्रकार यह समाज एक छोटी सी धर्म्म-संस्था से विकास पाते पाते एक प्रबल राजनैतिक दल में परिणत हो गया। आपने बड़े खोज और बड़ी मिहनत से यह पुस्तक लिखी है। इससे एक ऐतिहासिक न्यूनता की पूर्ति हो गई। स्वामीजी ने बड़ी कृपा की जो इसका हिन्दी-अनुवाद कर डाला। पर इसका नाम सिक्खों का रूपान्तर या सिक्ख-धर्म्म का रूपान्तर होना चाहिए था। आपकी भाषा में यद्यपि कहीं कहीं शिथिलता है, तथापि सरलता यथेष्ट है। पुस्तक संग्रहणीय है। आरम्भ में कठिन शब्दों का कोश लगा दिया गया है और अन्त में तीन उपयोगी परिशिष्ट। बीच में कई चित्र भी हैं।

※

३—श्रीयोगवासिष्ठ महारामायण, भाग २ जो। भाषा गुजराती, प्रकाशक—सस्तु-साहित्य-वर्द्धक-कार्य्यालय बम्बई और अहमदाबाद; आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १०६७, जिल्द कपड़े की पक्की और सुन्दर; छपाई सफ़ाई उत्तम; मूल्य ३ रुपया। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग की समालोचना सरस्वती में पहले की जा चुकी है। योगवासिष्ठ में छः प्रकरण हैं। पहले पाँच प्रकरण इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में प्रकाशित हो चुके हैं; छठा, निर्वाण-प्रकरण, इस द्वितीय भाग में प्रकाशित हुआ है। योगवासिष्ठ वेदान्त का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें वसिष्ठ ने वेदान्त के सिद्धान्त रामचन्द्र को विस्तारपूर्वक सुनाये हैं। अनुवादक ने मूल का अनुवाद सरल गुजराती भाषा में किया है। प्रत्येक सर्ग के आरम्भ के संस्कृत-श्लोक भी दे दिये गये हैं। प्रथम भाग की तरह यह द्वितीय भाग भी सर्वाङ्ग-सुन्दर और संग्रहणीय है।

लेखक ने तीसरे परिच्छेद के आरम्भ में एक दोहा लिखा है। उसका प्रथमार्द्ध है—

"जननी अरु जन्म-भूमि को यह प्राबहु ते देख"

ऐसा छन्दोभङ्ग-पूर्ण अशुद्ध दोहा न दिया जाता तो क्या कुछ हानि थी? नये नये लेखक यदि अशुद्ध, अस्वाभाविक और बेमुहावरा भाषा लिखें तो वे किसी तरह क्षमा के पात्र भी समझे जा सकते हैं, परन्तु सिद्धहस्त लेखकों की भाषा में मोटी मोटी त्रुटियाँ रह जाने का कारण असावधानता के सिवा और कुछ नहीं। भाषा-शुद्धि की ओर लेखकों को अधिक ध्यान देना चाहिए।

दोनों पुस्तकें, मैनेजर ओंकार प्रेस, इलाहाबाद, को लिखने से मिलती हैं।

☼

६—संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनस्य प्रथमवार्षिकी निबन्धावली। हरद्वार में जो पहला संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन हुआ था उसके लिए लिखे गये निबन्धों का संग्रह इस पुस्तक में प्रकाशित है। इसका सम्पादन हरद्वार-ऋषि-कुल के अध्यापक पण्डित—गिरिधर शर्म्मा चतुर्वेदी ने किया है। इसमें संस्कृत-शिक्षा, संस्कृत-भाषा, वेद, वेदाङ्ग, ज्योतिष, प्राचीन दर्शन, मानवजीवन, अर्वाचीन साहित्य और जैन-साहित्य पर अच्छे अच्छे निबन्ध हैं। संस्कृत-भाषा किस प्रकार व्यवहार योग्य हो सकती है, इस एक विषय पर युक्ति-पूर्ण अनेक निबन्ध प्रकाशित हैं। ये निबन्ध विशेष उपयोगी हैं। अर्वाचीन साहित्य से सम्बन्ध रखने वाला निबन्ध भी मनोहर है। पर उसके अन्त में काशी के पण्डितों पर किये गये आक्षेपों की कोई आवश्यकता न थी। उस अंश के बिना भी लेखक महाशय अपना वक्तव्य प्रकट कर सकते थे। अस्तु। यह लेख-संग्रह संस्कृतज्ञों के पढ़ने और शिक्षा-ग्रहण करने लायक है।

☼

७—राजपूत-रमणी। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ९२, टाइप बड़ा, काग़ज़ अच्छा, मूल्य ६ आने, प्रकाशक—बाबू देवनन्दनसिंह, पोईघाटी, डाकख़ाना जीरादाबाद, ज़िला गया—से प्राप्य। इस छोटे से उपन्यास की रचना बाबू युगलकिशोर-नारायणसिंह ने टाड के राजस्थान के आधार पर की है। इसकी मुख्य नायिका एक चन्द्रावत सरदार की पत्नी है। पुस्तक में उसी के चरित्र-वर्णन से पत्नियों की गृहिणियों को सुशिक्षा दी गई है। उसके पति के वृत्तान्त में स्वामिभक्ति का भी चित्र खींचा गया है। और भी कई प्रकार के सदुपदेश इससे मिल सकते हैं।

☼

८—शारदा। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ।≈), प्राप्ति-स्थान—हिन्दी-हितैषी कार्यालय, देवरी, ज़िला सागर। पण्डित शिवनाथ शास्त्री एम० ए० ने बँगला में एक कहानी लिखी है। उसका नाम है—"मेजबउ"। इस कहानी को उस तरफ़ लोगों ने बहुत पसन्द किया है। यह है भी अच्छी। इसमें एक ऐसा सामाजिक दृश्य दिखाया गया है जो स्वाभाविक हो कर शिक्षा-दायक भी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी बँगला कहानी का घटाया-बढ़ाया हुआ अनुवाद है। पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी ने इसे लिखा है। आपकी भाषा मज़े की है। परन्तु "खेद, बहुत दया की", "पुरा पड़ोस", "कुटपन" इत्यादि मुहावरे खटकते हैं।

☼

९—बालोपदेश। पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ३ आने, लेखक—पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, काल-भैरव, बनारस। मिश्रजी काशी में हरिश्चन्द्र स्कूल के हेडमास्टर हैं। हिन्दी के बड़े प्रेमी और बड़े अच्छे लेखक हैं। अध्यापन-कार्य्य में भी आप बड़े निपुण हैं। अपने स्कूल के छात्रों का चरित्र सुधारने के लिए आपने कथा के रूप में कुछ दिन तक उन्हें सदुपदेश दिया। उन्हीं उपदेशों का यह संग्रह है। भाषा सीधी-सादी है। उपदेशों में उदाहरण-द्वारा दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातें बताई गई हैं। अच्छी पुस्तक है। छोटे-बड़े सभी के पढ़ने लायक है।

☼

१०—द्रोणाचार्य्य। पृष्ठ-संख्या १०१, मूल्य ६ आने, लेखक—पण्डित रामरत्न त्रिपाठी, प्रकाशक—श्रीष्म एंड ब्रादर्स, पटकापुर, कानपुर। प्रकाशकों से ही प्राप्य। इसमें द्रोणाचार्य्य का चरित है। महाभारत तथा अन्य कई पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है। बीच बीच में पद्य भी हैं। भाषा साफ़ है। अपने ही नहीं, विदेशी भी, वीरों, महात्माओं और अन्य विख्यात पुरुषों के जीवनचरित पढ़ने से अनेक लाभ हो सकते हैं। यह तो अपने ही देश के एक माननीय वीर-पुरुष का चरित है। अतएव इसकी महत्ता का तो कहना ही क्या है।

हिन्दी-शेक्सपियर।

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के नाटकों पर से ये कहानियाँ बिलकुल नये ढँग से लिखी गई हैं। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) आने है और छः हों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया।

कादम्बरी।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम संस्कृत-उपन्यास का अत्युत्तम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह वर्मा ने किया है। कलकत्ता की यूनिवर्सिटी ने इसको एफ० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। दाम ॥), संक्षिप्त संस्कृत में ॥।)

गीताञ्जलि।

मूल्य १) रुपया।

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में बड़ा भारी आदर है; उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बंग-भाषा-माधुर्य का रसास्वादन करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

षोडशी।

बँगला के प्रसिद्ध आख्यायिकालेखक श्रीयुत प्रभातकुमार बाबू की प्रभावशालिनी लेखनी से लिखी गई १६ आख्यायिकाओं का यह संग्रह बँगला में बड़ा प्रसिद्ध है। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। ये कहानियाँ हिन्दी में एकदम नई हैं और पढ़ने योग्य हैं। मूल्य ३२७ पृष्ठ की पोथी का १)

युगलांगुलीय।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

धोखे की टट्टी।

मूल्य ।≈)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेक-नीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं; बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास।

जिन्होंने "आरब्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें

बालमनुस्मृति ।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद किया गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला ।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और भर्तृहरिनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग ।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार दिया गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ।) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग ।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता ।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने बालकों को पवित्र और धर्मिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" अवश्य पढ़ाइए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ।)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और नीतिमान् बनानेवाली है। राजा भर्तृहरि के जिस समय अन्तःकरण में उस संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम अपना पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी ये शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों के बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालआरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग ।

१०-१३—दिलचस्प किस्से कहानियों के उपन्यासों में 'अलिफलैला' का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, अच्छाई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ।)

बालपञ्चतन्त्र ।

१४—इसमें पशु-पक्षियों की बड़ी मनोरञ्जक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरञ्जक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य केवल ।) [illegible] आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के फंदे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण ।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आना

बालगीतावलि ।

१९—इसमें महाभारत में से ८ गीताओं का संग्रह किया गया है। इन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।≈)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें

विनयपत्रिका ।

[भागलपुरनिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत सरला टीकासहित]

गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता को सुन कर हिन्दू ही नहीं, विदेशी और विधर्मी लोग भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। प्रेम और भक्ति के वर्णन की दृष्टि से विनयपत्रिका का नंबर रामायण से भी पहले गिना जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। विनयपत्रिका का एक एक पद भक्ति और प्रेम-रस में सराबोर हो रहा है। अर्थ ऐसी सरल भाषा में है कि बालक भी समझ सकते हैं। पृष्ठ १७४। सुन्दर जिल्द। मूल्य २)

विनयपत्रिका के विषय में सर आर्ज, ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० के पत्र की नक़ल हम नीचे देते हैं कि जो उन्होंने विलायत से पंडित रामेश्वर भट्ट के नाम भेजी है—

True copy of the letter received from Sir George A. Grierson, K.C.I.E., Rathfarnham, England, to the address of the Commentator of Vinaya Pattrikâ.

Dated 6th September, 1914.

DEAR SIR,

Forgive a stranger for addressing you. I write to say how highly I appreciate your excellent edition of the [illegible], which I obtained from the "Indian Press" a few days ago. It is a worthy successor of your Edition of the [illegible], and really fills a want which I have long felt. The *Vinaya Pattrikâ* is a difficult work, but I think it is one of the best poems written by Tulasî Dâsa and should be studied by every devout [illegible]. I have already found it of great assistance in explaining difficult passages.

May I hope that you will go on with your work, and bring out similar editions of the [illegible] and of the [illegible] (including the [illegible]), both of which are very important. The [illegible] is most important, as it throws so much light on the life of the poet.

Yours faithfully,
GEORGE A. GRIERSON.

Pandit Râmeśvar Bhatt.

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला ।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित ।

इसमें सीताजीकी जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवनघटनाओं का महत्त्व भी विस्तारके साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। काग़ज़ मोटा। सजिल्द। पर, मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक; लाला कन्नोमल एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माघव कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

प्रेम

यह पुस्तक कविता में है। पण्डित मन्नन द्विवेदी बी० ए० गजपुरी को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। उन्हीं ने पाँच सौ पद्यों में एक प्रेम-कहानी लिख-कर इसकी रचना की है। मूल्य ।) चार आने।

भाषा-पत्र-बोध।

यह पुस्तक बालकों और स्त्रियों के ही उप-योगी नहीं सभी के काम की है। इसमें हिन्दी में पत्रव्यवहार करने की रीतियाँ बड़ी उत्तम रीति से लिखी गई हैं। मूल्य —)॥

व्यवहार-पत्र-दर्पण।

काम-काज के दस्तावेज़ और अदालती काग़ज़ों का संग्रह।

यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आज्ञानुसार उसी सभा के एक सभासद् द्वारा लिखी गई है। इसमें एक प्रसिद्ध वकील की सलाह से अदालत के सैकड़ों काम-काज के काग़ज़ों के नमूने छापे गये हैं। इसकी भाषा भी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। इसकी सहायता से लोग अदालत के ज़रूरी कामों को नागरी में बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। क़ीमत ।ı)

हिन्दी-व्याकरण।

(बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० कृत)

यह भी नये ढंग का व्याकरण है। इसमें भी व्याकरण के सब विषय अँगरेज़ी ढंग पर लिखे गये हैं। उदाहरण देकर हर एक विषय को ऐसी अच्छी तरह से समझाया है कि बालकों की समझ में बहुत जल्द आ जाता है। मूल्य ≡)

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक चीज़ है। मूल्य ।≈)

इन्साफ़-संग्रह—दूसरा भाग।

इसमें ३७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।≈) छः आने।

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार, जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

सरस्वती में विज्ञापन

यह तो आपको विदित ही है कि अब सरस्वती का प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता जाता है। भारतवर्ष का ऐसा कोई प्रतिष्ठित नगर नहीं जहाँ "सरस्वती" के अनेक ग्राहक न हों। यही नहीं, किन्तु लन्दन, अमरीका, अफ्रीका, फ़ीजी द्वीप आदि दूर देशों में भी सरस्वती के उत्साही ग्राहक बढ़ते जाते हैं। यह हमारा अनुभव ठीक है कि एक एक ग्राहक के पास से सरस्वती ले लेकर पढ़ने वालों की संख्या आठ-आठ, दस-दस, तक पहुँच जाती है। ऐसी दशा में सरस्वती का प्रत्येक विज्ञापन प्रतिमास तीस-चालीस हज़ार सभ्य मनुष्यों के दृष्टिगोचर हो जाता है। इसलिए सरस्वती में विज्ञापन छपाने वालों को विशेष लाभ रहता है। सन् १९१३ ईसवी से तो सरस्वती का प्रचार और भी अधिक बढ़ रहा है।

आशा है कि आप भी "सरस्वती" में विज्ञापन छपा कर उससे लाभ उठाने का शीघ्र प्रयत्न करेंगे और बहुत जल्द विज्ञापन भेज कर एक बार अवश्य परीक्षा करके देख लेंगे।

छपाने के नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	१२॥)	प्रतिमास
½ „ या १ „ „	७)	„
⅓ „ या ⅔ „ „	४)	„
¼ „ या ½ „ „	२॥)	„

१—विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवाले को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक साथ पेशगी देनेवालों से ≈) फी रुपया कम लिया जायगा।

१—सरस्वती का वार्षिक मूल्य ... ... ४)

नमूने की एक कापी का मूल्य ... ... ।≈)

पत्र-व्यवहार इस पते से कीजिए,

मैनेजर, सरस्वती,

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती के नियम।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ४) है। प्रति संख्या का मूल्य ।≈) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ॥) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए। जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ न हो।

४—जिस मास की सरस्वती किसी को न मिले तो उसकी प्राप्ति के लिए उसी मास के भीतर हमको लिखना चाहिए। अन्यथा बहुत दिन बाद लिखने से वह अङ्क बिना मूल्य न मिल सकेगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—सरस्वती को [illegible] सब आगाह हैं। हमारे पास बहुधा पत्र आया करते हैं कि अमुक मास की पत्रिका नहीं पहुँची। परन्तु, यहाँ दो बार अच्छी तरह जाँच कर भेजी जाती है। इससे ग्राहकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ। ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलिएगा।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, तथा उसे लौटाने या न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

९—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

१०—इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक या धर्म-सम्बन्धी लेख न छापे जायँगे जिनका सम्बन्ध वर्तमानकाल से होगा।

११—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो उसे प्रकाशक देवेंगे।

१२—यदि लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार करेंगे, तो सरस्वती के नियमों के अनुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता-पूर्वक दिया जायगा।

लेख-सूची।

चित्र-सूची।

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फ़ील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० लक्ष्मीधरनाथ भट्ट, बी० ए०, माथुर)

पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य १) मात्र ।

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्त्तव्यशील बना कर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको यह पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है।

ऋद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और ऋद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वावलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भली प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'अद्भुतरूपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः किस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनेंगे और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

नूतनचरित्र ।

(बाबू रामचन्द्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

चरित्रगठन ।

जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका उल्लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। उन्नति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ॥|) बारह आना है।

जापान-दर्पण ।

(ग्रन्थकर्त्ता के हाफ़्टोन चित्र सहित)

पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥|)

जिस हिन्दूधर्मावलम्बी वीर जापान ने महाबली रूस को पछाड़ कर सारे संसार में आर्य्यजाति का मुख उज्ज्वल किया है, उसी के भूगोल, आचरण, शिक्षा, उत्सव, धर्म, व्यापार, राजा, प्रजा, सेना और इतिहास आदि बातों का, इस पुस्तक में, पूरा पूरा वर्णन किया गया है।

पुष्पाञ्जलि ।

(प्रथम भाग)

साहित्य भेद

पंडित श्यामबिहारी मिश्र और पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र को हिन्दी-संसार अच्छे प्रकार जानता है। उन्हीं महाशयों के बढ़िया लेखों का यह संग्रह है। इसमें चार सौ से भी अधिक पेज हैं। तीन चित्र भी दिये गये हैं; जिल्द भी बँधी हुई है; तो भी मूल्य केवल १॥|) डेढ़ रुपया।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला ।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी॰ ए॰ द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और महाशयों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी॰ ए॰ आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़्टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥|) डेढ़ रुपया. एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित ।

इसमें सीताजीकी जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवनघटनाओं का महत्त्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। कागज़ मोटा। सजिल्द। पर, मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं॰ लक्ष्मीधरलाल भट्ट, बी॰ ए॰, मात्र)

पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य १) मात्र ।

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बना कर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको यह पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है।

ऋद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और भोगृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वा-वलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी॰ ए॰ को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'चक्रेरउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः किस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

नूतनचरित्र ।

(बाबू रत्नचन्द्र बी॰ ए॰ वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

रॉबिन्सन क्रूसो ।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ताकर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है। कूपमण्डूक की तरह घर पर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। मूल्य १।)

कविता-कुसुम-माला ।

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसमयी और चमत्कारिणी १०६ कविताओं का संग्रह है। मूल्य ॥=) दस आने।

क्षय-रोग ।

(जनसाधारण की बीमारी तथा उसका इलाज)

(अनुवादक, पण्डित बालकृष्ण शर्म्मा)

क्षयरोग की भयङ्करता जगत्प्रसिद्ध है। जर्मनी के बड़े बड़े डाक्टरों और विद्वानों ने एक सभा की थी। उसमें इस रोग से बचने के उपायों पर कितने ही निबन्ध पढ़े गये थे। एक निबन्ध सर्वोत्तम समझा गया। उसी को पारितोषिक भी मिला था। उसी पुस्तक का अनुवाद अब तक कोई २२ भाषाओं में हो चुका है। यह पुस्तक उसी निबन्ध का अनुवाद है। इसमें बताये गये उपायों के द्वारा अब फ़ी सदी ७५ रोगियों को आराम होने लगा है। पुस्तक बड़े काम की है। भाषा बड़ी सरल है। मूल्य ।-)

तरलतरंग ।

पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक संग्रह-रूप में है। इसमें—अपूर्व शिक्षक का प्रथम लगाव—एक बढ़िया उपन्यास है। और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं। यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और उपदेशप्रद भी है। मूल्य ॥=) दस आने।

संक्षिप्त वाल्मीकीय-रामायणम् ।

(सम्पादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से सम्पादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। तो भी पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। विद्यार्थियों के बड़े काम की है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

योगवासिष्ठ-सार ।

(वैराग्य और मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण)

योगवासिष्ठ ग्रन्थ की महिमा हिन्दू-मात्र से छिपी नहीं है। इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्रजी और गुरु वसिष्ठजी का उपदेशमय संवाद लिखा हुआ है। जो लोग संस्कृत-भाषा में इस भारी ग्रन्थ को नहीं पढ़ सकते उनके लिए हमने योगवासिष्ठ का सार-रूप यह ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किया है। इसमें धर्म, ज्ञान और वैराग्यविषयक उत्तम शिक्षायें मिलती हैं। मूल्य ॥=)

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ॥) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

बालोपदेश।

९—यह पुस्तक बालकों की ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प किस्से कहानियों के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभा के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालहितोपदेश।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आना

बालगीतावलि।

१९—इसमें महाभारत में से ७ गीताओं का संग्रह किया गया है। उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ।॥) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

बाल-कालिदास ।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।) चार आने है।

भारतीय विदुषी ।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

तारा ।

यह नया उपन्यास है। बँगला में "शैशवसहचरी" नामक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुकरण पर इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद और सामाजिक है। यह बढ़िया टाईप में छापा गया है। २५० पेज की पोथी का मूल्य केवल ॥।=)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, अभी तक कहीं नहीं छपी। इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

कविशिरोमणि कालिदास के शकुन्तला नाटक को कौन नहीं जानता? संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सर्वे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। मूल्य १)

सौभाग्यवती ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य ᠆)॥

हिन्दी-शेक्सपियर ।

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। उसी जगत्प्रसिद्ध कवि के नाटकों पर से ये कहानियाँ बिलकुल नये ढँग से लिखी गई हैं। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।।) आने है और छः हों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया।

कादम्बरी ।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम संस्कृत-उपन्यास का अत्युत्तम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह वर्मा ने किया है। कलकत्ता की यूनिवर्सिटी ने इसको एफ० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। दाम ।।), सचित्र संस्करण में ।।।)

गीताञ्जलि ।

मूल्य १) रुपया।

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में बड़ा भारी आदर है; उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बंग-भाषा-माधुर्य का रसास्वादन करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

राजर्षि ।

मूल्य ।।।=) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप-कर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़याल से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान् उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं।

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य =)

धोखे की टट्टी ।

मूल्य ।=)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेक-नीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "पारस्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥।)

चारला ।

(एक पद्यात्मक कहानी)

जो लोग अँगरेज़ी साहित्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि Romantic poetry रोमेन्टिक कविता का उस भाषा में कितना प्रचार और आदर है। हिन्दी में ऐसी कथाओं का अभाव ही है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक नई पुस्तक है। इसका ढँग नया है और कथा बड़ी ही रोचक और सरल है। प्राकृतिक दृश्यों का मनोरञ्जक वर्णन, प्राचीन राजपूत-गौरव का निदर्शन तथा चारण की आत्म-जीवनी पढ़ने ही योग्य है। प्रेम के उद्गार, दृढ़ता तथा स्वाभिमान से डूबे हुए पद्य पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक देखनी चाहिए। क्योंकि इसमें सबके काम की बातें और उनके पूर्वजों की अतीत काल की वीरता का वर्णन है। मूल्य केवल ≡)

बाला-बोधिनी ।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों में बालाबोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का ११) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

बालापत्रबोधिनी ।

इसमें पत्र लिखने के नियम आदि बताने के अतिरिक्त नमूने के लिए पत्र भी ऐसे ऐसे छापे गये हैं कि जिनसे लड़कियों को पत्र आदि लिखने का तो ज्ञान होगाही, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायँगी। मूल्य ।=)

भटो।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
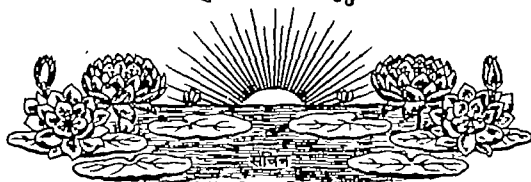
भाग १७, खण्ड २] सितम्बर १९१६—भाद्रपद १९७३ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २०१

इँगलेंड का राष्ट्रीय गीत ।

(१)

सब से प्रथम आदेश पा कर पुण्यमय परमेश का—
जब नीलसागर में हुआ शुभ जन्म अब इस देश का।
पट्टा मिला यह तब इसे, प्रभु ने किया जो दान था,
गाया सुरक्षक देव-दूतों ने तथा यह गान था—
जय राज्य वीर ब्रिटेनिया ! जय राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-हर ॥

(२)

जिन जातियों ने ईश का पाया न तुम-सा वर कभी—
अन्यायियों के हाथ में आख़िर पड़ेंगी वे सभी।
भय और ईर्ष्यास्थल तू उनके लिए हो जायगा,
स्वाधीन और महान रह कर सिद्धियाँ सब पायगा ॥
जय राज्य वीर ब्रिटेनिया ! जय राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-हर ॥

(३)

तूफ़ान जो आकाश के तुझको डराता है सही—
यह ही जमाता किन्तु तेरे 'ओक' तरु की है मही।
तुझको विदेशी आक्रमण त्यों और भी उन्नत करें,
गम्भीर और प्रचण्ड करके भव्य भावों से भरें ॥
जय राज्य वीर ब्रिटेनिया ! जय राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-हर ॥

(४)

दाम्भिक अनाचारी तुझे वश में नहीं कर पायेंगे,
तेरे दबाने के लिए सब यत्न निष्फल जायँगे।
बस, तुम यथेष्ट उदार का वे क्षोभ मात्र जगायँगे,
पा कर स्वयं वे शोक तेरी कीर्ति ही फैलायँगे ॥
जय राज्य वीर ब्रिटेनिया ! जय राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-हर ॥

(५)

हे मान्य शासन सिद्ध पैतृक भाव से तेरा सदा—
तेरे पुरों में पूर्ण हो व्यापार की श्री-सम्पदा।
सारे महासागर कि जो तेरे तटों से हैं सटे—
वश में रहेंगे नित्य तेरे प्रचुर पोतों से पटे॥
कर राज्य वीर ब्रिटेनिया! कर राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-दर॥

(६)

हे वीरहृदयी द्वीपवर! स्वाधीन और सु-पुष्ट है!
अबलाजनों के त्राणकारक! दिव्य शोभा-युक्त है!
[illegible] कला की देवियाँ विधि-रीति से—
तेरे किनारों पर बसेंगी प्राप्त होकर प्रीति से॥
कर राज्य वीर ब्रिटेनिया! कर राज्य सागर-वक्ष पर,
होंगे अधीन नहीं किसी के वर ब्रिटेन विपक्ष-दर॥

भारतीय

क्षपणक। *

भारत के प्राचीन सम्राट् महादानी उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य का नाम सभी जानते हैं। उन्होंने भारत के अतिरिक्त भारत के समीपवर्ती अन्यान्य देशों पर भी अपने प्रचुर प्रताप का प्रभाव डाला था। विक्रमादित्य ने बहुत परिश्रम और धनव्यय से भारत के लुप्त तीर्थों का जीर्णोद्धार तथा पुनरुज्जीवन किया। यदि वे इस काम को न करते तो भारत के कितने तीर्थों का पता भी न लगता। वे बड़े गुणानुरागी थे। उन्होंने अपनी सभा में बड़े बड़े विद्वानों को आश्रय दिया था। वे साधारण विद्वान न थे। उनका नाम समस्त भारतवर्षीय जन जानते हैं। उनकी सभा के विद्वानों में नव विद्वान् बड़े ही विलक्षण थे। इसलिए वे "नवरत्न" कहलाते थे। उनमें कालिदास शिरोमणि थे। अमरकोश के प्रणेता अमरसिंह, पञ्चसिद्धान्तिका आदि ग्रन्थों के निर्माता प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर, घटकर्पर-काव्य के रचयिता घटकर्पर आदि विद्वानों को सभी लोग थोड़ा बहुत अवश्य जानते हैं। किन्तु क्षपणक को बहुत ही कम लोग जानते होंगे कि वे कौन थे और उन्होंने कौन कौन से कार्य किये। इसलिए उनके विषय में दो चार बातें लिखना अवश्य रुचिकर होगा।

क्षपणक जैन-मतावलम्बी थे। वे श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के साधु थे। क्षपणक शब्द का अर्थ है—जैन-संन्यासी। उनका नाम "क्षपणक" न था। यह उनकी उपाधि मात्र थी। उनका नाम था—"सिद्धसेन दिवाकर"। उनका जन्म गुजरात में हुआ था। विद्या सीखने के लिए वे उज्जयिनी आये। उनके गुरु का नाम था "वृद्धवादि-सूरि"। जिस समय सिद्धसेन दिवाकर ने जैन सम्प्रदाय में प्रवेश किया उसके पहले उनका नाम "कुमुदचन्द्र" था। उन्होंने अनेक स्तोत्रों की रचना की। उन स्तोत्र-समूहों का नाम उन्होंने "कल्याणमन्दिरस्तव" रक्खा। सुनने में आता है कि एक दिन उज्जयिनी में महाकाल के सामने वे कल्याणमन्दिरस्तव का पाठ करने लगे। उस स्तोत्र के प्रभाव से महाकाल के मन्दिर में जैन-तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की मूर्ति अचानक ही प्रकट हो गई और शिवमूर्ति गायब हो गई। इस घटना का समाचार सुन कर महाराज विक्रमादित्य आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने सिद्धसेन दिवाकर से जैन धर्म का माहात्म्य सुना और उन्हीं से जैन धर्म की दीक्षा भी ली।* ऐसे अलौकिक जैन धर्म के पृष्ठपोषक वे

* यह लेख महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र आचार्य विद्याभूषण, एम० ए०, पी-एच० डी० के एक लेख के आधार पर लिखा गया है। लेखक।

* विक्रमादित्य शैव थे। यही बात प्रसिद्ध है। उनके जैन होने या जैन धर्म में दीक्षित होने की बात प्रसिद्ध नहीं है। उनके शैव तथा वैदिक धर्मावलम्बी होने के तो बहुत से दृढ़ प्रमाण मिलते हैं, किन्तु जैन होने का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता। लेखक।

वैसे ही विक्रमादित्य भी जैन धर्म के पृष्ठपोषक हुए। इसी कारण विक्रमादित्य की सभा में जिस प्रतिष्ठा के साथ कालिदास आदि वैदिकधर्मावलम्बी विद्वान् रहते थे उसी प्रतिष्ठा के साथ अमरसिंह * आदि बौद्ध-धर्मावलम्बी विद्वान् भी रहते थे। सिद्धसेन दिवाकर ने भी विक्रमादित्य की प्रतिष्ठित सभा में प्रवेश किया और क्रमशः उनकी गिनती नवरत्नों में हो गई।

जैन ग्रन्थों के मत से महावीर (जैनों के अन्तिम तीर्थङ्कर) की निर्वाण-प्राप्ति के ४६७ वर्ष बाद और क्राइस्ट के ५७ वर्ष पूर्व † क्षपणक उज्जयिनी में विद्यमान थे। उनके बनाये जितने ग्रन्थ इस समय मिलते हैं उनमें सम्मतितर्कसूत्र और न्यायावतार प्रधान हैं। ये दोनों ग्रन्थ न्याय-शास्त्र के हैं। न्यायावतार को यदि हम विशुद्ध जैन-न्याय का प्रथम ग्रन्थ कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। इसमें केवल ३२ ही श्लोक हैं। किन्तु इतने ही श्लोकों में जैन न्याय-शास्त्र का विवरण संक्षेप रूप से भली भाँति हो जाता है। पूर्वोक्त ग्रन्थ में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तथा नय और स्याद्वाद का वर्णन है। अनुमान और अनुमान के दोषसमूह ऐसी योग्यता से और किसी दार्शनिक ने नहीं लिखे। इस ग्रन्थ का प्रथम श्लोक यह है—

प्रमाणं स्वपराभासि
ज्ञानं बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च
द्विधा ज्ञेयविनिश्चयात् ॥

जो बाध-रहित ज्ञान अपने और दूसरे को प्रकाशित करे उसी का नाम प्रमाण है। ज्ञेय पदार्थ-समूह दो प्रकार से निश्चित होता है। इसलिए प्रमाण भी दो प्रकार के होते हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। ग्रन्थ का अन्तिम श्लोक यह है—

प्रमाणादिव्यवस्थेय—
मनादिनिधनात्मिका।
सर्वसंव्यवहर्तॄणां
प्रसिद्धापि प्रकीर्तिता ॥

यह प्रमाणादि-व्यवस्था अनादि काल से चली आती है और अनन्त काल तक चलती रहेगी। इसका व्यवहार सभी लोग करते आये हैं। यह कोई नई बात नहीं है। विक्रम सं० ११५९, अर्थात् ११०२ ईसवी, में चन्द्रप्रभ-सूरि नामक एक जैन दार्शनिक हो गये हैं। उन्होंने न्यायावतार की एक विशद टीका लिखी है, जिसका नाम न्यायावतार-विवृति है। उनके बनाये दो ग्रन्थ और भी मिलते हैं, जिनके नाम दर्शन-शुद्धि और प्रमेयरत्नकोश हैं।

कुछ दिन हुए, श्रीसतीशचन्द्र विद्याभूषण ने अपने जैन मित्रों की सहायता से न्यायावतार की एक अति प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक दक्षिण से मँगाई है। उसका आद्यन्त अवलोकन करके उसके विषय में बहुत सी बातें उन्होंने लिखी हैं।

जिस समय (१९५२ से १९५९ विक्रमाब्द तक) मैं मालवा के प्रसिद्ध जैन साधु श्रीमद्भट्टारक विजय-राजेन्द्र सूरि का * आश्रित होकर जैन-ग्रन्थों का अध-

* बहुत विद्वान् इनको जैन धर्मावलम्बी कहते हैं।

† श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की "खरतरगच्छ पट्टावली" देखिए। लेखक।

* विजयराजेन्द्र की अवस्था उस समय ८० के लगभग थी। वे संवेगी जैन साधु थे। वे बहुधा मालवा और गुजरात के नगरों में घूमा करते थे। उन्होंने "अभिधान-राजेन्द्र" नामक एक बृहत् कोश लिखना प्रारम्भ किया था। उसमें शब्द तो प्राकृत और मागधी भाषा के थे, जो अकारादिक्रम से रक्खे गये थे, पर उनके अर्थ तथा विवरण संस्कृत में लिखे गये थे। उसके सम्पादक वे स्वयं थे। मैं तथा काशी के अनेक विद्वान् सहकारी थे। यदि वह ग्रन्थ पूर्ण हो जाता तो राजा राधाकान्त देव के "शब्दकल्पद्रुम" या तारानाथ तर्कवाचस्पति के "वाचस्पत्य-बृहदभिधान" के बराबर अवश्य होता। १९०० में उनका शरीरान्त हो गया। इस लिए वह ग्रन्थ अपूर्ण

शोधन करता था उस समय सम्मतितर्कसूत्र की एक अति प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक मैंने भी देखी थी। उसके अक्षरों और मात्राओं के रूप आधुनिक देवनागराक्षरों से बहुत विभिन्न थे। काग़ज़ का रङ्ग भी बहुत मटमैला था। उस पुस्तक को ढाई सौ रुपये देकर विजयराजेन्द्र सूरि ने एक साधु से ख़रीदा था और उसे बहुत यत्न के साथ रखते थे।

अक्षयवट मिश्र

नई शैली की चित्रकारी।

सरस्वती के पाठक बङ्गाल के बने हुए चित्रों से अच्छी तरह परिचित हैं। इन चित्रों ने अन्य देशों के सभ्य समाज में यथोचित आदर पाया है। किन्तु हमारे देश के लोग इन चित्रों के आन्तरिक भाव न समझ सके। वे इन्हें दूषित ठहरा कर इनके सुयोग्य रचयिताओं के बहुमूल्य परिश्रम को वृथा मानने लगे। लोग कहते हैं कि इन चित्रों में न तो अवयवों की समपरिमाणता है और न आकार की शुद्धि ही है। न तो इनमें छाया-विभाग ही पाया जाता है और न रङ्ग की शोभा ही। यहाँ तक कि चेहरे की सफ़ाई का भी अभाव है। तो फिर क्यों टेढ़ी सीधी बे-मेल लकीरों की प्रशंसा की जाय? वास्तव में इन चित्रों के विषय में इन आक्षेपों का मुख्य कारण यही है कि इन चित्रों को परखने के लिए और ही कसौटी चाहिए। और वह कसौटी इन परखने वालों के पास नहीं। यदि ये परीक्षक निम्न लिखित विचारों के आलोक में इन चित्रों की जाँच करें तो आशा है कि शायद इनको इतना निन्दनीय न ठहरायें।

मनुष्य-जीवन उन्नति-मूलक है। उन्नति करना ही मनुष्य-जाति का परमोद्देश तथा उसकी एक मात्र अन्तिम समस्या है। अब प्रश्न यह है कि उन्नति किसे कहते हैं और उसके साधन क्या हैं? अभ्युदय तथा विकास को उन्नति कहते हैं। पूर्व-वस्तु की अभिवृद्धि अर्थात् किसी वस्तु को उसकी ही पूर्वस्थिति के आधार पर सुन्दर, सुदृढ़ एवं उपयोगी बना देने ही को उन्नति कहते हैं। उन्नति करने में वस्तु का परिवर्तन तो अवश्य होता है, किन्तु उसके पूर्वरूप का लोप नहीं होता। यदि पूर्वरूप का नाश हो गया तो फिर उन्नति किस की हुई? पिछले का विनाश कर देना उन्नति नहीं। पिछले को सुधारना ही उन्नति का मुख्य लक्षण है। यदि अगले और पिछले में कोई सम्बन्ध न हो तो अगले दृश्य को हम उन्नति की दशा न कहेंगे। कारण यह कि पिछला तो हमारे हाथ से चला ही गया था और कहिए कि उसका तो नामो-निशान ही न रहा। आधार न मिलने के कारण अगले की भी स्थिरता न होगी। अतः जो उन्नति पुराने आधार को नहीं छोड़ती वही जन-समुदाय के जीवन में चिरस्थायिनी बनने की आशा रख सकती है। हमारी प्राचीन सभ्यता के आधार पर जो उन्नति की जायगी उसी के द्वारा हमारे देश में स्वावलम्ब तथा स्वदेशाभिमान पैदा हो सकता है और उन्हीं के द्वारा हमारे कल्याण की एक मात्र आशा है।

बङ्गाल की चित्रकारी की नवीन शैली, उन्नति-मार्ग

ही रह गया। मुझे मालूम नहीं कि इस ग्रन्थ की फिर क्या दशा हुई। इसके सम्पूर्ण हो कर प्रकाशित हो जाने से जैन धर्म की बहुत सी बातें बिना परिश्रम ज्ञात हो जातीं। क्योंकि जब शब्दों के अर्थ, विचार, कथानक तथा इतिहास सभी जैन सम्प्रदाय के थे। अन्य धर्मों से कोई सम्बन्ध न था। हाँ, खण्डन करने के अभिप्राय से वैदिक, बौद्ध, चार्वाक आदि अन्य धर्मों की बातें यत्र-तत्र आ गई थीं। विजयराजेन्द्र के शिष्यों की संख्या प्रायः बीस हज़ार है। उनका कर्तव्य है कि वे इस कोश को पूर्ण करा कर प्रकाशित करा दें, जिससे उनके पूज्य गुरु का नाम अजर अमर हो जाय और जैन धर्म का एक बहुत बड़ा अभाव भी दूर हो जाय। लेखक।

के इसी सुसंस्कृत आदर्श पर चली है। भारतीय चित्रकारी की प्राचीन पद्धति में समयोचित परिवर्तन तथा शुद्धि करके रेखाओं द्वारा जातीय भावों का आविष्करण करना ही वङ्गाल की नवीन सम्प्रदाय का मूल मन्त्र है। इसी सम्प्रदाय द्वारा भारतवर्ष की अनुपम चित्र-कला का, जिसका कि समय के हेर फेर से ह्रास होता जा रहा था, पुनरुद्धार हुआ है। इस शैली के प्रवर्तकों में मिस्टर हैवल और श्री-अवनीन्द्रनाथ ठाकुर अग्रगण्य हैं। मिस्टर हैवल ने, जो किसी समय कलकत्ता-राजकीय-कला-भवन (Government School of Arts) के मुख्याध्यापक थे, अपने स्कूल से योरोपीय नमूनों को निकाल कर देशी नमूनों का प्रचार किया। इन महाशय ने अपने विद्यार्थियों को भारतीय चित्रकारी की परम्परा-प्राप्त शैली का अनुकरण करने की प्रेरणा की। पर उनको विशेष सफलता न हुई। स्वतन्त्रता-पूर्वक इसी आदर्श को सामने रख कर श्रीअवनीन्द्रनाथ ठाकुर भारतीय चित्रकारी का जीर्णोद्धार करने के लिए तैयार हुए। नई शैली की प्रायः जितनी रचनायें देखने में आती हैं उनका आविर्भाव स्वयं इनके अथवा इनके शिष्यों द्वारा ही हुआ है। इनकी रचनाओं में अजन्ता तथा मुग़ल और माध्यमिक हिन्दू-ज़माने के चित्रों की विशेष झलक पाई जाती है। श्रीनन्दलाल बोस ने भी इस नवीन शैली को प्रशस्त करने में बड़ी सहायता की है। इन चित्रों का मिलान बम्बई-प्रान्त के बने हुए चित्रों के साथ करने से मालूम हो जायगा कि इन्होंने उनकी अपेक्षा विदेशी पद्धति से कितना कम काम लिया है। पाश्चात्य आदर्शों के उपासक बहुत से भारतवासी रङ्ग की तड़क भड़क को ही चित्रकारी की उत्तमता का निर्णायक मान कर इन लोकोत्तर रचनाओं का अनादर करने लग जाते हैं। वे यह विचार नहीं करते कि कहीं चाँदी और कपास एक तराज़ू में तौली जाती है?

माना कि जातीय परम्परा का पालन करना अच्छी बात है। पर उस प्राचीन शैली में कुछ गुण भी तो होना चाहिए। हमारे यहाँ की चित्रकारी का विशेष गुण क्या है? इसके उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि हमारी प्राचीन चित्रकारी ने हमारे जातीय भावों और आदर्शों को प्रकट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कला किसे कहते हैं?—भावाविष्करणं कला—अर्थात् भावों के आविष्करण या प्रकटीकरण को ही कला कहते हैं। इसी भावाविष्करण-धर्म का पालन हमारे यहाँ की चित्रकारी ने पूरी तौर से किया है। और यही इसकी उत्कृष्टता का कारण है। भारतवर्ष की प्रत्येक बात में सदा ही से आध्यात्मिक पदार्थों की प्रधानता और शरीरादि भौतिक पदार्थों की गौणता एवं अवज्ञा पाई जाती है। सांसारिक विषयों का त्याग हमारी प्राचीन सभ्यता का मूल तत्त्व था। हमारे देश के लोग जो कुछ करते थे धर्म ही के अर्थ करते थे। जैसा कि महाकवि कालिदास ने सूर्य-कुलोत्पन्न दिलीप आदि महाराजाओं के विषय में कहा है—

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥

अर्थात् ये लोग दान देने के लिए, न कि धन की स्पृहा से अथवा लोभवश अर्थ-सञ्चय करते थे; सत्यधर्म के पालनार्थ, न कि आजकल के लोगों की तरह अपना बड़प्पन दिखाने के लिए उन्होंने मितभाषी होने का नियम धारण किया था; वे पूर्वकालीन राजा लोग अपने कुल के यश और कीर्त्ति के लिए धर्मस्थापनार्थ, न कि साम्राज्य बढ़ाने के लिए युद्ध किया करते थे; सन्तानोत्पत्ति करके पितृ-ऋण चुकाने के हेतु, न कि कामोपभोग के लिए विवाह किया करते थे।

भारतवर्ष का सारा साहित्य इन्हीं उच्च भावों से भरा पड़ा है। प्राकृतिक पदार्थों की भी उपमा

आध्यात्मिक विषयों से ही दी जाती है, जैसा कि महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है—

> ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा।
> जिमि हरिजन-हिय उपज न कामा॥
> कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
> जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

हमारा देश, वेश, भाषा, भोजन, रहन-सहन सभी त्याग और शान्ति के भाव से परिपूर्ण है। हम लोगों ने सांसारिक ऐश्वर्य को तुच्छ समझ कर अपनी शूरता के गौरव-गरिष्ठ कार्यों का इतिहास द्वारा प्रकाशन नहीं किया। हमारे यहाँ के ढीले ढाले वस्त्र भी यही बतलाते हैं कि वस्त्रों का काम शरीर को छिपाना या किसी तरह से ढक लेना है, शोभा बढ़ाना नहीं। अँगरेज़ी कपड़े शरीर के सुख के लिए चुस्त नहीं रक्खे जाते, किन्तु शोभा के लिए। यही हमारे और पाश्चात्य भावों में भेद है। सर्प जैसे शत्रु को भी दूध पिला कर पिलाना क्षमा और त्याग की पराकाष्ठा का परम आदर्श है। जब हमारे यहाँ की सभी बातें त्याग के भाव से परिपूर्ण हैं तो क्या हमारे यहाँ की चित्रकारी इन भावों से वञ्चित रहेगी?

हमारी प्राचीन चित्रकारी इन टेढ़ी सीधी बेमेल लकीरों द्वारा त्याग, शान्ति, ईश्वर-भक्ति आदि भावों को भली भाँति दिखाती थी। इस बात को पाश्चात्य विद्वानों ने भी माना है। यह बात कलाकौशल-निपुण मिस्टर फ़ैरिंग्सन् (Mr. Bernard Ferguson) के निम्न-लिखित शब्दों में प्रकट है—

"But if we turn to the Orient, we find that their arts of design do convey the sense of spiritual things. Their saints are frequently hideous; their contorted bodgoblins and demons are, as they ought to be, fiendish, but they are all spiritualized through and through, and in every look, in every gesture, manifest the life of the spirit. Think of the curious fact that after more than eighteen centuries of Christianity, our art has not yet created a single adequate image of its founder, while the Buddhist would soon incarnate the ideal Gautam in a form which left no room for change."

ऊपर के उल्लेख का सारांश यह है कि पूर्वी रचनाओं में आध्यात्मिकता का भाव अवश्य ही भरा दिखाई देता है। हमारे महात्मा कुरूप तो हैं—भूत-प्रेतों का रूप पैशाचिक तो है—पर उनकी दृष्टि और आकार से आध्यात्मिक जीवन झलकता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि १८०० वर्ष बीतने पर भी क्रिश्चियन लोगों की चित्रकला ने इतनी भी उन्नति न की कि हम अपने धर्म के सञ्चालक की एक भी अच्छी मूर्ति निर्मित कर सकते। किन्तु बौद्धों ने थोड़े ही काल में महाराज गौतम की परिमित मूर्ति बना ली।

ये वाक्य जापानी चित्रकारी के लिए लिखे गये हैं। किन्तु भारतीय चित्रकारी पर भी पूर्णतः घटते हैं। बङ्गाली चित्रकारी वैसी ही आध्यात्मिक चित्रकारी का अनुकरण कर रही है। उसकी सतोगुण प्रधान तेजस्विनी निर्मल रचनायें प्राकृतिक विषयों का तिरस्कार करके मानो शुभ भावों ही को अपने में मूर्तिमान् करती हैं। इन चित्रों की असम-परिमाणता, भौतिक शरीर की अवज्ञा और आत्मा-रूपता की सूचक है। ये चित्र प्रकृति-विरुद्ध नहीं, किन्तु प्रकृति के अतीत हैं। हमको यह अनुमान न करना चाहिए कि ये चित्रकार प्राकृतिक परिमाणों से अनभिज्ञ हैं। किन्तु वास्तविक बात यह है कि इन्होंने आत्म-विकास के आगे शरीर-विकास की अपनी चिन्ता का विषय ही नहीं समझा। इस भाव-प्रधान चित्रकारी में प्राकृतिक दृश्यों का अभाव है, शुद्ध भाव ही इसका जीवन है। ये चित्रकार अपने चित्रों को प्राकृतिक बना कर ईश्वी सेवा से विमुख नहीं चाहते। यह शान्ति, यह सतोगुण, यह अनन्य भक्ति, यह समाधिगत परमानन्द, यह दैवी तेज और ऐश्वर्य, यह

क्षमा और त्यागजन्य हर्ष क्या प्राकृतिक परिमाणों में बाँध कर प्रकट किया जा सकता है ? कदापि नहीं।

बङ्गाल के नये चित्रकार प्राचीन पद्धति का अनुकरण करते हुए इन्हीं सद्भावों का प्रकाश करने का उद्योग करते हैं। पाश्चात्य देशों के लुभावने चित्रों के वर्तमान होते हुए भी, तथा छिद्रान्वेषी लोगों के हृदय-शून्य आक्षेपों और परिहासों को सहन करते हुए भी, ये लोग अपने उच्च आदर्श से एक पैर भी नहीं हटे। इनका स्वदेश-प्रेम और साहस सर्वथा प्रशंसनीय है। आशा है, इनके उत्साहपूर्ण परिश्रम द्वारा हमारी अवनत भारतीय चित्रकला पूर्णोन्नति को प्राप्त होगी।

गुलाबराय, एम० ए०

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र का रचना-काल ।

न्याय-सभा में किसी प्रत्यक्ष बात को भी साबित करना कितना कठिन है, यह सब लोगों पर भली-भाँति विदित है। जब प्रत्यक्ष बातों की यह दशा है तब अप्रत्यक्ष बातों के विषय में तो कहना ही क्या ? और, इसीलिए किसी भी ग्रन्थ का काल-निर्णय करना इस कलियुग में अत्यन्त कठिन हो गया है। मैजिस्ट्रेटी या जजी कचहरी में कोई पेचीदा मुक़द्दमा पैदा होते ही वकील-दल अपना अपना पक्ष लेकर अपने अपने पक्षकार की तरफ़दारी करते हैं। उसी प्रकार साहित्य-कार्यालय में किसी पुराने ग्रन्थ के प्रकट होते ही पुराविद् लोग भी अपने अपने पक्ष का समर्थन करने लगते हैं। ऐसे मुक़द्दमों की कारग्वाई सुनने में भी एक प्रकार का आनन्द मिलता है। सत्यान्वेषण करना तो बहुत कठिन है; और, सामान्य लोगों के सामर्थ्य के यह बाहर भी है। यह काम तो जजों या मैजिस्ट्रेटों का है। परन्तु काफ़ी सुबूत मिलने तक उन्हें भी ठहरना ही पड़ता है। पर सामान्य लोगों को मुक़द्दमा सुनने की उत्कण्ठा तभी तक रहती है जब तक फ़ैसला न किया गया हो। आज कौटिलीय अर्थ-शास्त्र की एक ऐसी ही मुक़द्दमे-बाज़ी की कारग्वाई सरस्वती के पाठकों को सुनाने का विचार है।

इस ग्रन्थ का नाम संस्कृत-पाठकों को ग्रन्थान्तरों से ज्ञात था। इसका कुछ त्रुटित भाग मिल भी चुका था। पर जबसे पण्डित शामा शास्त्रीजी के अपूर्व परिश्रम से "माइसोर-संस्कृत-पुस्तकावली" में इसका प्रकाशन हुआ तबसे इस विषय पर लोगों की दृष्टि अधिक पड़ी। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पहले से ही इसके प्रामाण्य-विषय में जर्मन-पण्डितों ने शङ्कायें उपस्थित करना आरम्भ कर दिया था। ये पश्चिमी पण्डित भारतीय पण्डितों के सदृश सहज समाधेय नहीं। इनका समाधान करना बड़ा कठिन काम है। इस ग्रन्थ में 'इति कौटिल्यः', 'इति कौटिल्यः', लिख कर जो अवतरण दिये गये हैं उनसे Hillebrandt साहब ने शङ्का की कि यह ग्रन्थ स्वयं कौटिल्य-कृत नहीं हो सकता। क्योंकि लेखक स्वयं ही अपने नाम का 'प्रथम-पुरुषान्त प्रयोग' नहीं करता। इस शङ्का का निरसन पण्डित शामा शास्त्री ने यों किया है। आप अपने मुखबन्ध में कहते हैं—

"पराभिप्रायनिराकरणपूर्वकं स्वाभिप्रायप्रकटनं हि ग्रन्थकृतामस्मच्छब्दप्रयोगेण वा स्वनामनिर्देशेन वा कर्तुं शक्यते। अहङ्कारबोधकास्मच्छब्दप्रयोगेऽहन्त्यागो बध्यमानेभ्यो भरतखण्डीयविद्वद्भ्यो नाद्यापि रोचते"।

भावार्थ—ग्रन्थकार को दूसरे के मत का खण्डन करके जब अपना मत प्रकट करना होता है तब वह उत्तम पुरुष के प्रयोग से या अपने नामनिर्देश से उसे प्रकट करता है। 'अहङ्कार' का प्रयोग

आध्यात्मिक विषयों से ही दी जाती है, जैसा कि महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है—

ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा।
जिमि हरिजन-हिय उपज न कामा॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

हमारा वेश, भूषा, भाषा, भोजन, रहन-सहन सभी त्याग और शान्ति के भाव से परिपूर्ण है। हम लोगों ने सांसारिक ऐश्वर्य को तुच्छ समझ कर अपनी शूरता के गौरव-गर्भित कार्यों का इतिहास द्वारा प्रकाशन नहीं किया। हमारे यहाँ के ढीले ढाले वस्त्र भी यही बतलाते हैं कि वस्त्रों का काम शरीर को छिपाना या किसी तरह से ढक लेना है, शोभा बढ़ाना नहीं। अँगरेज़ी कपड़े शरीर के सुख के लिए कुछ नहीं रक्खे जाते, किन्तु शोभा के लिए। यही हमारे और पाश्चात्य भावों में भेद है। सर्प जैसे शत्रु को भी दूध ऐसा रस पिलाना क्षमा और त्याग की पराकाष्ठा का परम आदर्श है। जब हमारे यहाँ की सभी बातें त्याग के भाव से परिपूर्ण हैं तो क्या हमारे यहाँ की चित्रकारी इन भावों से वञ्चित रहेगी?

हमारी प्राचीन चित्रकारी इन टेढ़ी सीधी बे-मेल लकीरों द्वारा त्याग, शान्ति, ईश्वर-भक्ति आदि भावों को भली भाँति दिखलाती थी। इस बात को पाश्चात्य विद्वानों ने भी माना है। यह बात कलाकौशल-निपुण मिस्टर बेरेन्सन (Mr. Bernard Berenson) के निम्नलिखित शब्दों से प्रकट है—

"But if we turn to the Orient, we find that their arts of design do convey the sense of spiritual things. Their saints are frequently hideous; their contorted hobgoblins and demons are, as they ought to be, fiendish, but they are all spiritualized through and through, and in every look, in every gesture, manifest the life of the spirit. Think of the curious fact that after more than eighteen centuries of Christianity, our art has not yet created a single adequate image of its founder, while the Buddhist would soon incarnate his ideal Gautama in a form which left no room for change."

ऊपर के उल्लेख का सारांश यह है कि पूर्वी रचनाओं में आध्यात्मिकता का भाव अवश्य ही उन्हें दिखाई देता है। हमारे महात्मा कुरूप तो हैं—भूत-प्रेतों का रूप पैशाचिक तो है—पर उनकी दृष्टि और आकार से आध्यात्मिक जीवन झलकता है। यह आश्चर्य की बात है कि १८०० वर्ष बीतने पर भी क्रिश्चियन लोगों की चित्रकला ने इतनी भी उन्नति न की कि हम अपने धर्म के संस्थापक की एक भी अच्छी मूर्ति निर्मित कर सकते। किन्तु बौद्धों ने थोड़े ही काल में महात्मा गौतम की परिशुद्ध मूर्ति बना ली।

ये वाक्य जापानी चित्रकारी के लिए लिखे गये हैं। किन्तु भारतीय चित्रकारी पर भी पूर्णतया घटते हैं। बङ्गाली चित्रकारी वैसी ही आध्यात्मिक चित्रकारी का अनुकरण कर रही है। उसकी सतोगुण-प्रधान तेजस्विनी निर्मल रचनायें प्राकृतिक नियमों का तिरस्कार करके मानो शुद्ध भावों ही को अपने में मूर्तिमान् करती हैं। इन चित्रों की लम्ब-परिमाणता, शिथिल शरीर की सरलता और आत्मोन्मुखता की सूचक है। ये चित्र प्रकृति-विरुद्ध नहीं, किन्तु प्रकृति के अधीन हैं। हमको यह अनुमान न करना चाहिए कि ये चित्रकार प्राकृतिक परिमाणों से अनभिज्ञ हैं। किन्तु वास्तविक बात यह है कि इन्होंने आत्म-विकास के आगे शरीर-विकास को अपनी शिक्षा का ध्येय ही नहीं समझा। इस भाव-प्रधान चित्रकारी में प्राकृतिक दृश्यों का अभाव है, शुद्ध भाव ही प्रकट होता है। ये चित्रकार अपने चित्रों को प्राकृतिक बना कर ईर्षा लेखा से लिखना नहीं चाहते। यह शान्ति, यह सतोगुण, यह अनन्य भक्ति, यह समाधिगत परमानन्द, यह दैवी ओज और सौन्दर्य, यह

क्षमा और त्यागजन्य हर्ष क्या प्राकृतिक परिमाणों में बाँध कर प्रकट किया जा सकता है? कदापि नहीं।

बङ्गाल के नये चित्रकार प्राचीन पद्धति का अनुकरण करते हुए इन्हीं सद्भावों का प्रकाश करने का उद्योग करते हैं। पाश्चात्य देशों के लुभावने चित्रों के वर्तमान होते हुए भी, तथा छिद्रान्वेषी लोगों के हृदय-शून्य आक्षेपों और परिहासों को सहन करते हुए भी, ये लोग अपने उच्च आदर्श से एक पैर भी नहीं हटे। इनका स्वदेश-प्रेम और साहस सर्वथा प्रशंसनीय है। आशा है, इनके उत्साहपूर्ण परिश्रम द्वारा हमारी अवनत जातीय चित्रकला पूर्वोन्नति को प्राप्त होगी।

गुलाबराय, एम० ए०

कौटिलीय अर्थ-शास्त्र का रचना-काल।

न्याय-सभा में किसी प्रत्यक्ष बात को भी साबित करना कितना कठिन है, यह सब लोगों पर भली-भाँति विदित है। जब प्रत्यक्ष बातों की यह दशा है तब अप्रत्यक्ष बातों के विषय में तो कहना ही क्या? और, इसीलिए किसी भी ग्रन्थ का काल-निर्णय करना इस कलियुग में अत्यन्त कठिन हो गया है। मैजिस्ट्रेटी या जजी कचहरी में कोई पेचीदा मुक़द्दमा पेश होते ही वकील-दल अपना अपना पक्ष लेकर अपने अपने पक्षकार की तरफ़दारी करते हैं। उसी प्रकार साहित्य-कार्य्यालय में किसी पुराने ग्रन्थ के प्रकट होते ही पुराविद् लोग भी अपने अपने पक्ष का समर्थन करने लगते हैं। ऐसे मुक़द्दमों की कार-रवाई सुनने में भी एक प्रकार का आनन्द मिलता है। सत्यान्वेषण करना तो बहुत कठिन है; और, सामान्य लोगों के सामर्थ्य के यह बाहर भी है। यह काम तो जजों या मैजिस्ट्रेटों का है। परन्तु काफ़ी सुबूत मिलने तक उन्हें भी ठहरना ही पड़ता है। पर सामान्य लोगों को मुक़द्दमा सुनने की उत्कण्ठा तभी तक रहती है जब तक फ़ैसला न किया गया हो। आज कौटिलीय अर्थ-शास्त्र की एक ऐसी ही मुक़द्दमे-बाज़ी की कारखाई सरस्वती के पाठकों को सुनाने का विचार है।

इस ग्रन्थ का नाम संस्कृत-पाठकों को ग्रन्थान्तरों से ज्ञात था। इसका कुछ त्रुटित भाग मिल भी चुका था। पर जबसे पण्डित शामा शास्त्रीजी के अपूर्व परिश्रम से "माइसोर-संस्कृत-पुस्तकावली" में इसका प्रकाशन हुआ तबसे इस विषय पर लोगों की दृष्टि अधिक पड़ी। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पहले से ही इसके प्रामाण्य-विषय में जर्मन-पण्डितों ने शङ्कायें उपस्थित करना आरम्भ कर दिया था। ये पश्चिमी पण्डित भारतीय पण्डितों के सदृश सहज समाधेय नहीं। इनका समाधान करना बड़ा कठिन काम है। इस ग्रन्थ में 'इति कौटिल्यः', 'इति कौटिल्यः', लिख कर जो अव-तरण दिये गये हैं उनसे Hillebrandt साहब ने शङ्का की कि यह ग्रन्थ स्वयं कौटिल्य-कृत नहीं हो सकता। क्योंकि लेखक स्वयं ही अपने नाम का 'प्रथम-पुरुषान्त प्रयोग' नहीं करता। इस शङ्का का निरसन पण्डित शामा शास्त्री ने यों किया है। आप अपने मूलग्रन्थ में कहते हैं—

"पराभिप्रायनिराकरणपूर्वकं स्वाभिप्रायप्रकटनं हि ग्रन्थकृतामस्मच्छब्दप्रयोगेण वा स्वनामनिर्देशेन वा कर्तुं शक्यते। महत्त्वाबोधकास्मच्छब्दप्रयोगोऽहम्मान्यत्वेन निरस्त्यागे बद्धमानसेभ्यो भरतखण्डीयविद्वद्भ्यो नाद्यापि रोचते"।

भावार्थ—ग्रन्थकार को दूसरे के मत का खण्डन करके जब अपना मत प्रकट करना होता है तब वह उत्तम पुरुष के प्रयोग से या अपने नामनिर्देश से उसे प्रकट करता है। 'अहङ्कार' का प्रयोग

अहङ्कार-त्याग के लिए पक्ष-पातेतर भारतवर्षीय पण्डितों को, आज कल भी. रोचक नहीं।

पर यह ग्रन्थ कौटिल्यकृत ही है, इस पक्ष का समर्थन हर्मन जैकोबी साहब ने अधिक किया है। श्यामा शास्त्रीजी के कथन का उल्लेख करके आप ने कहा है कि यह ग्रन्थ कौटिल्य का ही बनाया हुआ है। उसकी शिष्य-परम्परा में से किसी ने इसे नहीं बनाया। क्योंकि, आप का कथन है कि चन्द्रगुप्त के मन्त्री आर्य्य चाणक्य के सदृश कार्य्य-व्यापृत राजकार्य्य-पटु को शिष्य-परम्परा पढ़ाने का अवसर ही न मिला होगा। तुलनार्थ आप ने बिस्मार्क का उदाहरण दिया है। ऐसे राजकार्य व्यापृत लोग स्वयं कुछ लिख रखते हैं, न कि शिष्य-परम्परा पढ़ाते बैठते हैं। परन्तु इस पक्ष के विरुद्ध दो प्रमाण मिलते हैं। पहला मुद्राराक्षस में। मुद्राराक्षसकार ने आर्य चाणक्य के शिष्यों का वर्णन किया है, अर्थात् उपाध्याय-शिष्य-भाव आर्य-चाणक्य पर प्रस्थापित किया है। पर इसका निर्मूलन जैकोबी साहब यह कह कर करते हैं कि आर्य-चाणक्य के काल के कोई १००० वर्ष पश्चात् मुद्राराक्षसकार ने अपने ही समय की परिस्थिति का आरोप आर्य-चाणक्य पर किया है।

दूसरा प्रमाण कामन्दकीय नीतिसार का है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही ग्रन्थकार लिखता है—

"नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥
दर्शनात्तस्य सुदृशो विद्यानां पारदृश्वनः।
राजविद्याप्रियतया संक्षिप्तग्रन्थमर्थवत्" ॥

ऐसी प्रस्तावना करके, आगे, कामन्दक ने लिखा है—

"विद्याश्चतस्र एवैता इति मे गुरुदर्शनम्"। इस श्लोक से तथा 'चतस्र एव विद्याः, इति कौटिल्यः' इस अर्थ-शास्त्र वाक्य से इस बात की सिद्धि होती है कि कामन्दक चाणक्य को गुरु समझते थे।

पर इसका खण्डन जैकोबी महाशय ने यह कह कर किया है कि यह सूत्र गुरु-शिष्यपरम्परा का न था, किन्तु तन्मतानुसारिता का था। अर्थात् स्वयं चाणक्य ने ही अर्थ-शास्त्र ग्रन्थ लिखा और उसी ग्रन्थ को आधार मान कर कामन्दक ने अपना नीतिसार ग्रन्थ लिखा।

इसके सिवा जैकोबी साहब ने नीचे लिखे प्रमाण भी ग्रन्थ-गर्भ से दिये हैं—

(१) इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर 'इत्याचार्याः', 'इत्याचार्यः' ऐसा उल्लेख है। प्रतिपक्ष के आचार्यों के नाम का प्रयोग सम्मानार्थक बहुवचन में आप स्वयं ग्रन्थकार ही करता है, दूसरा नहीं करता।

(२) इस ग्रन्थ का मुख्य भाग अन्य ग्रन्थकारों का आधार लिये बिना ही लिखा गया है। इससे भी यह ग्रन्थ चाणक्य-कृत ही जान पड़ता है।

(३) इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिखा है कि—

"पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्"।

इसी प्रकार प्रथमाधिकरण के अन्त में—

"पञ्चदशाधिकरणानि। सपञ्चाशदध्यायशतम्। साशीति प्रकरणशतम्। षट्श्लोकसहस्राणि। सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्। कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम्।"

एवं आगे एक स्थान में—

"सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।

तथा च अन्त में—

"येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥"

लिखा है। इन वाक्यों से भी यह ग्रन्थ कौटिल्य-कृत ही जान पड़ता है।

इस ग्रन्थ के प्रामाण्य में शङ्का उठाने वाले जो लोग हैं उनमें प्रधानतया कीथ (Keith) साहब हैं।

ब्रिटिश सबमेरीन बी० ६ (B 6) टारपेडो छोड़ रही है।

ब्रिटिश सबमेरीन बी० ५ (B 5)।
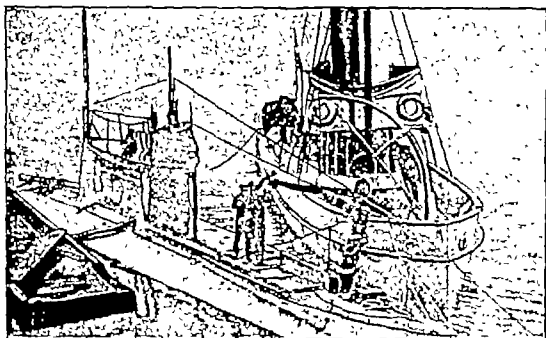
Hillebrandt साहब की 'इति कौटिल्यः' वाली शङ्का का आधार लेकर आप ने भी अपने पक्ष में ये प्रमाण उद्धृत किये हैं—

(१) पञ्चानवेयें प्रकरण में, एक स्थान पर, कौटिल्य के मत पर भारद्वाज ऋषि की टीका देकर, फिर से उस टीका का खण्डन कौटिल्य के ही शब्दों से किया गया है। इससे तो यही जान पड़ता है कि कौटिल्य-कृत कोई ग्रन्थ इससे पूर्व ही प्रसिद्ध था। उस पर भारद्वाज ऋषि ने अपना मत-भेद दिखाया और अन्त में इस ग्रन्थ के लेखक ने कौटिल्य-कृत ग्रन्थ से, जिसके कि अवतरण 'इति कौटिल्यः' 'इति कौटिल्यः' नाम से दिये गये हैं, उस मत का खण्डन किया।

(२) 'कौटिल्य' शब्द ही शङ्का करने योग्य है। कुटिल नीति से ही यह नाम पड़ा है। यह शब्द बहुमान-सूचक नहीं, जो आर्य-चाणक्य उसे अपने लिए व्यवहृत करते। न यह शब्द ऐसा है कि आर्य-चाणक्य के जीवन-काल में ही इतने प्रकट प्रकार से इसका प्रयोग किया जा सकता। अर्थात् सम्भाव्य बात यही है कि आर्य-चाणक्य ने जो पर-म्परा चलाई उसी को कुटिल नीति और उसी से लोग आर्य-चाणक्य को भी कौटिल्य कहने लगे होंगे। अर्थात् इसके बाद कौटिल्य-कृत कोई ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ होगा और, उसी के आधार पर, वर्त-मान अर्थ-शास्त्र लिखा गया होगा।

(३) उन्नीसवें प्रकरण में कोपप्रवेश्य रत्नपरीक्षा का विचार करते करते 'चीनपट्टाश्च चीनभूमिजाः' का उल्लेख है। विद्वानों का मत है कि चीन-शब्द, 'Thsin' छोन-वंश से ही प्रचलित हुआ है। यह वंश ईसा के कोई २४७ वर्ष पहले विद्यमान था। अर्थात् यह ग्रन्थ २४७ वर्ष ईसा के पहले से पूर्व-वर्ती नहीं हो सकता।

(४) वात्स्यायन-मुनि-प्रणीत कामशास्त्र में तथा इस अर्थ-शास्त्र में बड़ा भारी साम्य है। भाषा, लेखन-शैली, विवेचन-पद्धति, दोनों की बिलकुल एक सी है। नारायण, घोटमुख इत्यादि आचार्यों का उल्लेख, जिनके नाम अन्यत्र नहीं पाये जाते, दोनों ग्रन्थकार करते हैं। इससे भी यही अनुमान निक-लता है कि ये दोनों ग्रन्थकार समकालीन नहीं, तो कम से कम, निकटकालीन तो अवश्य ही होंगे। वात्स्यायन का काल पण्डितों ने ईसा की तीसरी सदी निश्चित किया है। अर्थात् यह ग्रन्थ भी ईसा के पूर्व ३०० वर्ष का नहीं हो सकता।

(५) इस ग्रन्थ में कोई ३०० श्लोक सुरक्षित हैं। इनका वृत्त अत्यन्त शुद्ध है। कहीं कहीं त्रिष्टुप् छन्द के श्लोक हैं, जो इतने नियमबद्ध हैं कि किसी प्राचीन ग्रन्थ में वैसे नहीं पाये जाते। विशेष कर 'बृहद्देवता' में, जिसके कर्ता शौनकाचार्य हैं, और जिसका काल विद्वान् लोगों ने ईसा के पूर्व तृतीय या चतुर्थ शतक निश्चित किया है, इस प्रकार के नियमबद्ध वृत्त नहीं मिलते। इससे भी यह ग्रन्थ इतना प्राचीन नहीं ज्ञात होता।

(६) भाषा से भी ग्रन्थ का अर्वाचीनत्व ही सिद्ध होता है। प्राचीन ग्रन्थों में जिस प्रकार के आर्ष प्रयोग पाये जाते हैं वैसे इसमें ढूँढ़े नहीं मिलते।

दोनों पक्षों के प्रमाण सुनने पर सामान्य लोगों को कीथ साहब का ही कथन ठीक जँच सकता है। शामा-शास्त्रीजी ने जिस अहङ्कार के त्याग के लिए लिखा है कि आर्य-चाणक्य ने स्वनाम-निर्देश किया है वह अहङ्कार पूर्णतया प्रकट करने के लिए पूर्वोक्त 'येन शास्त्रञ्च शस्त्रञ्च' श्लोक पर्याप्त है। इसके सिवा उत्तम-पुरुषवाचक प्रयोग 'वयमाः' भी ग्रन्थ में पाया जाता है। पर, फिर भी, आज तो यही कहना चाहिए कि अभी पूर्णतया इस बात का निर्णय करने के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं और जब तक ऐसे कोई प्रमाण न मिलें तब तक इस विषय के निर्णय को अधूरा ही छोड़ना चाहिए। बहुत सम्भव

है कि ईसा के पूर्व या पश्चात् एक सदी के लगभग यह ग्रन्थ लिखा गया हो।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

हमारे जीवन का क्या उद्देश है?

हम सभी इस संसार में अपना अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और कुछ न कुछ कार्य्य भी कर ही रहे हैं। मनुष्य मात्र किसी न किसी कार्य्य में लगा हुआ है; परन्तु यदि यह देखा जाय कि उसका वह कार्य्य कहाँ तक ठीक है तो प्रायः यही ज्ञात होगा कि मुख्यतः वह ठीक नहीं। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्य-पथ से कुछ न कुछ विमुख सा है। तो क्या सभी मनुष्य अपने कर्तव्य को भूले हुए हैं? उत्तर में हमें कहना पड़ता है—हाँ, अधिकांश में भूले हुए हैं। प्रश्न है कि हम जीते किस लिए हैं? हमारे जीवन का उद्देश क्या है? इस संसार में हमारा मुख्य कर्तव्य क्या होना चाहिए?

संसार के सभी कार्य प्रायः देशकालानुसार हुआ करते हैं। अतएव हमारे जीवन का कोई ऐसा उद्देश कदापि नहीं हो सकता जिसकी पूर्ति के लिए यह संसार योग्य न हो। जिस तरह अपनी जीवन-यात्रा में मछली का कोई कर्तव्य ऐसा नहीं हो सकता जिसका सम्बन्ध जल से न हो अथवा जो जल में ही सम्पादित न हो सके, क्योंकि जल के बिना मछली का जीवन ही नहीं रह सकता, उसी तरह जब हम इस संसार में रहते हैं तब निश्चय ही हमारा जीवनोद्देश ऐसा ही हो सकता है जिसकी पूर्ति इस संसार में ही हो सके। दूसरी बात यह है कि मनुष्य-सृष्टि लाखों वर्षों से है और करोड़ों वर्षों तक बनी जायगी। अतएव हमारा उद्देश अवश्यमेव कोई ऐसा होना चाहिए जिसका पालन हम हर समय कर सकें। ऐसा कार्य हमारे जीवन का उद्देश नहीं हो सकता जिसमें समय का हेरफेर और राज्यसम्बन्धी उलट-फेर बाधक हो जायँ और उसकी पूर्ति न होने दें। अतएव अब देखना है कि इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारे जीवन का सर्वोत्तम उद्देश क्या हो सकता है।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि दुनिया का प्रत्येक उद्देश केवल दुनियादारी हो सकता है। इसी के लिए यह संसार योग्य स्थान है। धन कमाना, मान तथा ऐश्वर्य प्राप्त करना, अथवा नाना प्रकार की उपाधियों से विभूषित होना—ऐसे ही कार्य तो इस संसार में हमारे जीवनोद्देश हो सकते हैं और जन-समुदाय को भी रात दिन हम ऐसा ही करते अथवा करते देखते हैं। इस संसार में इसके अतिरिक्त हमारा उद्देश और हो ही क्या सकता है? परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय और विचार किया जाय तो मालूम हो जायगा कि वास्तव में ऐसा नहीं। यह सोचना बड़ी भूल है। जीवनलक्ष्य में दुनियादारी के कामों के लिए यह संसार कदापि उचित स्थान नहीं।

किसी कार्य को करने के लिए केवल वही स्थान उचित स्थान कहा जा सकता है जहाँ वह कार्य सरलता, सुगमता और उत्तमता से, अथवा थोड़ी बहुत कठिनाइयाँ झेलने से, पूरा किया जा सके। जहाँ नाना प्रकार की दुर्गम कठिनाइयों तथा अन्य प्रकार के अनेक विघ्नों से कभी छुटकारा पाने की सम्भावना ही न हो वह स्थान उस कार्य के लिए उचित स्थान नहीं। ठीक यही बात इस संसार में धन, मान इत्यादि के विषय में चरितार्थ होती है। धन, मान, उपाधि तथा ऐश्वर्य के प्राप्ति-सम्बन्ध में हम अतुलनीय कठिनाइयों, मानसिक क्लेशों और अनेक प्रकार की अन्य चिन्ताओं तथा बाधाओं से छुटकारा नहीं पा सकते। प्रथम तो इनको प्राप्त करने में ही अनेक दुस्सह कष्ट उठाने पड़ते हैं। तिस पर भी उनको सुरक्षित रखने में विशेष चिन्ता, आर्थिक हानि, स्वास्थ्य-हानि, मानसिक क्लेश और कभी कभी आत्मा का हनन तक करना पड़ता है। अतएव ये बातें हमारे जीवन का उद्देश नहीं हो सकतीं। उनका तो स्मरण करते ही हृदय काँपने लगता है। ये बातें किसी से छिपी नहीं। हमारे प्रायः सभी धनाढ्य और उपाधिधारी सज्जन इनसे परिचित हैं। उदाहरणार्थ प्रथम धन-प्राप्ति को ही लीजिए। धन एक ऐसी वस्तु है जिसको कमाना और संग्रह करना मनुष्यमात्र बहुधा अपना परम कर्तव्य समझा करता है। पर देखिए कि इस धन के लिए मनुष्य को कितनी कठिनाइयाँ, कितने क्लेश—क्या शारीरिक, क्या मानसिक और क्या आत्मिक—उठाने पड़ते हैं। फिर इन सारी विपत्तियों और कष्टों को सहन

करने पर भी कितने मनुष्य ऐसे हैं जो अपने इच्छानुसार धन कमाने में पूर्णतया सफल हुए हैं। हम तो यही कह सकते हैं कि बहुत ही कम। अनेक कष्टों से प्राप्त किये हुए धन को मनुष्य चिर काल तक अपने पास रख भी तो नहीं सकता। मरने के बाद सब मिट्टी! जीते जी धन के कारण अनेक संकट!

जो आज राजा है वही कल रङ्क हो सकता है। आज असंख्य रुपयों से घर भरा हुआ है। कल उसी घर के आदमी दर दर भीख माँग रहे हैं। अतएव केवल धन-प्राप्ति इस संसार में हमारे जीवन का मुख्य उद्देश कदापि नहीं। ठीक यही दशा मान तथा ऐश्वर्य की है। उनको प्राप्त करने में भी अनेकानेक मानसिक क्लेश, शारीरिक कष्ट, धार्मिक पतन, आर्थिक तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धिनी हानियाँ उठानी पड़ती हैं। फिर, यदि, किसी तरह सफलता भी हुई तो उनको सुरक्षित रखने में जीवन-पर्य्यन्त चिन्तित रहना पड़ता है। उनके नाश की चिन्ता लगी ही रहती है।

इसके अतिरिक्त समय के हेर-फेर से अथवा देश-विप्लव आदि के कारण जो हृदय-विदारक परिवर्तन हुआ करते हैं वे सर्वथा अकथनीय हैं। इन सारी बातों पर विचार करने से यही कहना पड़ता है कि इस संसार में हमारे जीवन का उद्देश धन कमाना अथवा मान तथा ऐश्वर्य प्राप्त करना कदापि नहीं हो सकता।

अच्छा तो हमारे जीवन का उद्देश फिर हो क्या सकता है?

हम जो कुछ करते हैं उसका भला अथवा बुरा प्रभाव हमारे जीवनोद्देश पर अवश्य पड़ता है, चाहे हमारा कार्य्य हमारे उद्देश के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल। अब देखना है कि हमारा कौन सा कर्त्तव्य है जिस पर हमारे प्रत्येक कार्य का थोड़ा या बहुत, अच्छा या बुरा, प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। वही कर्त्तव्य हमारे जीवन का उद्देश हो सकता है। यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि ऐसा कर्त्तव्य केवल आत्म-सम्बन्धी ही है। आप अपने किसी भी धन, मान तथा ऐश्वर्य्य-सम्बन्धी कार्य में चाहे सफल हों चाहे असफल, परन्तु उस कार्य्य के साधनों द्वारा आपकी आत्मा थोड़ी बहुत अवश्य ही उन्नत अथवा अवनत होगी। अस्तु, जब हमारी आत्मा का उन्नत अथवा अवनत होना हमारे प्रत्येक कार्य से ही अवश्यम्भावी है तब यह स्पष्ट है कि केवल आत्मा को उद्धार तथा उन्नत बनाना ही हमारे जीवन का परम उद्देश हो सकता है। इस पर न तो समय-चक्र का ही हेर-फेर कोई विघ्न डाल सकता है और न कोई राजकीय उलट-फेर ही इसके मार्ग में कोई रुकावट पैदा कर सकता है। आप संसार के कर्त्तव्यों पर दृष्टि डालिए तो विशेषतः आप यही पावेंगे कि यदि कोई कर्त्तव्य कार्य्य शारीरिक वेदनाओं से परिपूर्ण है, तो कोई मानसिक अशान्ति का अड्डा बन रहा है। यदि कहीं आर्थिक और शारीरिक हानियाँ चरम सीमा तक पहुँच चुकी हैं, तो कहीं आत्मा का पतन सब से नीचे की सीढ़ी को प्राप्त हो रहा है। अतएव केवल आत्मा का उद्धार तथा उन्नत बनाना ही एक ऐसा कर्त्तव्य है जिसमें आप सच्चा सुख और पूर्ण शान्ति पावेंगे।

यहाँ पर यह पूछा जा सकता है कि यदि आत्मा को उन्नत बनाना ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य अथवा जीवनोद्देश है, और यह दुःखदायक नहीं किन्तु अपार आनन्दवर्धक है, तो क्यों बड़े बड़े महात्माओं को भी अनेक दुस्सह कष्ट उठाने पड़े! क्या सुकरात (Socrates) और ईसा मसीह महात्मा पुरुष न थे? फिर क्या कारण कि एक को विष का प्याला पीना पड़ा और दूसरे को सूली दी गई! क्यों उनको ऐसे घोर कष्ट मिले? क्यों लोग उनके इतने शत्रु हो गये कि उन्होंने उनके प्राण लेकर ही पीछा छोड़ा?

यदि कहा जाय कि लोगों ने उनके साथ घोर अन्याय किया तो यह ठीक नहीं। क्योंकि यह एक प्राकृतिक नियम है कि जो किसी को पैर से दबावेगा तो वह नीचे से और कुछ नहीं तो कम से कम काटेगा अवश्य ही। इन महात्माओं की आत्मायें बहुत ही उन्नत थीं, अतएव उन्होंने अपने अपने विचारानुसार अपने समय के लोगों के सर्वथा प्रतिकूल विचार प्रकट किये, उनको सर्व-साधारण में फैलाने का प्रयत्न किया। अथवा यह कहना चाहिए कि उन्होंने अपने समय के जन-समुदाय के हृदय-पटल पर कठोर आघात किये। इस कारण उन्होंने बदले में उनके प्राण ले लिये। पर यदि सूक्ष्मतया विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि यह मत वास्तव में ठीक नहीं। जो यह ठीक नहीं है तो फिर क्यों ऐसे महान् पुरुषों के साथ ऐसा कठोर व्यवहार किया गया? किस कारण उनको प्राणान्तक कष्ट पहुँचाया गया?

कारण केवल यही है कि हम इन महान् पुरुषों के चरित्रों को प्रायः अपने सङ्कुचित विचारों से जाँचते हैं। उनकी आत्मायें बहुत उन्नत होती हैं और बहुधा उनके समय से भी बहुत आगे के समय के अनुकूल होती हैं। इससे भविष्यत् में होने वाली जिन बातों का अनुभव वे रात दिन किया करते हैं उनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। इसी लिए जिन कामों को हम सुख-दुःख के विषय समझा करते हैं वे उनके लिए सुख-दुःख के विषय ही नहीं। उनका सुख और दुःख तो कुछ और ही बातों से सम्बन्ध रखता है। छोटा बच्चा अपने दुःख-कष्ट के अतिरिक्त अपनी माता, भगिनी इत्यादि के दुःख कष्ट का अनुभव नहीं कर सकता। कुछ बड़ा होने पर उसे उनके कष्टों का कुछ कुछ अनुभव होने लगता है। पर पूर्ण वयस्क होने पर अपने आत्मीय जनों के ही दुःख-कष्ट का नहीं, किन्तु सारे देश अथवा सारे संसार के कष्टों को वह अपना कष्ट समझता और उसका अनुभव भी करता है। वैसे ही हमारी आत्मा धीरे धीरे उन्नत होती है। अन्त में ऐसा समय आता है जब हम कहने लगते हैं—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

महान् पुरुषों की आत्मायें उन्नतावस्था की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच जाती हैं। देश तथा संसार के दुःखों और कष्टों के सामने अपने कष्टों और दुःखों को वे कुछ समझते ही नहीं। वे तो अपने व्यक्तिक सुख-दुःख की परवा न करके संसार के दुःख दूर करने में ऐसे लीन हो जाते हैं कि अपने प्राणों तक को सहर्ष न्योछावर कर देते हैं। ऐसा करने से वे उस परमानन्द को प्राप्त होते हैं जो हमारे व्यक्तिक सुख से लाखों गुना बढ़ कर है और जिसका अनुमान भी हम जैसे सङ्कुचित हृदय और छोटी आत्मा के मनुष्य नहीं कर सकते। अस्तु। जिन बातों को हम दुःख और कष्ट समझते हैं और यह कहते हैं कि उन महात्माओं का जीवन दुःखमय था वे उनके लिए कदापि दुःखकारक नहीं। उन्हें दुःख-जनक समझना हमारी भारी भूल है। कष्ट और दुःख तो वे हमको प्रतीत होते हैं। वास्तव में उनके लिए वे कष्ट और दुःख नहीं। हलाहल विष, जो हमारे लिए प्राणनाशक और महा-भयङ्कर है, कर्त्तव्यपालन के समय उनके लिए अमृत है। जैसे उनकी सुख-सामग्री कुछ और ही होती है वैसे ही उनके दुःखद विषय भी कुछ और ही हुआ करते हैं, हमारे सदृश सङ्कुचित-हृदय मनुष्यों के से नहीं।

इतिहास में भी ऐसे महात्मा पुरुषों के चरित्र हमें यही सिखाते हैं कि आत्मा को महान् और समुन्नत बनाना ही हमारे जीवन का परम पुनीत और सर्वोच्च उद्देश है। सच्चा सुख तथा पूर्ण शान्ति प्राप्त करने का यही एक मात्र सर्वोत्तम मार्ग है।

तोताराम गुप्त

भाषा-विज्ञान।

(Science of Language)

यदि हम थोड़ी देर के लिए भाषा की उत्पत्ति पर विचार करते हैं—अर्थात् मनुष्य पहले पहल कैसे बोलने लगा, मनुष्य की आदि भाषा एक ही थी अथवा अधिक, वह भाषा कहाँ बोली जाती थी, उसका भी व्याकरण था अथवा नहीं—तो हमें तरह तरह के मतवाद के चक्कर में पड़ना पड़ता है। भारतीय मत यह है कि संस्कृत वेदों की भाषा है, वेद अनादि हैं, इस लिए संस्कृत भी अनादि अर्थात् नित्य है। संस्कृत देवभाषा है। संस्कृत ही पृथ्वी की अन्यान्य भाषाओं का उत्पत्ति-स्थल है। उधर यूरप वाले, विशेष कर बैबिल-मतावलम्बी, कहेंगे "जनाब, आप क्या समझ रहे हैं। बाग़-ए-अदन (Garden of Eden) में आदम और हव्वा इब्रानी (Hebrew) ज़बान में बातें करते थे। जिस वक़्त का ज़िक्र हो रहा है, उस वक़्त कहाँ थी आपकी संस्कृत, और कहाँ थी आपकी हिन्दी।" केवल इतना ही नहीं। इस दूसरे मतवाद ने यूरप में इतना ज़ोर पकड़ा था कि अठारहवीं शताब्दी तक लोग इसे ध्रुव सत्य मानते थे। ज्योतिष में जैसे यूरप वालों ने मान लिया था कि सूर्य घूमता है, पृथ्वी स्थिर है, इसी तरह भाषा-विज्ञान में भी यह एक मानी हुई पक्की बात थी कि हिब्रू से ही संसार की सब भाषायें निकली हैं। इन दोनों भ्रमात्मक सिद्धान्तों ने सत्य-निर्णय के मार्ग में बहुत सी बाधायें उपस्थित की थीं और भाषा-विज्ञान की उन्नति इन्हीं अन्धविश्वासों के कारण बहुत दिनों तक रुकी रही।

भाषा की उत्पत्ति पर यदि केवल युक्ति या तर्क की सहायता से विचार किया जाय तो सब से पहले कम से कम दो मनुष्यों का होना आवश्यक है। क्योंकि आदमी अपने आप बातें नहीं कर सकता। पहले मनुष्य ने दूसरे को अपना मन्तव्य प्रकाशित करने के लिए सब से पहले इशारे से काम लिया होगा। फिर उसने देखा होगा कि इशारे से काम नहीं चल सकता। क्योंकि जिस किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसे कहना पड़ता होगा उस वस्तु के पास ही जा कर उसे इशारा भी करना पड़ता होगा। दूर से सङ्केत-द्वारा पदार्थ-निर्देश में कभी कठिनता, कभी भ्रम, उपस्थित होता होगा। इससे यह प्रमाणित है कि मनुष्य की सब से पहली भाषा साङ्केतिक अवस्था में थी, और वाचनिक भाषा (Articulate Language) क्रमविकास (Evolution) के इतिहास का दूसरा अध्याय है। पहले मनुष्य ने वृक्ष को, पानी को, नदी को, सूर्य को अपने मन-माने नामों से पुकारा होगा। फिर उसने दूसरे को सङ्केत-द्वारा समझाया होगा कि वृक्ष को—ऐसा कहना, नदी को इस नाम से पुकारना, और यदि सूर्य कहना हो तो—यह कहना। दूसरे ने इन नामों को सीख कर याद रक्खा होगा। इसी तरह तीसरे, चौथे, पाँचवें ने इन नामों का प्रचार किया होगा। अतएव हम देखते हैं कि भाषा में सब से पहले संज्ञावाचक शब्दों की उत्पत्ति हुई होगी। यदि हम एक क़दम और आगे बढ़ें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि सब वृक्ष एक ही तरह के नहीं होते, सब नदियाँ एक सी नहीं होतीं और न सब पहाड़ ही एक तरह के होते। प्राकृतिक जगत् की इन्हीं विभिन्नताओं तथा गुणवैचित्र्यों के कारण शब्द-जगत्, अर्थात् भाषा, में गुणवाचक शब्द अर्थात् विशेषण-शब्दों की सृष्टि हुई। भाषा में विशेषण-शब्दों का प्रवेश संज्ञार्थक शब्दों से कुछ ही पीछे हुआ, परन्तु क्रियावाचक शब्दों की उत्पत्ति में कुछ अधिक विलम्ब हुआ होगा। क्योंकि क्रिया एक ऐसी चीज़ है जो आँखों से देखी नहीं जाती, बुद्धि के द्वारा ही उसकी उपलब्धि करनी पड़ती है। अथदर्शी यूरोपीय पण्डित एडम स्मिथ (Adam Smith) भी इसी मत के समर्थन करने वालों में से हैं।

अतीत सजीवता या सचेष्टता का लक्षण कर्म है। कर्म में भ्रम होना स्वाभाविक है—सुधार और बिगाड़ दोनों ही मनुष्य से ही होते हैं। भाषाविज्ञान की आलोचना में लगी हुई कर्मप्रिय यूरोपीय जातियाँ अब तक इब्रानी को आदिम भाषा (Primitive Language) मान कर बैठी रहीं तब तक वे महा भ्रम में पतित रहीं। यूरोपीय धार्मिक सम्प्रदाय ने ही मनुष्य की स्वाधीन चिन्ता को अन्धविश्वास के पिँजड़े में बन्द रक्खा और फिर कुछ सदियों के बाद जिस तरह उसी धार्मिक सम्प्रदाय ने स्वाधीन चिन्ता के स्रोत के प्रवाह को उन्मुक्त कर दिया यह आगे चल कर मालूम होगा।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हम लोग यूरप अथवा अमरीका के किसी बड़े शहर में पहुँच गये हैं—जैसे लन्दन, पेरिस, बर्लिन या न्यूयार्क। यह भी मान लीजिए कि वहाँ एक विराट् आन्तर्जातिक प्रदर्शिनी (International Exhibition) खोली गई है, जिसे देखने के लिए पृथ्वी के भिन्न भिन्न देशों के मनुष्य उपस्थित हैं। यहाँ हम भिन्न भिन्न देशों के, भिन्न भिन्न रूप वाले, मनुष्य देखेंगे, भिन्न भिन्न आचार-व्यवहार देखेंगे। यूरप के अँगरेज़, फ़्रेंच, जर्मन, स्पेनियर्ड, डच, पोर्चुगीज़, इटालियन, आस्ट्रियन, रशियन, स्लाव, पोल, टर्क, स्वीस, ग्रीक, स्कांडिनेवियन, बलगार इत्यादि जातियाँ देखने में आवेंगी। एशिया-भूखण्ड की भारतीय, तिब्बती, चीनी, जापानी, अफ़ग़ान, पारसी, तातार, यहूदी, आर्मेनी, बर्मी, फ़िलीपिन, अरब, रूमी इत्यादि जातियाँ मिलेंगी। अफ़्रीक़ा की मिसरी, मडागास्करी, हबशी, सुलेरो, हाटेन्टोट्, मूर, जञ्जीरी जातियाँ भी दृष्टिगोचर होंगी। इसी तरह अमरीका की भी भिन्न भिन्न जातियों का वहाँ दर्शन होगा। इन सब को देख कर हम आश्चर्य अवश्य करेंगे। परन्तु सब से अधिक आश्चर्य की बात होगी इनकी बोली, जिसे महीनों सुनने पर भी हम कुछ न समझेंगे।

अथवा, संसार की ये जो भिन्न भिन्न भाषायें हैं सो सब की सब पहले ही से, अर्थात् सृष्टि-काल से ही, भिन्न हैं अथवा किसी एक मूल से उत्पन्न हो कर एक ही वृक्ष की भिन्न भिन्न शाखाओं के समान इनका रूपान्तर हुआ है। इसका उत्तर अभी तक ठीक ठीक नहीं मिला।

भाषाविज्ञान नया शास्त्र है। उसकी आलोचना अठारहवीं शताब्दी से आरम्भ हुई है। गुचार्ड (Guichard) तथा टामसिन (Thomassin) ने हिब्रू को आदि भाषा समझ-

कर इस शास्त्र की आलोचना में अपना अमूल्य समय वृथा खराब किया । सेंट से रोम आदि रोमन धर्माधिकारी भी इसी विश्वास में पड़े पड़े समय नष्ट करते रहे । पर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक असाधारण प्रतिभावान् पुरुष ने यूरप में भाषाविज्ञान की जड़ से इस भ्रमात्मक संस्कार को हटा दिया । वास्तव में यह मनुष्य असाधारण मेधावी था । एक मनुष्य में इतने गुणों का—इतनी शक्तियों का—होना एक प्रकार असम्भव है । वह धर्मतत्व, (Theology) क़ानून, इतिहास, तथा गणित में पारदर्शी था । उसी ने डिफ़रेंशल कैलक्युलस (चलन-कलन) का आविष्कार किया, उसी ने पृथ्वी के स्तरों (Strata) को देख कर पृथ्वी के वयःक्रम के अनुमान का उपाय बतलाया, उसी ने चतुर्दश लूई को मिसर पर चढ़ाई करने की तरकीब बताई, उसी ने प्रोटेस्टन्ट तथा रोमन-कैथलिक दलों में परस्पर सुलह कराने में बहुत यत्न किया; तर्क-विज्ञान तथा प्राकृतिक दर्शनों की उसी ने कितनी ही नई नई बातें बताईं । यह सर ऐज़क न्यूटन का प्रतिद्वन्द्वी लेबनिज़ (Liebnitz, Liebniz) था । लेनफ़ल नाम के अपने एक मित्र को लेबनिज़ ने लिखा—

To call Hebrew the primitive language, is like calling branches of a tree primitive branches, or like imagining that in some country hewn trunks could grow instead of trees. Such ideas may be conceived, but they do not agree with the laws of nature, and with the harmony of the universe, that is to say, with Divine wisdom.—*Guhrauer's Life of Liebniz.*

संस्कृत को आदि भाषा माननेवालों का विश्वास भी भ्रमात्मक है । इसे भी अन्धविश्वास ही कहना चाहिए । इब्रानी को मूल भाषा मानने से जो जो आपत्तियां उठती हैं वही संस्कृत के विषय में भी समानरूप से आ सकती हैं । वास्तव में संस्कृत अथवा हिब्रू दोनों में से किसी के भी विषय में आदि भाषा होने का दावा नहीं हो सकता ।

ऐसे और भी कई मत हैं जिन पर विश्वास-स्थापना नहीं की जा सकती । आंद्री केम्प (Andre Kemp) ने लिखा है कि ईश्वर ने आदम से स्वीडिश भाषा में प्रश्न किया था, आदम ने डेनिश में उसका जवाब दिया था, और सर्प के रूप में शैतान ने हव्वा (Eve) को पारसी भाषा में बहकाया था । शार्डिंन (Chardin) कहते हैं—"फ़ारिस अधिवासियों का विश्वास है कि अदन के उद्यान में अरब शैतान ने अरबी भाषा में और जिब्राइल फ़रिश्ते ने फ़ भाषा में बातें की थीं" ।

इसके उपरान्त, सन् १५८० में, हालेण्ड की एक पुस्तक में गोरोपियस (Goropius) ने एक पुस्तक छपाई, जिसमें उसने दावे के साथ लिखा कि संसार की आदि भाषा डच (Dutch) थी ।

इन लोगों में से किसी ने भी संस्कृत का नाम नहीं लिया । इसका कारण यह है कि यूरोपीय विद्वानों की उन्नीसवीं शताब्दी से पहले संस्कृत की तरफ़ दृष्टि आकृष्ट न हुई थी । हमारा कहना यह नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी से पहले यूरोप वालों में से कोई भी संस्कृत न जानता था । उन्नीसवीं शताब्दी का तो कहना ही क्या है, सोलहवीं शताब्दी में भी ऐसे बहुत से यूरोपीय पादरी थे जो ब्राह्मणों के साथ धर्मविषयक बहस करने के लिए संस्कृत सीखते थे । Roberto-de-Nobili, Heinrich Roth, Marco della Tomba, E. Hanxleden अच्छे संस्कृत जानने वाले थे । इनके अलावा सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में, गोआ, पांडिचेरी, कालिकट, करनाटक इत्यादि में सैकड़ों जीसूट (Jesuit) पादरी भारतवर्ष में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए आया करते थे । ये लोग आज कल के पादरियों के समान सब कुछ जानने वाले बन कर न आते थे । इनमें से अधिकांश भारतवर्ष में रह कर, भारतवासी ब्राह्मणों की खुशामद करके, कभी कभी ब्राह्मण भी होकर, सिर्फ़ संस्कृत समझने वाले ही न बनते थे, बल्कि वेद, उपनिषद्, दर्शन इत्यादि के भी ज्ञाता हो जाते थे ।

परन्तु इस तरह संस्कृत सीखना एक बात है और Bopp, Grimm, Schlegel, Burnouff, Rosen तथा Humboldt के सदृश संस्कृत-चर्चा करना और बात है । इन लोगों को संस्कृत सीखने के लिए इँगलैंड में कुछ दिनों तक रहना पड़ता था । उन्हें Wilkins, Colebrook, Wilson इत्यादि भारतीय सिविल सर्विस के पुराने मेम्बरों से सहायता ग्रहण करनी पड़ती थी । सन् १८१६ में फ्रांसिस बाप (Francis Bopp) ने संस्कृत-व्याकरण के साथ ग्रीक, लैटिन, फ़ारसी तथा जर्मन व्याकरण का समभाव

बतलाया। फिर, १८३३ में, उनका "Comparative Grammar of Sanskrit, Zend, Latin, Greek, Lithuanian, Slavonic, Gothic and German" नामक ग्रन्थ का पहला भाग निकला। उसका दूसरा भाग बीस वर्ष बाद, अर्थात् १८५२ में, प्रकाशित हुआ। साथ ही फ्रेडरिक श्लेगल के भाई आगस्टस विल्हेल्म वोन श्लेगेल ने संस्कृत से जर्मनी वालों का परिचय कराया। इनके विचारों तथा अनुसन्धानों का फल Indische Bibliothek नामक ग्रन्थ में लिखा गया। इसी समय हमबोल्ट (Humboldt) ने संस्कृत-भाषा के प्रचार के लिए बहुत यत्न किया। प्रोफ़ेसर पाट (Pott) तथा ग्रीम (Grimm) ने शब्दशास्त्र (Philology) की बहुत कुछ उन्नति की। इनके पहले ही, अर्थात् १८१९ में, इरेसमस डेन (Erasmus Dane) ने फ़ारिस तथा हिन्दुस्तान में बहुत दिनों तक रह कर यह *दिखाया कि पारसी धर्मग्रन्थ* ज़ेन्दावस्ता (Zenda-vesta) की भाषा संस्कृत से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसके अनन्तर फ्रांस के एक विख्यात तत्ववेत्ता (Eugene Burnouff) ने निःसन्देह सिद्ध कर दिया कि ज़ेन्दावस्ता की भाषा तथा त्रिकोणाक्षरों में लिखे हुए दारा और अरतक्षीर के शिलालेखों की भाषा में बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं तथा संस्कृत से उनका बहुत कुछ सादृश्य है।

भाषा-तत्ववेत्ताओं की विचार-प्रणाली में कुछ विभिन्नता होने पर भी एक बात में सब की सम्मति एक है। सब के सब इस बात को मानते हैं कि एक भाषा के साथ दूसरी भाषा का सादृश्य या सामञ्जस्य केवल शब्दों के सादृश्य या सामञ्जस्य से सिद्ध नहीं हो सकता। दो, तीन अथवा अधिक भाषाओं में से यदि दस, बीस, पचास अथवा सौ दो सौ शब्द ऐसे निकाले जायँ जो क़रीब क़रीब एक से हों तो केवल इन्हीं की बुनियाद पर हम नहीं कह सकते कि वे सब भाषायें मूल में एक ही थीं। भिन्न भिन्न भाषाओं की एकमूलता तभी सिद्ध हो सकती है जब हम यह प्रमाणित कर सकें कि उनके व्याकरणों में भी विभक्ति, प्रत्यय, शब्द-रूप, धातुरूप इत्यादि में सामञ्जस्य है। नीचे लिखे हुए शब्दों की आकृति यदि हम विचारपूर्वक देखें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अँगरेज़ी तथा फ़ारसी के शब्दों में बहुत सादृश्य है—

संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	फ़ारसी	अँगरेज़ी
विंशति	Veikati	Viginti	बिस्त	Twenty
नाम	Onoma	Nomen	नाम	Name
देव	Theos	Deus	...	Deity
पद्	Podus	Pedis	पा	Foot
नासा	...	Nasus	बीनी	Nose
अप्, उदक	Hydor	Aqua	आब	Water
पितृ	Pāter	Pater	पिदर	Father
मातृ	Mētēr	Mater	मादर	Mother
दुहितृ	Thygater	...	दुख़्तर	Daughter
भ्रातृ	...	Frater	बिरादर	Brother
हस्त	...	...	दस्त	Hand
मृत्यु	...	Mors, Mortis	मर्ग	Mert
शत	E-katon	Centum	सद	Hundred
केन्द्र	Kentron	Centrum	...	Centre
दशम्	Deka	Decem	दह	Ten
स्था	Histanai	Stāre	इस्तादन	To stay, stand
विधवा	...	Vidua	बेवा	Widow
न	Ny	Ne	न	Not
मध्य	Mesos	Medius	...	Middle
दान	...	Donum	दादन	Donation

यह फ़िहरिस्त बहुत ही संक्षिप्त है। भाषायें भी सिर्फ़ पाँच ही ली गई हैं। यदि ऐंग्लो-सैक्सन, डच, जर्मन इत्यादि भी इसमें शामिल कर ली जायँ तो हम वही सादृश्य उनमें भी पावेंगे। इससे कम से कम इतना अवश्य सिद्ध होता है कि हमारे तथा रोमन, ग्रीक, जर्मन, इँगलिश, डच, पारसी आदि के पूर्वपुरुष एक ही स्थान के अधिवासी *थे और एक ही भाषा बोलते थे। उस स्थान को कोई कोई* मध्य-एशिया बतलाते हैं, परन्तु उस भाषा का पता अभी तक नहीं लग पाया जो वे लोग बोलते थे।

इन भाषाओं के धातुओं (Roots) तथा धातुरूपों में भी बहुत सादृश्य है। दृष्टान्त के लिए हम संस्कृत के अस् धातु (To be) के साथ लैटिन के es धातु की तुलना करते हैं। संस्कृत के अस्मि, असि, अस्ति लैटिन में Sum, Es, Est हो जाते हैं और विधिलिङ् के स्याम्, स्याः, स्यात्

लिम्बू, किरांती	कोसी के किनारे।
लेपचा, भोटिया	तिस्ता तथा मानसी के आस पास।
नेपाल	नेपाल की तराई में।

(क) मुण्डा से निकली हुई बोलियाँ छोटा नागपुर, चाईबासा, कोलेहान इत्यादि स्थानों की हैं। इन्हीं में से सन्थाली, भूमिज, मुण्डारी, सिंहभूम-कोल्ही तथा हो इत्यादि निकली हैं।

(ख) लोहितिक उपविभाग की बोलियाँ ब्रह्मदेश (बर्म्मा), आराकान, तथा आसाम के हिस्सों में बोली जाती हैं। निम्नलिखित बोलियाँ इस उपविभाग के अन्तर्गत हैं—

बर्मीज़, धीमल, कछारी, गारो, चंबो, मिकिर, लेपचा, मीरि, आबर-मीरि, आबर, शिवसागर-मीरि, सिंफो, नागा, कूकी, कमी, कूमी, शेन्दु, मु, साक तथा तुंगसु।

(ग) सामुद्रिक उपविभाग की बोलियाँ दक्षिणी भारतवर्ष में प्रचलित हैं। उसी में से कैनेरी, तामिल, तेलगु, गोंड, मलयालम, तुलुम तथा ओराऊँ-कोल निकली हैं। दूसरा मत यह है कि द्राविड़ या दक्षिण-भारतीय (Dravidian or South Indian Family) एक स्वतन्त्र ही विभाग है—"As they obviously have no Aryan affinity, the attempt has been made to connect them also with the Ural-Altaic or the Turanian family, but altogether without success; although there is nothing in their style and structure that should make such connection impossible"—Encyclopædia Britannica.

ऊपर लिखे हुए तीन परिवार—अर्थात् आर्य्य, सेमेटिक तथा यूराल-अलटाइक अथवा तूरेनियन—प्रधान हैं। इनके सिवा और भी भाषा-परिवार हैं। परन्तु वे इतने बड़े नहीं। स्थानाभाव के कारण केवल उनके नामोल्लेख तथा संक्षिप्त परिचय से ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा।

(१) हेमेटिक-परिवार, जिसकी सर्वप्रधान भाषा प्राचीन मिस्री (Extinct Egyptian) है। अफ़्रीका के उत्तर-पूर्वी सीमान्त से लेकर भूमध्यसागर (Mediterranean Sea) के किनारे किनारे, पश्चिमी हद तक, और फिर दक्षिण में विषुव-रेखा (Equator) से भी आगे कुछ नीचे इस परिवार का स्थान है।

(२) सामुद्रिक परिवार (Oceanic Family) अफ़्रीका के पूर्वी किनारे पर अवस्थित मडगास्कर से अमरीका के पश्चिम सैंडविच द्वीप तक विस्तृत है।

(३) दक्षिणी अफ़्रीका के बान्टु (Bantu) परि... जो अफ़्रीका के पूर्व से लेकर पश्चिम तक और विषुव... के उत्तर से लेकर दक्षिण में हाटेन्टाट जाति की वास... तक विस्तृत है।

(४) मध्य-अफ़्रीका की बोलियाँ, जिसे हाटेन्टाट बुशमेन (Hottentots and Bushmen) बोलते हैं।

(५) अमरीकन-परिवार जिसमें अमरीका के आ... आदिवासी रेड इण्डियनों की बोली प्रधान है। मेक्सि... मध्य-अमरीका तथा पेरू की भाषायें इसी परिवार... अन्तर्गत हैं।

पर यह न समझना चाहिए कि बस इतने ही परि... और इतनी ही भाषायें संसार में हैं। इन भाषाओं... अलावा और भी असंख्य भाषायें हैं, जो ठीक ठीक कि... परिवार के अन्तर्भुक्त नहीं।

यहाँ पर भाषा की एकमूलता के विषय में ऐसी ब... उपस्थित होती हैं जिनके उत्तर ठीक ठीक नहीं बन पड़... इस लिए विद्वानों की राय है कि भाषा-विज्ञान को... तथा बचपन की अवस्था में समझ कर इस विषय को... कुछ सदियों तक ऐसा ही रखना चाहिए। सम्भव है... जिन विचारों को हम अभी विश्वास-योग्य मानते हैं, प... से वे भ्रमात्मक निकलें।

एकोत्पत्ति के विषय में लोग कहते हैं कि मनुष्य-जा... सबसे पहले पृथ्वी के किसी एक अंश में एक साथ रह... होगी। इसी कारण उसकी बोली भी एक ही रही होगी... फिर, अपनी आवश्यकताओं के कारण, जैसे जैसे मनुष्य जाति अपने पूर्व-वासस्थान से हटती गई वैसे ही वैसे उसकी भाषा भी बदलती गई। अतएव क्रमक्रम से तथा कारण... अनन्तर भिन्न भिन्न जातियाँ कितनी ही दूर पर क्यों न गई... उनकी बोली में कुछ न कुछ सादृश्य अवश्य रहना चाहिए... यह अनुमान इतना स्वाभाविक तथा युक्तिपूर्ण है कि इसमें...

विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता। परन्तु जब तक हम संस्कृत तथा ज़न्द में, जर्मन तथा अरबी में, पारिवारिक सादृश्य न पावें तब तक समग्र भाषाओं की एकोत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। सम्भव है कि पृथ्वी की सारी बोलियाँ तथा सारी भाषायें परस्पर जो सादृश्य रखती हैं उसे हम अभी तक देख ही नहीं पाये। यह भी सम्भव है कि आलोचना से बुद्धि विशद हो जाय और भविष्यत् में कोई ऐसा धुरन्धर विद्वान् जन्म-ग्रहण करे जो पृथ्वी की सारी भाषाओं तथा सारी जातियों को एक ही मूल से उत्पन्न प्रमाणित कर दे।

एक बात और कह कर हम इस प्रबन्ध को समाप्त करना चाहते हैं। भाषा-विज्ञान की आलोचना पदार्थ-विज्ञान, भूविज्ञान, ज्योतिष इत्यादि की तरह सदियों में पूर्णता प्राप्त करेगी। अभी केवल इसका प्रारम्भ है। इसकी उन्नति के लिए बड़े बड़े धुरन्धर पण्डितों के परिश्रम की आवश्यकता है। ईसाई पादरियों ने इस विषय में बहुत सहायता की है। यदि पूछा जाय कि वह कौन सी पुस्तक है जो पृथ्वी की सबसे अधिक भाषाओं में अनुवादित हुई है तो हमको ईसाई धर्मग्रन्थ, बाइबिल, का ही नाम लेना पड़ेगा और यदि यह पूछा जाय कि वह कौन सी चीज़ है जो इससे भी अधिक भाषाओं में अनुवादित हुई है तो हमें ईसाइयों की "ईश्वर-प्रार्थना" को ही बतलाना पड़ेगा। पृथ्वी का कोई अंश कदाचित् ही इन पादरियों से ख़ाली हो। ये जहाँ जाते हैं वहीं की भाषा सीख कर उसमें अपना प्रचार-कार्य्य करते हैं। इन अनुवादों से भाषाविज्ञान के समझने में बहुत कुछ सुभीता हुआ है। एक ही चीज़ के अनुवाद भिन्न भिन्न भाषाओं में एक दूसरे के साथ मिलाने से हम उनकी विभिन्नता तथा उनके सादृश्य को मालूम कर सकते हैं। प्राचीन मिसर की चित्रलिपि (Egyptian Hieroglyphics) को समझने में रोसेटा-पत्थर (Rosetta Stone) से बहुत सहायता मिली है, क्योंकि उसमें एक ही चीज़ चित्रलिपि, संक्षिप्त चित्रलिपि, तथा ग्रीक इन तीन भाषाओं में लिखी हुई है। यह रोसेटा, पत्थर का एक टुकड़ा है जो नील-नदी के किनारे मिला था। पहले यह पत्थर फ़्रांसवालों के पास था। अब विलायत के अजायब घर में है।

केथरिन् ने (जिनके विषय में पहलेही लिखा गया है) इस काम के लिए पादरियों से, परिव्राजकों से, राजाओं से, राज-प्रतिनिधियों से, सम्राटों से सहायता प्राप्त की थी। उस समय के जीसूट पादरी चीन तथा तातार से अपने अपने अनुसन्धान के परिणाम उनके पास लिख भेजते थे। विख्यात परिव्राजक विट्सेन ने हाटेन्टाट भाषा में "ईश्वर-प्रार्थना" का अनुवाद उनके पास उपहार-रूप में भेजा था। रूस-सम्राट् पीटर दि ग्रेट से भाषाविज्ञान के अनुशीलन में उन्हें बहुत सहायता मिली थी। पीटर दि ग्रेट के बाद कैथेराइन दि ग्रेट ने इसकी उन्नति के लिए बहुत यत्न किया था। जिन बातों में पीटर दि ग्रेट, समय के अभाव से, कृतकार्य्य न हो सके थे उनमें कैथेरिन ने सम्यक् सफलता प्राप्त की थी। इसका यथार्थ कारण प्रो॰ मैक्समूलर यों बताते हैं—

"When an empress rides a hobby, there are many to help her. Not only were all the Russian ambassadors instructed to collect materials; not only did the German professors supply grammars and dictionaries, but Washington himself, in order to please the empress, sent her list of words to all governors and generals of the United States, enjoining them to supply equivalents from the American dialects.

हमारे यहाँ के राजा महाराजा यदि पोलो-क्रिकिट इत्यादि के साथ साथ इस तरफ़ भी ध्यान दें अथवा इसकी उन्नति के लिए मदद करें तो बड़ी अच्छी बात हो।

सुरेन्द्रनाथसिंह

सब-मेरीन।

सब-मेरीन उस नाव को कहते हैं जो पानी के ऊपर भी तैरती हो और पानी के नीचे भी रह कर चल सकती हो। इस प्रकार की नाव ने हलचल डाल दी है। अभी तक यह समझा जाता था कि जिस जाति के पास बड़े बड़े और शक्तिशाली जङ्गी जहाज़ अधिक हों वही

संसार में सबसे अधिक शक्तिशालिनी है, किन्तु अब सब-मेरीन के आविर्भाव ने इन विचारों में उलट-फेर कर दिया है। अब जिस देश के पास सब से अधिक और शीघ्र-गामी सब-मेरीनें होती हैं वही अन्य देशों को, उनके पास बड़े बड़े जहाज़ रहते हुए भी, तङ्ग कर सकता है।

आधुनिक सब-मेरीन का आविष्कार १८९३ के लगभग एक अमेरिका-निवासी ने किया था। उसका नाम मिस्टर हालेंड था। उसके बाद फिर अन्य सज्जनों ने उसमें उन्नति करना आरम्भ किया। बिजली की मशीन आविष्कार और तेल के एञ्जिन की करामात के कारण सब-मेरीन की उन्नति अधिक हुई, क्योंकि सब-मेरीन में यही तो विशेषता है कि पानी के अन्दर होते हुए भी उसके होने का कोई चिह्न शत्रु को नहीं देख पड़ता। उसमें मोटर-गाड़ी के सदृश तेल से चलने वाला एक एञ्जिन होता है। यह वज़न में तो हलका किन्तु चाल में तेज़ और शक्ति में विपुल-भारवाही होता है। यह एञ्जिन उस समय तक सब-मेरीन को चलाता रहता है जब तक कि वह पानी के ऊपर होती है। इस एञ्जिन के अतिरिक्त उसमें बिजली की बैटरी और मोटर भी होते हैं, जो नाव को बिजली की ताक़त से पानी के नीचे चलाते हैं। बिजली में एञ्जिन की तरह धुआँ नहीं निकलता, जिससे नाव हर समय शत्रुओं के बीच बे-खबर आ जा सकती है।

पहली नाव बीस गज़ लम्बी और चार गज़ चौड़ी थी। यह अँगरेज़ों के लिए बनाई गई थी। यह ३६०० मन बोझ लाद सकती थी। उसको चलाने के लिए १९० घोड़े की ताक़त वाला एक एञ्जिन लगाया गया था। उसकी शकल सिगार (चुरुट) की तरह थी, जिससे पानी का धक्का कम लगे। आज कल भी इसी शकल की सब-मेरीनें बनाई जाती हैं; हाँ, इनका आकार बहुत बड़ा चलबत्ते कर दिया गया है। अब इनमें बड़े शक्तिशाली एञ्जिन लगाये जाते हैं। इसके और भी भिन्न भिन्न अङ्गों में उन्नति की गई है।

भिन्न भिन्न देशों की सब-मेरीनों के नाम भिन्न भिन्न अक्षरों के आधार पर रक्खे गये हैं। ज सब-मेरीन "यू-१" "यू-२" इत्यादि (U-1, et कहलाती हैं। ब्रिटिश सब-मेरीनों को "ई- "ई-२" इत्यादि (E-1) कहते हैं।

ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए जो सब-मेरीनें प पहल बनी थीं उनको "ए (A)" कहते थे १०० फ़ीट लम्बी, १३ फ़ीट चौड़ी थीं और १८० बोझ जल के नीचे ले जाती थीं। उनको ८ म फ़ी घण्टे के हिसाब से ले जाने के लिए ३०० की शक्ति का एञ्जिन लगाया गया था।

इसके बाद उनसे बड़ी "बी (B)" श्रेणी सब-मेरीनें बनीं, फिर "सी (C)" और "ड (D) श्रेणियों की। आज कल "ई (E)" श्रेणी सब-मेरीनें बनती हैं, जिनकी लम्बाई १७८ फ़ चौड़ाई २३ फ़ीट होती है और जो ८०० टन बोझ जा सकती हैं। उनको चलाने के लिए दो तेल एञ्जिन, नौ नौ सौ घोड़ों की ताक़त के, लगाये ज हैं। उनमें शत्रु के जहाज़ों को उड़ाने के लिए टारपेडो होते हैं और तीन इञ्च के मुँह वाली तेज़ गोले चलाने वाली छोटी तोपें भी रहती हैं।

अब इनसे भी बड़ी और अधिक शक्तिशालि "एफ़ (F)" और "जी (G)" श्रेणियों की ना बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं।

इन सब-मेरीनों में पानी के कम से कम ती हौज़ होते हैं, जो एक दूसरे से इस प्रकार मिले रहते हैं कि एक का पानी दूसरे में जा सके। उनमें से एक आगे, दूसरा बीच में और तीसरा पीछे की ओर होता है। पानी से ये उस समय भरे जाते हैं जब नाव को जल के भीतर ले जाने के लिए बोझ भारी करने की ज़रूरत होती है। एक साधारण नाव अपने क़द से पानी के जितने वज़न को हटा सकती है उतना ही बोझ लाद कर वह पानी पर तैर सकती है। इसी लिए नाव को लम्बी और गहरी

बनाते हैं, जिससे यह क़द में तो बड़ी हो जाय किन्तु वज़न में हलकी रहे। अतएव अधिक पानी काटने और अधिक बोझ लाद सकने योग्य हो जाय।

नाव तब तक जल के ऊपर तैरती रहती है जब तक कि उस पर लदा बोझ उतने पानी से हलका होता है जितना कि नाव अपनी पेंदी के क़द से काट सकती है। उतने पानी से अधिक बोझ हो जाने पर यह पानी में डूब जाती है।

यदि सबमेरीन को पानी में डुबोने की ज़रूरत होती है तो इसी नियम के आधार पर उसके ख़ाली हौज़ों में उतना पानी भर देते हैं जितना कि उसे डुबोने के लिए दरकार होता है। जब नाव को पानी के ऊपर लाने की ज़रूरत होती है तब पानी को पम्प के द्वारा बाहर निकाल देते हैं। इससे नाव का वज़न कम हो जाता है और यह पानी के ऊपर आ कर तैरने लगती है। जब ज़ेप्लिन को अधिक ऊँचा ले जाना होता है तब उससे भारी वायु हटा कर हलकी गैस भर देते हैं और कुछ बोझ गिरा देते हैं, जिससे यह हलका होकर ऊपर चला जाता है। इसी तरह नीचे लाने के लिए हलकी गैस निकाल कर भारी वायु भर देते हैं। तब यह नीचे आ जाता है। इसे पाठक भूले न होंगे। इसी प्रकार सबमेरीन को भी भारी और हलका करके नीचे-ऊपर ले जाते हैं। ज़ेप्लिन के चलने का आधार वायु है और सबमेरीन के चलने का आधार पानी। पर नियम दोनों के लिए एक ही से हैं।

पानी के भीतर सबमेरीन को किसी निश्चित गहराई पर रखने में बड़ी कठिनता पड़ती है, क्योंकि तेज़ी से चलते समय यह नीचे-ऊपर होती जाती है। इसके सिवा कम या अधिक पानी प्रवेश कर जाने का भी डर रहता है। इसलिए नाव के हौज़ों के सूराख़ों में एक प्रकार का रबर लगा रहता है, जो इच्छित गहराई पर आकर छेद को खोल देता है। इससे नाव का पानी बाहर निकल जाता है अथवा भीतर चला जाता है। इस कारण नाव न ऊपर जाती है न नीचे। यह निश्चित स्थान पर स्थित रहती है। पानी की शक्ति सब स्थान पर एक सी नहीं होती। जितनी गहराई अधिक होती है पानी में उतनी ही शक्ति भी अधिक होती है। इस-लिए इस रबर को हौज़ के छेद में इस प्रकार लगाते हैं कि यह एक ख़ास ताक़त से छेद को खोल दे। यह ख़ास ताक़त ख़ास गहराई पर होती है, इसी लिए ख़ास गहराई पर नाव के आने पर छेद खुल जाता है।

कई हौज़ों को नाव के ही इधर-उधर आगे-पीछे रखने से नाव टेढ़ा मेढ़ी नहीं होती। यह सीधी ही रहती है। जब बोझ एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रख दिया जाता है तब उस बोझ हटे हुए स्थान की तरफ़ हलकापन हो जाने से नाव का वह भाग दूसरी ओर से ऊँचा हो जाता है। तब उस बोझ के स्थान पर उस ओर के हौज़ में पानी भर देते हैं, जिससे नाव सीधी रहती है। इन नावों में शत्रु के जहाज़ों पर हमला करने के लिए बारूद से भरे हुए टारपेडो नामक यन्त्र होते हैं। टारपेडो बड़े क़ीमती होते हैं। उनको रखने के लिए ख़ास ख़ास स्थान बने होते हैं। जब ये छोड़ दिये जाते हैं तब नाव की यह बाज़ू हलकी हो जाती है और दूसरी बाज़ू उठ आती है। तब उधर पानी भर दिया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सबमेरीन को चलाने के लिए पानी के ऊपर तो तेल का एञ्जिन काम में लाया जाता है और भीतर बिजली की बैटरी। तेल और भाफ़ के एञ्जिन चलाने के लिए आग की ज़रूरत होती है। आग तेल की गैस बना कर उसमें ऐसी शक्ति पैदा करती है कि यह एञ्जिन के पिस्टन नामक पुर्ज़े को ठोकर दे दे कर इधर उधर चलाती है। इसी प्रकार भाफ़ से चलने वाले एञ्जिन

के लिए भी पानी से भाफ़ बनाने के लिए आग दरकार होती है।

आग पैदा करने के लिए आक्सिजन नामक गैस का होना ज़रूरी है। यह गैस वायु का एक अंश है। अतएव आग जलाने के लिए वायु का होना परमावश्यक है। बिना हवा के आग कभी नहीं जल सकती।

सब-मेरीन जब जल के भीतर रहती है तब उसमें रहनेवाले मनुष्यों के श्वासोच्छ्वास के लिए वायु-सङ्ग्रह करके रख लेते हैं। उसी वायु के द्वारा वे जीवित रहते हैं। जब यह सङ्ग्रहीत वायु चुक जाती है तब, अवसर मिलने पर, वे ऊपर आते हैं और गन्दी वायु को बाहर निकाल कर फिर शुद्ध वायु भर लेते हैं।

इस नाव में जगह की तङ्गी रहती है। इसलिए वायु रखने का स्थान भी तङ्ग होता है। इस कारण एकत्र की हुई वायु को बड़ी होशियारी और सङ्कुचती से काम में लाना पड़ता है, क्योंकि जितनी देर इस वायु को रख कर लोग साँस ले सकेंगे उतनी ही देर नाव जल के भीतर रह सकेगी, और, नाव की ख़ूबी तो इसी में है कि वह अधिक देर तक जल के भीतर रह सके। इसलिए इस सङ्ग्रहीत वायु को साँस लेने के काम के अतिरिक्त दूसरे काम में नहीं लगा सकते। तेल या भाफ़ के एञ्जिन चलाने में आवश्यक आग उत्पन्न करने के लिए इस वायु को नहीं ख़र्च करते।

अतएव पानी के भीतर नाव को चलाने के लिए ऐसा एञ्जिन होना चाहिए जो बिना आग के चले। ऐसा एञ्जिन बिजली का ही हो सकता है। इसी लिए इस नाव में बिजली की शक्ति-शालिनी बैटरी रक्खी जाती है। उसी के साथ बिजली से चलने वाला एक मोटर-एञ्जिन होता है। उसमें बिजली भरने वाला बिजली का एक डाइनमो (Dynamo) भी रहता है। जब तक नाव जल के ऊपर वायु में रहती है तब तक उसे तेल एञ्जिन चलाता रहता है। यही एञ्जिन बिजली उत्पन्न करने वाली कल, डाइनमो, को भी चलाता है। इधर डाइनमो बिजली उत्पन्न करके उसे बैटरी में जमा करता जाता है। जब नाव जल के भीतर डुबकी मार जाती है तब तेल का एञ्जिन बन्द हो जाता है और बैटरी में जमा हुई बिजली छोड़ी जाती है, जिससे बिजली का एञ्जिन अर्थात् मोटर (Motor) चलने लगता है और अपनी शक्ति से नाव को भी चलाने लगता है। जब बैटरी काम करती रहती है तब कुछ प्राणनाशक गैस उसमें से निकलती है। यह गैस एक बन्द स्थान में जमा कर ली जाती है। ऊपर आने पर उसे बाहर निकाल देते हैं।

अब सब-मेरीन में रक्खे रहने वाले कुछ अद्भुत यन्त्रों का हाल सुनिए—

टारपेडो—सब-मेरीन में शत्रु पर हमला करने के लिए एक प्रकार के अस्त्र रक्खे जाते हैं। उन्हें टारपेडो (Torpedo) कहते हैं। उनकी शकल सब-मेरीन की शकल से मिलती है। ये कोई बीस फ़ीट लम्बे और डेढ़ फ़ीट चौड़े होते हैं। ये लोहे के बनाये जाते हैं और खोखले होते हैं। उनकी पोशाक में बारूद मरी रहती है। उनके एक ओर एक छोटा सा एञ्जिन रहता है। उसकी बगल में वायु दबा कर भरी रहती है। जब टारपेडो अपने स्थान से छोड़ा जाता है तब एञ्जिन वायु की शक्ति से चलने लगता है और उसके पीछे लगे हुए डाँड़ को चला कर बड़ी तेज़ी से उसे आगे फेंकता है। उसकी चाल आरम्भ में कोई ५० मील प्रति घण्टा होती है। आगे बढ़ने पर यह कुछ घट जाती है। जब टारपेडो किसी ठोस पदार्थ से टकराता है तब उसमें रक्खी हुई ५० मन बारूद में एक दम आग लग जाती है। इसके धड़ाके से बड़ा भयानक तूफ़ान उठता है, जो बड़े बड़े जहाज़ों को पल भर में चकनाचूर करके पाताल पहुँचा देता है।

पेरिस्कोप—यद्यपि विज्ञानवेत्ताओं को इस बात का पता है कि सूर्य की रोशनी पानी में भी उसी प्रकार आती है जिस प्रकार वायु में, किन्तु वे अभी तक यह नहीं जान सके हैं कि पानी के भीतर सूर्य की रोशनी से किस प्रकार काम लेना चाहिए। क्योंकि हलके पदार्थ, वायु, से निकल कर जब यह रोशनी भारी पदार्थ, पानी, में प्रवेश करती है तब उसकी किरणें टेढ़ी हो जाती हैं। इस कारण कहीं का पदार्थ कहीं दिखाई पड़ने लगता है।

इसलिए पानी के भीतर रह कर पानी के बाहर के पदार्थों को देखने के लिए सब-मेरीन को पेरिस्कोप नामक यन्त्र से काम लेना पड़ता है। यह यन्त्र दूर-बीन के नियमों के आधार पर बनाया गया है। नाव के ऊपर एक लम्बा पाइप (नल) लगाते हैं, जिसकी चोटी पर एक तिकोना शीशा लगा रहता है। इस शीशे के द्वारा पानी के ऊपर की समस्त वस्तुओं का अक्स पाइप से होकर नीचे सब-मेरीन तक चला आता है। पाइप की पेंदी में भी एक और त्रिकोण शीशा लगा होता है और उन अक्सों को एक तेज़ दूरबीन तक पहुँचाता है। तब इस दूरबीन द्वारा सब-मेरीन का अफ़सर सब वस्तुओं को दूर तक देख सकता है। पाइप नीचा ऊँचा भी कर दिया जा सकता है, जिससे नाव के कितना ही नीचे जाने पर भी यह पानी के ऊपर रह सके। ताक़त आने पर पानी की बौछाड़ें पाइप की चोटी पर लगे हुए त्रिकोण शीशे पर पड़ती हैं, जिससे बाहर की वस्तुओं का अक्स नीचे तक नहीं पहुँचता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पाइप की चोटी पर एक शीशी में स्पिरिट (Spirit) रक्खी रहती है। यह बौछाड़ की बूँदों पर गिरा दी जाती है। वायु में स्पिरिट भाफ़ बन जाती है और अपने साथ पानी की बूँदों को भी भाफ़ बना कर उड़ा देती है। सच तो यह है कि पेरिस्कोप सब-मेरीन की आँख है। उसके बिना यह उसी प्रकार शक्ति-हीन और निरुपयोगी है जैसे बिना नेत्र का—अन्धा—मनुष्य।

मनुष्य के जीवन के लिए आक्सिजन गैस (Oxygen) का होना ज़रूरी है। वायु में इस गैस का बहुत अधिक अंश होता है, इसलिए मनुष्य आक्सिजन से मिश्रित वायु में जीवित रह सकता है। साँस के साथ मनुष्य एक प्रकार की ज़हरीली गैस, जिसे कार्बन डायक्साइड (Carbon Dioxide) कहते हैं, बाहर निकालता है। सब-मेरीन में रहने वाले मनुष्य, ताज़ी वायु न पहुँचने से, एकत्र की हुई वायु में साँस लेकर आक्सिजन ख़र्च करते हैं और ज़हरीली गैस को निकालते रहते हैं। इस कारण ज़हरीली गैस अधिक हो जाने का डर रहता है। इससे बचने के लिए कास्टिक सोडा नामक पदार्थ रहने के कमरे में रक्खा रहता है। इस पदार्थ का गुण यह है कि यह ज़हरीली गैस (Carbon Dioxide) को खींच कर अपने में मिला लेता है, जिससे वह मनुष्यों के पास नहीं पहुँचने पाती।

सब-मेरीन के भीतर भोजन इत्यादि बिजली द्वारा ही बनाया जाता है, जिससे किसी प्रकार का धुआँ न निकले।

आक्सिजन गैस का अंश साँस लेने में काम आ गया और वायु ज़हरीली हुई या नहीं, इसका पता सफ़ेद चूहों द्वारा लगाया जाता है। छोटे छोटे सफ़ेद चूहों में यह गुण है कि ज़हरीली हवा में वे ज़ोर से खाँसने और छटपटाने लगते हैं। इससे उनके रक्षक मनुष्यों को पता लग जाता है कि वायु ज़हरीली हो रही है और वे नाव को ऊपर लाने का प्रयत्न करते हैं। इस कारण सब-मेरीन में चूहों का होना भी अनिवार्य है।

पाठकों को सब-मेरीन के भिन्न भिन्न भागों का कुछ ज्ञान कराने के लिए इसी संख्या में एक नक़्शा अन्यत्र दिया जाता है। उससे मालूम हो जायगा

कि सब-मेरीन की दीवार की तह दोहरी होती है। दो दीवारों के बीच का स्थान पानी से छूता रहता है, जिससे पानी का सारा धक्का बाहरी दीवार पर लग कर उसे तोड़ न दे।

अब नीचे सब-मेरीन के नक़्शे के नम्बरों का हवाला दिया जाता है—

नम्बर १—पानी का हौज़, २ दीवार, ३ कमरा, ६ टारपेडो, ७ दीवार, ८ हौज़, २ और ७ के बीच हौज़।

नम्बर ५ छत, जिसके नीचे नम्बर ९ बिजली की बैटरी, १०-११ हौज़, १२-१३ पिछली दीवारें, और १४ हौज़।

नम्बर १३, दीवार के सहारे नाव चलानेवाला यन्त्र है। १५ छत है। नाव जब पानी के ऊपर होती है तब मनुष्य आ कर इस पर बैठ सकते हैं। १४ बिजली की मोटर के रहने का कमरा। २७ और २८ टारपेडो छोड़ने की खिड़की। १५ में वायु भरी रहती है। १५ के नीचे तोपें छिपी रक्खी रहती हैं।

नम्बर १६-१७ नाव को चलाने वाले पहिये हैं, जो नम्बर २३ लोहे के डण्डे से लगे रहते हैं। यह डण्डा ३१-३२ पतवार को हिलाता है। २१-२२ ऊपर नीचे जाने के लिए सीढ़ी है। २४-२५ पेरिस्कोप हैं। १८-१९ वायु-सञ्चालन करने वाले पङ्खे और २० वायु को दबाने का पम्प है। बीच के कमरे में बिजली चलाने वाले यन्त्र हैं। २९ तेल का एञ्जिन, ३० बिजली का एञ्जिन (मोटर) और ३३ में अन्य कलें हैं।

जगन्नाथ खन्ना,
बी० एस-सी०, ई० ई०, लन्दन

कोर्ट आव् वार्ड्स के कुछ रजिस्टर

[१]

सदर के रजिस्टर।

दर के हिसाब के रजिस्टरों में "कै बुक" अर्थात् रोज़नामचा मुख्य है। उसमें, प्रति दिन जो आय और होता है, लिख लिया जाता है बायें हाथ के पन्ने पर आय दाहने हाथ वाले पन्ने पर व्यय लि जाता है। महीने के अन्त पर आय और व्यय चिट्ठा बाँध दिया जाता है। यदि ख़ज़ाने के हिस से कोर्ट के हिसाब में कुछ फ़रक़ होता है तो और उसके कारण दिखला दिये जाते हैं।

कैश-बुक में लिखे हुए आय और व्यय मिलान ख़ज़ाने के हिसाब से, समय समय पर, हो रहता है। इस काम के लिए यदि कैश-बुक ख़ज़ भेजी जाया करे तो कोर्ट का काम उतने दिन बन्द रखना पड़े। इसलिए एक अलग रजिस्ट रक्खा जाता है, जिसमें ख़ज़ाने से आय और व के तारीख़वार हिसाब की नक़ल हो कर कोर्ट में आती है और कोर्ट में उसका मिलान कैश-बुक कर लिया जाता है। इस रजिस्टर को ख़ज़ाने "पास-बुक" कहते हैं।

महाजनी में रोज़नामचे से जैसे खाता बनाय जाता है वैसे ही कोर्ट में भी कैश-बुक से आय और व्यय के खाते पृथक् पृथक् बनते हैं, जिनको आय और व्यय का क़िस्मवार गोशवारा कहते हैं।

इनको छोड़ कर अन्य हिसाब-सम्बन्धी आवश्य कीय रजिस्टर, क़र्ज़ के रजिस्टर, जमा के रजिस्टर और पेशगी के हिसाब के रजिस्टर रक्खे जाते हैं।

प्रत्येक रियासत के लिए क़र्ज़ के दो रजिस्टर रक्खे जाते हैं—

का रजिस्टर रक्खा जाता है। ये दो प्रधान रजिस्टर हैं। पहले में जो चिट्ठी दफ़्तर से आती या दफ़्तर से बाहर जाती है उसका संक्षिप्त आशय लिख लिया जाता है। दूसरे में उसी चिट्ठी के रजिस्टर का नम्बर प्रत्येक मिसल के हवाले से एक सिलसिलेवार नम्बर के सामने लिख लिया जाता है। यथा—१० जुलाई को एक चिट्ठी मिसल नम्बर ४५ की आई। *मिसल ४५ में १० चिट्ठियाँ पहले आ आ चुकी हैं,* और उस चिट्ठी के आने से पहले २००३ चिट्ठियाँ दफ़्तर से आ आ कर चिट्ठियों के रजिस्टर में चढ़ चुकी हैं। तो पहले उस चिट्ठी को चिट्ठियों के रजिस्टर में, २००४ नम्बर डाल कर, चढ़ाया और चिट्ठी पर २००४ नम्बर डाल दिया जायगा। फिर मिसलों के रजिस्टर में ४५ नम्बर की मिसल के नीचे ११ नम्बर लिख कर उसके सामने २००४ नम्बर डाल दिया जायगा और ४५ तथा ११ नम्बर दोनों चिट्ठियों पर लिख दिया जायगा। इन सब का अभिप्राय यही है कि भविष्यत् में जब कोई चिट्ठी ढूँढ़नी हो तो वह झट मिल जाय। यथा—जब हमको पूर्वोक्त चिट्ठी का पता लगाना होगा तब हम चिट्ठियों के रजिस्टर से पहले तो उसका नम्बर, २००४, ढूँढ़ेंगे। उसी के सामने इस रजिस्टर में हमको मिसल का ४५ नम्बर मिलेगा। तब मिसल का रजिस्टर खोलने से पता लगेगा कि वह चिट्ठी ११ नम्बर की है। बस मिसल ४५ उठाई और ११ नम्बर की चिट्ठी देख ली। इसी तरह उर्दू-दफ़्तर में भी प्रत्येक मुहकमे को एक मिसल-बन्द रजिस्टर और एक चालानबही रखनी पड़ती है। मिसलों के रजिस्टर का वर्णन अँगरेज़ी दफ़्तर के रजिस्टरों में हो चुका है। दोनों का अभिप्राय एक ही है। परन्तु उर्दू-दफ़्तर में बहुत काम होने से मिसलबन्द में प्रत्येक काग़ज़ नहीं लिखा जाता, और न चिट्ठियों के रजिस्टर का नम्बर ही रहता है। मिसलबन्द से केवल मिसल के नम्बर का पता चलता है। फिर, काग़ज़ ढूँढ़ने के लिए उस फ़िहरिस्त को देखना पड़ता है, जो प्रत्येक मिसल पर लगी रहती है और जिस पर प्रत्येक काग़ज़ का नम्बर और संक्षिप्त आशय लिखा रहता है। जो काग़ज़ दफ़्तर से बाहर जाते हैं वे चालानबही पर लिखे जाते हैं। फिर इस चालान की एक प्रति उन काग़ज़ों के साथ लिफ़ाफ़े में रख कर भेज दी जाती है, जिस पर काग़ज़ लेने वाला दस्तख़त करके रसीद देता है और उसे भेजने वाले के पास लौटा देता है।

जो रजिस्टर महाफ़िज़ख़ाने में आते हैं, और जो मिसलें दाख़िल होती हैं, उनके लिए दो रजिस्टर—एक मिसलों के लिए और दूसरा रजिस्टरों के लिए—महाफ़िज़ख़ाने में रहते हैं। इनमें सबसे मुख्य उल्लेख उस सन् का होता है जिसमें कोई रजिस्टर या मिसल फाड़ कर नष्ट की जाती है। इसे *तलफ़ (नाश) की तारीख़* कहते हैं। कोई रजिस्टर या मिसल एक नियत समय तक ही महाफ़िज़ख़ाने में रक्खी जाती है। तत्पश्चात् वह नष्ट कर दी जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो महाफ़िज़ख़ाने में स्थान न रहे। इसके नियम कि कोई रजिस्टर या मिसल कितने समय तक महाफ़िज़ख़ाने में रहे और कितने समय के पीछे नष्ट की जाय कोर्ट आव् वार्ड्स बना देता है। *मिसलें इसलिए कुछ समय तक रक्खी जाती हैं कि भविष्यत् में उनका काम पड़ता है। और, जिसकी जितने दिन तक काम* पड़ने की सम्भावना होती है उतने ही दिन तक उसके रखने का समय नियत कर दिया जाता है। काम पड़ने पर मिसल या रजिस्टर चाहने वाला एक पर्चा लिख कर महाफ़िज़ दफ़्तर को देता है और काग़ज़ पा जाने पर उस पर रसीद लिख देता है। इस बात की देख भाल के लिए कि कौन सी मिसल कहाँ गई है और कब से नहीं लौटी, महाफ़िज़-दफ़्तर एक रजिस्टर रखता है, जिसे बरामद-

बरामद (निकास-पैठ) रजिस्टर कहते हैं । जब मिसल या काग़ज़ फिर महाफ़िज़ख़ाने में लौट आता है तब इसी रजिस्टर में उसकी वापिसी लिख ली जाती है और पर्चा मिसल लौटाने वाले को फेर दिया जाता है ।

यों तो बहुत रजिस्टर कोर्ट में रहते हैं, परन्तु मुख्य वही हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है ।

अमित्र

आज कल की हिन्दी-कविता पर कुछ निवेदन ।

कुछ दिन हुए पण्डित कामताप्रसाद जी गुरु का एक लेख इस विषय पर सरस्वती में निकला था । गुरु जी ने जो कुछ लिखा है अपने अनुभव से लिखा है । अतएव उनके लेख का अधिकतर भाग यथार्थता से ख़ाली नहीं । इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में कविता के नाम पर लोग आज कल बहुत कुछ गोलमाल किए रहे हैं । इसमें भी सन्देह नहीं कि इस गड़बड़ का अन्त हो जाना बहुत कठिन क्या क़रीब क़रीब असम्भव है । क्योंकि इसके मूल कारणों के नष्ट हो जाने की, हाल में, कोई आशा नहीं दीखती । लेकिन जो यथार्थ में 'कवि' हैं, और जिनकी प्रतिष्ठा को इस गोलमाल से हानि पहुँचती है, उन्हें यही सोच कर सन्तोष करना चाहिए कि जिनकी भाषा बुरी है, जिनकी रचना सर्व-गुण-शून्य कोरी तुकबन्दी है, और जो अपने विषय भी नहीं चुनते—ऐसे सभी भावी सदा ही सुकवि नहीं समझे जा सकेंगे । यह बात दूसरी है कि कुछ काल के लिए वे वाह वाही लूट लें । जहाँ बड़े बड़े कवियों को भी लोग भूल जाते हैं वहाँ इन बेचारों को अपनी तुकबन्दी के पुरस्कार में क्या मिलेगा, सो साफ़ ज़ाहिर है ।

गुरु जी ने कविता के ह्रास के जो कारण गिनाये हैं वे सभी बहुत ठीक हैं । आज कल हिन्दी के लेखकों में पद्य-रचना करने की ओर जो बेढब झुकाव हुआ है उसका एक तो यह फल हुआ है कि हर कोई अपने को, और केवल अपने ही को, दूसरे किसी को भी नहीं—कवि समझने लगा है । ये अहम्मन्य सिरताज, अगर दूसरे किसी लेखक की रचना में कुछ गुण भी हो, तो भी, उसे नहीं देख सकते । या तो इनकी इतनी पहुँच ही नहीं है या इनकी दृष्टि अभिमान से रुद्ध है । केवल अपनी ही रचना को सर्वोपरि समझने से ही इनकी तन्दुरुस्ती अभी तक बनी हुई है, वरना इनके बीमार हो जाने में बहुत शक न था । कभी कभी तो बड़े बड़े दिग्गजों का भी मस्तिष्क, ऐसी समझदारी की वजह से, फिर जाता देखा गया है । कुछ मान्य लेखकों में एक और ही बीमारी पैदा हो गई है । वह यह कि वे लोग व्याकरण की तरह काव्य-शास्त्र को भी ऐसे ऐसे कड़े नियमों से जकड़ देना चाहते हैं कि बस, मामला रस से मस न हो सके । रचना सभी दृष्टि से निर्दोष तथा भावमयी होनी चाहिए, परन्तु रचना करते समय कवि के हृदय की मधुरता को न पहचान कर, उसके भावों को अक्षरशः सीधा समझ या समझा कर—'इसकी आवश्यकता थी और इसकी न थी'—आदि आज्ञायें देना सहृदयता का परिचायक नहीं । जैसे आज कल कवियों की कमी है वैसेही सहृदयों की भी कमी है, जैसे तुकबन्दों की अधिकता है, वैसे ही उनकी पीठ ठोंकने वालों का भी बाहुल्य है । इससे हमारा यह मतलब नहीं कि जो कुछ अक्षरशः सीधा कवि जी लिखें वही छाप दिया जाय । हमारा मतलब यही है कि अगर किसी विषय पर कवि दस छन्द लिखे, और आप की राय में उन दस में से एक छन्द ऐसा हो जो कविता के विषय से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध न रखता हो, तो बिना यह बात अच्छी तरह सोचे कि इसके रहने देने से इस पद्य की शोभा बिगड़ती है या सुधरती है उसको एकदम त्याज्य समझ लेना ठीक नहीं । कवियों की कृति सर्वथा निर्दोष होती हो, सो बात नहीं । सहृदय समालोचकों का भी अभाव है ।

कविता के लिए 'शोक ! शोक !! महाशोक !!!' के अवसर की ताक में रहना जैसा हास्यजनक है वैसा ही, बिना सोचे समझे, एक एक दिन में तीन तीन चार चार पद्या-वलियाँ लिख कर, और सब अख़बारों में धड़ाधड़ भेज कर नाम हासिल करना भी है । अगर अपनी प्रतिभा को यों

उनके सेर देखिएगा तो रचना उतनी अच्छी न बनेगी जितनी कि आप बना सकते हैं। पर, रचना अच्छी हो या बुरी, यहाँ तो यह ठाठ बँधा हुआ है कि लोग न भाषा का ज्ञान रखना आवश्यक समझते हैं और न व्याकरण का, न छन्द की मात्राओं का और न जिस विषय पर लिखने बैठे हैं उसका! बस, क़लम-दवात उठा लिया, और अटकलपच्चू चाहे जिधर चला दिया! कविता बन गई! सम्पादक से धन्यवाद भी मिल गये और सर्वसाधारण से वाह वाही भी! अगर आप इनको तुलसी-दास या सूरदास से ज़रा भी कम समझें तो फिर ख़ैर नहीं। फिर तो यह अपनी इमारत को आप के ही ऊपर ख़ाली कर देंगे!

जिस समय रचना की छाप उस समय की परिस्थिति से प्रकृति की ओर से आने वाली, सामयिक भावों से पूर्ण, कविता जिस विषय पर भी की जायगी मनोहारिणी होगी। ईश्वर की सृष्टि में दृश्य और अदृश्य, अथवा मानव-हृदय द्वारा जिनका अनुभव किया जा सके ऐसे सभी पदार्थ, अवस्थायें या कल्पनायें कविता के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती हैं। आत्म-रूप से जो परमात्मा एक हिन्दी लेखक में है, वही मच्छर और खटमल के स्वरूप में भी है। अतएव जहाँ तक हो सके किसी वस्तु को तुच्छ समझ कर उससे घृणा न करनी चाहिए। हमारे पूर्वजों ने बड़ और पीपल के गुण गाये हैं—फिर अगर कोई कुनैन के विषय में कुछ कहना चाहे तो वह बुरा क्यों समझा जाय? मतलब यह है कि कविता तुच्छ से तुच्छ विषय पर अच्छी से अच्छी की जा सकती है, करने वाला चाहिए। किसी ने मिल्टन के लिए कुछ ऐसा ही कहा है—In his hands a thing became a trumpet." बात बेजा नहीं है। साधारण विषयों पर की गई रचना में ही तो कवित्व-शक्ति पहचानी जाती है। साधारण विषयों पर की गई उत्तम रचना के पढ़ने में जो 'लोकोत्तरानन्द' प्राप्त हो सकता है वह और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। कवि की प्रतिभा का यथार्थ परिचय तभी मिलता है जब वह साधारण से साधारण विषय पर ही ऐसी रचना करे जिससे लोग चकित और चमत्कृत हो जायँ और अनायास कह उठें—"अहा! क्या उत्तम रचना है। ऐसे तुच्छ विषय पर ऐसी अच्छी रचना!" जिस रचना से—चाहे वह साधारण विषय पर की गई हो चाहे असाधारण पर—लोगों के हृदय में किसी भावविशेष का प्रादुर्भाव न हुआ उससे कुछ विशेष लाभ नहीं। जो

तो रचना पटिका-घातक, शहरकनी व्याधि को नष्ट करने वाले भी 'चूरन वाले' जी भी, कर सकते हैं, उनके भी कुछ ग्राहक और प्रशंसक होते हैं, और वे केवल अपनी रचना ही के बदौलत इस जीवन-यात्रा का निर्वाह करते हैं—जो कि बहुत से नामी कवि भी नहीं कर सकते।

बढ़िया विषयों की टटोल में रहना और साधारण विषयों से नफ़रत करना ठीक नहीं। असल में ऐसा ही करते करते लोगों की आदत यहाँ तक बिगड़ गई है कि जिन की बदौलत जीते हैं उन दीन किसानों को तो वे अपने नाटक या उपन्यास का नायक कभी नहीं बनाते, न उनकी दुर्दशा का कुछ विचार करते हैं, बल्कि उनको ज़िन्दगी के लिए काम में लाते हैं। हाँ, बड़े आदमियों की ख़ुशामद हर तरह से करने को वे तैयार रहते हैं। हमारे यहाँ कितने ऐसे उत्तम नाटक हैं जिनका मुख्य पात्र एक दीन मनुष्य है? कितनी पुस्तकें ग़रीबों को समर्पित की गई हैं? किसी जाति के जीवन का चिह्न उसका साहित्य है। क्या हमारी जाति के जीवन में दीनों तथा अनाथों का कुछ भी भाग नहीं? क्या राजा साहब या सेठ साहब ही हमारे देश में मान्य हैं? हा हन्त! साधारणता और दीनता से घृणा करने का यही परिणाम है।

अस्तु, तुच्छ विषयों पर, मेरी राय में रचना होनी चाहिए और इस विषय में मैं गुरु जी से सहमत नहीं। अगर मैं यह बात सिद्धान्त रूप से मानते हुए भी आपकी यही राय क़ायम रहे कि मस्ती, मच्छड़ जैसे साधारण विषयों पर उत्तम रचना हो ही नहीं सकती, तो किसी के पास इसका कोई इलाज नहीं। मैं अँगरेज़ी की एक पुस्तक का कुछ अंश नीचे देता हूँ। रचना का विषय क्या है सो तो पढ़ने पर मालूम ही हो जायगा। इसको पढ़ कर ऐसा मालूम होता है मानो हम एक ऐसी जगह जा निकले हैं जहाँ मार-काट होने की तैयारियाँ हो रही हैं, जिससे घबरा कर हम बेतरह भागते हैं और भागते भागते हम सहसा विक्टोरिया पार्क में जा निकलते हैं। पार्क में पहुँच कर क्या देखते हैं कि वहाँ का हर एक कुछ हमारी घबराई हुई सूरत को देख कर हँस रहा है और हमारी ओर झुक कर, सहानुभूति दिखलाता हुआ, कहता है—"आइए, आइए, यहाँ न घबराइए"—और फिर अपने साथियों की ओर झुक कर कहता है—"ज़रा आपकी तबक मुलाहिज़ा फ़रमाइए"! वह यह है—

A midnight murder.

'T, was night! the stars were shrouded in a veil of mist; a clouded canopy o'erhung the world; the vivid lightnings flashed and shook their fiery darts upon the earth; the deep-toned thunder rolled along the vaulted sky; the elements were in wild commotion; the storm-spirit howled in the air; the winds whistled; the hail-stones fell like leaden balls; the huge undulations of the ocean dashed upon the rock-bound shores; and torrents leaped from mountain-tops; when the murderer sprang from his sleepless couch with vengeance on his brow—murder in his heart—and the fell instrument of destruction in his hand.

The storm increased; the lightnings flashed with brighter glare; the thunder growled with deeper energy; the winds whistled with a wilder fury; the confusion of the hour was congenial to his soul and the stormy passions which raged in his bosom. He clenched his weapon with a sterner grasp. A demoniac smile gathered on his lip; he grated his teeth; raised his arm; sprang with a yell of triumph upon his victim; and relentlessly killed—a Mosquito!

हँसी नहीं, सच कहिए, भला इसमें कौन सी बात ऐसी है जिससे इसे पढ़ने के लिए आपकी तबीयत दुबारा चाहती है। कुछ लोग कह सकते हैं कि इसमें मच्छड़ का तो कुछ भी वर्णन नहीं। मार्देवा है कि केवल वर्णनात्मक वस्तु-विशेष को ही कविता नहीं कहते। और न मच्छड़ का नख-सिख वर्णन करना आसान ही है। लेकिन ऊपर के उदाहरण में मच्छड़ ही सारे बवंडर का नायक है। उसके बिना रचना निर्जीव सी हो जाती है। यह कोरी वर्णनात्मक रचना नहीं है। जो तुच्छ जन्तु मनुष्य का रोज़ ख़ून पीता है, और मनुष्य रोज़ ही जिसका ख़ून करता है, उसीके विषय में एक साधारण बात जिस ढँग से कही गई है, वह हमारे हिन्दी-कवियों के मनन करने की बात है। हमारी रचनाओं में मृदु-हास्य (Humour) की कमी और लोगों को बहुत खटकती है। उसमें नवीनता का अभाव रहता है। इसका इलाज होना चाहिए। रचना चाहे मनोरञ्जक हो चाहे और दूसरे गुण या गुणों से युक्त हो, चाहे साधारण विषय पर कही गई हो और चाहे असाधारण विषय पर—जब तक उसमें 'चमत्कार' नहीं तब तक उसका कुछ भी महत्त्व नहीं समझा जा सकता। ऊपर दिये हुए उदाहरण का हिन्दी-अनुवाद करने की योग्यता इस लेखक में नहीं। इसी लिए वह न दिया जा सका।

एक और उदाहरण भी दे देना अनुचित न होगा। रचना गुजराती की है। लेखक हैं दयाराम। और विषय—ख़ैर, पढ़ने पर मालूम ही हो जायगा—

(पद)

"शूँ आप्ये म्हाकवी वस्तुने, शूँ आप्ये म्हाकवी,
मुख पर्यन्त मधु घृत सधृपी, स्वाद न आप्ये दर्वी—वस्तुने०-१
सुन्दर रीते राख भवायूँ, भोग न पामे मरवी[1],
अन्तर माहें वसे अग्नि पण, आनन्द पामे न अरणी[2]—वस्तुने०-२
निज नाभ्ये सौ कस्तूरी पण, हर्ष न पाये हरणी;
दयो कहे घन दाखवुँ ज्यम, अनुभव करावे निर्धनी—वस्तुने०-३
शूँ आप्ये म्हाकवी वस्तुने, शूँ आप्ये म्हाकवी।

यह अगर उत्कृष्ट रचना नहीं है तो चमत्कार-शून्य कोरी तुकबन्दी भी नहीं है। इसमें मृदु हास्य की अच्छी मात्रा है।

जब ओखली में सिर ही दिया तब मूसलों से क्या डर? अतः हिन्दी-पत्र-सम्पादकों के विषय में भी यहाँ कुछ कह देना अनुचित न होगा। लोगों की शिकायत है कि हिन्दी वाले, बिना समुचित योग्यता सम्पादन किये ही, कवि बन बैठते हैं। अगर यह बात ठीक है तो यह भी ठीक है कि बहुत से आदमी—जो हिन्दी की दो चारहें भी ठीक ठीक नहीं लिख सकते—आज कल पत्रों और पुस्तकों का सम्पादन करते पाए जाते हैं। ये लोग न हिन्दी-साहित्य का अध्ययन ही करना ज़रूरी समझते हैं और न सही सही हिन्दी लिखना सीखने की परवा ही करते हैं—बल्कि सिखाने का इरादा रखते हैं। जिसको और कुछ काम न मिला वह इधर घुस पड़ा, और लगा, बिना सोचे समझे, दुरात्मा फटकारने। कोई किसी रईस को फुसला कर और एक नया अख़बार निकलवा कर उसका सम्पादक बन बैठा

(१) बर्तन (२) चकमकी।

है; तो कोई—बिना समुचित पूँजी के—इसी लिए एक पत्र निकाल देता है कि और पत्र उसके लेख नहीं छापते। कहीं एडीटर जी बिना कुछ कहे सुने चल दिये तो मैनेजरजी ही एडीटर बन बैठे। मैनेजर जी भी चटक दिये तो कम्पोज़ी ही ने एडीटर का काम सँभाल लिया। कहीं एक ही व्यक्ति दो दो तीन तीन काम सँभाले रहते हैं। मासिक तो क्या, जिनके लेख साप्ताहिक पत्रों में भी छपने योग्य नहीं वे आज कल बड़े बड़े हिन्दी-कोविदों की पगड़ी उछालने को फिरते हैं। ऐसे एक सम्पादक या लेखक प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित हिन्दी-लेखकों को 'बेवकूफ़' और 'नालायक़' जैसी उपाधियाँ तक देते देखे गये हैं। भगवान् ही हिन्दी की रक्षा करे। आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे ऐसे सम्पादकों और पत्रों को भी ग्राहक मिल जाते हैं। इसका कारण यही है कि हिन्दी के पाठक भोले भाले हैं, वे बेचारे हिन्दी-प्रेम में अन्धे हो रहे हैं। फिर यह शिकायत करना कि ग्राहक नहीं मिलते बिलकुल बेजा है। भला, सोचिए तो, ऐसी विचित्र सामग्री हिन्दी के सिवा और कहाँ जन सकती है? व्याकरण और सत्काव्य का ज्ञान प्राप्त करने की बात जाने दीजिए; जहाँ शुद्ध बोलने तक की योग्यता प्राप्त किये बिना ही लोग सम्पादक, समालोचक, ग्रन्थकर्ता, कवीश्वर आदि बन बैठना चाहते हैं, जहाँ दूसरी भाषा के अक्षर मात्र पहचान सकने से लोग अनुवादक हो जाते हैं, वहाँ सिवा भ्रान्ति के और क्या हो सकता है? गुरु जी चाहते हैं कि यह भ्रान्ति रुक जाय, लेकिन यह रुकने की नहीं। क्योंकि जिन लोगों के ऊपर आने से यह गड़बड़ मिट सकती है वे ऊपर न आकर और ही चक्कर में पड़े हुए हैं। और, नई कविता का तिरस्कार तो सम्पादक लोग तब कर सकते हैं जब उन्हें 'नई' और 'अ-नई' का फ़र्क़ मालूम हो। उन्हें तो—कविता के नाम पर—टेढ़ी-सीधी, ऊट-पटांग लाइनों से अपने कालम भरने से काम। क्या कहें अजब मौज मची हुई है—

"नहीं है ज़ोर जिन्हों में वो कुश्ती लड़ते हैं,
जो ज़ोर वाले हैं वे आपसे पकड़ते हैं,
गुड़ के अन्धे चीज़ों के हाँ पकड़ते हैं,
निकाले धानियाँ कुकड़े अकड़ते फिरते हैं
ग़रज़ मैं क्या कहूँ दुनिया भी क्या तमाशा है।

"कमा के ग्वालियर कर की दुकान बैठा है,
जो ढूँढ़ीवाला था सो ताक़ ख़ान बैठा है,
जो चोर था सो वो हो पासबान बैठा है,
ज़मीन फिरती है और आसमान बैठा है।
ग़रज़ मैं क्या कहूँ॰।

"कहाँ है जिसके इशारे से वो पुकारे है,
और जो गूँगा है सो फ़ारसी बघारे है,
कुलाह हँस की कौवा खड़ा उतारे है,
उछल कर मेंढकी हाथी के लात मारे है।
ग़रज़ मैं क्या कहूँ॰।

"जिन्हों के दाढ़ी है उनकी तो बात दाई है,
जो दाढ़ी मुँड़े हैं उनकी सनद गवाही है,
सिपाही रैयतानी और रैयती सिपाही है,
उजाड़ शहर में मुरदों की बादशाही है।
ग़रज़ मैं क्या कहूँ॰।

"जिन्हों के कान नहीं, दूर की वो सुनते हैं,
जो कान वाले हैं—बैठे वो सर को धुनते हैं,
पुर्दे परसते हैं और चन तिनके चुनते हैं,
कबाब भीतले हैं और मज़ीरे भुनते हैं।
ग़रज़ मैं क्या कहूँ॰।

"रिहे हैं नाक के कूच और गुलाब कहते हैं,
बिनौले पकते हैं, अमरूद आम सड़ते हैं,
सभी क़रीब पड़े पड़ियाँ रगड़ते हैं,
कमीने मोतियों को गुनचों से जड़ते हैं।
ग़रज़ मैं क्या कहूँ दुनिया भी क्या तमाशा है।"

हिन्दी के लिक्खाड़ों का 'तमाशा' दिखाने के लिए मियाँ नज़ीर की कविता में से इतना ही अवतरण काफ़ी होगा। इस विषय पर कई स्वतन्त्र लेख लिखे जा सकते हैं। आशा है, हिन्दी-लेखक और हिन्दी-पत्र-सम्पादक इधर ध्यान देंगे।

गुरुजी का यह कहना कि हरेक का उतना दिमाग़ जितना धन है उतना पढ़ने न था, ठीक नहीं मालूम होता। देश के अभाव से आपका क्या मतलब है, सो भी अगर मालूम हो जाता तो अच्छा होता। काव्य के लिए आज कल जो विषय चुने जाते हैं, तथा पहले जो चुने जाते थे, उनका आपस में मुक़ाबला करने से ही शायद यह बात मालूम

हो सकेगी। दो चार अच्छे कवियों को छोड़ कर पहले कवियों की रुचि किसी न किसी अंश में "मनोरञ्जन" करने की ओर ही विशेष रहती थी। मेरी राय में आज कल मनोरञ्जन के अलावा और भी उत्तमोत्तम उद्देशों (जैसे देशभक्ति, राजभक्ति, समाजसुधार, पतितोद्धार आदि) का आश्रय लेकर रचना की जाती है। यह सम्भव है कि बहुत से लेखकों को, आवश्यक प्रतिभा अथवा योग्यता न होने के कारण, उत्तम रचना करने में सफलता प्राप्त न होती हो। लेकिन उनके उद्देशों के अच्छे होने में कोई सन्देह नहीं। दूसरे, पहले पद्य-लेखकों को पूरी सफलता हो ही जाती थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनमें से अधिकतर तो हीन अथवा गर्हित विषयों को चुन कर कोरी लफ़्फ़ाज़ी करने बैठ जाते थे, और समझदार आदमियों का किसी भी अंश में मनोरञ्जन करने में सर्वथा असमर्थ होते थे। हाँ, यह बात दूसरी है कि कोई उजड्ड गँवार, दस भले आदमियों में आकर, और अपने हाथ पैर मटकाकर बुरी तरह नाचने लगे, तो उनको हँसी तो आ ही जायगी। लेकिन ऐसी हँसी को—जिसका परिणाम तिरस्कार हो—'मनोरञ्जन' नहीं कह सकते। प्राचीन कवियों में से अधिकतर ऐसे ही खुशा-मदी अथवा चाटुकार थे। कई एक गुणी भी अवश्य थे, और ऐसों की प्रतिभा का डङ्का आज तक बज रहा है और सदा बजता रहना चाहिए, पर पक्षपात से यह कहना कि पुराने सभी लेखक कवि थे और आज कल के सभी अयोग्य हैं, ठीक नहीं।

नये पद्य-लेखकों की रचना को कोई कण्ठस्थ नहीं करता तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? सैकड़ों बरसों से प्रचलित रहने के कारण ही बिहारी और रहीम आदि के कुछ दोहे थोड़े से पुराने लोगों को अब तक याद रह गये हैं। नई रोशनी के बाबू-मिस्टरों को तो तुलसी और सूर की भी कुछ परवा नहीं है, फिर वे आज कल के [illegible] बोली वालों की क्यों परवा करने लगे! खड़ी बोली वालों को जिन लोगों के बीच में काम करना पड़ रहा है ज़रा उनकी ओर भी तो देखिए। हाँ, यह ज़रूर है कि उनमें से सभी एक से नहीं हैं। कुछ लोग, जो इस ओर झुके हुए हैं, उनमें खड़ी बोली के पद्य-लेखकों को उतना सम्मान अवश्य मिलता है जितना कि इस ज़माने में मिल सकता है। पुराने समय में सभी कवीश्वर लोक-प्रिय हो गये हों, सो बात नहीं। हमारे पुराने कवियों को जो बात सैकड़ों वर्षों में भी प्राप्त न हुई उसे आज कल के कवि-पुङ्गव दो ही चार वर्षों में प्राप्त किया चाहते हैं, यह आश्चर्य की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रकाशन के जैसे साधन अब हैं वैसे पहले न थे। यह इन्हीं साधनों का प्रभाव है कि लोकप्रियता का क्रम (Speed-rate) पहले से सैकड़ों, बल्कि हज़ारों गुना बढ़ रहा है! अगर आज कल कोई लोकप्रिय कवि नहीं भी है, तो भी आगे की आशा हम क्यों छोड़ बैठें! तुलसी और सूर के समान तो पहले भी कोई कवि नहीं हुआ। फिर आज कल अगर नहीं हैं तो क्या आश्चर्य? उनके समान तो वही थे, और वे कर्म-बन्धन से छूट कर इस संसार से मुक्त हो चुके। अब, जब तक कोई और वैसा ही उन्नत आत्मा यहाँ जन्म नहीं लेता तब तक हम लोगों को सन्तोष करना चाहिए।

वह दिन इस देश के लिए धन्य होगा जब कम्पोज़िटर, प्रेस का मैटर कम्पोज़ करते करते, इतने उन्नत हो जायँगे कि स्वयं काव्य-रचना (Compose) करने लगेंगे, क्योंकि काव्य-रचना के लिए किसी विशेष शिक्षा (Training) की आवश्यकता नहीं है, हृदय की ही आवश्यकता है, जिसका होना एक मामूली से मामूली आदमी में भी सम्भव है। परन्तु ज़बरदस्ती कवि या लेखक बन बैठना उनके क्या, किसी के लिए भी, ठीक नहीं। ऐसे ही लोग सम्पादक बन कर चाहे जिसको आज्ञा दे देते हैं कि "अमुक अमुक विषयों पर कविता करके शीघ्र ही भेज दीजिए। मैटर आपके ही लिए रुका हुआ है"। मानों उनके "अमुक अमुक विषय" लेखक के हाथ की कठपुतली हैं, जो वह चार पाँच दिन में ही चार पाँच कविताओं से उनका घर भर दे! किसी को ऐसी आज्ञा देना धृष्टता है, और अपने को उप-हास्य बनाना है। पर इधर ऐसे भी कितने ही कवि-कुल-कमल ('कुमुद' नहीं) कहलाकर कालिदास बने जाते हैं जो—आश्चर्य तो बहुत होता है—पन्द्रह मिनट की नोटिस पर ही, शब्दों को तोड़ मोड़ कर, चाहे जिस विषय पर, सहज में तीस चालीस लाइनें लिख डालते हैं!

मतलब यह कि तर्ज़ और मौज़ के साथ जो रचना की जाती है वह अक्सर अच्छी समझी जाती है, और जो शुष्क

तर्कपूर्ण रचना होती है—जो गणित या व्याकरण की तरह कोई बात बताती है—वह रचना 'कविता' नहीं, चमत्कार-शून्य नीरस तुकबन्दी है।

पदुमीनाथ भट्ट

मदरास-प्रान्त में हिन्दी।

रत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी है। भारत के प्रत्येक प्रान्त में हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या कम नहीं। जिन प्रान्तों की मातृ-भाषा हिन्दी नहीं उनमें से भी कई प्रान्तों के निवासियों की लिखी हुई हिन्दी-कविता मिलती है। महाराष्ट्र के तुकाराम और रामदास आदि ने हिन्दी-कविता लिखी है। गुजरात के भी अनेक कवियों ने हिन्दी में कविता की है। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है, यह इस बात का पक्का प्रमाण है। हाँ, मदरास-प्रान्त हिन्दी के लिए अपवाद-स्वरूप हो रहा है। यहाँ न तो हिन्दी बोलने वाले ही हैं और न अधिक समझने वाले ही। यहाँ की भाषायें कई विद्वानों की सम्मति में आर्य्य-भाषाओं से सम्बन्ध नहीं रखतीं। उनका सम्बन्ध अनार्य-भाषाओं से बताया जाता है। जहाँ पर ऐसी भाषा बोली जाती हो वहाँ यदि हिन्दी की कुछ चर्चा न हो तो आश्चर्य की बात नहीं। पर भारत की राष्ट्र-भाषा होने के कारण मदरास पर भी हिन्दी का कुछ प्रभाव न पड़े, यह भी सम्भव नहीं।

मदरास हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेशों से दूर है। पर वहाँ तीर्थयात्रा के लिए हिन्दी बोलने वालों की एक बहुत बड़ी संख्या आती जाती रहती है। रामेश्वर जाने वाले यात्री न तो अँगरेज़ी पढ़े हुए होते हैं, और न वहाँ की ही कोई भाषा जानते हैं। उस समय हिन्दी से ही उनको कार्य लेना पड़ता है। इससे हिन्दी के समझने वाले वहाँ कुछ भी नहीं, ऐसा कहना अन्याय-सङ्गत प्रतीत होता है। मदरास में हिन्दी का प्र[चार] कम है, यह तो सभी को मानना पड़ेगा। किन्तु उसकी चर्चा नहीं थी या नहीं है, यह कहना [ठीक] नहीं। मदरास-प्रान्त-वासी विद्वानों ने हिन्दी[में] कविता तक की है। हाँ, यह अवश्य है कि [उस] कविता के उदाहरण अधिक नहीं मिलते। अब [तक] मदरास में उत्पन्न हुए किसी कवि का हिन्दी[-ग्रन्थ] नहीं मिला। बहुत सम्भव है, इसका कारण [खोज] का अभाव हो। उस प्रान्त के एक प्राचीन [हिन्दी] कवि की कविता मेरे देखने में आई है। इसी से [मैं] कहता हूँ कि न मिलने का कारण खोज का अ[भाव] होगा। मेरी समझ में यदि कोई हिन्दी-प्रेमी [खोज] करेगा तो शायद उसे विफल-मनोरथ न हो[ना] पड़ेगा।

बात चार सौ वर्ष की है। प्राचीन समय [से] मदरास-प्रान्त धार्म्मिक आचार्यों की जन्मभूमि [रहा] है और आज से चार सौ वर्ष पहले की शताब्दी [भी] आचार्यों से ख़ाली न थी। श्रीमद् गोपाल भट्ट [उस] समय के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य थे। संस्कृत में उनके बनाये हुए बहुत से ग्रन्थ [हैं]। उनका जन्म श्रीरङ्गम् में हुआ था। ये वहाँ [के] श्रीरङ्ग-मन्दिर के अर्चक श्रीवेङ्कट भट्ट के पुत्र थे। श्रीचैतन्य-सम्प्रदाय के छः प्रधान आचार्यों में से [ये] [एक] थे। उन्होंने हिन्दी में कविता की है और वह कवि[ता] प्राप्य है। मदरास-प्रान्त-वासी होने पर भी उन्होंने हिन्दी-कविता की है, यह उस समय के हिन्दी-प्रचा[र] का पूरा निदर्शन है। उन्होंने हिन्दी में कोई ग्र[न्थ] नहीं लिखा। पर, सम्भव है, जिस प्रकार उन्हों[ने] भिन्न-प्रान्त-वासी होने पर भी हिन्दी में कविता [की] उसी प्रकार किसी ने ग्रन्थ भी लिखा हो।

यह तो निश्चय ही है कि श्रीगोपाल भट्ट [गो]स्वामी का जन्म मदरास-प्रान्त में हुआ था, क्योंकि उनके जीवन-चरितों में इसका स्पष्ट उल्लेख है। [अब] उनकी कविता की बात सुनिए। श्रीचैतन्य-सम्प्रदा[य]

आचार्य होने के कारण श्रीगोपाल भट्ट का अधिक सम्बन्ध वङ्ग-देश-वासियों से था। बङ्ग-भाषा में पदकल्पतरु" नाम का एक ग्रन्थ है। ग्रन्थ बहुत बड़ा है। उसके कई संस्करण हो चुके हैं। एक संस्करण, अमृत-बाज़ार-पत्रिका आफ़िस, कलकत्ता, से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण-विषयक सैकड़ों कवियों की कवितायें संग्रह की गई हैं। भाषा का विचार नहीं किया गया। उसमें संस्कृत की भी कविता है, हिन्दी की भी है और मैथिल भाषा की भी है। श्रीगोपाल भट्ट की दो कवितायें उसमें उद्धृत हुई हैं। कवितायें छोटी नहीं, बड़ी हैं। एक का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

> देखी सखि कुञ्जवन कुञ्ज में विराजे हैं।
> वाम में किशोरी गोरी,
> अवस अङ्ग अति विभोरी,
> हेरि श्याम वयनकञ्ज मन्द मन्द हासे हैं।
> × + +
> शारी शुक करत गान,
> भ्रमरा भ्रमरी धरत तान,
> सुनि ध्वनि उठि कैतल घोर वदन गात हैं।
> श्रीगोपाल भट्ट आश,
> वृन्दावन-कुञ्ज-वास,
> युगल स्वरूप नयन हेरि भूखी मन आप हैं।

यह कविता निकृष्ट नहीं। तथापि सम्भव है, बङ्गाली लेखकों के हाथ में पड़ कर इसमें कुछ वैपर्य्यय भी हुआ हो।

कविता हिन्दी में ही है, यह बताना व्यर्थ है। इन दो कविताओं से चार सौ वर्ष पहले के एक मदरासी हिन्दी-कवि का पता लगता है। हिन्दी के इतिहास के प्रेमियों को यह बात नोट कर लेनी चाहिए।

मदरास चाहे कितनी दूर हो, हिन्दी का प्रचार वहाँ हो सकता है। वहाँ के शिक्षितों में हिन्दी के प्रति प्रेम है। इसका प्रमाण यह है कि मदरासी लोग हिन्दी के अख़बार और पुस्तकें ख़रीदने लगे हैं। एक मदरासी ने एक पुस्तक का अनुवाद अँगरेज़ी में कर डाला है। उसका नाम है—मिस्टर ए० मानन्दराव। पुस्तक का अनुवाद ऐसा शुद्ध हुआ है कि देख कर आश्चर्य होता है। यह अनुवाद, हिन्दी में लिखे हुए श्रीचैतन्य देव के एक चरित का है। पुस्तक सम्पूर्ण हो गई है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। उन लोगों को इस पुस्तक से शिक्षा मिल सकती है जो यह कहते हैं कि मदरासी हिन्दी नहीं समझ सकते। इस कारण हिन्दी में राष्ट्र-भाषा होने की पूर्ण योग्यता नहीं।

वर्त्तमान समय में यदि मदरासियों को हिन्दी की शिक्षा दी जाय तो वे बङ्गालियों की अपेक्षा विशेष अच्छी तरह हिन्दी पढ़ सकते हैं। हमने देखा है कि मदरासी लोग शुद्ध और अच्छी हिन्दी लिख सकते हैं। वृन्दावन में मदरास-प्रान्त-निवासी मनुष्यों की कमी नहीं। वहाँ रहते रहते वे हिन्दी सीख गये हैं। "आन्ध्रपत्रिका" नाम की एक सामयिक पुस्तक तिलगू में निकलती है। उसमें एक समाचार प्रकाशित हुआ। उसके अनुवाद की मुझे आवश्यकता हुई। मेरे कहने से एक मदरासी युवक ने उसका बड़ी सुन्दरता से अनुवाद कर दिया। अनुवाद लिख कर दिया। उसकी कुछ पंक्तियाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ नीचे दी जाती हैं—

> इसी दिन मैसोर राज्य में वेलोर स्थान में केशव भगवान का मन्दर में भी उत्सव किया गया है। वहाँ गोपालस्वामी अयङ्गार ने नारायस्वामी का जीवन चरित के मरे उपन्यास किये हैं।

इसकी भाषा यद्यपि ही शुद्ध नहीं, पर इससे हिन्दी की राष्ट्रभाषा-सम्बन्धिनी योग्यता प्रमाणित होने में कमी नहीं आ सकती। ऐसी भाषा यदि मदरासी ने लिखी और उसमें दो एक अशुद्धियाँ रह गईं तो आश्चर्य क्या ? हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी

बिहारी भाई साधारणतः इससे अधिक शुद्ध हिन्दी नहीं बोलते। बङ्गाली से मदरासी जल्दी हिन्दी सीख सकता है। श्री० कृष्णाचार्य स्वामी नाम के एक अच्छे अँगरेज़ी दाँ ने बहुत थोड़े दिनों में हिन्दी का इतना अभ्यास कर लिया है कि वे सूरदास आदि महात्माओं के पदों को समझ सकते हैं, बड़ी सरलता और बहुत कुछ शुद्धता से हिन्दी बोल सकते हैं तथा लिख भी सकते हैं। ऐसे बीसों उदाहरण दिये जा सकते हैं। अतएव मदरास-निवासियों पर यह कलङ्क लगाना अनुचित और अन्याय बात होगा कि वे हिन्दी नहीं सीख सकते या उनके प्रान्त में हिन्दी की बिलकुल ही चर्चा नहीं। कलकत्ते में हज़ारों मदरासी रहते हैं। पर हमने यह नहीं सुना कि उनमें से किसी ने बँगला बोलने या लिख लेने की योग्यता प्राप्त की हो। उर्दू सीख लेना हिन्दू-मदरासी के लिए उतना ही कष्ट-साध्य है जितना अरब के मुसल्मान के लिए संस्कृत पढ़ लेना। यह हिन्दी का ही गुण है कि आज से चार सौ वर्ष पहले भी मदरासी लोग हिन्दी में कविता करते थे और अब भी प्रयत्न करने से उसमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। असम्भव नहीं जो दो ही एक वर्ष के भीतर किसी मदरासी की लिखी हुई कोई हिन्दी-पुस्तक पढ़ने को मिले।

श्रीगौरचरण गोस्वामी

मिहनताना।

(१)

रामनगर के पण्डित शिवराम वाजपेयी बड़े सज्जन आदमी हैं। शहर में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। दीनों की सहायता करना उनका मुख्य कर्तव्य है। पण्डितजी के एक अच्छी ज़मींदारी है। उसका बहुत अच्छा प्रबन्ध उन्होंने कर रक्खा है। पण्डितजी के किसी असामी से पूछिए, वह पण्डितजी का गुण ही गान करेगा। ज़मींदारी जैसे परपीड़न रूप पाति-सेवन से फलने फूलने वाले कार्य में भी पण्डित आज तक कोई अधर्म नहीं किया। पटवारी से मिल किसी पक्के किसान को उन्होंने कभी कराया, और न किसान से लगान वसूल करके उस पर झूँठी बाकी डाली। यही कारण है जो उनके गाँवों में पण्डित बड़ा आदर है। दूर दूर से किसान आकर पण्डित गाँवों में बसते और फलते फूलते हैं। अपनी ज़मीं प्रायः सारे झगड़े पण्डितजी स्वयं ही निपटा दिया करते गाँवों के मनुष्य पण्डितजी को ईश्वर-तुल्य और उनके को ईश्वराज्ञा समझते हैं।

पण्डितजी के दो पुत्र और एक कन्या है। कन्या छोटी है। इसी लिए, क्या भाई और क्या माता-पिता के स्नेह की मात्रा उसकी ओर अधिक है। कन्या का इन्दुमती है। इन्दुमती बड़ी कुशाग्रबुद्धि है। उसका अत्यन्त पर बुद्धि बड़ी तीव्र है। पण्डितजी का बड़ा रामरत्न बी० ए० पास करके मकान पर जब आया था तब वही इन्दुमती को हिन्दी-भाषा और गणित करता था। इन्दुमती अपने भाई से जो कुछ पढ़ती अनायास याद कर लेती। रामरत्न को यह देख कर होता था कि जो कुछ इन्दुमती को बतलाया जाता था सब कुछ ही घण्टों में वह याद कर लेती थी। यद्यपि को वही दिन भर में नहीं याद हो सकता था। रामरत्न अपनी बहन की तीव्र बुद्धि देख कर मन ही मन आनन्द पाता था। धीरे धीरे इन्दुमती की हिन्दी की शिक्षा समाप्त हो गई। अब उसे क्या पढ़ाया जाय, विषय पर रामरत्न और पण्डित शिवराम में एक दिन तरह बातचीत हुई—

"पिताजी, इन्दुमती हिन्दी और साधारण गणित चुकी। अब उसको कुछ और भी पढ़ाना चाहिए।"

"बेटा, लड़कियों को बहुत पढ़ाने से क्या काम उनको नौकरी तो करनी ही नहीं। घर के काम-काज लिए इतना ही काफ़ी है।"

"पिताजी, तो विद्या का मुख्य उद्देश नौकरी करना। रहता। विद्या ज्ञान के लिए है, इस बात को आप नहीं मानते?"

"मानता तो ज़रूर हूँ, पर लड़कियों को विशेष ज्ञान की ज़रूरत ही क्या है।"

"पिताजी, भारतवर्ष में तो पुरुषों को भी विशेष ज्ञान की ज़रूरत नहीं। क्योंकि, वे भी अपने को ऋषि-सन्तान कह कर संसार के समूचे ज्ञान के एकमात्र ज्ञाता बने बैठे हैं।"

"उन लोगों की बात जाने दो। लड़कियाँ विशेष पढ़ कर क्या करेंगी, विचार इस विषय पर करना है।"

"अपने घर को सुखधाम बनायेंगी, अपनी सन्तानों को मनुष्य बनायेंगी और धर्माधर्म के तत्त्व समझ कर उस शक्ति की महत्ता का अनुभव करेंगी।"

"धर्माधर्म का ज्ञान पढ़ने से ही होता है, यह बात, बेटा, मेरी समझ में नहीं आती। मैं देखता हूँ कि बीसियों बी० ए०—एम० ए० होटलों में भोजन करते हैं; और, कहते अवस्था आती है, वे भक्ष्याभक्ष्य की भी ज़रा परवा नहीं करते। ऐसी सुशिक्षा से तो अशिक्षा ही भली!"

"पिताजी, मैं अपने आप को बड़ा भाग्यवान् समझता हूँ कि आप ने मुझे सम्मति देने की पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी है। पिताजी, शिक्षा का कुफल इससे सिद्ध न हुआ। जैसी शिक्षा वैसा ही फल। वे ऐसी शिक्षा पाते हैं कि उससे उन्हें वर्णाश्रम-धर्म का महत्त्व नहीं मालूम होता। वे समझते हैं कि संसार के सारे जीव-जन्तु पैदा होते ही बड़ाई-छुटाई का कोई ख़ास हक़ नहीं रखते। वे सभी को समान समझते हैं। उनकी दृष्टि में चमार के हाथ से पके हुए और ब्राह्मण के हाथ से पके हुए भोजन में—यदि वह एक सी बाहरी सफ़ाई से पकाया गया हो तो—कोई अन्तर नहीं। इस बात को वे ठीक मानते हैं। उनमें बहुत से ऐसे, जिनमें कुछ नैतिक बल है, अपनी अन्तरात्मा के अनुसार ही आचरण भी करते हैं। इस लिए जो लोग चाहते हैं कि उनकी सन्तान इस भेद को माने और उनके धार्मिक विचारों के अनुसार आचरण करे, उन्हें चाहिए कि वे उनको अपने धर्म-ग्रन्थ पढ़ाने का अलग प्रबन्ध करें, क्योंकि वे स्कूलों और कालेजों में नहीं पढ़ाये जाते। पर, उन धर्म-ग्रन्थों की भी पढ़ताल अच्छे अच्छे विद्वान् पहले ही से कर लें। कहीं उनमें से भी अनुकूल वाक्य अपने मत को पोषण करने वाले वाक्य न निकाल लें। शिक्षा मनुष्य की बुद्धि को परिष्कृत और उसके विचारों को परिमार्जित करती है। पर, प्रत्येक मनुष्य का विचार-बिन्दु (Point of View) भिन्न होता है। इसी लिए जो बात एक के मत से अच्छी है वही दूसरे के मत से बुरी भी हो सकती है।"

"बेटा, तुम पढ़े लिखे हो और मैं पुराने ज़माने का आदमी हूँ। इस लिए तुम्हीं अब अपने विचार-बिन्दु से बताओ कि इन्दुमती को क्या पढ़ाना चाहिए।"

"पिताजी, बिना अँगरेज़ी पढ़े मनुष्य की बुद्धि का अच्छी तरह विकास नहीं हो पाता। इतिहास, विज्ञान, भूगोल और खगोल-सम्बन्धिनी काम की बातों का जितना अच्छा समावेश छोटी से छोटी अँगरेज़ी पुस्तक में मिल जाता है, अन्य भाषाओं के पोथों में भी उतना नहीं मिलता। उन भाषाओं की पुस्तकों के लेखकों ने तो पहाड़ खोद कर चुहिया निकाली है।"

"बेटा, मैं तुम्हारी बात का खण्डन नहीं कर सकता, क्योंकि तुमने अँगरेज़ी का साहित्य देखा है और मैंने उसे छुआ तक भी नहीं। पर, इतनी बात अवश्य है कि अँगरेज़ी पढ़ने से एक प्रकार की स्वतन्त्रता आ जाती है। उसे मैं कम से कम लड़कियों के लिए अच्छी नहीं समझता।"

"पिताजी, सदाचार-युक्त स्वतन्त्रता तो बुरी बात नहीं। यदि कोई मनुष्य किसी भाषा के बुरे साहित्य को पढ़ कर अपने आचरण को बिगाड़ ले तो उसमें उस भाषा का कुछ भी अपराध नहीं। अखिलनियन्ता परमेश्वर ने अपने सुविशाल प्रकृति क्षेत्र में अनेकानेक मीठे फल भी पैदा किये हैं और प्राणनाशक भयङ्कर विष भी। अब कोई विष को खाकर परमात्मा को कोसे तो इसे उसकी बुद्धि का विकार ही समझना चाहिए। हर भाषा में हानिकारक साहित्य भी होता है। पढ़ाने वाले को चाहिए कि पहले वह भाषा के उच्च साहित्य का ज्ञान करावे। उच्च साहित्य पढ़ाने से एक बार ऊँचे संस्कार जम जाने पर फिर तुच्छ विचारों से वे न दबेंगे।"

"अस्तु, अँगरेज़ी के साथ थोड़ी सी संस्कृत भी पढ़ा देना। तुमने तो बी० ए० तक संस्कृत पढ़ी है न?"

तब से इन्दुमती को अँगरेज़ी की शिक्षा दी जाने लगी।

(२)

रामशरण एल-एल० बी० की परीक्षा में पास हो गये। रामनगर में वही पहले वकील हुए। उनके पहले और और शहरों के वकील वहाँ विकालत करते थे। शिवरत्नजी की कीर्ति शहर भर में फैली हुई थी ही। उनके लड़के की इस सफलता को शहर के सब लोगों ने अपने ही लड़के की सफलता समझी। यही कारण था कि थोड़े ही दिनों में

रामरत्न की वकालत चमक उठी। शहर के बड़े बड़े मामले उन्हीं के पास आने लगे। शहर में यह बात मशहूर हो गई कि रामरत्न बाबू झूठे मुक़द्दमे नहीं लेते। इसी लिए वे जितने मुक़द्दमे लेते हैं उनमें ज़रूर कामयाब होते हैं। रामरत्नजी के पास यदि कोई झूठा मुक़द्दमा आता तो उस आदमी को वे इस तरह समझाते—"संसार में सत्य की ही जीत होती है। झूठा मुक़द्दमा चला कर तुम कभी न जीतोगे। यहाँ और वहाँ दोनों जगह तुम्हारी हानि ही है।" उनके ऐसे सदुपदेश से अनेक मुक़द्दमेबाज़ अपनी बुरी आदत को छोड़ बैठे।

कुछ समय बाद रामरत्न का भाई देवरत्न एम॰ ए॰ की परीक्षा में पास हुआ। उसने अपनी ज़मींदारी में वैज्ञानिकों के नवीन आविष्कारों से लाभ उठाने के लिए कृषि-विज्ञान की शिक्षा-प्राप्ति के निमित्त अमरीका जाने का सङ्कल्प किया। माता-पिता न चाहते थे कि लड़का इतनी दूर सात समुद्र पार जाय। पर, रामरत्न ने उनको किसी तरह मना लिया। रामरत्न ने देवरत्न को मार्ग-व्यय के दो हज़ार रुपये देकर अमरीका भेज दिया और नियमित रूप से १२०) मासिक उसके पास वे भेजते रहे।

इन्दुमती भी अब अँगरेज़ी-साहित्य में ख़ूब निपुण हो गई है। 'क्रिश्चियन-गर्ल्स-कालेज" की लेडी-प्रिंसिपल २०) मासिक पर उसे रोज़ पढ़ाने आया करती है। इन्दुमती को मातृ-भाषा के साहित्य का तो पहले से ही अच्छा ज्ञान था। अब अँगरेज़ी और संस्कृत जैसी उच्च साहित्य वाली भाषाओं को पढ़ कर उसकी प्रतिभा और भी चमक उठी। लेडी-प्रिंसिपल भी उसकी योग्यता और बुद्धि की तीक्ष्णता देख कर उस पर सन्तानवत् स्नेह रखती थीं। उसने पण्डित शिवरत्न और इन्दुमती की माता को किसी तरह समझा-बुझा कर इन्दुमती से मैट्रिक्युलेशन परीक्षा दिलवा दी। यथासमय परीक्षाफल आया और इन्दुमती को सर्वप्रथम उत्तीर्ण पाकर लेडी-प्रिंसिपल के आनन्द और गर्व का ठिकाना न रहा। रामनगर ज़िले के मैजिस्ट्रेट की धर्मपत्नी ने अपने कर-कमलों से इन्दुमती को सोने का पदक प्रदान किया।

इस समय इन्दुमती की अवस्था १२ वर्ष की थी।

(३)

भोलानाथ और श्यामनाथ दो सगे भाई थे। उनके पास अपार सम्पत्ति थी। दोनों भाई प्रेमपूर्वक रह[ते थे।] उनकी सम्पत्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। [भोला]नाथ के एक पुत्र था, उसका नाम था देवधर। श्याम[नाथ] सन्तानहीन थे। वे देवधर को ही अपना पुत्र सम[झते] और उसका लालन-पालन भी उन्हीं ने किया था। भोला[नाथ] देवधर पर अपना कोई अधिकार न समझते थे। जो [कुछ] करना होता था श्यामनाथ ही उसके लिए करते थे। श्यामनाथ की स्त्री का स्वभाव अच्छा न था। वह स[न्तान] न होने के दुःख को कभी न भूलती थी। कहना व्यर्थ [है,] देवधर को देख कर उसे बड़ी ईर्ष्या होती थी।

श्यामनाथ बड़े सज्जन थे। वे अपनी स्त्री का सम्मान करते थे। एक दिन श्यामनाथ से उनकी स्त्री ने बहुत ही अनुचित प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव को सुन श्यामनाथ अवाक् रह गये। पर बहुत दिनों की रगड़ के [बाद] श्यामनाथ को उनकी स्त्री ने अपने प्रस्ताव से सहमत कर लिया। थोड़े ही दिनों में लोगों ने बड़े आश्चर्य से [सुना] कि श्यामनाथ का दूसरा विवाह उनकी सांकी के साथ [हो] गया। जो घर अब तक सुरधाम था वही अब नित्य झगड़ों से नरककुण्ड बन गया। श्यामनाथ अब तक दे[वधर] से बड़ी मुहब्बत रखते थे। पर, घरेलू झगड़ों के का[रण] देवधर को अब कष्ट मिलने लगा था।

देवधर ने एफ़॰ ए॰ पास करके बी॰ ए॰ दर्जे में क़दम रक्खा। यद्यपि शहर के नये खुले हुए कालेज [में] एम॰ ए॰ तक की पढ़ाई होती थी, तथापि भोलानाथ ने अपने एकमात्र पुत्र देवधर को शिवपुर के सरकारी कालेज में ही पढ़ाना उचित समझा। अब बी॰ ए॰ में पढ़ने के लिए घर का लाल देवधर घर में अँधेरा करके शिवपुर चला गया तब भोलानाथ और श्यामनाथ के हृदय पर बड़ी चोट लगी। श्यामनाथ और देवधर एक ही साथ खाते थे। आज अब पहला ही दिन था कि श्यामनाथ भोजन के लिए अकेले बैठे। श्यामनाथ के आगे थाली रक्खी गई, पर उनको देवधर की अनुपस्थिति से इतना दुःख हुआ कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े और सिर्फ़ जल ही पीकर वे उठ गये। तीन चार रोज़ तक उन्होंने अच्छी तरह भोजन न किया। जब इस बात की सूचना उनके बड़े भाई भोलानाथ को हुई तब अपने भाई के इस अलौकिक और

ब्रिटिश सबमेरीन बी० २ (B 5) पानी के भीतर डुबकी लगाने की तैयारी में है।

जर्मनी की सबमेरीन से छोड़ा गया एक टारपेडो।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

असाधिक पुत्रस्नेह के कारण उनका हृदय भर आया। वे श्यामनाथ को हृदय से लगा कर रोने लगे। भोलानाथ ने अपने छोटे भाई से गद्गदकण्ठ होकर बार बार यही कहा—"मैं ही तुम्हारे इस दुःख का कारण हूँ। मैंने ही तुम्हारी स्निग्ध छाया से हटा कर देवधर को परदेश भेजा है। पर, भाई वस्तुतः ही वैसी थी। अब मैं तुमसे इस अपराध की क्षमा माँगता हूँ।" श्यामनाथ ने भाई के चरण पकड़ लिये और उनको विश्वास दिलाया कि अब जैसे होगा वे पेट भर भोजन करेंगे।

चार वर्ष और बीत गये। देवधर प्रथम श्रेणी के एम॰ एस-सी॰ हो गये। नामवरी के साथ पास होने के कारण पिता ने अपने सुपुत्र के भविष्य का ख़याल करके और अपने घर की भीतरी अवस्था देख कर उसे इँगलेंड भेज देना और वहाँ डाक्टरी सीखना समुचित समझा। घर में अतुल वैभव था। देवधर बड़े ठाट बाट से इँगलेंड को रवाना हुए।

देवधर और देवदत्त ने एक ही वर्ष हिन्दुस्तान छोड़ा। एक ही ट्रेन में दोनों ने बम्बई तक की यात्रा की। श्याम-नाथ देवधर को बम्बई तक पहुँचा आये।

और तीन वर्ष बीत गये। भोलानाथ के घर की भीतरी कलहाग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। श्यामनाथ की दोनों अपढ़ स्त्रियों ने ग़ज़ब ही ढा दिया। एक ही मूर्खा स्त्री घर का नाश करने के लिए काफ़ी है। पर, यहाँ तो "एक न शुद्र दो शुद्र" का मामला था। जब बरेलू व्याधि असाध्य हो चली तब एक दिन भोलानाथ ने श्यामनाथ को एकान्त में बुला कर इस प्रकार कहना शुरू किया—

"भाई श्यामनाथ, मैं जानता हूँ कुछ वर्षों से तुम किस बुरी तरह से अपना समय बिता रहे हो। तुम्हारी स्त्रियाँ तुमको मुझसे जुदा होकर रहने के लिए बहुत ही परेशान और मजबूर कर रही हैं। तुमने जितना कष्ट किया है मैं ख़ूब जानता हूँ। भाई, तुम देवता हो। मैं तुमको आज्ञा न देता तो तुम कभी दूसरी शादी न करते। मैं समझता था कि दूसरी शादी कर लेने पर घर का कलह कुछ कम हो जायगा, पर वह और बढ़ गया। तुम जैसा भाई पाकर मैं अपने को संसार में धन्य समझता हूँ। अज्ञातभाव से आज्ञा मानने वाला ऐसा निर्मम और निःस्वार्थी भ्राता संसार में मुश्किल से ही मिलेगा। संसार में कोई शक्ति नहीं जो ज़िन्दगी भर तुमको मुझसे जुदा कर सके। पर भाई, घर की दशा देख कर यह ज़रूरी मालूम होता है कि ज़ाहिरी तौर से हम तुम दोनों अब जुदा जुदा हो जायँ।" यह कहते कहते भोलानाथ के बड़े बड़े नेत्रों में आँसू भर आये। सावधान होकर वे फिर बोले—

"घर में क्या है, मुझको भी मालूम नहीं और तुमको भी मालूम नहीं। यह ख़याल स्वप्न में भी न था कि इस सम्पत्ति का इस प्रकार विभाग किया जायगा। पर भवितव्यता! यह सब वैभव ईश्वर की कृपा और तुम्हारे परिश्रम का ही फल है। इसके एकमात्र मालिक तुम हो। पर ऐसा करने से संसार तुमको बुरा कहेगा और तुम भी इसको स्वीकार न करोगे। इसी लिए मैंने यह सोचा है कि अब इसका बराबर बराबर विभाग कर दिया जाय। मैं दूसरे बड़े मकान में चला जाऊँगा। तुम इसी में रहो। पर, देवधर का विवाह तुम्हारे ही मकान में होगा। अस्तु। अब विभाग कैसे हो। मेरे और तुम्हारे किये विभाग को कोई न्यायपूर्ण न मानेगा। संसार जानता है, तुम मेरे पूर्ण भक्त हो। कोई विश्वास न करेगा कि तुमने अपना पूरा भाग लिया है। इसी लिए मैंने एक बात सोची है। वह यह है कि पण्डित शिवरत्नजी के पुत्र पण्डित रामरत्न हमारे शहर के नामी वकील हैं। उनकी ईमानदारी के सभी क़ायल हैं। उनकी हम पर कृपा भी है। यदि हम उनके नाम अपना पञ्चायतनामा लिख दें तो वे कृपा करके अवश्य ही हमारी सम्पत्ति का विभाग कर देंगे। वे वकील हैं और हमारे मामले मुक़द्दमे सदा उन्हीं के पास जाया करते हैं। उनको क़रीब चार सौ रुपये मासिक हमारे यहाँ से मिल भी जाता है। इस लिए वे हमारा काम करने में कुछ भी सङ्कोच न करेंगे। दस हज़ार रुपये उनकी फ़ीस के मैं मुनासिब समझता हूँ। यदि वे इससे भी अधिक माँगेंगे तो दे दिया जायगा। क्योंकि, वे देवतुल्य हैं। कभी किसी से तरफ़दारी नहीं लेते। भाई, अब तुम जाओ और सरदार से कह दो कि शाम को वकील बाबू के यहाँ जायँगे। छः बजे गाड़ी तैयार रहे।

श्यामनाथ आँसू भरी आँखों को पोंछते हुए "जो आज्ञा" कह कर खड़े हो गये। उनका चेहरा एकदम बहुत उतर गया था।

(२)

पण्डित रामरत्न अपने बँगले में बैठे हुए हैं। आफ़िस के कमरे में मुवक्किलों की भीड़ है। पण्डित रामरत्न के चारों ओर बड़ी बड़ी अलमारियों में संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों के क़ानून-सम्बन्धी ग्रन्थ चुने हुए हैं। सामने बड़ी मेज़ पर बीसों मिसलें क्रम से रक्खी हुई हैं। इस समय जितने मुवक्किल उपस्थित हैं वे सब अपने अपने मामलों में सम्मति लेने आये हैं। पण्डित रामरत्न बड़ी शान्ति के साथ सबके प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं। जिसका काम हो जाता है वह उठ जाता है। अब सिर्फ़ दो ही आदमी रह गये हैं। इतने में हमारे सुपरिचित पण्डित भोलानाथ और श्यामनाथ आ पहुँचे। इन दोनों भाइयों को आते देख वकील साहब अपने आसन से उठ बैठे और बड़े आदर-भाव से इन्हें अपने पास की कुर्सियों पर बिठाया।

वकील साहब ने हँसते हुए पूछा—"कुशल तो है।"

दोनों भाइयों ने बड़ी शिष्टता से उत्तर दिया—"आपकी कृपा है। आपके दर्शनों के लिए चले आये"।

वकील साहब ने बड़ी उत्सुकता से कहा—"धन्यवाद, कहिए, देवव्रतजी के आने में अब कितना समय बाक़ी है?"

श्यामनाथ ने कहा—"अगले वर्ष परीक्षा होगी। क़रीब डेढ़ वर्ष अभी और बाक़ी है।"

वकील साहब ने कहा—"तो अब आये ही समझिए। मैंने सुना है कि आप का विचार नौकरी कराने का नहीं। आप कई लाख रुपया लगा कर ग़रीबों के लिए एक आदर्श अस्पताल क़ायम करने वाले हैं। देवव्रतजी शायद उसी अस्पताल का निरीक्षण करते हुए परोपकार में प्रवृत्त हों। बड़ा ही उच्च विचार है। सच तो यह है कि हमारा शहर रोज़गारी डाक्टरों की फ़ीसों और उनके अन्धाधुन्ध बिलों से बहुत ही परेशान हो गया है। क्या ही अच्छा हो जो आपका विचार कार्य्य में परिणत हो जाय।"

दोनों भाइयों ने कहा—"ईश्वर की कृपा और आपकी सहायता मिली, तो आशा है, हमारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

वकील साहब मुसकरा कर बोले—"परोपकारी कार्य्यों में ईश्वर सदा ही सहायक होता है"।

वकील साहब की बातों के सिलसिले को ठीक रुख़ होते न देख बाक़ी के मुवक्किल भी "फिर हाज़िर होंगे" कह कर चले गये। अब कमरे में इन दोनों भाइयों के सिवा और कोई न रहा। मौक़ा अच्छा जान कर पण्डित भोलानाथ ने कहा—

"आज हम एक बहुत ज़रूरी काम के लिए आप की सेवा में आये हैं। आप की सहायता से ही हमारी इच्छा रह सकेगी। यदि कुछ समय के लिए आप एकान्त में हमारी प्रार्थना सुन सकें तो बड़ी कृपा हो—"

"आइए अन्दर गोल कमरे में बैठें?" कहते हुए वकील साहब उठ खड़े हुए और उन दोनों भाइयों को अपने साथ ले कर कमरे में पहुँचे। यह कमरा ख़ूब सजा हुआ था। इसकी दीवारों पर भारत के नेता दादा भाई नौरोजी, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी आदि अनेक महानुभावों के चित्र टँगे हुए थे। सब सामान क़ीमती था और वह क्रम-बद्ध लगा हुआ था। दोनों भाइयों को बिठा कर वकील साहब भी बैठ गये और बड़ी नम्रता से बोले—"कहिए क्या आज्ञा है?"

पण्डित भोलानाथ ने अपने घर की हालत कह सुनाई और अन्त में अपनी सम्पत्ति को बाँट देने के लिए वकील साहब से विनीत प्रार्थना की। साथ ही उन्होंने वकील साहब की फ़ीस के तौर पर एक एक हज़ार के दस दस नोट उनके सामने रख दिये।

वकील साहब को यह सब देख सुन कर बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कुछ देर सोच कर कहा कि मैं आपकी सम्पत्ति का विभाग कर दूँगा। पर, आप मुझे लिख दें कि इसका जो कुछ मिहनताना मैं माँगूँगा, आप प्रसन्नता-पूर्वक देंगे। जिस पत्र पर आप यह प्रतिज्ञा लिखेंगे उसी पर मैं भी अपना मिहनताना लिख दूँगा। पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द करके मैं आपको वापस कर दूँगा। वह लिफ़ाफ़ा आप के पास रहेगा। जब फ़ैसला हो जायगा तब आप वे लिफ़ाफ़ा खोल कर उसमें जो कुछ लिखा होगा वह मुझे देना पड़ेगा। कहिए मञ्जूर है?"

दोनों भाइयों ने वकील साहब की इन बातों को बड़े आश्चर्य से सुना। उनकी न्याय-परता और कौशल के प्रभाव से उन्होंने शर्त मंज़ूर कर ली। वे बोले—साहब, हमें

प्रतिज्ञापत्र लिख दें। शुभस्य शीघ्रम्। आप जैसे देव-तुल्य महानुभव हमारी प्रतिज्ञा से अनुचित लाभ उठायेंगे, इसका हमें स्वप्न में भी डर नहीं।

कागज़ पर प्रतिज्ञा लिख कर दोनों भाइयों ने उस पर अपने हस्ताक्षर किये। तारीख़ लिखी। अन्त में वह चिट्ठी वकील साहब को दे दी गई। वकील साहब ने उस पर एक लाइन लिख कर उसे लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया। वह लिफ़ाफ़ा पण्डित भोलानाथ जी के हाथ में सौंप दिया गया।

"कल से मैं आपका काम शुरू करूँगा। परसों से दीवानी कचहरी में तातील है। इस एक मास के भीतर ही मैं आपकी सम्पत्ति का विभाग कर दूँगा। आप मेरे नाम नियम-पूर्वक एक पट्टानामा लिख कर रजिस्ट्री करा दें। ये नोट अभी आप अपने ही पास रक्खें"—यह कह कर वकील साहब ने दस हज़ार के नोट पण्डित भोलानाथ के हाथ में दे दिये।

दूसरे दिन नियमपूर्वक पट्टानामा रजिस्ट्री हो गया। पण्डित रामरत्न ने रोज़ शाम को चार घण्टे ख़र्च करके पण्डित भोलानाथ के मकान पर उनकी सम्पत्ति की तालिका बनाना आरम्भ कर दिया।

(२)

शहर में पण्डित भोलानाथ और श्यामनाथ के बँटवारे की बात सुन कर सब दङ्ग रह गये। किसी को स्वप्न में भी ख़्याल न था कि ये दोनों भाई कभी जुदा होंगे। पर जिस ख़ूबसूरती और भलमनसाहत से ये दोनों जुदा हुए उसकी तारीफ़ सब कहीं होने लगी। साथ ही साथ पण्डित रामरत्न की प्रशंसा-पुस्तक में भी दो चार पृष्ठ और बढ़ गये। श्यामनाथ जुदा होने को तो हो गये, पर उनका सारा समय सदा की तरह पण्डित भोलानाथ जी ही की सेवा में बीतता था। पण्डित भोलानाथ के मकान पर ही वे बैठे रहते थे। बाहरी आदमी अब भी यह न जान सकता था कि ये दोनों भाई जुदा हो गये हैं। एक दिन दोनों भाई बैठे बातें कर रहे थे।

श्यामनाथ ने कहा—"भाई साहब, एक वर्ष से ज़ियादह हो गया, पर वकील साहब की फ़ीस का मामला अभी तै नहीं हुआ।"

भोलानाथ—"क्या किया जाय। उनसे जब कहते हैं तभी वे टाल देते हैं। बिना उनकी आज्ञा के हम उस लिफ़ाफ़े को भी नहीं खोल सकते। तुम्हीं बताओ क्या करना चाहिए।"

श्यामनाथ—"भाई साहब, मेरी समझ में—"

अभी बात समाप्त नहीं हो पाई थी कि सामने से तार लिये हुए एक चपरासी आया। तार का लिफ़ाफ़ा उसने पण्डित श्यामनाथ के हाथ में दे दिया।

श्यामनाथ ने देखा, तार में लिखा है—

Reaching Bombay twentieth instant,
P. and O. Koh-i-noor,
Devadhara.

बीस रोज़ बाद ही देवधर का मुखपद्म देखने को मिलेगा, यह शुभ समाचार पाकर दोनों भाइयों के हर्ष का ठिकाना न रहा। भोलानाथ ने घर में जाकर यह समाचार सुनाया। वहाँ उसी समय से आनन्द-मङ्गल होने लगा। यथा-समय दोनों भाई बम्बई चलने की तैयारी करने लगे।

श्यामनाथ ने कहा—"चलिए, पण्डित रामरत्न वकील को भी यह शुभ समाचार सुना आवें और उनकी फ़ीस का विषय भी तै करते आवें"। "ठीक है" कह कर भोलानाथ ने कपड़े पहन लिये और दोनों भाई तार और प्रतिज्ञापत्र का लिफ़ाफ़ा साथ लेकर गाड़ी में सवार हो वकील साहब के स्थान पर पहुँचे।

वसन्तपञ्चमी की छुट्टी थी। वकील साहब अपने ख़ास कमरे में बैठे हुए इन्दुमती से शेक्सपियर और कालिदास, दण्डी और मिल्टन, वर्डस्वर्थ और भर्तृहरि के काव्यों की विशेषताओं पर बहस कर रहे थे। इतने में इन दोनों भाइयों के आने का समाचार मिला। वकील साहब ने दोनों भाइयों को वहीं बुला लिया और बड़े सत्कार के साथ उन्हें अपने पास बिठाया। इन्दुमती ने भी बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ इन दोनों को प्रणाम किया। दोनों भाइयों ने इन्दुमती के रूप में साक्षात् भगवती सरस्वती का दर्शन किया। उन्होंने बड़े स्नेह से उसको आशीर्वाद दिया। दोनों ने इन्दुमती की गेरपना, विद्वत्ता और गृह-कार्य-कुशलता की तारीफ़ पहले से ही सुन रक्खी थी। आज उसी देवी के प्रत्यक्ष दर्शन करके उन्होंने बड़ा आनन्द पाया। उन्होंने वृद्ध शिवरत्न के भाग्य को मन में बार बार सराहा।

इन्दुमती अपनी "The History of Sanskrit Literature" नामक पुस्तक को उठा कर शामता से आज्ञा माँग अन्दर चली गई । जाते समय भी उसने नम्रता-पूर्वक इन दोनों साहबों को प्रणाम किया ।

वकील साहब ने पूछा—"कहिए, सब कुशल है" ?

"आपकी कृपा है । देवधर इसी मास की २० तारीख़ को बम्बई पहुँचेगा । आज ही उसका तार आया है । यह देखिए—" यह कह कर श्यामनाथ ने तार का लिफ़ाफ़ा वकील साहब के सामने रख दिया ।

वकील साहब—"ईश्वर का धन्यवाद है । बहुत अच्छा । कहिए आप बम्बई कब जाइएगा ?" ।

श्यामनाथ—"परसों ही जाने का विचार है । कुछ रोज़ पहले पहुँच कर बम्बई की सैर भी कर लेंगे ।"

वकील साहब—"बहुत ठीक है ।"

"एक प्रार्थना है । हम आपके ऋणी हैं । कृपा करके अब हमको ऋणमुक्त कीजिए । हमारी प्रतिज्ञा का यह लिफ़ाफ़ा हाज़िर है । आज इस मामले को साफ़ कर दीजिए । आपने हमारा बड़ा उपकार किया है" यह कह कर भोलानाथ ने लिफ़ाफ़ा वकील साहब के सामने रख दिया ।

वकील साहब ने कहा—"मैं आपका सेवक हूँ । यदि आपकी यही आज्ञा है तो लिफ़ाफ़ा खोल कर उसमें जो मिहनताना लिखा है मुझे दे दीजिए ।"

भोलानाथ—"आपही खोलिए" ।

वकील साहब—"आप ही खोलिए, यह आप ही की सम्पत्ति है" ।

भोलानाथ ने बड़े विस्मय और हर्ष के साथ लिफ़ाफ़ा खोला । भीतर पत्र पर नज़र पड़ते ही उनकी आँखों में आँसू भर आये । उन्होंने काँपते हाथ से वह पत्र श्यामनाथ के हाथ में दे दिया और गद्गद कण्ठ से कहा—

"मिहनताने की इस रक़म पर मेरा कभी भी अधिकार नहीं । इसके मालिक तुम हो । तुम जानो और वकील साहब जानें, मैं तो ऋणमुक्त हो गया ।"

श्यामनाथ ने देखा कि उनकी प्रतिज्ञा के नीचे वकील साहब की निम्नलिखित पंक्ति लिखी हुई है—

"मिहनताना = इन्दुमती के बदले में देवधर ।"

इसे पढ़ कर श्यामनाथ को भी बड़ी प्रसन्नता हुई जो हर्ष के कारण उनके मार्ग की हुई थी । उन्होंने प्रश्न दृष्टि से भोलानाथ की ओर देखा । भोलानाथ ने मतलब समझ कर कहा—

"मेरी ओर देखने की ज़रूरत नहीं । जो चीज़ है उस पर तुम्हारा पूरा अधिकार है ।"

श्यामनाथ ने बड़े हर्ष से कहा—"देवधर आपका हुआ" । वकील साहब ने हर्षोत्फुल्ल-लोचन होकर जवाब दिया—"इन्दुमती आपकी हुई" ।

भोलानाथ ने नम्रतापूर्वक कहा—"मुझे केवल इतना ही निवेदन करना है कि मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ । साक्षात् भगवती इन्दुमती मेरी पुत्रवधू बनेगी । परन्तु आप इस विषय में वरवधू की सम्मति की आवश्यकता समझते ?"

"समझता हूँ"—कह कर वकील साहब उठे और चिट्ठी लाकर भोलानाथ के हाथ पर रख दी । उसमें लिखा था—

"मुझे श्रीमती इन्दुमती के साथ विवाह में कोई आपत्ति नहीं, यदि मेरे पूज्य चाचा (पण्डित भोलानाथजी) इस सम्बन्ध को स्वीकार करें । देवधर ।"

(६)

"डाक्टर देवधर एम० डी० के निरीक्षण में भोला श्यामनाथ-अस्पताल का काम बहुत अच्छी तरह से चल रहा है । वहाँ ग़रीबों के दुःख दूर करने की ऐसी व्यवस्था है कि भारतवर्ष में शायद ही वैसी और कहीं हो । रायबहादुर पण्डित भोलानाथ और रायबहादुर पण्डित श्यामनाथ ने क़रीब पाँच लाख रुपये लगा कर यह अस्पताल बनवाया है । इसके सिवा उन्होंने इस काम में लग कर अपने एक मात्र पुत्र डाक्टर देवधर को सरकारी नौकरी के स्वर्ण-पाश में न फँसा कर रोगियों की सेवा में लगाया है । इसके लिए आसपास के आदमियों का उन्हें आशीर्वाद मिल रहा है ।

—आनन्दप्रकाश

चिउँटियाँ।

कीड़े-मकोड़ों में तीन वर्ग के प्राणी बड़े मशहूर हैं—(१) चिउँटियाँ, (२) मधुमक्खियाँ और (३) बर्रें। ये तीनों, एक तरह से सजातीय हैं और सब के सब अत्यन्त परिश्रमी और बुद्धिमान् हैं।

किसी जङ्गल अथवा बाग़ीचे में जाकर देखिए, तो वहाँ छोटे बड़े बमीठे दिखाई देंगे। कोई कोई बमीठे तो दो-तीन फ़ीट ऊँचे होते हैं। यही चिउँटियों की नगरियाँ हैं। यदि किसी बमीठे के निवासियों—चिउँटियों—की गणना की जाय तो उनकी संख्या कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों की मनुष्य-संख्या से भी बढ़ जाय। देखने में ये बमीठे सुडौल नहीं दिखाई देते, परन्तु चिउँटियों के अत्यल्प विस्तार को ध्यान में रख कर यदि उनका अवलोकन किया जाय तो यही बमीठे विलक्षण दिखाई देने लगें। इनमें आपको दरवाज़े या फाटक मिलेंगे, घूमती फिरती सड़कें और गलियाँ मिलेंगी, कोठे, बड़े बड़े कमरे, दालान और रङ्गमहल भी मिलेंगे। नगरी में ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर, आती जाती हुई चिउँटियों की उसी प्रकार भीड़ मिलेगी जिस प्रकार बड़े बड़े शहरों की सड़कों पर आदमियों की भीड़ मिलती है।

चिउँटियाँ अपने नगर की रक्षा बड़ी होशियारी से करती हैं। पास के बमीठे के निवासियों तक को वे अपने बमीठे के भीतर नहीं आने देतीं। यदि कोई भूले भटके उनमें पहुँच गया तो फिर उसे जीता लौटना कठिन हो जाता है। बमीठे के निवासी परस्पर एक दूसरे को अच्छी तरह पहचानते हैं। यदि मार्ग भूल जाने के कारण कोई चिउँटी महीनों के उपरान्त लौटे तो भी उस नगरी वाले तुरन्त उसे पहचान लेते हैं। परन्तु एक बमीठे के निवासी पास ही के दूसरे बमीठे के निवासियों से कोई सरोकार नहीं रखते।

अच्छा, चलिए, हम लोग किसी बमीठे के पास जाकर देखें तो सही कि चिउँटियाँ वहाँ क्या कर रही हैं। पहली ही नज़र में तो हमें उनका कोई कार्य्य-क्रम देख नहीं पड़ता, परन्तु जब हम ध्यान-पूर्वक देखते हैं तब मालूम होता है कि बहुत ही कम चिउँटियाँ ऐसी हैं जो अपना समय खेल-कूद और आमोद-प्रमोद में बिता रही हों। प्रायः सभी चिउँटियाँ किसी न किसी विशेष कार्य्य में लगी हुई हैं। उनका एक थोक तो किसी नियत मार्ग से जा रहा है, दूसरा थोक उसी से लौट रहा है, तीसरा किसी और तरफ़ को जा रहा है और चौथा वहाँ से वापिस आ रहा है। जो दल लौट रहे हैं उनके मुख में कोई न कोई चीज़ अवश्य है। कोई दल घास के दाने, कोई पत्तियों के टुकड़े, कोई शक्कर अथवा अन्न आदि के कण लिये आ रहा है, कोई शिकार करके कीड़े ला रहा है, कोई अपने घायल साथी को दल के ही मुँह में उठाये चला आ रहा है। किसी से यदि और कुछ नहीं बन पड़ता तो वह बोझा ढोने वालों का रास्ता ही साफ़ करता चला जाता है। कभी कभी दो चार चिउँटियाँ रास्ते के किनारे खड़ी होकर गप्पाष्टक सी करती भी देख पड़ती हैं। उस समय उनकी लम्बी मूँछें हिलती सी जान पड़ती हैं। इससे यह भास होने लगता है कि वे बहस कर रही हैं और उनमें वाद-विवाद की शक्ति है। पर खेद है, हम इतने सौभाग्यशाली नहीं कि उनकी भाषा समझ सकें—उनके अन्तरस्थ विचारों और हृदत बातों को जान सकें।

यह दृश्य तो वापस लौटने वाली चिउँटियों का आपने देखा। अब ज़रा बाहर जाने वाले दलों का तमाशा भी देखिए। लौटने वाली चिउँटियाँ बोझ के कारण कुछ धीरे चलती हैं, परन्तु इनकी चाल बड़ी तेज़ है। ये बड़ी तीव्र गति से जा रही हैं। अधिक-

तर चिउँटियाँ तो भोजन की अथवा घर बनाने की सामग्री की खोज में निकली हैं। पिपीलिका-नगरी में ग्वालिन चिउँटियाँ भी हैं। और, जब ग्वालिनें हैं तब गायें भी ज़रूर ही होनी चाहिए। हाँ, वे हैं भी। ग्वालिनें अपने विशेष मार्ग से चरागाह को जा रही हैं।

अच्छा तो ये चिउँटियों की गायें हैं कौन और रहती कहाँ हैं? पौधों के पत्तों पर प्रायः एक प्रकार की हरी मक्खी पाई जाती है। उसे माहू कहते हैं। ये वनस्पतियों का रस चूस चूस कर इकट्ठा करती हैं। जहाँ पर माहू बैठती है वहाँ गोंद के सदृश महीन रस सा लग जाता है। बस यही माहू चिउँटियों की गाय है। ग्वालिन चिउँटी जाकर अपनी मूछों से माहू की पीठ गुदगुदाने लगती है। तब माहू अपनी देह की दो नलियों से एक प्रकार का शर्बत सा छोड़ती है, जिसे ग्वालिन अपने शरीर की थैली में भर लेती है। यही शर्बत चिउँटियों के लिए दूध का काम देता है। इसी को लाकर ग्वालिन चिउँटी अपने बच्चों तथा अन्य चिउँटियों को पिलाती है।

चिउँटियों को यह शर्बत अत्यन्त प्रिय है। अतएव ये अपनी गायों की बड़ी सेवा करती हैं, जिससे वह उन्हें निरन्तर मिल सके। ये अन्य कीड़ों से माहू की रक्षा करतीं, उनके अण्डों को बमीठे में ले जाकर धूप, पानी और सर्दी से बचातीं और जब उन अण्डों से बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं तब उन्हें गोद में उठा कर नई नई कोपलों का भोजन कराने ले जाती हैं। खेतों में रहने वाली लाल-पीले रङ्ग की चिउँटियाँ इस काम में विशेष निपुण हैं।

प्रत्येक बमीठे में तीन प्रकार की अर्थात् (१) रानी (२) नर और (३) सेवक-चिउँटियाँ रहती हैं। रानी का डीलडौल सबसे बड़ा होता है। वह एक ही बमीठे में दो या तीन तक एक साथ रहती हैं। केवल अण्डे देना ही इनका काम है। इस काम से उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। इस कारण ये कभी [illegible] नहीं निकलतीं। इनकी सेवा शुश्रूषा के लिए [illegible] सेवक भी अलग रहते हैं। जब कहीं रानी [illegible] है तब रक्षा के लिए अर्दली भी पीछे पीछे जाते [illegible] यहाँ तक रानी की सेवा की जाती है कि [illegible] लेने का काम तक भी उसे नहीं करना पड़[illegible] कुछ सेवक अण्डों को उठा कर विशेष विशेष [illegible] में रख देते हैं और उनकी रक्षा करते रहते [illegible] यदि अण्डे सूखते दिखाई पड़ते हैं तो वे चाट [illegible] कर उन्हें गीले कर देते हैं। यदि कोठे में ग[illegible] अथवा सर्दी विशेष पड़ने लगती है तो वे [illegible] सुरक्षित स्थान में ले जाते हैं। बच्चा उत्पन्न होने [illegible] वह दाई के हवाले कर दिया जाता है।

चिउँटियों के बच्चे, अण्डों से निकल कर, [illegible] इल्ली का रूप ग्रहण करते हैं। इल्ली के [illegible] और एक छोटा सा मुख होता है। उसका [illegible] मुलायम और सफ़ेद होता है। इल्ली पड़ी [illegible] कुड़मुड़ाया करती है। भूख लगने पर अपना नन्हा [illegible] मुँह खोल देती है। दाई चिउँटी उसको खिला[illegible] पिलाती और चाटती रहती है। यदि दिन स्व[illegible] निरभ्र हुआ तो बमीठे के ऊपर ले जाकर [illegible] बच्चों को हवा खिलाती है। परन्तु यदि बादल [illegible] आयें अथवा कोई अपरिचित व्यक्ति पास आ ज[illegible] तो दाइयाँ इल्लियों को उठा कर भीतर पहुँ[illegible] देती हैं।

जब इल्ली कुछ बड़ी हो जाती है तब [illegible] अपने लिए कुसियारी तैयार करके उसमें बन्द [illegible] हो जाती है और जब तक चिउँटी का पूर्ण रूप [illegible] प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उससे निकलने [illegible] उद्योग नहीं करती। इस अवस्था को [illegible] अवस्था भी कहते हैं। दाइयों की देख-भाल [illegible] अवस्था में भी बन्द नहीं होती। समय आने [illegible] दाई कफ़न के धागों को धीरे धीरे काट कर [illegible]

बच्चे को बाहर निकालती है। तब वह बच्चा चिउँटी के रूप में आता है। उसके बलहीन रहने के कारण सेवकों को कुछ समय तक उसे खिलाना-पिलाना, घुमाना तथा रास्ता बताना पड़ता है। बल आ जाने पर उसको भी नगरी का कुछ न कुछ काम सौंप दिया जाता है।

सेवक-चिउँटी का सिर चिपटा और कमर बहुत पतली होती है। उसकी मूँछों के बीच में जोड़ होता है और काम पड़ने पर वह उसे झुका सकती है। कमर धागे के समान पतली होती है। किसी की कमर में एक और किसी की में दो गाँठें होती हैं। पङ्ख इनके कभी नहीं निकलते।

परन्तु रानी और नर के, बच्चपन से निकलते समय, चार चार अर्धपारदर्शक पङ्ख होते हैं। दिन साफ़ होने पर अथवा ऊमस अधिक होने पर बमीठे से इनके झुण्ड के झुण्ड निकल कर हवा में ऊँचे चले जाते हैं और कुछ देर तक नाच कूद इत्यादि क्रीड़ा करते हैं। हवा चलने से तितर-बितर होकर वे कहीं के कहीं चले जाते हैं। फिर पक्षी उन पर टूट पड़ते और उनका जीवन समाप्त कर देते हैं। नर-चिउँटी तो पक्षियों का अचूक शिकार हो जाती है; पर रानी चिउँटी कभी कभी बच जाती है। तब वह अपने घर आकर पङ्खों को नोच कर फेंक देती है, जिससे उस पर फिर कभी ऐसी आपत्ति न आ सके।

चिउँटियों की कई जातियाँ हैं। प्रायः सारे हिन्दुस्तान में चार प्रकार के चिउँटे पाये जाते हैं—यथा—(१) बड़ा काला चींटा, जो गोदामों तथा पंसारियों की दूकानों और मकानों में बहुतायत से पाया जाता है; (२) मध्यम काला चींटा, जिसे दुरकचिया कहते हैं और जो आर्द्र स्थानों को पसन्द करता है; (३) लाल-पीला चींटा, जो बाग़ीचों तथा जङ्गलों में रहता है और (४) घरेलू चिउँटी, जो छोटी लाल-काली अथवा रङ्ग बिरङ्गी होती है।

भिन्न भिन्न स्वभाव वाली चिउँटियाँ भी देखने में आती हैं। उदाहरण के लिए—ग़ुलाम बनाने वाली, लुटेरी तथा फ़सल उत्पन्न करने वाली आदि। ग़ुलाम बनाने वाली चिउँटियाँ दूसरों के बमीठों पर हमला करके वहाँ से इल्लियाँ और बच्चे उठा ले जाती हैं। फिर वे उन्हें पाल-पोस कर बच्चे होने देती हैं। इन्हीं बच्चों को ग़ुलाम बना कर वे उनसे अपनी सेवा कराती हैं। लुटेरी चिउँटियाँ बहुत छोटी होती हैं। खेत में रहने वाले लाल-पीले चिउँटों के बमीठों की दरारों में अड्डा जमा कर वे मौक़ा मिलते ही उन बेचारे के अण्डे और इल्लियाँ उठा लाती हैं और अपने अड्डों में घुस जाती हैं। चींटे क्रोध से आग बबूला होकर पीछा करते हैं। परन्तु लुटेरू-चींटियों के अड्डे होते हैं छोटे और सँकड़े; अतः वे उनमें घुसने नहीं पाते। तब बेचारे दाँत पीस कर रह जाते हैं। इधर ये लुटेरी चींटियाँ निडर होकर अपने खोटेपन का परिचय देती हैं। अर्थात् अण्डों तथा इल्लियों को खा जाती हैं।

परन्तु फ़सल उत्पन्न करने वाली चिउँटी इन सबसे विलक्षण होती है। यह दक्षिणी यूरोप, हिन्दुस्तान, तथा अमेरिका के टेक्सास प्रान्त में पाई जाती है। यह अपने बमीठे के पास पास की धरती साफ़ करके उसमें अपने खाने का चावल बो देती है। फ़सल आने पर यह उसे काट कर रख लेती है और उसके डंठलों को धरती से निकाल डालती है, जिससे नई फ़सल बोई जा सके।

चिउँटियों के विषय में एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है, पर यहाँ इतना ही लिखना बस है।

लज्जाशङ्कर झा

तथा स्वयं रामचन्द्रजी ने वनवास स्वीकार कर इस आदर्श का उदाहरण दिखाया है। गोसाईं तुलसीदासजी ने भी इसी कर्त्तव्य का उदाहरण दिखा कर हम लोगों को यह उपदेश दिया है कि—

परहित लागि तजै जो देही।
सन्तत सन्त प्रशंसहिं तेही॥

इतना होने पर भी हम लोग शान्ति के ऊपरी सुख में पड़ कर अपना कर्त्तव्य भूल गये, यहाँ तक कि कुछ समय के लिए हम लोगों ने आत्म-हित ही को जीवन का उद्देश मान लिया। अपने पूर्वजों के उपदेशों के विषय में हम लोगों की यह मति हो गई कि उनके वचन और उदाहरण केवल सुनने के लिए हैं—उनके अनुसार कार्य्य करना या तो आवश्यक नहीं है या बहुत कठिन है। इस प्रकार आत्म-हित में मग्न रहते रहते हम उसकी प्राप्ति के लिए दूसरों की हानि भी करने लगे और अपने साथियों के दुःखों का विचार न करके अपने को उनकी अपेक्षा अधिक सम्पन्न बनाने की चेष्टा में आनन्द मनाने लगे।

आत्म-त्याग की बुद्धि बहुधा विपत्ति के समय उत्पन्न होती है। किसी कवि ने ठीक कहा है कि—

विपति बराबर सुख नहीं जो थोरे दिन होय।
इष्ट-मित्र बन्धू जिते जानि परैं सब कोय॥

यथार्थ में विपत्ति ही मनुष्य के गुणों का प्रकाश करती है, सम्पत्ति तो उन्हें छिपा देती है। विपत्ति पड़ने पर साहस, स्वावलम्बन, सहनशीलता और आत्म-गौरव आदि गुण उत्पन्न होते हैं। जब दूसरों को हानि पहुँचा कर भी लोगों के स्वार्थ में हानि पहुँचने लगी तब उनकी आँखें खुलीं कि केवल एक मनुष्य के हित से जाति भर का हित नहीं हो सकता, और जाति के थोड़े ही लोगों की हानि से जाति भर को हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार की विपत्ति भोग कर लोग सावधान हो चले और अपने उत्कर्ष के साथ अपने साथियों के उत्कर्ष का उपाय भी सोचने लगे। धीरे धीरे उन लोगों में स्वार्थ की मात्रा घटने लगी और परमार्थ की मात्रा बढ़ने लगी।

लोगों के आत्म-त्याग से संसार का कल्याण होता है। यदि तुलसीदासजी साधु न होते और उस अवस्था में रामायण न लिख जाते तो आज "हिन्दी वालों" की क्या दुर्गति न होती! उन्हें धर्म-ज्ञान तो क्या भाषा-ज्ञान ही प्राप्त होना कठिन था। इसी प्रकार यदि हमारे ऋषि-मुनि प्राणों का मोह छोड़ कर वस्तुओं के गुणों की जाँच न करते तो आज हम कैसे जानते कि अमुक वस्तु विष और अमुक अमृत है। विषों की पहचान करते समय कितने लोगों ने अपने प्रिय प्राण न खोये होंगे! यदि वे यह विचार लेते कि हम इन बातों की खोज में अपने प्राण व्यर्थ क्यों खोवें तो आज हम लोगों को यह सुख कहाँ से प्राप्त होता जिसके मद में मत्त होकर हम उनके उपकारों को भूल रहे हैं और अपने भाइयों के हित के लिए आत्म-त्याग की आवश्यकता ही नहीं समझते। यह एक आत्म-त्यागी के आत्म-त्याग ही का फल है कि आज सैकड़ों विद्यार्थी अपने को "प्रेमचन्द्र-रायचन्द्र-छात्र" कहलाने का अभिमान करते हैं। यद्यपि दीन किसान अपना ही पेट पालने के लिए अन्न उत्पन्न करता है तथापि उसका यह काम न्याय की दृष्टि से परोपकार ही का है, क्योंकि यदि वह यह धन्धा छोड़ कर कोई दूसरा ही धन्धा करने लगे तो महलों में रहने वाले और मोटरों में बैठने वाले अपने पेटों में क्या भरें और फिर उनकी तोंद कहाँ से निकले!

जब मनुष्य अनजाने ही आत्म-त्याग करके संसार का बहुत सा हित-साधन कर सकता है तब जो लोग जान कर इस व्रत को धारण करते हैं उनके द्वारा कितना पर-हित होता है इस बात का अनुमान केवल वही लोग कर सकते हैं जिन्हें ईश्वर ने कर्त्तव्य-बुद्धि दी है। आनन्द का विषय है कि

हम लोग अब इस बात को समझने लगे हैं कि मनुष्य पशु नहीं है और उसे कमाने खाने के सिवा संसार में अपना मनुष्यत्व भी सिद्ध करने की आवश्यकता है। मनुष्य होकर जिसने संसार को यह न दिखा दिया कि हमारा जन्म संसार में अमुक काम के लिए हुआ है तो उसके मर जाने पर लोगों को उतना ही शोक होगा जितना राजा साहब की कोचवान के मरने पर होता है।

अच्छा, ते, अब भारतवर्ष में आत्म-त्याग की आवश्यकता क्यों है और उसका स्वरूप क्या होना चाहिए, इन दो बातों पर हमें विचार करना है। संसार में इतने काम, इतने प्रबन्ध और साथ ही इतने सङ्कट हैं कि यदि आधा संसार दूसरे आधे की सहायता करने में दिन-रात लगा रहे तो भी पूरा न पड़े। फिर भारतवर्ष में तो इन बातों की इतनी अधिकता है कि—

जीवन यद्यपि मिलें कई जीवन पर पूरे,
तो भी मम कर्त्तव्य-हेतु हैं सभी अपूरे।

यदि केवल एक शिक्षा-प्रचार ही का विषय उद्देश मान लिया जाय तो उनतीस करोड़ लोगों के लिए, जिनको सरकारी शिक्षा का सैाभाग्य प्राप्त नहीं होता, कम से कम तीन लाख शिक्षकों की आवश्यकता है। फिर इन तीस लाख शिक्षकों को तैयार करने के लिए कम से कम उतना ही रुपया चाहिए जितनी इस देश की अशिक्षित मनुष्य-संख्या है। यह एक मोटा हिसाब है और जिस काम के लिए यह गणित किया गया है वह सैकड़ों कामों में से एक है। इस रक़म का बहुत ही थोड़ा भाग स्वयं शिक्षकों अथवा शिक्षार्थियों से प्राप्त हो सकता है, इसलिए शेष अब देश के धनी लोगों से प्राप्त करना होगा। अब कुछ ऐसे लोगों की भी आवश्यकता है जो इन धनिकों को यह समझावें कि जब चार बड़े बड़े पदाधिकारियों को भोजन कराने में दो हज़ार रुपये ख़र्च करके उनकी कृपा से अपना गृह पवित्र करते हैं तब प्रति दिन दस तीन विद्यार्थियों को सीधा देने में आप की लक्ष्मी का क्षय न होगा। इस रीति से विचार करने पर प्रकट हो जायगा कि इस देश में सार्वजनिक कार्यों की संख्या एक हज़ार से कम न निकलेगी। इतने कामों के लिए यदि एक केवल दो हज़ार कार्य-कर्त्ताओं को पर्याप्त मान लें तो इतने लोगों को आत्म-त्याग करना पड़ेगा। तब हमारा कुछ सुधार और उद्धार हो सकेगा। ये सब कल्पित नहीं हैं, किन्तु देश की परिस्थिति के विचार से यथार्थ और महत्त्व-पूर्ण हैं। हम यहाँ पचीस ऐसे कामों की सूची देते हैं जिनमें प्रत्येक के अन्तर्गत कम से कम चार और काम निकलेंगे और जिनसे इस बात का पता लग जायगा कि देश में सचमुच आत्म-त्याग और आत्म-त्यागियों की बड़ी भारी आवश्यकता है—

(१) देहातों में वैद्य पहुँचाना।

(२) तीर्थों पर यात्रियों का कष्ट दूर कराना।

(३) रेलों में सवारियों की नियत संख्या की जाँच करना।

(४) पुलिस के अत्याचारों की ख़बर लगाना।

(५) पटवारियों के अन्यायों से किसानों को बचाना।

(६) साधुओं को पढ़ा लिखा कर उपयोगी बनाना।

(७) पढ़ी-लिखी दाइयाँ तैयार कराना।

(८) बाज़ारों में सड़ी-गली चीज़ों की बिक्री रोकना।

(९) दूकानदारों के नाप-तौल के बटखरों की जाँच करना।

(१०) अनाथ बालकों और विधवाओं के पालन-पोषण का प्रबन्ध कराना।

(११) गुण्डों और बदमाशों को दबाना।

(१२) तरुण लोगों को कुसङ्ग और कुमार्गों से बचाना।

(१३) होनहार दीन विद्यार्थियों की शिक्षा में सहायता दिलाना।

(१४) स्त्रियों की गालियाँ गाने की चाल रोकना।

(१५) बाल-विवाह, बहु-विवाह आदि के विरुद्ध चर्चा करना।

(१६) प्राचीन स्मृति-चिह्नों का जीर्णोद्धार कराना।

(१७) संस्कृत की सब विषयों की पुस्तकों का देशी भाषाओं में उल्था करना अथवा कराना।

(१८) वैद्यों और व्यापारियों के झूठे विज्ञापनों को बन्द कराना।

(१९) देशी भाषाओं में, और विशेष कर हिन्दी में, हानिकारक पुस्तकों की पोल खोलना।

(२०) अँगरेज़ी के देशी विद्वानों का मन अपनी मातृ-भाषा की ओर आकर्षित करना।

(२१) धनाढ्य लोगों को धन का सद्व्यय सिखाना।

(२२) जाति-भेद की अन्यायकारिणी निष्ठुरता को रोकना।

(२३) संस्कृत के शर्माओं को मातृ-भाषा का महत्त्व समझाना।

(२४) स्त्रियों और पुरुषों में व्यायाम की रुचि उत्पन्न करना।

(२५) लोगों को आत्म-त्याग की आवश्यकता बताना।

ये विषय किसी क्रम से नहीं दिये गये, तथापि इनसे कार्य्य की गुरुता अवश्य सिद्ध होती है। दो आदमियों की आवश्यकता केवल इसी काम के लिए है कि वे जन्म भर, समय समय पर, सार्व-जनिक कार्यों की सूची बनाते रहें और उनके लिए आत्म त्यागियों को उचित उपायों की सूचना देते रहें।

अब प्रश्न यह है कि इन सब कामों के लिए हज़ारों आत्म-त्यागी कैसे मिलेंगे और वे अपना काम किस रीति से आरम्भ करेंगे। यदि ध्यान से देखा जाय तो इतने बड़े देश में ये बातें कुछ भी कठिन नहीं हैं। केवल साधुओं की संख्या हमारे देश में इतनी अधिक है कि यदि ये लोग बाहरी अलख जगाना और नर्म्मदा की परिक्रमा करना छोड़ दें तो देश को अपने उपदेशों ही से बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकते हैं। इन लोगों में जो निरक्षर हैं उनकी शिक्षा के लिए अवश्य प्रबन्ध करना पड़ेगा, और इस काम के लिए धन की आवश्यकता होगी। पर सच्चा परिश्रम करने से धन की समस्या भी हल हो सकती है। आज भी देश में ऐसे कितने ही धनी मिलेंगे जो अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देश-हित के लिए देने को तैयार हैं। कई एक महन्त ही इतने धना-धीश हैं कि वे अपने आश्रित साधुओं की शिक्षा के लिए सब प्रबन्ध कर सकते हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कोई इन महन्तों को उच्च आदर्श की कल्पना करावे। तीर्थों पर नागों की पल्टनें देख कर किसको अनुमान न होता होगा कि ये लोग देश की सञ्चित शक्ति हैं, और किसको खेद न होता होगा कि यह शक्ति व्यर्थ ही नष्ट हो रही है।

दूसरे आत्म-त्यागी वे अनाथ बालक और बालि-कायें हो सकती हैं (देश में आत्म-त्यागिनी स्त्रियों की भी बड़ी आवश्यकता है) जो भीख माँग कर अपने को पाल रहे हैं और जो बड़े होने पर येन केन प्रकारेण अपना जीवन बिताते हैं। यदि इन्हीं लोगों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाय तो भारत की बहुत सी जन-संख्या अन्न-कष्ट से नष्ट न होगी और उस बची हुई संख्या से देश का कई बातों में हित होगा। यहाँ पर हमें यह बताने की आवश्यकता है कि देश-हित का कोई भी कार्य्य बिना कर्त्ता की पूर्ण शिक्षा के नहीं हो सकता और शिक्षा का यथार्थ उद्देश यही है कि मनुष्य संसार के शारीरिक, नैतिक और मानसिक कार्यों के योग्य हो जाय। आज कल शिक्षा का जो यह उद्देश मान लिया गया है कि लोग पढ़ लिख कर बड़े बड़े पद प्राप्त करें अथवा और किसी उपाय से खूब धन-संग्रह करें, यह देश का

केवल दुर्भाग्य है। यदि किसी को बड़ी नौकरी न करनी हो तो क्या वह पढ़े ही नहीं अथवा शिक्षा प्राप्त करके उसका कोई दूसरा उपयोग ही न करे ? क्या ही अच्छा हो यदि हमारे शिक्षित लोग संस्कृत में एम० ए० पास करें (परीक्षा पास करना केवल योग्यता का प्रमाण प्राप्त करना है) और फिर देहातियों को रामायण का पाठ सुना सुना कर उनका गृहस्थ-जीवन सुखी करें।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त कुछ लोगों को यह भी प्रण करना चाहिए कि हम केवल देश-हित के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे और संसारी आडम्बर व्यर्थ ही न बढ़ा कर किसी न किसी जन-समूह के निवारण में आजन्म परिश्रम करेंगे। यदि ये वकील या मुन्सिफ़ न होंगे तो उनके बदले कोई दूसरा आदमी उनका काम कर सकता है, परन्तु यदि ये आत्म-त्यागी न होंगे तो उनका स्थान लेने वाले कठिनाई से मिलेंगे। इसके विरुद्ध यदि वे अपने जीवन को देश का जीवन समझें तो उनका अनुकरण करने वाले भी उत्पन्न हो जायँगे, और, लोगों में कर्तव्य-बुद्धि की जागृति होने लगेगी। हाँ, यह अवश्य है कि उन्हें रेशमी कपड़े, स्वादिष्ट व्यञ्जन और मोटरें न मिलेंगी, पर इनके बिना वे अकाल-मृत्यु से न मर जायँगे। उन्हें कम से कम इस बात से तो सन्तोष होगा कि हमारी इस तुच्छ देह से करोड़ों मनुष्यों का कल्याण हो रहा है और इसी सन्तोष को उन्हें अपना धन समझना चाहिए। ऐसे लोग और और प्रश्नों के साथ कदाचित् एक यह भी प्रश्न करेंगे कि हम दिल्ली में तो रहेंगे, पर खायँगे क्या ? हाय ! इस खाने के प्रश्न ही ने हम लोगों को पशु बना दिया है। भाइयो, जब तुम में आत्म-त्याग की स्वाभाविक बुद्धि उत्पन्न होगी तब तुम्हें अपने पेट की छोटी सी थैली भर लेने का उपाय आप ही सूझ पड़ेगा, और नहीं तो तुम जिन लोगों की सेवा करोगे उनको तुम्हारे उदर-पोषण की चिन्ता अवश्य होने लगेगी। वे तुम्हें चुपड़ी न खिला सकेंगे तो रूखी-सूखी अवश्य खि[...] और सूखी रोटी शरीर को उतनी हानि नहीं [...] जाती जितनी चुपड़ी पहुँचाती है।

आत्म-त्यागियों की संख्या बढ़ाने का एक [...] उपाय यह है कि प्रत्येक कुटुम्ब, जिसमें मनुष्यों [...] संख्या इच्छा से भी अधिक है, देश-हित के [...] कम से कम एक व्यक्ति देवे। अन्य देशों में [...] मनुष्य लड़ाई के लिए बरजोरी लिये जाते हैं [...] उनका जीवन ही सन्दिग्ध रहता है, परन्तु देश[...] के कार्य्य में ऐसी आशङ्का बहुत ही कम है। [...] त्रिविध व्यथाओं का सामना अवश्य करना पड़े[...] पर घर में सुख से रहते हुए भी तो इन व्यथाओं [...] मुक्ति नहीं है। किसी किसी जाति में अनेक [...] यह मानता मानती हैं कि यदि हमारी कोख सुने [...] तो हम अपने जेठे बेटे को पीराजगिरि के अर्पण [...] देंगी। ऐसे लड़के माता की निष्ठुरता का [...] गीत गाते हुए देश विदेश (बारह वर्ष तक) [...] करते हैं और फिर कदाचित् पीराजगिरि से कुछ [...] अपने प्राण भी दे देते हैं। अब यदि यही माता[...] पीराजगिरि के बदले अपने देश की सेवा के [...] अपने लड़कों को अर्पण कर दें तो उनकी कोई ह[...] न हो और ईश्वर की दृष्टि में उनका प्रण-भङ्ग भी [...] हो। पर उन्हें यह समझाने वाला कौन है ? [...] कुटुम्ब में से देश-हित के हेतु एक आदमी के [...] जाने पर वंश-लोप होने का भी डर नहीं है और [...] बात का भी सुभीता नहीं है कि वह कुलभूमि में [...] कर वंश को कलङ्कित करेगा। उसे केवल इन [...] का प्रण कर लेना है कि हम भीष्म पितामह के [...] समान अपनी मातृभूमि के लिए आजन्म [...] रहेंगे और अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख न होवें।

मान लीजिए कि जिस प्रकार के आत्म-त्यागियों की आवश्यकता देश को है उस प्रकार के लोग मिल सकते हैं तो हमें उनकी तैयारी और काम

श्रीमान् युवराज प्रिन्स आव् वेल्स।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

करने की रीति पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले आत्म-त्यागी को अपने शरीर की उन्नति करना आवश्यक है। यदि वह निरोगी नहीं है तो वह थोड़े ही शारीरिक परिश्रम से थक जायगा अथवा अपना काम अधूरा ही छोड़ कर काल का ग्रास हो जायगा। ऐसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि उसने अपना कर्तव्य पूरा नहीं किया; क्योंकि उसने ईश्वर की दी हुई थाती की उचित रक्षा नहीं की। यथार्थ में व्यक्ति का आरोग्य देश की सम्पत्ति है और जो लोग स्वयं निरोगी रह कर निरोगी सन्तान उत्पन्न करते हैं वही ईश्वर और देश के सच्चे भक्त कहे जा सकते हैं। दूसरे तो केवल भू-भार हैं और अपनी मूर्खता से यह भार और भी बढ़ाते हैं। हट्टे कट्टे लोगों के सामने आततायी लोग भी एक बार दब जाते हैं। आत्म-त्यागी को अपनी देह की बढ़ती इस प्रकार करनी चाहिए कि दूसरे लोगों को भी अपनी शरीर-सम्पत्ति बढ़ाने का चाव हो। इसके साथ ही उसकी मानसिक शिक्षा भी उपयोगी की हो जिसमें वह अपने काम में औरों के परामर्श का आश्रित न रहे और अपनी विद्या तथा बुद्धि का उपयोग करके अपने कार्यों में आने वाले विघ्नों को दूर कर सके। फिर उसका नैतिक बल भी इतना बड़ा हो कि वह विघ्नों के भय से कभी अपने उद्दिष्ट पथ को न त्यागे, देश-हित के सामने अपने शरीर को तृणवत् समझे और जिस काम को उसने हाथ में लिया है उसे शरीर में प्राण रहते हुए पूर्ण करने की चेष्टा करे। राना प्रताप के समान चाहे वह जङ्गलों में भूखा फिरता रहे, पर अपने प्रण को न भूले। इस प्रकार तीनों शिक्षाओं से अलङ्कृत होकर जब वह कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होगा तब लोग यथार्थ में उसे अवतार समझेंगे और वह स्वयं अवतारी कार्य करेगा। उसे यह आवश्यक नहीं है कि वह सभी कामों में हाथ डाले, किन्तु एक ही काम को, जिसके लिए वह अपने को योग्य समझता है, अथवा उसकी तैयारी हुई है मन-वचन-कर्म से इस प्रकार करे कि उसका जीवन सफल हो जाय।

यदि इस प्रकार का कोई त्यागी अपने कार्य में लगा हुआ, दैवयोग से, शरीर त्याग दे—और इस प्रकार से देह त्यागना परम पुण्य है—तो उसके स्थान में तुरन्त किसी दूसरे त्यागी को, जो उसी काम के लिए तैयार हुआ है, उस काम का भार अपने ऊपर ले लेना चाहिए और उसे भी यह समझना चाहिए कि मेरा जन्म संसार में इसी काम के लिए हुआ है। इस प्रकार के त्यागियों की निरन्तर सहायता से वह काम एक दिन अवश्य पूरा होगा। जिस प्रकार कुटुम्ब का सङ्कट टालने के लिए कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति भर, निःस्वार्थ-भाव से, अपना सुख भूल कर, प्रयत्न करता है, उसी प्रकार देश-रूपी बड़े कुटुम्ब का उद्धार करने के लिए देशवासियों को आत्म-त्याग का व्रत धारण करना आवश्यक और उचित है। क्योंकि—

> है उदार चरितों को यह संसार।
> सचमुच में अपना ही प्रिय परिवार॥

ईश्वरदत्त शर्मा

हमारी हीनता।

(१)

कभी यही भारत स्वर्गधाम था,
　　अपूर्वता थी हर बात में यहाँ।
परन्तु है, आज स्वदेश की दशा
　　निकृष्ट, सन्तापमयी, व्यथामयी।

(२)

विवेक ने उद्यम ने विचार ने
　　हमें दिया है अब त्याग सर्वथा।
दिव्यता को यश को स्वधर्म को
　　बिना विचारे हमने किया विदा।

(३)

दयमयुता, सज्जनता, सुशीलता,
उदारता, प्रेम, परोपकारिता।
पवित्रता, संयम, सच्चरित्रता
कहाँ गये सदगुण वे सभी भले ?

(४)

विशेष था गौरव हिन्द-देश का;
कहाँ नहीं उज्ज्वल कीर्ति व्याप्त थी ?
दरिद्रता का अब राज्य है यहाँ;
विचित्र ही है इस देश की दशा।

(५)

सुबुद्धि-देवी सुख-शान्ति-दायिनी
विशुद्धता से करती प्रकाश थी।
विराजती है पर आज तो यहाँ
विमूढ़ता उन्मदता पिशाचिनी।

(६)

सुखा यथा थी प्रिय एकता हमें,
बँधे हुए थे सब एक सूत्र में।
परन्तु फैला अब मूढ़ है यहाँ
विनाशकारी विष वैर-फूट का।

(७)

विकास ऐसा निज गुण्य का रहा;
अकाल का नाम सुना नहीं गया।
कमी नहीं थी धन-धान्य की यहाँ;
स्वदेश के थे जन सर्वदा सुखी।

(८)

हुआ जहाँ भूरत भारतार्य था
वहीं अविद्या-तम छा रहा अहो!
पता नहीं है अब सद्विवेक का,
अभोध है अन्ध-परम्परा हमें।

(९)

विनाश उद्योग बिना सभी क्रिया;
प्रसिद्ध भारी निज भूल से हुआ।
विचार देखो इस विश्व में कहीं—
अनुद्यमी को सुख है मिला कभी।

(१०)

हितार्हित-ज्ञान-विहीनता तजो,
अभी मिटा दो सब भेद-भाव को।
करो सभी उन्नति कर्मवीर हो;
पुनः दिखा दो निज शक्ति विश्व को।

मोतीलाल

महाराजा जसवन्तसिंहजी के पत्र का खण्डन।

ई सन् १९ की सरस्वती में श्री महाराजा जसवन्तसिंहजी का औरङ्गज़ेब के नाम छपा है। मेरी समझ में महाराजा जसवन्तसिंहजी का नहीं है। महकमे तवारीख़, राज मारवाड़, से कप्तान पायलट साहब, एजीटेंट जोधपुर, ने इस विषय में पूछ पाछ की थी। तब यही लिखा गया था कि यह पत्र महाराजा जसवन्तसिंह का नहीं। यही जवाब उदयपुर के महकमे तवारीख़ से भी उनके नाम आया था। मैं दोनों जवाबों की नक़ल भेज कर आशा करता हूँ कि सरस्वती के पढ़ने वाले इससे असल बात जान जायँगे। यौरोपियन विद्वान विदेशी होने से कभी कभी सुनी सुनाई बातों के आधार पर ग़लतियाँ कर जाते हैं। राजपूताने के इतिहास जानने वालों को टाड-राजस्थान में ऐसी बहुत सी ग़लतियाँ नज़र आती हैं—

नक़ल नं० १

[राज मारवाड़ से रेज़िडेंट साहब के नाम]

साहब रज़ीडेंट बहादुर ने जो यह दरियाफ़्त फ़रमाया कि औरङ्गज़ेब बादशाह को मज़हबी मामले में जोधपुर के किस राजा ने अर्ज़ी लिखी थी सो इसका यह हाल है कि जो अर्ज़ी औरङ्गज़ेब को जज़िये की शिकायत में लिखी गई थी और जिसके वास्ते औरम ने अपनी तवारीख़ में लिखा है कि महाराजा जसवन्तसिंह ने लिखी थी सो यह बात ठ

नहीं मालूम होती। क्योंकि जज़िया औरङ्गज़ेब ने संवत् १७३६ में लगाया था और महाराजा जसवन्तसिंह का स्वर्गवास संवत् १७३५ में ही हो गया था।

४—जब महाराजा साहब की ख्यात* में भी कहीं ऐसा ज़िक्र नहीं है। जो उनकी ज़िन्दगी में हिन्दुओं पर जज़िया लगाया जाता तो ज़रूर उसका कुछ ज़िक्र उनकी ख्यात में होता। जैसे औरङ्गज़ेब ने उनकी ज़िन्दगी में मन्दिर गिराने शुरू किये थे तो उसका हाल उनकी ख्यात में लिखा है। उन्होंने इस बात पर एतराज़ भी किया था, जिससे औरङ्गज़ेब ने उनकी ज़िन्दगी में मन्दिर गिराना मौक़ूफ़ कर दिया था।

५—इस अर्ज़ी में जो औरङ्गज़ेब की सल्तनत की हालत लिखी है वैसी ख़राब हालत उसकी कभी महाराजा जसवन्तसिंहजी की ज़िन्दगी में क्या उनके बीस बरस पीछे तक भी नहीं हुई थी। यह हालत तो उसके अख़ीर वक़्त की मालूम होती है जब कि मरहठों का ज़ोर बहुत बढ़ गया था।

इन बातों से जाना जाता है कि यह अर्ज़ी महाराजा जसवन्तसिंह जी की लिखी हुई नहीं है। और किसी राजा ने लिखी होगी—४ जनवरी १८८९।

नक़ल नं० २

[मुंशी देवीप्रसाद के नाम]

आपने जो उस चिट्ठी के बारे में लिखा जो आलमगीर बादशाह के नाम जज़िये के बारे में लिखी गई थी, यह बात अर्मी साहब ने अपनी तवारीख़ में अच्छी तरह से लिख दी है। ओरम साहब ने अपनी तवारीख़ में महाराजा जसवन्तसिंह साहब का नाम ग़लती से लिखा है। क्योंकि महाराजा जसवन्तसिंह जी सन् १०८९ हिजरी में, जमरोद के थाने पर, छठी ज़ीक़ाद को गुज़र गये थे, और सन् १०९० में, १८ मोहर्रम को बादशाह आलमगीर अजमेर में आया और वहाँ से [illegible] को गया। तब रबिउल-अव्वल महीने के बीच में जज़िये का हुक्म जारी किया। उस हुक्म में लिखा है कि रबिउल-अव्वल की शुरू तारीख़ से जज़िया वसूल किया जावे। यह ज़िक्र मआसिर आलमगीरी में उसी ज़माने के मुवर्रिख़ ने लिखा है जिसके सामने ये बातें हुई थीं और जज़िया जारी होने पर हिन्दुस्तान में हलचल मच गई थी। महाराजा जसवन्तसिंहजी तब से जमरोद में भेजे गये कभी कोई बग़ावत की बात उनकी तरफ़ से पेश नहीं आई और न उनके पास इतनी जमीयत थी कि वे मुख़ालिफ़त करते। अगर उनकी ज़िन्दगी में वे ऐसा लिखना चाहते तो थाने से मारवाड़ में आकर लिखते, क्योंकि जमरोद के गिर्द लाहौर पशौर में बहुत सी बादशाही फ़ौजें मौजूद थीं। आप मुवर्रिख़ हैं। इस बात को ख़ुद सोच सकते हैं। ज़ियादह लिखना ज़रूर नहीं—११ दिसम्बर १८८८ पोस वदी ३ संवत् १९४५—मुक़ाम उदैपुर मेवाड़।

द० क० रा० श्या० (दस्तख़त कविराजा श्यामलदास)

दीगर यह है कि आप मुवर्रिख़ और मेरे दोस्त हैं सो किसी बात तारीख़ी में खेंच न रखें, क्योंकि इस ज़माने के मुवर्रिख़ लोग खेंच को पसन्द नहीं करते हैं, इनसाफ़ दोस्त हैं। इख़लासन और मोहब्बत सलाह के तौर पर लिखा गया है।

अब मैं उस अर्ज़ी का अनुवाद देता हूँ जिसे ओरम और टाड साहब ने अपनी अपनी तवारीख़ों में दिया है। आप देखेंगे कि इस अर्ज़ी का हेडिंग कुछ और ही है—

अर्ज़ी राजा सेवा की जज़िये की मौक़ूफ़ी के वास्ते हज़रत ख़ुल्द-मकान* के हुज़ूर में।

ईश्वर की कृपाओं और बादशाही अनुग्रहों का, जो चाँद-सूरज से भी अधिक प्रकाशमान हैं, धन्यवाद करके हज़रत शहंशाह के हुज़ूर में अर्ज़ करता है कि यद्यपि यह शुभ-चिन्तक अपने अभाग के मारे हुज़ूर से दूर रहता आया है। परन्तु सेवा और सहायता के कामों में जैसा कि चाहिए तमाम वक़्त और तमाम जगह हाज़िर है और शुभचिन्तक की अच्छी ख़िदमतें और नेक कोशिशें बादशाहों, अमीरों, ख़ानों, हिन्दुस्तान के राजाओं, शाहों, ईरान, तूरान, बलख़, बदख़्शान, चीन और माचीन की रियासतों बल्कि सातों द्वीपों के रहने वालों और जल थल के मुसाफ़िरों पर

* इतिहास को मारवाड़ में ख्यात कहते हैं।

*यह औरङ्गज़ेब की उपाधि मरने के पीछे हुई। इससे यह जाना जाता है कि यह ऊपर की पङ्क्ति पीछे से नक़लों में लिखी गई है। बाबू कार्तिकप्रसाद के लिखे हुए शिवाजी के जीवन-चरित में जो नक़ल छपी है उसमें भी ख़ुल्दमकान ही लिखा है।

ज़ाहिर और रोशन हैं। शायद आपके समन्दर जैसे मन के ऊपर भी उसकी कुछ परछाईं पड़ी होगी। इस वास्ते मैं अपनी सेवाओं के सम्पादन करने और हुज़ूर का ध्यान दिलाने के लिए कई बातें ख़ैरख़्वाही की राह से जिनमें सब छोटे बड़ों की कुशल है, अर्ज़ करता हूँ कि शुभचिन्तक पर मुहिम के सबब से जो बहुत सा रुपया व्यर्थ व्यय हुआ है और ख़ज़ाना ख़ाली हो गया है उसके वास्ते हुज़ूर ने यह बात ठहरा दी है कि हिन्दुओं से जज़िये के नाम से रुपया जमा कर सल्तनत का सामान दुरुस्त करें।

हज़रत सलामत! देशों के जीतने (दिग्विजय) की नींव रखने वाले स्वर्गवासी जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ने ५२ बरस बड़ी स्थिरता से राज्य किया और भिन्न भिन्न प्रकार के समुदायों अर्थात् ईसाइयों, मूसाइयों, दाऊदियों, मोहम्मदियों, फ़लकियों, नसीरियों, दहरियों, ब्राह्मणों और सेवड़ों के साथ सुलहकुल (सबसे मेल मिलाप रखने) के शिष्टाचार का बर्ताव करके जगद्गुरु की पदवी से प्रसिद्ध हुए। इसी बड़े प्रभाव और प्रताप से वे जिधर देखते थे उधर ही विजयलक्ष्मी आगे आकर खड़ी हो जाती थी।

स्वर्गवासी नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह २२ बरस तक राजसिंहासन पर रह कर मन प्रजा में और हाथ कामों में रखते थे और हज़रत शाहजहाँ स्वर्गवासी साहिबे किरान सानी शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहाँ बादशाह ने ३२ बरस तक राजमुकुट धारण करके सब लोगों को अपनी कृपा-छाया में रक्खा और अपने शुभकारी राजत्व-काल में नेकनामी प्राप्त की।

इन बड़े बादशाहों के तेज, प्रताप और भाग्य का अनुमान इसी से कर लेना चाहिए कि बादशाह आलमगीर * ग़ाज़ी उनकी राजनीति के पालन और पोषण में असमर्थ हैं। जज़िया लगाने को तो वे भी समर्थ थे, परन्तु परमात्मा की कृपा-छाया सारे ही मत मतान्तरों पर समान जान कर मत-द्वेष का विचार अपने मन में नहीं आने देते थे। और उनके समय में सब सृष्टि सुख-चैन से निश्चिन्त रह कर आनन्दपूर्वक अपने अपने कामों में लगी रहती थी। हज़रत के राज में तो बहुत से क़िले हाथ से जाते रहे हैं। बाक़ी भी जाते रहेंगे, क्योंकि मेरी तरफ़ से राज के बिगाड़ने और उजाड़ने में कमी नहीं रक्खी जाती है। प्रजा पाँवों से रौंदी जाती है। प्रत्येक परगने का राज-कर घट रहा है। लाख की जगह १००० और १००० की जगह १० ही रह गया है। जब कंगाली और लाचारी ने बादशाही दौलतख़ाने ही में घर कर लिया हो तो दूसरे लोगों का क्या हाल हो। इस समय के बड़े बड़े अमीरों का बुरा हाल है। फ़ौज बिगड़ रही है। व्यापारी चिल्ला रहे हैं। मुसलमान रो रहे हैं। हिन्दू भुन रहे हैं, बहुत से आदमी रोटी-कपड़े को तरसते हैं। क्या अँधेर है! अमीर थप्पड़ों से अपने गाल लाल करके छोटे-बड़े लोगों में आते हैं। बादशाही जवाँमर्दी क्योंकर यह सहन कर सकती है कि संसार भर के दफ़्तरों में यह लिखा जावे कि हिन्दुस्तान का बादशाह फ़क़ीरों, बैरागियों, सन्यासियों और ग़रीबों के छप्परों में हाथ डाल कर जज़िया लेता है, और मँगतों की थैली पर मुठमर्दी करता है, और तैमूर के वंश की मान-मर्यादा को धूल में मिलाता है।

हज़रत सलामत! जो यथार्थ रूप से क़ुरान का विचार करें तो ख़ुदा (परमात्मा) रब्बुल आलिमीन (दुनिया के सब लोगों को पालनेवाला) है। रब्बुल मुसलमीन (मुसलमानों ही का पालने वाला) नहीं है। कुफ़्र और इसलाम (काफ़िरों* और मुसलमानों के मत) दोनों बराबर के जोड़ हैं। यदि मस्जिद है तो वहाँ भी उसी की याद में बाँग मारते हैं और जो मन्दिर है तो वहाँ भी उसी की याद में शङ्ख बजाते हैं। किसी के दीन और धर्म का द्वेष करना क़ुरानशरीफ़ से विमुख होना है और सनातन की रेखा को मिटा देना है। शेर—"तू अच्छा बुरा जो कुछ देखे उस पर नामंज़ूरी का हाथ मत रख। कारीगरी का जो कोई दोष कहता है वह दोष कारीगर का ही है"।

न्याय की बड़ी कचहरी में तो हिन्दुस्तान का जज़िया अनुचित है। हाँ हुकूमत के स्वार्थ से ठीक हो तो हो सकता है! पहले तो ऐसा नहीं था। इसको आप विचार लें और किसी के मार्ग में विघ्न न डालें। हज़रत के राज में तो पत्थर भी फटे जाते हैं, आकाश की कील पूँछे। पहले जज़िया राजाओं से

---

* औरंगज़ेब की आलमगीर पदवी बादशाह होने के बाद की है।

* जो लोग मुसलमान नहीं हैं उनको मुसलमान लोग काफ़िर कहते हैं।

लिखी हुई मालूम नहीं होती। क्योंकि इसी में लिखा है कि पहले जज़िया राणाओं और राजाओं से लें फिर मुझ से लेना।

टाड ने यह भी लिखा है कि मेरा मुन्शी उदयपुर में असल चिट्ठी से नक़ल करके लाया। परन्तु टाड ने न तो उस नक़ल को अपनी तवारीख़ में दिया और न ख़ुद तरजुमा किया। सर जेम्स् रास के तरजुमे को ही नक़ल कर दिया, जो कई जगह इस अर्ज़ी से नहीं मिलता। उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कविराज श्यामलदास ने भी अपने हिन्दी इतिहास वीरविनोद में यह अर्ज़ी नहीं लिखी, केवल इसका उल्लेख करके टाड-राजस्थान के भाग १ पृ० ४०० से उसके यहाँ सर जेम्स् रास का तरजुमा, भाषा बदल कर, अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग के पृष्ठ २०० में दिया है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि यह अर्ज़ी न तो राजसिंह ने लिखी थी और न उदयपुर में इसकी असल प्रति ही मौजूद है। यदि होती तो कविराज ज़रूर उसकी नक़ल वीरविनोद में देते, जैसा कि राजसिंह की एक और अर्ज़ी की नक़ल औरङ्गज़ेब के फ़रमानों की नक़लों सहित देदी है।

मुन्शी ने न जाने कौन सी नक़ल लेकर कर्नल टाड को दिखाई। कहीं सर जेम्स् रास के तरजुमे की ही फ़ारसी न करली हो।

टाड-राजस्थान में जो तरजुमा है उसमें राणा की जगह राजसिंह का नाम लिखा है। परन्तु जब तक तीसरी नक़ल न मिले तब तक पक्की नहीं मानी जा सकती।

इस अर्ज़ी की पहली पंक्ति में राजा सेवा के आगे औरङ्गज़ेब के बदले ख़ुल्दमकान लिखा है। इससे सूचित होता है कि यह पंक्ति औरङ्गज़ेब के जीते जी नहीं, मरे बाद लिखी गई है। क्योंकि मरे पीछे ही औरङ्गज़ेब को ख़ुल्दमकान लिखते थे, जैसे कि अकबर को अर्श-आशियानी और जहाँगीर को जन्नतमकानी। क्या आश्चर्य है जो सेवा का नाम भी पीछे से जोड़ा गया हो और अर्ज़ी औरङ्गज़ेब के जीते जी गुमनाम ही आई हो, जैसा कि एल्फ़िंस्टन साहब की कल्पना है। क्योंकि सिवाजी स्वतन्त्र राजा था। उसके प्रधान मन्त्री अपने आज्ञापत्रों में उसके लिए औरङ्गज़ेब की बराबरी और बादशाही की दावेदारी के सबूत लिखते थे। अतएव सम्भव है वह औरङ्गज़ेब को अर्ज़ी लिखना पसन्द न करता हो और शायद न भी लिखता हो। भूषण कवि ने भी कहा है—

"कहाँ पातशाही कहाँ दावा सिवराज को?"

परन्तु नीचे लिखी बातें ऐसी हैं, जिन पर सोच वि[चार] करने से इस अर्ज़ी लिखने वाले के लिए दूसरे व्यक्तियों की अपेक्षा राजा सेवा का नाम ही ठीक और उचित जान पड़ता है—

(१) पहले तो इस अर्ज़ी का हेडिंग ही इस सम्मति का पोषक है।

(२) ग्रांट डफ़ साहब भी मराठों की साखी पर अपने इतिहास में इस अर्ज़ी को राजा सेवा की ही लिखी स्वीकार करते हैं।

(३) राजा सेवा जज़िया लगने से १३ महीने पीछे २४ † रबीउल-आख़ीर सन् १०९१ को मरा था। राजसिंह वग़ैरह राजाओं के समान उससे भी जज़िया माँगा गया होगा जिसका जवाब यह अर्ज़ी है।

(४) यह लिखना कि मेरी मुहीम के मारे बहुत सा रा[ज्य] बरबाद हुआ और ख़ज़ाना ख़ाली होगया, जिससे आप[ने] सल्तनत का सामान दुरुस्त करने के लिए हिन्दुओं पर जज़िया लगाया है, राजसिंह की अपेक्षा राजा सेवा से अधिक सम्ब[न्ध] रखता है। किस लिए कि जज़िया लगने से पहले राजसिं[ह] पर तो कोई मुहीम गई न थी, पर राजा सेवा पर बड़े [बड़े] अमीर और राजा जयसिंह तथा जसवन्तसिंह वग़ैरह फ़ौ[जें] ले लेकर जाया ही करते थे।

(५) यह लिखना भी कि बहुत से क़िले आपके हा[थ] से जाते रहे हैं और मुल्क लुट रहा है, राजा सेवा के सि[वा] और किसी का काम नहीं हो सकता था। मानों इस अनोखी युक्ति से अपने दिग्विजय और लूट खसोट की याद दिलाता था। क्योंकि औरङ्गज़ेब की बादशाही में यदि कुछ क्षति हुई और कमज़ोरी आई थी तो वह राजा सेवा का ही काम था।

(६) अन्त में जो कुछ बातचीत की गई है वह भी राजा सेवा के ही स्वतन्त्र स्वभाव, विषम बरताव और मराठों के इतिहास से बहुत कुछ मिलती हुई है।

(७) अकबर से लेकर शाहजहाँ तक जो 'सुलहकुल' अर्थात् सबसे मेल मिलाप रखने की राजनीति के

---

* अर्थात् स्वर्गगामी।

† जेठ बदी ११, संवत् १७३७। १४ मई १६८०। परन्तु एल्फ़िंस्टन ने ५ अप्रैल लिखा है।

बयान करके औरङ्गज़ेब की राजक्रिया के दोष दिखाये गये हैं वे भी राजा सेवा की समझ वीरता और निडर नीति से अधिक मेल खाते हैं।

अब हमारी समझ में ऊपर लिखी दलीलों से यह अर्ज़ी राजसिंह वग़ैरह की अपेक्षा राजा सेवा की तरफ़ से लिखी जानी विशेष करके *समभावी और अनुमान* में बैठती हुई बात है। क्या आश्चर्य जो इसी ने अपने देश और धर्म के हित के निमित्त लिखी हो।

यह सच है कि इसमें लिखने वाले के नाम-धाम की तरह तिथी, महीना और संवत् भी नहीं लिखा। परन्तु इतिहास के लेखे से इसकी तिथी जज़िया लगने के दिन से १२ महीने के अन्दर अन्दर तारीख़ १ रबीउल-अव्वल सन् १०९० हिजरी, वैशाख सुदि ३ संवत् १७३६ से १२ रबीउल आख़िर १०९१ हिजरी, जेठ बदी ११, १७३७ तक होनी चाहिए।

अन्त में इतिहास-विद्या के विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि वे भी अपने अपने निश्चय और शोध के अनुसार पुराने दस्तावेज़ों को जानने की इच्छा रखने वालों के लाभ, विश्वास, और सूचना के निमित्त अवश्य अपनी राय लिखें।

देवीप्रसाद (जोधपुर)

प्रभावती का पत्र—
महाराना राजसिंह के नाम।

(१)

वीरशिरो, सर्वोपमा के योग्य, वर !
हो विनय स्वीकृत हमारी आर्तिकर।
　　हो रही असहाय अबला आज है,
　　आप ही के हाथ में अब लाज है।

(२)

अमृत-रस को काग चखना चाहता,
सिंहिनी को स्यार रखना चाहता।
　　हंसिनी पर काग का अनुराग है,
　　दनुज लेना चाहता मख-भाग है।

(३)

आर्य-मंडल मध्य रमणी-रत्न हा !
यवन लेना चाहता कर यत्न हा !
　　मान रक्खा जिसे शाहंशाह है—
　　आज उसको ही हमारी चाह है।

(४)

यह रही उसकी कठिन दुर्नीति है,
ईश की भी कुछ न उसको भीति है।
　　सैन्य उसकी से गिरा यह कोट है,
　　बस हमारे धर्म ही पर चोट है।

(५)

सत्य ही क्या वह मुझे ले जायगा ?
बेगमों के महल में पहुँचायगा ?
　　नीच नर मुझ को वहाँ छिपवायगा ?
　　शाह क्या सुख पायगा ? मुसकायगा ?

(६)

भूल है, यह बात होने की नहीं,
कुलवती की लाज जा सकती कहीं !
　　शक्ति क्या जो मुझे जीवित पा सके,
　　धर्म पर आघात वह पहुँचा सके।

(७)

प्राण दूँगी वहाँ जाऊँगी न मैं,
शाह की बेगम कहाऊँगी न मैं।
　　प्राप्ति मेरी है उसे सस्ती कहाँ !
　　पा सकेगा वह न छाया भी यहाँ।

(८)

चित्त से मैं वर चुकी हूँ आप को,
प्राण-पति मैं कर चुकी हूँ आप को।
　　तज सकूँगी क्या कभी यह प्रण भला ?
　　जीव चाहे क्यों न यह जावे चला !

(९)

शत्रुओं की कीर्ति सुन कर भी अहो—
क्यों न हृदयेश्वर बनाती मैं, कहो !
　　पर तुम्हारे हृदय की क्या चाह है ?
　　चाह है मेरी, न किंवा चाह है ?

(१०)

"आप को क्या वीर-वर मेरी पड़ी"—
चित्त में चिन्ता यही है हर घड़ी।
　　किन्तु दीन-दयालु ! स्वामी सम, अहो !—
　　रख न सकते क्या मुझे ? जो हो कहो।

(११)
हो गया सो हो गया, क्या सोच है ?
हृदय से अब तज दिया सङ्कोच है।
आप ही आयी हुई हूँ इस लिए—
धर्म तो बचना किसी विध चाहिए।

(१२)
अग्निमयी सा आज मेरा दाह है;
दाह ही मेरे लिए [illegible] है।
हरिकेश समान सत्वर आइए,
लाज, धर्म, बचाइए, अपनाइए।

(१३)
आप ने भी सुधि न ली मेरी कहीं—
सत्य ही तो प्राण रहने के नहीं!
प्रबल आशा आप की है लग रही,
कामना कल्याण की है जग रही।

(१४)
और क्या इससे अधिक अब मैं कहूँ,
उचित है जो मौन ही मैं हो रहूँ।
पर प्रभो! तुम मौनता गहना नहीं,
चुप पड़ कर शान्त हो रहना नहीं।

(१५)
ध्यान लाना वीरता की ओर भी;
और कुल की धीरता की ओर भी।
भाव भय का चित्त में लाना नहीं;
शत्रु-सेना से न डर जाना कहीं।

(१६)
पूर्वजों की कीर्त्ति को फैलाइयो;
शान्ति-सुख की नींद में मत आइयो।
विमल बापा-वंश की सन्तान हो,
राजराणा, वीर, प्रतिभावान हो।

(१७)
जानती हूँ, यवन-सेना है बड़ी;
नीति है उसकी कुटिल एवं कड़ी।
पर जहाँ है धर्म, जय भी है वहाँ,
पापियों को फल न मिलता है कहाँ ?

(१८)
अन्त में फिर भी बताती हूँ तुम्हें,
आप मन के फिर सुनाती हूँ तुम्हें।
हो गई यदि देर आने में यहाँ—
धर्म मेरे को बचाने में यहाँ—

(१९)
तो प्रथम ज्यों पद्मिनी सम नारियाँ—
धर्म पर हैं मर चुकीं सुकुमारियाँ।
हर सहूँगी मसी पथ से ताप को,
पाप और कलङ्क होगा आप को।

(२०)
हो गई हो धृष्टता जो कुछ कहीं—
(क्योंकि मन ही इस समय स्थिर है नहीं)
तो उसे निज हृदय में मत धारियो,
प्रार्थना स्वीकारियो, स्वीकारियो।

(२१)
शत्रुओं का नाश होवे जिस तरह,
शत्रु-सेना-नाश होवे जिस तरह—
पथ वही अवलम्ब करके आइयो;
हर्ष-पूर्वक वीरता दिखलाइयो।

(२२)
यदि न मेरी प्रार्थना स्वीकार हो,
करुण-रस का हृदय में सञ्चार हो—
तो कृपा कर काम इतना कीजियो,
'हाँ—नहीं' का शीघ्र उत्तर दीजियो।

(२३)
पल हमारा वर्ष के सम कट रहा,
हृदय का उन्माद पल पल बढ़ रहा।
और मत नैराश्य-नद में डालियो,
ध्यान करियो, धर्म अपना पालियो।

रसिकप्रसाद गुप्त

मवेशियों का बीमा।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ फ़ी सदी ७१, ८० आदमी प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से कृषि से सम्बन्ध रखते हैं। दिनों दिन भारतवर्ष की आर्थिक दशा बुरी होती जाने से अन्य व्यवसायी भी अपना पैतृक काम छोड़ छोड़ कर कृषि की ओर झुक रहे हैं। दस वर्ष पहले जो अन्न

जुलाहा था और जिसकी मलमल की क़दर विदेशी भी करते थे आज वह न जुलाहा है और न किसी जुलाहे का नौकर, बल्कि जेठ-बैसाख की धूप में खेत में काम करने वाला एक मामूली मज़दूर। खेतों की उत्पादन-शक्ति का ह्रास दिनों दिन हो रहा है। उधर मज़दूरों की संख्या धीरे धीरे बढ़ती जाती है। यदि यही क्रम कुछ और दिनों तक जारी रहा और इसे दूर करने का समुचित और समयानुकूल प्रबन्ध न हुआ तो हमारी बड़ी दुर्दशा होगी। तब वह अवस्था उपस्थित होगी जब मातायें बच्चा जनने से हिचकेंगी। आबादी का कम होना राजनैतिक दृष्टि से कभी अच्छा नहीं कहा जा सकता। इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतीय सुशिक्षित जन-समुदाय इस विषय पर विशेष ध्यान दे और कृषि में भिन्न भिन्न सुधारों की ज़रूरत है उन्हें करने के लिए सन्नद्ध-परिकर हो जाय। भारतवर्ष में कच्चे माल से व्यवहार की वस्तुयें बनाने की बड़ी आवश्यकता है। हमारी जो जो कारीगरी नष्ट-प्राय हो रही है उसमें जान डालने की कोशिश की भी ज़रूरत है। राजनैतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से प्रत्येक देश को आवश्यक वस्तुयें स्वयं उत्पन्न करना चाहिए, जिससे समर आदि के सदृश विपत्तियों में उसे दूसरे देशों का मुँह न ताकना पड़े। कम से कम उन आवश्यकीय वस्तुओं का पैदा होना, प्रत्येक देश के लिए, अनिवार्य होना चाहिए जिनके बिना जीवन-यात्रा नहीं हो सकती। इस दृष्टि से कृषि-कार्य, जिस तरह भारतवर्ष के प्राचीन व्यवसायों में अब तक प्रधान रहा है उसी तरह, भविष्यत् में भी रहेगा। इसलिए कृषि की उन्नति के साधनों को हमें ढूँढ़ निकालना चाहिए और उन्हें सब तरह से पुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी आर्थिक वस्तु के उत्पादन के लिए, चाहे वह कच्चा माल हो चाहे तैयार किया हुआ, तीन प्रधान साधनों की आवश्यकता होती है—(१) भूमि, (२) मिहनत और (३) पूँजी।

इस लेख में मैं एक विशेष प्रकार की पूँजी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। कच्चे माल की उत्पत्ति के लिए हल आदि के अतिरिक्त बैलों, घोड़ों और गायों की भी ज़रूरत रहती है। खेत जोतने के लिए और अनाज ढोने आदि के लिए मवेशियों की बड़ी ज़रूरत पड़ती है। इसलिए इनकी तन्दुरुस्ती पर हमारा ध्यान हमेशा रहना चाहिए जिससे ये पूरा काम कर सकें। पर, दुर्भाग्य-वश, जैसे अन्य साधनों की अवस्था शोचनीय हो रही है वैसेही यहाँ इस तीसरे साधन की भी अवस्था सन्ताप-कारिणी है।

मवेशियों को हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि उनके योग्य भोजन और उनकी बीमारियों के इलाज का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उससे कृषक परिचित किये जायँ। पर एक तो उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं। दूसरे नये बैल आदि ख़रीदने में उन्हें कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतएव निस्सन्देह ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे वे कृषि-योग्य मवेशियों के मरने पर—जो भारतवर्ष में साधारण बात है—नये मवेशी आसानी से ख़रीद सकें। ग़रीब होने और सदा बनियों के चङ्गुल में फँसे रहने के कारण ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर उन्हें बड़ी कठिनाई का मुक़ाबला करना पड़ता है। इसे दूर करने लिए, कई वर्षों से, योरप के देशों की देखा-देखी हमारे देश में भी सहयोग-समितियाँ स्थापित की गई हैं। उनसे किसानों की अवस्था का कुछ सुधार भी अवश्य हुआ है। अब मवेशियों के बीमे की ओर लोगों का ध्यान गया है और भारतवर्ष के दो एक प्रान्तों में—विशेष कर ब्रह्मदेश में—मवेशी-बीमा-समितियाँ खुल गई हैं।

जिस प्रकार लोग अपनी ज़िन्दगी, माल-असबाब और गोदाम आदि का बीमा कराते हैं ठीक उसी तरह का बीमा मवेशियों का भी होता है। भेद केवल

इतना ही है कि जो कम्पनियाँ ऊपर लिखे पदार्थों का बीमा करती हैं वे अपने लाभ के लिए करती हैं और मदरास में मवेशियों के बीमे के लिए जो सहयोग-समितियाँ खोली गई हैं वे उन्हीं के लाभ के लिए हैं जो बीमा कराते हैं; न कि उनके लिए जो उसका प्रबन्ध करते हैं। जब तक इस प्रकार की समितियाँ नहीं खुली थीं तब तक कृषकों को नये बैल ख़रीदने के लिए सहयोग-ऋण-समितियों से ऋण लेना पड़ता था। पर इनके स्थापित हो जाने से उन्हें ऋण नहीं लेना पड़ता; बल्कि बीमा किये हुए बैल के मरने पर बीमे की रक़म उन्हें मिल जाती है। उसमें कुछ रुपये और मिला कर वे नया बैल ख़रीद सकते हैं।

जिस प्रकार गाँवों में कुछ स्थानीय उत्साही और देशभक्त सज्जनों के प्रयत्न से सहयोग-ऋण-समितियाँ खोली जाती हैं उसी प्रकार ये समितियाँ भी खोली जाती हैं। पहले गाँव के कुछ लोग इसे शेयर (हिस्से) के रूप में रुपये देकर पूँजी एकत्र करते हैं। इस पूँजी पर उन्हें मुनासिब ब्याज मिलता है। उन्हीं में से कुछ लोग या उसी गाँव के अन्य उत्साही सज्जन समिति के अवैतनिक कार्य-कर्ता नियत किये जाते हैं। वे बातों से, वक्तृताओं से और यदि सम्भव हुआ तो छोटी छोटी पुस्तकें और लेख आदि से कृषकों को मवेशियों का बीमा कराने के फ़ायदे बताते हैं। उनमें से जो अधिक समझदार होते हैं उन पर ज़ोर डाला जाता है कि वे अपने मवेशियों का बीमा करायें और उससे उन्हें जो फ़ायदे हों उन्हें वे अपने साथियों को बतलायें। इस प्रकार जैसे जैसे बीमा कराने वालों की संख्या बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे समिति की शक्ति भी बढ़ती जाती है।

जो कृषक अपने मवेशियों का बीमा कराते हैं उन्हें ज़िन्दगी या और किसी चीज़ का बीमा कराने वालों की तरह प्रत्येक तीसरे महीने एक नियत रक़म समिति को देनी पड़ती है। उसे प्रीमियम कहते हैं। मदरास में बीमा किये गये मवेशियों के दाम का फ़ी सदी पाँच, प्रीमियम रूप में, कृषकों को देना पड़ता है। पर यह परिमाण स्थानिक अवस्थाओं और आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है। जहाँ मवेशियों का दाम साधारण और उनकी उम्र अधिक होती है वहाँ इससे कम प्रीमियम से भी काम चल सकता है। पर प्रीमियम इतना कम न होना चाहिए कि बीमा किये गये पशु के शीघ्र मर जाने से समिति को अधिक हानि उठानी पड़े। साथ ही इस तरह का भी एक नियम होना चाहिए कि जब तक दो बार प्रीमियम कृषक न दे ले तब तक उसे मवेशी के मरने पर भी बीमे की पूरी रक़म न दी जाय; बल्कि उसमें से कुछ अधिक मिले जितनी उसने प्रीमियम के रूप में दी हो। बीमे की रक़म मदरास में मवेशी के दाम के दो तिहाई के बराबर होती है। मवेशी का मूल्य स्थानीय कमिटी आँकती है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि मवेशी किस उम्र से किस उम्र तक बीमा किये जायँ। मदरास में चार वर्ष की उम्र में बीमा शुरू होता है और बारहवें वर्ष समाप्त हो जाता है। कहीं कहीं इससे भी कम उम्र के मवेशी बीमे लायक़ समझे जाते हैं। उनका बीमा दूसरे या तीसरे वर्ष में भी किया जा सकता है। उम्र का बन्धन रखने का कारण यह है कि बहुत कम या बहुत ज़ियादह उम्र में मनुष्य की तरह पशु भी कमज़ोर होते हैं। अतएव साधारणतः उनके मर जाने का भय रहता है। यदि कम उम्र में बीमा किया जाय तो समिति को अनावश्यक हानि उठाने का डर रहता है। साधारण तौर पर बीमे का सब से अच्छा समय पाँच से, चार से दस बारह वर्ष तक है। इस समय पशु प्रायः हृष्ट पुष्ट होते हैं। अतएव कृषक को प्रीमियम देने में

कठिनाई नहीं पड़ती और समिति को भी हानि उठाने का भय नहीं रहता।

प्रायः देखा गया है कि मवेशियों का बीमा हो जाने पर उनके मालिक उनकी तन्दुरुस्ती पर यथोचित ध्यान नहीं देते। वे सोचते हैं कि मवेशियों के मर जाने पर उन्हें बीमे की रक़म अवश्य ही मिल जायगी। इसलिए समिति को ध्यान रखना चाहिए कि कृषक अपने मवेशियों की तन्दुरुस्ती का ख़याल रखते हैं या नहीं। यदि वे जान-बूझ कर बेपरवाही करते हों तो उन्हें धमकी देनी चाहिए। पर जहाँ ऐसा डर नहीं है वहाँ मवेशियों की उम्र की वृद्धि के साथ साथ उनका मूल्य बढ़ने के कारण प्रीमियम की रक़म भी बढ़ सकती है। तीसरे चौथे वर्ष से सातवें आठवें वर्ष तक मवेशी का मूल्य बढ़ता है। इससे कृषक को उससे अधिक लाभ होता है और वह अधिक प्रीमियम दे सकता है। पर जब पशु की उम्र ढलने लगती है तब वह उतना उत्पादक नहीं रह जाता। अतएव कृषक भी उतना प्रीमियम देने में समर्थ नहीं होता। इसलिए कितने ही अर्थ-शास्त्रियों का कहना है कि प्रत्येक छः महीने पर मवेशी का मूल्य आँका जाय और उसके अनुसार कृषक से प्रीमियम लिया जाय।

ऊपर कह आये हैं कि कृषक, बीमा कराने के बाद, मवेशियों की तन्दुरुस्ती पर बहुधा यथेष्ट ध्यान नहीं देते। इसलिए यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऐसी हालत में उन्हें बीमे की रक़म देना मुनासिब होगा या नहीं। बात यह है कि समिति के अनुसन्धान करने पर यदि यह मालूम हो जाय कि कृषक की बेपरवाही से पशु की मृत्यु हुई है तो उसे बीमे की रक़म न देना ही मुनासिब होगा, पर इस तरह की समितियों को लोकप्रिय बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सच्चे कृषक को इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि बीमारी अथवा और किसी साधारण कारण से उसके मवेशी के मर जाने पर उसे बीमे की रक़म पूरी मिलेगी। हिन्दुस्तान में जितने पशु रोगों से मरते हैं उतने और किसी कारण से नहीं। इसलिए यहाँ, समितियों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए, इस बात की ज़रूरत है कि यदि इसका प्रमाण मिल जाय कि कृषक ने मवेशियों की तन्दुरुस्ती पर यथेष्ट ध्यान दिया है तो रोगों से मवेशियों के मरने पर भी, उसे बीमे की पूरी रक़म दी जाय। जब तक ऐसा न होगा तब तक ये समितियाँ न चल सकेंगी। हाँ, यदि कृषक ने बेपरवाही की हो अथवा मवेशी भूल भटक जाने से मर गया हो तो समिति उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं।

ब्रह्मदेश में इन समितियों का एक नियम यह कि सहयोगी-ऋण-समिति का ही मेम्बर बीमा वाली समितियों का मेम्बर हो सकता है। यह नियम अच्छा होने पर भी निर्दोष नहीं। इससे लाभ यह है कि पहली समिति का मेम्बर होने के कारण उसे पहले पहल मवेशी ख़रीदने के लिए रुपया क़र्ज़ मिल जाता है और दूसरी का मेम्बर होने से उसके मर जाने पर फिर नया पशु ख़रीदने के लिए उसे नवीन ऋण लेना नहीं पड़ता। पर इसमें दोष यह है कि जिन कृषकों के पास चार पैसे हैं और जो अपने मवेशियों का बीमा कराना चाहते हैं वे इसके फ़ायदे से वञ्चित रहते हैं। यद्यपि ये समितियाँ सधन कृषकों के लिए नहीं, ये तो निर्धनों के लिए हैं। और ऐसों ही की संख्या भारतवर्ष में अधिक है। इसलिए नई समितियाँ यदि यह नियम बनावें भी तो विशेष हानि नहीं।

सबसे बड़ी और विचारणीय बात यह है कि जब तक ये समितियाँ लोकप्रिय होकर नहीं चल निकलतीं तब तक घाटा होने पर उसे पूरा करने का क्या प्रबन्ध किया जा सकता है? जब तक इनके फ़ायदे कृषकों को मालूम नहीं, दोपरों से ही काम चल जाने की आशा करना दुराशा मात्र है। सर-

इतना ही है कि जो कम्पनियाँ ऊपर लिखे पदार्थों का बीमा करती हैं वे अपने लाभ के लिए करती हैं और ब्रह्मदेश में मवेशियों के बीमे के लिए जो सहयोग-समितियाँ खोली गई हैं वे उन्हीं के लाभ के लिए हैं जो बीमा कराते हैं, न कि उनके लिए जो उसका प्रबन्ध करते हैं। जब तक इस प्रकार की समितियाँ नहीं खुली थीं तब तक कृषकों को नये बैल ख़रीदने के लिए सहयोग-ऋण-समितियों से ऋण लेना पड़ता था। पर इनके स्थापित हो जाने से उन्हें ऋण नहीं लेना पड़ता, बल्कि बीमा किये हुए बैल के मरने पर बीमे की रक़म उन्हें मिल जाती है। उसमें कुछ रुपये और मिला कर वे नया बैल ख़रीद सकते हैं।

जिस प्रकार गाँवों में कुछ स्थानीय उत्साही और देशभक्त सज्जनों के प्रयत्न से सहयोग-ऋण-समितियाँ खोली जाती हैं उसी प्रकार ये समितियाँ भी खोली जाती हैं। पहले गाँव के कुछ लोग इसे शेयर (हिस्से) के रूप में रुपये देकर पूँजी एकत्र करते हैं। इस पूँजी पर उन्हें मुनासिब ब्याज मिलता है। उन्हीं में से कुछ लोग या उसी गाँव के अन्य उत्साही सज्जन समिति के अवैतनिक कार्य्य-कर्त्ता नियत किये जाते हैं। ये बातों से, पत्रकारों से और यदि सम्भव हुआ तो छोटी छोटी पुस्तकें और लेख आदि से कृषकों को मवेशियों का बीमा कराने के फ़ायदे बताते हैं। उनमें से जो अधिक समझदार होते हैं उन पर ज़ोर डाला जाता है कि वे अपने मवेशियों का बीमा करायें और उससे उन्हें जो फ़ायदे हों उन्हें वे अपने साथियों को बतलायें। इस प्रकार जैसे जैसे बीमा कराने वालों की संख्या बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे समिति की शक्ति भी बढ़ती जाती है।

जो कृषक अपने मवेशियों का बीमा कराते हैं उन्हें ज़िन्दगी या और किसी चीज़ का बीमा कराने वालों की तरह प्रत्येक तीसरे महीने एक नियत रक़म समिति को देनी पड़ती है। इसे प्रीमियम कहते हैं। ब्रह्मदेश में बीमा किये गये मवेशियों के दाम का फ़ी सदी पाँच, प्रीमियम रूप में, कृषकों को देना पड़ता है। पर यह परिमाण स्थानिक अवस्थाओं और आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है। जहाँ मवेशियों का दाम साधारण और उनकी उम्र अधिक होती है वहाँ इससे कम प्रीमियम से भी काम चल सकता है। पर प्रीमियम इतना कम न होना चाहिए कि बीमा किये गये पशु के शीघ्र मर जाने से समिति को अधिक हानि उठानी पड़े। साथ ही इस तरह का भी एक नियम होना चाहिए कि जब तक दो चार प्रीमियम कृषक न दे ले तब तक उसे मवेशी के मरने पर भी बीमे की पूरी रक़म न दी जाय, बल्कि उतनी से कुछ अधिक मिले जितनी उसने प्रीमियम के रूप में दी हो। बीमे की रक़म ब्रह्मदेश में मवेशी के दाम के दो तिहाई के बराबर होती है। मवेशी का मूल्य स्थानीय कमिटी आँकती है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि मवेशी किस उम्र से किस उम्र तक बीमा किये जायँ। ब्रह्मदेश में चार वर्ष की उम्र में बीमा शुरू होता है और बारहवें वर्ष समाप्त हो जाता है। कहीं कहीं इससे भी कम उम्र के मवेशी बीमे लायक़ समझे जाते हैं। उनका बीमा दूसरे या तीसरे वर्ष में भी किया जा सकता है। उम्र का बन्धन रखने का कारण यह है कि बहुत कम या बहुत ज़ियादह उम्र में मनुष्य की तरह पशु भी कमज़ोर होते हैं। अतएव साधारणतः उनके मर जाने का भय रहता है। यदि कम उम्र में बीमा किया जाय तो समिति को अनावश्यक हानि उठाने का डर रहता है। सरसरी तौर पर बीमे का सब से अच्छा समय औसतन चार से दस बारह वर्ष तक है। इस समय पशु प्रायः हृष्ट-पुष्ट होते हैं। अतएव कृषक को प्रीमियम देने में

कठिनाई नहीं पड़ती और समिति को भी हानि उठाने का भय नहीं रहता।

प्रायः देखा गया है कि मवेशियों का बीमा हो जाने पर उनके मालिक उनकी तन्दुरुस्ती पर यथोचित ध्यान नहीं देते। वे सोचते हैं कि मवेशियों के मर जाने पर उन्हें बीमे की रक़म अवश्य ही मिल जायगी। इसलिए समिति को ध्यान रखना चाहिए कि कृषक अपने मवेशियों की तन्दुरुस्ती का ख़याल रखते हैं या नहीं। यदि वे जान-बूझ कर बेपरवाही करते हों तो उन्हें धमकी देनी चाहिए। पर जहाँ ऐसा डर नहीं है वहाँ मवेशियों की उम्र की वृद्धि के साथ साथ उनका मूल्य बढ़ने के कारण प्रीमियम की रक़म भी बढ़ सकती है। तीसरे चौथे वर्ष से सातवें आठवें वर्ष तक मवेशी का मूल्य बढ़ता है। इससे कृषक को उससे अधिक लाभ होता है और वह अधिक प्रीमियम दे सकता है। पर जब पशु की उम्र ढलने लगती है तब वह उतना उत्पादक नहीं रह जाता। अतएव कृषक भी उतना प्रीमियम देने में समर्थ नहीं होता। इसलिए कितने ही अर्थ-शास्त्रियों का कहना है कि प्रत्येक छः महीने पर मवेशी का मूल्य आँका जाय और उसके अनुसार कृषक से प्रीमियम लिया जाय।

ऊपर कह आये हैं कि कृषक, बीमा कराने के बाद, मवेशियों की तन्दुरुस्ती पर बहुधा यथेष्ट ध्यान नहीं देते। इसलिए यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऐसी हालत में उन्हें बीमे की रक़म देना मुनासिब होगा या नहीं। बात यह है कि समिति के अनुसन्धान करने पर यदि यह मालूम हो जाय कि कृषक की बेपरवाही से पशु की मृत्यु हुई है तो उसे बीमे की रक़म न देना ही मुनासिब होगा, पर इस तरह की समितियों को लोकप्रिय बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सच्चे कृषक को इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि बीमारी अथवा और किसी साधारण कारण से उसके मवेशी के मर जाने पर उसे बीमे की रक़म पूरी मिलेगी। हिन्दुस्तान में जितने पशु रोगों से मरते हैं उतने और किसी कारण से नहीं। इसलिए यहाँ, समितियों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए, इस बात की ज़रूरत है कि यदि इसका प्रमाण मिल जाय कि कृषक ने मवेशियों की तन्दुरुस्ती पर यथेष्ट ध्यान दिया है तो रोगों से मवेशियों के मरने पर भी, उसे बीमे की पूरी रक़म दी जाय। जब तक ऐसा न होगा तब तक ये समितियाँ न चल सकेंगी। हाँ, यदि कृषक ने बेपरवाही की हो अथवा मवेशी भूल भटक जाने से मर गया हो तो समिति उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं।

ब्रह्मदेश में इन समितियों का एक नियम यह कि सहयोगी-ऋण-समिति का ही मेम्बर बीमा वाली समितियों का मेम्बर हो सकता है। यह नियम अच्छा होने पर भी निर्दोष नहीं। इससे लाभ यह है कि पहली समिति का मेम्बर होने के कारण उसे पहले पहल मवेशी ख़रीदने के लिए रुपया क़र्ज़ मिल जाता है और दूसरी का मेम्बर होने से उसके मर जाने पर फिर नया पशु ख़रीदने के लिए उसे नवीन ऋण लेना नहीं पड़ता। पर इसमें दोष यह है कि जिन कृषकों के पास चार पैसे हैं और जो अपने मवेशियों का बीमा कराना चाहते हैं वे इसके फ़ायदे से वञ्चित रहते हैं। यद्यपि ये समितियाँ सधन कृषकों के लिए नहीं, ये तो निर्धनों के लिए हैं। और ऐसों ही की संख्या भारतवर्ष में अधिक है। इसलिए नई समितियाँ यदि यह नियम बनावें भी तो विशेष हानि नहीं।

सबसे बड़ी और विचारणीय बात यह है कि जब तक ये समितियाँ लोकप्रिय होकर नहीं चल निकलतीं तब तक घाटा होने पर उसे पूरा करने का क्या प्रबन्ध किया जा सकता है? जब तक इनके फ़ायदे कृषकों को मालूम नहीं, दोषरों से ही काम चल जाने की आशा करना दुराशा मात्र है। सर-

कार के सिवा ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिससे हम इस विषय में सहायता की प्रार्थना कर सकें। प्रारम्भ में सरकार को ही ऐसी समितियों को स्थापित करने में आर्थिक सहायता तब तक देनी चाहिए जब तक वे मेम्बरों की सहायता से चल न निकलें।

सुपार्श्वदास गुप्त, बी०ए०

विविध विषय।

१—भारतीय शिक्षा का वार्षिक विवरण।

गवर्नमेंट आफ़् इंडिया अब हर साल एक वार्षिक विवरण प्रकाशित करती है। उसमें लिखा रहता है कि भारत में शिक्षा की क्या दशा रही। १९१४—१५ की शिक्षा का विवरण अभी हाल में निकला है। उसकी मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

१९१४—१५ में शिक्षा-प्रचार के लिए कुल कम ११ करोड़ रुपया ख़र्च हुआ। इस देश की आबादी यदि ३१ करोड़ मानी जाय तो फ़ी आदमी कोई ४३ आने शिक्षा के लिए ख़र्च किया गया। और देशों के मुक़ाबले में यह ख़र्च बहुत कम है। किस तरह की शिक्षा के लिए कितना रुपया ख़र्च हुआ, इसका हिसाब इस प्रकार है—

कालेज की शिक्षा के लिए—९१ लाख, माध्यमिक शिक्षा के लिए—२ करोड़ ७८ लाख, प्रारम्भिक शिक्षा के लिए—२ करोड़ ९९३ लाख। बाक़ी रुपया और प्रकार की शिक्षा में ख़र्च हुआ। जो ख़र्च पड़ा उसका कितना फ़ी सदी फ़ीस, दान और चन्दे से वसूल हुआ, वह भी सुन लीजिए—

कालेज-सम्बन्धिनी शिक्षा का—४४ फ़ी सदी

माध्यमिक शिक्षा का—९८३ „

प्रारम्भिक शिक्षा का—२१ „

इसे बाद देकर जो कुछ बचा वह भी सब का सब सरकारी ख़ज़ाने से नहीं आया। डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों का दिया हुआ रुपया भी उसमें शामिल है। अतएव शिक्षा में जो ख़र्च पड़ता है उसका बहुत कुछ अंश गवर्नमेंट को अन्य मार्गों से मिल जाता है, कुल ख़र्च उसी को नहीं उठाना पड़ता।

जिस साल का यह विवरण है उसमें कुल विद्यालयों की संख्या १,८२,०२९ और कुल छात्रों की संख्या ७४,७८,४११ थी। १९१३—१४ में छात्रों की संख्या ७२,१८,१७० थी। अर्थात् गत वर्ष उनकी संख्या में कोई ७० हज़ार छात्रों की कमी हो गई। इस कमी का औसत १३ फ़ी सदी पड़ा।

चाहिए था कि कुछ वृद्धि होती, पर हुई कमी। इसका कारण गवर्नमेंट यह बताती है कि १९१३—१४ में देशी रियासतों के छात्रों की संख्या भी जोड़ दी गई थी। पर इस वर्ष हिसाब से कुछ देशी रियासतों के स्कूल निकाल दिये गये हैं। अतएव जो कमी दिखाई देती है उसे कमी न समझिए। यथार्थ में छात्रों की संख्या घटी नहीं, बढ़ी ही है। अस्तु। परन्तु फिर भी तो स्कूल जाने योग्य उम्र के लड़कों और लड़कियों में से केवल फ़ी सदी १८३ को शिक्षा मिली; बाक़ी के ८१३ शिक्षा से वञ्चित ही रहे।

जिन ७४,७८,४११ छात्रों को शिक्षा मिली उनमें ११,२९,४३९ लड़कियाँ थीं। इनका औसत फ़ी सदी कुल ९ पड़ा। अर्थात् पढ़ने योग्य १०० लड़कियों में से केवल ९ को शिक्षा मिली। यह भी ग़नीमत है। जहाँ स्त्रियों को शिक्षा देना लोग अब तक अपना फ़र्ज़ ही न समझते थे वहाँ ११ लाख लड़कियों का मदरसे जाना थोड़ा नहीं। पर एक बात असन्तोष-जनक है। १९१३—१४ में कोई १० हज़ार लड़कियाँ बढ़ी थीं, परन्तु गत वर्ष सिर्फ़ ४७,२४७ बढ़ीं। लड़कियों के सब से अधिक स्कूल बङ्गाल में और शिक्षा पाने वाली लड़कियों की सब से अधिक संख्या मदरास में थी। स्त्री-शिक्षा में हमारा प्रान्त मदरास, बम्बई, बङ्गाल, बिहार, पञ्जाब और मध्यदेश से पीछे रहा। यहाँ केवल ६९ हज़ार लड़कियों को शिक्षा मिली।

प्रारम्भिक मदरसों की संख्या यद्यपि बङ्गाल में सब से अधिक थी तथापि छात्रों की संख्या मदरास में ही और प्रान्तों से अधिक रही। हिसाब नीचे देखिए—

प्रान्त	मदरसों की संख्या	छात्रों की संख्या
मदरास—	१६,११०	११,११,८०

बम्बई—	५,६२६	६,३४,७९८
मदरास—	२८,६६२	१०,४७,२९२
संयुक्तप्रान्त—	१०,६७३	६,७६,२४७

संयुक्त-प्रान्त में केवल पौने दो लाख लड़कों ने प्रारम्भिक शिक्षा पाई। यहाँ के डाइरेक्टर साहब कहते हैं—"The general increase is kept down by a falling off, both in School and Scholars, in various districts." अर्थात् यहाँ अनेक ज़िलों में प्रारम्भिक मदरसों की भी संख्या घटी है और विद्यार्थियों की भी। इससे सिद्ध है कि गवर्नमेंट आव् इंडिया के बहुत रुपया देने और प्रान्तिक गवर्नमेंट के भी बहुत कुछ ख़र्च करने पर भी इस प्रान्त की निरक्षरता में यथेष्ट कमी नहीं हो रही। इसका कारण अधिकारियों की शिथिलता और कुप्रबन्ध के सिवा और क्या हो सकता है?

हिन्दू-लड़कों की संख्या फ़ी सदी ४·७ घट गई और मुसल्मान-लड़कों की फ़ी सदी १½ बढ़ गई। विवरण के लेखक का कथन है कि देशी रियासतों के लड़कों की संख्या हिसाब में नहीं जोड़ी गई। इसी से हिन्दू-लड़कों की संख्या में कमी हो गई है। पर क्या देशी रियासतों के मदरसों में मुसल्मान लड़के नहीं पढ़ते? उनकी संख्या भी तो नहीं जोड़ी गई। फिर उनमें क्यों कमी नहीं हुई? मुसल्मान छात्रों की संख्या १९१३—१४ में केवल १६,६६,४४६ थी। १९१४—१५ में बढ़ कर वह १७,९९,४२१ हो गई। सबसे अधिक वृद्धि बङ्गाल में हुई। ख़ुशी की बात है, हमारे मुसल्मान भाई शिक्षा-प्राप्ति की ओर विशेष दत्तचित्त हैं। उन्होंने बहुत शोरोगुल मचा कर बम्बई-प्रान्त में उर्दू पढ़ाने के लिए अलग दरजे खुलवाये हैं। गवर्नमेंट का कथन है कि इन दरजों से बहुत कम मुसल्मानों ने लाभ उठाया। वहाँ के दक्षिणी भाग के मुसल्मान कहते हैं कि उर्दू हमें न चाहिए, हम हमारी भाषा में ही शिक्षा ग्रहण करेंगे। विवरण में यह भी लिखा है कि महादेश के स्पेशल (विशेष) उर्दू-स्कूलों में भी बहुत ही कम मुसल्मान लड़के जाना चाहते हैं। क्योंकि वे वहीं उत्पन्न हुए हैं और उनमें से कितने ही महादेशवासियों ही की सन्तान हैं। अर्थात् उनकी मातृभाषा महादेश की ही भाषा है, उर्दू नहीं। अच्छा तो ये उर्दू के मदरसे शोभा ही के लिए रहने दीजिए। उर्दू का नाम तो वहाँ बना रहेगा। मुसल्मानों के लिए यह क्या कम सन्तोष की बात होगी?

९—रायबरेली में प्रारम्भिक शिक्षा।

सूबे अवध में एक ज़िला रायबरेली है। यह ज़िला शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। किसी किसी तहसील में तो बहुत ही कम मदरसे हैं। आप कोसों चले जाइए, मदरसे के दर्शन न होंगे। परन्तु, सन्तोष की बात है, अब यहाँ भी प्रारम्भिक शिक्षा की दशा सुधरने के लक्षण दिख रहे हैं। १९१५—१६ की मिडिल परीक्षा में २०६ लड़के शामिल हुए थे। उनमें से १४७ पास हुए। अर्थात् फ़ी सदी ७१ लड़के कामयाब हुए। इस परीक्षा में, गत पाँच वर्षों में, फ़ी सदी कितने लड़के पास हुए, इसका हिसाब नीचे दिया जाता है—

सन्	१९११—१२	१९१२—१३	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६
लड़कों की फ़ी सदी संख्या	४०	६२	७३	६४	७१

इससे स्पष्ट है कि चार वर्षों से यहाँ शिक्षा का पहले से अच्छा प्रबन्ध है। यह बात पास होने वाले लड़कों की संख्या के लिहाज़ से ही नहीं, परीक्षा में शामिल होने वाले लड़कों की संख्या के लिहाज़ से भी सूचित होती है। परीक्षा देने और पास होने वाले दोनों प्रकार के लड़कों की संख्या में वृद्धि हो रही है। नीचे के नक़्शे से मालूम होगा कि गत मिडिल-परीक्षा में लखनऊ डिवीज़न में हरदोई को छोड़ कर सबसे अधिक लड़के यहीं पास हुए हैं। औसत के लिहाज़ से तो यह ज़िला डिवीज़न भर में सबसे श्रेष्ठ रहा—

के अतिरिक्त अनाज भी उसके बोज बोने से उसका यह रङ्ग नहीं जाता। यदि कई रङ्गों की कपास सर्वत्र पैदा होने लगे तो बड़ा लाभ हो। कपड़ों पर बनावटी रङ्ग चढ़ाने की ज़रूरत ही न रहे। रुई से सूत तैयार किया और सब मिलों में दे दिया। बस रङ्ग बिरङ्गा कपड़ा तैयार हो लीजिए। कृत्रिम रङ्ग में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं जिनका असर कपड़ों पर बुरा पड़ता है। उससे कपड़ों की मज़बूती कम हो जाती है। सब कहीं रङ्गीन कपास की खेती होने पर यह त्रुटि दूर हो जायगी।

५—विन्सेंट स्मिथ के इतिहास की एक बात।

विन्सेंट स्मिथ साहब का नाम अँगरेज़ी जानने वालों के लिए नया नहीं। उन्होंने अँगरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है—Early History of India—यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है। प्राचीन भारतवर्ष के विषय में जितनी पुस्तकें आज तक लिखी गई हैं उनमें से इस पर विद्वानों की विशेष श्रद्धा है। तथापि, इस पुस्तक की भी कुछ बातों के विषय में मत भेद है। इसके तृतीय संस्करण का पृष्ठ ३१० देखिए। उसमें लिखा है कि हर्ष की मृत्यु हो जाने पर भारतवर्ष में फिर अराजकता हो गई। लोगों ने ग़दर मचा दिया। सब अपनी अपनी सत्ता बढ़ाने लगे। स्मिथ साहब के मूल वाक्य ये हैं—When tho wholesalo despotiam of Harsha terminated by his death, India instantly returned to her normal condition of anarchial autonomy. पर इस बात को रायबहादुर चिन्तामण विनायक वैद्य, एम० ए०, एल्-एल्० बी० नहीं मानते। आप नामी संस्कृतज्ञ और इतिहासवेत्ता हैं। अपने एक लेख में आप कहते हैं कि स्मिथ साहब का यह कहना ठीक नहीं। ऐसी बात वही कह सकता है जो प्राचीन भारतवर्ष को एक देश—एक ही राजा द्वारा शासित देश—समझता हो। अर्थात्—जिसका यह ख़याल हो कि भारत की राजनैतिक त्रुटियों को दूर करने का एक मात्र उपाय एकतन्त्र-राज-पद्धति है वही ऐसी बात कह सकता है। पर ऐसे लोगों को याद रखना चाहिए कि वर्तमान समय को छोड़ कर भारतवर्ष कभी एक राजा के अधीन नहीं रहा। हाँ, जाति, धर्म्म और परम्परागत रूढ़ियों की दृष्टि से, भले ही वह एक देश मान लिया जाय, पर राजनैतिक दृष्टि से, कम से कम प्राचीन भारतवर्ष, एक देश नहीं रहा। प्राचीन भारत में कितने ही छोटे छोटे राज्य थे। वे प्रायः आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। ऐसी स्थिति को अराजकता कहना अनुचित है।

यूरप और भारतवर्ष की स्थिति की परस्पर तुलना करने से दोनों में साम्य देख पड़ता है। यूरप से रूस को निकाल डालिए। ऐसा करने से योरप और भारत की जन-संख्या और क्षेत्र-फल प्रायः बराबर हो जायगा। योरप की प्रजा भी एक ही जाति—आर्य्य जाति—की और एक ही धर्म्म को मानने वाली है। ह्वेनसाङ्ग नाम के चीनी प्रवासी के वर्णन से स्पष्ट है कि सातवीं सदी में भारत में छोटे मोटे कोई ७० राज्य थे। योरप में भी सातवीं सदी में इससे कम राज्य न थे। स्वयं इँगलेंड ही ७ राज्यों में विभक्त था। फ्रांस और जर्मनी की तो बात ही जाने दीजिए। वह समय ही ऐसा था। उस समय क्या भारत और क्या योरप, कहीं भी बड़े बड़े राज्य स्थापित ही न हो सकते थे। योरप के भी शासकों में परस्पर लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। योरप का इतिहास ही इसका साक्ष्य दे रहा है। योरप की इस स्थिति को क्या कोई अराजकता कह सकता है? अच्छा, और सुनिए। योरप के कई नरेशों के मरने पर उनके राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गये। पर इससे क्या कोई यह कह सकता है कि योरप में अराजकता हो गई थी? इस समय भी तो योरप में कितने ही छोटे मोटे राज्य हैं और वे आपस में लड़ा भी करते हैं। पर किसी की हिम्मत नहीं होती कि वे इसे अराजकता कहें। बात यह है कि लोग प्राचीन भारत को वृथा ही एक राजा के अधीन समझ लेते हैं। इसी से ऐसी ऐसी भूलें हो जाती हैं।

आशा है, इतिहास-प्रेमी वैद्य महोदय के इस कथन पर विवेचना-पूर्वक विचार करेंगे।

६—टाइप-राइटर की अद्भुत उन्नति।

अधिकांश पाठकों ने टाइप-राइटर नाम की मशीन अवश्य ही देखी होगी। सभी बड़े बड़े दफ़्तरों और कचहरियों आदि में उसकी खटखट सुनाई देती है। इस मशीन की सहायता से लेख, चिट्ठियाँ और निमन्त्रण-पत्र इत्यादि, जो चाहो, छापे के अक्षरों में तत्काल लिखते चले जाओ। इससे काम भी बहुत जल्द होता है और सफ़ाई भी ख़ूब रहती

है। पहले इस मशीन से सिर्फ़ अँगरेज़ी ही लिखी जाती थी। पर, अब, ऐसी मशीनें भी बन गई हैं जिनसे देवनागरी, फ़ारसी और अरबी के अक्षरों में भी इच्छानुसार लेख आदि लिखे जा सकते हैं।

जब यह मशीन पहले पहल निकली तब इसमें कितने ही दोष थे। महँगी भी बहुत थी। परन्तु, धीरे धीरे, इसके प्रायः सारे दोष दूर हो गये। दाम भी इसके अब इतने कम हो गये हैं कि थोड़ी आमदनी के आदमी भी इसे ले सकते हैं। कुछ मशीनें तो अब ऐसी भी बन गई हैं जो पाकेट में रह सकती हैं। ऐसी मशीनों से बड़े बड़े काम तो नहीं होते, परन्तु छोटे आकार के पत्र तो इनसे आसानी से लिखे जा सकते हैं।

इस मशीन के साधारण दोष दूर हो जाने पर अन्य-विद्या-विशारदों ने इसे और भी अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की। पाठकों ने अमेरिका के प्रसिद्ध आविष्कारक टामस एडिसन का नाम सुना होगा। गाना सुनाने वाले फ़ोनोग्राफ़ के आविष्कर्ता आप ही हैं। फ़ोनोग्राफ़ में एक विशेष प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विशेष प्रकार की चूड़ियों पर गाने भरे जाते हैं। इसके लिए विशेष प्रबन्ध करना पड़ता था और अब भी पड़ता है। अच्छे अच्छे गवैयों और वक्ताओं की वक्तृतायें आदि भरने और फिर उन्हें यथावत् सुनाने का काम ये मशीनें अच्छी तरह देती हैं। इस मशीन को देख कर एडिसन साहब के मन में यह बात आई कि इसमें अभी और भी उन्नति की जगह है। उन्होंने सोचा—कोई ऐसी तरकीब होनी चाहिए जिससे, बिना विशेष खटपट के, जो कुछ इसके सामने कहा जाय उसे यह पकड़ ले। अर्थात् बिना प्रयास के गाना या वक्तृता आदि यह अपनी चूड़ियों पर अङ्कित कर ले। इस उद्देश की सिद्धि के लिए उन्होंने पूर्वोक्त फ़ोनोग्राफ़ से मिलती जुलती एक और मशीन बनाई। उसका नाम उन्होंने डिक्टेटिङ्ग मशीन रक्खा। इसे आप मेज़ पर अपने सामने रख लीजिए। जो कुछ कहना हो कहते जाइए, यह उसे ग्रहण करती चली जायगी। लेख लिखना हो, चिट्ठी लिखना हो, कोई दरख़्वास्त लिखना हो—आप इसके सामने बोलते जाइए, यह आपके शब्दों को तुरन्त अपनी चूड़ियों पर अङ्कित करती जायगी।

अमेरिका वाले समय को बहुमूल्य समझते हैं। हमारी तरह उसे बरबाद करने ही में बहादुरी नहीं समझते। जो आदमी बड़े बड़े कारख़ानों का प्रबन्धकर्ता है—बड़े बड़े दफ़्तरों और महकमों का सूत्र जिसके हाथ में है—उसके लिए एक एक मिनट बहुमूल्य है। ऐसा आदमी यदि डिक्टेटिङ्ग मशीन की चूड़ियों पर अपनी कोई आज्ञा, दरख़्वास्त अथवा पत्र का कोई मसविदा अङ्कित कर दे तो उन सब बातों को प्रचलित लिपि में लिखने वाला भी कोई चाहिए। यदि उसी को ये सब बातें लिखनी पड़ें तो समय का फिर भी दुरुपयोग हो। एडिसन साहब ने यह सुभीता भी कर दिया। उन्होंने मोम की ऐसी चूड़ियाँ निकालीं जो किसी भी डिक्टेटिङ्ग मशीन पर लगाई जा सकें। यही नहीं, किन्तु उन्होंने इन मशीनों को टाइप-राइटर नाम की मशीनों से इस तरह जोड़ दिया कि टाइप-राइटर चलाने वाला आदमी उन चूड़ियों पर अङ्कित बातें टाइप-राइटर से अच्छी तरह लिख ले। डिक्टेटिङ्ग मशीन में एक नली लगी रहती है। टाइप-राइटर पर काम करने वाला आदमी उस नली को कान में लगा कर डिक्टेटिङ्ग मशीन को चला देता है। ऐसा करते ही डिक्टेटिङ्ग मशीन अपनी चूड़ियों पर अङ्कित किया हुआ लेख उसके कानों में सुनाने लगती है। वह इस तरह जो कुछ सुनता जाता है टाइप-राइटर मशीन पर काग़ज़ लगा कर लगातार लिखता चला जाता है।

बहुत दिन तक इस तरह काम होता रहा। इसमें भी दोष मालूम हुए। डिक्टेटिङ्ग मशीन कभी कभी इतना जल्द बोलने लगती कि उसकी बातें टाइप-राइटर पर उतने ही समय में लिखना असम्भव हो गया। कभी कभी ऐसा भी होने लगा कि डिक्टेटिङ्ग मशीन की कोई कोई बात समझ ही में न आने लगी या सुनाई ही न पड़ने लगी। इस दोष को दूर करने, अर्थात् न सुनी और न समझ में आई हुई बातों के दुहराने के लिए, डिक्टेटिङ्ग मशीन में और भी पुर्ज़े लगाये गये। इससे यह दोष तो दूर हो गया। परन्तु नये पुर्ज़ों के लगाने और उनसे काम लेने में समय अधिक लगने लगा। अमेरिका के एक वैज्ञानिक पत्र से मालूम हुआ कि एडिसन साहब ने इस असुविधा को भी अब दूर कर दिया है। डिक्टेटिङ्ग मशीन में उन्होंने अब एक [illegible] लगा दी है। यह अभी ठीक वैसी ही है जैसी टाइपराइटर मशीनों में

जनरल तिफकास्म, उनके सहकारी और शरीर-रक्षक ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

प्रत्येक प्रकार के लिए काफ़ी रहती है। विक्टोरिया मैशीन की कोई बात जहाँ समझ में न आई, इस चाभी को दबा दिया। बस, इतने ही मैशीन उस बात को दुहरा देगी। यह चाभी इस ढंग से लगा दी गई है कि चाहे जितने पीछे का शब्द या वाक्य चाहें, विक्टोरिया मैशीन से फिर पूछ सकते हैं।
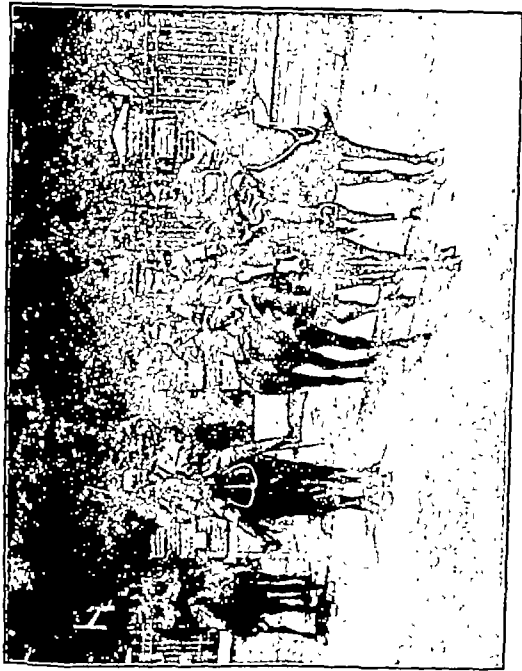
इन मैशीनों की बदौलत समय की कितनी बचत होती है, काम में कितना सुभीता होता है, यह बात सहज ही पाठकों के ध्यान में आ जायगी। कोई कामकाजी आदमी एक घण्टे में लिख कर जितना काम कर सकता है, इन मैशीनों की कृपा से पाँच मिनट में हो जाता है। एडिसन साहब अब एक और मैशीन बनाने की फ़िक्र में हैं। वह भी प्रायः बन चुकी है। उसका सम्बन्ध टेलीफ़ोन से रहेगा। टेलीफ़ोन पर जो कुछ कहा जायगा वह सब इस मैशीन के भीतर अङ्कित हो जायगा। वह जब चाहो, सुना भी जा सकेगा और लिखा भी जा सकेगा। इससे काम काज की जो बातें दो आदमियों में परस्पर होंगी उन्हें यादगारत के तौर पर सुरक्षित रखने का बड़ा सुभीता होगा।

७—सत्तर लाख वर्ष का पुराना एक प्राणी।

जैसे पृथ्वी में दिन पर दिन परिवर्तन होता रहता है वैसे ही वनस्पतियों और प्राणियों में भी होता है। जल में थल की और समतल जगहों में पहाड़ों की उत्पत्ति एक साधारण घटना है। पुराने पेड़-पौधों और जीवधारियों का नाश और नवीनों की उत्पत्ति भी स्वाभाविक ही है। किसी समय पृथ्वी पर बड़े भयङ्कर जीव-जन्तुओं का वास था। उनकी ठठरियाँ पृथ्वी के पेट से अब तक निकलती हैं। उन्हें देख कर मनुष्य आश्चर्य-सागर में डूब जाता है। उनकी विशालता और विचित्रता देख कर इस बात पर विश्वास ही नहीं होता कि ऐसे ऐसे विशालकाय और भयङ्कर जन्तु भी किसी समय पृथ्वी पर थे। ऐसे कई जन्तुओं का वर्णन सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। आज एक और भी ऐसे ही भयङ्कर प्राणी का वर्णन किया जाता है।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में एक जगह है—केनयोन सिटी (Canyon City) यह नगर कोलोराडो नामक सूबे में है। पूर्वोक्त प्राणी की ठठरी इस केनयोन सिटी के पास, पत्थर की एक चट्टान के भीतर, १८८४ ईसवी में, मिली थी। वह अब वाशिंगटन के सरकारी अजायबघर में रक्खी गई है। यह ठठरी सत्तर लाख वर्ष से कम पुरानी नहीं। इसका वज़न कोई ३० मन है। जब यह प्राणी ज़िन्दा होगा तब इसका वज़न कोई तीन सौ मन ज़रूर रहा होगा। अर्थात् हाथी का जितना वज़न होता है उतना ही इसका भी रहा होगा। इसकी ठठरी १८ फुट लम्बी है। ऊँचाई में यह जन्तु ११ फुट से कम न रहा होगा। यह छिपकली या मगर की जाति का जीव था। इसकी पीठ पर जगह जगह पट्टियाकार की सुम्बी के सदृश मांस के गोल गोल टुकड़े थे। चमड़ा इसका इतना मोटा, कड़ा और चीमड़ था कि तेज़ शस्त्र से भी कठिनता से कट सकता था। पीठ पर, सिर से पूँछ तक, बड़े ही नुकीले कांटों के से फल थे। वे कांटे के तेज़ दाँतों के सदृश थे। इसकी पूँछ के एक ही आघात से बड़े बड़े जीव-जन्तुओं और पशुओं के प्राण पल में जा सकते थे। इसके अगले पैर कुछ छोटे और कमज़ोर थे, पर पिछले मोटे और बड़े थे। जान पड़ता है, यह कॅगरू नामक प्राणी के सदृश अपने पिछले पैरों के बल खड़ा हो सकता था। इसके दाँतों से यह सूचित होता है कि यह मांसभक्षी न था। यह पेड़-पौधों की पत्तियाँ और घास आदि खाकर ही जीवन-रक्षा करता था। जहाँ पर इसकी ठठरी मिली है वहाँ पर अब तो पहाड़ है, पर लाखों वर्ष पहले वहाँ दलदल और कम गहरी झीलें थीं। उन्हीं में यह रहता था। पत्थरों ही की तहों के बीच इसकी ठठरी मिली है।

चार्ल्स डब्लू गिलमोर नाम के एक विद्वान् संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के जातीय अजायबघर में एक कर्मचारी हैं। आपने इन प्राचीन जन्तुओं पर एक पुस्तक लिखी है जो दुनिया में लाखों वर्ष पहले थे, पर जिनका अस्तित्व अब बिलकुल ही नष्ट हो गया है। उसी पुस्तक में इस जन्तु का भी वर्णन है।

८—भर्तृहरि-निर्वेद-नाटक का हिन्दी-अनुवाद।

जिस भर्तृहरि-निर्वेद-नाटक की आलोचना जून १९१६ की सरस्वती में निकली है उसके हिन्दी-अनुवाद का परिचय मैं सरस्वती के पाठकों से कराना चाहता हूँ। यह अनुवाद पण्डित जगन्नाथ मिश्र का किया हुआ है और कालाकांकर के हनुमत्प्रेस में छपा है। मूल्य ८ आने है। शेर बहादुर, कुसुमप्रोत, कालाकांकर, ज़िला प्रतापगढ़ (अवध) को लिखने से मिलता है।

अनुवाद स्वतन्त्रता-पूर्वक किया गया है और अभिनय के लिए है। अतएव अनुवादक ने कहीं कहीं पर मूल की कथा को घटाया बढ़ाया भी है। इससे इसकी रोचकता घटी नहीं, बढ़ गई है। अनुवाद अवश्य ही देखने योग्य हो गया है। एक गीत सुनिए—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

आज कल कुरुचिपूर्ण नाटकों और उपन्यासों का ज़माना है। इस दशा में इस पवित्र नाटक का हिन्दी-अनुवाद करके मिश्रजी ने बहुत अच्छा काम किया। आपकी भाषा यद्यपि खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिश्रण है, तथापि इससे विशेष हानि नहीं। हाँ, यदि एकसी भाषा होती तो और अच्छा होता। तथापि आपके गद्य-पद्य का मतलब जल्दी समझ में आ जाता है। पुराने ढँग की भाषा में आपका एक पद्य सुनिए—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

एक नमूना उर्दू के ढँग के पद्य में भी लीजिए—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इतने ही से पाठकों को मालूम हो जायगा कि यह अनुवाद कैसा है।

[illegible] मिश्र (बी० ए०)

९—बनारस का हिन्दू-विश्वविद्यालय।

हिन्दू-विश्वविद्यालय का अधिवेशन, १९ मार्च १९१९ को, बनारस में हो गया। उसके कार्य-विवरण से मालूम हुआ कि अब तक ११,२२,००० से भी अधिक रुपये के चन्दे का वचन विश्वविद्यालय को मिल चुका है। उसमें कुछ कम ६० लाख रुपया वसूल भी हो गया है। कोई तेईस हज़ार लोगों से यह चन्दा वसूल हुआ है। बहुत थोड़ी आमदनी के लोगों तक ने चन्दा दिया है। ऐसे भी सिक्ख हैं जिन्होंने कुछ ही आने या कुछ ही रुपये देकर सहायता की है। यूरोपियनों, मुसलमानों और पारसियों तक ने चन्दा देने की कृपा की है। इससे सूचित होता है कि इस विश्वविद्यालय से सभी श्रेणियों और सभी धर्मों के अनुयायियों की सहानुभूति है। गवर्नमेंट ने हर साल एक लाख रुपया देने का वादा किया है। अर्थात् मानों उसने विश्वविद्यालय को ३१ लाख दिया। क्योंकि ३१ रुपये सैकड़े के हिसाब से इतने ही रुपये का वार्षिक ब्याज एक लाख रुपया होता है।

इस बैठक में विश्वविद्यालय के सभासदों और कार्य-कर्ताओं आदि का चुनाव भी हुआ। कोर्ट, कौंसिल, सिनेट आदि के मेम्बर चुने गये। हिसाब जाँचने वाले और मुनीमी नियत हुए। सिक्खों के पाँच और जैनों के भी पाँच प्रतिनिधि लिये गये। हिन्दू-धर्म्म और संस्कृत-साहित्य के भी कितने ही कर्णधार प्रतिनिधि-रूप से नामज़द किये गये। पटने के पण्डित रामावतार पाण्डेय और रोहतक के पण्डित दीनदयालु शर्म्मा को इन्हीं के अन्तर्गत स्थान मिला। इस श्रेणी के प्रतिनिधियों में बङ्गाल, बिहार, पञ्जाब, राजपूताना, संयुक्त प्रान्त और बम्बई हाते के कितने ही नये-पुराने ढँग के शास्त्रियों, पण्डितों और महामहोपाध्यायों को जगह मिली। पर, मध्य-प्रदेश, मध्य भारत और मदरास हाते के एक भी धर्म्मधुरीण या संस्कृत के पारदर्शी पण्डित का नाम न देख कर आश्चर्य होता है। क्या वहाँ ऐसा एक भी पुरुष नहीं है जो धर्म्म और संस्कृत भाषा-सम्बन्धी विषयों में प्रतिनिधित्व करने योग्य समझा जाता ? द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा शैवों, शाक्तों और वैष्णवों के भी कोई अलग प्रतिनिधि नहीं लिये गये। मालूम नहीं, फिर काम कैसे चलेगा और इन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की रक्षा कैसे होगी ? जैनों में श्वेताम्बरियों के दो, दिगम्बरियों के दो और स्थानकवासियों का एक—इस प्रकार तीनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि अलग अलग चुने गये हैं। फिर हिन्दुओं के लिए सम्प्रदाय-भेद के अनुसार अलग अलग प्रतिनिधि

क्यों नहीं? कहीं पुकारकार की तो न ठहरेगी। भाई दस्तकारिको सावधान!

१०—युद्ध का ख़र्च।

उस दिन पार्लियामेंट (हाउस आफ़ कामन्स) में प्रधान अमात्य एस्क्विथ साहब ने युद्ध के ख़र्च के लिए कुछ रुपये की मंज़ूरी माँगी। उस समय आपने यह बताया कि जल-स्थल-सेना के लिए, रसद और रेल के लिए, गोला-बारूद के लिए और मित्रदेशों को क़र्ज़ देने के लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट को १ एप्रिल से २२ जुलाई तक—अर्थात् सिर्फ़ ११३ दिनों में—कितना रुपया ख़र्च करना पड़ा है। उनके बताये हुए ख़र्च की तफ़सील नीचे दी जाती है—

१ एप्रिल से २० मई १९१५ तक।

	रुपया
(१) जल-स्थल-सेना और गोला-बारूद के लिए	२,२३,२०,००,०००
(२) मित्रदेशों को क़र्ज़ दिया	१,११,७२,००,०००
(३) रसद, रेलवे और फुटकर ख़र्च	४६,२४,००,०००
कुल	३,८१,२०,००,०००

२० मई से २२ जुलाई १९१५ तक।

	रुपया
(१) जल-स्थल-सेना और गोला-बारूद के लिए	३,७२,००,००,०००
(२) मित्र देशों को क़र्ज़ दिया	१,२३,७६,३२,०००
(३) रसद रेलवे और फुटकर ख़र्च	८,३२,००,०००
कुल	५,००,०१,३२,०००

इस प्रकार केवल ११३ दिनों में कोई साढ़े आठ अरब रुपया ख़र्च हो गया! इस हिसाब से २० मई तक ७ करोड़ ६६ लाख रुपया रोज़ के ख़र्च का औसत पड़ा। उसके बाद २२ जुलाई तक ख़र्च बढ़ कर ७ करोड़ ८० लाख ८० हज़ार रुपया रोज़ हो गया। जो और देश युद्ध कर रहे हैं यदि उनके भी ख़र्च का हिसाब जोड़ा जाय तो कोई एक अरब रुपया रोज़ से कम ख़र्च न बैठे, अधिक चाहे हो जाय। सो इस युद्ध में असंख्य नर-नाश ही नहीं हो रहा, असंख्य धन-नाश भी हो रहा है। ईश्वर करे इसकी शीघ्र ही समाप्ति हो।

११—स्कूल—लीविंग-सर्टीफ़िकेट-परीक्षा का नतीजा।

१९१५ की स्कूल—लीविंग सर्टीफ़िकेट-परीक्षा पर १६ अगस्त १९१५ के गवर्नमेंट गैज़ट में एक लेख निकला है। उसमें लिखा है—

इस परीक्षा में २,३३२ छात्र शामिल हुए। जिन ऐच्छिक विषयों में उन्होंने परीक्षा दी उनकी नामावली तथा छात्रों की संख्या नीचे दी जाती है—

(१) संस्कृत	४४२
(२) फ़ारसी	२०३
(३) अरबी	२१
(४) व्यापार	११२
(५) विज्ञान	७६०
(६) अतिरिक्त-गणित	३१
(७) कृषिविद्या और पैमायश	८
(८) नक़्शानवीसी	२०१
(९) दस्तकारी	३०

इनमें से १,३५६ छात्र फ़ेल हुए। बाक़ी पास। अर्थात् आधे से कम पास हुए। जो व्यापार और कृषि सम्पत्ति की उत्पत्ति के सबसे बड़े साधन हैं उन्हीं की अवहेलना की गई। इन विषयों में बहुतही कम छात्रों ने परीक्षा दी। इस युग में ख़ुशी की बात इतनी ही है कि विज्ञान को अधिक आश्रय मिला।

इसमें किसी को सन्देह नहीं कि इन प्रान्तों की प्रधान भाषा हिन्दी है। हिन्दी बोलने वाले ही यहाँ अधिक हैं। परन्तु केवल ३६४ छात्रों ने हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा बताया। १,१०३ छात्रों ने अपनी मातृ-भाषा उर्दू बताई। इसका कारण केवल भ्रम है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि उर्दू को अपनी मातृ-भाषा बताने वालों में सैकड़ों हिन्दू हैं। यदि उन्हें अपने घर की ख़बर होती तो वे कभी ऐसा बयान न देते जैसा कि उन्होंने दिया है। एक और अन्याभाविकता देखिए। फ़ारसी के प्रेमी २०३ और संस्कृत के केवल ४४२ निकले। अपने देश की—अपने पूर्वजों की—यहाँ तक कि देवताओं की भाषा संस्कृत से इतनी उदासीनता का कारण भी अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं। इस अज्ञान और इस भ्रम का फल भी फ़ारसी अरबी के प्रेमी उर्दू-वालों

पुस्तक-परिचय ।

१—दो वैदिक वृत्तियाँ । "श्रीमदखिलशास्त्रनिष्णात-पण्डित-स्वामि-हरिप्रसाद-वैदिक-मुनि-विरचित" दो वृत्तियाँ हमें प्राप्त हुई हैं । दोनों बाबा सुखीरामजी, पेन्शनर, देहरा-दून, को लिखने से मिल सकती हैं । इन वृत्तियों की समालोचना करने की योग्यता हम में नहीं । जो संस्कृत-भाषा का अच्छा ज्ञाता और वेदान्त तथा योग-शास्त्र का पारगामी पण्डित हो वही इनकी समालोचना करने का अधिकारी हो सकता है । इससे इनके विषय में, विज्ञापन के तौर पर, दो चार ऊपरी बातें लिख कर ही चुप हो जायँगे ।

पहली वृत्ति का नाम है—योगसूत्र-वैदिकवृत्तिः । इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १२० और मूल्य १२ आने है । यह सूत्रार्थ मात्र का ज्ञान सम्पादन करने की इच्छा रखने वाले बालकों का उपकार ("बालानां महोपकारं") करने के लिए रची गई है । महामुनि पतञ्जलि के योगशास्त्र के सूत्र देकर उनका व्याख्यान सरल संस्कृत में किया गया है । सूत्र के प्रत्येक पद की व्याख्या करके सूत्र-सम्बन्धिनी और भी कितनी ही बातें लिख दी गई हैं । सूत्रार्थ स्पष्ट करने के लिए आगे पीछे की बातों का भी उल्लेख किया गया है । वृत्तिका क्रम और विवेचन की शैली निःसन्देह अच्छी है । क्लिष्टता नहीं आने पाई । यह इस वृत्ति की विशेषता है ।

दूसरी वृत्ति का नाम है—वेदान्त-सूत्र-वैदिकवृत्तिः । यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है । इसकी पृष्ठ-संख्या ६०० के लगभग है । मूल्य इसका ४) है । छपाई उत्तम, निर्णयसागर प्रेस की, है । इसकी वृत्ति बहुत विस्तृत है । विवेचन में खूब पाण्डित्य प्रकट किया गया है । उपनिषदों के वाक्य और वैदिक मन्त्र उद्धृत करके वृत्तिकार ने अपना अभीष्ट अर्थ समझाने और अपना आशय परिपुष्ट करने की चेष्टा की है । मनुस्मृति और ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के भी प्रमाण आप ने दिये हैं । आपकी इस वृत्ति में अच्छे वेदान्तियों ही का प्रवेश हो सकता है ।

वेदान्त और योगशास्त्र पर आज तक न मालूम कितने भाष्य, कितनी वृत्तियाँ और कितनी टीका-टिप्पणियाँ लिखी जा चुकी हैं—संस्कृत में भी और अन्य भाषाओं में भी । फिर भी दयाराम पण्डित-स्वामी हरिप्रसादजी वैदिक मुनि ने ये वृत्तियाँ संस्कृत-भाषा में क्यों रचीं, इसका कारण आप ने भूमिका में बता दिया है । आप का कथन है कि पूर्वाचार्यों और पूर्व-पण्डितों की वृत्तियाँ वैदिक-मतानुयायिनी नहीं । योगशास्त्र पर भोजराज, वाचस्पति मिश्र आदि की वृत्तियों के विषय में आपकी राय है कि—"ता न सूत्रार्थं यथाभिप्रायमवगमयन्ति, यथास्थाने वैदिकीं सरणिं च नानुसरन्ति" । अर्थात् न ये सूत्रार्थों का यथाभिप्राय (!) अर्थ ही प्रकट करती हैं और न वैदिकी सरणि का अनुसरण ही करती हैं । वेदान्त-शास्त्र पर बोधायन मुनि की वृत्ति को आप "सम्प्रदाय-भेद-दूषित" बताते हैं । शङ्कराचार्य, भास्कराचार्य, रामानुजाचार्य आदि के भाष्यों को आप "प्रमाणाभास" और "युक्त्याभास" पूर्ण कहते हैं । शाङ्कर-भाष्य पर तो आपका कटाक्ष बहुत ही कुटिल है । यह तो आप की सम्मति में—"न वैदिकसिद्धान्तापेक्षया वैदिकानामनुसरणमर्हति" । इसीसे आप ने इस वेदान्त-वृत्ति की रचना की है और लिखा है—"सयुक्तिपुरस्सरं वेदादिप्रमाणपुरस्सरं च साधु व्याकुर्महि" । सो स्वामीजी ने पहले के सभी वृत्तिकारों में कुछ न कुछ दोष पाया । शायद आप एक मात्र अपने ही को निर्दोष, सम्प्रदाय के पक्षपात से हीन और वेदों के सच्चे अर्थ का जानने वाला समझते हैं । अब यदि आप ही के सदृश वेदों का सच्चा अर्थ जानने वाला और कोई हो तो आपकी वृत्ति पर विचार करके देखे कि यह कहाँ तक वेदों का अनुसरण करती है । पर जब शङ्कराचार्य तक की समझ में वेदों का आशय न आया तब इस घोर कलिकाल में उनसे बढ़ कर वेदज्ञ शायद ही कोई पैदा हो ।

अच्छा तो क्या ये सभी दर्शनशास्त्र वेदों के आधार पर ही रचे गये हैं ? क्या ये स्वतन्त्र शास्त्र नहीं ? क्या इनकी रचना के समय इनके रचयिता यह देखते गये थे कि उनके प्रणीत शास्त्र में कोई बात ऐसी न आने पावे जो वेदों में न हो या जिसका मेल वेद-वाक्यों से न खाता हो ? ऐसे विचार तो केवल उन्हीं लोगों के हो सकते हैं जो यह समझते हैं कि वेद समस्त ज्ञान-समुदाय के आधार हैं । जो ज्ञान या शास्त्राङ्कुर वेदों में नहीं उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं । अच्छा, यदि कोई कहे कि जीव-जन्तु-शास्त्र (Zoology) भी कोई ज्ञेय वस्तु है, और उसका पता वेदों में न मिले, तो स्वामी हरिप्रसादजी के पक्ष के पण्डित यही कहेंगे कि

यह बात हो ही नहीं सकती। यदि ऐसा कोई शास्त्राभास होगा भी तो उसमें यथार्थ ज्ञेय वस्तु कुछ भी न होगी, क्योंकि वेदों में उसका बीज नहीं। जिनके विचार ऐसे हैं वही लोग सभी विषयों में वैदिक दृष्टि, वैदिक भावना, वैदिक सिद्धान्त और वैदिक व्याख्यान की घोषणा कर सकते हैं। और लोगों को तो जहाँ कहीं सत्य ज्ञान की प्राप्ति होगी वहीं से वे उसे ग्रहण करेंगे, चाहे वह वेदों में हो चाहे न हो। स्वामी हरिप्रसाद वैदिक-मुनि महाराज ने पूर्व्वाचार्यों पर जो दोष लगाये हैं उनके उल्लेख की आवश्यकता न थी। बिना ऐसा किये भी वे अपनी युक्तियाँ बता सकते थे। जिस तरह वे उन आचार्यों को सम्प्रदाय-आदि-सम्बन्धी दोषों से दूषित-चित्त बताते हैं उसी तरह उनके अनुयायी भी आपको वैसे ही दोषों से दूषित बता सकते हैं। इसका क्या सबूत कि आप का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं? इसका क्या सबूत कि जिन सिद्धान्तों को आप वैदिक समझते हैं उनमें भूल नहीं? इसका क्या सबूत कि शङ्कर और रामानुज आदि की तरह आप भी सम्प्रदाय-भाव या दुराग्रह के शिकार नहीं?

आशा है, मुनि महाराज हमें इन वाक्यों के लिए क्षमा करेंगे—समालोचका हि सापधा।

❋

२—*आरोग्य और उसके साधन।* अनुवादक—पण्डित काशीनाथ नारायण गर्दे, प्रकाशक—मन्त्री, ग्रन्थ-प्रकाशक-समिति, काशी, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ८१, मूल्य ।=) श्रीयुत मोहनदास करमचन्द गान्धी ने इस विषय पर एक पुस्तक गुजराती में लिखी है। उसकी समालोचना हम सरस्वती की किसी पिछली संख्या में कर चुके हैं। पुस्तक के महत्त्व के विषय में जो कुछ पहले लिखा जा चुका है उसको दुहराने की ज़रूरत नहीं। प्रस्तुत पुस्तक उसी गुजराती पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। मूल गुजराती पुस्तक दो भागों में है। यह पुस्तक उसके सिर्फ़ प्रथम भाग का ही रूपान्तर है। भाषा इसकी सरल है, पर मुहावरे की त्रुटियाँ कहीं कहीं रह गई हैं। पुस्तक की उपयोगिता के नाते वे उपेक्षा करने योग्य हैं।

❋

३—*कुली-प्रथा अर्थात् बीसवीं शताब्दी की गुलामी।* लेखक—"भक्तमय", प्रकाशक—प्रताप प्रेस, कानपुर, आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ८८, मूल्य ।=) उपनिवेशों के कपट-कुशल अधिवासी भारतवासियों को मज़दूरी के बहाने फुसला कर अपने देशों में ले जाते हैं और वहाँ उन पर वे मनमाना अत्याचार करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने उनके इन्हीं निर्दय व्यवहारों और अमानुष अत्याचारों की करुण-कहानी नाटक के रूप में कही है। नाटक की भाषा विषय के अनुरूप और चलती हुई है। बीच बीच में पद्य भी हैं। वे प्रायः सरल और भावपूर्ण हैं। पर, कहीं कहीं छन्दःशास्त्र-सम्बन्धिनी त्रुटियाँ रह गई हैं।

❋

४—*रोहिणी।* पृष्ठ-संख्या ६२, मूल्य ॥ आने, लेखक—पाण्डेय नवलकिशोरसहाय, प्रकाशक—सरस्वती-मण्डल, गाज़ीपुर—प्रकाशक से ही प्राप्य। यह एक कल्पित कहानी है। इसके प्रारम्भिक निवेदन में लिखा है कि—"*इसके पढ़ने से पातिव्रत धर्म्म की नींव दृढ़ होती है। सामाजिक कुरीति दूर करने का उपदेश दिया गया है। स्त्री-शिक्षा के लाभ भी दर्शाये गये हैं*"। बस इतनी ही बातें होने से उपन्यास बढ़िया हो गया!

❋

५—*जीवनादर्श।* आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ११, जिल्द बँधी हुई, मूल्य एक रुपया, लेखक पण्डित ज्योतिःस्वरूप शर्म्मा, टिहरी, प्रकाशक—गढ़वाल-हितकारिणी सभा, टिहरी, गढ़वाल। यह पुस्तक सुन्दर टाइप में अच्छे काग़ज़ पर छपी है। जैसी अच्छी इसकी छपाई-सफ़ाई है वैसा ही अच्छा इसका विषय भी है। यह तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में आदर्श मानसिक व्यवहारों का वर्णन है, दूसरे में शारीरिक व्यवहारों का और तीसरे में भौतिक व्यवहारों का। इन व्यवहारों के विवेचन में लेखक महाशय ने अनेक अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषा के ग्रन्थों का सार सङ्कलन करके विषय-प्रतिपादन किया है। जगह जगह पर उन उन ग्रन्थों के वचन भी उद्धृत कर दिये हैं। अन्तरङ्ग आनन्द की प्राप्ति को ही आपने जीवन का लक्ष्य माना है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर आपने पूर्वोक्त तीनों प्रकार के व्यवहारों का विवेचन किया है। पुस्तक की उपादेयता में सन्देह नहीं। वह हिन्दू विचारों से परिपूर्ण है।

❋

६—*आयुर्वेद-सम्मति।* इस १८ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य दो आने है। इसमें ७० नुसख़े हैं। प्रस्तुत

में, उस साल, जो वैद्य-सम्मेलन हुआ था उसी में यह पद्यमालिका पढ़ी गई थी। इसकी कविता रसवती है। पद्यों में आयुर्वेद-विषयक जो विचार प्रकट किये गये हैं अभिनन्दनीय हैं। इसकी रचना भट्ट श्रीधरानन्द शर्म्मा ने की है। आपका पता—बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई।

※

७—ब्राह्मण-निर्णय। इस पुस्तक में कोई छः सौ सफ़े हैं। मूल्य इसका ३) है। फुलेरा (जयपुर, राजपूताना) के श्रोत्रिय छोटेलाल शर्म्मा ने इसकी रचना की है। उन्हीं से यह मिलती है। इसमें श्रोत्रियजी ने "१२४ प्रकार के ब्राह्मणों की मीमांसा" लिखी है। पर न तो हम इस संख्या को ही ठीक समझते हैं और न इस "मीमांसा" को मीमांसा ही समझते हैं। ब्राह्मणों के मुख्य भेद थोड़े ही हैं। आलस्य (स्थान) और पेशे आदि के कारण उनके उपभेद हो गये हैं। वे हज़ारों हैं। अकेले कान्यकुब्जों में ही सैकड़ों उपभेद या आस्पद हैं। पर कान्यकुब्जों पर श्रोत्रियजी ने सिर्फ़ दो तीन सतरें ही खर्च करके छुट्टी पाई है। आपने विज्ञापनवत् इतना ही लिख दिया है कि हमारी अमुक अमुक पुस्तक देखो। परन्तु यदि किसी के पास आप की वह पुस्तक न हो तो क्या देखे? जब ब्राह्मणों का निर्णय करने चले थे तब सब का करते और जो कुछ आपको लिखना था लिख देते। जाति-निर्णय-विषयक पुस्तक का हवाला देकर ही चुप रहना उचित न था। जिस विषय की जो बात हो वह उसी विषय की पुस्तक में होनी चाहिए। जान पड़ता है कि प्रसङ्ग की परवा आपको बहुत ही कम है। क्योंकि इस पुस्तक में आपने अनेक अप्रासङ्गिक बातें भी भरदी हैं। उदाहरण के लिए आर्य्य-समाज और पण्डित भीमसेन शर्म्मा के झगड़े-झमेले को भी आपने ब्राह्मण-निर्णय का अंश समझा है। यहाँ तक कि प्रस्तुत पुस्तक छपाने के विषय में अजमेर के वैदिक प्रेस से आपका जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसकी भी नक़ल आपने दे दी है। साथ ही उस प्रेस ने आपके साथ जैसा व्यवहार किया उसकी कठोर आलोचना तक कर डाली है। अस्तु।

ब्राह्मणत्व का निर्णय करना बहुत कठिन है। धर्म्म-शास्त्र की दृष्टि से तो शायद बहुत ही कम लोग ब्राह्मण-पदवी के अधिकारी माने जा सकें। पर धर्म्म-शास्त्रों को पूछता कौन है? इस सम्बन्ध में उनकी मर्य्यादा तो नष्ट सी हो गई है। जिनके पूर्वज ब्राह्मण-कर्म्म करते थे वे उन कर्मों को छोड़ते जाते हैं और जिनकी सात पीढ़ियों तक भी पीछे देखने पर ब्रह्म-कर्म करने वालों का पता नहीं चलता वे सूत के तीन धागे कन्धे पर डाल कर ब्राह्मण बनते चले जाते हैं। जहाँ ऐसी दशा है वहाँ ब्राह्मण-निर्णायक पुस्तक लिखने बैठना व्यर्थ समय खोना है। जैसा समय उपस्थित है और जिस तरह की शिक्षा हम प्राप्त कर रहे हैं उसके सामने न पुरानी धर्म्म-पद्धतियाँ ही टिक सकती हैं और न नये निर्णय ही। श्रोत्रियजी का निर्णय तो शायद और भी कम मान्य हो, क्योंकि आपने संस्कृत-ग्रन्थों के जो अवतरण दिये हैं वे अशुद्धियों से भरे हुए हैं। अशुद्धियाँ सूचित कर रही हैं कि संस्कृत-भाषा में आपकी गति नहीं। अतएव मूल-ग्रन्थों के अवतरणों का आशय या अर्थ आपने किसी और ही मार्ग से जाना होगा, अपने ही आप नहीं।

किसी समय भारत में दो ही जन-समुदाय थे—एक आर्य्य, दूसरे अनार्य्य। धीरे धीरे आर्य्यों के तीन भेद हो गये। अध्ययन-अध्यापन करने वाले ब्रह्म कर्म्म-रत लोग ब्राह्मण कहाने लगे; क्षात्र कर्म्म के कर्त्ता क्षत्रिय बन गये; और कृषि-वाणिज्य करने वाले वैश्य हो गये। यह विभाग भी पेशे ही के अनुसार हुआ। इस दशा में ब्राह्मणों के जो वंशज इस समय कारख़ानों में वसूला और रन्दाज चला रहे हैं, मोटा मारतौल उठाये घनघाही कर रहे हैं, अनेक पहने गाड़ियाँ हँक रहे हैं वे यदि अपने को ब्राह्मण ही मानते जायँ तो मानने दीजिए। इससे किसी की क्या हानि? कारख़ानों की हाज़िरी के रजिस्टरों में तो वे देशस्थ और कोकणस्थ, कान्यकुब्ज और सरयूपारीण, गोलक और मैथिल ब्राह्मण तो लिखे ही न जायँगे। लिखे तो बढ़ई, घनसाज़ और ड्राइवर ही जायँगे।

प्रस्तुत पुस्तक का अधिकांश रचने में श्रोत्रियजी ने परिश्रम अवश्य बहुत किया है। अनेक पुस्तकें पढ़ कर आपने इस पुस्तक की रचना की है। ब्राह्मणत्व से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी शास्त्रीय बातें ढूँढ़ ढूँढ़ कर लिखी हैं। वे सब, इस पुस्तक में, एक ही जगह पढ़ने को मिल जाती हैं। ब्राह्मणों के अनेक उपभेदों का भी ज्ञान इसमें हो सकता है। आपने परिचय के कुछ प्रतिष्ठित ब्राह्मणों के चित्र और संक्षिप्त चरित भी आपने दिये हैं। इनमें और कुछ नहीं तो मनोरञ्जन ही

होता है। कुछ शिक्षा भी मिलती है। अतएव इस दृष्टि से यह पुस्तक संग्रह करने योग्य है।

※

८—बिहारदर्पण। इस नाम के एक नये साप्ताहिक समाचारपत्र का पहला अङ्क आज, १८ अगस्त १९१६ को, हमें प्राप्त हुआ है। इसमें ८ पृष्ठ हैं। मूल्य इसका दो रुपया साल है। "इसमें विवादास्पद, धार्म्मिक तथा राजनैतिक लेख नहीं प्रकाशित होंगे"। इससे सूचित होता है कि और सब तरह के लेख प्रकाशित होंगे। यह बड़ी अच्छी बात है। इस अङ्क में "हिन्दी और समाचारपत्र" नाम का एक अच्छा लेख है। अगर यह पत्र बिहार ही के लिए न हो तो इसमें प्रान्तीयता न रहनी चाहिए। क्योंकि "अपने बाबुओं"—की तरह के प्रयोग सर्वत्र मान्य नहीं। प्रस्तुत अङ्क में पाठकों को यह धमकी दी गई है कि जो इस पत्र का ग्राहक न होना चाहे वह चिट्ठी डाक से ख़बर दे, नहीं तो पत्र की दूसरी संख्या वी० पी० द्वारा भेज दी जायगी। पर हम को इस अङ्क में यह बात कहीं ढूँढ़े न मिली कि यह पत्र निकला कहाँ से है। इस दशा में कोई ख़बर देना भी चाहे तो कैसे दे। "प्रकाशकर्त्ता" ने अपने स्थान का नाम ही नहीं दिया। पत्र छपा है मुज़फ़्फ़रपुर के बिहार स्टैंडर्ड प्रेस में।

※

९—मनोरमा—मण्डी धनौरा से मनोरमा नाम की एक मासिक पुस्तक कुछ समय से निकलने लगी है। अब तक इसके ६ अङ्क निकल चुके हैं। छठे अङ्क में २८ पृष्ठ हैं। काग़ज़ मामूली के तरह है। चित्र भी रहते हैं। वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। इसके सम्पादक मोहनलाल हैं। काव्यों के गद्य-पद्यमय अनुवाद आदि इसमें विशेष करके छपते हैं। अन्यान्य कवितायें और लेख भी इसमें रहते हैं। पत्रिका साहित्य-सम्बन्धिनी है। अच्छी निकलती है। दो एक त्रुटियों से ख़ाली एक भी पत्र या पत्रिका नहीं। हमारी राय में तो इस पत्रिका को लेकर इसके सम्पादक और प्रकाशक का उत्साह बढ़ाना चाहिए।

※

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) पशु-चिकित्सा—सम्पादक, श्रीयुत मेघूलाल शर्म्मा, हरदोई।

(२) युद्ध के व्यापारी और उनके सुधार के उपाय—प्रकाशक, रा० मेठाभाई, कलकत्ता।

(३) मूर्तिपूजा—लेखक, पण्डित कालूराम शास्त्री, रैणा, कानपुर।

(४) कल्पसूत्र मूल और हिन्दी-भाषान्तर—अनुवादक, श्रीमान् मुनि माणिकजी महाराज।

(५) आराधना-स्वरूप } प्रकाशक, मूलचन्द किसनदास कापड़िया, सूरत।
(६) मेस्सह-कालत-धर्म }

(७) हिन्दी-भावप्रिय-काव्य—अनुवादक, माधव पोरवाल जैन, मुम्बई।

(८) महावीर-जैन-विद्यालय की रिपोर्ट—प्रकाशक, मोतीचन्द गिरधरलाल कापड़िया, बम्बई।

चित्र-परिचय।

(१)
नटी।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र का नाम है—नटी। आप के चित्रकार हैं—कलकत्ते के बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि नटनियों का रूप-रङ्ग और वेश-भूषा कैसी होती है, उनका नाच-गाना कैसा होता है, और जो गाने-बजाने वाले उनके साथ रहते हैं उनका आकार-प्रकार कैसा होता है—किस सज-धज से वे रहते हैं। ये बातें चित्र देखने से अच्छी तरह ज्ञात हो जायँगी।

(२)
युद्ध के चित्र।

[illegible] ने कृपा करके युद्ध-सम्बन्धी दो चित्र और भेजे हैं। एक तो युवराज प्रिंस आव् वेल्स का है, दूसरा—युद्ध पर गई हुई भारतीय सेना के प्रधान सेनापति जनरल विलकाक्स का। पाठक देखेंगे कि युवराज भी सैनिक ही के वेश में हैं। [illegible] है। आप युद्धक्षेत्र में [illegible] कर रहे हैं। जनरल विलकाक्स के साथ उनके दो [illegible] और तीन [illegible] हैं। इन चित्रों को भी [illegible] ही [illegible] है। इनको भी प्राप्त कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

थियेट्रिकल नाटक।

खूबसूरतबला—बम्बई की प्रसिद्ध नाटक कम्पनियों का यह एक मशहूर खेल है। बड़ी मेहनत और कठिनाइयों के उपरान्त मय असली गाने और ड्रामे के नाटक-प्रेमियों के लिये प्रकाशित किया है. ।=)

कालीनागिन—यह प्रसिद्ध खेल प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'जुलियस सीज़र' के आधार पर लिखा गया है। जिस प्रकार सीन सिनरियों और चुहचुहाते गानों से सुसज्जित किया गया है, उसी प्रकार इसमें शिक्षा भी कूट कूट कर भरी गई है। ॥)

ख्वाबेहस्ती—दुनिया में जो लोग बुराई कर सुख पाने की कामना रखते हैं, उनके लिये यह नाटक एक ज्वलंत उदाहरण है। सच्चे प्रेम का अंतिम परिणाम अंत में कैसा सुखदाई होता है, उसका यह फोटो है। बम्बई की पारसी नाटक कम्पनियों के खेलों में एक इसका नम्बर भी है ।=)

महाभारत—इसकी तो प्रशंसा करना ही व्यर्थ है। एक तो यह ऐतिहासिक नाटक है, दूसरे इसके मुंशी ने लिखने में इतनी सफलता पाई है कि, इस एक तमाशे को लोगों ने एक बार नहीं, बार बार बार देखा, परन्तु फिर भी उनके नेत्र तृप्त न हुए; देखने से तबियत न भरी। ज़्यादा क्या लिखें; पढ़ देखिये। दाम केवल ।=)

सैद हवस—जिन लोगों ने इस खेल को देखा है। उनसे इस रंगरेजी का हाल पूछिये कि, यह किस प्रकार ज़ोरदार ड्रामे और दिलचस्प गाने से रंगा गया है ।=)

कलियुगागमननाटक—यह भी मंच पर खेलने योग्य है। गायन और ड्रामों से रंगा है =)

शहीदेनाज़—दुनिया में रूप का जादू कैसा प्रभाव उत्पन्न करता है, रूप के ताप में पत्थर भी पिघलता है; तुच्छ सुघराई क्या नहीं कर सकती; सौंदर्य का ठोंकर पहाड़ को भी हिला सकता है, यही दिखलाने के लिये जगप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर ने 'मेज़र फार मेज़र' नाम का एक फड़कता हुआ ड्रामा लिखा है, उसी से यह शहीदेनाज़ तैयार हुआ है ।=)

ज़हरी सांप—हैं हैं पाठक, डरिये नहीं, यह सांप नहीं, फड़कता हुआ एक प्रसिद्ध ड्रामा है।=)

खूनेनाहक—शेक्सपीयर के 'हैमलेट' नामक जिस पुस्तक के सहारे यह नाटक तैयार किया गया है, उसकी प्रशंसा तो व्यर्थ ही है, क्योंकि उसकी समालोचना में बहुतसी किताबें लिखी जा चुकी हैं।

दिलफरोश—यह भी पारसी नाटक कम्पनियों का मशहूर खेल है। सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्स-पीयर के 'मरचेन्ट आफ वेनिस' के सहारे लिखा गया है। यह भी मय गाने और ड्रामें के है। मूल्य ।=)

भूलभुलइयां—यह भी मय गाने और ड्रामे के है। नाटक के एक मुंशीजी की कृपा से प्राप्त हुआ है। बंबई की प्रसिद्ध नाटक-कम्पनियों के प्रसिद्ध खेलों में से एक है। ।=)

सफेदखून—दुनिया का खून किस प्रकार सुफ़ेद हो जाता है, यही दिखलाने के लिये पारसी-नाटक-कम्पनियों के मालिकों ने इसे बनवाया है। यह भी मय गायन और ड्रामे के है। बड़ी शिक्षा मिलती है।=)

ख्वाबेहिर्स—यह भी बड़ा शिक्षाप्रद नाटक है। पारसी कम्पनियों ने सीन सिनरियों से इसे ऐसा रंग दिया है कि, वाह वाह किये बिना नहीं रहा जाता। यह भी मय गायन और ड्रामे के है। डोरिक्स के 'पिज़ारो' का प्लाट है ।=)

पता—जयरामदास गुप्त, उपन्यास बहार आफ़िस, पोस्ट-राजघाट, बनारस।

बाला-पत्र-कौमुदी ।

मूल्य =) आने

इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ।॥)

सचित्र—शरीर और शरीर-रक्षा ।

मूल्य ॥) आठ आने

यह पुस्तक पण्डित चंद्रमौलि सुकुल एम० ए० की लिखी हुई है। इसमें शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। मनुष्य के अङ्गावयव-सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

श्रीगौरांगजीवनी ।

मूल्य =) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाप्रभु की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; किन्तु वैष्णव-धर्मावलम्बियों को तो इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

यवनराजवंशावली ।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़)

इस पुस्तक से आप को यह विदित हो जायगा कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्पण कब से हुआ। किस किस बादशाह ने कितने दिन तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी कि कौन बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। बादशाहों की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें उल्लेख किया गया है। मूल्य =)

कालिदास की निरङ्कुशता ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक जो लेख-माला प्रकाशित की थी वही पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य देखेंगे। मूल्य केवल ।) चार आने।

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

हिन्दी का खिलौना ।

इस पुस्तक को लेकर बालक खुशी के मारे कूदने लगते हैं और पढ़ने का तो इतना शौक़ हो जाता है कि घर के आदमी मना करते हैं पर वे किताब हाथ से रखते ही नहीं। मूल्य ।-)

बालविनोद ।

प्रथम भाग -) द्वितीय भाग -)॥ तृतीय भाग =) चौथा भाग ।=) पाँचवाँ भाग ।=) ये पुस्तकें लड़के लड़कियों के लिए प्रारम्भ से शिक्षा शुरू करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इनमें से पहले दोनों भागों में रंगीन तसवीरें भी दी गई हैं। इन पाँचों भागों में सदुपदेशपूर्ण अनेक कवितायें भी हैं। बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इनमें से पहले दोनों भागों को अपने स्कूलों में जारी कर दिया है।

सदुपदेश-संग्रह ।

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बराड़ के शिक्षा-विभाग में बहुत हुई। यह कई बार छापा गया। उसीं का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रंथों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हीं में से छाँट छाँट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और उन्नत नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उपदेश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। उनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला कन्नोमल एम॰ ए॰)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माघव कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

पाकप्रकाश ।

इसमें रोटी, दाल, कढ़ी, भाजी, पकौड़ी, रायता, चटनी, अचार, मुरब्बा, पूरी, कचौरी, मिठाई, माल-पुआ, आदि के बनाने की रीति लिखी गई है। मूल्य ≡)

प्रेम ।

यह पुस्तक कविता में है। पण्डित मन्नन द्विवेदी बी॰ ए॰ गजपुरी को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। उन्हीं ने पाँच सौ पद्यों में एक प्रेम-कहानी लिख कर इसकी रचना की है। मूल्य ।) चार आने।

उपदेश-कुसुम ।

यह गुलिस्ताँ के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक और शिक्षा-दायक है। मूल्य =)

भाषा-पत्र-बोध ।

यह पुस्तक लड़कों और स्त्रियों के ही उपयोगी नहीं सभी के काम की है। इसमें हिन्दी में पत्रव्यवहार करने की रीतियाँ बड़ी उत्तम रीति से लिखी गई हैं। मूल्य -)॥

व्यवहार-पत्र-दर्पण ।

काम-काज के दस्तावेज़ और अदालती कागज़ों का संग्रह ।

यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आज्ञानुसार उसी सभा के एक सभासद् द्वारा लिखी गई है। इसमें एक प्रसिद्ध वकील की सलाह से अदालत के सैकड़ों काम-काज के कागज़ों के नमूने छापे गये हैं। इसकी भाषा भी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। इसकी सहायता से लोग अदालत के ज़रूरी फ़ार्मों को नागरी में बड़ी सुगमता से भर सकते हैं। क़ीमत ॥)

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग ।

पुस्तक ऐतिहासिक है। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक चीज़ है। मूल्य ।≈)

इन्साफ़-संग्रह—दूसरा भाग ।

इसमें ६७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।≈) छः आने।

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार, जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

हिन्दी-व्याकरण ।

(बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी बी॰ ए॰ कृत)

यह हिन्दी-व्याकरण अँगरेज़ी ढङ्ग पर बनाया गया है। इसमें व्याकरण के प्रायः सब विषय ऐसी अच्छी रीति से समझाये गये हैं कि बड़ी आसानी से समझ में आ जाते हैं। मूल्य ≈)॥

हिन्दी-व्याकरण ।

(बाबू गंगाप्रसाद एम॰ ए॰ कृत)

यह भी नये ढंग का व्याकरण है। इसमें भी व्याकरण के सब विषय अँगरेज़ी ढंग पर लिखे गये हैं। उदाहरण देकर हर एक विषय को ऐसी अच्छी तरह से समझाया है कि बालकों की समझ में बहुत जल्द आ जाता है। मूल्य ≈)

धर्मोपाख्यान ।

यों तो महाभारत के सभी पर्व मनुष्य मात्र के लिए परम उपयोगी हैं। पर उनमें शान्ति-पर्व सब से बढ़ कर है। उसमें अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें पढ़ सुन कर मनुष्य अपना बहुत सुधार कर सकता है। उसी शान्ति पर्व से यह छोटी सी धर्मविषयक पुस्तक 'धर्मोपाख्यान' तैयार की गई है। इसमें लिखा गया उपाख्यान बड़ा दिलचस्प है। सदाधारणतः धर्मजिज्ञासुओं को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने।

आरोग्य-विधान ।

नीरोग रहने के सुगम उपायों का वर्णन। मूल्य ≈)॥

भक्ति-पुष्पांजलि

आकार—१३½" × १३½" दाम ॥=)

एक सुन्दरी शिवमन्दिर के द्वार पर पहुँच गई है। सामने ही शिवमूर्ति है। सुन्दरी के साथ एक बालक है और हाथ में पूजा की सामग्री है। इस चित्र में सुन्दरी के मुख पर, इष्टदेव के दर्शन और भक्ति से होने वाला आनन्द, श्रद्धा और सौम्यता के भाव बड़ी .खूबी से दिखलाये गये हैं।

चैतन्यदेव

आकार—१०½" × ९" दाम ।=) मात्र

महाप्रभु चैतन्यदेव बंगाल के एक अनन्य भक्त वैष्णव हो गये हैं। वे कृष्ण का अवतार और वैष्णव धर्म के एक आचार्य माने जाते हैं। वे एक दिन घूमते विचरते जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ गरुड़स्तम्भ के नीचे खड़े होकर दर्शन करते करते वे भक्ति के आनन्द में बेसुध होगये। उसी समय के सुन्दर दर्शनीय भाव इस चित्र में बड़ी .खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

बुद्ध-वैराग्य

आकार—१८½" × २१" दाम १) रु०

संसार में अहिंसा-धर्म का प्रचार करने वाले महात्मा बुद्ध का नाम जगत् में प्रसिद्ध है। उन्होंने राज्यसम्पत्ति को लात मार कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इस चित्र में महात्मा बुद्ध ने अपने राज-चिह्नों को निर्जन में जाकर त्याग दिया है। उस समय के, बुद्ध के मुख पर, वैराग्य और अनुचर के मुख पर आश्चर्य के चिह्न इस चित्र में बड़ी .खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

अहल्या

आकार—१३½" × १८½" दाम १) रु०

गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या अलौकिक सुन्दरी थी। इस चित्र में यह दिखलाया गया है कि अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक फूल हाथ में लिये खड़ी कुछ सोच रही है। सोच रही है देवराज इन्द्र के सौन्दर्य को—उन पर वह मोहित सी हो गई है। इसी अवस्था को इस चित्र में चतुर चित्रकार ने बड़ी कारीगरी के साथ दिखलाया है।

शाहजहाँ की मृत्युशय्या

आकार—१४" × १०" दाम ॥)

शाहजहाँ बादशाह को उसके कुचक्री बेटे औरंगज़ेब ने धोखा देकर क़ैद कर लिया था। उसकी प्यारी बेटी जहाँनारा भी बाप के पास क़ैद की हालत में रहती थी। शाहजहाँ का मृत्युकाल निकट है, जहाँनारा सिर पर हाथ रक्खे हुए चिन्तित हो रही है। उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है। शाहजहाँ के मुख पर मृत्युकाल की दशा बड़ी ही .खूबी के साथ दिखलाई गई है।

भारतमाता

आकार—१०½" × ९" दाम ।=)

इस चित्र का परिचय देने की अधिक आवश्यकता नहीं। जिसने हमको पैदा किया है, जो हमारा पालन कर रही है, जिसके हम कहलाते हैं, और जो हमारा सर्वस्व है उसी जननी जन्मभूमि भारत-माता का तपस्विनी वेश में यह दर्शनीय चित्र बनाया गया है।

अनुपम पुस्तकें! अनुपम पुस्तकें!! अनुपम पुस्तकें!!!

मानसिक आकर्षण द्वारा

विद्यासागर

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड २] अक्टोबर, १९१६ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २०२

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।≈)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची।

पृष्ठ

चित्र-सूची।

विज्ञापन देकर माल बेचने वालों के काम की बात।

~~इलाहाबाद (प्रयाग-संयुक्त प्रान्त की राजधानी है—हिन्दुओं का बड़ा तीर्थ-स्थान है, साथ ही~~ और सर्व

संशोधन—चित्रसूची में ८-११ की जगह ८-११ और आगे इसी क्रम से पढ़िए।

इस कमी को दूर करने के लिये हमने सं० १९१४ में यहाँ हार्डिञ्ज थियेटर बनवाया है—२ वर्ष में ६ बड़ी बड़ी थियेटर कम्पनियाँ इसमें आकर ठहरीं, १ मर्तबे हमारे माननीय लफ्टीनेन्ट गवर्नर मेस्टन साहब बहादुर इसमें पधारे, २ बायस्कोप कम्पनियाँ आईं, एक बार कुश्ती का दंगल हुआ और ५ बड़े २ प्रभावशाली व्याख्यान इसमें हुए, जिसमें मिस ऐनीबेसैन्ट के व्याख्यान की आलोचना करते हुए लीडर पत्र का यह कहना है कि लगभग ३५०० मनुष्य इसके भीतर बैठ गए थे और इतने ही बाहर हाते में खड़े थे। सारांश यह कि यह जब से बना है तब से इसमें एक न एक काम ऐसे होते ही रहे कि जिसमें हजारों मनुष्य इसमें आते रहे। हमने कलकत्ता बम्बई की नाटक-शालाओं में यह देखा है कि बड़े बड़े दूकानदार अपने अपने साइनबोर्ड वहाँ थियेटरों में लगाते हैं और उससे लाभ उठाते हैं बहुत से तो नाटक के पर्दों पर अपने अपने विज्ञापन देते हैं—हमारे नाटकशाला का हाता बहुत बड़ा है जिसमें अब हम एक पथिक आश्रम बना रहे हैं। नाटकशाला में इतना स्थान है कि १००० साइनबोर्ड बड़े सुभीते से लगाये जा सकते हैं। पर्दों पर भी विज्ञापन दिये जा सकते हैं और सर्वसाधारण के सुभीते लिए २ फुट १ फुट के साइनबोर्ड के १ साल तक लगाने का दाम केवल ३) है, जो साइनबोर्ड के साथ आना चाहिए। पर्दों पर विज्ञापन लिखाने का दाम १) फुट है। साथ ही जो महाशय यहाँ शहर में अपने विज्ञापन प्रसिद्ध स्थानों पर चिपकाना चाहें या बटवाना चाहें वह भी हमसे पत्र-व्यवहार करें। प्रयाग ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान में विज्ञापन देने का इससे उत्तम उपाय दूसरा नहीं है, इस लिये शीघ्रता कीजिये। अधिक बड़े व अधिक समय तक विज्ञापन लगाये रहने की बाबत पत्र-द्वारा तै करना चाहिये। यदि कोई महाशय हम को अपनी ऐजेन्सी देना चाहें तो हम बड़े उत्साह से उसे स्वीकार करेंगे—

पण्डित मदनमोहन,

मालिक हार्डिञ्ज थियेटर।

इलाहाबाद यू. पी.

जमना कोल ट्रेडिंग कम्पनी मथुरा U. P.

डोंगरे का बालामृत.
शीशी का दाम १२ आना.
टपाल खर्च ४ आना.
के. टी. डोंगरे कंपनी.
गिरगाम बम्बई.
DONGRE'S BALAMRIT
THE IDEAL TONIC FOR CHILDREN.
के. टी. डोंगरे कं. गिरगांव मुंबई.
प्रशंसापत्र
सेठ कामजी गोविंदजी, नं० ४७ एजरा स्ट्रीट कलकत्ता लिखते हैं:—
"डोंगरे का बालामृत बच्चों के वास्ते आशीर्वाद के समान है। एक बन्द पिलाने से बच्चा फिर आप ही से मांग लेता है। बालामृत पीने में मीठा और पुष्टिकारक है। इसलिये हर एक कुटुम्बियों से हम सिफारिश करते हैं कि बच्चों को (डोंगरे का) बालामृत देके फायदा कर लेवें।"
प्रशंसापत्र

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य
हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य्य वर्षों से उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे, जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए सहस्रों आर्य्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्य समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य्य को यह ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है। कुल मिला कर रायल आठ पेजी साँचे के ६१५+५७ पृष्ठ हैं।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी का मूल्य केवल ४) ही है। जल्द मँगाइए।

सम्पत्तिशास्त्र ।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

आप जानते हैं जर्मन, अमरीका, इँगलैंड और जापान आदि देश दिन दिन क्यों समृद्धिशाली होते जाते हैं? क्या आपको मालूम है कि भारतवर्ष दिन पर दिन क्यों निर्धन होता जाता है? ऐसी कौनसी चीज़ है जिसके होने से दूसरे देश मालामाल होते चले जाते हैं और जिसके अभाव से यह भारत ग़ारत हो रहा है? लीजिए, हम बताते हैं, उस चीज़ का नाम है "सम्पत्तिशास्त्र"। इसी के न जानने से आज यह भारत—भूखों मर रहा है, दिन दिन निर्धन होता चला जा रहा है। आज तक हमारे देश में, हिन्दी भाषा में, ऐसा उत्तम शास्त्र कहीं नहीं छपा था। लीजिए, इसे पढ़ कर देश की दशा सुधारिए। मूल्य सजिल्द का २॥) ढाई रुपये।

शिक्षा ।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

बाल-बच्चोंदार मनुष्यों को चाहिए कि स्पेन्सर की शिक्षा-संबन्धिनी मीमांसा को पढ़ें और अपनी सन्तति की शिक्षा का सुप्रबन्ध कर के अपने पितृत्व धर्म्म से उद्धार हों। जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर अवश्य आरूढ़ होंगे। इससे उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए। पुस्तक की भाषा क्लिष्ट नहीं है। पृष्ठ-संख्या ४०० से ऊपर है। काग़ज़ चिकना और मोटा है। छपाई साफ़ सुथरी है। सुवर्णाक्षरों से अलंकृत मनोहर जिल्द बँधी हुई है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है; हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित है। पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है। ऐसी अनमोल पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ २॥) ढाई रुपया रक्खा गया है।

प्रकृति ।

मूल्य १) एक रुपया

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जानने वालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें सौर जगत् की उत्पत्ति, आकाश-तरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं।

❀ ❀ ❀ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❀ ❀ ❀

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फ़ील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० रूपीचरणाप भट्ट, बी० ए०, माग)

पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य १) मात्र ।

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है ।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बना कर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको यह पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है।

समृद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे समृद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी समृद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और समृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी समृद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वा-वलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है ।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया ।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'बङ्गेरउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः क़िस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने ।

नूतनचरित्र ।

(बाबू रामचन्द्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

दो वर्ष बाद उसका वह पद टूट गया। इससे १८४६ तक वह बेकार रहा। परन्तु इसी वर्ष वह पे-मास्टर-जनरल (Paymaster-General) के पद पर नियुक्त किया गया। इस पद पर रहने से उसे अपना प्रसिद्ध इतिहास (History of England) लिखने के लिए यथेष्ट अवकाश मिला। १८४७ में उसके सहकारी कर्मचारियों से उसकी अनबन हो गई। इस कारण उसने अपना पद त्याग दिया और केवल साहित्य-सेवा करने लगा। अपने इतिहास की दो प्रारम्भिक जिल्दें, १८४८ में पूर्ण करके, उसने प्रकाशित कीं। इस पर उसकी योग्यता और विद्वत्ता का अच्छा परिचय लोगों को मिला। उसकी ये पुस्तकें प्रकाशित होते ही हाथों हाथ बिक गईं।

सन् १८५२ ईसवी में वह फिर पार्लियामेंट का मेम्बर चुना गया। पर इस काम में अब उसका मन न लगने लगा। फल यह हुआ कि उसने अपने अन्त के १२ वर्ष केवल इँगलेंड का इतिहास लिखने में बिताये। इसके अतिरिक्त वह समय समय पर और भी पुस्तकें तथा लेख लिखता रहा। उसने जीवनचरितों की एक माला, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (Encyclopaedia Britannica) में, प्रकाशित कराई। मरते समय तक इँगलेंड के इतिहास की चार जिल्दें उसने लिख डालीं। पाँचवीं जिल्द अधूरी रह गई। १८५७ में वह लार्ड बनाया गया। इसके सिवा उसको और भी बहुत सी आदरसूचक पदवियाँ मिलीं।

यह अद्भुत परिश्रमी और विद्वान् पुरुष २८ दिसम्बर १८५८ ईसवी को, थोड़े ही दिनों की बीमारी के बाद, स्वर्ग को सिधारा। यद्यपि उसको मरे पचास वर्ष से भी अधिक हुए तथापि उसका सुयश पूर्ववत् फैला हुआ है। उसका लिखा हुआ पीनल-कोड इस सुयश का विशेष कारण है। उसका लिखा हुआ इतिहास पढ़ने वालों पर जादू का सा असर पड़ता है।

ऐसे ऐसे अदम्य परिश्रमी और साहित्यसेवी पुरुषों की जीवनी पढ़ कर भी हम लोग शिक्षा नहीं ग्रहण करते। यह दुःख की बात है। हिन्दी-साहित्य की सेवा को हमें अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि हम अपना कर्त्तव्य करते तो हिन्दी-साहित्य इतना दरिद्री न बना रहता। ख़ैर, अब से सही।

रामबहादुर पाण्डेय।

बिना तार का टेलीफ़ोन।

बिजली के आविष्कार ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। हमारे पूर्वज बिजली की अद्भुत लीलाओं को कभी विचार में भी न ला सके थे। यदि उनमें कोई आधुनिक वैज्ञानिक पैदा हुआ होता और वह बिजली के करतब दिखला सकता तो सचमुच वह ईश्वर की पदवी पा जाता। किन्तु आज कल ऐसी ऐसी विचित्र वैज्ञानिक बातें हो रही हैं जो साधारण मनुष्य को भी आसानी से समझा दी जा सकती हैं। इन आश्चर्य-जनक क्रियाओं का आधार प्राकृतिक नियम हैं, इनमें अप्राकृतिकता कुछ भी नहीं।

हमारे पिछड़े हुए भारत में भी अब अनेक नगर ऐसे हैं जहाँ बिजली के द्वारा टेलीफ़ोन, तारबर्क़ी, रोशनी, पंखा, चक्की, छापेख़ाने इत्यादि चलते हुए देखे जाते हैं। बड़े बड़े नगरों और फ़ौजी छावनियों में बे-तार की तारबर्क़ी के ऊँचे ऊँचे लट्ठे भी दिखलाई पड़ते हैं। किन्तु अभी बे-तार का टेलीफ़ोन यहाँ देखने में नहीं आता। क्योंकि इसका आविष्कार अभी अभी हुआ है। तब भी अमेरिका में बे-तार के टेलीफ़ोन लगाये जा रहे हैं, जिनके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से दूर बैठ कर, बिना किसी तार के सहारे, बात-चीत कर सकता है।

अध्यापक धोंडो केशव कर्वे, बी० ए०।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

जब कोई मनुष्य इस यन्त्र में बोलता है तब मुँह में ध्वनि की लहरें आकर गोलाकार वस्तु में टक्कर मारती हैं, जिससे गोलाकार वस्तु हिलने लगती है। पिछले और अगले ढक्कन भी ध्वनि के धक्के खाकर कूद में बढ़ने और घटने लगते हैं। इनके बीच जो पिसा हुआ कोयला रहता है उसका गुण यह है कि जब यह ढीला पड़ा रहता है तब बिजली की शक्ति को कम करता है, किन्तु जब दोनों ढक्कनों की शक्ति से दबता है तब उससे अधिक बिजली बह सकती है। इसलिए जब तारों द्वारा एक बैटरी से इन ढक्कनों का सम्बन्ध कर दिया जाता है और जब ध्वनि का धक्का इन ढक्कनों पर लग कर पिसा हुआ कोयला दबता है तब अधिक बिजली बहती है। मनुष्य की ध्वनि का प्रत्येक शब्द ख़ास शक्ति का होता है, जिससे प्रत्येक शब्द उच्चारण करने से जुदा जुदा शक्ति के धक्के ढक्कनों पर लग कर जुदा जुदा शक्ति की बिजली बहने लगती है।

यह बिजली तारों के द्वारा दूसरी ओर सुनने वाले के पास पहुँचती है। सुनने वाले के पास "रिसीवर" नामक यन्त्र होता है। उसमें भी एक ढक्कन होता है, जो एक चुम्बक की शक्ति के लोहे के पास लगा रहता है। जब बिजली आती है तब चुम्बक अधिक या कम शक्तिशाली हो जाता है और ढक्कन को अपनी ओर खींचता है। खिंच कर ढक्कन वायु में टक्कर मारता है, जिससे ध्वनि होने लगती है। बिजली की शक्ति मनुष्य के शब्दों पर आश्रित रहती है और उसी के अनुसार ध्वनि बनती है। इसलिए जिस प्रकार की ध्वनि एक मनुष्य एक सिरे पर करता है उसी प्रकार की ध्वनि दूसरे सिरे पर दूसरा मनुष्य सुनता है।

बिना तार वाले टेलीफ़ोन में बिजली ले जाने वाले तार उस प्रकार के नहीं होते जिस प्रकार के बिना तार की तारबर्क़ों में होते हैं। बिजली की लहरें तार द्वारा न भेजी जाकर आकाश (Ether) द्वारा भेजी जाती हैं। जैसे सूर्य की किरणें शून्यमय आकाश द्वारा हमारे पास पहुँचती हैं वैसेही बिजली की लहरें भी पहुँचती हैं।

एक सिरे से दूसरे सिरे तक आवाज़ पहुँचाने के लिए उसी प्रकार के यन्त्र होते हैं जिस प्रकार के बे-तार की तारबर्क़ी में खुट खुट की आवाज़ पहुँचाने के लिए होते हैं। एक बड़ा ऊँचा मस्तूल गाड़ा जाता है, जिसके ऊपर "म" यन्त्र लगा रहता है जो बिजली की लहरों को पकड़ कर नीचे सुनने वाले तक पहुँचाता है। "ट" टेलीफ़ोन होता है, जिसके सहारे ख़बर भेजी और सुनी जाती है। "डा" डाइनामो बिजली बनाने की मैशीन होती है, जो बड़ी तेज़ी से चल कर तेज़ बिजली भेजती है। इसका एक सिरा ज़मीन में गड़ा रहता है और दूसरा टेलीफ़ोन से लगा रहता है।

अभी तक बे-तार के टेलीफ़ोन द्वारा ख़बर भेजने में इतनी सफलता नहीं हुई जितनी बे-तार के तार में हुई है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार शब्द भेजने के मार्ग में इतनी बाधायें आ पड़ती हैं कि साफ़ साफ़ शब्द बहुत दूर तक नहीं पहुँचते। किन्तु इन बाधाओं को दूर करने के लिए बड़े तेज़ और शक्तिशाली यन्त्रों की खोज हो रही है। मालूम होता है कि थोड़े ही दिनों में शब्द भी उसी प्रकार दूर तक सफलतापूर्वक भेजे जा सकेंगे जिस प्रकार बे-तार द्वारा तार की ख़बरें भेजी जाती हैं।

जगन्नाथ खन्ना
(लन्दन)

बन्धु-वियोग।

हुआ जब युद्ध में बेहोश भाई—
पड़ी तब राम के मुख पर द्रवाई।
अकड़-मद-हर सुग्रगुण मम्नु लीला—
पलक भर में हुआ मुर्दिम सीला ॥१॥

हमारा हाथ प्यारे कौन देगा—
कहाँ अब हाथ यह बेड़ा लगेगा।
सुनेगी यह खबर जब हाय सीता—
नहीं सौमित्र देवर आज जीता ॥२०॥

विकल हो शोक से सिर पीट लेगी—
निराशा-दुःख से तज प्राण देगी।
मुझे भी प्राण रखना भार होगा—
मुझे सूना सकल संसार होगा ॥२१॥

उठो तुम निशिचरों को चूर कर दूँ—
तुम्हारी मैं प्रतिज्ञा पूर्ण कर दूँ।
तुम्हें यदि काल ने कुछ दुख दिया हो—
बताओ बन्धु! तो मुझको बताओ ॥२२॥

उसी के दण्ड से सिर तोड़ दूँ मैं—
तुम्हारे शत्रु को क्यों छोड़ दूँ मैं।
छुटे तुम बन्धु साहस छूटता है—
हमारा हाथ दिल अब टूटता है" ॥२३॥

सुनी जब राम की करुणा-कहानी—
हुए पत्थर पिघल कर हाय पानी।
सभी कपि-भालु धीरज खो उठे सब—
रुके रोके न आँसू रो उठे सब ॥२४॥

हुई तब तक खबर हनुमान आये—
बने करुणा-जलधि-जलयान आये।
जड़ी ही वैद्य की सञ्जीवनी की—
लगी होने दवा सौमित्रजी की ॥२५॥

सुँघाते ही दवा के होश आया—
उठे सोते हुए से जोश आया—
"कहाँ है इन्द्रजित् दुश्मन कहाँ है—
कहाँ प्रभु-शर हमारा धनु कहाँ है" ॥२६॥

वचन सुन कर हँसे रघुनाथ हरषे—
मिले भाई सुमन सुर फूल बरसे।
सकल सम्पत्ति चाहे काल लूटे—
किसी का पर न प्यारा बन्धु छूटे ॥२७॥

सनेही

रक्षा-बन्धन।

(१)

"माँ मैं भी राखी बाँधूगी"।

श्रावणी की धूमधाम है। नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे हैं। बहनें भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियाँ बाँध बाँध कर चाँदी कर रहे हैं। ऐसे ही समय एक छोटे से घर में एक दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा—"माँ मैं भी राखी बाँधूगी"।

उत्तर में माता ने एक ठंडी साँस भरी और कहा—"किस के बाँधेगी बेटी—आज तेरा भाई होता तो—।"

माता आगे कुछ न कह सकी। उसका गला रुँध गया और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये।

अबोध बालिका ने अकुला कर कहा—"तो क्या भइयाई (ही) के राखी बाँधी जाती है और किसी के नहीं? भइया नहीं है तो अम्मा मैं तुम्हारे ही राखी बाँधूगी"।

इस दुःख के समय भी पुत्री की बात सुन कर माता मुसकराने लगी और बोली—"अरी तू इतनी बड़ी हो गई—भला कहीं माँ के भी राखी बाँधी जाती है"?

बालिका ने कहा—"वाह, जो पैसा दे उसी के राखी बाँधी जाती है"।

माता—"अरी पगली! पैसे पर नहीं—भाई ही के राखी बाँधी जाती है"।

यह सुन कर बालिका कुछ उदास हो गई।

माता घर का काम काज करने लगी। घर का काम शेष करके उसने पुत्री से कहा—"आ तुझे निहला (नहला) दूँ"।

बालिका कुछ गम्भीर करके बोली—"मैं नहीं नहाऊँगी"।

माता—"क्यों, नहायेगी क्यों नहीं"?

बालिका—"मुझे क्या किसी के राखी बाँधना है"?

माता—"अरी राखी नहीं बाँधती है तो क्या नहायेगी भी नहीं। आज त्योहार का दिन है। चल उठ नहा"।

बालिका—"राखी नहीं बाँधूँगी तो निहाना काहे का"?

माता—(कुछ क्रुद्ध होकर) "अरी कुछ सिड़न हो गई है।

राखी-सामी-रह बगा रखनी है। यही राखी बाँधने वाली बची है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता। पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढाई बरस की होते होते माई से घर छुड़ा दिया। तेरे ही कर्मों से सब नाश (नष्ट) हो गया।"

बालिका बड़ी अप्रतिभ हुई और आँखों में आँसू भरे हुए चुपचाप सहने को खड़ी हुई।

× × × × ×

एक घण्टा पश्चात् हम उसी बालिका को उसके घर के द्वार पर खड़ा देखते हैं। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े बड़े नेत्रों में पानी डबडबा रहा है।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्यों? जान पड़ता है, वह किसी प्रतीक्षा में खड़ी है, क्योंकि उसके द्वार के सामने से जब कोई पुरुष निकलता है तब वह बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर ताकने लगती है। मानों वह मुख से कुछ कहे बिना, केवल इच्छा-शक्ति ही से, उस पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी। परन्तु जब उसे इसमें सफलता नहीं होती तब उसकी उदासी बढ़ जाती है।

इसी प्रकार एक, दो, तीन करके कई पुरुष, बिना उसकी ओर देखे, निकल गये।

अन्त को बालिका निराश होकर घर के भीतर लौट जाने को उद्यत ही हुई थी कि एक सुन्दर युवक की दृष्टि, जो कुछ सोचता हुआ धीरे धीरे आ रहा था, बालिका पर पड़ी। बालिका की आँखें युवक की आँखों से जा लगीं। न जाने उन उदास तथा करुणा-पूर्ण नेत्रों में क्या जादू भरा था, जिसके प्रभाव से युवक ठिठक कर खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से बालिका को सिर से पैर तक देखने लगा। ध्यान से देखने पर युवक को ज्ञात हुआ कि बालिका की आँखें अश्रुपूर्ण हैं। तब युवक अधीर हो गया। उसने निकट जाकर पूछा—"बेटी क्यों रोती हो"?

बालिका इसका कुछ उत्तर न दे सकी। परन्तु उसने अपना एक हाथ युवक की ओर बढ़ाया। युवक ने देखा, बालिका के हाथ में एक लाल डोरा है। उसने पूछा—"यह क्या है"? बालिका ने आँखें नीची करके बता दिया—"राखी"। युवक समझ गया। उसने मुसकरा कर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

बालिका का मुख-कमल खिल उठा। उसने बड़े चाव से युवक के हाथ में राखी बाँध दी।

राखी बँधवा चुकने पर युवक ने जेब में हाथ डाला और दो रुपये निकाल कर बालिका को देने लगा। परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। वह बोली—"नहीं, यह नहीं, पैसे दो"।

युवक—"ये पैसे से भी अच्छे हैं"।

बालिका—"नहीं—मैं पैसे लूँगी, यह नहीं"।

युवक—"ले लो बिटिया। इनके पैसे मँगा लेना। बहुत से मिलेंगे"।

बालिका—"नहीं, पैसे दो"।

युवक ने चार आने पैसे निकाल कर कहा—"अच्छा, ले पैसे भी ले और यह भी ले"।

बालिका—"नहीं, खाली पैसे लूँगी"।

"तुम्हें दोनों लेने पड़ेंगे"—यह कह कर युवक ने बल-पूर्वक पैसे तथा रुपये बालिका के हाथ पर रख दिये।

इतने में घर के भीतर से किसी ने पुकारा—"अरी सर-सुती (सरस्वती) कहाँ गई"?

बालिका ने—"आई" कह कर युवक की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि डाली और भीतर चली गई।

(२)

गोलागंज (लखनऊ) की एक बड़ी तथा सुन्दर अट्टालिका के एक सुसज्जित कमरे में एक युवक चिन्ता-सागर में निमग्न बैठा है। कभी वह लम्बी साँसें भरता है, कभी रूमाल से आँखें पोंछता है, कभी आप ही आप कहता है—"हा! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टायें निष्फल हुईं। क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। उन्हें कहाँ ढूँढ़ूँ। सारा लखनऊ छान डाला। परन्तु फिर भी पता न लगा—"। युवक अपने कुछ और कहने को था कि कमरे का द्वार धीरे धीरे खुला और एक नौकर अन्दर आया।

युवक ने कुछ विरक्त होकर पूछा—"क्यों, क्या है"?

नौकर—"मास्टर रामनाथ बाबू आये हैं"।

युवक (सँभल कर) "अच्छा यहीं भेज दो"।

नौकर के चले जाने पर युवक ने रूमाल से आँखें पोंछ डालीं और मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगा।

द्वार फिर खुला और एक युवक अन्दर आया।

युवक—"आओ भाई रामनाथ"।

श्रीयुत महादेव केशव गाडगिल ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

अमरनाथ—"कहो घनश्याम, आज अकेले कैसे बैठे हो? कानपुर से कब लौटे"?

घनश्याम—"कल आया था"।

अमरनाथ—"इलाहाबाद भी अवश्य ही उतरे होगे"!

घनश्याम—(एक ठण्डी साँस भर कर) "हाँ उतरा तो था। परन्तु व्यर्थ। वहाँ अब मेरा क्या रक्खा है"?

अमरनाथ—"परन्तु करो क्या। हृदय नहीं मानता है—क्यों! और सच पूछो तो बात ही ऐसी है। यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो कदाचित् मैं भी ऐसा ही करता"।

घनश्याम—"क्या कहूँ मित्र, मैं तो हार गया। तुम तो जानते ही हो कि मुझे जबलपुर आकर रहे एक वर्ष हो गया और तब से मैं यहाँ आया हूँ मैंने उन्हें ढूँढ़ने में कुछ भी कसर उठा नहीं रक्खी—परन्तु सब व्यर्थ"।

अमरनाथ—"उन्होंने इलाहाबाद न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा—इसका भी कोई पता नहीं चलता"।

घनश्याम—"इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले आने के एक वर्ष पश्चात् इलाहाबाद से चले गये। परन्तु कहाँ गये, यह नहीं मालूम"।

अमरनाथ—"यह किससे मालूम हुआ"?

घनश्याम—"उसी मकान वाले से जिसके मकान में हम लोग रहते थे"।

अमरनाथ—"हा शोक"!

घनश्याम—"कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। यदि मैं उन्हें छोड़ कर न आता, यदि आया था तो उनकी खोज ख़बर लेता रहता। परन्तु मैं तो यहाँ आकर रुपया कमाने में इतना व्यस्त रहा कि घर की कभी याद ही न आई। और जो आई भी तो क्षणमात्र के लिए। उफ़, इतना भी कोई अपने घर को भूल जाता है। मैं ही ऐसा अधम"—

अमरनाथ—(बात काट कर) "अभी नहीं, सब समय की बात है"।

घनश्याम—"मैं यहाँ न आता तो अच्छा था"।

अमरनाथ—"तुम्हारा यहाँ आना तो व्यर्थ नहीं हुआ। यदि न आते तो इतना धन—!"

घनश्याम—"आग लगे ऐसे धन में। ऐसा धन किस काम का। मेरे हृदय में सुख-शान्ति नहीं तो धन किस मर्ज़ की दवा है"।

अमरनाथ—"ऐं, यह हाथ में लाल डोरा क्यों बाँधा है"?

घनश्याम—"इसकी तो बात ही भूल गया। यह राखी है"।

अमरनाथ—"भई वाह, अच्छी राखी है। लाल डोरे को राखी बताते हो। यह किसने बाँधी है। किसी बड़े कञ्जूस मारवाड़ी ने बाँधी होगी। दुष्ट ने एक पैसा तक ख़र्चना पाप समझा। डोरे ही से काम निकाला"।

घनश्याम—"संसार में यदि कोई बढ़िया से बढ़िया राखी बन सकती है तो मुझे उससे भी कहीं अधिक प्यारा यह लाल डोरा है"। यह कह कर घनश्याम ने उसे खोल कर बड़े यत्नपूर्वक अपने बक्स में रख दिया।

अमरनाथ—"भई, तुम भी विचित्र मनुष्य हो। आख़िर यह डोरा बाँधा किसने है"।

घनश्याम—"एक बालिका ने"।

पाठक समझ गये होंगे कि यह घनश्याम कौन है।

अमरनाथ—"बालिका ने कैसे बाँधा और कहाँ?"

घनश्याम—"कानपुर में"।

घनश्याम ने सारी घटना कह सुनाई।

अमरनाथ—"यदि यह बात है तो सच ही यह डोरा अमूल्य है"।

घनश्याम—"न जाने क्यों, उस बालिका का ध्यान मेरे मन से नहीं उतरता"।

अमरनाथ—"उसकी सरलता तथा प्रेम ने तुम्हारे हृदय पर प्रभाव डाला है। भला उसका नाम क्या है"?

घनश्याम—"नाम तो मुझे नहीं मालूम। भीतर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा तो था। परन्तु मैं सुन न सका"।

अमरनाथ—"अच्छा, ख़ैर। अब तुमने क्या करना विचारा है"?

घनश्याम—"घर पर बैठ कर पुचकार देने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूँ। मुझ से जो हो सका, मैं कर चुका"।

अमरनाथ—"हाँ, यही ठीक भी है। ईश्वर पर छोड़ दो। देखो क्या होता है"।

(२)

पूर्वोक्त घटना हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। घनश्यामदास पिछली बातें प्रायः भूल गये हैं। परन्तु उस बालिका की याद कभी कभी आ जाती है। उसे देखने वे एक बार कानपुर गये भी थे। परन्तु उसका पता न चला। उस घर में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह वहाँ से, अपनी माता सहित, बहुत दिन हुए, न जाने कहाँ चली गई। इसके पश्चात् ज्यों ज्यों समय बीतता गया उसका ध्यान भी कम होता गया। पर अब भी जब वे अपना बक्स खोलते हैं तब कोई वस्तु देख कर चौंक पड़ते हैं और साथ ही कोई पुराना दृश्य भी आँखों के सामने आ जाता है।

घनश्याम अभी तक अविवाहित हैं। पहले तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करेंगे ही नहीं। पर मित्रों के कहने और स्वयं अपने अनुभव से उनका यह विचार बदल दिया। अब वे विवाह करने पर तैयार हैं। परन्तु अभी तक कोई कन्या उनकी रुचि के अनुसार नहीं मिली।

जेठ का महीना है। दिन भर की जला देने वाली धूप के पश्चात् सूर्यास्त का समय अत्यन्त सुखदायी प्रतीत हो रहा है। इस समय घनश्यामदास अपनी कोठी के बाग़ में मित्रों सहित धीरे धीरे मन्द मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। आपस में हास्य-रस-पूर्ण बातें हो रही हैं। बातें करते करते एक मित्र ने कहा—"अभी अभी तक अमरनाथ नहीं आये"?

घनश्याम—"वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा"।

दूसरा—"कहीं रम नहीं, वह आज कल तुम्हारे लिए दुलहन ढूँढ़ने की फ़िक्र में रहता है"।

घनश्याम—"बड़े दिल्लगी-बाज़ हो"।

दूसरा—"नहीं, दिल्लगी की बात नहीं"।

तीसरा—"हाँ, परसों मुझ से भी वह कहता था कि घनश्याम का विवाह हो जाय तो मुझे चैन पड़े"।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ खाँसते हुए आ पहुँचे।

घनश्याम—"आओ यार, बड़ी उम्र—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी"।

अमरनाथ—"इस समय बोलिए नहीं, नहीं एक घूँसा मार बैठूँगा"।

दूसरा—"आज पड़ता है, कहीं से पिट कर आये हो"।

अमरनाथ—"तू फिर बोला—क्यों?"।

दूसरा—"क्यों, बोलना किसी के हाथ बेच दिया है"?

अमरनाथ—"अच्छा, दिल्लगी छोड़ो। एक आवश्यक बात है"।

सब उत्सुक होकर बोले—"कहो कहो, क्या बात है"?

अमरनाथ—(घनश्याम से) "तुम्हारे लिए दुलहन ढूँढ़ ली है"।

सब—(एकस्वर से) "फिर क्या! तुम्हारी चाँदी है"।

अमरनाथ—"फिर वही दिल्लगी। यार तुम कैसे बेहूदे आदमी हो"।

तीसरा—"अच्छा, बताओ, कहाँ ढूँढ़ी"?

अमरनाथ—"यहीं, शहर में"।

दूसरा—"लड़की का पिता क्या करता है"?

अमरनाथ—"पिता तो स्वर्गवास करता है"।

तीसरा—"यह बुरी बात है"।

अमरनाथ—"लड़की है और उसकी माँ। बस, तीसरा कोई नहीं। विवाह में कुछ मिलेगा भी नहीं। लड़की की माता बड़ी ग़रीब है"।

दूसरा—"यह उससे भी बुरी बात है"।

तीसरा—"लो, मर गये, पड़े चोट गये। एक तो रँडुआ, दूसरे ग़रीब। कहाँ हमारे घनश्याम इतने धनवान और कहाँ ससुराल इतनी दरिद्र! लोग क्या कहेंगे"?

अमरनाथ—"अरे भाई, कहने और न कहने वाले हमीं तुम हैं। और यहाँ उनका कौन बैठा है जो कहेगा"।

घनश्यामदास ने एक ठंडी साँस ली।

तीसरा—"उसमें क्या भलाई देखी जो यह सम्बन्ध करना विचारा है"।

अमरनाथ—"लड़की की भलाई। लड़की लक्ष्मी-रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी ही सुशील। ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूँढ़ी जाय तो भी कदाचित् ही मिले"।

दूसरा—"हाँ, यह अवश्य एक बात है"।

अमरनाथ—"परन्तु लड़की की माता बड़ा दिन यह विवाह करने कहती है"।

तीसरा—"यह तो व्यवहार की बात है"।

घनश्याम—"और, मैं भी लड़की देख कर विवाह करूँगा"।

दूसरा—"यह भी ठीक ही है"।

अमरनाथ—"तो इसके लिए क्या विचार है"?

तीसरा—"विचार क्या, लड़की देखेंगे"।

अमरनाथ—"तो कब"?

घनश्याम—"कल"।

(४)

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई मटियागञ्ज की एक गली के सामने आ खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर दोनों मित्र गली में घुसे। लगभग सौ क़दम चल कर अमरनाथ एक छोटे से मकान के सामने खड़े हो गये और मकान का द्वार खटखटाया।

घनश्याम बोले—"मकान देखने से तो बड़े ग़रीब जान पड़ते हैं"।

अमरनाथ—"हाँ, बात तो ऐसी ही है, परन्तु यदि लड़की तुम्हारे पसन्द आ जाय तो यह सब सहन किया जा सकता है"।

इतने में द्वार खुला और दोनों भीतर गये। सन्ध्या हो जाने के कारण मकान में अँधेरा हो गया था। अतएव ये लोग द्वार खोलने वाले को स्पष्ट न देख सके।

एक दालान में पहुँच कर ये दोनों चारपाइयों पर बिठा दिये गये और खिड़की वाली ने, जो स्त्री थी, कहा—"मैं ज़रा दिया जला लूँ"।

अमरनाथ—"हाँ, जला लो"।

स्त्री ने दीपक जलाया और पास ही एक दीवार पर उसे रख दिया। फिर इनकी ओर मुख करके वह नीचे चटाई पर बैठ गई। परन्तु ज्यों ही उसने घनश्याम पर अपनी दृष्टि डाली—एक हृदयभेदी आह उसके मुख से निकली—और वह ज्ञानशून्य होकर गिर पड़ी।

स्त्री की ओर कुछ अँधेरा था। इस कारण इन दोनों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उसे उठाने को बढ़े। परन्तु ज्योंही उन्होंने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंही घनश्याम के मुख से निकला—"मेरी माता"—और उठ कर वे भूमि पर बैठ गये।

अमरनाथ विस्मित होकर काष्ठवत् बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले—"उफ़, ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। जिसके लिए तुमने न जाने कहाँ कहाँ की ठोकरें खाईं वे अन्त को इस प्रकार मिले"।

घनश्याम अपने को सँभाल कर बोले—"थोड़ा पानी मँगाओ"।

अमरनाथ—"किससे मँगाऊँ। यहाँ तो कोई और दिखाई ही नहीं पड़ता। परन्तु, हाँ, वह लड़की तुम्हारी—" कहते अमरनाथ रुक गये। फिर उन्होंने पुकारा—"बिटिया, थोड़ा पानी दे जाओ"।

परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा—"बेटी तुम्हारी माँ अचेत हो गई है। थोड़ा पानी दे जाओ"।

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् एक पूर्णवयस्क लड़की लोटा लिये आई। लड़की मुँह कुछ ढके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की आँखें तथा मुख धो दिया। थोड़ी देर में उसे होश आया। उसने आँखें खोलते ही फिर घनश्याम को देखा। तब वह शीघ्रता से उठ कर बैठ गई और बोली—"है, मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ? घनश्याम क्या तू मेरा खोया हुआ घनश्याम है? या कोई और"?

घनश्याम की आँखों से अश्रुधारा फूट निकली। वह रोता हुआ माता के चरणों पर लोट गया और बोला—"हाँ, माँ, मैं तुम्हारा वही कपूत घनश्याम हूँ जो छोड़ कर भाग गया था"।

माता ने पुत्र को उठा कर छाती से लगा लिया और अश्रुबिन्दु विसर्जन किये। परन्तु वे बिन्दु सुख के थे अथवा दुख के—कौन कहे?

लड़की ने यह सब देख सुन कर अपना मुँह खोल दिया और भैया भैया कहती हुई घनश्याम से लिपट गई। घनश्याम ने देखा—लड़की कोई और नहीं, वही बालिका

है जिसने पाँच वर्ष पूर्व उसके राखी बाँधी थी और जिसकी याद उन्हें प्रायः आया करती थी ।

× × × × ×

श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव । घनश्यामदास की कोठी खूब सजाई गई है । घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं । इतने में एक दासी ने आकर कहा—"बाबू भीतर चलो" । घनश्याम भीतर गये । माता ने उन्हें एक आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगा कर राखी बाँधी । घनश्याम ने दो अशरफ़ियाँ उसके हाथ में धर दीं और मुसकरा कर बोले—"क्या पैसे भी देने होंगे" ?

सरस्वती ने हँस कर कहा—"नहीं, भैया ये अशरफ़ियाँ पैसों से अच्छी हैं । इनसे बहुत से पैसे आवेंगे ।

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

भारतीय स्त्रियों का विश्वविद्यालय ।

आजकल की शिक्षा-प्रणाली में जो दोष हैं वे सभी पर विदित हैं । इन दोषों के कारण हमारी शिक्षा हम लोगों को जीविका-निर्वाह के लिए समर्थ नहीं करती । हम लोगों में स्वाभिमान नहीं । मातृभाषा के प्रति प्रेम की लहरें हृदय-सागर में नहीं उठतीं । जातीयता की धारा जिस ओर से बहनी चाहिए नहीं बहती । शिक्षा से जो लाभ होने हैं उन से हम बहुधा वञ्चित रहते हैं । हम में से अधिकांश लोग केवल नौकरी ही करने लायक होते हैं ।

यह तो हुई पुरुषों की बात । स्त्रियों के विषय में पहली बात तो यह है कि शिक्षा प्राप्त करने वाली स्त्रियाँ ही बहुत कम हैं । तथापि यह स्थिति सन्तोषदायक है । दिन पर दिन स्त्री-शिक्षा का विरोध कम होता जाता है । पर जब यह देखने में आता है कि स्त्रियों का भी उसी सदोष शिक्षा-प्रणाली से पाला पड़ता तब स्त्री-शिक्षा पर विचार करने वालों का चित्त व्यथित हुए बिना नहीं रहता । जातीयता का अभाव, मातृ-भाषा के प्रति तिरस्कार, इत्यादि दोष स्त्रियों में नहीं पाये जाते । सन् १८५५ के एक सुशिक्षित भारतवासी का चित्र, और १९१५ के एक सुशिक्षित का चित्र यदि पास पास रक्खा जाय, तो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर भी यह बताना कठिन होगा कि ये दोनों पुरुष एक ही जातीयता के अन्तर्गत हैं । पर स्त्रियों के विषय में यह बात नहीं । देशान्तरों में हमारी जो बहनें गई हैं उन्होंने अपनी जातीयता का त्याग नहीं किया । वे केवल अपनी पोशाक में ही पहचानी जा सकती हैं । किन्तु इससे यह नहीं कह सकते कि भारतीय स्त्रियों के मन पर इस शिक्षा-प्रणाली का असर बिलकुल न होगा । यदि इसकी कृपा से पुरुषों की यह दशा हुई है तो स्त्रियों की भी यही दशा होने का डर है ।

स्त्रियों के विषय में एक और बात का भी विचार करना है । वह है अँगरेज़ी माध्यम—अँगरेज़ी भाषा के द्वारा शिक्षा देना । पुरुषों के लिए भी इसकी आवश्यकता नहीं, यह जुलाई १९१५ की सरस्वती में राय साहब पण्डित गङ्गाप्रसाद त्रिपाठीजी ने अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है । अँगरेज़ी के द्वारा शिक्षा होने से स्त्रियाँ उच्च शिक्षा से बहुधा वञ्चित रहती हैं । स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र पुरुषों के कार्य-क्षेत्र से भिन्न है । इससे भी स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध अन्य रीति से करने का विचार स्त्री-शिक्षा के पक्षपातियों के मन में आता था । पर यथार्थ भारत में अपने विचार कार्य-रूप में परिणत करने वाले महापुरुष बहुत ही कम हैं । इस कारण आज तक वे विचार लेखनगर्भ के बाहर न गये थे ।

महाराष्ट्र में अपने विचारों को मूर्त-रूप देकर दिखलाने वाले जो थोड़े से लोग हैं उन्हीं में महाशय कर्वे की गणना है । आप नामी विद्वान नहीं, उत्तम वक्ता नहीं, अच्छे धनिक भी नहीं । आप में केवल एक गुण है । और वह है अपने बोलने के

अनुसार काम करना जो विचार आपके मन में दृढ़-मूल हुआ, और जिसका उच्चार आप ने किया, उसे आचार में लाने का प्रयत्न आप तन-मन-धन से करते हैं। स्त्री-शिक्षा का विचार आपके मन में बद्ध-मूल हुआ कि तुरन्त ही आपने तदनुकूल काम करना शुरू कर दिया। पूने से चार मील दूर, एक बिलकुल ही एकान्त स्थल में, आप ने अपना अनाथ-बालिकाश्रम खोल दिया। हवा, धूप, पानी का कुछ भी ख़याल न करके आप रोज़ वहाँ जाकर पढ़ाने लगे। दोपहर को फर्गुसन कालेज में गणित पढ़ाना और शाम को हिंगणे—जहाँ आश्रम खोला था—जाकर रात को तथा सुबह शिक्षा देना। इतना कष्ट उठा कर आप ने अनाथ-बालिकाश्रम, महिला-विद्यालय तथा निष्काम-कर्ममठ नाम की तीन संस्थायें स्थापित कीं और चलाईं। यह सब महाराष्ट्र के लोगों पर अच्छी तरह विदित है। भारतीय स्त्रियों के शिक्षार्थ आप ने बीस वर्ष तक जो परिश्रम किया है वह छिपा नहीं है। "स्त्रियांच्या उच्चशिक्षणार्थ माझी बीस वर्षे"—इस नाम की एक छोटी सी पुस्तिका का परिचय मराठी-भाषा-भाषियों को अच्छी तरह है। आप ने उसका एक हिन्दी संस्करण भी निकाला है। जो महाशय उसे पढ़ना चाहें वे आध आना भेज कर उसे मुफ़्त मँगा सकते हैं। सुपरिंटेंडेंट, महिलाश्रम, हिंगणे, पूना—इस पते पर चिट्ठी और पोस्टेज के लिए आध आना भेजने से यह पुस्तक मिल सकती है।

१९१५ ईसवी के दिसंबर में जो भारतवर्षीय सामाजिक परिषद् हुई थी उसके आप ही सभापति चुने गये थे। उस समय जब आप अपना अभिभाषण तैयार करने लगे तब अन्यान्य सामाजिक विषयों पर—जिन पर लोग बड़ी लेक्चरबाज़ी झाड़ते हैं—आप ने विशेष न लिख कर स्त्री-शिक्षा के ही विषय पर विशेष चर्चा की। इस सम्बन्ध में आप ने जापानी स्त्रियों के विश्वविद्यालय की एक रिपोर्ट पढ़ी। उसमें आप ने नई नई बातें कहीं। स्त्री-शिक्षा के विषय को आप ने व्यवस्थित रूप दिया और कुछ काम करके दिखलाने का निश्चय भी किया। आप ने अपने मन में "महाराष्ट्र-स्त्रियों का विश्वविद्यालय" स्थापन करने का विचार किया। पर—"उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः"—के अनुसार द्रव्याभाव से वे विचार वहीं मुरझाने पर ही थे कि आप के सहकारी श्रीयुत महादेव केशव गाडगील महाशय ने द्रव्य की थोड़ी बहुत मदद करने का वचन दिया। गाडगील महाशय भी धनिक नहीं। पर जो कुछ आपके पास था उसका संन्यास करके आप ने अकिञ्चन बनना निश्चित कर लिया और प्रति वर्ष एक हज़ार के हिसाब से दस वर्ष में दस हज़ार रुपया देना क़बूल किया। साथ ही श्रीमती सौभाग्यवती सरला बाई नाईक (तत्कालीन कुमारी कृष्णा बाई ठाकुर) एम० ए० ने भी अपने पितृतुल्य गोखले महाशय की स्मृति के उपलक्ष्य में जमा किये हुए ४००० रुपये देना मंज़ूर किया। इतनी सहायता मिलते ही कर्वे महाशय ने यह कार्य करने का सङ्कल्प किया। अनन्तर उन्होंने अनाथ-बालिकाश्रम की व्यवस्थापक मण्डली के सम्मुख इस कार्य का प्रारम्भ करने का प्रस्ताव करके उसकी सम्मति ली। मण्डली ने इस नूतन विश्वविद्यालय की संघटना करके सारी बातें अन्य सभासदों के सम्मुख उपस्थित कीं। इस संघटना में इस विद्या-पीठ के जो उद्देश दिये गये हैं उनमें मुख्यतः (१) मातृभाषा के ही माध्यम द्वारा स्त्रियों की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करना तथा (२) स्त्री-वर्ग की आवश्यकताओं के अनुसार ही शिक्षा के विषय चुनना, ये दो उद्देश हैं।

विद्यापीठ के घटक लोगों के तीन वर्ग किये गये हैं। (१) अनाथ-बालिकाश्रम-मण्डली के सभासद, (२) वार्षिक १० या एक दम ३०० रुपये देने वाले विद्यापीठ के पदवीधर, तथा (३) वार्षिक ५ या इकमुश्त १५० रुपये देने वाले साधारण लोग।

इनमें से अनाथ-बालिकाश्रम के सभासदों की संख्या ४०० थी ही। थोड़े के दो घटकों को एकत्र करना था। दूसरे घटक का आरम्भ, हिन्दू-विश्वविद्यालय के शिलारोपण-विषयक उत्सव में जब कर्वे महाशय गये तब, वहीं बनारस में किया गया। वहाँ अन्य-प्रान्तीय लोगों से इस बात का विचार करते करते यह निश्चय किया गया कि विद्यापीठ के नाम में "महाराष्ट्रीय" न रहे, "भारतवर्षीय" रहे। दूसरा शब्द व्यापक है, पहला सङ्कुचित। हेतु यह कि यदि कुछ अन्यप्रान्तीय पाठशालायें इस विद्यापीठ से सम्बन्ध रखना चाहें तो यही संघटना उनके भी काम आवे। यह सूचना अनाथ-बालिकाश्रम की मण्डली ने मान ली और १३ फ़रवरी १६ को "भारतवर्षीय-महिला-विद्यापीठ" की स्थापना निश्चित हुई।

इस व्यापक नाम के स्वीकार किये जाने पर बहुत से लोगों ने आपत्ति की। उन्होंने बहुत सी उल्टी सीधी बातें सुनाईं। विद्यापीठ के सञ्चालकों को यह बात भली भाँति ज्ञात है कि विद्यापीठ को भारतवर्षीय बनाने के लिए भारतवर्ष के प्रमुख प्रान्तों में तत्प्रान्तीय भाषा को माध्यम बना कर शिक्षा देने वाले मदरसे खोले जाने चाहिए। पर यह सहज नहीं। जब तक अन्य प्रान्तों के स्त्री-शिक्षाभिमानी लोग आगे बढ़ कर इस विषय में सञ्चालकों की सहायता न करेंगे तब तक यह काम सफल न हो सकेगा। तब तक यह संस्था केवल "भीख माँगने वाले" "धनवाद" ही की सी रहेगी। तब तक उसके सञ्चालक अन्यप्रान्तीय लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने तथा स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता बताने की चेष्टा करते रहेंगे। तब तक महाराष्ट्र में—विशेषतः हिंगणे में ही—विद्यापीठ की पाठशाला का काम चलता रहेगा। जब यह संस्था महाराष्ट्र में सफल हो कर लोगों को इसके सुपरिणाम दीखने लगेंगे तब अन्यप्रान्तीय लोग भी इस कार्य में अवश्य सहायता देंगे।

संघटना निश्चित हो जाने पर अनाथ-बालिकाश्रम की मण्डली ने आगे का सब कार्य करने के लिए एक समिति स्थापित की और इस समिति के हाथ में सब काम दे दिया। इस समिति में सात सभासद थे। फर्गुसन-कालेज के तीन प्रोफ़ेसर—श्रीयुत भाटे, लिमये तथा कानिटकर, मराठा तथा केसरी के सम्पादक महाशय केलकर और महिलाश्रम के तीन कार्यकारी—महाशय कर्वे तथा गाडगील और श्रीमती सौभाग्यवती सरला बाई नाईक। इस समिति ने जी-जान से मिहनत करके साढ़े तीन महीने के भीतर ही विद्यापीठ को दृश्य रूप दे दिया। विद्यापीठ के दूसरे दो घटक प्राप्त करने का काम महाशय कर्वे और विदुषी कृष्णा बाई ने दूर दूर के प्रवास का कष्ट उठा कर किया। गाडगील महाशय ने चिट्ठी-पत्री का काम बड़ी तत्परता से किया। दूसरे लोगों ने अभ्यास-क्रम आदि अन्य काम योग्यता से किये। तीन महीने के भीतर ७१० पदवीधर तथा ५०० साधारण लोगों का साहाय्य प्राप्त हो गया। इतने मेम्बर मिलना सञ्चालकों की कल्पना के बाहर था। इसलिए बड़े उत्साह से चुनाव का काम किया गया। इन सब लोगों में से बहुमतानुसार ६० मेम्बर चुने जाकर विद्यापीठ की साधारण समिति स्थापित हुई। उसमें अन्य विद्वान् पुरुषों के सिवा, पाँच विदुषी स्त्रियाँ भी हैं—श्रीमती सौ० सरला बाई नाईक, लाहौर की श्रीमती सरलादेवी चौधरानी, अहमदाबाद की श्रीमती विद्यागौरी रमणभाई एम० ए० नीलकण्ठ, बङ्गलोर की श्रीमती श्रीरङ्गम्मा तथा मद्रास की मिसेज़ मार्गरेट ई० कज़िन्स।

साधारण सभा का प्रथम अधिवेशन ३ री जून १९१६ को हुआ। साठ चुने हुए मेम्बरों में से इकतालीस मेम्बर उपस्थित थे। उसी दिन से विद्यापीठ के काम का आरम्भ हुआ। विद्यापीठ के कुल-पति महात्मा रा० गो० भाण्डारकर, उपकुलपति माननीय र० पु० परांजपे (फर्गुसन कालेज के

प्रिन्सिपल) तथा मुख्य लेखक महाशय कर्वे चुने गये। कार्यकारी समिति का भी चुनाव हुआ ग्रैार परीक्षाओं के अभ्यास-क्रम भी निश्चित किये गये। प्रवेश-परीक्षा के लिए निम्नलिखित विषय रक्खे गये—

(१) आवश्यक विषय। इनके दो वर्ग किये गये हैं। प्रथमवर्गस्थ विषयों में विद्यापीठ की ग्रोर से परीक्षा ली जायगी। दूसरे वर्गस्थ विषयों में केवल उस पाठशालाध्यक्ष का, जहाँ कि विद्यार्थिनियाँ पढ़ती हों, प्रशंसापत्र काफ़ी समझा जायगा। प्रथम वर्ग में मातृभाषा, ग्रँगरेज़ी भाषा, इतिहास तथा गृहशिक्षण ग्रोर आरोग्यशास्त्र हैं। दूसरे में संस्कृत, गणित, गायन या चित्रकला ग्रोर सीना-पिरोना।

(२) ऐच्छिक विषय। इनमें से हर विद्यार्थिनी को कोई दो विषय चुनने होंगे। इस वर्ग में संस्कृत, पदार्थ-विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, गणित, हिन्दी भाषा, भूगोल, चित्रकला, गायन ग्रोर सीना-पिरोना है।

उच्च शिक्षा का अभ्यास-क्रम तीन साल का रक्खा गया है। उसमें प्रतिवर्ष के आवश्यक विषय इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम वर्ष में मातृभाषा, ग्रँगरेज़ी भाषा, इतिहास ग्रोर भारतीयशासन-पद्धति। (२) द्वितीय वर्ष में मातृभाषा, ग्रँगरेज़ी भाषा, ब्रिटिश-राज्य-पद्धति का इतिहास ग्रोर गृह-शिक्षा तथा आरोग्य-शास्त्र। (३) तृतीय वर्ष में मातृभाषा, ग्रँगरेज़ी भाषा, समाज-शास्त्र तथा मानस-शास्त्र ग्रोर बालसंरक्षण। इसके सिवा एक ही ऐच्छिक विषय का अभ्यास तीनों साल करना पड़ेगा। ऐच्छिक विषयों की सूची—संस्कृत, न्याय-शास्त्र, गणित, चित्रकला, गायन, पदार्थ-विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, ग्रँगरेज़ी, शिक्षा-शास्त्र, तुलनात्मक धर्मशास्त्र तथा इतिहास ग्रोर अर्थशास्त्र।

इस प्रकार इस विद्यापीठ ने दो मुख्य बातों में अन्य विद्यापीठों का मार्ग छोड़ दिया है। प्रथम—मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देना ग्रोर द्वितीय अभ्यास-क्रमों में स्त्रियों के योग्य ही विषय रखना। साथ ही ग्रँगरेज़ी-भाषा की ग्रोर दुर्लक्ष्य नहीं किया गया। शिक्षा की योग्यता भी किसी प्रकार कम नहीं की गई। सञ्चालक इस बात को ख़ूब जानते हैं कि कोई भी नई व्यवस्था लोगों को एक दम रुचिकर नहीं होती। पुराना मार्ग सदोष होने पर भी छोड़ देने को जी नहीं चाहता। इसी लिए थोड़े दिनों तक यह विद्यापीठ अत्यन्त छोटे आकार में ही चलेगा।

इस समय केवल हिँगणे का महिलाश्रम तथा महिलापाठशाला इस विद्यापीठ से सम्बद्ध है। पाठशाला में केवल प्रथम वर्ष के लिए ५ विद्यार्थिनियाँ हैं। इनमें से एक बम्बई के विद्यविद्यालय की मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण है। अन्य चारों को विद्यापीठ के सञ्चालकों ने जाँच कर लिया है। १९१७ से विद्यापीठ की प्रवेश-परीक्षा ली जायगी ग्रोर प्रशंसापत्र भी दिये जायँगे।

आरम्भ में विद्यार्थिनियों की संख्या भी कम रहेगी। इस विद्यापीठ से दिये हुए प्रशंसापत्रों तथा उपाधियों की जो योग्यता वास्तव में होगी वह न मानी जायगी। पर इससे सञ्चालकों के लिए उदास होने का कारण नहीं। क्योंकि थोड़ी विद्यार्थिनियाँ होने के कारण उन पर शिक्षकों को अधिक ध्यान देने का अवसर मिलेगा तथा लोग, योग्यता कम न मानें, इसलिए विद्यार्थिनियों में भी अधिक योग्यता उत्पन्न की जायगी। इस प्रकार काम धीरे धीरे क्यों न हो, पर यदि अच्छा रहेगा तो अन्त में उसकी योग्यता लोगों पर प्रगट हुए बिना न रहेगी।

इस विद्यापीठ को सरकारी मदद बिलकुल नहीं है। लोगों की ही मदद पर इसका सब काम चलनेवाला है। अभी काम का आरम्भ कर देने योग्य मदद लोगों ने दी है। सञ्चालकों को लोगों ही का

भरोसा है। सरकार को इन कठिन दिनों में साहाय्यार्थ प्रार्थना भी करना उचित नहीं। और जब तक इसकी योग्यता तथा उपयुक्तता सरकार को न विदित हो जाय तब तक सरकार से सहायता मिलने का सम्भव भी कम है। यदि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का प्रयोग सफल हुआ तो अन्य विश्वविद्यालयों से भी उसका स्वीकार कराना सुलभ हो जायगा। इसका विचार करके लोग उस समय यथाशक्ति इस विद्यापीठ की मदद अवश्य करेंगे। साथ ही सब लोगों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यह प्रयत्न यद्यपि प्रान्तीय है तथापि यह अखिल भारतवर्ष के लिए है। विद्यापीठ में हिन्दी तथा गुजराती विद्यार्थिनियों के सुभीते के लिए हिन्दी तथा गुजराती में भी परीक्षा लेने का विचार किया है। और यदि विद्यार्थिनियाँ परीक्षार्थ तैयार हुईं तो उचित कार्य-क्रम भी निश्चित किया जायगा।

इस प्रकार इस विद्यापीठ का आरम्भ हुआ है। इसका पूर्णतया सफल होना सञ्चालकों के परिश्रम तथा लोगों के साहाय्य पर अवलम्बित है। आशा है कि सञ्चालक गण तथा सर्व-साधारण जन अपना अपना कर्तव्य-पालन करेंगे और इस विद्यापीठ को सफल कर दिखावेंगे।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

पेगन का विष्णु-मन्दिर।

भारतीय पुरातत्त्व-विभाग ने बौद्धों की आवास-भूमि ब्रह्मदेश में एक पुराना हिन्दू-मन्दिर ढूँढ़ निकाला है। यह हिन्दू-मन्दिर पेगन नाम के एक प्राचीन नगर में है। यह मन्दिर इस समय बिलकुल टूटी-फूटी हालत में है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह मन्दिर बड़े महत्त्व का है। जावा इत्यादि द्वीपों में हिन्दू-सभ्यता के चिह्न मिलने से हिन्दुओं के दूर देशों में जाकर बसने के प्रमाण मिलते हैं। इस बात से उनकी उन्नतावस्था की सच्ची कल्पना भी की जा सकती है। परन्तु ब्रह्मदेश के इस मन्दिर से यह बात ज्ञात होती है कि बौद्धधर्मावलम्बी ब्रह्मदेश के एक प्रसिद्ध और प्राचीन नगर में, जहाँ बौद्धों के सैकड़ों बड़े बड़े धर्म्म-मन्दिर हों, हिन्दुओं का उन धर्म्म-मन्दिरों के बीचों बीच अपना धर्म्म-मन्दिर प्रतिष्ठित करना अचम्भे की बात है। इससे उनकी शक्ति और क्षमता का प्रमाण मिलता है। यह कुछ कम गौरव की बात नहीं।

पेगन नगर का यह नाट-हाउ-क्याङ्ग नाम का मन्दिर ऐसाही मन्दिर है। इसी का वर्णन आर्कियालोजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया की रिपोर्ट (१९१२-१३) में दिया गया है। इसका संक्षिप्त विवरण सुनिए—

किंवदन्ती है कि इस मन्दिर को टाँग-थूगी ने दसवीं सदी (सन् ९३१—९६४) के आरम्भिक काल में बनवाया था। परन्तु इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। ब्रह्मदेश की भाषा में अर्वाचीन साहित्य में भी इस मन्दिर का उल्लेख है। पुगन-यो-थूपा-समैङ्ग नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मनोहर नाम के किसी ब्रह्मदेशीय राजा ने सन् १०५७ ईसवी में थटन-विजय के उपरान्त में इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की। परन्तु शिला-लेखों से पता लगता है कि मनोहर कट्टर बौद्ध था। अतः वह हिन्दू-मन्दिर क्यों बनवाने लगा?

पेगन में तामील-भाषा का एक शिलालेख मिला है। यह शिलालेख पेगन के अजायब घर में रक्खा है। इससे इस मन्दिर के सम्बन्ध की जानकारी कुछ कुछ हो जाती है। इसमें लिखा है कि मलाबार-प्रान्तान्तर्गत मकोदेर-पट्टनवासी किसी वैष्णव ने पेगन के नाना-देशी-विणागर नामक विष्णु-मन्दिर का सभामण्डप बनाने के लिए कुछ द्रव्य दान किया। ये

सकता है कि जिस मन्दिर का ज़िक्र इस शिला-लेख में है वह यही भाट-ख़ाकू-क्याक़ू हो। क्योंकि इस मन्दिर के सिवा किसी अन्य हिन्दू-मन्दिर के अस्तित्व का पता उस नगर में नहीं लगता।

पर इसमें नाम-भेद बाधक है। तथापि नाम बहुधा बदला करते हैं। अस्तु, अब तक वहाँ किसी अन्य हिन्दू-मन्दिर का पता नहीं लगता तब तक हम इसे ही वह मन्दिर मानने को बाध्य हैं। तात्पर्य यह कि पैगन का यह मन्दिर दक्षिण के किसी विष्णु-भक्त द्वारा ही बनवाया गया था और वहाँ दाक्षिणात्यों का बहुत अधिक आवागमन था। तभी तो धर्म-मन्दिर बनवाने की आवश्यकता पड़ी होगी। वैष्णव तब कूप-मण्डूक न थे।

उपर्युक्त बातों पर विचार करने से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह मन्दिर ईसा की ग्यारहवीं या बारहवीं सदी में बनाया गया होगा।

यह मन्दिर समचतुष्कोण और शिखरदार है। यह ईंटों का बना हुआ है, केवल द्वार पत्थर का है। द्वार भी एक ही है और वह पूर्व ओर है। मन्दिर की दीवारों में मिहराबदार बड़े बड़े ताक़ हैं। पूर्व ओर की दीवार में चार ताक़ हैं। शेष तीन ओर की दीवारों में प्रति दीवार दो दो ताक़ हैं। इन ताक़ों में चार ऐसे हैं जिनमें आज भी चार टूटी-फूटी मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ विष्णु के चार अवतारों की हैं। वराह, राम, परशुराम और नृसिंह की ये मूर्तियाँ मालूम पड़ती हैं। सम्भव है कि ख़ाली ताक़ों में अन्य छः अवतारों की भी मूर्तियाँ रही हों।

यह तो मन्दिर के बाहरी भाग का हाल है। मन्दिर के भीतर उसका फ़र्श आज भी वैसा ही है। मन्दिर के ठीक बीचों बीच एक चौकोन स्तम्भ है। यह शिखर तक ऊँचा चला गया है। यह शिखर का आधार-स्तम्भ सा ज्ञात होता है। इसी से शायद यह मन्दिर नष्ट होने से आज तक बचा हुआ है। यह स्तम्भ भी ईंटों का है। इसमें भी चारों ओर मिहराबदार बड़े बड़े ताक़ हैं। पूर्व ओर का ताक़ औरों से बड़ा है। बहुत सम्भव है कि मन्दिर की प्रधान मूर्ति इसी में प्रतिष्ठित रही हो। दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि यह ताक़ अब ख़ाली पड़ा है। अन्य ताक़ों की मूर्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। इन्हें देख कर बड़ी कठिनता से यह अनुमान किया जा सकता है कि ये मूर्तियाँ विष्णु भगवान् की हैं।

इस मन्दिर की इमारत कोई अनोखी इमारत नहीं है और न केवल इसे इसी लिए महत्त्व दिया जा सकता है कि यह एक पुरानी इमारत है। इसका महत्त्व इस कारण है कि यह विदेश में विजातियों और अन्यधर्मियों के बीच निर्माण किया गया है। इससे हिन्दुओं की प्रभुता और उनके धर्म-प्रचार की भव्य भावना प्रकट होती है।

भारतीय सरकार ने इस मन्दिर की रक्षा के ख़याल से इसकी काफ़ी मरम्मत करवा दी है। अतएव उसे धन्यवाद।

देवीदत्त शुक्ल।

दादू-पन्थी सम्प्रदाय का हिन्दी-साहित्य।

दादू-पन्थी सम्प्रदाय में हिन्दी-साहित्य का अपूर्व ख़ज़ाना है। उसको भारतवर्ष में बहुत कम सज्जनों ने देखा होगा। इस सम्प्रदाय में विक्रम-संवत् की सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के रचे सैकड़ों ग्रन्थ हैं, पर उनसे सर्व-साधारण को लाभ नहीं पहुँचता। क्योंकि इन ग्रन्थों को केवल कुछ दादूपन्थी विद्वान् साधु ही जानते हैं। इस भाण्डार में अनेक उत्तमोत्तम पद्य-ग्रन्थ हैं, जिनमें विशेष करके धर्म-सम्बन्धी बातों का समावेश है।

स्वामी दादूदयाल भारतवर्ष के सुधारकों में थे। उन्होंने १२० वर्ष पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि भारत

महिला-विद्यालय, हिंगणे, पूना।

महिलाश्रम, हिंगणे, पूना।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
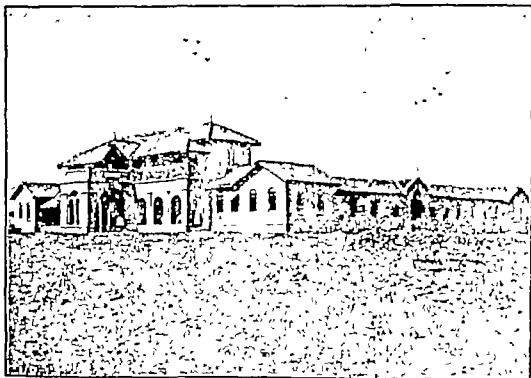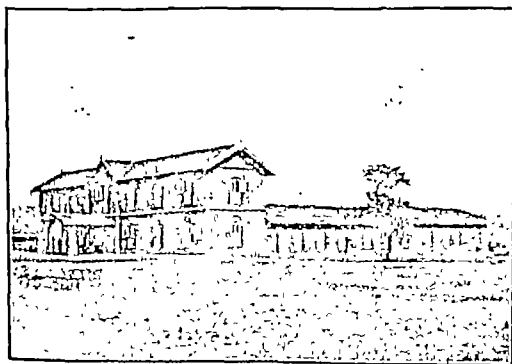
भारतवर्ष के धर्म-विकास में स्वामी दादूदयाल का मत उसी श्रेणी में है जिसमें कबीर साहब तथा गुरु नानक आदि का मत है। दादू-पन्थी पुस्तक-संग्रहों में पाँच महात्माओं की वाणी का विशेष आदर है। सबसे अधिक स्वामी दादूदयाल की वाणी का। उसके बाद कबीर साहब की वाणी का, फिर नामदेवजी की वाणी का, फिर रैदासजी की वाणी का। इसके बाद हरदासजी की वाणी का।

इन पाँचों के बाद स्वामी दादूदयाल के शिष्यों के ग्रन्थ स्थान पाते हैं और उनके पीछे अन्य भक्तों के—रामानन्द, पीपा, कमाल, शेख बहाबदीन, नरसी मेहता, सूरदास, शेख फ़रीद, गुरु नानक, गोरखनाथ, भरथरी, गोपीचन्द, चरपटनाथ, हालीपाव, मछेन्द्रनाथ आदि के। दो बड़ी बड़ी पुस्तकें मुझे मिली हैं, जिनमें एक का वज़न क़रीब पचीस सेर (पक्का) है। दोनों में १११ महात्माओं के ग्रन्थ हैं।

स्वामी दादूदयाल के सम्प्रदाय में एक सन्त राघवदासजी हो गये हैं। उन्होंने भक्तमाल नाम का एक ग्रन्थ रचा है। उसमें शिवजी, ब्रह्मा, हनूमान्, विभीषण आदि से लेकर जितने भक्त हुए हैं उनका वृत्तान्त पद्य में दिया गया है। इस ग्रन्थ में १०२ भक्तों के चरित हैं और निम्न-लिखित चार सम्प्रदाय और द्वादश पन्थ शामिल हैं—

१—स्वतन्त्र भक्त ३१

२—चार सम्प्रदायी भक्त—

(क) रामानुज-सम्प्रदाय के १० भक्त।

(ख) विष्णु स्वामी ,, ,, ६ ,,

(ग) मध्वाचार्य ,, ,, १५ ,,

(घ) निम्बादित्य ,, ,, ६ ,,

३—द्वादश-पन्थी—

(क) षट्दर्शन, संन्यासी, योगी, जङ्गम, जैन, बौद्ध, अन्यान्य।

(ख) समुदायी भक्त—४०

(ग) चतुःपन्थी—

गुरु नानक साहब के पन्थ के—

कबीर साहब ,, ,,

दादूदयाल ,, ,,

निरञ्जनी ,, ,,

(घ) माधो कांणी।

(ङ) चारण।

इस ब्योरे से विदित हो जायगा कि भारतवर्ष की सम्पूर्ण सम्प्रदायों से दादू-पन्थियों का मेल है। दादू-पन्थी पण्डित निश्चलदासजी के रचे हुए "विचार-सागर" और "वृत्ति-प्रभाकर" नामक दो अपूर्व ग्रन्थ भारतवर्ष में सर्वत्र आदर से पढ़े जाते और प्रमाण माने जाते हैं।

स्वामी दादूदयाल का आशय भारतवासियों में मेल उत्पन्न करने का था। इसी अभिप्राय से उन्होंने हिन्दी-भाषा में संस्कृत-साहित्य के भावों को प्रकट करने की नींव डाली। उन्होंने धर्म, आचार और व्यवहार-विषयक ऐसे सुधार किये, जिनसे समाज पवित्र भाव से और सहज मार्ग से उत्तम दशा को प्राप्त हो। उन्होंने ऊँची श्रेणी की निर्गुण-उपासना की रीति, वेदों के अनुकूल, निकाली। वह अतीव सरल है और सर्व-साधारण के सुभीते की है। स्वामी दादूदयाल का मत सरल जीवन और उच्च आत्म-विचार सिखलाता है। यदि दुनिया में एक मत के होने की सम्भावना हो तो स्वामी दादूदयाल का मत बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दू-मुसलमानों के मेल के विषय में भी स्वामी दादूदयाल अनेक यत्न कर गये हैं। इस विषय का उपदेश उन्होंने अनेक स्थानों में किया है। ऐसी एक साखी सुन लीजिए—

दादू दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं हिन्दू-मुसलमान ॥११—७॥

यह स्पष्ट नहीं है कि स्वामी दादूदयाल का जन्म हिन्दू-वंश में हुआ था मुसलमान-वंश में। उनके जन्म के विषय में कई कथायें हैं। किसी ने लिखा है कि स्वामी दादूदयाल का जन्म एक नागर ब्राह्मण के घर में हुआ था। बहुत लोग आज तक यही मानते हैं। इधर स्वामी दादूदयाल के ही शिष्यों ने उनका जन्म अथवा सम्बन्ध धुनियों से होना लिखा है। ऐसा लिखने वालों में जनगोपालजी (स्वामी दादूदयाल की जन्मलीला के रचयिता), रज्जबजी, जगजीवनजी और सुन्दरदासजी हैं। तो भी स्वामी दादूदयालजी के उपदेश सभी मनुष्यों के लिए समान हैं। उन्होंने किसी का पक्ष नहीं लिया। उनके शिष्यों में हिन्दू तो हैं ही, मुसलमान भी अनेक हैं। मुसलमानों में रज्जबजी, वषनाजी और वाजिंद खां मुख्य हैं। अकबर बादशाह भी दादूदयाल के मत के प्रशंसक थे। [illegible]

बक्सटन के मुख्य बाज़ार का दृश्य।

टाउन हाल से बक्सटन का साधारण दृश्य।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
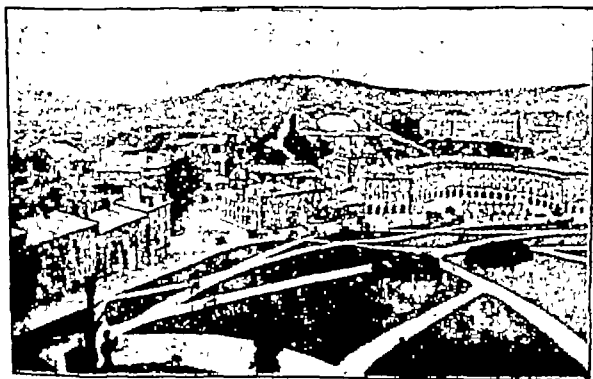
इनमें उपासना की रीति बहुत सरल और बड़ी ऊँची श्रेणी की है। इससे मनुष्य परमानन्द को सहज ही में प्राप्त कर सकता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करना हर मनुष्य और हर स्त्री का परम कर्तव्य है। स्वामी दादूदयाल ने अपने ज्ञान के सार को एकही साखी में इस प्रकार वर्णन किया है—

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यह मत सार॥

स्वामी दादूदयाल सच्चे सुधारक थे। उन्होंने सर्वथा पक्षपात छोड़ कर निर्भयता से मनुष्यों के कल्याण के लिए कुरीतियों को दूर करने का उद्योग किया। परमात्मा में उनका दृढ़ विश्वास था। उसी की परम शक्ति पर भरोसा करके उन्होंने अपना कर्तव्य किया। नीचे लिखी हुई साखियों से यही प्रतीत होता है—

दादू अब थैं हम निर्पष भये, सबै रिसाने लोक।
सतगुर के परसाद सैं, मेरे हर्ष न सोक॥१९-२४॥
दादू जब तुम्हारे आपही, गिणत न राणा राव।
मीर मलिक परधान पति, तुम बिन सब ही बाव॥२४-७१॥

दादू पन्थी सम्प्रदाय को किसी किसी महात्मा ने ब्रह्म-सम्प्रदाय की पदवी दी है। वह वास्तव में ठीक है। क्योंकि इस सम्प्रदाय में एक निर्मल ब्रह्म ही की उपासना को मनुष्य का मुख्य कर्तव्य माना है। निरञ्जन, निराकार, अद्वैत ब्रह्म की भक्ति, ब्रह्म की ही उपासना, ब्रह्म की ही लगन, ब्रह्म का ही ध्यान, ब्रह्म में ही तल्लीन रहना सब धर्मों से श्रेष्ठ बतलाया गया है। इसके साथ साथ सब मनुष्यों में सम-भाव भी रक्खा गया है। किसी को ऊँच या नीच नहीं ठहराया। जाति-पाँति की रीति नहीं मानी। पूजन में मानसिक पूजा अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन ही श्रेष्ठ रक्खा है। बाहरी दिखाव को गौण माना है। स्वामी दादूदयाल के चेले [illegible]रामजी ने पन्थ-मन्था नामक ग्रन्थ में दादू-पन्थी के जो लक्षण बतलाये हैं उन्हें सुनिए—

पन्थ पुरातन है यही—महापुरुष की चाल।
निरपख मारग चालता भेटै दीन-दयाल॥१॥
मन गुरु कहै हरि की बात—आगें पावै हरि साक्षात्।
हिय पाखण्ड न ऊपर भेख—मन में सुमिरै एक अलेख॥८॥
पचारनी का पाँड़ा राह—सुमिरण सों है बे-परवाह।
हिन्दू[1] पथ की बाड़ी रीति—बिन दरसन[2] मन खोया जीति॥९॥
दरसन पहरें इतना होय—रोरी पावै फन्दे सोय।
सतगुरु मिलै तु कारिज सरै—नहीं त बप चौरासी फिरै॥१०॥
पन्थ चले की यह सहनाण[3]—शब्दों माँहि रहै घमसाण।
मन परमेश्वर माँहि ठाम—दादू-पन्थी तिनका नाम॥११॥
सतगुरु के शब्दों में रहै—षटदर्शन के संग न बहै।
पाखण्ड करे न थिग्गी[4] होय—दादू-पन्थी कहिये सोय॥१७॥
माला तिलक न ऊपर भेष—मन में सुमिरै एक अलेख।
साँच झूठ का करै बिचार—दादू पन्थी सो निरधार॥१८॥
तप तीरथ की करे न आस—कामनि रूप न राखै पास।
शील स्वभाव शान्तरस होय, दादू पन्थी कहिये सोय॥१९॥
लोक वेद[5] का मारग तजै—मन में एक निरञ्जन भजै।
दूर न राखै हम औतार—दादू-पन्थी सो निरधार॥२०॥
हिन्दू पथ का छाँड़ै भाव—जैसा रङ्क अरु तैसा राव।
हृदय लीन राम-रत होय—दादू-पन्थी कहिए सोय॥२१॥
आतमदर्शी जानै ब्रह्म—नीच ऊँच का छाँड़ै भ्रम।
अयाचृत वीचारी होय—दादू पन्थी कहिए सोय॥२२॥
सोना कञ्चन एक समान—वैरी मित्र न देखै आन।
अस्तुति निन्दा सम करि जोय—दादू-पन्थी कहिये सोय॥२३॥
दादू-पन्थी तिनका नाम—जीते लोभ क्रोध मद काम।
माया मोह करै सब दूरि—पाँचों इन्द्री राखै पूरि॥२४॥
राम दुहाई हाथ न धरे—माया काज न घर घर फिरै।
इन्द्रीजित निष्कामी होय—दादू-पन्थी कहिए सोय॥२५॥
मिथ्या वाद हठ न कराय—अनसम्मित साँचै सो गाय।
सूना सूता कष्ट न करै—दादू-पन्थी इहि विधि रहै॥२६॥
पावन भोजन इतना लेय—काया कारण चहिए जेय।
संग्रह करै न लोभी होय—दादू-पन्थी कहिए सोय॥२७॥
साध प्रेम की भिक्षा खाय—मरता यूँ कोइ देवै आय।
सब गुनदायी करणी सार—दादू-पन्थी सो निरधार॥२८॥
हिरदै भजन प्रेम की पीर—कबहूँ मोह न धरै शरीर।
ब्रह्म-वियोगी निर्गुण रूपी—सो वैरागी दादू-पन्थी॥२९॥
राम रटनि धुनि लागी रहै—अनभय कथा अगम की कहै।
बाणी बोलै अमृत सार—दादू-पन्थी सो निरधार॥३०॥
हिरदै हंस ज्ञान से धरै—नीर खीर निरवारा करै।

१ हिन्दू-मुसलमान, २ षट्दर्शन का बाना, ३ निशान, पहचान, ४ निन्दक, ५ यहाँ प्रचलित पाखण्ड से ही तात्पर्य है।

गवर्नमेंट से मदद माँगी गई थी। इस पर भारत-सरकार ने सब तरह की जाँच और तहकीकात करके छपी हुई फ़ी पुस्तक के लिए १२०) देने की मंज़ूरी प्रसन्नतापूर्वक दी है। पर इस रकम से पुस्तकों के प्रकाशन के ख़र्च का दशांश भी नहीं निकल सकता। अतएव हम आशा करते हैं कि मर्द-साधारण की भी उचित संख्या ग्राहक बन जायगी। इससे ख़र्च का अधिक भाग निपट जायगा। कम से कम चार सौ ग्राहकों के होते ही पुस्तकें छपना आरम्भ कर दिया जायगा। प्रत्येक पुस्तक का आकार रायल अठपेजी १०० पृष्ठों का होगा और सर्वसाधारण से इसका मूल्य पाँच रुपये लिया जायगा।

इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पते पर करना चाहिए—

अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (राय साहब)
गेम्सगंज,
अजमेर।

हिन्दी-पुस्तकों की श्रेणीबद्ध सूची।

अभी बहुत समय व्यतीत नहीं हुआ जब मकतबों और पाठशालाओं में भिन्न भिन्न योग्यता के विद्यार्थियों को एक ही मौलवी या एक ही पण्डित के द्वारा, एक ही स्थान पर, एक ही पाँति में बिठा कर, बिना किसी विभेद के, शिक्षा दी जाती थी। कदाचित् कहीं कहीं इस पुरानी चाल के मौलवी और पण्डित अब भी उसी प्रणाली के अनुयायी हों। नवीन पाठ्य पुस्तकों ने प्राचीन पाठ्य-क्रम ही को बदल दिया है। उस समय विद्यार्थियों की योग्यता का परिचय पुस्तकों की उस संख्या से होता था जिसे वे पढ़ चुके हों। अब तक भी पुराने लोगों के द्वारा बालकों से यही प्रश्न कहीं कहीं किये जाते हैं— "तुमने कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं"? अथवा "तुम कौनसी पुस्तक पढ़ते हो"? कक्षा का नाम उनको इन्हीं प्रश्नों से हो जाता था और कृत्रिम कक्षा-विभेद की कोई आवश्यकता बाक़ी नहीं रह जाती थी। उस समय मौलवियों और पण्डितों ने एक श्रेणीबद्ध (Graduated) सूची बना रक्खी थी। पढ़ी हुई या पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की संख्या से ही यह अनुमान हो सकता था कि बालक कितनी शिक्षा पा चुका है।

अब यह क्रम उठ गया है। किसी की योग्यता का अनुमान अब केवल उस कक्षा के नाम से हो सकता है जिसमें वह पढ़ता है। परन्तु उन मनुष्यों के लिए जो कोई भाषा, स्कूल के बाहर, अपने शौक़ के लिए ही पढ़ना चाहते हैं, ऐसी सूची की आवश्यकता बाक़ी रह गई है। पूछने पर कि वे हिन्दी क्यों नहीं पढ़ते, मेरे अनेक मित्रों ने ऐसी सूची जानने की इच्छा प्रकट की। अतएव मेरे मन में यह आया कि एक ऐसी श्रेणीबद्ध सूची पुस्तकों की बनाई जाय जिससे वे मनुष्य भी लाभ उठा सकें जो स्वयं या अपने बालकों को हिन्दी भाषा के साहित्य का अच्छा ज्ञान उत्पादन करना या कराना चाहते हैं। परन्तु यह काम कठिन प्रतीत हुआ। हिन्दी-साहित्य में अनेकानेक रत्न छिपे पड़े हैं। फिर सब की रुचि एक सी नहीं। यदि किसी को अलङ्कारमय रचना पसन्द है, तो किसी को स्वभावोक्ति ही पसन्द है। किसी की आख्यायिका अच्छी है तो किसी की रचना। किसी के छन्द रुचिकर हैं, तो किसी की दोहे। ऐसी दशा में प्राचीन साहित्य के ग्रन्थों की श्रेणीबद्ध सूची बनाना दुस्तर प्रतीत हुआ। तब यह इच्छा हुई कि यदि श्रेणीबद्ध सूची नहीं बन सकती तो अच्छे अच्छे ग्रन्थों की थोड़ी एक ऐसी सूची तैयार की जाय जैसी अँगरेज़ी-भाषा में—Lubbock's Choice of Books or Harrison's List of Hundred Books—है। कदाचित् कोई और महोदय उस सूची को तैयार कर दें।

मरमों वाली बासटन की एक सड़क।

बासटन का बाग़। नदी का एक झरना।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

देवता देवी अनेकों पूज कर,
निर्जला रह कर कई एकादशी।
तीर्थों में जा द्विजों को दान दे,
गर्भ में पाया हमें माँ ने कहीं ॥२॥

जन्म के दिन फूल की थाली बजी,
दुःख की रातें कटीं सुख दिन हुआ।
प्यार से मुखड़ा हमारा चूम कर,
स्वर्ग-सुख पाने लगे माता-पिता ॥३॥

हाय! हमने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया, प्यार से पाले गये।
जो बचे फूले फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीचतर माने गये ॥४॥

जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में,
अन्न खाया औ यहीं का जल पिया।
धर्म-हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम हैं भगवान का ॥५॥

पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय है संसार से जाता रहा।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है,
हैं उन्हें भी हम अभागों से घृणा ॥६॥

जिस गली से श्वान पुच्छ वाले चलें,
उस तरफ़ चलना हमारा दण्ड्य है।
धर्म-ग्रन्थों की व्यवस्था है यही,
या किसी दुरभिमान का पाखण्ड है ॥७॥

छोड़ कर प्यारे पुराने धर्म को,
आज ईसाई मुसल्मां हम बनें।
नरक! कैसा यह निराला न्याय है,
तो हमें सानन्द सब छूने लगें ॥८॥

हम अछूतों में पधारे छूत हैं,
उनमें कोई शुद्ध करें पर छूत हैं।
हैं गधों से भी पराया मानते,
क्या यही स्वामी! तुम्हारे पूत हैं ॥९॥

भाइयों से माँगते अधिकार हैं,
पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यार का नाता पुराना तोड़ कर,
हैं नया नाता निराला जोड़ते ॥१०॥

नाथ! तुमने ही हमें पैदा किया,
रक्त मज्जा माँस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया, फिर भला,
क्या हमें ऐसा अपावन कर दिया ॥११॥

ओ दयानिधि! कुछ तुम्हें आवे दया,
तो अछूतों की अभागी याद कर।
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में,
पाँव जम जावे परस्पर प्यार का ॥१२॥

रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए०

सोनपुर।

हरिहर-क्षेत्र का मेला बहुत बढ़ कर होता है। मेले का स्थान सोनपुर के समीप ही है। यह मेला कार्त्तिकी पूर्णिमा के एक सप्ताह पहले से एक सप्ताह बाद तक रहता है। मेला देखने योग्य होता है। मेला क्या, यदि इसे प्रदर्शिनी कहें तो अनुचित न होगा, क्योंकि एक ही प्रकार की सभी वस्तुयें, सलीक़े के साथ, एक ही जगह, यदि कहीं देखने में आती हैं तो इसी मेले में। दो कोस में यह मेला लगता है। विशेष लोक-समागम पूर्णिमा के चार दिन पहले से चार दिन बाद तक होता है। पूर्णिमा के दिन की भीड़ का तो कहना ही क्या है।

सोनपुर के चारों ओर चार नदियाँ बहती हैं। इनमें पूर्व की ओर स्वच्छतोया गण्डकी और उत्तर की ओर नारायणी नदियाँ विशेष उल्लेख-योग्य हैं। पश्चिम की ओर मेहुरा और दक्षिण की ओर तारिणी या मही नाम की नदियाँ हैं। गण्डकी पर १२७१ फ़ीट लम्बा पुल है। पुल के बीच में रेलवे लाइन और उसके दोनों ओर पैदल चलने वालों के लिए सड़कें हैं। लार्ड डफ़रिन ने, १८८७ ईसवी में, इस पुल की प्रतिष्ठा की थी।

करने वाले मनुष्यों की संख्या स्नानार्थियों की संख्या की कोई अठगुनी हो जाती है। इस मेले की स्थापना साधु-सन्तों के द्वारा ही की गई थी। उद्देश यही था कि उन लोगों को वार्षिक सम्मेलन के समय विविध धार्मिक तथा पारमार्थिक विषयों पर आलोचना करने का सुभीता हो। पर खेद है कि वर्तमान समय में साधु-सन्तों के अभीष्ट कुछ और ही हो गये हैं। शास्त्रालोचना की ओर से तो उन्हें विरक्ति सी हो गई है।

मेले के भिन्न भिन्न विभागों के भिन्न भिन्न नाम हैं—चिड़ियाबाज़ार—यहाँ तोता, मैना, काका-तुआ, बुलबुल, तीतर, मुनियाँ आदि चिड़ियाँ बिकती हैं। आमोद-प्रमोद की सामग्री—यथा थियेटर, बायस्कोप, सर्कस इत्यादि भी इसी विभाग में देखने को मिलते हैं। चिड़िया-बाज़ार के बग़ल ही में—बैलहट्टा—रहता है। यहाँ गाय, बैल, भैंस आदि चौपाये बिकते हैं। एक अंश का नाम मीनाबाज़ार—है। यहाँ मनिहारी वस्तुयें बिकती हैं। यह विभाग यथार्थ में देखने योग्य होता है। हरिहरनाथ के मन्दिर की ओर फूल, बेलपत्र, माला इत्यादि पूजा-सामग्रियों तथा मिठाइयों की दुकानें रहती हैं। मन्दिर के दक्षिण, माही के किनारे, साधु-सन्यासी अपनी अपनी वेदी बना कर वास करते हैं। हाथीसार—में सैकड़ों छोटे, बड़े हाथी बिकने हैं। कुछ घोड़े भी इस विभाग में रहते हैं। पर घोड़ों का मुख्य स्थान है—घोड़ासार, जहाँ सहस्रों घोड़े रहते हैं। जिस अंश का नाम अँगरेज़ीबाज़ार है वहाँ अँगरेज़ी सभ्यता तथा विलासिता की वस्तुयें मिलती हैं। बड़े बड़े अँगरेज़ तथा देशी गण्य मान्य सज्जन इसी विभाग में अपने अपने ख़ीमे लगाते हैं। घुड़दौड़ के निमित्त कितने ही अँगरेज़ प्रति वर्ष मेले में आते हैं। ठठेरीबाज़ार में केवल बरतनों की भरमार रहती है। लोहा-बाज़ार में सब वस्तुयें लोहे की ही मिलती हैं। इन नामों से जाना जा सकता है कि इन विभागों का नामकरण केवल मेले ही भर के लिए किया गया है।

मेले के समय, यहाँ, ज़िला-बोर्ड, म्युनिसिपैल्टी, अदालत, डाकघर इत्यादि खुल जाते हैं। बहुत से पुलिसमैन, एक अतिरिक्त पुलिस-इन्सपेक्टर की अध्यक्षता में, रक्खे जाते हैं। पहले यहाँ की सब सड़कें कच्ची ही थीं। पर कुछ दिनों से कई सड़कें पक्की भी बन गई हैं। मेले के दिनों में मुख्य मुख्य सड़कों पर ज़िला-बोर्ड की ओर से जल छिड़कने का प्रबन्ध भी रहता है।

सोनपुर बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे की, कटिहार से कानपुर जाने वाली, लाइन का जंकशन-स्टेशन है। रेल की एक शाखा यहाँ से पलेज़ाघाट को गई है। घाट से जो ट्रेनें आती हैं वे मुज़फ्फरपुर जाती हैं और यहाँ से जो ट्रेनें आती हैं वे घाट को। घाट से लोग स्टीमरों द्वारा उस पार जाकर ई० आई० रेलवे की ट्रेनों से बाँकीपुर जाते हैं। मेले के दिनों में बहुत सी स्पेशल ट्रेनें सोनपुर से घाट को जाती और वहाँ से आती हैं। तदनुसार ही स्टीमरों के चलने का समय नियत रहता है।

सोनपुर के निवासियों को मेले के दिनों में ख़ूब आमदनी होती है। लोग एक एक गज़ ज़मीन का किराया १०) से १५) रुपये तक लेते हैं। मुख्य सड़कों पर जिसकी ज़मीन है वह तो, कभी कभी, इससे भी अधिक किराया दुकानदारों से लेता

. श्रीहरिहरनाथ के मन्दिर के महन्त को भी ख़ासी आमदनी होती है। महन्तजी के थोड़ी सी ज़मींदारी भी है। उनका नाम है भृगुराम। वे अभी नाबालिग़ हैं। अतएव मैनेजर के द्वारा सब काम होता है।

सोनपुर में क्षत्रियों की प्रधानता है। यों तो

वेपुर्-स्नान करने के कमरे हैं। सब मिला कर कोई १० प्रकार के स्नान यहाँ किये जा सकते हैं। अधिकतर स्नान तो वाई इत्यादि के रोगी ही करते हैं। जिसका जैसा रोग हो और उसके लिए डाक्टर ने जो जो स्नान बताये हों वे ही स्नान रोगी करते हैं।

पूर्वोक्त सोतों के पानी का तापमान हमेशा एक ही, अर्थात् ८२ दरजे का रहता है। इस पानी में नेत्रजन नामक वाष्प अच्छी तरह घुली रहती है। रोग-निवारण के लिए यह बहुत मुफ़ीद है।

बक्सटन नगर परम रमणीक है। गरमियों में लोग बाग यहाँ अधिकता से आते हैं। तब सड़कों पर, तथा बाज़ारों और बाग़ों इत्यादि में, ख़ूब ही चहल-पहल रहती है।

बक्सटन के मुख्य बाज़ार के पास एक लम्बा-चौड़ा मनोहर बाग़ है। उसके अन्दर आने के लिए छः आने फ़ीस देनी पड़ती है। बक्सटन में बहने वाली वाई (Wye) नामक नदी इस बाग़ के भीतर से होकर गई है। बाग़ के अन्दर कई स्थान टेनिस, बैडमिंटन आदि खेलने के लिए हैं। एक छोटी सी झील भी है, जिसमें लोग नावों पर बैठ कर सैर किया करते हैं। बाग़ के एक तरफ़ एक इमारत है। हर शाम को यहाँ बैंड बजता है। यहाँ बड़ी अच्छी, साफ़-सुथरी, सड़कें हैं। एक का नाम है सर्पेंटाइन वाक्स (Serpentine Walks) घूमने फिरने के लिए ये सड़कें वाई नदी के किनारे किनारे हैं। इन पर घूमने के लिए फ़ीस नहीं देनी पड़ती।

बक्सटन के पास एक ऊँची पहाड़ी पर एक इमारत है। उसे सालोमन का मन्दिर अथवा ग्रिनलो की मीनार (Solomon's Temple or Grinloe's Tower) कहते हैं। यहाँ से सारे बक्सटन शहर का, तथा इधर उधर की पहाड़ियों और पहाड़ी भाग का, बड़ा ही अच्छा दृश्य दिखाई देता है। चारों तरफ़ ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ हैं। भारतवर्ष के ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को देख कर इस स्थान के ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को पहाड़ी कहने में कुछ सङ्कोच नहीं होता। इन पहाड़ियों के बीच में बक्सटन बसा हुआ है।

बक्सटन से कोई तीन चार मील की दूरी पर कैट ऐंड फ़िडल (Cat & Fiddle) नामक एक सार्वजनिक इमारत है। ग्रेट-ब्रिटन में यह इमारत सब से ऊँची है। यहाँ पर चाय, शराब इत्यादि पेय और खाद्य पदार्थ भी मिलते हैं। इसकी ऊँचाई समुद्र-तल से १८०० फ़ीट है।

बक्सटन का वर्णन समाप्त करने के पहले एक बात कहे बिना नहीं रहा जाता। वह यह कि हिन्दुस्तान के मंसूरी आदि पहाड़ी स्थानों में और इसमें बहुत बड़ा अन्तर है। भारत के पहाड़ ख़ूब ही ऊबड़ खाबड़ और खुरदरे हैं। यहाँ यह बात नहीं। यहाँ की पहाड़ी सड़कों में यह विशेषता है कि एक ओर तो है गहरा खड्ड और दूसरी ओर बीहड़ ऊँचा पहाड़। यहाँ की पहाड़ी सड़कों पर थोड़ी सी जगह में न मालूम कितने उतार-चढ़ाव मिलते हैं। पर यहाँ उतने टेढ़े उतार-चढ़ाव नहीं हैं। पहाड़ियों की ढालुओं का हाल भी इतना ये मालूम सा है कि सड़क विशेष नयाबह नहीं मालूम पड़ती। सड़कें भी ख़ूब चौड़ी और साफ़-सुथरी हैं—उतनी ही चौड़ी जितनी समथल भूमि पर बसे हुए नगरों की। सड़कों के दोनों किनारों पर पैदल चलने के लिए यहाँ भी अलग मार्ग बने हुए हैं, क्योंकि यहाँ पर गाड़ी, मोटर सब धड़धड़ाती हुई दौड़ती रहती हैं। यहाँ के पहाड़ों का ढाल इतना अधिक हई नहीं कि इन वाहनों के चलने में कुछ कठिनाई हो। सच्ची बात तो यह है कि भारत के पहाड़ी नगरों को देख कर बक्सटन-पहाड़ मुझे तो कुछ ऊँचा नहीं। मेरा मतलब यह नहीं कि नगर तथा उसके आस पास के भूभाग की रमणीकता में किसी प्रकार की कमी है। नगर वास्तव में यथेष्ट रमणीक है। परन्तु, यह सब होने पर भी, उसमें पहाड़ी-पन नहीं। पहाड़ों का वह आतङ्क, वह भीषणता, वह घनत्व यहाँ नहीं।
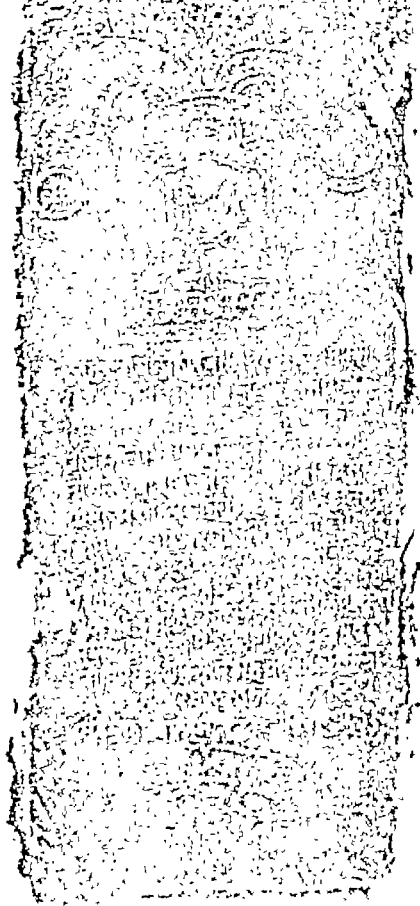
कि यहाँ किसी समय बहुत आबादी रही होगी। यहीं पर कहीं, शिलालेख में लिखा हुआ, कोटचा नामक गाँव रहा होगा। अस्तु।

जानी-बिगहा में एक पीपल के नीचे गड़ी हुई एक शिला निकली। उस पर पुराने देव-नागरी अक्षरों में कुछ खुदा हुआ देख कर जानी-बिगहा के रहने वाले स्वामी रामप्रसाद भारती ने उसकी प्रतिलिपि लेकर उसे सरस्वती-सम्पादक के पास भेजा। उन्हों से यह प्रतिलिपि मुझे प्राप्त हुई। उसे पढ़ने से मालूम हुआ कि यह राजा जय-सेन का दान पत्र है। इस दान-विषयक शिलालेख का फोटो अन्यत्र प्रकाशित है। उसमें १४ सतरें हैं। सतरों के अनुसार लेख की नक़ल, वर्तमान देव-नागराक्षरों में, नीचे दी जाती है। लेख संस्कृत-भाषा में है और पीछे का कुछ अंश छोड़ कर पद्यमय है। यथा—

[१] ओं नमः स्वस्ति ॥
श्रीमन्महाबोधिपुरं पुराणं
परम-
[२] दीर्घं मिथ्यं जिनानां।
(सुरि)[1] स्थितानां स्थिति-
[३] रस्ति यत्र
संबोधये बोधितरोस्तलं च ॥
[४] श्रीमद्व्रासनाय स्वजलस्थलसहितः (कोट-[2]
[५] चा) ग्राम एष
आचन्द्रार्कं प्रदत्तस्त(द)धिवसत-
[६] ये महूलस्वामिभिक्षोः।
दत्ते श्रीसिंघलस्य
[७] त्रिपिटकव्रतिनः शासनोक्तस्य यात्रा
(निर्या-[3]
[८] जा)सत्तमट्टो हलकरकोलेवाद् पुद्दसेनात्मजे-
[९] (न) ॥
दत्त्वा दानमिमं ग्रामं जयसेनः स भूपतिः।
[१०] (पीठी[1]) पतिरुयाचेदमाचार्यं सत्यपाग्यथः ॥
वंशे
[११] मदीये यदि कोपि भूपः
शिरो(ऽप)या दुष्टत-
[१२] रो विनष्टः।
व्यतिक्रमं चास्य करोति तस्य
ता-
[१३] तः खरः सू (शू) करिका च माता ॥
॥ लक्ष्मण-
[१४] सेनस्यातीतराज्यसं ८३ कार्तिक सुदि १५

इस शिलालेख के शिरोभाग में बोधिवृक्षतलस्थ भगवान् बुद्ध का चित्र खुदा हुआ है। भगवान् पद्मासन पर बैठे हुए हैं। चित्र भूमिस्पर्श-मुद्रा में है। दोनों ओर सूर्य-चन्द्र भी खुदे हुए हैं। लेख के नीचे खर-शूकरिका का एक अश्लील चित्र भी खुदा हुआ है। दक्षिण में उत्तरी कोंकण के शिलहार-राजाओं के शिलालेखों में ऐसे चित्र बहुधा पाये जाते हैं। ऐसे चित्रों के निकालने का हेतु लेख में लिखे दान के विरुद्ध आचरण करने वाले को गर्दभ-शूकरिकोत्पन्न सिद्ध करना है। पर इस शिलालेख के मट्ट-तराश ने लेख की जितनी बातें चित्ररूप में खोदी जाने योग्य थीं प्रायः सब खोद डाली हैं। शिलहार-लेखों में खर-शूकरी वाली बात केवल चित्ररूप में ही दिखाई गई है। लेख में इसका उल्लेख नहीं किया गया।

बोध-गया में ही अशोक चल्लदेव का एक शिलालेख मिला था। उस पर भी यही चित्र था। पर इस शिलालेख के कवि ने चित्र में उस बात का उल्लेख करना काफ़ी न समझ कर—"व्यतिक्रमं चास्य करोति तस्य तातः खरः शूकरिका च माता" लिख भी दिया

(१) यह शब्द अच्छी भांति पढ़ा नहीं जाता।
(२) यह गाँव का नाम जान पड़ता है।
(३) 'निर्य्याजा' इस शब्द के विषय में भी मुझे सन्देह है।

(१) (पीठी)—यह जयसेन के राज्य का नाम जान पड़ता है। पर पाठ के विषय में कुछ सन्देह है।

तुलापुरुष-दान की याद दिलाने वाले खम्भे (हम्पी)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

तुलापुरुष-दान की याद दिलाने वाले खम्भे (हम्पी)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
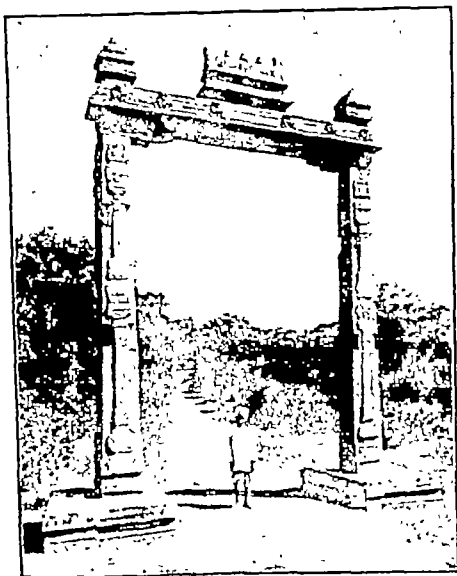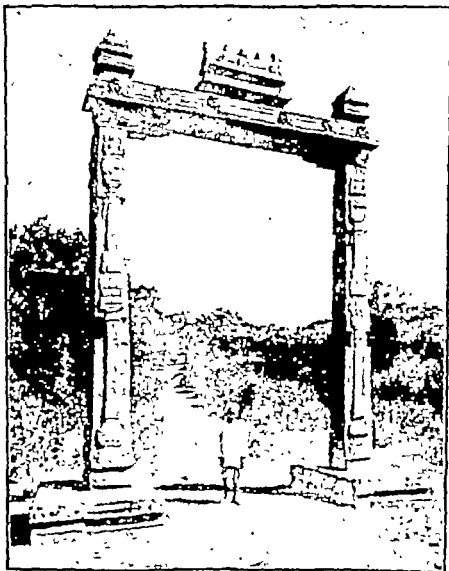
थीय परमाणु का नाम स्पर्श-तन्मात्रा और आकाश के परमाणु का नाम शब्द-तन्मात्रा है।

यहाँ तक स्थूल जगत्, अर्थात् भूर्लोक, की बात हुई। ऋषियों का कथन है कि इस भूर्लोक के आगे छः लोक और हैं—अर्थात् भूर्लोक को मिला कर भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सात लोक हैं। ये लोक क्रम से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम हैं। ये सातों लोक भौतिक उपादान से ही बने हुए हैं। किन्तु प्रत्येक में स्थूलत्व और सूक्ष्मत्व का अन्तर है। इन लोकों में से प्रत्येक में सात सात तल हैं। भूर्लोक का जो सूक्ष्मतर तल—अर्थात् आदि तत्त्व—है वही पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार (Protyle) अर्थात् जगत् का चरम परमाणु (Ultimate Atom)—है। लोक का यही मूल महाभूत है। इस मूल महाभूत के संहनन से नीचे के छः तलों का उपादान बना हुआ है।

भूर्लोक के आदि तत्त्व (Protyle) ने ही विचित्र रूप से संहत होकर क्रमशः अनुपादक-तत्त्व, आकाश-तत्त्व, वायु-तत्त्व, तेजस्तत्त्व, जल-तत्त्व तथा पृथ्वी-तत्त्व उत्पन्न किये हैं। परन्तु (Protyle) भुवर्लोक का आदि तत्त्व नहीं। वस्तुतः भूर्लोक का तत्त्व भुवर्लोक के स्थूलतम पृथ्वी-तत्त्व की अपेक्षा भी स्थूल है। भुवर्लोक के आदि-तत्त्व के साथ तुलना करने से भूर्लोक का आदि-तत्त्व चरम परमाणु नहीं। परन्तु भुवर्लोक के आदि-तत्त्व के परमाणु के समूह के संहनन से उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक के विषय में समझना चाहिए। इसी तरह एक दूसरे का पृथक्करण करके सत्यलोक के सूक्ष्म से सूक्ष्म आदि-तत्त्व पर्य्यन्त विचार करने से यह निश्चय होता है कि यही सूक्ष्मतम आदि-तत्त्व ऋषि-प्रतिपादित मूल प्रकृति है। उसका ज्ञान योगि-गम्य है, साधारण-बुद्धि-गम्य नहीं। प्रकृति से लेकर महत्तत्त्व, अहङ्कार पर्य्यन्त तत्त्व दुर्विज्ञेय हैं। इन्द्रिय-संयम, गुरु-शुश्रूषा आदि साधनों से उनका ज्ञान हो सकता है।

अभी तो पाश्चात्य विद्वानों ने भूर्लोक के ही आदि-तत्त्व का विचार आरम्भ किया है। उन्हें मूल प्रकृति-तत्त्व के विचार तक पहुँचने के लिए अधिक समय अपेक्षित है। इस कारण वे इन बातों को नहीं समझ सकते। भारतीय तत्त्व-ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा है। अज्ञता के कारण साधारण विद्वान् उसकी निन्दा करते हैं।

श्रीकृष्ण शास्त्री तैलङ्ग

नवीन सभ्यता के स्रोत में कुछ प्राचीन विद्याओं का लोप।

(१)

आधुनिक सभ्यता बड़ी गौरवशालिनी दिखाई देती है। यह अनेक विस्मय-जनक आविष्कारों का घर है। धूम-यन्त्र (Engine) ने दूरी को दूर कर दिया है। १०,०० मील प्रति घण्टे की चाल से चलता हुआ यह देश-देशान्तरों में भ्रमण करता है। अगाध समुद्रों के जल-तल पर भ्रमण करते हुए बहुवेग-गामी स्टीमरों ने भूमण्डल के पृथक् पृथक् भागों को एक में मिला सा दिया है। व्योमयान, जो वायु-मण्डल की तरङ्गों को चीरते हुए आकाश में प्रवेश करते हैं, अपना अलग ही चमत्कार दिखा रहे हैं। ये जल, स्थल और आकाशगामी यन्त्र यद्यपि बड़े विस्मय जनक, भारगामी और देश-काल-विध्वंसक हैं, तथापि विद्युद्विद्या-सम्बन्धी आविष्कारों के सामने कुछ भी नहीं हैं। इसका तो माहात्म्य बहुत ही अद्भुत है। तार की ख़बर, बात की बात में, भूमण्डल के छोरों के आर पार आ पहुँचती है। हिन्दुस्तान के बड़े बड़े कार्यालय विलायत से नित्य हुक्म पा कर अपना कार्य चलाते हैं। आधुनिक विज्ञान-शास्त्र ने बिजली को आकाश-लोक से खींच कर मनुष्य की सेवा में नियुक्त कर

२—पशु-पक्षियों की बोली और चेष्टाओं से शुभाशुभ घटनायें मालूम करना।

पूर्वोक्त विद्या से मिलती हुई वह विद्या थी, जिसके प्रभाव से आगामी शुभाशुभ घटनाओं का पहले ही से ज्ञान हो जाता था। पाश्चात्य सभ्यता इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखती है और मिथ्या समझती है। प्राचीन मिस्र, असीरिया, बेबिलोन, रोम, विशेष कर हिन्दुस्तान में, जो समस्त प्राचीन विद्याओं और कलाओं का भाण्डार था, पशु-पक्षियों की बोलियों और उनकी चेष्टाओं से शकुन लेने की प्रथा प्रचलित थी। इन देशों के इतिहासों में बहुत सी कथायें ऐसी मिलती हैं जिनसे इस प्रथा का प्रचलित होना सिद्ध होता है। हिन्दुस्तान में इस विद्या के कुछ कुछ चिह्न अब भी बाक़ी हैं। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार से इस पर ध्यान नहीं दिया जाता। और, सम्भव है, कुछ काल में, इसका अवशिष्ट अंश भी लोप हो जाय। गाँवों में, अब भी, ऐसे आदमी मिलते हैं जो किसी पक्षी की बोली सुन कर बता सकते हैं कि वर्षा होने वाली है या नहीं, अथवा फ़सल अच्छी होगी या बुरी। गाँव वाले बहुत से दैनिक कार्यों के सम्बन्ध में शकुन लेते हैं और तदनुसार काम करते हैं। उनकी कही हुई बहुत सी बातें सत्य निकलती हैं। पश्चिमी देशों में जहाज़ों के मल्लाह भी समुद्री पक्षियों से शकुन लेते हैं, परन्तु सभ्य आदमी उनको बेवक़ूफ़ कह कर उनके विश्वास को मिथ्या बताते हैं। शकुन केवल पशु-पक्षियों से ही नहीं लिये जाते, बल्कि सैकड़ों दूसरी चीज़ों से भी देखे जाते हैं। प्रस्थान करते समय छींक होना, अथवा, सामने से पानी का खाली घड़ा आना, दवाई फूटना, बिल्ली का राह काट जाना, चींटियों का क़तार बाँध कर निकलना, काने आदमी का सामने दिखाई देना, इत्यादि शकुनापशकुन-सूचक अनेक वस्तुयें हैं। इनमें से कितने ही शकुनों का प्रचार अब भी है। परन्तु हमारे नव-शिक्षित युवक इन बातों को नहीं मानते। प्राचीन पुराण-इतिहासों में इसका बहुधा उल्लेख है। रामायण में लिखा है कि जब भरत अयोध्या को लौट रहे थे तब उन्हें सामने से वायस (गधा), काक और शूकर आते हुए मिले। इन अपशकुनों को देख कर भरत को भय हुआ, उन्होंने समझा कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। अयोध्या में पहुँच कर उन्होंने देखा तो पिता की मृत्यु हो गई है और रामचन्द्र वन को चले गये हैं।

इसी तरह जब भरत चित्रकूट-पर्वत पर रामचन्द्र से मिलने को चले तब उनकी दाहिनी तरफ़ से जाते हुए हरिण दिखाई दिये। यह शकुन शुभ था। भरत इससे बड़े प्रसन्न हुए। परिणाम यह हुआ कि रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण से उनकी आनन्दपूर्वक भेंट हुई। मृच्छकटिक नाटक में लिखा है कि चारुदत्त मालव को रोती हुई गाय, काग और सर्प मिले थे। ये अपशकुन थे। परिणाम यह हुआ कि चारुदत्त सूली पर चढ़ाया गया।

संस्कृत भाषा में कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनका विषय केवल शकुन-निरूपण ही है। इन ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में होना चाहिए। इस विषय की जो कुछ सामग्री बच रही है उसका संग्रह सुरक्षित रखना चाहिए।

३—स्वप्नार्थ-निरूपण।

प्राचीन काल की प्रायः सभी मानव जातियों को स्वप्नों में विश्वास था। इस समय स्वप्नों को मिथ्या समझ कर हम लोग उनसे कुछ भी काम नहीं लेते। प्राचीन काल के सभ्य मनुष्य ऐसा न करते थे। सब का विश्वास था कि स्वप्न किसी न किसी घटना की सूचना करते हैं। मिस्र देश के सम्राट् फ़रोहा को स्वप्न में सात मोटी और सात पतली गायें दिखाई दीं। उसने अपने पण्डितों से उसका अर्थ पूँछा। उनमें से एक ने कहा कि सात मोटी गायों से सात बड़े अच्छे वर्षों से अभिप्राय है और सात पतली गायों से सात दुर्भिक्षों से। अर्थात् पहले सात संवत् तो बड़े अच्छे होंगे, पीछे सात दुर्भिक्ष पड़ेंगे, जिनसे प्रजा को बड़ा दुःख होगा। इस कथन के अनुसार ही घटना भी हुई। मिस्र में पहले सात वर्षों तक अच्छी वर्षा हुई और बहुत धान्य उत्पन्न हुआ, जिससे प्रजा को बड़ा सुख मिला। परन्तु सात वर्ष पीछे ऐसे भयङ्कर सात दुर्भिक्ष पड़े कि प्रजा के दुःख का पारावार न रहा। यह कथा बाइबिल में लिखी है।

हिन्दू-पुराण-इतिहासों में स्वप्न-सम्बन्धी बहुत सी कथायें हैं। रामायण में लिखा है कि भरत को अपने नाना के घर एक बड़ा भयानक स्वप्न दिखाई दिया। वह उनके पिता की मृत्यु और रामचन्द्र के वनगमन का सूचक था। इसी तरह रावण ने स्वप्न देखा कि एक वानर लङ्का को जला रहा है।

चिराग़ रक्खा हुआ है जिसके अधीन तीन पराक्रमी देव हैं। वे देव उस मनुष्य के अधीन हो जाते हैं जो उस चिराग़ को ले लेता है। उसके प्रभाव से मनुष्य मन-वाञ्छित वस्तुयें प्राप्त कर सकता है। जादूगर चिराग़ की तलाश में मिस्र से चीन आया और पृथ्वी के भीतर जहाँ वह रक्खा था उसे खोज निकाला। तब उसने एक दर्ज़ी के लड़के को वह चिराग़ लाने के लिए तैयार किया। लड़का पृथ्वी के भीतर उतरा, परन्तु दुर्भाग्य से चिराग़ उसी लड़के के हाथ में रहा और जादूगर हाथ ही मलता रह गया। लड़का उसके प्रभाव से धन-सम्पत्ति-सम्पन्न हो गया।

इस कहानी से भी इस विद्या के अस्तित्व का पता लगता है। इतिहास-पुराणों में खोज की जाय तो इस विद्या के अनेक उदाहरण मिलें। इस समय यह विद्या सर्वथा लोप सी हो गई है। इस कारण लोगों को सन्देह हो गया है कि यह थी भी या नहीं। परन्तु ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे उसका होना सिद्ध है।

५—पृथ्वी से जल निकालने की विद्या

पूर्वोक्त विद्या से ही मिलती हुई एक और विद्या है, जिसके द्वारा यह बताया जा सकता है कि किस स्थान पर कुआँ खोदने से पानी निकलेगा। इसका कुछ ज्ञान रखने वाले अब भी पाये जाते हैं। परन्तु इञ्जीनियर लोग उनकी कम मानते चले। मेरे एक बी० ए०, एल-एल० बी० मित्र ने इस सम्बन्ध में एक सच्ची घटना सुनाई है—

एक स्थान पर एक कृत्रिम कुआ (Artizan Well) खोदा गया था। बहुत गहरे जाने पर भी उसमें जल न निकला। बहुत प्रयत्न किये गये, पर सब निष्फल हुए। इञ्जीनियर साहब ने निराश होकर काम छोड़ दिया और कहा कि यहाँ पानी नहीं निकल सकता। कुवें के पास ही एक गाँव में एक कुआ खोदने वाला रहता था। उसने इञ्जीनियर साहब के पास आकर पानी निकाल देने का वादा किया। इञ्जीनियर साहब को पहले तो यक़ीन न आया, परन्तु आज़माइश के तौर पर उन्होंने उसे एक मौक़ा दे दिया। उस आदमी ने पहले ही कह दिया कि जिस समय मैं कुवें से निकालने को आवाज़ दूँ उसी समय मुझे खींच लेना, नहीं तो पानी की प्रचुरता से डूब जाऊँगा। वह नीचे उतरा और कुवें के भीतर एक जगह की जाँच-पड़ताल करके खोदने लगा। थोड़ी ही देर बाद उसने ऊपर खींचने की आवाज़ दी। उसी वक़्त वह ऊपर खींच लिया गया। ऊपर खींचे जाने के वक़्त उसने अपने निश्चित स्थान पर कुदाल की एक ऐसी चोट मारी कि पानी उससे बड़े वेग से फूट कर कुवें में आने लगा और उस आदमी के ऊपर पहुँचते पहुँचते कोई आधा कुआ पानी से भर गया। इस घटना को देख कर इञ्जीनियर साहब और दूसरे आदमी अचम्भे में आ गये और उसकी प्रशंसा करने लगे। उस आदमी ने कहा कि पृथ्वी में भी मनुष्य के शरीर के समान कितनी ही रगें होती हैं। इन रगों को जानने वाला पृथ्वी में से जल शीघ्र ही निकाल सकता है।

प्राचीन काल में इस विद्या का बड़ा प्रचार था। अब भी, देहात में, कहीं कहीं, ऐसे कुवे खोदने वाले मिलते हैं। वे लोग पचीस* तीस रुपये में कुइयाँ खोद देते हैं। पर उनकी क़दर नहीं है। यद्यपि वे लोग विद्या नहीं पढ़े तथापि पुराने आदमियों से इस कला का अध्ययन करने के कारण अद्भुत कार्य्य कर दिखाते हैं।

हमारे सुशिक्षित युवकों को चाहिए कि इस प्रकार की प्राचीन विद्याओं को हाथ से न जाने दें, नहीं तो उनके पूर्वजों का हस्तलिखितों का अनुभव वृथा ही चला जायगा।

६—सामुद्रिक।

सामुद्रिक विद्या के अनेक अङ्ग हैं। इस विद्या से मनुष्य के मुख, हाथ, अथवा और किसी अवयव को देख कर उसका सब हाल बताया जा सकता है। प्राचीन भारत ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की थी।

अपने मामा के घर से अयोध्या को प्रस्थान करते समय भरत का वाम अङ्ग और नेत्र फड़का था। इससे उन्हें निश्चय हुआ था कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। वह अनिष्ट पिता की मृत्यु और रामचन्द्र का वनगमन था।

रामचन्द्र की भुजा, रावण के वध के पहले, फड़की थी। यह विजय-सूचक चिह्न था।

श्रीकृष्ण के पैरों में शङ्ख, चक्र और ध्वजा, तथा हाथों में गदा, पद्म के चिह्न थे। इन्हें देख कर गर्गाचार्य्य ने इन का नाम रक्खा था। इसी तरह बलराम के भी चिह्न देख कर उनका नाम रक्खा गया था।

* रायबरेली के ज़िले में पाँच ही रुपये में—सं० स०

बताया। मेरी तो जान ही गई थी। पण्डितजी ने कहा, अरे मूर्ख! तूने कुछ न किया। यदि चला ही जाता तो तुझे बहुत बड़ी पदवी प्राप्त हो जाती। ख़ैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। मुहूर्त अब भी है। जा, पूर्व को चला जा। वह फिर चला और चला ही गया। आकर कलकत्ते पहुँचा। थोड़े ही दिनों में वह बड़ा आदमी होगया और यहाँ तक बढ़ा कि जगत्सेठ के नाम से विख्यात हो गया। यह सब प्रताप ज्योतिष के अनुसार मुहूर्त बताने ही का था।

हिन्दुस्तान में लाखों आदमी अपने अनुभव से ज्योतिष का सही होना बयान कर सकते हैं। ज्योतिष-विषय के इतने ग्रन्थ हैं कि सहस्रों ग्रन्थों के लुप्त जाने पर भी कितने ही ग्रन्थ बिना छपे पड़े हैं। यद्यपि इस विद्या का जन्म इसी देश में हुआ है और इसका प्रभाव समस्त हिन्दू नर-नारियों के घर में व्याप्त है तथापि नवीन शिक्षा पाये हुए युवक इसका, इस समय, तिरस्कार करने लगे हैं। उनकी यह चेष्टा इस विद्या की परीक्षा करने के बाद नहीं हुई, बल्कि बिना परीक्षा किये ही हुई है। क्योंकि नवीन सभ्यता का यह लक्षण है कि जो बात उसकी समझ में तुरन्त नहीं आती है उसका वह सर्वथा तिरस्कार करने लगती है।

ज्योतिष-विद्या-सम्बन्धी कई विषय हैं, जैसे केरलमत, भृगु आदि। इनके बहुत से चमत्कारी रहस्य ऐसे थे जो पुस्तकस्थ न थे, पण्डितों के कण्ठों में ही परम्परा से चले आते थे। वे बड़े अनुभव से प्राप्त हुए थे। गुरुजन इन रहस्यों को शिष्यों को ही बताते थे। परन्तु अब पुरानी प्रथा के क़ायम न रहने के कारण वह ज्ञान नष्ट सा हो गया है। एतद्देशीय विद्वानों को उचित है कि इस विद्या को पुनर्जीवित करें, क्योंकि इसके प्रभाव से मनुष्य के भूत-भविष्य का बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है। कुछ समय से इस विद्या का प्रवेश अमरीका में हुआ है। कितनी ही पुस्तकें और पत्रिकायें भी इस विषय पर छपी हैं, परन्तु अमरीका वालों को तो अभी इस विद्या का श्रीगणेश ही मालूम हुआ है। पूर्व रूप से तो यह वहाँ फिर विकसित हो सकती है। अतएव इसकी उन्नति के लिए हमें चेष्टा करनी चाहिए।

८—स्वरोदय।

जो विद्या नाक के द्वारा आने जाने वाली वायुओं के नियमों से सम्बन्ध रखती है उसे स्वरोदय कहते हैं। प्राचीन काल में इस विद्या की बड़ी उन्नति थी। इसके द्वारा होने वाली शुभ और अशुभ घटनाओं का निश्चय किया जाता था। स्वरोदय जानने वाला स्वरों के द्वारा बता सकता था कि आगे क्या होने वाला है। उसके अनुमान प्रायः सच निकलते थे। इस विषय के कुछ अमूल्य ग्रन्थ, जो अब भी मिलते हैं, छपे नहीं। कुछ सामान्य ग्रन्थ छप गये हैं। यह विद्या बहुत करके अभ्यास पर ही अवलम्बित थी। गुरु शिष्य को इसका अभ्यास करा दिया करता था। पुस्तक पढ़ाने की इतनी आवश्यकता न थी। ग्वालियर राज्य के दीवान सर राजा दिनकरराव इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे। वे बिना स्वर देखे कोई काम न करते थे। यदि स्वर ठीक न होते थे तो वे चलते चलते ठहर जाते थे। जब शुभ स्वर आते थे तभी चलते थे। यह विद्या अब भी कुछ लोगों को मालूम है। परन्तु इसका अधिक अंश लोप हो गया है और होता जाता है। यदि इस बाक़ी अंश के क़ायम रखने का कोई प्रबन्ध न हुआ तो यह विद्या, कुछ काल में, संसार से सर्वथा लोप हो जायगी। यह विद्या बड़े परिश्रम से सिद्ध हुई थी। इसके लोप होने से संसार की एक ऐसी अद्भुत विद्या जाती रहेगी जो और किसी देश में नहीं प्राप्त हो सकती।

९—योग।

अब हम कुछ ऐसी विद्याओं का उल्लेख करते हैं जो योग से सम्बन्ध रखती हैं। योग-विषय के अनेक छपे और बिना छपे ग्रन्थ मिलते हैं। परन्तु योगाभ्यासी साधु दिखाई नहीं देते। अभ्यास की वे क्रियायें, जिनके द्वारा योग-चमत्कार का प्रादुर्भाव होता है, अब बहुत कम मालूम हैं।

मनुष्य योग-विद्या के प्रभाव से सभी प्राकृतिक तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त कर सकता था और अनेक करामातें दिखा सकता था। वह दूर से सुन सकता था, हज़ारों कोस दूर की वस्तु देख सकता था, दूसरों के मन के भाव जान सकता था, सूक्ष्म शरीर-द्वारा हज़ारों कोस दूर जा भी सकता था। उसे देशकाल-सम्बन्धिनी कोई रुकावटें न थीं।

पातञ्जल-योग सूत्र के तीसरे और चौथे अध्यायों में अद्भुत विभूतियों का वर्णन है। ये सब योग-साधन से ही प्राप्त हो सकती हैं। इन विभूतियों में से कुछ के नाम सुनिए—

...है वह योग-विद्या के सामने कुछ भी नहीं। योग-विद्या का लोप होना सब संसार के लिए हानिकारी है। इस विद्या को पुनर्जीवित करना सारे संसार का उपकार करना है। भारतवासियों को चाहिए कि इस विद्या को लोप होने से बचावें।

[आगामी संख्या में समाप्य

कन्नोमल, एम० ए०

परिताप ।

(१)

पथ-पथ घिरते ही आ रहे हैं घनेरे,
इस समय न नीलाकाश भी दीखता है।
हम परम पिता की पूर्ण-आभा नहीं जो
अवनि यह अँधेरा दूर होवे कहाँ से॥

(२)

कबहु रवि ने भी है महा-निर्दयी हो,
रजनि अति कराला रूप लेके पधारी।
अरि सकुच छिपा है बादलों बीच जाके,
उडु-गण नभ में तो दीखते ही नहीं हैं॥

(३)

सब जगह यहाँ तो छा रहा है अँधेरा,
अब कुसमय ऐसा आ रहा है घनेरा।
सुपथ इस निशा में बाट कैसे दिखेगा,
यह भव निधि कैसे पार हा! हो सकेगा॥

× × × × ×

(४)

मम हृद-तम में ये भावनायें अनेकों।
विचलित करती हैं सर्वदा शान्ति मेरी।
जिस विधि भव से मैं पा सकूँ मुक्ति स्वामी!
मधुहर! अब ऐसी ज्ञान-आभा दिखा दो॥

प्रेमनारायण भट्ट

विदेशी अक्षरों का प्रचार ।

उर्दू-भाषा में अरबी, फ़ारसी और हिन्दी—इन तीन भाषाओं की वर्णमालाओं के अक्षर मिले हुए हैं। उर्दू-वर्णमाला की रचना पर ख़्याल देने से यह भी मालूम होता है कि अपनी जन्मभूमि से निकल कर अरबी जब ईरान में आई तब उसे चार नई ध्वनियों के लिए चार सङ्केत स्वीकार करने पड़े। अफ़ग़ानिस्तान की तराई पार करके जब यह हिन्दुस्तान में पहुँची तब उसमें १४ ध्वनियों के लिए १४ चिह्न और भी सम्मिलित हो गये।

इस मिश्रण का कारण है। ईरानियों ने अरबी-लिपि को अपना लिया—स्वदेशी लिपि के पद पर उसे प्रतिष्ठित किया। पर उनके लिए जिन शब्दों का व्यवहार करना अपरिहार्य्य था उनकी ध्वनियों के लिए कितने ही शब्द—चिह्न—अरबी में न थे। अरबी के इस अभाव की पूर्ति हुए बिना उनकी इष्ट-सिद्धि न हो सकती थी। इस आवश्यकता ने उन्हें एक शिक्षा दी। वह यह कि अरबी के ب - ح - ر अक्षरों में दो दो बिन्दियाँ, और ک की टेढ़ी रेखा पर एक और टेढ़ी रेखा बढ़ा देना पड़ा। इस प्रकार उन्होंने پ - چ - ژ - گ अक्षरों की सृष्टि की। स्वयं अरबी-वर्णमाला पर ध्यान देने से भी यही बात सिद्ध होती है। अरबी में ب से ع तक कितने ही अक्षर ऐसे हैं जिनके भेद का ज्ञान नुक़्तों की न्यूनाधिक संख्या ही के द्वारा होता है। अरबी-वर्णमाला की रचना करते समय अरबों ने इस नियम पर भी ध्यान रक्खा है कि किसी एक ध्वनि का उच्चारण-स्थान खोज निकालने पर, और उस स्थान के लिए कोई चिह्न नियत कर लेने पर, उस ध्वनि के उच्चारण-स्थान के निकटवर्ती स्थानों से उच्चरित होने वाली ध्वनियों के लिए नये नये स्वतन्त्र चिह्नों की सृष्टि

नहीं। अतएव लोगों ने ईरानियों की युक्ति से काम लिया। अर्थात् विद्यमान हिन्दी-अक्षरों के नीचे बिन्दियाँ लगा लगा कर काम निकाला। अर्थात् خ-ز-ع-غ-ف-ق की ध्वनियों का काम ख़, ज़, अ़, ग़, फ़ और क़ चिह्नों से चलाया गया। इन नवीन सङ्केतों का प्रयोग प्रायः उन्हीं "तत्सम" शब्दों में किया जाता है जो विदेशी भाषाओं से लिये गये हैं।

इन नवीन अक्षरों में औरों का स्वभाव तो हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के व्याकरणों के अनुकूल है, परन्तु जान पड़ता है, 'अ़' का नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त भाषाओं में, शायद "अ" के पश्चात् "अ" नहीं आता। "अ़" यद्यपि ع का उच्चारण बताने के लिए नियत किया गया है तथापि वह किसी विदेशी शब्द के अक्षरों की पंक्ति में मध्य-स्थान नहीं ग्रहण कर सकता, आदि-स्थान ही कर सकता है। इस नियम का भी उस समय खण्डन हो जाता है जब صارب और عمرل के सदृश शब्द लिखना पड़ते हैं।

पहले तो हमें इसी में सन्देह है कि हिन्दी और संस्कृत में "अ" के पश्चात् "अ" आता है या नहीं। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकरजी द्विवेदी अपने व्याकरण में लिखते हैं—"मुख्य स्वर तो यदि विचार कर देखो तो अ, इ, उ, × × × को कहते हैं और अ+अ=आ, इ+इ=ई × × × × इस प्रकार आ, ई × × × बनते हैं।" इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि "अ" के पश्चात् "अ" आता है अवश्य, पर केवल उसका आकार बदल जाता है। यदि हमारा यह ख़याल ठीक न हो तो फिर "अ"+"अ" का अर्थ क्या है? और, "आ" में "अ" के पश्चात् जो खड़ी रेखा है, क्या वह दूसरे "अ" का परिवर्तित आकार नहीं है? वह तो "अ" का ही आकार जान पड़ता है। इसका एक प्रमाण भी है। व्यञ्जनों को जब स्वर-रहित करना होता है तब उन्हें रेखा-रहित कर देते हैं—यथा "हिन्दी" के "न्द" में "न" का रेखा-रहित होना। यह इस बात को सिद्ध करता है कि इस व्यञ्जन में स्वर "अ" संयुक्त नहीं है। परन्तु हम संस्कृत नहीं पढ़े। अतएव इस विषय पर ज़ोर देने से असमर्थ हैं। हमारी सम्मति में तो "अ़" को शब्द के बीच में स्थान न मिलना और उसका संस्कृत के व्याकरण के अधीन न रहना इन कारणों पर अवलम्बित है—

(१) "अ़" संस्कृत का "अ" नहीं है। हिन्दी और संस्कृत में "अ" स्वर है, पर अरबी में "अ़" (ع) व्यञ्जन है।

(२) यदि यह संस्कृत-व्याकरण के अधीन किया जाय तो उसके आविष्कार का उद्देश निष्फल हो जायगा।

(३) जब विदेशी भाषा का कोई शब्द रूपान्तरित होकर हिन्दी में नहीं आया और हम उसका शुद्ध उच्चारण करना चाहते हैं तब हिन्दी के व्याकरण को क्या अधिकार कि वह "अ़" को अपने अधीन कर ले? और—

(४) जब امل (आशा) और عمل (कार्य) के सदृश शब्द हिन्दी में प्रचलित हो जायँगे तब उनके भेद का बोध कैसे होगा?

हिन्दी में ح - ث - ص के लिए कोई चिह्न नहीं गढ़ा गया। इस दशा में या तो "अ़" भी यथाधिकृत अक्षरों की श्रेणी से निकाल दिया जाय या केवल "अ" पर ही सन्तोष किया जाय, अथवा अरबी-व्याकरण के अनुसार उसका व्यवहार किया जाय। क्योंकि किसी भिन्न भाषा में रूपान्तर (Transliteration) करने में इसी बात का उद्योग किया जाता है कि विदेशी भाषा की ध्वनियों का उच्चारण स्वदेशी अक्षरों के द्वारा ठीक ठीक हो।

सलीम अख़्तर
(मुन्शी फ़ाज़िल)

——

इसमें पेसा सा गढ़ा सा पड़ जाता है। नीबू, सन्तरे और सेब में काला दाग़ पड़ जाता है। गेहूँ के एक बीमारी हो जाती है जिससे उसका दाना काला हो जाता है। अँगरेज़ी में इस रोग का नाम Stinking Smut है। आलू को एक विशेष रोग होता है जिसे Irish Blight कहते हैं। जर्मनी में इस रोग से, १९०८ ईसवी में, कोई ३,००,००,००० पौंड की हानि हुई थी। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में Oat Smut नामक रोग से ११,००,००० पौंड की वार्षिक हानि होती थी। अकेले न्यूयार्क ज़िले में, १९०४ में, इस रोग से १०,००,००० पौंड से अधिक की हानि हुई थी। इन रोगों से फ़सल और बाग़ीचों को सुरक्षित रखना और रोगी पौधों की चिकित्सा करना वनस्पति-निदान-शास्त्र का काम है। अँगरेज़ी शब्दों में निदान-शास्त्र के काम इस प्रकार बतलाये गये हैं—Poor crops and stunted growths are evidence either of unsuitable conditions, or of want of knowledge on the part of the grower. It is the business of the plant pathologist to help the producer to gain the full reward of his industry and skill by guarding against the unseen foes which too often rob him of the fruit of his labours. इससे बढ़ कर राज्य की ओर से किसानों को और क्या सहायता मिल सकती है? अमेरिका के अन्तर्गत कैलीफ़ोर्निया रियासत में Peach-leaf Curl नामक रोग की उचित समय पर चिकित्सा हो जाने से, एक ही वर्ष में, ८०,००० पौंड बच गये थे। हमारे देश में अज्ञान के कारण ऐसे वनस्पति-रोगों को धातु का विकार समझ कर किसान निश्चिन्त हो कर निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। किसी को इनकी चिकित्सा का ज्ञान नहीं। सभ्य देशों में, जहाँ लोगों को अपने हित-अहित का ज्ञान है, वहाँ अपनी वृद्धि और उन्नति के लिए नये उपाय सोचे जाते हैं, प्रत्येक मैले-कुचैले ग्वाले को मक्खियों से भरा हुआ अपवित्र दूध बेचने की आज्ञा नहीं। दूध बेचने के लिए नियम पूर्वक लायसन्स या आज्ञा-पत्र लेना पड़ता है। इसके बिना कोई भी मनुष्य दूध नहीं बेच सकता। इसका कारण यह है कि स्वच्छ और पवित्र दूध अमृत के समान गुणकारी है। पर अस्वच्छ और बासी दूध सूक्ष्म-रोग-जन्तुओं का मन-माना निवास-स्थान है। रोगी गाय के दूध में और मैले स्थान में रक्खे हुए दूध में सहस्रों प्रकार के सूक्ष्म रोग-जन्तु पाये जाते हैं। बालकों की अधिक मृत्यु का कारण अधिकतर बाज़ारों का गन्दा दूध ही होता है। क्षय रोग, हैज़ा, टिफ़, और सान्निपातिक ज्वर के बीज प्रायः दूध के द्वारा ही फैलते हैं। इसलिए ऐसा प्रबन्ध जिससे देश के बालकों को स्वच्छ दूध मिले, भारी जातीय उपकार है।

विक्टोरिया में पशु-चिकित्सा-विभाग की ओर से दुग्ध-निरीक्षक नियुक्त हैं। ये प्रत्येक दुग्धशाला में जाते और शालावालों से मेल-मिलाप रखते हैं। लायसन्स के प्रार्थियों और दुग्ध-निरीक्षकों को दुग्धशाला के विषय में पहले नीचे लिखे विषयों की रिपोर्ट करनी पड़ती है। तब, यदि उचित समझा जाता है तो, आज्ञा-पत्र मिलता है—

दुग्धशाला-विषयक—स्थिति और भागरिक प्रदेश। दूध का दैनिक एवं किन ज़रियों से होता है? शाला में कहाँ से दूध आता है? कितना दूध आता है? दुग्धशाला को किस प्रकार दूध मिलता है? दूध किस प्रकार बेचा जाता है? नौकरों की संख्या। ग्राहकों की संख्या। दूध का भाण्डार। स्वास्थ्य की दृष्टि से मकानों और बरतनों आदि की दशा।

दूध देने वाली गायों और उनके खान-पान के विषय में—स्थिति और रहने की शाला का क्षेत्र-फल। कितनी ज़मीन में चारा बोया जाता है? नौकरों की संख्या। दूध देने वाली गायों की संख्या। एक दिन में कितना दूध दुहा जाता है? दूध किन किन कामों में बेचा जाता है? चारे की कौन कौन सी फ़सलें कितनी कितनी भूमि में बोई गई हैं? कितना और किस प्रकार का चारा ख़रीदा गया है? पशुओं की तन्दुरुस्ती। गायों की मृत्यु। गर्भपातों की संख्या। गायों के ऐसे रोग जिनकी सूचना देना आवश्यक है। मकान। गायों के रहने की शालायें। खाद के रखने का स्थान। स्वास्थ्य की दृष्टि से बरतन आदि की दशा। इत्यादि।

इसके साथ ही दुग्ध-निरीक्षकों को समझा दिया जाता है कि वे अपने आपको अफ़सर समझ कर काम न करें, बल्कि दुग्ध-शालाओं (डायरी फ़ार्म) के काम को उन्नत करने के लिए पथ-प्रदर्शक और उपदेशक समझें। कृषि-विभाग के इस प्रशंसनीय उद्योग से रोगी और निकम्मी गायों का दूध

इतना ही नहीं, कृषि-विभाग व्याख्यान देने से भी बढ़ कर काम करता है। जब किसी अन्न या फल का स्वदेश में प्रचार करना होता है तब इस विभाग के कर्म्मचारी किसानों के खेतों में जाकर उसे बो देते हैं। इस तरह उनके सामने उस फ़सल में सफलता प्राप्त करके उसकी उपयोगिता को प्रमाणित करते हैं। इससे आगामी वर्षों में किसान स्वयं ही उसे बोने लगता है। विक्टोरिया के कृषि अधिष्ठाता की रिपोर्ट में लिखा है कि किसी कृषि-सभा को सहायता देने का राज-नियम यह है कि सभा के किसी एक किसान के खेत में महकमे के एक कर्म्मचारी के निरीक्षण में एक परीक्षा-मूलक क्षेत्र (Experimental Farm) बो दिया जाता या किसी अन्न-विशेष की वृद्धि के लिए किसी किसान को कृषि-सभा की ओर से पारितोषिक दिलाया जाता है। परीक्षा मूलक क्षेत्र बोने की रीति यह है कि कृषि विभाग का कर्म्मचारी कृषि सभा के इलाक़े में से कोई ऐसा खेत चुन लेता है जो नगर से बहुत दूर न हो और जिसकी मिट्टी आस पास के बहुत से खेतों की मिट्टी से मिलती हो। सड़क के किनारे के खेत इस काम के लिए बहुत पसन्द किये जाते हैं, क्योंकि आने जाने वाले लोग उसे सहज में ही देख सकते हैं। भूमि के स्वामी किसान से यह प्रतिज्ञा कराई जाती है कि वह उस खेत को सन्तोष-जनक रीति से तैयार कर दे और महकमे को फ़सल बोने और काटने के लिए आवश्यक यन्त्र और घोड़े सुपुर्द दे। इसके बदले में महकमा बीज, खाद, तथा फ़सल बोने, काटने और तोलने के लिए अपना एक कर्म्मचारी सुपुर्द देता है। फ़सल तैयार हो जाने पर परीक्षा-मूलक क्षेत्र की सारी उपज किसान को दे दी जाती है। उसमें से केवल थोड़ी सी उपज उस इलाक़े के किसानों में बीज के तौर पर बाँटने के लिए कृषि विभाग ले लेता है। ऐसे परीक्षा क्षेत्रों से किसानों का बड़ा काम है। वे जान जाते हैं कि कौन सी चीज़ इस भूमि में किस रीति से बोने से अधिक लाभदायक हो सकती है। ऐसे परीक्षा क्षेत्रों के एक सिरे पर एक मोटी तख़्ती से फ़सल की जाति, खाद, बोने की विधि आदि बातें तख़्ते पर लिख कर लटका दी जाती हैं, जिससे देखने वाला प्रयोग के स्वरूप को समझ जाय। इन परीक्षा क्षेत्रों में घास, ज्वार, गेहूँ, चारा आदि सब चीज़ें बोकर दिखलाई जाती हैं।

कृषि-विभाग अपने विशेषज्ञों को विदेश भेज कर वहाँ की कृषि सम्बन्धिनी जानकारी प्राप्त करता है। वहाँ से बीज मँगा कर अपने परीक्षा-क्षेत्रों में बोता है। फिर उनमें से जो स्वदेश के जल-वायु के अनुकूल होते हैं उन्हें किसानों को बाँट कर उसकी खेती को उत्तेजना देता है। भिन्न भिन्न प्रकार के गेहूँ के रजोवीर्य्य को मिला कर आस्ट्रेलिया वालों ने एक अद्भुत प्रकार का गेहूँ उत्पन्न किया है। उसका नाम फेडरेशन गेहूँ है। वहाँ एक उत्तम प्रकार की मकई है। उसका नाम है—हिकरी किङ्ग। उसका पौधा साढ़े दस फ़ीट ऊँचा होता है। वह पशुओं के चारे के लिए बहुत उपयोगी है।

कृषि-विभाग की ओर से फलोद्यान और द्राक्षोद्यान-विद्या की शिक्षा के लिए स्कूल और कालेज खुले हुए हैं, जहाँ बालकों को अच्छी शिक्षा दी जाती है। कृषि-कालेजों में तो शिक्षा के साथ साथ विद्यार्थियों को, उनकी अवस्था के अनुसार, कुछ वेतन भी मिलता है। अपनी कमाई से प्रत्येक बालक अपने कपड़े बनाता है। मितव्ययिता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी का हिसाब स्थानीय सेविंग्स बैंक में रहता है। यह लेखा दिन पर दिन बढ़ता रहता है, जिससे कालेज छोड़ने के समय विद्यार्थी के पास एक अच्छी रक़म हो जाती है।

स्वदेश से जो माल विदेश जाता है उसकी पड़ताल के लिए महकमे की ओर से एक निरीक्षक नियत है। यदि कोई निकृष्ट माल बाहर भेज देता है तो सारे देश के व्यापार को हानि पहुँचती है और संसार की मण्डियों में उसकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है। ग्राहक और जगह चले जाते हैं। एक बार जो व्यापार हाथ से निकल जाता है तो फिर उसका हथियाना बड़ा कठिन होता है। इस लिए पहले से ही सावधान रहने की बड़ी आवश्यकता है।

प्रत्येक उन्नत देश की ओर से दूसरे देशों में एक एक एजन्ट अफ़सर रहता है। उसका काम यह होता है कि वह उस देश के व्यापार का ज्ञान प्राप्त करे और स्वदेश के व्यापार की वृद्धि के उपाय सोचे। वह वहाँ हर प्रकार से अपने देश के व्यापार का विस्तार करने का यत्न करता रहता है। वह विदेश की परिवर्तित दशाओं की सूचना, समय समय पर, अपने दूतों, डिपुटियों और व्यापारियों

भारतीय पुनरुत्थान।

(२)

भारतीय पुनरुत्थान के कारण और उसके प्रथम सूत्रपात पर विचार किया जा चुका है। आवृति में मुख्य परिवर्त्तन, शिक्षा या विद्योपार्जन से सम्बन्ध रखता है। इसलिए इसी विषय पर कुछ लिखना है।

ब्रिटिश शासन के विस्तार के साथ साथ अँगरेज़ी शिक्षा की वृद्धि भी इस देश में हो रही है। इस नई शिक्षा-पद्धति की विशेषता यह है कि इसके द्वारा अब भारतीय विद्वानों के मन में स्वाधीन-चिन्ता के बीज बोये जाते हैं। हम लोग किसी चीज़ के विषय में कुछ पढ़ कर, या किसी बात को सुन कर, ज्यों का त्यों उसे मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं; अनुसन्धान, युक्ति और तर्क से यदि किसी विषय की सत्यता का निश्चय हो जाय तभी उस बात को मानते हैं। लोग, पहले, स्त्री-शिक्षा के उतने पक्षपाती न थे जितने अब हैं। बहुत सम्भव है कि उन्होंने स्वाधीन विचार के द्वारा स्त्री-शिक्षा में दोष कम और गुण अधिक पाये हों। समुद्र-यात्रा को लोग धर्म-विरुद्ध समझते थे, परन्तु अब भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्रान्त के लोग इँगलेंड, अमेरिका, जापान इत्यादि हो आते हैं; और समाज भी धीरे धीरे उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो रहा है। इसका कारण भी है—विचार-स्वतन्त्रता। इसी प्रकार हम देखते हैं कि शूद्र वेदपाठ करते हैं, अन्तर्जातियों में विवाह-प्रथा का भी धीरे धीरे प्रचार हो रहा है और खान-पान में भी अब पहले के समान कठिन नियमों का पालन नहीं किया जाता। यहाँ भी हम देखते हैं कि लोग अपने को पुराने सामाजिक नियमों के दासत्व से मुक्त कर रहे हैं। स्वाधीन चिन्ता ही इसका कारण है। विधि-बद्ध नियमों के मानने वाले इन बातों से चाहे भले ही घबरायें, परन्तु इन परिवर्त्तनों के गुण-दोष का विचार किये बिना ही इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मनुष्य के विचारों में एक सामयिक विप्लव अवश्य उपस्थित हुआ है—इसका परिणाम चाहे भला हो चाहे बुरा। मनुष्य पहले अपने गाँव, अपने परिवार, अधिक से अधिक अपनी जाति ही की चिन्ता करता था—उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी थी। अब यह भाव नहीं रहा। अपने परिवार तथा अपनी जाति की चिन्ता अवश्य कीजिए। परन्तु पीछे, पहले देश के हित और मनुष्य के कल्याण की ओर ध्यान दीजिए, दृष्टि को बहिर्मुख कीजिए—वर्त्तमान विचार यही शिक्षा देते हैं।

प्रत्येक युग में कुछ न कुछ विशेषता होती है। इतिहास के पूर्व के युग में क्या विशेषता थी, यह हम नहीं बता सकते। प्राचीन मिस्र, असीरिया, बैबीलोन, भारतवर्ष, चीन, फ़ारिस इत्यादि देशों की सभ्यता के विषय में भी हमारा ज्ञान असम्पूर्ण है। परन्तु यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि मिस्र के मीनार बनाने वाले, मृत देहों को हज़ारों वर्ष तक ज्यों का त्यों ठीक रखने वाले, लिखने की रीति का आविष्कार करनेवाले, वेदों के रचयिता, दरायन-मिर-न्र-कपिल-बुद्ध इत्यादि के जन्मदाता असभ्य न थे। प्राचीन से प्राचीन ऐतिहासिक समय से लेकर आज तक हमें युग-धर्म में मुख्यतः तीन परिवर्तन देख पड़ते हैं—(१) अलौकिक घटनाओं पर अन्ध-विश्वास का युग, (२) बाहुबल तथा युद्ध-नीति का युग और (३) वर्त्तमान व्यावसायिक युग। इसका यह अर्थ नहीं कि आज कल किसी के मन में अन्ध-विश्वास के लिए स्थान नहीं, अथवा पृथ्वी पर कहीं लोग एक दूसरे से आज लड़ते न हों। मत यह है कि वर्त्तमान समय में इनका प्राधान्य नहीं। वर्त्तमान समय में लोग इन बातों को न तो श्रद्धा की दृष्टि से

नई शिक्षापद्धति के प्रयोग-स्वरूप हैं। हमारे देश में भी निवास-प्रधान विश्वविद्यालय, योरोप के ढँग के, स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है। देश के धनी-मानी जन गणित, विज्ञान इत्यादि शास्त्रों की उच्च शिक्षा के निमित्त अपना उपार्जित धनदान करने में आनाकानी नहीं करते। निस्सन्देह ये सब शुभ लक्षण हैं। परन्तु ऐसी बहुत सी बातें और भी करना बाक़ी है जिनके बिना हम यथार्थ उन्नति नहीं कर सकते। जातीय शिक्षा की उन्नति के लिए हम यहाँ पर कुछ सूचनायें देना चाहते हैं। पूर्ण विश्वास है कि यदि देशवासियों ने इनकी ओर यथोचित ध्यान दिया तो सौ वर्ष का काम बीस ही वर्ष में निकल सकता है। वे सूचनायें ये हैं—

(१) अपने प्राचीन ग्रन्थों को लोप होने से बचाना और हस्तलिखित ग्रन्थों को प्रकाशित करना। क्योंकि जिस चीज़ को हम आज बेकार समझ कर फेंक देते हैं उसके लिए कल हाय हाय मच सकती है। ताड़ के पत्तों पर हाथ से लिखे गये अनेक ग्रन्थों की क़ीमत यहाँ किसी ने न समझी, परन्तु जर्म्मनी में उनकी बड़ी क़दर हुई। श्रेष्ठता-प्राप्त कोई भी जाति इस बात का गर्व नहीं कर सकती कि उसने चोरी नहीं की। चोरी से हमारा अभिप्राय अनुवाद से है। हमारे यहाँ इस बात की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया। जब तक किसी भारत-व्यापक भाषा की सृष्टि न हो तब तक प्रत्येक प्रान्त में दूसरे प्रान्तों की भाषाओं के मूल्यवान् ग्रन्थों का अनुवाद होना अत्यन्त आवश्यक है। अनुवाद ख़ूब उपयोगी ग्रन्थों के होने चाहिए। रद्दी पुस्तकों के अनुवादों से काम न चलेगा।

(२) गम्भीर लेखों का हमारे देश में बहुत ही अभाव है। इसकी पूर्ति शीघ्र होनी चाहिए। मिल, डार्विन, एमर्सन, बेकन, टाल्स्टाय, कारलायल इत्यादि की प्रदर्शित पद्धति पर प्रान्तिक भाषाओं में लेखों का अभाव जब तक है तब तक भाषा-साहित्य पुष्ट नहीं कहा जा सकता।

(३) युद्ध-युग (Heroic Age) में माता-पिता सन्तान को शारीरिक बल, साहस और वीरत्व का गौरव बतलाते थे। वर्तमान युग में बालकों और नवयुवकों को पाण्डित्य तथा नैतिक उन्नति की महिमा बतलानी चाहिए। जो कुछ आपके पास है उसे सुरक्षित रखिए और जो नहीं है उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कीजिए। सूक्ष्म की चर्चा हमने बहुत करली; यह तो हमारे घर की चीज़ है। प्राच्य और प्रतीच्य (East and West) के सामञ्जस्य के लिए अब स्थूल के विचार में लग जाना चाहिए। सांख्य, योग, वैशेषिक को कुछ देर के लिए बन्द करके रसायन, पदार्थ-विज्ञान, गणित के उच्च तत्वों के जानने में यत्नवान् होना चाहिए।

(४) देश के धनी सज्जनों की देश-भक्ति पर हम अभी तक पूर्णतया सन्देहशून्य नहीं हुए। यदि आप अमेरिका के हारवर्ड (Harvard) के सदृश प्रमुख विश्वविद्यालयों की उत्पत्ति के विषय में अनुसन्धान करेंगे तो आप देखेंगे कि प्रत्येक विश्वविद्यालय की स्थापना और उन्नति का कारण किसी न किसी स्वदेशहितैषी का सर्वस्वदान है। पहले भारतवर्ष के क्षत्रिय राजा विश्वजित् यज्ञ किया करते थे। उनके वर्णन में "निःशेषविश्राणितकोशजातम्"— "मृत्पात्रशेषामकरोद् विभूतिम्"—कहा गया है। अब फिर वही दिन आ गया है। भारत के धनियों और राजन्य-जनों को ज्ञान तथा शिक्षा के प्रचार के लिए विश्वजित् यज्ञ करना पड़ेगा। मुनाफ़ा दान के दृष्टान्त तो हम देख ही रहे हैं। प्रेमचन्द्र रायचन्द्र, सर रतन टाटा, डाक्टर रासबिहारी घोष, सर टी पालित, ठाकुर रवीन्द्रनाथ इत्यादि। परन्तु सर्वस्वदान का दृष्टान्त वर्तमान काल में अभी तक नहीं देखा गया। कुछ लोगों का कथन है कि अँग्रेज़ों के द्वारा कुछ होता जाता नहीं। मारवाड़ी सेठों के

मित्र-सेना के जवान, ऐमिएं, फ्रान्स के देहातियों से किस तरह हिल मिल रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हुआ है या प्राण-घातक छुरी-कटारी भरी है। कभी कभी कहने वाले की आँखें कुछ और भाव प्रकट करती हैं और जीभ कुछ और कहती है। अनुभवी और परीक्षक मनुष्यों का कथन है कि ऐसी अवस्था में आँखों द्वारा प्रदर्शित भाव प्रायः सच्चे निकलते हैं।

कुछ लोग मिलने पर, चाहे उनसे हमारी जान पहचान न हो, घुल घुल कर ऐसी बातें करते हैं मानों वे हमारे पुराने मित्र हैं। पहली ही भेंट में वे बड़ी बड़ी डींगें मारते हैं, बड़ी बड़ी आशायें दिखाने लगते हैं। ऐसे लोगों की बातों में आना ठीक नहीं। और न उन पर विश्वास करना ही बुद्धिमानी की बात है। हम यह नहीं कहते कि संसार सज्जनों और परोपकारी पुरुषों से शून्य है। पर यहाँ प्रायः ऐसे ही पुरुष हैं जो केवल बातें बना कर अपना अर्थ साधा करते हैं। इसलिए चटपट, अच्छे प्रकार परीक्षा किये बिना हीं, किसी के विषय में यह निश्चय कर लेना कि वह तुम्हारा मित्र या शत्रु है, ठीक नहीं।

हम डींग तो मारते हैं कि हम बुद्धिमान् हैं। हम युक्ति और तर्क से काम लेने वाले हैं। संसार में हमीं विवेकी हैं। शेष मनुष्यों में न तो विवेक है, न वे युक्ति और तर्क से काम लेना ही जानते हैं। पर यह मानना भूल है कि मनुष्य सदा युक्ति और प्रमाणों के अनुसार ही काम करता है। मनुष्य एक विलक्षण प्राणी है। वह युक्ति और तर्क से काम लेने की शक्ति रखते हुए भी प्रायः पक्षपात और मानसिक विकारों से प्रेरित होकर ही काम करता है। यह नियम सर्वसाधारण के लिए है। जो व्यक्ति-विशेष विवेक, बुद्धि, युक्ति, प्रमाण और तर्क द्वारा सुविनिश्चित कामों को ही करता है उसे हम देव-कोटि का मानते हैं, यद्यपि वह मनुष्य-कोटि के अन्तर्गत है। ऐसे पुरुष-रत्न संसार में अलभ्य नहीं। परन्तु वे कभी कभी जन्म ग्रहण करते हैं। सो भी किसी देश या जाति का उद्धार करने के लिए। हमें संसार में जिन लोगों के बीच रहना और काम करना है वे ऐसे नहीं कि हम उन्हें युक्ति और प्रमाण द्वारा समझा कर उनसे काम ले सकें। बल्कि ऐसे लोग हैं जिन्हें हम तब तक अपने अनुकूल नहीं बना सकते जब तक उनकी श्रद्धा और विश्वास हम पर न जम जाय। ऐसे लोगों पर तर्क का प्रभाव विपरीत पड़ता है। तर्क से ऐसे लोग उदासीन हो जाते हैं। उनसे वैमनस्य होने की सम्भावना हो जाती है। यह सच है कि तर्क करने से हम अपने पक्ष को सिद्ध कर सकेंगे। पर इतने ही से हम किसी को अपना मित्र या अनुयायी न बना सकेंगे। यदि तर्क किये बिना काम ही न चलता हो तो विपक्षी या वादी की ग्रहणीय बातों को यथासम्भव मान लेने में चूकना न चाहिए। उसे यह दिखाने का प्रयत्न करना चाहिए कि अमुक बातों पर विचार न करने से उसे यह भ्रम हुआ है। ऐसा करने से, सम्भव है कि यदि वह समझदार है तो, अपने पक्ष की निर्बलता को स्वीकार कर लेगा। संसार में ऐसे सच्चे पुरुष बहुत कम हैं जो तर्क द्वारा समझाये जाने पर अपनी भूल को स्वीकार करते हों, जो पक्षपात छोड़ कर सच्ची बात को मानते हों, और जो तदनुसार कर्म करने पर भी तत्पर हो जाते हों। कितने ही लोग तो यह भी नहीं समझते कि उनका पक्ष गिर गया है। कितने ही यह समझने पर भी कि उनका पक्ष गिर गया है अपनी भूल स्वीकार करना और परास्त होना अपमान समझते हैं। वे काशी के पण्डितों के शास्त्रार्थ की भाँति अपनी ही हाँका करते हैं। मान लो कि तुमने किसी को युक्ति और प्रमाणों से परास्त कर दिया। पर क्या केवल इतने ही से उसकी आत्मा को सन्तोष हो जायगा ? वासना बड़ी प्रबल होती है। किसी सिद्धान्त को बहुत दिनों तक मानने से उसके साथ मनुष्य का अपरिहार्य सम्बन्ध हो जाता है। इस कारण मनुष्य अपने को इतना भूल जाता है कि वह अपने सिद्धान्त के मिथ्या सिद्ध हो जाने पर भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तक मनुष्य का हृदय राग और द्वेष से शून्य न हो तब तक उसे न तो युक्ति और प्रमाण से काम लेने का ही अधिकार है और न उनके द्वारा उसका समाधान ही हो सकता है। अतः यह कहना अनुचित नहीं कि तर्क साधारण लोगों के लिए नहीं। उनसे तो अपना वक्तव्य स्पष्ट और जहाँ तक हो थोड़े शब्दों में कह दो। इतने से यदि उन्हें तुम्हारी बात ठीक जँच गई तो समझो काम बन गया।

वाक्-पटुता अच्छा गुण है। पर इससे यह न समझ लो कि अधिक बात करने वाले वाक्पटु होते हैं। वाक्-पटुता या वाग्मिता और वस्तु है, वाचालता या प्रलाप और। पहली गुण और दूसरी दूषण या दोष है। कहा है—

अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति स खलु वाग्मी ।
बहुवचनमल्पसारं यः कथयति प्रलापी सः ॥

हुआ है या प्राण-घातक छुरी-कटारी नहीं है। कभी कभी कहने वाले की आँखें कुछ और भाव प्रकट करती हैं और जीभ कुछ और कहती है। अनुभवी और परीक्षक मनुष्यों का कथन है कि ऐसी अवस्था में आँखों द्वारा प्रदर्शित भाव प्रायः सच्चे निकलते हैं।

कुछ लोग मिलने पर, चाहे उनसे हमारी जान पहचान न हो, घुल घुल कर ऐसी बातें करते हैं मानों वे हमारे पुराने मित्र हैं। पहली ही भेंट में वे बड़ी बड़ी डींगें मारते हैं, बड़ी बड़ी आशायें दिखाने लगते हैं। ऐसे लोगों की बातों में आना ठीक नहीं। और न उन पर विश्वास करना ही बुद्धिमानी की बात है। हम यह नहीं कहते कि संसार सच्चे और परोपकारी पुरुषों से शून्य है। पर वहाँ प्रायः ऐसे ही पुरुष हैं जो केवल बातें बना कर अपना अर्थ साधा करते हैं। इसलिए अवश्य, अच्छे प्रकार परीक्षा किये बिना ही, किसी के विषय में यह निश्चय कर लेना कि वह तुम्हारा मित्र या शत्रु है, ठीक नहीं।

हम लोग तो मानते हैं कि हम बुद्धिमान् हैं। हम युक्ति और तर्क से काम लेने वाले हैं। संसार में हमीं विवेकी हैं। शेष मनुष्यों में न तो विवेक है, न वे युक्ति और तर्क से काम लेना ही जानते हैं। पर यह मानना भूल है कि मनुष्य सदा युक्ति और प्रमाणों के अनुसार ही काम करता है। मनुष्य एक विलक्षण प्राणी है। वह युक्ति और तर्क से काम लेने की शक्ति रखते हुए भी प्रायः पक्षपात और मानसिक विकारों से प्रेरित होकर ही काम करता है। यह नियम सर्वसाधारण के लिए है। जो व्यक्ति-विशेष विवेक, बुद्धि, युक्ति, प्रमाण और तर्क द्वारा सुनिश्चित कामों को ही करता है उसे हम देव-कोटि का मानते हैं, यद्यपि वह मनुष्य-कोटि के अन्तर्गत है। ऐसे पुरुष-रत्न संसार में अलभ्य नहीं। परन्तु वे कभी कभी जन्म ग्रहण करते हैं। सो भी किसी देश या जाति का उद्धार करने के लिए। हमें संसार में जिन लोगों के बीच रहना और काम करना है वे ऐसे नहीं कि हम उन्हें युक्ति और प्रमाण द्वारा समझा कर उनसे काम ले सकें। अधिक ऐसे लोग हैं जिन्हें हम तब तक अपने अनुकूल नहीं बना सकते जब तक उनकी श्रद्धा और विश्वास हम पर न जम जाय। ऐसे लोगों पर तर्क का प्रभाव विपरीत पड़ता है। तर्क से ऐसे लोग उदासीन हो जाते हैं। उनमें वैमनस्य होने की सम्भावना हो जाती है। यह सच है कि तर्क करने से हम अपने पक्ष को सिद्ध कर सकेंगे। पर इतने ही से हम किसी को अपना मित्र या अनुयायी न बना सकेंगे। यदि तर्क किये बिना काम ही न चलता हो तो विपक्षी या वादी की प्रशंसनीय बातों को यथासम्भव मान लेने में चूकना न चाहिए। उसे यह दिखाने का यत्न करना चाहिए कि अमुक बातों पर विचार न करने से उसे यह भ्रम हुआ है। ऐसा करने से, सम्भव है कि यदि वह समझदार है तो, अपने पक्ष की निर्बलता को स्वीकार कर लेगा। संसार में ऐसे सच्चे पुरुष बहुत कम हैं जो तर्क द्वारा समझाये जाने पर अपनी भूल को स्वीकार करते हों, जो पक्षपात छोड़ कर सच्ची बात को मानते हों, और जो तदनुसार काम करने पर भी तत्पर हो जाते हों। कितने ही लोग तो यह भी नहीं समझते कि उनका पक्ष गिर गया है। कितने ही यह समझने पर भी कि उनका पक्ष गिर गया है अपनी भूल स्वीकार करना और पराजय होना अपमान समझते हैं। वे काशी के पण्डितों के शास्त्रार्थ की भाँति अपनी ही हाँका करते हैं। मान लो कि तुमने किसी को युक्ति और प्रमाणों से निरुत्तर कर दिया। पर क्या केवल इतने ही से उसकी आत्मा को सन्तोष हो जायगा? वास्तव बड़ी कठिन होती है। किसी सिद्धान्त को बहुत दिनों तक मानने से उसके साथ मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है। इस कारण मनुष्य अपने को इतना भूल जाता है कि वह अपने सिद्धान्त के मिथ्या सिद्ध हो जाने पर भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तक मनुष्य का हृदय राग और द्वेष से शून्य न हो तब तक उसे न तो युक्ति और प्रमाण से काम लेने का ही अधिकार है और न उनके द्वारा उसका समाधान ही हो सकता है। अतः यह कहना अनुचित नहीं कि तर्क साधारण लोगों के लिए नहीं। उनसे तो अपना वक्तव्य स्पष्ट और जहाँ तक हो थोड़े शब्दों में कह दो। इतने से यदि उन्हें तुम्हारी बात ठीक जँच गई तो समझो काम बन गया।

वाक्-पटुता अच्छा गुण है। पर इससे यह न समझ लो कि अधिक बात करने वाले वाक्पटु होते हैं। वाक्-पटुता या वाग्मिता और वस्तु है, वाचालता या प्रलाप और। पहली गुण और दूसरी दूषण या दोष है। कहा है—

अल्पाक्षररमणीयं यः कथयति स खलु वाग्मी।
बहुवचनमल्पसारं यः कथयति विप्रलापी सः॥

अच्छा वक्ता होना तो कुछ सुगम भी है। पर अच्छा श्रोता होना बहुत कठिन है। अच्छा श्रोता होना अत्यन्त आवश्यक और उपकारी है। श्रोता को वक्ता की सब बातें सावधानी से सुनना चाहिए। वक्ता चाहे विद्रूपोपचय ही क्यों न करता हो अथवा वह किसी तथ्य का निर्णय कर लेने के लिए विग्रहात्मक का आश्रय क्यों न लेता हो, श्रोता को उसकी बातें आद्योपान्त सुन लेना ही उचित है। सहसा कोई विचार स्थिर न करना चाहिए। बल्कि उसे वक्ता के अभिप्राय को, उसके आन्तरिक भावों को, यथातथ्य समझने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि तुम सच्चे हितैषी और शुभचिन्तक हो तो चुप रहने पर भी लोग तुम्हारी सम्मति अवश्य माँगेंगे। अन्यथा तुम्हारे कहने पर भी कोई ध्यान न देगा। किसी सभा या समाज में तुम गये। वहाँ, यदि लोग आदर-पूर्वक तुम्हें उच्च आसन न दें, बात बात में तुम्हें सम्मान-पूर्वक सम्बोधन न करें, तुम्हारी सम्मति न माँगें तो तुम्हें इसकी परवा न करनी चाहिए। इसके लिए तुम्हें दुःखी न होना चाहिए। हाँ, तुम ज्ञान-वृद्ध और वयो-वृद्ध हो तो बात दूसरी है। वहाँ चुपचाप बैठ कर लोगों की बात सुनो। देखने वालों को तमाशा करने वालों से कौतुक का अधिक आनन्द मिलता है। अतएव वहाँ तो तुम्हें ऐसे रहना चाहिए मानो तुम वहाँ बैठे ही न हो। क्या ही अच्छी बात हो, यदि तुम्हें कोई सिद्ध गुटका हाथ लग जाय जिससे तुम्हें वहाँ कोई देख ही न सके।

बुद्धिर्मानापि मूर्खो वा गत्वा च विदुषां सभाम्।
मौनेन सदा तिष्ठेद् मार्गे तु मार्गिणां यथा॥

सबसे बड़ा दूषण वाक्-पारुष्य है। यह सफलता का बाधक है। मनुष्य अपनी जीभ की कटुता से संसार में सैकड़ों का शत्रु बन जाता है। कहावत है कि तलवार का घाव पुर जाता है, पर बात का घाव आजन्म बना रहता है। जिस पुरुष की वाणी परुष और कर्कश है उसे संसार में शत्रु की कहीं भी कमी नहीं। मृदु वचन से क्रूर से क्रूर मनुष्य का कलेजा पसीज जाता है, क्रोधाग्नि पर पानी पड़ जाता है। मृदु-भाषी मनुष्य के सच्चे मित्र होते हैं। वह जहाँ जाता है, लोग उसका आदर और सम्मान करते हैं। क्योंकि—

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

भोंदू बनने की कभी चेष्टा मत करो। सदा अपने स्वाभाविक रूप में रहो। स्तुति और निन्दा में समानभाव रखो। यदि तुम निन्दा-योग्य नहीं तो किसी के निन्दा करने से निन्दित न हो जाओगे। मनुष्य-समाज तुम्हारे गुणों के कारण तुम्हारा उचित आदर करेगा। तुम्हें उचित आदर अवश्य ही देगा। यदि तुम्हारे काम प्रशंसनीय नहीं तो आप व्यक्ति के प्रशंसा करने ही से तुम अच्छे नहीं बन सकते।

सबसे अधिक बुराई आत्मश्लाघा है। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना अच्छा नहीं। अच्छा मनुष्य वही है, जिसे मनुष्य-समाज अच्छा कहे। किसी के विषय में जब तक अत्यन्त आवश्यक न हो, सहसा यह न कह बैठो कि वह मूर्ख है अथवा अयोग्य है। सम्भव है, तुम्हारा अनुमान ठीक न हो। ऐसी अवस्था में उसे भी तुम्हारे विषय में ऐसा कहने और समझने का उचित अधिकार है। पर इससे यह न समझ लो कि तुम्हें सदा लोगों को प्रसन्न करने के लिए, उनकी मुँह-देखी कहनी चाहिए—व्यर्थ और झूठ उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। सत्य और प्रिय बोलना चाहिए। उद्वेगजनक और अप्रिय सत्य बोलने से तो तुम्हारा मौन ही रहना भला है। मनुजी ने कहा है—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

सचेत रहो। पर इतने नहीं कि बात बात में सन्देह किया करो। सतर्कता से बढ़ कर सफलता का दूसरा साधक नहीं। व्यवहार और व्यवसाय में उपयुक्त मनुष्य को उसके योग्य काम पर नियुक्त करो। एक ही मनुष्य एक काम के लिए योग्य, पर दूसरे काम के लिए अयोग्य, हो सकता है। यदि तुम्हें किसी मनुष्य पर विश्वास न हो तो उसे वह काम ही न सौंपो। काम सौंप देने पर किसी मनुष्य पर विश्वास न करने का फल अच्छा नहीं होता। अविश्वासी को सफलता होनी कठिन है। उसे सुख और आनन्द भी नहीं मिल सकते। सम्भव है, विश्वास करने से उसे किसी प्रकार काम के बदले हानि उठानी पड़े। हाँ, फिर भी दूसरों को धोखा देने से स्वयं धोखा खाना अच्छा है। क्योंकि

स्वयं धोखा खाने से तो अपनी ही थोड़ी सी हानि होती है। पर दूसरों को धोखा देने से समाज में घुन लग जाती है, जो संसार के लिए अत्यन्त हानिकारक है। सर्वस्व नाश होने पर भी समाज में किसी बुराई को फैलाने की चेष्टा कदापि न करो।

विश्वास करना ही अभीष्ट हो तो पूरे विश्वास करो। पर स्मरण रक्खो कि वह अन्ध-विश्वास न हो। अन्ध-विश्वास ही के कारण द्रोणाचार्य्य के प्राण गये। संसार में विश्वास ही ऐसा पदार्थ है जो मनुष्य-समाज को नियम में बाँधे और मर्य्यादा में रक्खे हुए है। पर सब का एक सा विश्वास न करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में तारतम्य होता ही है। इसका विशेष और स्पष्ट उदाहरण आर्थिक व्यवहार में मिल सकता है। एक पुरुष पर सौ रुपये के लिए विश्वास किया जा सकता है। परन्तु उसी पर हज़ार रुपये के लिए नहीं। दूसरे पर हज़ार रुपये के लिए विश्वास किया जा सकता है, पर अधिक के लिए नहीं। इसी प्रकार औरों को भी समझना चाहिए। एक आदमी पर खेती के काम का विश्वास किया जा सकता है। वह उसे अच्छा कर सकता है। पर इतने ही से क्या उस पर गृह-प्रबन्ध या न्याय-व्यय का विश्वास कर सकते हैं? क्या इतने ही से यह माना जा सकता है कि वह उसे भी अच्छे प्रकार कर सकेगा?

शरीर और वस्त्र को स्वच्छ और साफ़ सुथरा रखना चाहिए। वस्त्र ऐसे धारण करना चाहिए जो समयानुकूल हों—भले आदमी जिन्हें पहनते हों। संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है। हाँ, यह कोई आवश्यक बात नहीं कि कपड़े बहुमूल्य हों, उनके लिए धन का अपव्यय किया जाय; ऋण लेकर अच्छे अच्छे कपड़े बनवाये जायँ। पोशाक अपनी हैसियत के अनुसार होनी चाहिए। कपड़े चाहे मोटे हों चाहे महीन, उन्हें स्वच्छ और साफ़ रक्खो। लोगों का ध्यान वस्त्र पर बहुत जाता है। गुण तो व्यवहार करने पर कुछ काल में जाने जायँगे, पर वस्त्र पर तो उनकी दृष्टि तुम्हें देखते ही पड़ेगी। हम देखते हैं, योग्यता न होने पर भी संसार में केवल वस्त्रों की स्वच्छता ही के कारण बहुत लोगों का मान होता है। किसी के गुण और योग्यता परखने का कष्ट उठाने वाले बहुत कम लोग हैं। लोग केवल आँख और कान ही की सहायता से देख और सुन कर लोगों के विषय में विचार स्थिर कर लेते हैं। इसके सिवा यह भी सोचने की बात है कि जब तुम अपने वस्त्र और शरीर को ही स्वच्छ रखने में इतने ढीले और आलसी हो तो तुमसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि तुम और कामों को मन लगा कर करोगे। जिस समाज या सम्प्रदाय के तुम हो उसमें आचार-व्यवहार के विचार से जो मनुष्य आदर्श और श्रेष्ठ माना जाता हो उसे अपना आदर्श बनाओ, उसका अनुकरण करो। समाज के आचार और व्यवहार का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझो। आप्त पुरुषों की आज्ञा का पालन करो। यदि उस सम्प्रदाय और समाज में कोई बात तुम्हें वेद-शास्त्र के अनुसार हानिकारक प्रतीत हो तो उसे नम्रतापूर्वक निवेदन करो। अपने विचारों को पक्षपात छोड़ कर स्पष्ट शब्दों में प्रकट करो। पर उसे करने के लिए सहसा उद्यत न हो जाओ। कितने ही लोग समाज की प्रथा के विरुद्ध सहसा मनमानी कर डालने को धार्मिक बल कहते हैं। पर जो लोग समाज के भय से ऐसा नहीं करते उन पर वे यह आक्षेप किया करते हैं कि वे दुर्बल-हृदय हैं। उनका यह आक्षेप ठीक नहीं। यदि तुम्हारे विचार में समाज की कोई प्रचलित प्रथा हानिकारक जँचे या किसी नई प्रथा को समाज में परिवर्तित करने की आवश्यकता हो तो उसे समाज में प्रकट करो। यदि समाज तुम्हारे प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो अच्छा ही है। यदि लोग विरोध करें तो उसे बार बार समाज के सामने उपस्थित करते रहो। पर उसके अनुसार काम तब तक न करो जब तक अधिक संख्यक लोग उसके करने में प्रवृत्त न हों। यह तुम्हारे हृदय की दुर्बलता नहीं। यह तो तुम्हारा सच्चा स्वार्थ-त्याग है। क्योंकि तुम जान बूझ कर समाज की शान्ति के लिए अपनी हानि कर रहे हो। इसमें तुम्हारा विशेष ख़र्च तो होता नहीं। हाँ, थोड़ी सी हानि अवश्य होती है। पर वह उस लाभ के सामने कुछ नहीं है जो समाज में शान्ति फैलाने से होता है। महापुरुष अपने समाज और देश की भलाई के लिए प्राण तक अर्पण कर गये हैं। क्या तुम उसके लिए थोड़ी सी भी हानि नहीं उठा सकते?

धर्म-कार्यों को नियमित दृढ़ता से करते रहो। उसमें तुम्हारा विशेष व्यय नहीं। केवल थोड़ा सा समय दरकार है। कभी कभी कुछ धन भी व्यय करना होगा। वर्षों के

धर्म्म-विषयक १२० पुस्तकें ले गया। अपने देश को लौट आने पर ताई-त्सङ्ग ने उसका बड़ा आदर किया। उसने अपने मन्त्री को आज्ञा दी कि इन सब पुस्तकों का अनुवाद चीनी भाषा में किया जाय। पुस्तकें तीन भागों में विभक्त की गईं—अभिधर्म्म, विनय और सूत्र। इन सब पुस्तकों के अनुवाद चीनी भाषा में किये गये। आरकियोलाजिकल डिपार्टमेंट, (पुरातत्त्व-विभाग) मद्रास, के ता-सीन-को नामक महाशय की राय है कि चीनी भाषा की एक पुरानी पुस्तक, जो अभी हाल में इस महकमे को प्राप्त हुई है, ह्वेन साङ्ग ही की प्राप्त की गई किसी संस्कृत-पुस्तक का अनुवाद है।

चीन के उत्तर में कान्सु नाम का एक प्रान्त है। वहीं के एक बौद्ध मन्दिर में यह पुस्तक थी। काशगर के ब्रिटिश कान्सल जनरल, सर जार्ज मेकार्टनी, के॰ सी॰ आई॰ ई॰ को यह पुस्तक किसी तरह प्राप्त हुई। उन्होंने इसे सर जान मार्शल, डाइरेक्टर जनरल आव् आरकियोलाजी, को भेज दिया। उन्होंने इसे उक्त ता-सीन-को महाशय के पास जाँच के लिए भेजा। उसी को देख कर ता महाशय ने मद्रास की आरकियोलाजिकल रिपोर्ट (१९१५-१६) में अपनी सम्मति प्रकट की है। आपने लिखा है कि यह पुस्तक बौद्धों के महायान-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखती है। इसकी रचना का सन् संवत् तो इसमें नहीं दिया, परन्तु इसकी भूमिका में लिखा है कि अनेक विद्वान् महन्तों ने यह अनुवाद हुङ्ग-ईस् नाम के मठ में किया था। इसीसे आप का अनुमान है कि यह पुस्तक ईसा की सातवीं शताब्दी की है और बहुत करके उन्हीं पुस्तकों में से किसी का अनुवाद है जिन्हें ह्वेन साङ्ग भारत से ले गया था।

३—बनारस के संस्कृत-कालेज की कुछ पुरानी बातें।

संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट ने अँगरेज़ी में एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसे प्रकाशित हुए कोई १० वर्ष हुए। उसमें बनारस के संस्कृत-कालेज का इतिहास है। इस पुस्तक में लिखी गई कुछ बातें आश्चर्य-जनक और कुतूहल-वर्द्धक हैं।

१७९१ ईसवी में इस कालेज की स्थापना हुई थी। बनारस के तत्कालीन रेज़िडेंट, जोनाथन डंकन, ने इसे खोला था। अतएव इसे खुले कोई सवा सौ वर्ष हुए। उस समय लार्ड कार्नवालिस भारत के गवर्नर जनरल थे। पहले इसका नाम संस्कृत पाठशाला था। इसे खोलने के दो उद्देश मुख्य थे। एक तो यह था कि संस्कृत-भाषा और संस्कृत-शास्त्रों का पठन पाठन जारी रहे। दूसरा यह कि इससे पढ़कर निकले हुए पण्डित धर्म्मशास्त्र की गाँठें सुलझाने में न्यायाधीशों की सहायता करें—उन्हें धर्म्मशास्त्र-विषयक व्यवस्था दिया करें। उस समय नियम यह था कि आयुर्वेद और व्याकरण पढ़ाने वालों को छोड़ कर और सब अध्यापक ब्राह्मण ही हों। १७९८ में कालेज के प्रधानाध्यापक काशीनाथ तर्कालङ्कार नामक एक बङ्गाली थे। उन्होंने और अन्य पण्डितों ने भी, वेतन के काग़ज़ों पर ख़याली अध्यापकों और छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रों के नाम लिख लिख कर रुपया वसूल करना शुरू किया। बात खुल गई। तहक़ीक़ात हुई और ये सब लोग निकाले गये। फल यह हुआ कि इन धर्म्म-धुरीण पण्डितों से व्यवस्था लिया जाना बन्द हो गया। वेद पढ़ाने की भी मनाई हो गई। इस लिए कि—"लोगों को इस बात पर सन्देह होने लगा कि कोई पण्डित वेदों का ठीक ठीक अर्थ समझा भी सकता है या नहीं।" पर पीछे से, १८०५ ईसवी में, वैदिक क्लास फिर खुल गया।

१८११ ईसवी में रामप्रसाद तर्कालङ्कार नाम के एक पण्डित को २०) मासिक पेन्शन मिली। उस समय तर्कालङ्कारजी की उम्र १०९ वर्ष की थी। वे बिलकुल अन्धे थे।

१८२० में एच॰ एच॰ विलसन और कप्तान फ़ेल को आज्ञा दी गई कि देखो तो इस कालेज का काम कैसा है। इन्होंने अपनी रिपोर्ट में कालेज की पढ़ाई आदि की बड़ी निन्दा की। नतीजा यह हुआ कि पण्डितों के हाथ से प्रबन्ध छिन गया और कप्तान फ़ेल सुपरिंटेंडेंट नियत हुए। कालेज में अनेक सुधार करके उसे वे ठीक राह पर लावे। तब से उसकी उन्नति होने लगी। १८३० में अँगरेज़ी पढ़ाने का भी प्रबन्ध हुआ।

१८४० में धर्म्मशास्त्र के अध्यापक महाशय निकाल दिये गये। आप में यह लत थी कि धर्म्मशास्त्र की व्यवस्था देने में आप अपनी आत्मा का हनन करने में ज़रा भी दया न दिखाते थे।

१८४५ में डाक्टर बैलनटाइन प्रधानाध्यापक नियत हुए। उनसे इस बात की शिकायतें की गईं कि आप के कालेज के

विद्यार्थी हिन्दी लिखना नहीं जानते। जो लिखते हैं वे बहुत बुरी लिखते हैं। इस पर डाक्टर साहब ने एक सब से अधिक पढ़े लिखे छात्र से हिन्दी के विषय में सम्मति माँगी। उस छात्र की विलक्षण सम्मति का सारांश सुनिए—

"आप हिन्दी कहते किसे हैं? यहाँ सैकड़ों बोलियाँ हैं। वे सभी हिन्दी कही जा सकती हैं। हिन्दी का कोई व्याकरण या शैली भी तो हो। यदि आप शुद्ध हिन्दी लिखाना चाहते हैं तो हमें फ़ारसी और अरबी भी पढ़नी पड़ेगी। तभी तो हम जान सकेंगे कि अमुक शब्द फ़ारसी या अरबी का है। अतएव वह हिन्दी में न आना चाहिए। बिना ऐसा किये विशुद्ध हिन्दी कोई कैसे लिख सकेगा? अभी तो हम सिर्फ़ इतना ही कह सकते हैं कि अमुक शब्द संस्कृत है और अमुक नहीं है। जो नहीं है वह अँगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी, पोर्तुगीज़ आदि किसी भी और भाषा का हो सकता है।"

इस पर साहब ने कहा—"पण्डितजी, आप लोग जो अपने अपने गाँव की भाषा लिखते हैं सो अच्छा नहीं। आप मास्टर हैं। आपको चाहिए कि कोई ऐसी शैली निकालें जिसका नियमन एक ही व्याकरण से हो, जिसका शब्द-भाण्डार और वाक्य-रचना निश्चित नियमों का अनुसरण करे, और जो धीरे धीरे आपके प्रान्त के पढ़े-लिखे लोगों की भाषा हो जाय। यह काम अपढ़ देहातियों का नहीं, विद्वानों का है। आप अच्छी भाषा लिखने लगें तो संस्कृत और अँगरेज़ी के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में कर सकें। प्रेमसागर की हिन्दी मज़े की है। वैसी ही हिन्दी आप भी लिखना सीखिए"।

परन्तु डाक्टर साहब का यह उपदेश-बीज ऊसर में पड़ा। बनारस के बड़े बड़े विद्यादिग्गज अब भी शुद्ध हिन्दी नहीं लिख सकते।

४—हिन्दू-विश्वविद्यालय और हिन्दी।

अगस्त १९१९ के हिन्दुस्तान-रिव्यू में गणेश गदाधर ऑमेकर नाम के एक सज्जन का एक बहुत अच्छा लेख निकला है। उसमें लेखक ने बड़ी योग्यता से यह दिखाया है कि हिन्दू-विश्वविद्यालय को, जहाँ तक हो सके, हिन्दी के द्वारा ही शिक्षा देनी चाहिए। ऐसा करने ही से इस विश्वविद्यालय की सार्थकता होगी। यह हिन्दू-विश्वविद्यालय हिन्दी-विश्वविद्यालय होना चाहिए। हिन्दी के विरुद्ध में लोग जो बातें कहा करते हैं उनका उल्लेख करके ऑमेकर म[हाशय] ने उनकी असारता सिद्ध की है और हिन्दी को प्रधान[ता देने] से अपरिमित लाभ बताये हैं। आपकी तर्क-प्रणाली पूर्ण और हृदयस्पर्शिनी है। विश्वविद्यालय के सञ्चा[लकों को] आपकी सूचनाओं का विचार करना चाहिए।

५—हिन्दुस्तानी घायल और बीमार सैनिकों [की] सेवा-शुश्रूषा।

संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट ने छापने के लिए एक (प्रेस कम्युनीक) भेजी है। यह रिपोर्ट कर्नल सर वाल्टर [illegible] जी० सी० आई० ई० की लिखी हुई है और [illegible] लार्ड किचनर के नाम है। तारीख़ इसकी ८ मार्च १[illegible] है। इस रिपोर्ट का सारांश यह है—

भारत से जो हिन्दुस्तानी सेना फ़्रांस और बेल्जि[यम के] युद्ध-क्षेत्र में भेजी गई थी उसके घायलों और बीमारों [की] चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा के लिए इँगलेंड और फ़्रां[स में] बड़े बड़े अस्पताल खोले गये। उनमें सैनिकों के आरा[म के] लिए ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया गया कि जो लोग वहाँ [गये] उन्हें यह मालूम हुआ जैसे वे स्वर्ग लोक में पहुँच गये। वे वहाँ की चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा से अत्यन्त [प्रसन्न] रहे। उन्होंने अपने सम्बन्धियों को जो पत्र भेजे उनमें [लिखा] कि हम यहाँ इतने सुख से हैं जितने सुख की आशा हमें घर पर भी न थी। सबके खाने-पीने का प्रबन्ध अलग अलग [किया] गया। अपने अपने धर्म्म के अनुसार पूजा-पाठ और न[माज़] आदि के सुभीते भी कर दिये गये। घी-दूध, फल-फूल, [illegible] और मेवे भी भर भर खिलाये गये। खेल-कूद का भी [illegible] प्रबन्ध किया गया। पढ़ने-लिखने और भी बातों की यथेष्ट सामग्री दी गई। धर्म्म और जाति-सम्बन्धी [illegible] रत्ती भर भी ढीले नहीं होने पाये। कोई [illegible] युवकों ने सैनिकों की तन्दुरुस्ती, दवा-पानी, भोजन [illegible] रसोई आदि की निगरानी बड़े प्रेम से की। ये युवक [illegible] घर के कालेजों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। युद्ध छिड़ने [पर] इन्होंने अस्पतालों का काम करने वालों में अपने नाम [illegible] लिखाये। भारत से अनेक डाक्टरों और शुश्रूषाकारि[यों] के आ जाने पर वे लोग विदा कर दिये गये। जितने [illegible] की चिकित्सा इन अस्पतालों में हुई उनमें से [illegible] ११ अच्छे हो गये। जो मरे उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया का [illegible]

उनके धर्मानुकूल किया गया। युद्ध समाप्त होने पर इन वीरों की यादगार भी बनेगी।

इस विवरण से प्रकट है कि घायल और बीमार भारतीय सैनिकों को अस्पतालों में ज़रा भी कष्ट नहीं हुआ। वे जब तक वहाँ रहे, बड़े आराम से रहे। अब वहाँ भारतीय सेना नहीं; फ़्रांस और इँगलेंड से वह अन्यत्र भेज दी गई है।

१—प्राचीन आर्यों का अङ्कगणित-विषयक ज्ञान।

कलकत्ते से निकलने वाले अँगरेज़ी मासिक पत्र "माडर्न रिव्यू" की जून १९१५ की संख्या में अध्यापक नलिनविहारी मित्र का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है—"Ancient Hindu's Knowledge of Arithmetic"—इस लेख में अध्यापक महाशय ने लिखा है कि—ईसवी सन् के २०० वर्ष पहले हिन्दू संख्यासूचक चिह्नों—अङ्कों—का व्यवहार करते थे। पर एक महाराष्ट्रीय लेखक आपके इस विचार से सहमत नहीं। लेखक ने "महाराष्ट्रीय" नाम से मराठी के "लोक-शिक्षण" नामक मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित कराया है। उसमें वे कहते हैं कि महर्षि पाणिनि के समय में भी आर्य संख्या-चिह्नों का प्रयोग करते थे। प्रमाण के लिए उन्होंने पाणिनि का यह सूत्र दिया है—"कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य"—अष्टाध्यायी ६—३—११५—इस सूत्र में कहा गया है कि "समास में यदि कर्ण शब्द उत्तर-पद हो तो चिह्न-वाचक शब्द को दीर्घ कर देना चाहिए। परन्तु इसमें विष्ट, अष्ट, पञ्च, मणि, छिद्र, स्रुव और स्वस्तिक ये चिह्न-वाचक शब्द अपवाद हैं—अर्थात् इन शब्दों को दीर्घ न करना चाहिए। इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि अष्ट, पञ्च इत्यादि संख्या-वाचक शब्दों के लिए उस समय भी चिह्न वर्तमान थे। अच्छा इससे भी और आगे चलिए। ऋक्संहिता संसार के साहित्य में अत्यन्त प्राचीनतम मानी जाती है। उसके अष्टक ८, अध्याय १, वर्ग १ की एक ऋचा है—"सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत।" इससे भी सिद्ध होता है कि उस प्राचीनतम समय में भी संख्या-चिह्नों का अस्तित्व था।

अध्यापक मित्र ने अपने पूर्वोक्त लेख में लिखा है—"आर्यभट ने १८ संख्या-स्थानों का उल्लेख किया है। तर्क-संग्रह इत्यादि में भी—"संख्या एकादिपरार्धपर्यन्ता" लिखा है। अर्थात् १८ संख्या-स्थानों का उल्लेख मिलता है। परन्तु पूर्वोक्त "महाराष्ट्रीय" आपके इस विधान से भी विचारैक्य नहीं रखते। वे कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत आदि-काव्य रामायण के युद्धकाण्ड के अट्ठाईसवें सर्ग में रावण के सम्मुख उसके प्रधान सचिव ने रामचन्द्र की कपि-सेना इत्यादि का सविस्तर वर्णन किया है। उस समय उसने सुग्रीव के अधीन सैन्य की जो संख्या बताई है उससे तो १८ की जगह ६० संख्या-स्थान सिद्ध होते हैं। त्रेपन संख्या-स्थानों तक का वर्णन तो उसी में है। देखिए, वाल्मीकि-रामायण में लिखा है—

शतं शतसहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः।
शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ॥३३॥
शतं शङ्कुसहस्राणां महाशङ्कुरिति स्मृतः।
महाशङ्कुसहस्राणां शतं वृन्दमिहोच्यते ॥३४॥
शतं वृन्दसहस्राणां महावृन्दमिति स्मृतम्।
महावृन्दसहस्राणां शतं पद्ममिहोच्यते ॥३५॥
शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम्।
महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥३६॥
शतं खर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते।
शतं समुद्रसाहस्रं महौघमिति विश्रुतम् ॥३७॥
एवं कोटिसहस्रेण शङ्कूनां च शतेन च।
महाशङ्कुसहस्रेण तथा वृन्दशतेन च ॥३८॥
महावृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च।
महापद्मसहस्रेण तथा खर्वशतेन च ॥३९॥
समुद्रेण च तेनैव महौघेन तथैव च।
एष कोटिमहौघेन समुद्रसदृशेन च ॥४०॥
विभीषणेन वीरेण सचिवैः परिवारितः।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमनुवर्तते ॥४१॥

इन संख्या-स्थानों की तालिका नीचे दी जाती है—

इस हिसाब से १ कोटि महौघ, १ महौघ, १ समुद्र, १ शतखर्व, १ सहस्र महापद्म, १ शतपद्म, १ सहस्र महावृन्द, १ शतवृन्द, १ सहस्र महाशङ्कु, १ शतशङ्कु, १ सहस्र कोटि बन्दरों की हुई।

इससे तो यही सिद्ध है कि संख्या-चिह्न प्राचीन-काल से प्रचलित हैं और संख्या-स्थान १८ नहीं, किन्तु वाल्मीकि के समय में कम से कम ६१ तक थे।

राजा को राजसी पोशाक और गहने पहन कर, हाथ में तलवार और शंख लेकर, तराज़ू के एक पलड़े पर बैठ जाना चाहिए। तुल जाने के बाद सोना, चाँदी या जो कुछ दूसरे पलड़े में हो, ब्राह्मणों को बाँट देना चाहिए।

१९११–१२ की आरकियोलाजिकल (पुरातत्व-विभाग) रिपोर्ट में लाँगहर्स्ट साहब ने लिखा है कि महाराजा ट्रावनकोर ने यह दान अभी कुछ ही वर्ष पहले किया था। इसके बाद आपने ब्राह्मणों पर व्यङ्ग्य बाण छोड़े हैं। साहब ने लिखा है कि यह रवाज ब्राह्मणों के लिए बहुत ही लाभदायक था। इसके बन्द हो जाने के कारण उन्हें रञ्ज हुआ होगा। आपका यह कहना बहुत ठीक है। रञ्ज ज़रूर हुआ है। पर ब्राह्मण रञ्ज किस किस बात के लिए करेंगे। उनके रञ्ज के और भी तो सैकड़ों कारण उपस्थित हो गये हैं। पहले तो उन्हें राजा तक को दण्ड देने की शक्ति थी। इसीसे उनकी क़दर भी थी और इसीसे उन्हें दान भी मिलता था। अब तो वह शक्ति उनसे रूठ कर और ही कहीं चली गई है। अतएव—हँसिये लोग हँसहु नहिं खोरी।

प्राचीन समय में कहीं कहीं पर तुला-पुरुष-दान के लिए पत्थर के बड़े बड़े खम्भे बने रहते थे। ऐसे खम्भों का एक जोड़ा मदरास में बिलारी ज़िले के हम्पी नामक नगर में अब तक विद्यमान है। उसका वर्णन पुरातत्व-विभाग की पूर्वोक्त रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ है। लिखने वाले हैं वही—लाँगहर्स्ट साहब। इसका नाम है—राजतुला। पत्थर के दो ऊँचे ऊँचे खम्भों पर एक शिला है। उसके नीचे पत्थर ही के तीन मोटे मोटे छल्ले हैं। तराज़ू के पलड़े उन्हीं से लटका दिये जाते थे। चित्र से इस तुला-स्तम्भ की शकल का अन्दाज़ा हो जायगा। इस स्तम्भ-युग्म के आधार वाले एक पत्थर पर एक राजा और उसकी दो रानियों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। पूर्वोक्त साहब का अनुमान है कि ये मूर्तियाँ विजयनगर के राजा कृष्णराय और उनकी दोनों रानियों की हैं। यह राजा ईसा के सोलहवें शतक के आरम्भ में विद्यमान था। गञ्जाम ज़िले में कोंडवीडु नामक दुर्ग जीतने के बाद श्रीधान्यकटक के अमरेश्वर मन्दिर में इसने तुला-पुरुष-दान, रत्न-धेनु और सप्त-सागर नामक दान दिये थे। कई गाँव भी ब्राह्मणों के नाम इसने सङ्कल्प किये थे। इस राजा के उत्तराधिकारी अच्युतराय (१५३०—१५४२ ईसवी) ने अपने को मोतियों से तोल कर एक बार तुला-पुरुष-दान दिया था। यह राजा बड़ा दानी था। इसका प्रमाण एक प्राचीन लेख से मिला है।

तञ्जोर ज़िले के कुम्भकोणम् नामक स्थान के एक "मण्डप" में इस प्रकार के तुलादान-पुरुष का एक दृश्य भी खुदा हुआ पाया गया है। सौभाग्य की बात है, इस प्राचीन प्रथा की याद दिलाने वाले ये खम्भे और दृश्य तो देखने को रह गये!

पुस्तक-परिचय।

१—गीता-रहस्य अथवा कर्म्म-योग-शास्त्र। यह कुछ कम नौ सौ सफ़ों की पुस्तक है। आकार बड़ा है। काग़ज़ अच्छा और छपाई—टाइप छोटा होने पर भी—बहुत साफ़ है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। इतने पर भी मूल्य केवल ३) है। केसरी-आफ़िस, पूना, को लिखने से मिलती है। पाठकों से निवेदन है कि वे अक्टोबर १९१५ की सरस्वती में "भगवद्गीता-रहस्य" नाम का लेख पढ़ने की कृपा करें। लेख बड़ा नहीं, सिर्फ़ १ कालम का है। उसमें श्रीमान् बाल गङ्गाधर तिलक के मराठी गीता-रहस्य की आलोचना क्या, उसकी कुछ बातों का उल्लेख है। उसके अन्त में यह सूचना है कि पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, उसका अनुवाद हिन्दी में कर रहे हैं। यह अनुवाद पूरा होकर प्रकाशित हो गया। इसकी एक कापी केसरी-आफ़िस से हमें भी प्राप्त हुई है। तदर्थ हम उस आफ़िस के बहुत कृतज्ञ हैं। मराठी-पुस्तक के विषय में हम जो कुछ लिख चुके हैं उसके पिष्टपेषण की यहाँ आवश्यकता नहीं। इस ग्रन्थ का महत्त्व तो ठीक ठीक तभी समझ में आ सकेगा जब कोई इसे ध्यानपूर्वक आद्यन्त पढ़ेगा। तथापि जिनके पास सरस्वती की पूर्वोक्त संख्या हो वे उसमें प्रकाशित हमारे लेख को पढ़ कर इसकी मौलिकता का थोड़ा बहुत अन्दाज़ा ज़रूर कर सकेंगे। तिलक महाशय ने हम लोगों पर बड़ी कृपा की जो इस अनुपम ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर दिया और सप्रे महाशय ने भी हिन्दी-भाषा-भाषियों पर बड़ा उपकार किया जो केवल छः ही महीने में सतत परिश्रम करके इस अनुवाद की पूर्ति कर दी। आपने

भूमिका में यह सम्भावना की है कि शायद उनके इस अनुवाद को हिन्दी में किसी को मराठी की बू आवे। उनकी इस सम्भावना का यथेष्ट कारण है। तथापि इस बू से गीता-रहस्यरूपी सुन्दर सरोज का सौरभ कम नहीं हो सकता। फटे-पुराने और मैले-कुचैले कपड़े में बाँधे जाने से भी तो हीरे का मूल्य कम नहीं होता। हम इस ग्रन्थ-रत्न को हिन्दी के साहित्य-भाण्डार में अमूल्य दीपक-मणि समझते हैं। आशा है, हिन्दी जानने वाले सभी समर्थ सज्जन इसकी एक एक कापी मँगा कर इसकी अलौकिक ज्ञान-दीप्ति से अपने हृदय को प्रकाशपूर्ण करेंगे।

दक्षिण में इस ग्रन्थ पर कुछ आक्षेपपूर्ण लेख निकल रहे हैं। परन्तु—

> इत्यादि पूर्णमयर्यां मयणाद्-
> शाङ्गोंक किं विगुणमयोगम्।

※

२—इटावे के ब्रह्म-प्रेस की पुस्तकें। इस प्रेस ने तीन पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक का नाम है—उपनिषद् का उपदेश। इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ११८+१११ और मूल्य एक रुपया है। मूल पुस्तक श्रीकोकिलेश्वर भट्टाचार्य्य, एम० ए०, की लिखी हुई है और बँगला में है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक पण्डित चन्द्रशेखरजी शास्त्री हैं। आपके किये हुए पहले भाग के अनुवाद का परिचय सरस्वती में दिया जा चुका है। प्रस्तुत पुस्तक दूसरे भाग का अनुवाद है। इसमें कठ और मुण्डक उपनिषदों पर व्याख्या है। आरम्भ के ११८ पृष्ठों में जो अवतरणिका है वह बड़े मार्के की है। उसमें अध्यात्म-विषयों की अच्छी आलोचना है। पुस्तक मतलब की है। दूसरी पुस्तक का नाम है—षोडशसंस्कार-विधि। इसकी पृष्ठ-संख्या ११६ और मूल्य दो रुपया है। आकार इसका भी बड़ा है। इसमें आश्वलायन-गृह्य-सूत्रों के अनुसार षोडश संस्कारों की विधि का वर्णन है। मन्त्र-भाग और व्याख्या संस्कृत में है। उसका भावार्थ नीचे हिन्दी में दिया गया है। इसके सम्पादक और अनुवादक पण्डित भीमसेनजी शर्म्मा हैं। तीसरी पुस्तक का नाम है—पाराशर-स्मृति। इसकी पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य चार आने है। इसका भी आकार बड़ा है। इसी स्मृति में लिखा है कि कलियुग में पाराशरस्मृति ही प्रमाण है। यह शायद इस लिए कि युग-धर्म्म की अवस्था और आवश्यकता देख कर इसकी रचना की गई है। यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि इससे सूचित हो गया कि स्मृतियों में भी, आज कल के कानून की तरह, समय समय पर, रद्दोबदल किया जाता है। पराशर के समय में देश और समाज की जो दशा थी वह अब नहीं। अब तो वह बिलकुल ही बदल गई है। बड़ी बात हो जो कोई स्मृति-रत्न आज कल के अनुकूल एक और ही स्मृति तैयार करे और धर्मिष्ठ लोग उसी को प्रमाण मानें। पराशरजी ने इस स्मृति में और और बातों के सिवा कृषि पर भी एक अध्याय लिखा है। उसमें ब्राह्मणों को भी खेती करने की आज्ञा दी है। आपने लिखा है—

> स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः।
> निर्वपेत्पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत्॥

अर्थात् खुद खेत जोत कर और खुद ही अनाज पैदा करके ब्राह्मण यज्ञ करें। इस वचन से यह भी अर्थ निकलता है कि ज़रूरत पड़ने पर यदि ब्राह्मण हल जोते तो निन्दा नहीं। पर शायद पण्डित लोग इसका और ही अर्थ करें। वे कहें कि मज़दूरों से ज़मीन जुतवा कर खेती कराना भी स्वयं खेती करना कहा जा सकता है। ख़ैर। यह वही स्मृति है जिसका एक श्लोक देखते ही—"पाराशरि पाहयादि"—कह कर विधवा विवाह के प्रवर्तक पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आनन्द से नाच उठे थे। वह श्लोक यह है—

> नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
> पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

परन्तु पण्डित भीमसेनजी शर्मा ने इसके 'पतौ' (पति) पद का अर्थ लिखा है—"जिससे सगाई हुई हो वह"। पराशर महाराज के पति-शब्द का अर्थ स्पष्ट न था। स्पष्ट लिख कर पण्डितजी ने बड़ी कृपा की। पराशरजी के मन में शायद यही अर्थ उपस्थित रहा होगा। तब तो उनके मन की बात ताड़ कर पण्डितजी ने उसे वैसा ही लिख दिया। पर इससे विधवा-विवाह के पक्षपातियों का सारा श्रम मिट्टी हो गया। अर्थ हो तो ऐसा हो! पण्डित भीमसेनजी ने अपने हिन्दी-अनुवाद-सहित इस स्मृति का प्रकाशन करके

इसे सुगम कर दिया। अतएव हम आपका हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

☼

१—Chinese Religion Through Hindu Eyes. कुछ समय से अँगरेज़ी और बँगला की सामयिक पुस्तकों में अध्यापक विनयकुमार सरकार एम॰ ए॰ के लेखों की धूम मची हुई है।

इँगलैंड, अमेरिका और जापान की सैर करके अब आप चीन पहुँचे हैं और वहाँ से बराबर लेख लिख कर इस देश के पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित करा रहे हैं। साथ ही साथ अन्य देशों के पत्रों को भी अपने लेखों से अलङ्कृत कर रहे हैं। अँगरेज़ी और बँगला में कितनी ही पुस्तकें आप पहले ही लिख चुके हैं। अब, प्रवास में भी, आप की पुस्तक-रचना का तार जारी है। धन्य है उस भाषा को जिसके बोलने वालों में ऐसे ऐसे विद्वान्, सुलेखक और अध्यवसायशील पुरुष हैं। आपके दुबले पतले शरीर में ग़ज़ब की कर्म्म-कारिणी शक्ति भरी हुई है।

जिस अँगरेज़ी पुस्तक का नाम इस "परिचय" के आरम्भ में दिया गया है वह आप ही की रचना है। इसे आपने चीन में प्रवास करते करते लिखा है। यह शांघाय के कमर्शल प्रेस में छपी है और शायद वहीं से मिलती है। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या तीन सौ के ऊपर है। अच्छे चिकने कागज़ पर सुन्दर टाइप में छपी है। मूल्य इसका दो शिलिंग, अर्थात् साढ़े चार रुपया, है। हिन्दू की दृष्टि में चीन वालों का धर्म्म कैसा है, यही इस पुस्तक के नामानुसार इसका विषय है। इसे पढ़ने से पहली बात जो ज्ञात होती है वह लेखक की व्यापक अध्ययनशीलता है। सैकड़ों ग्रन्थों का मनन करके उनका निचोड़ आपने इसमें रख दिया है। आरम्भ में डाक्टर वू-तिंग-फ़ैंग, एम—एल॰ डी॰ का लिखा हुआ एक उपोद्घात है। वू महाशय चीन के निवासी हैं और संयुक्त राज्य, अमेरिका, आदि कई देशों में चीन की तरफ़ से सचिव रह चुके हैं। अँगरेज़ी भाषा पर आपका अच्छा अधिकार है। आपकी सुन्दर और सरस अँगरेज़ी-रचना देख कर आश्चर्य्य होता है। आपने अपने उपोद्घात में दिखाया है कि चीन वालों का धर्म्म कनफ्यूशस, ताऊ और बुद्ध के विविध धर्म्म-सिद्धान्तों का संमिश्रण है।

प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार ने चीनवालों और भारतवासियों की धार्म्मिक वृत्ति और धर्म्माचरण का विचार बड़ी योग्यता से किया है। उन्होंने दिखाया है कि चीन में जब कनफ्यूशस का जन्म भी न हुआ था और जब चीन और भारत में परस्पर कुछ भी सम्पर्क न था तब भी अनेक धार्म्मिक बातों में चीनियों और आर्य्यों में समता थी। इसे उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया है। इसका कारण उन्होंने मनुष्यमात्र की प्रवृत्तियों में प्राकृतिक झुकाव की तुल्यता बताया है। इसके बाद आपने कनफ्यूशस और ताओसिंह के चलाये धर्म्म की तुलना की है। काश्यप मातङ्ग और गोभरत्न नामक भारतवासियों के द्वारा चीन में पहले पहल बौद्ध धर्म्म का प्रवेश आपने बताया है। तदनन्तर दोनों देशों में देवी-देवताओं की उत्पत्ति, मूर्त्ति-पूजा, पौराणिक बातें, जैन-धर्म्म, शैवों तथा वैष्णवों आदि का वर्णन किया है। इसके सिवा आपने और भी अनेक विषयों पर विचार किया है। सारांश यह कि आपकी यह पुस्तक आपकी महत्वपूर्ण गवेषणा का उज्ज्वल आदर्श है।

इसमें हमें बहुत प्राचीन काल से चीन और भारत की धार्म्मिक स्थिति का साफ़ सुथरा चित्र देखने को मिलता है। ग्रीस, सीरिया, ईरान और जापान ने इन देशों को धर्म्म-सम्बन्ध में क्या दिया अथवा क्या लिया, अथवा इनका परस्पर कितना असर एक दूसरे पर पड़ा, यह सब भी इससे मालूम हो सकता है। ऐसी अच्छी पुस्तक भेजने के लिए हम शांघाय के पूर्वोक्त प्रेस के बहुत कृतज्ञ हैं।

☼

७—सुरसुन्दरी चरित्र। यह बड़ी पुस्तक है। बड़ी साँची के ६०० के ऊपर पृष्ठ हैं। जिल्द बँधी हुई है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। इसके प्रकाशक पण्डित हरगोविन्ददास सेठ, अँगरेज़ी कोठी, बनारस हैं। उन्हीं से शायद यह मिलती है। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में धनेश्वर नाम के एक जैन पण्डित थे। उन्हीं की यह रचना है। पुस्तक १६ परिच्छेदों में विभक्त है। भाषा इसकी प्राकृत (मागधी) और छन्द गाथा है। मुनिराज राजविजय ने इसका सम्पादन किया है। पाठान्तर-सूचक पादटीकायें भी आपने दी हैं। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका लिख कर धनेश्वर और उनके पूर्ववर्ती आचार्यों तथा कई एक जैन-ग्रंथों का हाल भी आपने दिया है। और

युद्ध पर गये हुए गोरखे खाना बनाने और उसकी तैयारी में लगे हुए हैं ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

है। इसके सिवा और भी कितनी ही बातें काम की हैं। पुस्तक निःसन्देह अपने विषय की हिन्दी में अच्छी निकली। पर मालूम नहीं, इससे रँगरेज़ तथा और लोग कहाँ तक फ़ायदा उठा सकेंगे।

❋

९—विमल-विनोद—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०१, मूल्य दस आने, मिलने का पता—आत्मानन्द-जैन-पुस्तक-प्रचारक-मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा। इसके "निवेदन" में लेखक ने लिखा है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म की आड़ लेकर जो चाल चली है × × × और जिन कुत्सित शब्दों से मतमतान्तरों का खण्डन करके संसार के भोले भाले जीवों को अपने जाल में फँसाया है, विद्वानों से यह अज्ञात नहीं। × × × × इस महती हानि से लोग बच रहें इसी उद्देश से मैंने इस ग्रन्थ को लिखा है"। परन्तु, शायद ही आपका यह उद्देश सफल हो, क्योंकि आपकी रचना में भी कुत्सा की कमी नहीं। इसी से शायद आपको अपना नाम-धाम लिखने का साहस नहीं हुआ। "M. V. लेखक"—लिख कर ही आपने अपने शुभ नाम का प्रकाशन किया है। प्रकाशक इस पुस्तक के "मोड व्याकरणाख्य जैनी सिकन्दराबाद"—वाले हैं। अतएव यह जैनियों ही की कृपा मालूम होती है। कहाँ के—"श्री सिटी प्रिन्टिंग प्रेस में"—यह पुस्तक छपी है, यह भी इसके टाइटिल पेज पर नहीं लिखा।

❋

१०—स्वर्गलोक, उसके रहस्य और निवासी। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य ८ आने, अनुवादक, रायबहादुर पण्डा बैजनाथ, बी० ए०, बाराबाद। मिलने का पता—थियासफ़िकल पबलिशिंग हाउस, बनारस सिटी। श्रीयुत लेडबीटर साहब का चित्र और उनका संक्षिप्त चरित सरस्वती में बहुत पहले निकल चुका है। आप ही की एक अँगरेज़ी पुस्तक का यह अनुवाद है। पाठक इसके नाम ही से समझ जायँगे कि यह बड़ी अद्भुत पुस्तक है। थियासफ़ी के ज्ञाता महात्माओं ने स्वर्ग ही के दर्शन नहीं किये, उसके निवासियों के भी दर्शन किये हैं, उनके कार्य्य-कलाप भी देखे हैं, उनके सुख-दुःखों और आचार-व्यवहार का भी ज्ञान प्राप्त किया है। स्वर्ग के अन्तर्गत और भी कितने ही लोकों का उन्होंने पता लगाया है। पता क्या लगाया है, वहाँ की सैर तक की है! क्योंकि बिना सैर के वहाँ की ये सब बातें जानी ही न जा सकती थीं जिनका वर्णन इस पुस्तक में है। अथवा, सम्भव है, त्रिकालदर्शी होने के कारण लेडबीटर साहब ने ये सब बातें यहीं मर्त्यलोक में बैठे ही बैठे जान ली हों। अस्तु। हमारी प्रार्थना है कि लोग इस पुस्तक को लेकर पढ़ें और देखें यह कैसी अद्भुत-पूर्व वस्तु है। यह थियासफ़िस्टों के स्वर्ग का इतिहास भी है और भूगोल भी।

❋

११—संस्कृत प्रवेशिनी, प्रथम भाग—यह १०८ सफ़्हों की जिल्द बँधी हुई पुस्तक है। इसका मूल्य १ रुपया है। इसका सम्पादन—काव्यतीर्थ-व्याकरणशास्त्री श्रीश्रीकान्त जैन ने किया है। ३, विश्वकोश लेन, बाग़ बाज़ार, कलकत्ते से उन्हीं ने इसकी एक कापी भेजी है। यह पुस्तक इसलिए बनाई गई है जिसमें संस्कृत-भाषा की संज्ञाओं और धातुओं आदि के रूपों का ज्ञान विद्यार्थियों को हो जाय और उन्हें संस्कृत में बातचीत करना आ जाय। इस भाग में—"शब्दों के प्रथमा, द्वितीया तथा सम्बोधन विभक्ति के, धातुओं में भ्वादि और चुरादि गणीय धातुओं के वर्तमान, भूत, भविष्यत् और आज्ञा अर्थ के रूप बतलाये गये हैं"। संस्कृत से हिन्दी और हिन्दी से संस्कृत अनुवाद करने के लिए पाठ भी दिये गये हैं। शुद्ध करने के लिए अशुद्ध पद भी दिये गये हैं। पुस्तक की रचना में जैन-व्याकरणों का अनुसरण किया गया है। जिस मतलब के लिए यह पुस्तक लिखी गई है उसकी बहुत कुछ सिद्धि इससे हो सकती है। इसके लेखक व्याकरणशास्त्री हैं। आशा है, आप व्याकरण का महत्त्व ख़ूब जानते होंगे। वे यह भी जानते होंगे कि व्याकरण की सत्ता सभी भाषाओं पर है। हिन्दी भी एक भाषा है। अतएव वह भी अपने व्याकरण के नियमों के अधीन है। पर इस नियमन की याद आप शायद भूल गये हैं। क्योंकि आपने हिन्दी लिखने में बड़ी बड़ी भूलें की हैं। आपका एक वाक्य है—"दूसरे भाग में शेष कुछ विभक्ती और धातुओं के रूप प्रयोग सहित बतलाये गये हैं"। इस वाक्य में पहले तो 'विभक्ती' लिखना, फिर उसे एकवचन में रखना औरों को न खटके तो न खटके, व्याकरण-शास्त्रियों को तो अवश्य ही खटकना चाहिए।

१२—विलायती समाचारपत्रों का इतिहास—पृष्ठ-संख्या १०, मूल्य ४ आने, लेखक—पण्डित प्यारेलाल मिश्र, बैरिस्टर-एट-ला, छिंदवाड़ा, मध्य-प्रदेश। लेखक ही से प्राप्य। इसमें पहले तो अमेरिका और यूरप के समाचारपत्रों की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन है। फिर इँगलिस्तान के मुख्य मुख्य छः सात समाचारपत्रों का इतिहास है। इसके सिवा अन्यान्य पाक्षिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों और पुस्तकों का भी हाल है। सम्पादक, प्रकाशक, रिपोर्टर, लेखक और प्रेस के स्वामियों आदि की भी बातें हैं। टेलीमेल—नामक पत्र की उन्नति, प्रबन्ध और नीति आदि का हाल पढ़ कर आश्चर्य होता है। यह पुस्तक बड़े काम की है। सम्पादक और प्रेस के स्वामी इसे पढ़ कर बहुत लाभ उठा सकते हैं। इँगलिस्तान के पत्रों का मुक़ाबला भारतवर्ष के पत्रों से करते समय लेखक महाशय ने जो सूचनायें दी हैं उन पर इस देश के सम्पादकों और पत्राध्यक्षों को ध्यान देना चाहिए। पुस्तक की भाषा बड़ी सुन्दर—साफ़ और मुहावरेदार है।

❋

१३—ग्रन्थ-विषयास पुष्पो, भाग १ ला। पृष्ठ-संख्या ११०, मूल्य ८ आने; जिल्द बँधी हुई। प्रकाशक—मनसुख साहित्य वर्धक कार्यालय, कालबादेवी रोड, बम्बई से प्राप्य। पुस्तक गुजराती भाषा में है और अनुवाद-रूप है। इसमें विद्यासागर और सर विलियम जोन्स का जीवनचरित है। पहला बहुत संक्षिप्त है, दूसरा कुछ विस्तृत। पहला मराठी से और दूसरा हिन्दी से अनुवाद किया गया है। इसमें जिनका चरित है वे बड़े नामी पुरुष थे। उनके चरित-पाठ से शिक्षा-प्राप्ति और मनोरञ्जन दोनों हो सकते हैं। इसी तरह अपने देश के भी नामी नामी आदमियों की चरितमाला प्रकाशित होनी चाहिए।

❋

१४—दृष्टान्त-सागर। पृष्ठ-संख्या ११६, मूल्य १२ आने। शिवली (ज़िला कानपुर) के निवासी पण्डित हनुमानप्रसाद शर्मा ने इसे लिखा है। इसमें १०१ दृष्टान्तों का संग्रह है। कोई दृष्टान्त छोटा, कोई बड़ा, कोई बहुत बड़ा है। बीच बीच हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के आवश्यक पद्य भी हैं। दृष्टान्त अच्छे अच्छे हैं। कितने ही ऐसे हैं जिनसे सदुपदेश मिलता है। कितने ही दृष्टान्त पढ़ कर हँसी आ जाती है। कुछ ऐसे भी हैं जो व्यर्थ ही पुस्तक की पृष्ठ-संख्या बढ़ाने का कारण हुए हैं। समष्टि-रूप से पुस्तक शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक है। भाषा की शुद्धता में कसर रह गई है।

❋

१५—छन्दःप्रभाकर। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १०१, काग़ज़ की जिल्द। मूल्य पौने दो रुपये। इस विषय की जितनी पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं उनमें यह सबसे अच्छी है। १८९४ ईसवी में यह पहले पहल छपी थी। तब से इसके दो और संस्करण निकलना इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। बिलासपुर के पते पर इसके लेखक बाबू जगन्नाथप्रसाद को लिखने से मिलती है।

❋

१६—श्रीविद्यारण्य स्वामी यांचें संक्षिप्त चरित्र। लेखक श्रीयुत रामचन्द्र नरसिंह मराठे, इंडस्ट्री, देवास (सीनियर), प्रकाशक श्रीयुत वेङ्कटेश नरसिंह मराठे, २१८ सदाशिव पेठ, पूना, सिटी, आकार छोटा, पृष्ठ संख्या ३१, मूल्य ।)। पुस्तक की भाषा मराठी है। चौदहवीं सदी में श्रीविद्यारण्य स्वामी कर्णाटक में बड़े प्रसिद्ध संन्यासी हो गये हैं। वे योगी और शास्त्री होने पर भी धुरन्धर राजनीतिज्ञ थे। संन्यास ग्रहण कर चुकने पर भी विजयनगर को मुसलमानों के आक्रमणों से बचा कर आपने स्वयं कितने ही वर्षों तक वहाँ का शासन बड़ी ही योग्यता से किया। स्वामीजी अद्वैत मत के अग्रणीय और नामी ग्रन्थकार भी थे। प्रवृत्ति और निवृत्ति के मार्गों को एकता के सूत्र में बाँध कर देश-सेवा करने के रहस्य की कुञ्जी पहले पहल [illegible] में शायद आप ही ने प्रकट की। इन्हीं देशोद्धारक स्वामीजी का चरित इस पुस्तक में लिखा गया है। छोटी होने पर भी पुस्तक अनेक ज्ञातव्य बातों से भरी हुई है। श्रीयुत वेङ्कटेश सीताराम वाग्ले, बी० ए०, एल् एल्० बी० ने अँगरेज़ी भाषा में स्वामीजी का एक जीवन-चरित लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का अनुवाद है।

❋

१७—श्रीमच्छङ्कराचार्यचरितम्। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ९२, मूल्य अनिर्दिष्ट, लेखक—"महाविद्यालय [illegible]" (पता—[illegible]

बम्बई)—यह पुस्तक निरामिर संस्कृत में है। इसमें आदि-शङ्कराचार्य्य का संक्षिप्त चरित, उनके स्थापित मठों और शिष्यों के नाम-निर्देश तथा वर्णन, उनके ग्रन्थों तथा उन ग्रन्थों के आधार पर बने हुए अन्य ग्रन्थों की नामावली आदि है। इस पुस्तक में एक विशेषता है। वह यह कि आज तक नये-पुराने और स्वदेशी-विदेशी विद्वानों ने शङ्कराचार्य्य के समय-निरूपण-सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उस सब का सारांश इसमें दे दिया गया है।

※

१८—अनुभवजीवन। आकार मँझोला, जिल्ददार, पृष्ठ-संख्या २८१, मूल्य १२ आने, प्रकाशक—सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय, बम्बई। अमेरिका के प्रसिद्ध ग्रन्थकार राल्फ वाल्डो ट्राइन के तीन निबन्धों का यह गुजराती अनुवाद है। अनुवादक हैं—श्रीयुत मणिलाल नाथुभाई दोशी, बी॰ ए॰। पहले निबन्ध में आत्मा और परमात्मा की एकता दिखाई गई है। इसमें भारतीय तत्त्वज्ञान की झलक है। दूसरे में भूत-दया का वर्णन है। मांस खाने से परहेज़ और पशुओं पर दया करना, इसका प्रधान विषय है। तीसरे में चरित्र-बल की महत्ता का निदर्शन है। मनुष्य जैसा स्वभाव डालता है वैसा ही चरित्र उसका हो जाता है, यही चरित्र-बल की कुञ्जी बताई गई है। पुस्तक दिव्य है।

※

१९—जीवन-विजय। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०१, मूल्य ४ आने, छपाई साधारण, लेखक—बाबू पद्मप्रसाद, लाला बाज़ार, अलमोड़ा। नामी ग्रन्थकार जेम्स एलन की पुस्तक—"Life Triumphant"—के आधार पर यह लिखी गई है। ज्ञान और विजय, आत्मिक दृष्टि और श्रेष्ठता, शान्ति और बल, सुविचार और शान्ति, सरलता और स्वतन्त्रता, आत्मसंयम और सुख—आदि अनेक ऐसे ही विषयों पर इसमें छोटे छोटे निबन्ध हैं। बड़ी अच्छी पुस्तक है। धर्म्म और सम्प्रदाय-दोष से रहित है। पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने लायक़ है।

※

२०—ज्वर-चिकित्सा, प्रथम भाग। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ११३, मूल्य आठ आने, मिलने का पता—पुरवाई प्रेस, इलाहाबाद। यह पुस्तक परलोक-गत पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा राजवैद्य की संग्रह की हुई है। यह इसका दूसरा संस्करण है। इसमें ज्वर का स्वरूप, निदान, लक्षण, चिकित्सा आदि सभी आवश्यक बातें भिन्न भिन्न वैद्यक-ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। उद्धृतांश संस्कृत में है, उसका भावार्थ हिन्दी में। संग्रहकर्त्ता महाशय ने बहुत सा मज़मून अपनी तरफ़ से भी हिन्दी में लिखा है। उसमें उनके निज के अनुभव की बातें हैं। ज्वर सभी को आता है। अतएव यह पुस्तक सभी हिन्दी जानने वालों के काम की है। इसमें वैद्यजीवन के—"श्रीखण्डमण्डितकलेवर"—आदि श्लोकों के अवतरण की मुतलक़ ज़रूरत न थी।

※

२१—चन्द्रमयूख र भूचन्द्र-चन्द्रिका। इस नेपाली पुस्तक की एक कापी नेपाल से हमें प्राप्त हुई है। वहाँ की गोर्खा-एजन्सी ने इसे भेजने की कृपा की है। वही इसे बेचती है। पुस्तक बड़े आकार की है। इसके दो भाग हैं। पहले का नाम चन्द्रमयूख और दूसरे का भूचन्द्रचन्द्रिका है। दोनों में महाराज मेजर जनरल सर चन्द्रशमशेर जङ्ग-बहादुर राणा का वर्णन है। भाषा नेपाली है और पद्यात्मक है। वृत्त स्रग्धरा, वसन्ततिलका, पृथ्वी और महर्षिणी आदि हैं। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या १०८, विषय-संख्या ११९ और चित्र-संख्या ७ है। इसमें धर्म्म, शिक्षा और राज्य-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाले जितने अच्छे अच्छे काम महाराज ने किये हैं उनका वर्णन है। प्रजा के सुभीते के लिए उन्होंने जो कुछ किया है उसका भी वर्णन है। कहीं कहीं चित्रकाव्य भी है। हारबन्धबन्ध, पृथ्वीचक्रबन्ध, नाग-बन्ध, कमलबन्ध आदि बड़े बड़े क्लिष्ट बन्धों की अवतारणा की गई है। दूसरे भाग में भी इसी तरह के कितने ही बन्ध हैं। इस भाग की पृष्ठ-संख्या ४८ और चित्र-संख्या १ है। इसमें और और बातों के सिवा—"श्रीमहाराज की पेरोपमा सवारी" का तथा उस आखेट का भी वर्णन है जिसका प्रबन्ध भारतेश्वर जार्ज पञ्चम के लिए महाराज ने नेपाल की तराई में किया था। देवपत्तन—गौरीघाट, नेपाल, के निवासी श्रीयुत जयनाथ सेढ़ाली और उनके पुत्र पैजनाथ सेढ़ाली ने इस पुस्तक-युग्म की रचना की है। छपाई बड़ी सुन्दर है। टाइप पक्का है। छपी आर्ट पेपर पर है। मनोहर जिल्द

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा।

श्रीमान पण्डित मनोहरलाल जुतशी, एम० ए० उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। उक्त पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगा कर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है:—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में) २॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में) ।=)
हिन्द में मग़रबी तालीम (उर्दू में) ।=)

कुमारसम्भवसार।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार दुबारा छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदीजी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने।

मानस-दर्पण।

(लेखक—बी० पं० रूपनारायण पाण्डे, एम० ए०)

इस पुस्तक को हिन्दी-साहित्य का अलङ्कारग्रन्थ समझना चाहिए। इसमें अलङ्कारों आदि के उदाहरण संस्कृत-साहित्य से और उदाहरण रामचरितमानस से दिये गये हैं। प्रत्येक हिन्दी-पाठक को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। मूल्य ।—)

संक्षिप्त इतिहासमाला।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासग्रन्थ कोई २०,२२ संख्याओं में पूर्ण होगी। अब तक ये पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।=)
३—रूस का इतिहास	...	।=)
४—इंगलैंड का इतिहास	...	।।=)
५—स्पेन का इतिहास	...	।=)

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं। इस 'माला' में अब तक इतनी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप में कुछ कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बच्चे और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥) आठ आने।

❀ ❀ ❀ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❀ ❀ ❀

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ॥) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ।)

बालोपदेश।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक़ है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालहितोपदेश।

१४—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के फंदे में न फँसने और फँस जाने पर उनसे निकलने के उपायों और कर्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें "बालविष्णुपुराण" पढ़ना चाहिए। इस पुराण में भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आना

बालगीतावलि।

१९—इसमें महाभारत में से ७ गीताओं का संग्रह किया गया है। इन गीताओं में ऐसी उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला।

२०—इसमें कोई ३१ शिक्षाप्रद विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।=)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालस्मृतिमाला।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मनिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालपुराण।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

बाल-कालिदास।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी मनमोहक हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियां बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।) चार आने है।

भारतीय विदुषी।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

तारा।

यह नया उपन्यास है। बँगला में "शैवालसहचरी" नामक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुकरण पर इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षा-प्रद और सामाजिक है। यह बढ़िया टाईप में छापा गया है। १५० पेज की पोथी का मूल्य केवल ॥=)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, अभी तक कहीं नहीं छपी। इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक।

कविशिरोमणि कालिदास के शकुन्तला नाटक को कौन नहीं जानता? संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। मूल्य १)

सौभाग्यवती।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य ≈)॥

बाला-पत्र-कौमुदी ।

मूल्य =) आने

इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ।✓)

सचित्र—शरीर और शरीर-रक्षा ।

मूल्य ।।) आठ आने

यह पुस्तक पण्डित चंद्रमौलि सुकुल एम० ए० की लिखी हुई है। इसमें शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। मनुष्य के अङ्गावयव-सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

श्रीगौरांगजीवनी ।

मूल्य =) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; किन्तु वैष्णव-धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

यवनराजवंशावली ।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़)

इस पुस्तक से आप को यह विदित हो जायगा कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्पण कब से हुआ। किस किस बादशाह ने कितने दिन तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी कि कौन बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। बादशाहों की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें उल्लेख किया गया है। मूल्य =)

कालिदास की निरङ्कुशता ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक जो लेख-माला प्रकाशित की थी वही पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य देखेंगे। मूल्य केवल ।) चार आने।

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा ।

[डाक्टर अमृतलाल-स्मारक पुस्तकावली सं० १]

जब किसी आदमी के चोट लग जाती है और शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है तब उसको बड़ा कष्ट होता है । जहाँ डाक्टर नहीं हो वहाँ और भी दिक्कत होती है । इन्हीं सब बातों को सोच कर, इन्हीं सब दिक्कतों के दूर करने के लिए, हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है । इसमें सब प्रकार की चोटों की प्रारम्भिक चिकित्सा, घावों की चिकित्सा और विषचिकित्सा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है । इस पुस्तक में आघातों के अनुसार शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की ६५ तसवीरें भी छाप कर लगा दी हैं । पुस्तक बड़े काम की है । मूल्य ॥।)

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा ।

यह पुस्तक सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की लिखी हुई है । विल्हण-कविरचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्य की यह आलोचना है । इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण-कवि की कविता के नमूने भी जहाँ तहाँ दिये हुए हैं । इनके सिवा इसमें बिल्हण-कवि का भी संक्षिप्त जीवनचरित लिखा गया है । पुस्तक पढ़ने योग्य है । मूल्य ≈)

बहराम-बहरोज़ ।

यह पुस्तक मुंशी देवीप्रसादजी, मुंसिफ़ की लिखी हुई है । उन्होंने इसे तवारीख़ रोज़ेतुलसफ़ा से उर्दू भाषा में लिखा था, उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है । उर्दू पुस्तक को यू० पी० के विद्याविभाग ने पसन्द किया, इसलिए वह कई बार छापी गई । अनेक विद्याविभागों में उसका प्रचार रहा । बहराम और बहरोज़ दो भाई थे । उन्हीं का इसमें वर्णन किस्से-रूप में है । तेरह किस्सों में यह पूरी हुई है । पुस्तक बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है । लड़कों के बड़े काम की है । मूल्य ≈) तीन आने ।

नाट्य-शास्त्र ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, लक्षण, यवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है ।

सचित्र

देवनागर—वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।≈)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी । इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है । देवनागरी सीखने के लिए यह बड़े काम की किताब है । बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पाते ही वह खेल भूल कर किताब के सौन्दर्य के देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा । खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है।

खेलतमाशा ।

यह भी हिन्दी पढ़नेवाले बालकों के लिए बड़े मज़े की किताब है । इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरों के साथ साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है । इसे बालक बड़े चाव से पढ़ कर याद कर लेते हैं । पढ़ने का पढ़ना और खेल का खेल है । मूल्य ≈)

भक्ति-पुष्पांजलि

आकार—११३″ × १३″ दाम ॥=)

एक सुन्दरी शिवमन्दिर के द्वार पर पहुँच गई है। सामने ही शिवमूर्ति है। सुन्दरी के साथ एक बालक है और हाथ में पूजा की सामग्री है। इस चित्र में सुन्दरी के मुख पर, इष्टदेव के दर्शन और भक्ति से होने वाला आनन्द, श्रद्धा और सौम्यता के भाव बड़ी .खूबी से दिखलाये गये हैं।

चैतन्यदेव

आकार—१०३″ × ९″ दाम ≡) मात्र

महाप्रभु चैतन्यदेव बंगाल के एक अनन्य भक्त वैष्णव हो गये हैं। वे कृष्ण का अवतार और वैष्णव धर्म के एक आचार्य माने जाते हैं। वे एक दिन घूमते विचरते जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ गरुड़स्तम्भ के नीचे खड़े होकर दर्शन करते करते वे भक्ति के आनन्द में बेसुध होगये। उसी समय के सुन्दर दर्शनीय भाव इस चित्र में बड़ी .खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

बुद्ध-वैराग्य

आकार—१८३″ × २१″ दाम १) रु०

संसार में अहिंसा-धर्म का प्रचार करने वाले महात्मा बुद्ध का नाम जगत् में प्रसिद्ध है। उन्होंने राज्यसम्पत्ति को लात मार कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इस चित्र में महात्मा बुद्ध ने अपने राज-चिह्नों को निर्जन में जाकर त्याग दिया है। उस समय के, बुद्ध के मुख पर, वैराग्य और अनुचर के मुख पर आश्चर्य के चिह्न इस चित्र में बड़ी .खूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

अहल्या

आकार—११३″ × १८३″ दाम १) रु०

गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या अलौकिक सुन्दरी थी। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक फूल हाथ में लिये खड़ी कुछ सोच रही है। सोच रही है देवराज इन्द्र के सौन्दर्य को—उन पर वह मोहित सी हो गई है। इसी अवस्था को इस चित्र में चतुर चित्रकार ने बड़ी कारीगरी के साथ दिखलाया है।

शाहजहाँ की मृत्युशय्या

आकार—१४″ × १०″ दाम ॥)

शाहजहाँ बादशाह को उसके कुपुत्र बेटे औरंगज़ेब ने धोखा देकर क़ैद कर लिया था। उसकी प्यारी बेटी जहाँनारा भी बाप के पास क़ैद की हालत में रहती थी। शाहजहाँ का मृत्युकाल निकट है, जहाँनारा सिर पर हाथ रक्खे हुए चिन्तित हो रही है। उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है। शाहजहाँ के मुख पर मृत्युकाल की दशा बड़ी ही .खूबी के साथ दिखलाई गई है।

भारतमाता

आकार—१०३″ × ९″ दाम ≡)

इस चित्र का परिचय देने की अधिक आवश्यकता नहीं। जिसने हमको पैदा किया है, जो हमारा पालन कर रही है, जिसके हम कहलाते हैं, और जो हमारा सर्वस्व है उसी जननी जन्मभूमि भारत-माता का तपस्विनी वेष में यह दर्शनीय चित्र बनाया गया है।

चित्रों के मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड २] नवम्बर, १९१६ [संख्या ५, पूर्ण संख्या ८०१

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

चित्र-सूची।

केशर कस्तूरी हींग और कापूर

काबुल हिमालय आदि की पैदावार दिव्य औषधियाँ वैद्यों, हकीमों तथा अमीरों और सर्वसाधारण के लिये हम शुद्ध व सस्ती भेजते हैं ताकि आयुर्वेद के प्रचार में सुभीता हो। एक दफ़ा औषधि मँगवा कर मुकाबला करो और हमें सेवा का अवसर दो। हींग काबली व ईरानी बारह बारह तोले टीन की ख़ूबसूरत डब्बी में बंद

हींग नं० १म १) नं० २म ।॥) नं० ३म ॥−) मूल्य फ़ी-डब्बी।
" " " २) " " १॥) " " १) मूल्य १२डब्बियाँ।
" " " २॥) " " १०) " " १॥) मूल्य फ़ी पौंड।
हींग नं० ख़ास राजों महाराजों के लिये ४) फ़ी पौंड।
कस्तूरी तिब्बती दानेदार ३१) नाफ़ा (आसामी) २६) तोला।
कस्तूरी नैपाली २१) कस्तूरी कश्मीरी २०) फ़ी तोला।
असली कश्मीरी केसर पवित्र १।) व १) तोला।
शुद्ध शिलाजीत या मुमियाई १) ॥) तोला।
गोरोचन या गारोचन्दन २॥) फ़ी तोला।
भीमसेनी कापूर ४) तोला अम्बर (मास) ३॥) तोला।
तिब्बत की ममीरी २४) तोला अकरकरा असली ३॥) तोला।
आँखों का सुर्मा कपूर और ममीरी वाला सफ़ेद २॥) स्याह २) "।
कपूर का साबुन व सिर-तेल मूल्य १ टिकिया ।−) १२ टिकिया ४)।
नीम का साबुन कार्बोलिक मूल्य १ " ।−) " " ४)।

अमृतसागर या कापूर आदि तेल प्लेग, हैज़ा, पेट दर्द, शूल, सिर दर्द, भिड़ बिच्छू के डंक आदि की रामबाण औषध है। यह एक प्रसिद्ध घरेलू दवा है। इसकी एक एक शीशी हर घर में मौजूद रहनी चाहिए। बच्चों, बूढ़ों, औरतों सब के लिए एकसा मुफ़ीद है। फ़ी शीशी १) कस्तूरी की गोलियाँ सिर दर्द खाँसी जुकाम को मुफ़ीद हैं १०० गोली १), बाल उड़ाने का पौडर ।) पैकट, बालों के लिये चन्द्रकान्ति तेल १) शीशी, पक्के ख़ूबसूरत चाकू देशी मूल्य १२ चाकू १।−) हमारे औषधालय से आयुर्वेद की सब औषधियाँ नाम और वर्णन लिखने से सस्ती भेजी जाती हैं।

(नोट) मँगवाई हुई औषधियाँ पसन्द न हों तो वापस भेजी जाती हैं। मिलने का पता—

बी० आर० सोधी मालिक भारत औषधालय
फगवारा पंजाब (PHAGWARA)

अन्धेरे में भी देखिये।

इस "रोशन" वाच की घड़ी का डायल ऐसी वस्तु का बना है कि बिना रोशनी के घोर अन्धेरी रात में भी ठीक समय दिखलाई पड़ता है। मज़बूती तथा सुन्दरता की गारंटी ६ वर्ष क़ीमत ४।) सवा चार रुपये नम्बर १६ क़ीमत ८॥) आठ रुपये बारह आने यही कलाई पर बाँधने वाली की क़ीमत ७) सात रुपये यही सब से बढ़िया २०) बीस रुपये डाकपैकिंग ख़र्च ।−) पाँच आने १ चैन भी घड़ी के साथ मुफ़्त मिलती है।

मँगाने का पता:—जे. एन. एण्ड सन्स
(डी) बड़ा बाज़ार—कलकत्ता।

सरस्वती-प्रयाग, हिन्दी-बंगवासी, सद्धर्म-प्रचारक, पाटलीपुत्र, प्रताप, अभ्युदय प्रताप, नवजीवन और मिथिला-मिहिर आदि समाचार पत्रों में प्रशंसित

बालवीरचरितावली

मँगाकर अवश्य पढ़िये, बालवीरचरितावली ही एक ऐसी पुस्तक है जो स्त्री, पुरुष बालक से बूढ़े तक सबको आनन्दित और उत्साहित कर सकती है। क़ीमत ॥) आठ आने, डाकख़र्च =) दो आने।

पता:—जे० एन-एण्ड सन्स,
(डी) बड़ा बाज़ार—कलकत्ता।

प्रशंसापत्र

सेठ कानजी गोविंदजी, नं० ४७ इजरा स्ट्रीट कलकत्ता लिखते हैं:—

"डोंगरे का बालामृत बच्चों के वास्ते आशीर्वाद के समान है। एक दफ़ पिलाने से बच्चा फिर आप ही से मांग लेता है। बालामृत पीने में मीठी और पुष्टिकारक है। इसलिये हर एक कुटुम्बियों से हम सिफ़ारिश करते हैं कि बच्चों को (डोंगरे का) बालामृत देके आज़माइश कर लेवें।"

प्रशंसापत्र

क्षेपकरहित असली रामायण

रामचरितमानस ।

दुबारा छप कर तैयार होगई ।

आज तक भारतवर्ष में जितनी रामायण छपीं और आज कल छप कर बिक रही हैं वे सब नक़ली हैं, क्योंकि उनमें कितने ही दोहे-चौपाइयाँ लोगों ने पीछे से लिख कर मिला दिये हैं। असली रामायण तो केवल इंडियन प्रेस की छपी रामचरित-मानस ही है। क्योंकि इसका पाठ गुसाईं जी के हाथ की लिखी पोथी से मिला कर शोधा गया है। और भी कितनी ही पुरानी लिखित पुस्तकों से पाठ मिला मिला कर इसमें से कूड़ा-करकट अलग निकाल दिया गया है। यही विशुद्ध रामायण हमने बड़े सुन्दर और मध्यम अक्षरों में, बढ़िया कागज़ पर, छापी है। जिल्द भी बँधी हुई है। मूल्य केवल २) दो रुपये।

अयोध्या-काण्ड ।

(सटीक)

(अनुवादक—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०)

यों तो रामचरितमानस को हिन्दूमात्र अपना धर्मग्रन्थ समझते एवं उसका आदर करते हैं। पर उसमें से अयोध्या-काण्ड की प्रशंसा सबसे अधिक है। इसी से हमने इसे उसी असली रामचरितमानस से अलग करके मूल को बड़े टाईप में और उसका अनुवाद छोटे टाईप में छाप कर प्रकाशित किया है। अनुवाद के विषय में अधिक कहने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। पुस्तक बड़े साईज़ में है और उसके पेज तीन सौ के क़रीब हैं; तो भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत ही कम केवल १।) एक रुपया चार आने।

अयोध्या काण्ड—मूल ।

इसे इलाहाबाद की यूनीवर्सिटी ने मेट्रिक्यूलेशन में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए नियत किया है। सब के काम की चीज़ है। मूल्य ।।।) बारह आने।

❀सचित्र हिन्दी महाभारत❀

(मूल आख्यान)

१०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १६ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

यह आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का ५००० वर्ष पहले का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्मभाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके पातिव्रत धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित को पढ़ कर ब्रह्मचर्य-रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत" ग्रंथ को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी ओजस्विनी और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या को यह महाभारत अवश्य पढ़ना और इससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

शिक्षा।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

बाल-बच्चोंदार मनुष्यों को चाहिए कि स्पेन्सर की शिक्षा-सम्बन्धिनी मीमांसा को पढ़ें और अपनी सन्तति की शिक्षा का सुप्रबन्ध कर के अपने पितृत्व धर्म्म से उद्धार हों। जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर अवश्य आरूढ़ होंगे। इससे उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए। पुस्तक की भाषा क्लिष्ट नहीं है। पृष्ठ-संख्या ४०० से ऊपर है। कागज़ चिकना और मोटा है। छपाई साफ़ सुथरी है। सुवर्णाक्षरों से अलङ्कृत मनोहर जिल्द बँधी हुई है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है; हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित है। पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है। ऐसी अनमोल पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ २॥) ढाई रुपया रक्खा गया है।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़्टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १।) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित।

इसमें सीताजीकी जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवनघटनाओं का महत्त्व भी विस्तारके साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। कागज़ मोटा। सजिल्द। पर, मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

प्रकृति।

मूल्य १) एक रुपया

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जानने वालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें सौर जगत् की उत्पत्ति, आकाश-तरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं।

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० लक्ष्मीधरनाथ भट्ट, बी० ए०, मात्र)

पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य १) मात्र ।

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बना कर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको यह पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है।

चरित्रगठन ।

जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका ब्योरा इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। उन्नति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २१२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) बारह आना है।

समृद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे समृद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी समृद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और प्राकृति के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी समृद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वा-वलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

जापान-दर्पण ।

(सम्पादकों के हाफ़टोन चित्र सहित)

पृष्ठ ३२०, मूल्य ।।।)

जिस हिन्दूधर्मावलम्बी और जापान ने महाबली रूस को पछाड़ कर सारे संसार में आर्य्यजाति का मुख उज्ज्वल किया है, उसी के भूगोल, आचरण, शिक्षा, कला, धर्म, व्यापार, राजा, प्रजा, सेना और इतिहास आदि बातों का, इस पुस्तक में, पूरा पूरा वर्णन किया गया है।

पुष्पाञ्जलि ।

(प्रथम भाग)

गद्यित्व संड

पंडित श्यामबिहारी मिश्र और पंडित शुकदेव-बिहारी मिश्र को हिन्दी-संसार भले प्रकार जानता है। उन्हीं महाशयों के बढ़िया लेखों का यह संग्रह है। इसमें चार सौ से भी अधिक पेज हैं। तीन चित्र भी दिये गये हैं; जिल्द भी बँधी हुई है; तो भी मूल्य केवल १।।) डेढ़ रुपया।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं । यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है । २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है । मूल्य १) एक रुपया ।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'बङ्गेरउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है । इसमें ११ कहानियाँ हैं । बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः क़िस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं । इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे । साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी । इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं । मूल्य ॥।) बारह आने ।

रॉबिन्सन क्रूसो ।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ता-कर्षक और शिक्षादायक है । नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है । क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है । कूपमण्डूक की तरह घर घर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए । मूल्य १।)

कविता-कुसुम-माला ।

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी १०६ कविताओं का संग्रह है । मूल्य ॥=) दस आने ।

तरलतरंग ।

पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक संग्रह-रूप में है । इसमें—अपूर्व शिक्षक का प्रथम लक्षण—एक बढ़िया उपन्यास है । और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं । यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और उपदेशप्रद भी है । मूल्य ॥=) दस आने ।

नवीन संशोधित तथा परिवर्धित द्वितीय संस्करण

क्षय-रोग ।

(अनुवादक—पं० बालकृष्ण शर्मा)

भारतसन्तानो ! यदि इस रोग-राक्षस से अपनी तथा अपने प्यारों की रक्षा चाहते हो तो यह पुस्तक पढ़ो । यह तुम्हें बतावेगी कि सभ्य संसार ने किन सरल युक्तियों द्वारा ऐसे भयंकर रोगों पर विजय प्राप्त की है । यह हताशों में आशा का संचार करती है । संसार भर की मुख्य भाषाओं ने इसे अपनाया है । इसकी भाषा बड़ी सरल है । कोई १५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ।–) पाँच आने ।

कुमारसम्भवसार।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार दुबारा छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदीजी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने।

संक्षिप्त वाल्मीकीय-रामायणम्।

(सम्पादक श्री डाक्टर सर सौरीन्द्रनाथ ठाकुर)

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से सम्पादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। तो भी पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। विद्यार्थियों के बड़े काम की है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

योगवासिष्ठ-सार।

(वैराग्य और मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण)

योगवासिष्ठ ग्रन्थ की महिमा हिन्दू-मात्र से छिपी नहीं है। इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्रजी और गुरु वसिष्ठजी का उपदेशमय संवाद लिखा हुआ है। जो लोग संस्कृत-भाषा में इस भारी ग्रन्थ को नहीं पढ़ सकते उनके लिए हमने योगवासिष्ठ का सार-रूप यह ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किया है। इससे धर्म, ज्ञान और वैराग्यविषयक उत्तम शिक्षायें मिलती हैं। मूल्य ॥≈)

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल जुत्शी, एम० ए० उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। यह पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगा कर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है:—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में)	१॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में)	।≈)
हिन्द में मगरबी तालीम (उर्दू में)	।≈)

मानस-दर्पण।

(लेखक—श्री० ... चन्द्रमौलि शुक्ल, एम० ए०)

इस पुस्तक को हिन्दी-साहित्य का अलङ्कारग्रन्थ समझना चाहिए। इसमें अलङ्कारों आदि के लक्षण संस्कृत-साहित्य से और उदाहरण रामचरितमानस से दिये गये हैं। प्रत्येक हिन्दी-पाठक को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। मूल्य ।~)

संक्षिप्त इतिहासमाला।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई १०,१२ संख्याओं में पूर्ण होगी। अब तक ये ५ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।≈)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।≈)
३—रूस का इतिहास	...	।≈)
४—इँगलैंड का इतिहास	...	॥≈)
५—स्पेन का इतिहास	...	।≈)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मासिक पत्रिका।

भाग १७, खण्ड २] नवंबर १९१६—कार्तिक १९७३ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २०३

अभ्यर्थना ।

दीन पर दया कीजिए राम ।
शरण आ रही पद- चिन्तामणि हे प्रभु ! आठो याम ॥१॥
तमो-मेघ अविवेक-नीर नित बरसाता अविराम ।
लुप्त हुआ सद्ज्ञान-दिवाकर नष्ट हुए गुण-ग्राम ॥२॥
शान्ति न आने पाई जिससे को सुख का रहा न नाम ।
हुआ शरीर अहो करुणाकर ! निर्बलता का धाम ॥३॥
शौर्य-लता को नित्य जलाता अनुचित-भय सा घाम ।
तथा सुखाता है यह निशिदिन गौरव-सर अभिराम ॥४॥
अकर्मण्यता मात्र रह गई, बिगड़ गये सब काम ।
पाप कमाया, कीर्ति गँवाई, हुआ खूब बदनाम ॥५॥
नाम आपका दीन-बन्धु फिर क्यों बन बैठे वाम ।
दूर कीजिए दुःख दीन के भव हे सीताराम ॥६॥

स्वामीदयाल श्रीवास्तव

विज्ञानेश्वर भट्ट ।

विज्ञानेश्वर, ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के शेष-भाग में, पश्चिम-भारत में, प्रादुर्भूत हुए थे। उनके पिता का नाम पद्मनाभ भट्ट था। उन्होंने "परमहंस" और "परिव्राजक" के नाम से अपनी "मिताक्षरा" के शेष में अपना परिचय दिया है। महर्षि याज्ञवल्क्य का जन्म मिथिला में हुआ था। उन्होंने तीन अध्यायों में जो स्मृति-शास्त्र बनाया है, "मिताक्षरा" उसी का भाष्य है। ३९९ लक्ष्मणाब्द (१४०९ ई०) की लिखी हुई मिताक्षरा की एक प्रतिलिपि पाई गई है। विज्ञानेश्वर ने भारद्वाज-गोत्रज ब्राह्मण-कुल में जन्म-ग्रहण किया था। उन्होंने गृहस्थाश्रम छोड़ कर संन्यास ले लिया था। ये विश्व-

रूप के शिष्य थे विश्वरूप-आचार्य ने "याज्ञवल्क्य-स्मृति" का जो दुरूह और विस्तीर्ण भाष्य बनाया है विज्ञानेश्वर ने उसी का संक्षेप अपनी "प्रमिताक्षरा" में लिपि-बद्ध किया है। उनकी भाषा बहुत सुबोध है। बङ्ग-देश को छोड़ कर, भारतवर्ष के अन्य सभी स्थानों में मिताक्षरा का "दायाधिकार-तत्त्व" परिगृहीत हुआ है। प्रायः सभी भारतवर्ष ने मिताक्षरा का दाय-भाग ग्रहण करके विज्ञानेश्वर की प्रधानता और क्षमता को बढ़ा दिया है।

डाक्टर जॉली के मत में याज्ञवल्क्य-स्मृति ईसा की प्रथम शताब्दी में रचित हुई थी। उसका पहला और तीसरा अध्याय "गरुड़पुराण" में अविकल गृहीत हुआ है। उसका दूसरा अध्याय एक ग्रन्थ-विशेष में परिणत हो गया है। विश्वरूप-आचार्य, विज्ञानेश्वर के पूर्ववर्ती भाष्यकार थे। विज्ञानेश्वर के पीछे शिलाहारवंशीय राजा अपरादित्य-देव और देवबोध ने याज्ञवल्क्य-स्मृति के भाष्य की रचना की थी। किन्तु विज्ञानेश्वर के मिताक्षरा-भाष्य की रचना के बराबर किसी का आदर नहीं हुआ।

विज्ञानेश्वर ने अपने बनाये मिताक्षरा में असहाय, मेधातिथि भट्ट, जितेन्द्रिय, मैथिल श्रीकर, विश्वरूप और धारेश्वर भोजराज के नाम का उल्लेख किया है। उन्होंने आपस्तम्ब-सूत्र को मिताक्षरा में उद्धृत किया है। डाक्टर जॉली के मत में आपस्तम्ब का धर्म्म-सूत्र पाणिनि से पहले का बना हुआ है। उन्होंने ईसा से पाँच सदी पहले के समय को उसकी रचना का अपकर्षकाल माना है। गौतम का धर्म्म-सूत्र सबसे प्राचीन है। गौतम के पीछे बौधायन का धर्म्म-सूत्र प्रणीत हुआ है। बौधायन-सूत्र के पीछे आपस्तम्ब-सूत्र रचित हुआ था।

श्रीयुत राजकुमार सर्वाधिकारी के मत में विज्ञानेश्वर के उल्लिखित श्रीकर का जन्म मिथिला में, ईसा की ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में, हुआ था। वे मैथिल स्मार्त्त मेधातिथि के परवर्ती थे। विश्वरूप विज्ञानेश्वर और धारेश्वर भोजदेव, श्रीकर के परवर्ती स्मृति-ग्रन्थ-प्रणेता हैं। अपरस्था देर स्मृति-शास्त्र की चर्चा के लिए, योगीश्वर याज्ञवल्क्य के समय से मिथिला की प्रसिद्धि हुई थी। याज्ञवल्क्य के परवर्ती और श्रीकर के पूर्ववर्ती मैथिल स्मार्तों के नाम का अब पता नहीं लगता। मिथिला स्मृति-शास्त्र का आदिम अनुशीलन-स्थल है। ईसा की आठवीं सदी में मेधातिथि ने प्रसिद्ध देश में स्मृति-चर्चा का सूत्र-पात किया था। विज्ञानेश्वर ने भी महाराष्ट्र देश और काशी में स्मृति-शास्त्र का अनुशीलन प्रवर्तित किया था। बङ्ग-देश में जीमूतवाहन के द्वारा स्मृति-चर्चा आरम्भ हुई थी। जीमूतवाहन का जन्म बङ्गाल में ईसा की बारहवीं सदी में हुआ था। जीमूतवाहन ने अपने "दायभाग" में भोजराज, देव और गोविन्दराज के बनाये "मनु-भाष्य" को उद्धृत किया है। गोविन्दराज ने ईसा की बारहवीं शताब्दी में "मनुभाष्य" बनाया था।

"सुबोधिनी" नामक—मिताक्षरा की टीका ईसा की तेरहवीं शताब्दी में विश्वेश्वर भट्ट के द्वारा रचित हुई थी। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के शेष-भाग में बालकृष्ण (बालम भट्ट) और उनकी माता लक्ष्मी देवी ने नन्द पण्डित के किये मिताक्षरा के टीका-भाष्य का खण्डन किया था और मिताक्षरा की एक और टीका बनाई थी। काशी में लक्ष्मीदेवी का मिताक्षरा-भाष्य विशेषतया आदृत हुआ है।

विज्ञानेश्वर भट्ट कल्याण-नगर के चालुक्यवंशीय महाराज त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य के मन्त्री थे। वहीं रह कर ही उन्होंने मिताक्षरा की रचना की थी। निज़ाम के हैदराबाद से ६० मील, उत्तर-पश्चिम में, कल्याण नाम का नगर था। काश्मीरी पण्डित विद्यापति बिल्हणदेव ने इसी प्रकार त्रिभुवनमल्ल चालुक्यराज विक्रमादित्य का चरित, "विक्रमाङ्कदेव-चरित" नाम के एक उत्तम ऐतिहासिक ग्रन्थ में, वर्णन किया है। १०७६ से ११२६ ईसवी तक विक्रमा-

दित्य ने राज्य किया था। स्वरचित मिताक्षरा के अन्तिम तीनों श्लोकों में विज्ञानेश्वर ने अपने आश्रय-दाता विक्रमादित्य का नामोल्लेख किया है। ९७३ ईसवी में राष्ट्रकुलवंशीय दीप नरपति कक्कल की हत्या कर महाराज तैलप ने दक्षिण में चालुक्यवंश का आधिपत्य पुनः प्रतिष्ठित किया था। महाराज त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य उन्हीं के चौथे वंशधर थे। वे चालुक्य-वंश के सर्वप्रधान नरपति थे। उनके अधिकार-काल में दक्षिण में सर्वत्र शान्ति-सुख विराजित था। कल्याण-नगर में उनकी राज-धानी प्रतिष्ठित थी। उनकी नामाङ्कित प्रायः दो सौ प्रशस्तियाँ भिन्न भिन्न स्थानों में अब तक पाई गई हैं। विज्ञानेश्वर सम्राट् विक्रमादित्य की सभा के सभासद और मन्त्री के पद पर अधिष्ठित थे। विज्ञा-नेश्वर के समय से महाराष्ट्र-देश में भी विशेषता से स्मृति-शास्त्र की चर्चा आरम्भ हुई। विज्ञानेश्वर और विद्यापति मिस्टक समसामयिक ग्रन्थकार थे। विज्ञा-नेश्वर के पीछे जो स्मार्त दक्षिण में हुए उनमें राजा अपरार्क हेमाद्रि और माधवाचार्य का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

श्रीगौरचरण गोस्वामी

महाभारत के प्रधान पात्र।

गत जुलाई मास की सरस्वती में श्रीयुत पण्डित अक्षयवटकी मिश्र का एक महत्त्वपूर्ण लेख उपरि-लिखित विषय पर प्रकाशित हुआ है। यों तो मिश्रजी ने यह लेख बड़ी गवेषणा-पूर्वक लिखा है, परन्तु उसमें कुछ बातें ऐसी लिखी गई हैं जो उन महापुरुषों के प्रति, जिनको हम बहुत काल से आदर्श महापुरुष मानते आये हैं, हमारे हृदय में घृणा उत्पन्न करती हैं। मिश्रजी ने जो दोष उनमें बतलाये हैं वे वास्तव में दोष नहीं, बल्कि गुण ही हैं। अतएव आज हम यही बतलाना चाहते हैं कि मिश्रजी का कथन कहाँ तक सत्य है।

श्रीकृष्णचन्द्र—इनके विषय में यह बात तो मिश्रजी ने स्वयं ही स्वीकार की है कि वे योगिराज तथा महापुरुष अवश्य थे, और वेदान्त तथा राज-नीति के पूर्ण विद्वान् थे। वे परब्रह्म के पूर्ण अवतार थे, यह बात विवादग्रस्त है। तथापि इतना तो अवश्य ही कहना पड़ेगा कि उस समय भी वे एक अद्वितीय विद्वान् समझे जाते थे और उनके समान महापुरुष आज तक कोई दूसरा हुआ भी नहीं। इन बातों पर दृष्टि डालते हुए यदि पुराणमतावलम्बी उनको परब्रह्म का अवतार मानते भी हैं तो कुछ अनुचित नहीं करते।

आगे चल कर मिश्रजी ने लिखा है—"कौरव-पाण्डव दोनों ही इनके फुफेरे भाई थे और दोनों ही समान थे। पर इन्होंने पाण्डवों का पक्ष लिया। इन्होंने विचार किया कि कौरव बड़े बुद्धिमान् हैं। वे मेरा आदर पूर्ण रीति से न करेंगे। परन्तु पाण्डव सीधे सादे धर्म-भीरु हैं। यदि मैं इनका पक्ष लूँगा तो मेरा माहात्म्य बढ़ जायगा।"

हमारी समझ में नहीं आता कि मिश्रजी ने कौरवों को भी कृष्ण के फुफेरे भाई कैसे बतलाया। कृष्णजी की फूफी कुन्ती पाण्डु को ब्याही गई थी और युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ही उसके पुत्र थे।

श्रीकृष्णजी ने अपना माहात्म्य बढ़ाने के लिए पाण्डवों का पक्ष न लिया था। वे जानते थे कि कौरव महादुष्ट, धूर्त और अन्यायी हैं और पाण्डव सर्वथा धर्मात्मा तथा न्यायशील हैं। यदि कौरवों की जीत हुई तो देश में नाना प्रकार के अत्याचार होने लगेंगे और प्रजा को असह्य कष्ट भोगना पड़ेगा। इस दशा में कंसादि को मार कर जो उपद्रव शान्त किया गया है वह परिश्रम भी एक प्रकार निष्फल हो जायगा। दुष्टों को दण्ड देना तथा शिष्टों की

रक्षा करना ही श्रीकृष्णजी का अभीष्ट था। उन्होंने स्वयं ही गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय च साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अब सोचिए कि जिस मनुष्य का सिद्धान्त इतना उच्च हो वही अपना माहात्म्य बढ़ाने की ग़रज़ से किसी का पक्ष ले, क्या ऐसा कभी सम्भव हो सकता है?

मिश्रजी ने लिखा है कि जब श्रीकृष्ण ने देखा कि पाण्डव सम्राट् होने वाले हैं तब उन्होंने अपनी बहन अर्जुन को विवाह दी। परन्तु सुभद्रा का विवाह तो अर्जुन के साथ बहुत पहले ही हो गया था। तब तक तो शायद महाभारत की नींव भी न पड़ी थी। फिर श्रीकृष्णजी ने कैसे जाना कि पाण्डव सम्राट् होने वाले हैं? यदि यही बात है तो सब पाण्डव तो सम्राट् न हुए थे, केवल युधिष्ठिर ही सम्राट् हुए थे। फिर युधिष्ठिर को छोड़ कर श्रीकृष्णजी ने तृतीय पाण्डु-पुत्र अर्जुन के साथ अपनी बहन का क्यों विवाह किया? वास्तव में यह बात न थी। श्रीकृष्णजी अर्जुन को वीर, साहसी और अनेक गुणालङ्कृत जानते थे। इसी लिए उन्होंने अपनी बहन अर्जुन को दी। इसका और कुछ कारण न था।

शिशुपाल का हनन करना श्रीकृष्ण का अभीष्ट था। क्योंकि वह बड़ा अत्याचारी था। तथापि वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित न हुए। जो प्रतिज्ञा उन्होंने की थी उसको पूर्ण रीति से निभाया। परन्तु जब उसने राज-सभा में उनका निरादर किया और सैकड़ों बुरी भली सुनाई—यही नहीं, तलवार लेकर वह उन पर झपटा—तब वे क्या करते? क्या उसके पैरों पड़ कर उससे क्षमा माँगते?

श्रीकृष्णजी ने अपने जीवन-काल में जो कुछ किया वह अपने उच्च आदर्शों के अनुसार ठीक ही किया। जैसे हो सका वैसे ही उन्होंने दुष्ट दुराचारियों को मार कर पृथ्वी का भार हलका किया। अतएव यदि कोई बात हमको अनुचित भी मालूम हो तो वह भी एक प्रकार से उचित ही है।

भीष्मपितामह—इनके लिए कौरव और पाण्डव दोनों समान थे। वे दोनों ही के पितामह थे। इन्होंने दुर्योधन को पाण्डवों से मेल कर लेने के लिए बहुत समझाया। परन्तु जब उसने न माना तब इन्होंने उससे साफ़ कह दिया कि मैं सिर्फ़ दस दिन तक युद्ध करूँगा और उन दिनों में यथाशक्ति पाण्डवों की सेना का संहार करता रहूँगा। लेकिन पाण्डवों में से किसी को भी न मारूँगा। यदि ये युद्धभाग में पाण्डवों की ओर होते तो दस हज़ार सेना का संहार प्रति दिन न करते। क्योंकि ये जानते थे कि पाण्डवों की सेना केवल सात अक्षौहिणी है और कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी। ऐसी दशा में इस महापुरुष को दोष देना अन्याय है। युद्ध के समय ये बड़े चक्कर में पड़ गये थे। पाण्डवों ने इनके विरुद्ध कोई कार्य न किया था। दोनों ही पक्ष वाले उनके प्यारे थे। तब वे किसका पक्ष लेते? इसी लिए इन्होंने यह निश्चय किया कि यदि हम पहले ही मर जायँगे तो सारा झगड़ा तै हो जायगा। परन्तु। यही सोच कर इन्होंने अपने मरने का उपाय अर्जुन को बतला दिया।

युधिष्ठिर—ये धर्मराज कहलाते थे। परन्तु मिश्रजी के मतानुसार ये धर्मराज कहलाने योग्य न थे। परन्तु इन्होंने कौन सा अधर्म किया, यह भी तो बता देना चाहिए था।

जब हम किसी मनुष्य के चरित की समालोचना करने लगें तब हम को चाहिए कि हम उसके समय की समाज-व्यवस्था को न भूलें। अपने समय की व्यवस्था की तुला से उसकी तौल करना कहाँ की

दन्तेवाड़ा का हिन्दी-शिलालेख—संवत् १७६० ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बुद्धिमानी है। उस समय ललकारने पर युद्ध तथा जुए से पीछे हटना अधर्म समझा जाता था। इसी से युधिष्ठिर को जान बूझ कर भी, अपनी इच्छा के विरुद्ध, जुए में शामिल होना पड़ा। और, जब वे द्रौपदी को स्वयं हार गये थे तब उसके लिए लड़ना एक प्रकार से अधर्म अवश्य था। इसी लिए वे नीची गर्दन किये द्रौपदी की दुर्दशा देखते रहे।

इतना होने पर भी युधिष्ठिर न चाहते थे कि वे लोग आपस में लड़ कर भारतवर्ष का सत्यानाश करें। इसी से उन्होंने केवल पाँच गाँव माँगे। लेकिन जब उनको मालूम हो गया कि दुर्योधन बिना युद्ध के सूई-नोक भर भी भूमि नहीं देना चाहता तब वे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये।

हम नहीं जानते कि इन्होंने ऐसा कौन सा अधर्म और अन्याय किया जिसके कारण ये धर्मराज कहलाने योग्य नहीं समझे जा सकते? ऐसे महापुरुष को, जो शत्रु और मित्र को एक सा समझता था और जिसके कारण उसने अजातशत्रु की पदवी पाई थी, अविवेकी और धर्मभीरु कहना शिष्टता की सीमा का उल्लङ्घन करना है।

दुर्योधन—मिश्रजी ने दुर्योधन को बुद्धिमान, साहसी तथा राजनीतिज्ञ माना है। परन्तु केवल राजनीति जानने से ही कोई मनुष्य विद्वान् नहीं समझा जा सकता। जिस मनुष्य ने अपने वृद्ध पितामह तथा माता-पिता और गुरु तक का कहना न माना, और जिसने चिरकाल की शान्ति का भङ्ग करके भारत का सत्यानाश कर डाला, उसे बुद्धिमान् तथा राजनीतिज्ञ कहना कहाँ तक उचित है, यह विचारवान् पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं। जिस मनुष्य ने अपने भाइयों को विष देकर तथा अग्नि में जला कर मार डालना चाहा, जिसने सम्मुख युद्ध करने का सामर्थ्य न रख कर कपटद्यूत से पाण्डवों को जीता, जिसने अपनी अनुजवधू को सभ्यों की सभा में नग्न करना चाहा, उसे नीच और दुराचारी न कह कर साहसी तथा वीर कहना सर्वथा अनुचित है।

हम लोग अच्छी तरह जानते हैं कि दुर्योधन के किये दुष्कर्मों का फल हम आज तक भोग रहे हैं। हम यह भी जानते हैं कि सत्यप्रिय महाराज युधिष्ठिर ने इस नाशकारी महायुद्ध को टालने का कितना प्रयत्न किया था। फिर भला हम कैसे मान सकते हैं कि दुर्योधन विवेकी और युधिष्ठिर अविवेकी थे?

जब हम किसी सर्वमान्य महापुरुष के चरित्र के ऊपर टीका-टिप्पणी करने चलें तब हम को चाहिए कि उस पर पहले खूब विचार कर लें, और जो कुछ लिखें प्रमाणपूर्वक लिखें। यह नहीं कि जो कुछ जी में आया लिख मारा। ऐसा करने से सर्वमान्य आदर्श पुरुषों के प्रति सीधे सादे अनभिज्ञ मनुष्यों की श्रद्धा कम हो जाने का डर रहता है। इससे समाज में और भी अनेक अनर्थ हो सकते हैं।

नारायणसिंह (करौली)

दन्तेवाड़ा का हिन्दी शिला-लेख।

रायबहादुर बाबू हीरालाल बी० ए०, एम० आर० ए० एस० ने उपर्युक्त शिला-लेख के सम्बन्ध में एक लेख "एपिग्राफ़िया इंडिका" में छपवाया है। मैंने प्रस्तुत लेख उसी के आधार पर लिखा है।

मध्य-प्रदेश के रायपुर ज़िले में बस्तर नाम की एक ज़मींदारी है, जिसकी राजधानी जगदलपुर है। जगदलपुर से ५० मील नैऋत्य की ओर शंखिनी और डंकिनी नदियों के सङ्गम पर दन्तेवाड़ा नामक एक गाँव है, जिसमें दन्तेश्वरी देवी का मन्दिर है। इस मन्दिर में पत्थर के दो पटिये मिले हैं, जिनमें से एक में संस्कृत का और दूसरे में हिन्दी का लेख है। दोनों लेखों का आशय प्रायः एक ही है। इस लेख का उद्देश केवल हिन्दी का शिला-लेख

बेलजियम में अमेरिकन सहायक कमीशन के कर्मचारी खाना तैयार कर रहे हैं।

बढ़ो बढ़ो उद्योत हृदय से बैठे रहना ठीक नहीं—
दिल्ली दूर अभी है भाई! यद्यपि कुछ नज़दीक नहीं ॥१८॥

कितने कार्य, एक एक तुमको पार अभी करना होंगे—
कितने मद-माते रस्ते में अभी तुम्हें लड़ना होंगे।
कला ज्ञान असमार्थ पना कर जब ऊँचे चढ़ जाओगे—
भव्य भाग्य वाले भारत के तब तुम दर्शन पाओगे ॥१९॥

बैठा होगा वीरासन पर तेज दिवाकर सा होगा—
दग-चकोर जब सुख पावेंगे बदन सुधाकर सा होगा।
थोड़ा वक्षस्थल निहार कर चकित हुए रह जाओगे—
करुणा दया देख कर उसकी निपट विवश तुम आओगे ॥२०॥

मुख-मण्डल से उसके हरदम शान्ति मनोहर बरसेगी—
फिर दुनिया उसके दर्शन को व्याकुल होगी—तरसेगी।
वहाँ बैठ कर कृष्णचन्द्रजी मुरली मधुर बजायेंगे—
ममता-दुःख दूर करने को दशरथ-नन्दन आवेंगे ॥२१॥

यदि जाओगी जिधर उधर विज्ञान-ज्योति फैली होगी—
जिसे देख कर चन्द्र-चन्द्रिका झेंपेगी—मैली होगी।
वह अपने कौशल से देगी सुधा-धार बरसावेगा ;
अमर करेगा निज पुत्रों को वह चिर सुधा पिलायेगा ॥२२॥

तुमको देख गले मिलते वह मन्द मन्द मुसकायेगा—
गुण-गरिमा वह देख तुम्हारी फूला नहीं समायेगा।
स्वर्ग कामना फिर तुम जी में अपने कभी न लाओगे—
जो चाहोगे इसी लोक में मिलकर तुम पा जाओगे ॥२३॥

× × × × ×

सुन ये बातें देशभक्त की आँसू मेरे निकल पड़े—
मानो भारत-पदपद्मों को हृदयज बालक मचल पड़े।
मैंने कहा थाम कर आँसू—"हा! वह दिन कब आवेगा—
जो यह स्वप्न समान यथार्थ सभी कर दिखलावेगा" ॥२४॥

उत्तर मिला—"आप जब जी से भारत को अपनायेंगे—
तभी कृपा करके वे अपना असली रूप दिखायेंगे"।
मैंने कहा—"सखे! आओ यह हृदय-भेंट स्वीकार करो—
देश-प्रेम-जलधि-बोहित हो मुझको भी तुम पार करो" ॥२५॥

सनेही

—

झलमला*।

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि विमला दासी अपने आँचल के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा—"क्यों री यह क्या है?" वह बोली—"झलमला"। मैंने फिर पूछा—"इससे क्या होगा?" उसने उत्तर दिया—"नहीं जानते हो बाबू! आज तुम्हारी बड़ी भाभी पण्डितजी की बहू की सखी होकर आई हैं। इसलिए मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूँ।"

तब तो मैं भी किताब फेंक कर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी से जाकर मैं कहने लगा—"दीदी, थोड़ा तेल तो दो"। दीदी ने कहा—"जा, अभी मैं काम में लगी हूँ"। मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा—"यह अवसर जाने न देना चाहिए। अच्छी दिल्लगी होगी"। मैं इधर उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और एक दिया-सलाई का बाक्स लेकर मैं भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देख कर भाभी ने पूछा—"कैसे आये बाबू"? मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकड़े को जला कर उनके सामने रख दिया।

भाभी ने हँस कर पूछा—"यह क्या है?"।

मैंने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"झलमला"

भाभी ने कुछ न कह कर मेरे हाथ पर पाँच रुपये रख दिये। मैं कहने लगा—"भाभी क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है?" भाभी ने हँस कर कहा—"तो कितना चाहिए?" मैंने कहा—"कम से कम एक गिन्नी।" भाभी कहने लगी—

* छत्तीसगढ़ में झलमला उस दीपक को कहते हैं जिसे दासियाँ कुछ इनाम पाने की इच्छा से दिखाती हैं।

नक्षत्रों में भौतिक परिवर्त्तन।

संसार परिवर्तनशील है। भौतिक जगत् में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो एक ही अपरिवर्त्तित रूप में चिरस्थायी हो। उदाहरण के लिए एक वृक्ष ही को लीजिए। एक अति सूक्ष्म अङ्कुर से हरे भरे वृक्ष का जन्म होता है। यह धीरे धीरे बढ़ कर पूर्णता को पहुँच जाता है। इसके अनन्तर वही वृक्ष, कालान्तर में, शुष्क काष्ठ के रूप में परिणत हो जाता है, एवं पवन के किसी प्रचण्ड झोंके से गिर पड़ता है। यदि यह वहीं पड़ा रहने दिया जाय तो सड़ गल कर पुनः मिट्टी में मिल जाता है और अपने शरीर के सङ्गठन के लिए जिन उपकरणों को उसने पृथ्वी से ग्रहण किया था उन्हें खाद के रूप में पुनः पृथ्वी को लौटा देता है। इससे भविष्यत् में होने वाले पौधों की श्री-पुष्टि होती है। इस प्रकार पुरानी सृष्टि का अन्त और पुनर्वार तद् द्वारा नई सृष्टि के निर्माण का नियम प्रकृति में सर्वत्र विद्यमान है।

प्रकृति का यह नियम एकमात्र पृथ्वी पर ही नहीं काम देता, किन्तु यह विश्वव्यापक है। अब देखना यह है कि जन्म-मृत्यु, अर्थात् परिवर्त्तन, का यह नियम नक्षत्र समुदाय में किस प्रकार कार्य्य करता है। गगन-मण्डल में जो सहस्रों टिमटिमाते ज्योतिष्क हमारे दृष्टिगोचर होते और अँधेरी रात की शोभा बढ़ाते हैं उन्हें नक्षत्र कहते हैं। ये सभी हमारे सौर जगत् (Solar-System) के बाहर हैं। ज्योतिर्विद् पण्डितों का मत है कि इनमें से प्रत्येक नक्षत्र हमारे सूर्य्य की तरह एक एक सूर्य्य है और अपने भिन्न भिन्न सौर जगत् का केन्द्र है।

नक्षत्रों की संख्या और उनकी दूरी

यदि खाली नेत्रों से हम आकाश की ओर देखें तो हमको एक ही समय में तीन सहस्र से अधिक तारे न दिखलाई देंगे। परन्तु बड़ी बड़ी दूरबीनों द्वारा देखने पर इनकी संख्या करोड़ों पर पहुँचती है। खाली आँखों से महाकाश के जिस स्थान पर दो ही चार तारे दिखलाई देते हैं, बड़ी दूरबीनों से देखने पर वहाँ सहस्रों की संख्या में नक्षत्र देख पड़ते हैं। इस प्रकार बड़ी से बड़ी शक्ति वाली दूरबीन से देख कर अब तक ज्योतिर्विद्या-विशारदों ने इनकी संख्या पचास करोड़ बतलाई है। अर्थात् अब तक ५०,००,००,००० सूर्यों का पता लग चुका है। सम्भव है, भविष्यत् में, और बड़ी दूरबीनों के बनने पर, यह संख्या और भी अधिक हो जाय। वास्तव में ठीक ठीक गिन कर नक्षत्रों की संख्या बता देना मनुष्य के सामर्थ्य से परे है।

ठीक यही बात उनकी दूरी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। नक्षत्रों की दूरी जानने में ज्योतिषियों के अच्छे से अच्छे आधुनिक सूक्ष्म यन्त्रों ने भी हार मान ली है। जिन पचास करोड़ नक्षत्रों का कथन ऊपर किया गया है उनमें से कुछ ही की दूरी बड़े परिश्रम से उनको ज्ञात हुई है। इनमें सबसे समीप का नक्षत्र इतना दूर है कि मीलों में उसकी दूरी का ठीक ठीक अनुमान कर लेना प्रायः असम्भव है। इस लिए ज्योतिषी जन नक्षत्रों की दूरी मीलों में नहीं बताते। वे केवल यही कह देते हैं कि अमुक नक्षत्र से प्रकाश के पृथ्वी पर पहुँचने में इतने वर्ष लगते हैं। प्रकाश की किरणें एक सेकंड में एक लाख छियासी हज़ार मील चलती हैं। सूर्य हमसे ९ करोड़ ३० तीस लाख मील की दूरी पर है। सूर्य से प्रकाश की किरणें पृथ्वी पर लगभग आठ मिनट में आ जाती हैं। परन्तु सबसे पास के नक्षत्र (Alpha Centauri) से प्रकाश की किरणों के पृथ्वी पर पहुँचने में चार वर्ष चार महीने लग जाते हैं।

दूरत्व निर्णय

एक ही समय में पृथ्वी के दो सुदूरवर्ती स्थानों से यदि दो मनुष्य दूरबीन द्वारा किसी ग्रह अथवा उपग्रह को देख कर यह
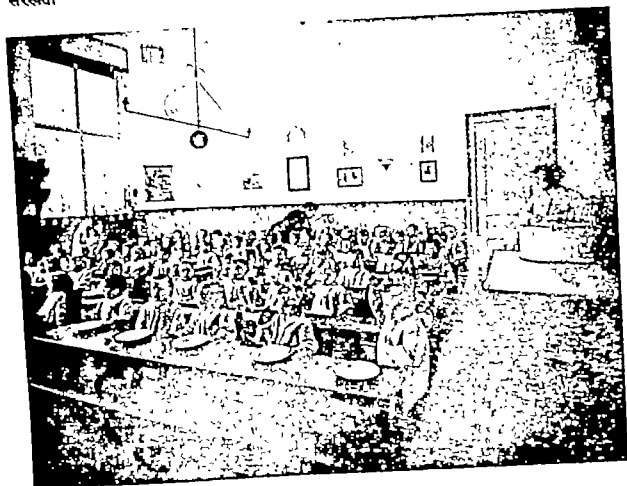
बेलजियम में अमेरिकन सहायक कमीशन का खाद्य-वितरण काम—
बच्चों को खाना खिलाया जा रहा है।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

जान लें कि वे उन दोनों स्थानों पर कितने अंश के कोण बनाते हैं तो गणित द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि वे पृथ्वी से कितनी दूरी पर हैं। इसी रीति से ग्रहों तथा उपग्रहों की दूरी पृथ्वी से ज्ञात हो जाती है। परन्तु इस रीति से नक्षत्रों की दूरी जानने की चेष्टा करना निष्फल है।

पृथ्वी का व्यास ८००० मील है। अतएव पृथ्वी के कोई भी दो बिन्दु ८००० मील से अधिक दूर नहीं हो सकते। और ८००० मील दूर के दो स्थानों से देख कर किसी भी नक्षत्र का स्थान-परिवर्तन नहीं ज्ञात हो सकता। उनकी दूरी इतनी अधिक है कि ८००० मील अन्तर के दो स्थानों से वे समान-कोण बनाते हुए दिखाई देते हैं। परन्तु एक उपाय से बहुत दूर के दो स्थानों से हम किसी भी नक्षत्र को देख सकते हैं। आज पृथ्वी अपने कक्षा-मार्ग (Orbit) के जिस स्थान पर है, छः मास के अनन्तर वहाँ से १८ करोड़ ५४ लाख मील, अथवा इससे भी अधिक दूर, पहुँच जायगी। क्योंकि पृथ्वी एक वृत्ताभास कक्षामार्ग (Elliptic Orbit) में घूम रही है, जिसका परिमाण १० करोड़ मील है। इतने सुदूरवर्ती दो स्थानों से देखने पर कुछ नक्षत्र अति सामान्य स्थान-परिवर्तन करते हुए देख पड़ते हैं। ज्योतिर्विद् पण्डितों को ज्ञात हुआ है कि (Alpha Cantauri) ·७५ विकला अभिजित् ·१६ विकला और ध्रुवतारा ·०८९ विकला स्थान-परिवर्तन करते हैं।

इस स्थान-परिवर्तन को देख कर उन्होंने गणित-शास्त्र के नियमों से निर्णय किया है कि इन नक्षत्रों से प्रकाश की किरणों के पृथ्वी पर पहुँचने में क्रम से ४·३५, २०·७ और ४६·५ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी अनुमान किया जाता है कि ऐसे भी नक्षत्र हैं जिनसे प्रकाश की किरणों को पृथ्वी तक आने में सहस्रों वर्ष बीत जाते हैं। इससे कल्पना की जा सकती है कि यह ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है और परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य कितना तुच्छ प्राणी है।

नक्षत्रों का शारीरिक संगठन

जो पदार्थ हमसे इतनी दूर हैं उनके विषय में अधिक नहीं जाना जा सकता। तब भी ज्योतिर्विद्या-विशारदों ने अपने अध्यवसाय से उनके सम्बन्ध में बहुत सी बातें जान ली हैं। आलोक-विश्लेषण-यन्त्र द्वारा नक्षत्र से आई हुई प्रकाश की किरणों की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ है कि सब नक्षत्र हमारे सूर्य के सदृश स्वतः प्रकाशमान् हैं। उनके शरीर में छोटे छोटे उल्का-पिण्ड हैं, जो एक दूसरे को धक्का देकर इतने अधिक उष्ण हो जाते हैं कि अन्त में जल उठते हैं। नक्षत्रों का प्रकाश लाखों मीलों में व्याप्त इसी प्रचण्ड अग्नि का प्रकाश है। ये उल्का-पिण्ड वाष्प-रूप में परिणत हो जाते हैं। उस समय ठीक हमारे सूर्य के सदृश सब दिशाओं में प्रचण्ड ताप विकीर्ण करते रहते हैं। परन्तु एक समय ऐसा आता है जब यह वाष्प धीरे धीरे घनत्व को प्राप्त होता हुआ ठोस रूप में बदल कर बीच में जमा हो जाता है। ऊपर चारों ओर वाष्प का आवरण बना रहता है। ऐसी दशा में नक्षत्र का प्रकाश श्वेत नहीं रहता, किन्तु लाल-पीले इत्यादि रङ्ग का हो जाता है। आकाश में इस प्रकार के लाल-पीले नक्षत्र हमको बहुत से मिलते हैं।

युग्म नक्षत्र

यदि खाली नेत्रों से हम आकाश की ओर देखें तो कई स्थानों में दो या दो से अधिक नक्षत्र एक दूसरे से मिले हुए देख पड़ते हैं। परन्तु दूरबीन द्वारा देखने से ज्ञात होता है कि ये वास्तव में एक दूसरे के समीप नहीं, किन्तु उनमें करोड़ों मील का अन्तर है। किन्तु कुछ ऐसे नक्षत्र हैं जो वास्तव में एक दूसरे के अति निकट हैं। ये एक दूसरे का आकर्षण करते हैं और परस्पर एक दूसरे के चारों ओर घूमते हैं। सप्तर्षि-मण्डल के वसिष्ठ नक्षत्र के समीप एक छोटा सा तारा है,

जिसे अरुन्धती कहते हैं। अरुन्धती और वसिष्ठ में परस्पर कुछ भी आकर्षण-सम्बन्ध नहीं, किन्तु वसिष्ठ के अति निकट एक और छोटा तारा है, जिसका आकर्षण-सम्बन्ध वसिष्ठ से है। अतएव वसिष्ठ एक युग्म नक्षत्र है।

नक्षत्रों की यथार्थ गति

नक्षत्रों के विषय में बहुत लोगों का यह विचार है कि वे एक ही स्थान पर स्थित हैं। उनमें कोई यथार्थ गति नहीं। उन्हें अँगरेज़ी में Fixed Stars) अर्थात् अचल तारे कहते हैं। नक्षत्रों का जो उदयास्त हम प्रति दिन देखते हैं उसका कारण पृथ्वी की दैनिक गति है। उनके उदयास्त के समय का जो वार्षिक परिवर्तन देख पड़ता है वह पृथ्वी की वार्षिक गति का परिणाम है। इन दोनों प्रकार की गतियों द्वारा नक्षत्रों के अपेक्षित स्थान (Relative Position) में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि वर्ष के अन्त में नक्षत्र पुनः पूर्व-स्थान में ही देख पड़ते हैं। वास्तव में नक्षत्र-समूह ग्रह-उपग्रहों की तुलना में स्थिर कहे जा सकते हैं। क्योंकि अत्यधिक दूरी के कारण इनकी प्रकृत गति सूक्ष्म यन्त्रों की सहायता लिये बिना अनुभव में नहीं आ सकती। सूक्ष्म यन्त्रों के द्वारा बहुत से नक्षत्रों की यथार्थ गति निर्णय की जा चुकी है, जिससे ज्ञात हुआ है कि ये निकट के तारा-समूह से कुछ स्थानान्तरित हो रहे हैं। यह स्थानान्तरता सामयिक अथवा अस्थायी नहीं, क्योंकि कितने ही नक्षत्र क्रमशः एक ही ओर को हटे चले जा रहे हैं। किन्तु यह परिवर्तन इतना थोड़ा है कि कम से कम हज़ार या इससे भी अधिक वर्ष बीते बिना खाली आँखों से अनुभव नहीं किया जा सकता। गणित द्वारा जाना गया है कि हंस-मण्डलस्थ एक नक्षत्र (61 Cygni) का वार्षिक स्थान-परिवर्तन ५'२ विकला, Alpha-Centauri का ३'० विकला, स्वाती का २.२ विकला और लुब्धक का १'२ विकला है। इस प्रकार ज्योतिर्विद् पण्डितों ने "रश्मि-निर्वाचन-यन्त्र" द्वारा मालूम किया है कि कोई कोई नक्षत्र हमारे सूर्य के समीप आ रहे हैं और कोई कोई सूर्य से सुदूर जा रहे हैं। अभिजित् और स्वाती प्रति सेकंड ५० मील की चाल से हमारे पास आ रहे हैं तथा लुब्धक और आर्द्रा प्रति सेकंड २० मील की गति से हमसे सुदूर हट रहे हैं। इसी प्रकार सप्तर्षि-मण्डल के पाँच नक्षत्र एक ओर को और दो उसकी विपरीत दिशा को जा रहे हैं।

नक्षत्रों की मृत्यु

जन्म और मृत्यु प्रकृति का अटल नियम है। इसे कोई नहीं तोड़ सकता। जो सूर्य आज हमको इतना ताप दे रहा है, लाखों वर्षों के अनन्तर वही एकदम ठण्डा हो जायगा। वही उसकी मृत्यु का समय होगा। हमारे चन्द्रमा और बुध-ग्रह की मृत्यु हो चुकी है। उनमें अपना ताप किञ्चिन्मात्र भी नहीं। शुक्र, पृथ्वी और मङ्गल-ग्रह भी अब धीरे धीरे इसी राह पर चल रहे हैं। मनुष्यादि प्राणियों को मरने पर छुटकारा मिल जाता है, किन्तु ग्रह-नक्षत्रों को मर कर भी अनन्त ब्रह्माण्ड में सदा के लिए चक्कर लगाना पड़ता है। आकाश में कुछ नक्षत्र ऐसे हैं जिनका प्रकाश घटा बढ़ा करता है—अर्थात् सदा एक सा नहीं रहता। उत्तर-भाद्रपद और अश्विनी नक्षत्र-पुञ्ज में एक नक्षत्र है जिसे "आलगाल" कहते हैं। इस नक्षत्र की उज्ज्वलता की वृद्धि और ह्रास का पर्याय २ दिन २१ घण्टे में सम्पूर्ण होता है। इतने समय के अनन्तर उसका प्रकाश बहुत घट जाता है और पुनः ४१ घण्टे बाद प्रकाश की वृद्धि प्रारम्भ होती है। इसी प्रकार मीन-राशि में भी एक नक्षत्र परिवर्तनशील है, जिसका पर्याय ११ महीने में सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रकाश के घटने-बढ़ने का कारण निर्णय करने में ज्योतिर्विद् पण्डितों ने नक्षत्रों की मृत्यु ही की बात कही है। वे कहते हैं कि इस

अनन्त ब्रह्माण्ड में ऐसे नक्षत्र बहुत हैं जो लाखों वर्षों तक ताप विकीर्ण करके अब प्रभाहीन हो गये हैं। किन्तु आकर्षण के नियमानुसार वे महाकाश में घूम रहे हैं। सभी परिवर्तनशील तारे युग्म नक्षत्र हैं। उनमें एक मृत और दूसरा जीवित, अर्थात् प्रभासम्पन्न है। जब यह मृत नक्षत्र घूमते घूमते जीवित के सम्मुख आ जाता है तब इस जीवित नक्षत्र का एक प्रकार का ग्रहण हम देखते हैं। यदि मृत नक्षत्र ने जीवित को एकदम ढक लिया तो उसका पूर्ण-ग्रास(Total Eclipse), नहीं तो खण्ड-ग्रास ग्रहण (*Partial Eclipse*) हो जाता है। इसी कारण हमको उसका प्रकाश अति क्षीण दिखाई देता है। इस प्रकार के प्रभाहीन पिण्ड बहुत से हैं। परन्तु उनकी प्रभाहीनता के कारण हम उनके विषय में विशेष कुछ नहीं जान सकते।

नक्षत्रों का जन्म

यदि नक्षत्रों की मृत्यु ही मृत्यु होती और जन्म न होता तो एक समय ऐसा आता जब ये सबके सब प्रकाशहीन हो जाते और यह अनन्त महाकाश अन्धकाराच्छन्न हो जाता। परन्तु उस जगन्नियन्ता के काम अधूरे नहीं। समय समय पर इस महाकाश में नये नये नक्षत्रों का भी आविर्भाव होता है। ऐसे नये नक्षत्र महाकाश के किसी कोने में एकाएक जल उठते हैं और उनमें से अधिकतर कुछ दिनों या कुछ महीनों के बाद ही बुझ जाते हैं। परन्तु कितने ही नक्षत्र लाखों वर्षों तक जलते भी रहते हैं।

सन् १५७२ ईसवी के नवम्बर महीने में काश्यपी नक्षत्र-मण्डल में एक नया तारा दिखलाई दिया। पहले वह बृहस्पति के समान उज्ज्वल था। किन्तु कुछ ही दिनों में उसकी प्रभा इतनी उज्ज्वल हो गई कि दिन में भी वह दिखाई देने लगा। परन्तु अब उसका पता नहीं।

सन् १८७६ और १८८५ में दो नये नक्षत्र और भी देखे गये। उन्हें दूरबीन से अब तक देख सकते हैं। इसी प्रकार १९०१ में एक, और तदनन्तर दो और नक्षत्र देखे गये।

नक्षत्रों के जन्म के सम्बन्ध में ज्योतिषियों ने बड़े आश्चर्य की बातें बतलाई हैं। हमने देखा है कि एक पत्थर को दूसरे के ऊपर ज़ोर से मारने पर अग्नि निकल पड़ती है। उल्का-पिण्ड जब हमारी पृथ्वी पर गिरते हैं तब वायु के संघर्ष से जल उठते हैं। इन्हीं बातों का दृष्टान्त देते हुए ज्योतिर्विद् विद्वान् बतलाते हैं कि जब दो मृत नक्षत्र घूमते हुए एक दूसरे से टकरा जाते हैं तब उनका कुछ भाग टूट कर वाष्प रूप में परिणत हो जाता है। इस जलते हुए वाष्प से जो प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न होती है उसी को हम करोड़ों मील दूर से देखते हैं। यह अग्नि कुछ दिन या महीने जल कर बुझ जाती है। परन्तु जब दो मृत नक्षत्र एक दूसरे के सम्मुख हो कर टकराते हैं तब वे दोनों ही चकना-चूर हो जाते हैं और उनसे जो भयानक अग्नि उत्पन्न होती है वह लाखों मील में व्याप्त हो कर महा-प्रलय की अग्नि के समान करोड़ों वर्षों तक जला करती है। इस प्रकार नये नक्षत्रों का जन्म समय समय पर हुआ करता है। जन्म-मृत्यु का यह नियम पृथ्वी के सिवा और पदार्थों के लिए भी उतना ही अनिवार्य है जितना पृथ्वी के लिए है। क्योंकि नियम प्रकृति का स्वाभाविक गुण है।

विष्णु-नारायण सेन

रात्रि *।

(१)

हे निशे तुझ में रहस्यों का भरा भाण्डार है,
लेख यह कैसा अनोखा है किया तू ने पढ़ा।
सृष्टि के आरम्भ में तव आगमन को देख कर
मर गया होगा मनुज के चित्त में विस्मय बड़ा ॥

* ब्लैंको-व्हाइट की इक अँगरेज़ी कविता का भावानुवाद।

(२)

देखते ही देखते यह नील-मण्डल व्योम का
हो गया होगा तिमिर में लुप्त उसके सामने।
और लोचन हो गये होंगे कमलिनी-भाव भी,
देख यह, क्या यह जगा होगा न थरथर काँपने?

(३)

शुक्र ने तारों सहित दर्शन दिये होंगे पुनः
सामने से जब मिटी होगी गगन की लालिमा।
सृष्टि विस्मृत हो गई होगी मनुज की दृष्टि में,
रह गया होगा चकित यह देख करके यह समा॥

(४)

भानु तेरी ज्योति में इतना अँधेरा है छिपा
कौन पहले इस अनूठे भेद को था जानता?
फूल, पत्ते, कीट, यद्यपि दृष्टिगोचर थे सभी,
तू अनन्तों अन्य लोकों का न देता था पता॥

(५)

फिर सभी क्यों कर रहे हैं मृत्यु से इतनी घृणा?
पुनः जीवन के लिए क्यों हो रहा है सब कहीं?
जब कि है रवि-दीप्ति भी लोपमयी इस विश्व में
किस तरह लें मान जीवन में मरा लोपा नहीं?

—मोतीलाल

नवीन सभ्यता के स्रोत में कुछ प्राचीन विद्याओं का लोप।

(१)

तन्त्र-विद्या।

तन्त्रविद्या से कितने ही रोगी आराम किये जाते थे। शत्रु को वशीभूत करना अथवा उसका नाश करना भी इससे साध्य था। अब यह विद्या बिलकुल लोप हो गई है। पन्द्रह और बीस आदि संख्याओं के यन्त्र हम लिखे जाते हैं। पुस्तकों में उनके अद्भुत रूप लिखे हुए हैं। भूतप्रेत आदि की बाधा का निवारण करने वाले भी कितने ही मन्त्र हैं। अथर्ववेद में मन्त्र-तन्त्र-विद्या का वर्णन है। यदि इन रहस्यों को अच्छी तरह जान ले तो मनुष्य संसार की कितनी ही गुप्त शक्तियों पर अधिकार पा सकता है। अब लोगों को इनकी सावधानियाँ मालूम नहीं हैं। तन्त्र-विद्या के अनेक ग्रन्थ अब भी विद्यमान हैं। उनमें से कितने ही ग्रन्थों को छाप कर प्रकाशित करने की ओर [illegible] नहीं आई। तान्त्रिक विद्या सांसारिक व्यवहारों में उपयोगी थी। उसके द्वारा भूत-प्रेतों से भी संसर्ग हो सकता था।

मन्त्र-विद्या।

प्राचीन-काल की मन्त्रविद्या बड़ी प्रभावशालिनी थी। ऋषियों, महात्माओं एवं विद्वानों के हाथ में वेदों के मन्त्र चमत्कारी शस्त्र थे। उनके द्वारा वे पानी बरसा सकते थे, शत्रुओं का नाश कर सकते थे, ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते थे और स्वर्ग तक की प्राप्ति कर सकते थे। इन मन्त्रों के समझने की कुञ्जी अब जाती रही है। बिना कुञ्जी के इनका प्रभाव नहीं पड़ता। मन्त्रों के द्वारा ही राजा शान्तनु ने शिवजी को प्रसन्न करके आकाशगामी विमान पाया था। मन्त्रों के द्वारा ही अर्जुन ने इन्द्र से बड़े बड़े प्रभावशाली अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये थे। मन्त्रों के द्वारा ही कुन्ती और माद्री ने तेजस्वी पुत्र पाये थे। मन्त्रों के बल से ही ऋषि ऋष्यशृङ्ग ने पानी बरसाने की शक्ति प्राप्त की थी। मन्त्रों से ही ध्रुव ने ईश्वर को प्रसन्न किया था। मनुष्यों और देवताओं के परस्पर सम्मेलन का साधन मन्त्र ही थे। मन्त्रों का प्रभाव अतुल था। इस समय भी लोगों को कुछ मन्त्र याद हैं। उनके द्वारा वे अनेक रोग दूर कर सकते हैं। साँप, बिच्छू आदि के काटे का असर बहुत से लोग मन्त्रों से दूर कर देते हैं। प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए मन्त्र पृथक् पृथक् हैं। जिनको मन्त्रों का रहस्य मालूम है वे कठिन और असाध्य कार्यों को उनके साधन से सिद्ध कर सकते हैं। एक ऐसा मन्त्र है जो यदि मूर्ख से मूर्ख की जिह्वा पर लिख दिया जाय तो वह विद्वान् हो जाय। महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती कही जाती है कि वे पहले महामूर्ख थे। उनकी जिह्वा पर किसी महात्मा ने एक मन्त्र लिख दिया था। उसके प्रभाव से वे अद्वितीय पण्डित और प्रतिभाशाली कवि हो गये। नैषधचरित के रचयिता श्रीहर्ष कवि के विषय में लिखा है कि एक महात्मा ने उनको गङ्गातट पर चिन्तामणि-मन्त्र सिखा दिया था। इस मन्त्र के प्रभाव से वे शास्त्रार्थ में बड़े से बड़े पण्डितों का सामना कर सकते और कविता बड़ी सुगमता से रच सकते

है। मन्त्रों के प्रभाव से सम्बन्ध रखने वाली अनेक वार्तायें कही जाती हैं। परन्तु इस लेख में उन सबका वर्णन करना असम्भव है।

भूत-विद्या।

भूत-प्रेत आदि को वश में लाने की विद्या का नाम भूत-विद्या है। प्राचीनकालीन मनुष्यों ने इसके द्वारा भूत-प्रेतादि के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इस समय भूत-प्रेत आदि में लोगों का विश्वास नहीं है। तथापि अ त से ऐसे अकाट्य प्रमाण मिलते हैं जिनसे भूतादि का अस्तित्व सिद्ध होता है। इस विषय में कुछ मनुष्य बहुतसी अनुभूत बातें कहा करते हैं। सभी प्राचीन सभ्यताओं में भूत-प्रेतादि के सम्बन्ध की कथायें पाई जाती हैं। ईरान, चीन, अरब और हिन्दुस्तान के इतिहासों और पुराणों में उनका उल्लेख है। भूत-विद्या के द्वारा भूत-प्रेतों से सम्बन्ध स्थापित करके उनसे तरह तरह के काम लिये जाते थे। भागवत में लिखा है कि दुर्वासा ऋषि ने अम्बरीष राजा पर कृत्या का प्रयोग किया था। इसी तरह राजा सुदक्षिण ने कृष्ण पर कृत्या चलाई थी। यह सब भूत-विद्या का ही प्रभाव था। सहस्ररजनी-चरित्र में अलाउद्दीन और उसके दीपक की कथा से पता लगता है कि उस दीप के द्वारा कई जिन—अर्थात् भूत—अलाउद्दीन के अधीन थे। आज कल भी कुछ ऐसे आदमी हैं जो यह विद्या थोड़ी बहुत जानते हैं। पर इस समय धोखेबाज़ी का खूब दौर-दौरा है। तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि भूत विद्या कोई चीज़ ही नहीं। इसका तो अर्थ यह है कि उसके जानने वाले नहीं। अंगरेज़ी-साहित्य में भी भूत-प्रेतों का ज़िक्र पाया जाता है। हेमलेट के पिता का भूत के रूप में हेमलेट से बातचीत करना और मेकबेथ को भूतात्मा का दिखाई देना लिखा हुआ है। डाक्टर स्काट के उपन्यासों में भूत-प्रेत, जिन, परी आदि का बहुत स्थानों में उल्लेख है। यह इस बात का प्रमाण है कि भूत-प्रेत कोई चीज़ अवश्य हैं। Spiritualism अर्थात् भूत-विद्या इस बात का प्रमाण है कि मरने पर आत्मा का नाश नहीं होता। भूत-प्रेत भी पापिष्ठ आत्मायें ही हैं। अतएव जो विद्या इन से मिलाने का साधन बताती है वह बड़े काम की हो सकती है।

आकाश-मार्ग से भ्रमण करने की विद्या।

आकाश-मार्ग से जाने की चेष्टा अति प्राचीन काल से होती रही है। प्रत्येक प्राचीन सभ्य देश में ऐसी चेष्टा की गई है। ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि आकाश-मार्ग से जाने के कितने ही प्रयत्न किये गये हैं। यूनान में इकेरस (Icarus) नाम के मनुष्य ने ऐसे कृत्रिम पङ्ख बनाये थे जिनके लगाने से वह आकाश में उड़ सकता था। यद्यपि यह प्रयत्न पूर्ण सफलता को नहीं प्राप्त कर सका तथापि इस प्रकार की चेष्टा की जाने का यह प्रमाण अवश्य है। अरब के इतिहासों और क़िस्सों से भी सूचित होता है कि उस देश के मनुष्यों ने भी आकाश-मार्ग से जाने की चेष्टा की थी और उस चेष्टा में वहाँ वालों ने सफलता भी प्राप्त की थी। अलिफ़लैला, अर्थात् सहस्ररजनी-चरित्र, में लिखा है कि एक कारीगर ने लकड़ी का एक ऐसा घोड़ा बनाया था जिस पर सवार होकर मनुष्य स्वेच्छानुसार आकाश में भ्रमण कर सकता था। इसी तरह एक क़ालीन का भी ज़िक्र है, जिस पर बैठ कर आदमी उड़ सकते थे। और और देशों में इस प्रकार की चेष्टा मात्र हुई है, परन्तु इस कार्य्य में पूर्ण सफलता प्राचीन भारतवासियों को ही प्राप्त हुई थी। हिन्दू-साहित्य, इतिहास, पुराण आदि देखने से पता लगता है कि प्राचीन भारतवासियों ने इस विद्या में खूब उन्नति की थी। आकाश-गमन के कई साधन उन्होंने निकाले थे। रामायण आदि ग्रन्थों में अभ्रान्त प्रमाण मिलते हैं कि उस समय बड़े बड़े विमान विद्यमान थे। जब लङ्का जीत कर रामचन्द्र अयोध्या को लौटे तब देवताओं ने उनके लिए पुष्पक विमान भेजा। यह विमान इतना बड़ा था कि रामचन्द्र अपनी सेना के कुछ भाग सहित उस पर बैठ कर अयोध्या आये। इसके अतिरिक्त और भी कितने ही विमानों का उल्लेख है, जिन पर बैठ कर देवताओं ने राम-रावण-युद्ध देखा था और जिनसे समय समय पर वे रामचन्द्र और उनकी सेना पर पुष्प-वर्षा करते रहे थे। रामायण और महाभारत से यह भी पता लगता है कि राम-रावण अथवा कौरव-पाण्डव-युद्धों में आकाश-युद्ध भी हुए थे। आजकल हवाई जहाज़ों पर बैठ कर जैसे युद्ध होते हैं

भी सिखाई जाती थी। इस विद्या में निपुण मनुष्य, जब चाहे तब, रूप पलट सकता था। रूप बदल लेने से मतलब जासूसी से नहीं है। यह तो महर्षियों की विद्या थी, जो अब भी लोगों को मालूम है। रूपान्तर का मतलब यह है कि एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में चला जाना, जैसे आदमी से पशु अथवा पक्षी बन जाना। रावण का भिक्षुक-वेश धारण करके सीता को हर ले जाना, मारीच राक्षस का सोने के मृग के रूप में राम-लक्ष्मण को कुटी से दूर ले जाना, हनुमान् का सीता के समाचार लाने के समय मच्छर का रूप धारण करना, ये सब उदाहरण रामायण में मिलते हैं। महादेव का किरात के रूप में अर्जुन से युद्ध करना किरातार्जुनीय नामक काव्य में लिखा है। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके असुरों से अमृत ले लिया था। यह हाल भागवत में है। पिछले समय में शङ्कराचार्यजी का काम-शास्त्र-विद्या सीखने के लिए एक राजकुमार के रूप में हो जाना पाया जाता है। राजा विक्रमादित्य और भोज के समय में भी रूपान्तर के कई दृष्टान्त मिलते हैं। ये बातें इस विद्या के प्राचीन काल में प्रचलित होने के प्रमाण हैं। पातञ्जल-योगशास्त्र में भी इसका उल्लेख है। यह सिद्धि योगाभ्यास से प्राप्त हो सकती थी। इस समय इस विद्या का सर्वथा लोप हो गया है।

सञ्जीवनी विद्या।

रामायण और पुराणों में कई स्थानों पर उल्लेख है कि दैत्य अपने मरे हुए आदमियों को फिर जीवित कर लिया करते थे। राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य को सञ्जीवनी विद्या मालूम थी। वे यह विद्या केवल दैत्यों को ही सिखाते थे। देवता बहुत चाहते थे कि यह विद्या उन्हें मालूम हो जाय; परन्तु उनके प्रयत्न सफल न हुए। एक बार इन्द्र ने अपने लड़के जयन्त को वेश बदल कर यह विद्या सीखने के लिए शुक्राचार्य के पास भेजा। परन्तु शुक्राचार्यजी को मालूम हो गया कि यह देवयोनि से उत्पन्न है और सञ्जीवनी विद्या का रहस्य देवताओं के उपकार के लिए जानने आया है। शुक्राचार्य ने इस लड़के को मार कर भोजन कर लिया, परन्तु उनकी लड़की का प्रेम उससे हो गया था। लड़की ने पिता की बहुत कुछ प्रार्थना की कि इसे पुनर्जीवित कर दीजिए। तब शुक्राचार्यजी ने उसे जिला दिया। यह कथा महाभारत में है। इससे पता लगता है कि पहले पुनर्जीवन के रहस्य को भी लोगों ने हल कर लिया था। यह विद्या बड़ी प्रभावशालिनी थी। धन्य है वह जाति जिसने इतने बड़े प्रश्न को हल कर लिया था।

रसायन-विद्या।

रसायन-विद्या को हमारे पूर्वजों ने इतनी उन्नति पर पहुँचा दिया था कि इसके द्वारा वे लोहा, ताँबा आदि धातुओं से सुवर्ण अथवा चाँदी बना लेते थे। आधुनिक विज्ञान का मत है कि यह बात असम्भव है। परन्तु इस समय भी किसी किसी साधु के विषय में सुना जाता है कि वह यह विद्या जानता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय रसायन-विद्या के नाम से बहुत धोखा दिया जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि रसायन-विद्या थी ही नहीं। इस विषय का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। इसके बनाने का रहस्य गुरु शिष्य को बता देता था और शिष्य गुरु होने पर अपने शिष्यों को बताता था।

प्रमाण इस समय मिलें या न मिलें, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में यह विद्या थी अवश्य। यदि खोज की जाय तो शायद अब भी कुछ साधु ऐसे मिल जायँ जिन्हें यह रहस्य मालूम हो।

पारद-शास्त्र।

प्राचीन काल में एक ऐसा सम्प्रदाय था जो शरीर-रक्षा के लिए पारे का सेवन करता था। इस सम्प्रदाय के कुछ लोग बड़े विद्वान् थे। उनके विचार शास्त्र की सीमा तक पहुँच गये। सर्वदर्शन-संग्रह नाम के एक ग्रन्थ में पारद-शास्त्र का भी वर्णन है। इस सम्प्रदाय वालों का कथन है कि निरन्तर योग-साधन से मोक्ष अथवा अनेक अद्भुत विभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। निरन्तर योग-साधन के लिए दीर्घ आयु की बड़ी आवश्यकता है। मृत्यु शरीर के जीर्ण और मलीन होने से होती है। यदि ऐसा कोई उपाय हो जिससे शरीर नीरोग और शुद्ध बना रहे और वृद्धावस्था न आवे तो मनुष्य बहुत वर्षों तक जीवित रह सकता है। यह पारद का सेवन करने से हो सकता है। इस सम्प्रदाय के लोग इसी उद्देश से पारे का सेवन करते थे और इसके प्रभाव से अपने को चिरञ्जीवी बना लेते थे। इसमें वृद्धावस्था
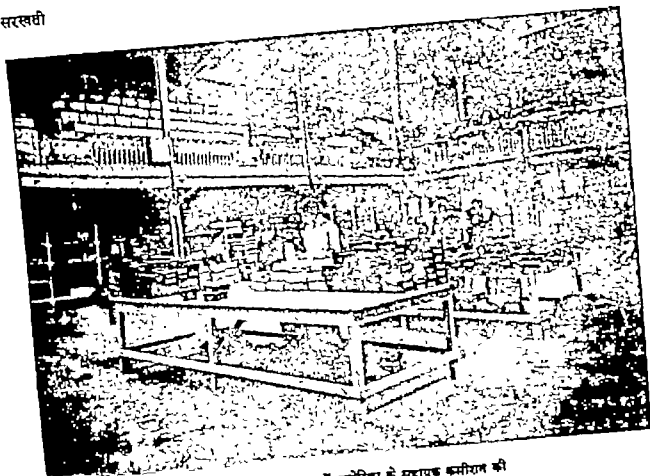
बेलजियम के ऐन्टवर्प नगर में अमेरिका के सहायक कमीशन की
वह इमारत जिसमें कपड़े-लत्ते जमा होते हैं।
[भीतरी दृश्य]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

उनके समीप न आने पाती थी। वे कौन सी तरकीबें थीं जिनसे वे लोग पता लगाकर चिरञ्जीव हो जाते थे, उनके प्राण अब दिखाई नहीं पड़ते। शायद इस सम्प्रदाय-सम्बन्धी ग्रन्थों में उनका वर्णन हो। इसकी खोज की आवश्यकता है। सहस्रों वर्षों तक एक शरीर में रहना बड़ा कठिन काम है। परन्तु प्राचीन काल में इसने इसको भी हल कर लिया था।

सर्प-विद्या ।

छान्दोग्य-उपनिषद् में वर्णन है कि नारद को ब्रह्म-विद्या न आती थी। अतएव यह विद्या सीखने के लिए वे एक ऋषि के पास गये। ऋषि ने नारद से पूछा कि आप क्या क्या पढ़े हैं। नारद ने जो जो विद्यायें पढ़ी थीं सब का नाम ले गये। उनकी संख्या १० या ११ थी। उनमें से एक सर्प-विद्या भी थी। सर्प-विद्या वह थी जिससे सर्प वश में हो जाते थे और सर्पों के सब रहस्य मालूम हो जाते थे। सर्प का विष दूर करने की ओषधियाँ भी ज्ञात थीं, जिनसे सर्प-दंश की पीड़ा तुरन्त जाती रहती थी। यह विद्या भी अब लुप्तप्राय है।

सङ्गीत-विद्या ।

सङ्गीत-विद्या में प्राचीन भारत ने अत्यधिक उन्नति की थी। इस सम्बन्ध में एक पृथक् लेख हम पहले ही लिख चुके हैं। इसलिए यहाँ अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं। यह विद्या अभी लोप तो नहीं हुई, परन्तु इसके गौरवशाली रहस्य हाथ से जाते रहे हैं। इस विषय के अनेक प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं, जिन्हें पढ़ने, पढ़ाने और तदनुकूल सङ्गीत सीखने की आवश्यकता है। भारतवासियों को इस कार्य्य में दत्तचित्त होना चाहिए, जिससे यह अमूल्य रत्न नष्ट न हो जाय।

काम-शास्त्र ।

वात्स्यायन का काम-सूत्र पढ़ने से पता लगता है कि प्राचीन भारतवासियों ने काम-सम्बन्धी विषयों के बड़े गूढ़ रहस्य ज्ञात किये थे। उनके जानने से अनेक दिक़्क़तें, जो इस विषय में प्रायः पेश आ रही हैं, दूर हो जाती थीं। यह विषय अभी गुप्त है। यह शास्त्र की दृष्टि से नहीं देखा जाता। सम्भव है, कभी इसकी तरफ़ भी लोगों का ध्यान जाय।

साहित्य ।

काम-शास्त्र से मिलता हुआ साहित्य-शास्त्र का एक भाग है, जिसे नायिका-भेद कहते हैं। इसमें शृङ्गारिक भावों का निरूपण है। नायिका-भेद के बिना कविता नीरस अथवा फीकी समझी जाती है। परन्तु इस समय यह विषय तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और सभ्य समाज के आदर का पात्र नहीं समझा जाता। ऐसी तिरस्कार-दृष्टि कहाँ तक ठीक है, हम नहीं कह सकते। परन्तु हम यह अवश्य कहेंगे कि नायिका-भेद का अस्तित्व केवल इसी देश के साहित्य में है, और किसी देश में नहीं। इस विषय को इस उन्नत अवस्था में लाने के लिए बड़े समय, परिश्रम और अनुभव का विनियोग हुआ होगा।

रत्न-सम्बन्धिनी विद्या ।

कौन सा रत्न किसको सुखदायी हो सकता है, किसको दुखदायी, तथा रत्नों का सम्बन्ध मनुष्य की देह से किस तरह का हो सकता है, यह सब विषय रत्न-शास्त्र का था। इसका भी लोप हो चुका है। इस विद्या से मनुष्य पिछले समय में बहुत कुछ काम उठाते थे।

किसी समय इस देश में आवश्यकता से अधिक रत्न थे। भिक्षा में दासियाँ रत्नों के थाल भर भर कर दिया करती थीं। राजाओं के मण्डपों का निर्म्माण सुवर्ण से होता था। उनमें रत्न जड़े जाते थे। उस समय भारत अपने ऐश्वर्य्य के उन्नत शिखर पर आरूढ़ था। अब वह महादरिद्र है। इस दशा में यदि रत्न-शास्त्र लुप्त हो गया, तो आश्चर्य्य ही क्या है। अब भारत-माता के पास पहनने के लिए भी रत्न नहीं; तब ऐसे शास्त्र की आवश्यकता ही क्या? जिस देश के निवासियों को थालियों में भरे रत्न भिक्षा में मिलते थे उसको अब मुट्ठी भर चने भी नहीं मिलते। अफ़सोस!

उपसंहार ।

इस बात के लिखने की आवश्यकता नहीं कि पूर्वोक्त विद्यायें कितनी उपयोगिनी हैं। पाठक स्वयं ही इस बात को जान सकते हैं। जिस सभ्यता में ऐसी ऐसी चमत्कारिणी विद्यायें

अपनी अपनी भाषा का प्रेम इतना अधिक होता है कि वे उसे छोड़ कर दूसरी भाषा को अग्र-स्थान देना पसन्द नहीं करते। कुछ मनुष्यों की प्रकृति इतनी अद्भुत है कि घर की सब भाषाओं को छोड़ कर यदि कोई अन्य भाषा आवे तो वे उसका स्वागत करने को सदा प्रस्तुत रहते हैं। घरेलू व्यवहार ही में देख लीजिए। प्रायः भाई भाई भी आपस में मेल नहीं रखते। यदि कोई बाहरी आदमी आकर मेल कराये तो निपटारा हो जाता है। इस विषय में भाई भाई किसी दूसरे का अधिकार तक मानने को एक पैर के बल खड़े हो जाते हैं।

तीसरा कारण यह है कि हमारी देशी भाषाओं में इस समय यथेष्ट बल नहीं। उनका शब्द-भाण्डार इतना हीन है कि उनके द्वारा आधुनिक संसार में बड़े बड़े गहन विषयों की शिक्षा प्राप्य नहीं दी जा सकती। यदि हमें संसार के और देशों के साथ चलना और उनकी बराबरी करना है तो हमें उचित है कि हम इस समय किसी एक यूरोपीय भाषा के द्वारा शिक्षा ग्रहण करें और सब विषयों तथा शास्त्रों में प्रावीण्य प्राप्त करें।

इन तीनों कारणों को, पक्षपात-रहित होकर, हमने आप पर प्रकट कर दिया है। अब इस पर हमारा उत्तर भी सुन लीजिए। राज-भाषा-सम्बन्धी जो पहला कारण बताया गया है वह यथार्थ है। परन्तु साधारण राज-कार्य के लिए राज-भाषा के जितने ज्ञान की आवश्यकता है वह तो बहुत थोड़े ही परिश्रम से प्राप्त हो सकता है। जितने लोग राज-कर्मचारी का पद प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं (ऐसे बहुत से लोग हैं और होना उचित भी है) वे आवश्यकता के अनुसार राज-भाषा का ज्ञान प्राप्त करें। विचार करने पर ज्ञात होता है कि राज-कर्मचारियों को परदेशी भाषा के बहुत अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं। न्यायालयों और अन्यान्य कार्यालयों—सरकारी दफ़्तरों—में देशी ही भाषा का अधिक ज्ञान दरकार है। राज-भाषा के थोड़े ही ज्ञान से काम चल सकता है। विज्ञान, गणित-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, न्याय-शास्त्र, इतिहास, अर्थ-शास्त्र आदि जिन गहन विषयों का अध्ययन हमने स्कूल-कालेजों में अँगरेज़ी भाषा के द्वारा किया है—उन विषयों पर अँगरेज़ी में लिखी गई जिन मोटी मोटी पुस्तकों का अवलोकन किया है—उनका वहाँ बहुत ही कम काम पड़ता है। उनका उद्देश केवल ज्ञान-प्राप्ति था। जीविका से उनका सम्बन्ध नहीं था। यदि वही पुस्तकें और वही शास्त्र हमको अपनी भाषा के द्वारा पढ़ाये जाते तो उनका ज्ञान, परीक्षा के बाद ही, लोप न हो जाता, किन्तु हमारे हृदय और मस्तिष्क को वे सदा हरा-भरा रखते और हमारी जीवन-यात्रा में सहचर सखा के सदृश सहायता देते।

दूसरे कारण के विषय में यह निवेदन है कि भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्रान्त की भाषा जुदा जुदा है। एक प्रान्तवासी दूसरे प्रान्तवासी की भाषा के द्वारा शिक्षा ग्रहण नहीं करता। प्रान्त प्रान्त के लोगों में भाषा के सम्बन्ध में परस्पर वैमनस्य है। इस कारण किसी एक भाषा को समस्त देश नहीं ग्रहण कर सकता। और, जब तक देश में एक भाषा राष्ट्रभाषा न हो तब तक ऐक्य कदापि नहीं फैल सकता। क्योंकि बाहरी व्यवहार में भाषा ही ऐसी सर्वश्रेष्ठ रज्जु है जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से बाँध सकती है। एक ही भाषा-भाषी, चाहे संसार के दूर दूर प्रदेशों में भी रहते हों, पत्रादि से आपस का स्नेह अक्षुण्ण रख सकते हैं। परन्तु यदि भिन्न भाषा-भाषी एक ही मकान में भी रहते हों तो भी एक दूसरे पर अपना भाव नहीं प्रकट कर सकते। इस दशा में उनमें प्रेम का सञ्चार कदापि नहीं हो सकता। यह अत्यन्त स्पष्ट और ध्रुव सत्य है। यह तो हुआ दूसरे कारण का उत्तर।

अब हमारा निज का मत भी इस विषय पर सुनिए। भारत विस्तृत देश है। उसके प्रान्त प्रान्त
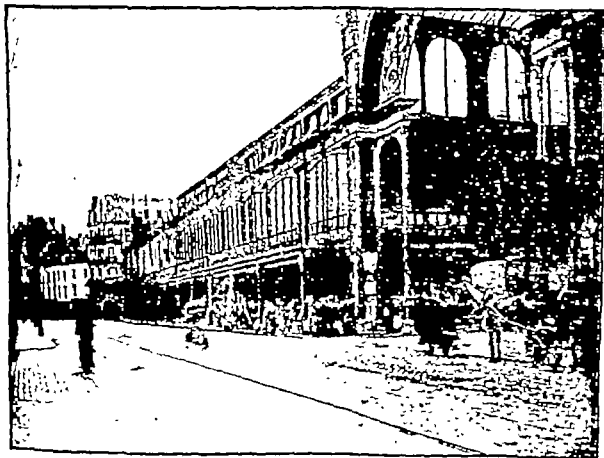
बेलजियम के ब्रसल्स नगर में अमेरिका के सहायकारी कमीशन की
वह इमारत जिसमें कपड़े-लत्ते जमा होते हैं।

[बाहरी दृश्य]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

में भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार आदि में अन्तर है। अतएव क्या आवश्यकता है कि इस महान् देश के वासियों को एक ही भाषा और एक ही विचार के शिकञ्जे में बल-पूर्वक दबाया जाय ? हमारे विचार में तो यह अधिक उत्तम होगा कि देश का बटवारा भाषा के अनुसार किया जाय। एक भाषा के बोलने वाले एक ही प्रान्त के समझे जायँ। इन प्रान्तों में प्रान्तीय भाषा के द्वारा प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च, तीनों शिक्षायें दी जायँ। सभी विषय हमें प्रान्तीय भाषा में ही पढ़ाये जायँ। हाँ, साथ ही साथ अन्य प्रान्तों की भाषाओं को सिखाने का भी प्रबन्ध हर प्रान्त की पाठशालाओं में हो सकता है। जितना परिश्रम हम विदेशी भाषा सीखने में करते हैं उससे कम परिश्रम में हमें कई प्रान्तीय भाषाओं का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जायगा। और, सभी विषयों की शिक्षा अपनी मातृभाषा में मिलने के कारण हमारे ज्ञान की अपूर्व वृद्धि होगी। अन्यान्य प्रान्तों की भाषाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान हो जाने पर उन प्रान्त-वासियों से हमको सहानुभूति होगी। भिन्न भिन्न प्रान्तों में भ्रमण करने से हमें हर प्रकार का सुभीता होगा। इस तरह जब प्रत्येक भारतवासी अपनी प्रान्तीय भाषा के सिवा और भी कई भाषाओं को जानने लगेगा तब धीरे धीरे उन भाषाओं में एक भाषा ऐसी सर्वमान्य हो जायगी कि वह समस्त भारत से सम्बन्ध रखनेवाले कितने ही कार्य्यों के लिए प्रयोग की जा सकेगी। उस भाषा का प्रयोग भारतीय राजनैतिक और सामाजिक सम्मेलनों में, व्यवस्थापक सभाओं में और जहाँ कहीं भिन्न भिन्न प्रान्तीय भारतवासी उपस्थित होंगे वहाँ भी होगा। या यों कहिए कि तब वह भाषा भारत में उसी पद को प्राप्त करेगी जिसे फरासीसी भाषा ने योरप में प्राप्त किया है। सभी शिक्षित नर-नारी उसे अपनायेंगे और वह देश की "सभ्य भाषा" समझी जायगी। वह कौन सी भाषा होगी, आज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर बहुत सम्भव है, वह हिन्दी ही हो। क्योंकि न्यूनाधिक परिमाण में हिन्दी ही प्रायः समस्त भारत में बोली, लिखी और समझी जाती है। भारत की अन्य कोई भाषा इस विषय में उसका विरोध करके मुक़ाबला नहीं कर सकती। यदि उसमें उर्दू-शब्दों का बे-रोक-टोक व्यवहार जारी कर दिया जाय तो राजनैतिक कार्यों में वह बहुत सहायता दे सकती है। बङ्गाली भाषा भी इस पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है। क्योंकि फरासीसी भाषा की तरह वह बड़ी मधुर है। अतएव सम्भव है कि उसकी मधुरता से मुग्ध होकर लोग उसी को देश के शिक्षित जन समाज और भारत के समस्त राष्ट्रीय कार्य्यों की सभ्य-भाषा बनायें।

पर इन सब अनुमानों और तर्क-वितर्कों का यहाँ प्रयोजन नहीं। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी एक प्रान्तीय भाषा को बलात् हम सब प्रान्तों की भाषा नहीं बना सकते। सर्व-साधारण कार्यों के लिए और साधारण शिक्षा के लिए हर एक स्त्री-पुरुष को अपनी ही प्रान्तीय भाषा पर अवलम्बित रहना चाहिए। भावी "सभ्य-भाषा" केवल उन्हीं लोगों के काम की होगी जो समस्त भारत के राजनैतिक या सामाजिक कार्य्यों में सम्मिलित होंगे या उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रक्खेंगे। यहाँ पर यह भी कह देना उचित है कि, सम्भव है, हमारे देशवासी अँगरेज़ी भाषा ही को यह स्थान दें। इससे हमको विशेष विरोध नहीं। जो लोग व्यवस्थापक सभाओं में आते हैं, राजनैतिक या सामाजिक सम्मेलनों और आन्दोलनों में शरीक होते हैं, वे अँगरेज़ी भाषा अवश्य पढ़ें। उनके लिए तो उसका ज्ञान उचित और आवश्यक ही है। हम केवल यही चाहते हैं कि सर्वसाधारण पर विदेशी भाषा पढ़ने का बोझ न लादा जाय, सब प्रकार की शिक्षा इसी भाषा में न दी जाय और, जो इसको बिना जाने ही ज्ञान की वृद्धि और बुद्धि का विकास चाहते हैं उनके मार्ग

में परदेशी भाषा की अनभिज्ञता के कारण बाधा न डाली जाय।

अब रहा तीसरा कारण। सो यह तो प्रत्यक्ष ही है कि हमारी प्रान्तीय भाषायें इतनी प्रभावशालिनी और इतनी विस्तृत नहीं हैं जितनी वर्त्तमान योरोपीय भाषायें हैं। इस कारण हमारी भाषा का ज्ञान-भाण्डार—अर्थात् साहित्य उतना उन्नत नहीं जितना किसी भी विषय की शिक्षा के लिए आवश्यक है। भूगोल, इतिहास आदि चाहे जिसको ले लीजिए, अँगरेज़ी भाषा में पढ़ने के लिए हज़ारों पुस्तकें मौजूद हैं, जिनसे हम अपनी मनस्तृप्ति कर सकते हैं। पर हमारी प्रान्तीय भाषाओं की दशा ऐसी नहीं। इसका समाधान यों किया जा सकता है कि यदि प्रान्तीय भाषाओं में शिक्षा देने का प्रबन्ध हो जाय तो बात की बात में सहस्रों पुस्तकें तैयार हो जायँगी। यदि लोगों को प्रान्तीय भाषायें पढ़ने-लिखने का चसका लग जाय तो पुस्तकों के निर्माण में विलम्ब न होगा। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि हम देखें तो हमको ज्ञात हो जायगा कि जिस समय योरप में अँगरेज़ी, फ़रासीसी, इटालियन आदि भाषायें केवल हीन दशा में—ग्रामीण रूप में—थीं और सब शिक्षित समाज लैटिन भाषा के द्वारा ही कार्य्य-निर्वाह करता था उस समय कई महानुभावों ने अनुभव किया कि लैटिन से शिक्षा का विस्तार कदापि नहीं हो सकता। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि हम अपनी बोल-चाल की भाषाओं की ही उन्नति करें ताकि लैटिन की तरह उनका भी विस्तार और प्रचार हो। इस बात को आज मुश्किल से ५०० वर्ष हुए होंगे। पर इतने ही समय में अब योरप की भाषायें इतनी प्रभावशालिनी और उन्नत हो गई हैं कि लैटिन उनके बहुत पीछे रह गई है। इन ग्रामीण भाषाओं को सर्वाङ्ग-पुष्ट और सुन्दर करके आज योरप के देश ज्ञान-गिरि पर विहार कर रहे हैं। ५०० वर्ष पहले अँगरेज़ी और फ़रासीसी भाषाओं की दशा जैसी थी उससे तो कुछी अच्छी दशा हमारी प्रान्तीय भाषाओं की आज है। थोड़े ही परिश्रम और थोड़े ही यत्न से हम भाषाओं को सबल और दृढ़ बना सकते हैं। उनकी उन्नति के लिए ५०० वर्षों की आवश्यकता नहीं। क्योंकि जिस समय लैटिन भाषा के द्वारा शिक्षा न दी जाने लगी उस समय योरप में ज्ञान की मात्रा भी कम ही थी। हमें तो अपने प्राचीनतम अनुभव के साथ साथ अन्य लोगों के ५०० तथा इससे भी अधिक वर्षों के अनुभव का लाभ प्राप्त है। अतएव यह सञ्चित ज्ञान और अनुभव अपनी ही भाषा की उन्नति के लिए काम में लाना चाहिए। बस इसी की आवश्यकता है। नई नई पुस्तकें लिखने के सिवा हम योरोपीय ग्रन्थ-रत्नों का अनुवाद अपनी भाषाओं में शीघ्रता और प्रचुरता से करें, जिससे वहाँ का भी वैज्ञानिक और शास्त्रीय ज्ञान हमारे हाथ लग जाय।

कुछ लोगों को यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि यदि हमारी ही देश-भाषाओं के द्वारा हमें शिक्षा मिलने लगेगी तो पिछले ८०० वर्षों के भीतर हमारे हृदयों में जिन नये विचारों का सञ्चार हुआ है—जो जो समाज-सुधार हम करने का यत्न कर रहे हैं—वे सब हमको भूल जायँगे। फिर जाति-भेद, धर्म-भेद आदि के झमेले खड़े हो जायँगे और छुआ-छूती ठकुरसोहाती* की बखेड़ों से हमारी जनता व्याकुल हो जायगी। परन्तु प्रथम तो इसका भय ही कम है। ये सब अविद्या के चिह्न हैं। जब शिक्षित लोगों की संख्या अधिक होगी तब कदापि एक जन-समूह दूसरे जन-समूह को दुःख देना न चाहेगा। अच्छा बोलकर देखी

* यहाँ जाति विभाग पर आक्रमण नहीं है। केवल उसके "अपना शासित" का भेद बतलाना है। पर धर्म यह है कि शास्त्र के अनुसार लोग अपने धर्म का भी पालन करें। यहाँ तो केवल इस शङ्का का समाधान करने का यत्न किया गया है कि हिन्दी-भाषा में शिक्षा देने का यह परिणाम नहीं हो सकता कि हम फिर से लकीर के फ़क़ीर हो जायँगे और पुरानी बुराइयों को ही हम ग्रहण करेंगे—लेखक।

शिक्षा से यह कुफल होने की सम्भावना भी हो तो पश्चिमी शास्त्रों का देशी-भाषा द्वारा प्रचार होने पर इसका भय न रहेगा। फिर भी समाज-सेवा, स्वतन्त्रता, समान अधिकार, भ्रातृभाव इत्यादि जिन भिन्न उच्च विचारों और भावों का उदय आज हमारे हृदयों में हो गया है वे अब किसी तरह नहीं निकाले जा सकते। देशी-भाषाओं के द्वारा शिक्षा का प्रचार करने से लोगों के ज्ञान की वृद्धि बड़ी प्रचुरता से होगी। अतएव ऐसी शङ्का व्यर्थ सी है। अवनति नहीं, इससे हमारी उन्नति ही होगी। अब हमारे पैर आगे ही बढ़ते रहेंगे। वे पीछे नहीं हट सकते।

पूर्वोक्त विवेचन से सिद्ध है कि हमें अपनी ही भाषा द्वारा अधिकांश शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पर इस सम्बन्ध में एक बात कहना आवश्यक है। चाहे सब विषयों की शिक्षा हमको अपनी मातृ-भाषा में दी जाय, पर हमें उस भाषा को न भुलाना चाहिए जो देश की पुरातन भाषा है, जिसका साहित्य अमूल्य है और जिसको हमारे पूर्वजों ने अपनाया था। संस्कृत-भाषा के ज्ञान बिना हिन्दू-धर्म और देश की मर्यादा का गर्व हमें नहीं हो सकता। स्कूल में थोड़ी-बहुत संस्कृत अवश्य पढ़ाई जाय, जिससे उसका संस्कार हम में बना रहे और आगे चल कर यदि उसका अधिक ज्ञान हम प्राप्त करना चाहें तो सरलता से प्राप्त कर सकें। संस्कृत भाषा के सिवा थोड़ी सी फ़ारसी भाषा का भी ज्ञान अब आवश्यक है। हमारे मुसलमान भाइयों का प्राचीन साहित्य इसी भाषा में है। इस भाषा के ज्ञान से हम में और उनमें अधिक सहानुभूति बढ़ेगी। अब इस देश को न हिन्दू छोड़ सकते हैं और न मुसलमान। अतएव जिस उपाय से हम में परस्पर स्नेह बढ़े उसी को काम में लाना चाहिए, जिससे आपस के विरोध और वैमनस्य की जड़ ही कट जाय।

सारांश यह कि हमें छोटे से छोटे दरजे से लेकर बड़े से बड़े दरजे तक मातृ-भाषा में ही शिक्षा मिलनी चाहिए। सब विषय उसी में पढ़ाये जाने चाहिए। साथ ही साथ स्कूल में हम सबको—हिन्दू मुसलमानों को—कुछ संस्कृत और फ़ारसी भाषाओं का परिचय प्राप्त करना चाहिए। ये दोनों ही भाषायें हम पढ़ें। उनके द्वारा किसी विषय-विशेष के अध्ययन की आवश्यकता नहीं। इन भाषाओं के साहित्य में अभ्युप्रवेशमात्र होना चाहिए। इतना ही काफ़ी है। जैसे योरप की पाठशालाओं में सबको लैटिन और ग्रीक जानना अनिवार्य है वैसे ही और उतनी ही संस्कृत और फ़ारसी हमें जाननी चाहिए।

यदि हमसे यह पूछा जाय कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में तुम क्यों परिवर्तन करना चाहते हो तो हम यह कहेंगे कि हम देख रहे हैं कि अँगरेज़ी भाषा के द्वारा जिन्होंने शिक्षा ग्रहण की है उनकी एक नूतन और पृथक् जाति सी बन रही है। उनको देश के आचार-विचार से बहुत ही कम सहानुभूति है। उनका मस्तिष्क और हृदय परदेशी भाषा के रस से सिञ्चित होने के कारण, वे अँगरेज़ी भाषा में लिखी पुस्तकों ही का अवलोकन करते हैं और उन्हीं में मग्न रहते हैं। वे अँगरेज़ी कवियों के ही वाक्य उद्धृत करते हैं और सदा योरप के ही दर्शन की अभिलाषा रखते हैं। भारत के सर्व-साधारण जनों पर वे अपने भाव प्रकट करने का यत्न नहीं करते और, यदि करें भी तो, प्रकट ही नहीं कर सकते। अपने देश के धर्मों और विश्वासों पर उनकी श्रद्धा नहीं। सभा-समाजों में वे जो वक्तृतायें करते हैं उन्हें अँगरेज़ी भाषा से अपरिचित लोग समझ ही नहीं सकते। अतएव वे उनसे प्रायः दूर ही रहते हैं। वे उनसे किसी प्रकार की सहानुभूति तक नहीं दिखाते। जिन घरों में पुरुष अँगरेज़ी दाँ हैं और स्त्रियाँ नहीं हैं वहाँ प्रायः अशान्ति का दौरदौरा देख पड़ता है। यह स्वाभाविक ही है। भारत की प्रत्येक बिरादरी और समाज में उपद्रव हो रहे हैं। प्रायः सभी पुराने नियमों पर हरताल फेरी जा रही है। यह

सब प्रभाव अँगरेज़ी भाषा द्वारा शिक्षा दिये जाने का है। अतएव उचित है कि विचारवान् पुरुष इस तूफ़ान से देश को बचावें। यदि हमें इसकी अणु-मात्र भी आशा होती कि किसी समय अँगरेज़ी भाषा देश में प्रचुरता से बोली जा सकेगी तो इस प्रणाली के परिवर्तन के लिए हम कुछ न कहते। पर यह सम्भव नहीं। हम दुर्गम मार्ग को छोड़ कर सुगम मार्ग से चलें, जिससे हमारा और देश भर का कल्याण हो तथा सुख, शान्ति, ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि हो।

श्रीप्रकाश

युद्ध-पीड़ित योरप में अमेरिका-निवासियों के दया-दर्शक कार्य।

पिछले दो वर्षों से योरप के सभी मुख्य मुख्य राज्य युद्ध में लिप्त हैं। तब से अमेरिका वाले इन सभी देशों में ऐसे सत्कार्य कर रहे हैं जिनसे उनकी दयाशीलता का पूरा परिचय मिलता है। संयुक्त-राज्यों के प्रतिनिधि, जो योरप और एशिया की राजधानियों में रहते हैं, दोनों दलों के केन्द्रों में बिचवानी (Intermediaries) का काम करते हैं। जो सिपाही और सिविलियन शत्रु-देशों में नज़रबन्द हैं उनके लिए भोजन और रुपये पैसे इन्हीं के द्वारा भेजे जाते हैं। जिन कैम्पों में भारतीय और योरोपीय सिपाही क़ैद किये गये हैं उनकी ये जाँच करते हैं और इस बात का प्रयत्न भी करते हैं कि उन क़ैदी सिपाहियों के साथ यथासम्भव अच्छा बर्ताव किया जाय। जर्मनी ने बेलजियम और फ़्रांस के जिन भागों पर क़ब्ज़ा कर लिया है उनमें कोई एक करोड़ बेलजियन और फ़्रांसीसी रहते हैं। अमेरिका वाले उन्हें भोजन, कपड़े-लत्ते और तरह तरह की अन्य सहायतायें पहुँचाते हैं।

बेलजियमों के दुःखों को दूर करने के लिए अमेरिका-निवासी जो यह प्रयत्न कर रहे हैं वे बहुत ही प्रशंसनीय हैं। ब्रुसेल्स में मिस्टर ब्रेंड ह्विटलाक नाम के राज-प्रतिनिधि हैं। उन्होंने जर्मनों के आक्रमण रोकने का प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। तथापि उन्होंने अत्याचार और अन्याय का मनुष्योचित विरोध ज़ोरशोर से किया। उन्होंने बेलजियनों को अत्याचार और तहसनहस से बचाने और उनकी रक्षा करने में यथासम्भव कोई बात उठा न रक्खी। जैसे जैसे शत्रु एक के बाद दूसरा क़िला सर करते जाते थे वैसे ही वैसे मिस्टर ह्विटलाक साहब सोचते थे कि थोड़े ही समय बाद जो भूमि सुनसान और अप्रतिरोध्य थी उस पर अब घोर दुर्भिक्ष का आक्रमण होने में विलम्ब नहीं। बेलजियम केन्द्रों के विजय-शीलता—मार्टेन—ने उसकी आवश्यकता को और भी दृढ़ कर दिया। यह देख कर उन्होंने तत्काल ही अपने देश-भाइयों से प्रार्थना की कि आप शीघ्र ही खाद्य सामग्री भेज कर इन युद्ध-पीड़ितों की सहायता कीजिए।

उनकी अपील पर अमेरिका-वासियों ने यथोचित ध्यान दिया। फल यह हुआ कि अक्टोबर, १९१४ में, लन्दन में, एक कमीशन कर्मालय स्थापित हो गया। उसका उद्देश यह हुआ कि बेलजियम में आपद्-ग्रस्तों की उचित सहायता की जाय। इस कमीशन में पाँच अमेरिका-निवासी हैं। मिस्टर हरबर्ट क्लार्क हूवर (Herbert Clark Hoover) उसके सभापति हैं। सभी सदस्य बड़े ही उद्योगी और योग्य हैं। उन्होंने तुरन्त ही जान लिया कि बेलजियनों को किन किन तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है और उनको दूर करने के लिए किन किन उपायों को काम में लाने की आवश्यकता है। फिर उन्होंने संयुक्त-राज्यों और अन्य देशों से सहायता माँगी। अख़बारों के सम्पादकों ने युद्ध-पीड़ित बेलजियनों के लिए भोजन-वस्त्र-सम्बन्धिनी प्रार्थना पत्रों—विज्ञापन—को विशेष विशेष और मार्के के स्थान पर छापा। हज़ारों आदमियों ने, विशेष कर संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के निवासियों ने, बड़े उत्साह और बड़ी उदारता से सहायता की।

कमीशन को यह निश्चय करा देना पड़ा था कि परोपकार-रत व्यक्तियों की ओर से जो कुछ सामान मिलेगा उसका उपयोग बेलजियनों के भरण-पोषण में ही किया जायगा। उसमें से एक थैली भी जर्मनों के हाथ न लगने पावेगी। नहीं तो यह कब सम्भव था कि लोग कमीशन की प्रार्थना के अनुसार सहायता देने को तैयार हो जाते और उसी

डल नामक झील का प्रवेश-मार्ग (काश्मीर)।

झेलम नदी पर रस्सों का पुल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
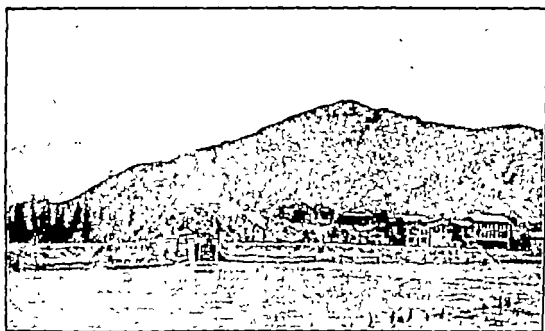
ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने जहाजों से अन्न-सामग्री को जाने देती ? जहाजों पर ही तो भोजन-सामग्री और बहुत सी अन्य चीज़ें शत्रु-देशों को जाने से रोकी जाती हैं जिससे शत्रु, आवश्यक सामग्री के अभाव के कारण, आप ही सन्धि करने पर बाध्य हो।

मिस्टर ब्रैंड ह्विटलाक और मूसेवल के स्पेनिश मिनिस्टर मारक्विस दि विलालोबर (Marquis de Villalobor) इन दोनों ने बेलजियम पर अधिकार जमाने वाले अधिकारियों पर प्रभाव डाल कर उनसे यह वचन ले लिया था कि अमेरिका वाले तथा अन्य लोग बेलजियनों की सहायता के लिए जो अन्न-सामग्री भेजेंगे उसे हम अपने काम में न लावेंगे। आक्रमणकारियों ने—अर्थात् बेलजियम के जर्मन अधिकारियों ने—अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह भी किया। क्योंकि वे न चाहते थे कि अमेरिका वालों से किसी तरह शत्रुता सम्पादन की जाय।

अमेरिका ने बेलजियम के जर्मन अधिकारियों से इस बात की भी प्रतिज्ञा करा लेनी चाही थी कि उस देश में जहाँ जहाँ जर्मनों का अधिकार है वहाँ वहाँ की फ़सल पर वे अपना दख़ल न करेंगे। यदि ऐसा न किया जाता तो जर्मन अधिकारियों का यह वचन कि हम बेलजियम वालों के लिए बाहर से आई हुई अन्न-सामग्री से कुछ वास्ता न रक्खेंगे, अधिक कारगर न होता। क्योंकि यदि वे बेलजियम वालों की खेती-बारी पर अपना दख़ल जमा लेते तो उन बेचारों को बाहर से आई हुई खाद्य वस्तुओं पर ही गुज़र करना पड़ता। ख़ुशी की बात हुई जो अमेरिका वालों को जर्मनों की ओर से अभीष्ट अभिवचन मिल गया और जर्मनों ने ईमानदारी से उसका पालन भी किया।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों तथा अन्यान्य देशों से खाद्य तथा वस्त्र-सामग्री बेलजियम में पहुँचाना आसान काम न था। इसका प्रबन्ध करने में कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। युद्ध छिड़ने के पहले जिन जहाज़ों पर माल एक देश से दूसरे देश को लाया जाया करता था, मित्र-राष्ट्र उनसे अब लड़ाकू जहाज़ों का काम लेते हैं। कितने ही ऐसे जहाज़ अब सैनिकों तथा युद्ध-सामग्रियों को अभीष्ट स्थानों पर पहुँचाने के काम में लाये जाते हैं। शत्रु-पक्ष के कितने ही जहाज़ या तो शत्रुओं के या तटस्थ राष्ट्रों के बन्दरों में क़ैद से हैं। अनेक जहाज़ों को मित्र-राष्ट्रों ने भी क़ैद कर रक्खा है। अन्य राष्ट्रों के असंख्य जहाज़ समुद्र-तल में डुबो दिये गये हैं। इन सब कारणों से व्यापारिक जहाज़ बहुत कम मिलते हैं। इसके सिवा युद्ध के दिनों में जल-मार्ग द्वारा माल इधर उधर ले जाने में कितनी ही विशेष आपत्तियाँ और संकट सिर पर सदा सवार रहते हैं। जहाँ तहाँ समुद्र-गर्भ सुरङ्गों से पाट से दिये गये हैं। जहाज़ का स्पर्श होने की देर है कि वह नष्ट हुआ समझिए। फिर पनडुब्बी नावों (सब-मेरीन) का भी भय है जो अपनी इच्छा के अनुसार, कभी पानी के भीतर और कभी ऊपर, दौड़ती रहती हैं। वे जहाज़ों का पता पाते ही टारपेडो अथवा स्पार नामक गोलों से उनके पुर्ज़े उड़ा देती हैं।

इन सब विघ्न-बाधाओं के रहते भी हूवर साहब और उनके सहकारियों ने माल-असबाब ले जाने वाली एक बड़ी भारी जहाज़ी मण्डली (शिपिंग सरविस) का प्रबन्ध कर लिया। उसके जहाज़ों के द्वारा ये संयुक्त-राज्य, कैनडा, आरजेन्टाइन, भारतवर्ष तथा अन्य देशों से अन्न और वस्त्र-सामग्री बेलजियम पहुँचाने लगे। सब मिला कर छोटे बड़े कोई ६० जहाज़ इस काम में लाये जाते हैं। ११ अक्टूबर १९१४ से १ नवम्बर १९१५ तक—बारह महीनों में—उन जहाज़ों के द्वारा कुछ ऊपर दो करोड़ मन भोजन तथा वस्त्र-सामग्री बेलजियम लाई गई। गेहूँ, आटा, मकई, चावल, आलू और मांस इत्यादि खाद्य वस्तुयें बेलजियनों के लिए पहुँचाई गईं। इसी तरह बालकों और बूढ़ों, स्त्रियों और पुरुषों, कमज़ोरों और मोटे ताज़ों—सब के काम आने लायक़ तरह तरह की कोई ४० लाख पहनने-ओढ़ने की चीज़ें भी वहाँ भेजी गईं।

कहते खेद होता है कि माल असबाब ले कर बेलजियम जाने वाले कम से कम १० जहाज़ १९१४–१५ ईसवी में नष्ट हो गये। उनमें से कुछ तो डूब गये और कुछ गतिहीन अर्थात् निकम्मे हो गये। इससे प्राण-हानि भी बहुत हुई और कितनी ही भिन्न भिन्न सामग्री भी सागर-गर्भ में विलीन हो गई। लुसीटानिया नाम के एक जहाज़ को जर्मन पनडुब्बी नाव ने टारपेडो के आघात से जल-मग्न कर दिया। बेलजियनों की सहायता पहुँचाने के सत्कार्य्य में लगे हुए कितने ही अमेरिका-निवासी उस पर सवार थे। उनमें से कुछ समुद्र-गर्भ में समाधिस्थ हो गये! अफ़सोस!

हालैंड में रादरडम नाम का एक शहर है। बेलजियमवालों के लिए बाहर से भेजी गई सामग्री पहले आकर यहीं उतारी जाती है। यहाँ वह नहर-गामिनी नावों पर लादी जाती है। ऐसी १०० से भी अधिक नावों का ख़र्च कमीशन उठाता है। इन्हीं नावों के द्वारा क़रीब क़रीब सभी आसपास के प्रदेशों को सामान पहुँचाया जाता है। इसका कारण है। एक तो रेलवे के अतिरिक्त नदियों द्वारा माल असबाब ले जाने में ख़र्च कम पड़ता है, दूसरे सब रेलवे लाइनें जर्मनी ने युद्ध-सम्बन्धी कार्य्यों के लिए रोक रक्खी हैं। अर्थात् युद्ध के लिए आवश्यक कामों के अतिरिक्त उनसे दूसरा काम नहीं लिया जाता।

कमीशन की ओर से बेलजियम के सभी भागों में कोठियाँ क़ायम कर दी गई हैं। उनकी संख्या १२६ से कम नहीं। बाहर से आई हुई सब सामग्री इन्हीं में इकट्ठी कर दी जाती है। बेलजियम की राजधानी ब्रुसेल्स में एक प्रधान कोठी है, जिसमें कपड़े-लत्ते तथा अन्य वस्तुयें रक्खी जाती हैं। जहाँ जो चीज़ दरकार होती है वहाँ इन्हीं कोठियों से भेजी जाती है।

यह कमीशन बेलजियमवालों की सहायता के लिए स्थापित हुआ है। वह नहीं चाहता कि दाम देकर चीज़ लेने का सामर्थ्य रखने वाले भी मुफ़्त में माल पाकर मज़े उड़ावें—अर्थात् उनकी, एक प्रकार, नैतिक अवनति हो। इस कारण भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक सामग्री सिर्फ़ मुहताजों ही को मुफ़्त दी जाती है। समर्थ लोगों को थोड़ा सा भी नाजायज़ फ़ायदा उठाने का मौक़ा नहीं दिया जाता। उच्च और मध्यम श्रेणी के लोगों को सामग्री ख़रीद कर ही लेनी पड़ती है। कम आमदनी वालों को वही चीज़ें कम या नाम मात्र की क़ीमत देने से और अनाथों तथा निराश्रितों को मुफ़्त दी जाती हैं।

कमीशन के दो विभाग हैं। एक का नाम है—सामग्री-व्यवस्थापक विभाग और दूसरे का सहायक विभाग। पहले विभाग का काम है बाहर से आई हुई सामग्री को बेचना और मुनाफ़े को मुहताजों की सहायता में लगाना। दूसरे को यह काम सौंपा गया है कि वह अपनी सारी शक्ति सभी लोगों के अभावों की पूर्ति करने में लगावे।

कमीशन ने एक अच्छे भोजनालय की भी व्यवस्था की है। ग़रीबों को उसमें दो दो आने में अच्छा भोजन मिलता है। योरप में शायद ही कहीं इतना सस्ता भोजन मिलता हो। यहाँ तो मामूली भोजन के लिए भी छः आने और कभी कभी इससे भी अधिक लिये जाते हैं। जहाँ बस्ती घनी है वहाँ शराब की दुकानें भी खोली गई हैं। कम आमदनी वाले लोग वहाँ दो पैसे में भी अपनी तृप्ति कर सकते हैं। जो ग़रीब हैं उन्हें रोटी और टिकट मुफ़्त दिया जाता है। पर वह उन्हें उतना ही मिलता है जितना उनकी तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक है—अर्थात् जिससे वे तन्दुरुस्त और सशक्त बना रह सकता है। ऐसे कितने ही गाँव यहाँ हैं जहाँ रोटी और शोरबा बाँटा जाता है।

इस कमीशन के सहायक विभाग ने बेलजियम के प्रत्येक भाग में एक एक समिति खोल रक्खी है। समिति जिसे पूर्वोक्त रोटी इत्यादि दी जाने के लिए अख़्तियार देती है वही रोटीवालों और भोजनालयों से ये चीज़ें पा सकता है, और लोग नहीं। जिस जगह जो समिति है, उसके सदस्य उसी गाँव के धनी और रईस आदमी हैं, जो प्रायः सब जातियों और समाजों के प्रतिनिधि हैं। वे अपने आसपास के स्त्री-पुरुषों के हाल-चाल से अच्छी वाक़िफ़ हैं और बता सकते हैं कि कौन मनुष्य ग़रीब या निराश्रय है और कौन आसूदा है। इससे इस बात का पता सही सही लग जाता है कि किसे भोजन इत्यादि सामग्री मुफ़्त मिलनी चाहिए और किसे कम या पूरी क़ीमत पर। जिस पुरुष या स्त्री को समिति की ओर से मुफ़्त या नाम मात्र की क़ीमत पर भोजन देने का अख़्तियार दिया जाता है उससे यह कह दिया जाता है कि तुम्हें जो भोजन-सामग्री मिले उसे किसी दूसरे के हाथ हरगिज़ न बेचना। इसका कारण है। जर्मन लोग बेलजियम वालों को बहका कर या लालच देकर कहीं उनसे वह सामग्री न ले लें जो उन्हीं के लिए आवश्यक समझ कर दी गई है, इसी भय से पूर्वोक्त प्रबन्ध किया गया है।

बच्चों के लिए उचित खान-पान इत्यादि का प्रबन्ध विशेष रूप से किया गया है। बेलजियम के शहरों और क़स्बों में मिला कर कोई १६० से भी अधिक दुकानें ऐसी खोल दी गई हैं जहाँ बच्चों को खाना दिया जाता है। बच्चों के खान-पान की निगरानी कर दी गई है कि उनके बढ़ने को रोग जाता रहे, जिससे सभी बच्चे तन्दुरुस्त और मोटे,

इस बात की जाँच कर लिया करें कि जो भोजन बच्चों को दिया जाता है वह काफ़ी और स्वास्थ्यकर है या नहीं। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी पूरा पूरा ध्यान दिया जाता है कि नवजात बच्चों और उनकी माताओं के लिए अच्छे और काफ़ी स्वास्थ्यप्रद का प्रबन्ध है या नहीं। संयुक्त-राज्यों के लोग, विशेष कर अमेरिका की स्त्रियाँ, दिल से चाहती हैं कि बेलजियम में सन्तानोत्पत्ति का क्रम जारी रहे। उनकी इस चिन्ताशीलता पर विचार करने से हृदय गद्गद हो जाता है।

बेलजियम की दशा बहुत ही ख़राब हो गई है। वह बहुत ही गिर गया है। आज कल बेलजियम की जितनी आबादी है उसका चौथाई हिस्सा निराश्रित और बुभुक्षित है। अर्थात् इनके लोगों को सब प्रकार की आवश्यक वस्तुयें मुफ़्त दी जाती हैं। ये लोग बिना सहायता के अपना पेट भर ही नहीं पाल सकते। इस तरह कोई १२ लाख मनुष्यों को भूख की ज्वाला से बचाने का भार कमीशन ही पर है। इस जगह एक बात बता देनी आवश्यक है। यदि कमीशन बाहर से माल-असबाब न मँगाता तो बाक़ी ६२ लाख हैसियतदार बेलजियमों को भी खाने-पीने और कपड़े-लत्ते के लिए तरसना पड़ता। क्योंकि वैसे भी बेलजियम के निवासियों की ज़रूरतें वहीं की पैदावार से पूरी नहीं पड़तीं। फिर इन युद्ध के दिनों का तो कहना ही क्या? इन दिनों तो बाहर से आने वाली सामग्री ही उनके जीवन का आधार है।

पर कमीशन बेलजियम के लोगों को भोजन, कपड़े-लत्ते और आश्रय देकर ही चुप नहीं रह गया। उसने और भी कितने ही प्रकार से उनकी सहायता की है। वहाँ की म्युनिसिपैलिटियों और उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखने वाले कामों को भी उसने यथेष्ट सहायता दी है, जिससे उनका काम अच्छी तरह चलता रहे। बेलजियमों का बनाया हुआ माल बाहर भेजने और बेचने का भी प्रबन्ध उसने किया है। बेलजियम-निवासियों का जो कुछ लेना बाहर वालों से था उसे भी उसने वसूल करने की व्यवस्था की है। कितने ही बेलजियमों ने अपनी मातृ-भूमि को छोड़ कर ब्रिटेन, फ़्रांस, संयुक्त-राज्य (अमेरिका) और दूसरे देशों में आश्रय लिया है। उनमें से कितने ही अब अच्छी दशा में हैं—खाने-पीने से सुखी हैं। इसी कमीशन के द्वारा उन्होंने अपने इष्ट-मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की यथाशक्ति सहायता भी की है। उनकी ओर से दी गई रक़म का जोड़ कोई १२ लाख रुपये मासिक है। यह रक़म कमीशन को रुपयों और गिन्नियों के रूप में मिली। पर कमीशन ने उसके बदले उतने के बेलजियम नोट लोगों को दिये। इस तरह कमीशन को जो रुपये और गिन्नियाँ मिलीं उनसे उसका बड़ा काम निकला। जिस देश में बेलजियम के सिक्के का चलन नहीं वहाँ अन्न-सामग्री ख़रीदने में इससे बड़ा सुभीता हुआ है। जब कोई माल, सामग्रीव्यवस्थापक विभाग के द्वारा बेलजियमों को बेचा जाता है तब क़ीमत में उनसे "नोट" लिये जाते हैं। इससे बेलजियम वालों को भी सुभीता होता है। इसमें एक और भी बात है। बेलजियम नोटों का चलन आज कल एक तरह बन्द ही सा है। अतएव वे अब किसी काम के नहीं। सो उनका भी उपयोग कमीशन इस तरकीब से कर रहा है।

एक-दो या दस-बीस अमेरिका-वासी इस काम में लगे हों, सो बात नहीं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उसका ठीक ठीक हिसाब बताना मानो असम्भव है। तथापि मैं कुछ प्रधान लोगों के नाम सुनाता हूँ जिन्होंने बेलजियमों की सहायता का भार विशेष रूप से उठाया है। न्यूयार्क से "दि लिटरेरी डायजेस्ट" (The Literary Digest) नाम का एक अख़बार निकलता है। उसके पाठकों ने कोई एक जहाज़ (Ship-load) अन्न बेलजियम भिजवाया। उस पत्र के सम्पादक हैं—मिस्टर विलियम एस० वुड्स (Mr. William S. Woods) लिटरेरी डायजेस्ट के कोई १२ लाख पाठक हैं। पाठकों में स्त्रियाँ भी हैं और पुरुष भी। सम्पादक महाशय ने दुःखी बेलजियमों को भूखों मरने से बचाने के लिए अपील पर अपील की। उस देश में मेबल जी० लिंबी नाम की एक नामी महिला हैं। वे अमेरिकन स्त्री-सत्ताक-राज्य (American Women's Republic) की अध्यक्ष हैं। स्त्रियों की उन्नति चाहने वाली जितनी सभा-समितियाँ संसार में हैं उन सब में यह, मुझे विश्वास है, सबसे बड़ी है। उस सभा के सभासदों से अनन्त वस्त्र-सामग्री आपने एकत्र की। सॅट लुई नाम के एक सज्जन ने इस काम में पूर्वोक्त महाशया का पूरा पूरा साथ दिया। ये सब कपड़े-लत्ते हालैंड की गवर्नमेंट के पास

बेलजियम और फ्रांसीसी, दोनों को मिला कर, कोई एक करोड़ लोगों का पालन-पोषण हूवर साहब तथा उनके सहकारी कर रहे हैं। इनमें सभी श्रेणी और सभी अवस्था के लोग हैं। ऐसे कठिन समय में इतने लोगों के भोजन, वस्त्र और वस्त्राच्छादन का प्रबन्ध करना दिल्लगी नहीं। अनेकों ही कठिनाइयों के उपस्थित रहने पर भी इतना बड़ा काम इतने दिनों तक सुचारु रूप से चलाना कमीशन वालों की कार्यतत्परता और प्रबन्ध-योग्यता का ज्वलन्त चिह्न है। इस काम का भार उठाने में इन लोगों का कुछ स्वार्थ है, सो बात नहीं। स्वार्थ की बात तो दूर रही, यह काम तो वे बिना एक कौड़ी वेतन लिये कर रहे हैं। इसे करने में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ता है और उनका कीमती समय भी बहुत खर्च होता है। पर उसकी भी परवा वे नहीं करते। इस काम को हाथ में लेने पर उन्हें निज के कितने ही आवश्यक और महत्व के कामों पर दुर्लक्ष करना पड़ा है। अतएव इन उदार-हृदय और स्वार्थत्यागी सज्जनों की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

उदारचरित अमरीकनों ने बेलजियम और फ्रेंच लोगों की सहायता केवल अन्नदान-द्वारा करने ही में अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर दी। वे "रेड क्रास" (Red Cross) का भी बहुत काम करते हैं। अर्थात् घायलों की सेवा शुश्रूषा करने में भी उन्होंने खूब मदद दी है। लड़ाई छिड़ने के थोड़े ही महीने बाद अमेरिका की एक रेड-क्रास-समिति ने इँगलैंड में पदार्पण किया। उसमें कितने ही डाक्टर, परिचारिकायें और मोटर-चालक थे। आते ही उसने अपना काम शुरू कर दिया। उसके बाद और भी ऐसी ही अनेक सभा-समितियों ने यहाँ आ आ कर अपने अपने काम जारी किये।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों से सर्जनों और परिचारिकाओं के आने के पहले ही अमेरिका वालों ने इँगलैंड में एक सैनिक अस्पताल खोल दिया था। श्रीयुत पेरिस सिंगर नाम के एक सज्जन का एक बहुत अच्छा मकान लन्दन के पास ही एक जगह है। आपने उसे अस्पताल के लिए दे डाला। मार्चनेस और रोजमनी की डचेज़ तथा अन्य कितनी ही प्रतिष्ठित लिंडन में रहने वाली अमरीकन महिलाओं ने इस काम के लिए बड़े बड़े चन्दे दिये। अनेकों ने तो अपने ही हाथों पट्टियाँ बाँधने और परिचारिकाओं का काम तक करना स्वीकार किया।

सर आर्थर पियरसन (Sir Arthur Pearson) नामी सम्पादक और समाचारपत्र-स्वामी हैं। आपने अन्धे सैनिकों के आराम के लिए एक संस्था खोली है। एक रोज़ मैं उसे देखने गया। मैंने देखा कि अमेरिका के संयुक्त-राज्यों के भूतपूर्व प्रेसिडेन्ट क्लीवलैंड (Cleveland) साहब की लड़की, कुमारी एस्थर क्लीवलैंड (Miss Esther Cleveland) परिचारिका की पोशाक पहने मामूली परिचारिकाओं की तरह अपने काम पर जा रही हैं। यह देख कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

फ्रांस में रहने वाले अमेरिका-निवासियों ने भी खूब ही उत्साह के साथ घायलों की सेवा-शुश्रूषा का काम जारी किया है। उन्होंने फ्रांस की राजधानी पेरिस में एक बड़ा भारी फ़ौजी अस्पताल खोल रक्खा है। चीर-फाड़ के कुछ औज़ार तथा अन्य आवश्यक नई नई यन्त्र-सामग्री भी उन्होंने पर्याप्त संग्रह की है। अस्पताल में काम आने वाली सभी चीज़ें उसमें हैं। संग्राम-स्थल से घायलों को मोटर द्वारा अस्पताल पहुँचाने की तरकीब इसी संस्था ने निकाली है। कितने ही प्रसिद्ध अमरीकन खुद फ्रेंच सिपाहियों की सेवा करते हैं। इनमें कुमारी एडिथ ह्वार्टन (Edith Wharton) का काम सबसे अधिक प्रशंसा-योग्य है। आप अमरीका की प्रख्यात उपन्यास-लेखिका हैं। आपकी सेवा से मुग्ध होकर फ्रांस की गवर्नमेंट ने हाल ही में आपको एक बहुमूल्य पदक दिया है।

युद्ध की बदौलत सर्विया में मरी का दौरा हुआ। उसे दूर करने के लिए अमेरिका के डाक्टरों और परिचारिकाओं ने बहुत अधिक परिश्रम किया। फल यह हुआ कि बीमारों की तो बहुत कुछ प्राण-रक्षा हुई, पर बेचारे कितने ही चिकित्सकों को विषम ज्वर का शिकार बन जाना पड़ा।

अमेरिका के विश्वविद्यालयों के पदवीधर भी इस काम में सहायता दे रहे हैं। वे बेलजियनों और फ्रेंचों के कष्ट-निवारण के कार्य को भी होम कर कर रहे हैं। वे भिन्न भिन्न देशों के घायलों और बीमारों की देख-भाल करते हैं। अमेरिका के मिस्टर रिचर्ड मार्टेन (Richard Mo-

श्रीनगर (काश्मीर)।

महाराजा काश्मीर का महल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

(क) बड़ी बहुओं की दशा, है सचमुच ही देखिए।
काम न कुछ देना यद्यपि, इन्हें सुधा से सींचिए॥
(ख) लेकर बन्धन हुई मोलकी बिन्दा काँ—काँ—काँ करता।
रहा फड़कता सिर-पर दोनों, और रज में सिर धुनता॥
(ग) दूसरे कौवे ने भी माँगा, कुछ हिस्सा उस डाली पर।
जो बैठ था कहीं किनारे, नज़र लगाये थाली पर॥

(३) दोनों तुकान्तों में बिना किसी दूसरे अक्षर या अक्षरों की आवृत्ति के अथवा श्लेषार्थ के, एक ही शब्द (या शब्दों) का प्रयोग—

पढ़िये लेकर उत्तम पुस्तक, देखो तो क्या उसमें है।
जीवन का आनन्द उठाओ, मन चाहा फल उसमें है॥

४—तुकान्त के अक्षरों में उच्चारण का अन्तर—
(क) मुझे पिता की गोदी में से, बचाने के अभिलाषी।
आने लगे अनेक युवक जन, दूर दूर तक के वासी॥
(ख) मैं तन-मन के मन-माने, एक आपही स्वामी हूँ।
मेरे लिए उचित जो जानें, उसमें मेरी हामी है॥
(ग) रोकर बोली उसी चकोरी—हे हे पूर्णचन्द्र राकेश।
विरहजन-वासी सुन मुझको, देता है सन्देह विशेष॥

(५) मध्यम और निकृष्ट तुकान्तों का मेल—
इसी तरह तारीफ़ झूठ सुन फूले नहीं समाते जो।
रसीला अभिमानी होते, अपनी रक़म गँवाते सो॥

इस लेख में जो नियम और उदाहरण दिये गये हैं वे भिन्न-तुकान्त कविता (अथवा पद्य) का विरोध नहीं करते, किन्तु केवल इस बात को सूचित करते हैं कि तुकान्त का पालन करने में किन किन नियमों का अनुसरण करना आवश्यक है। जो लोग अभिन्नाक्षर-छन्द लिखते हैं उन्हें इस लेख पर दृष्टिपात ही करने की आवश्यकता नहीं है, पर जो लोग तुकान्त की आड़ में बे-तुकी हाँकते हैं उन्हें इस लेख के नियमों और उदाहरणों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता पर कुछ ध्यान अवश्य देना चाहिए।

कामताप्रसाद गुरु

विचार-विमर्श।

क सज्जन ने अँगरेज़ी की एक पुस्तक हमारे देखने के लिए भेजने की कृपा की है। पुस्तक का नाम है—The Indian Literary Year Book and Authors' Who is Who. इस पुस्तक का सम्बन्ध १९१९ ईसवी से है। भारतीय लेखकों, समाचारपत्रों, सामयिक पुस्तकों, प्रेसों और साहित्यसम्बन्धिनी सभाओं आदि का उल्लेख इसमें है। अन्त में प्रेस, समाचारपत्र और कापी-राइट से सम्बन्ध रखने वाले ऐक्टों और नियमों आदि की नक़लें भी हैं। यह वार्षिक पुस्तक है। पर हमें इसे देखने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ। इस वर्ष के ६ महीने बीत गये। मालूम नहीं १९१९ की "Year Book" निकली है या नहीं।

इस पुस्तक का सम्पादन प्रोफ़ेसर नलिनविहारी मित्र, एम॰ ए॰, नाम के किसी महाशय ने किया है और प्रकाशन इलाहाबाद के पाणिनि-आफ़िस ने। पुस्तक अँगरेज़ी में है। आकार मध्यवर्ती है। पृष्ठ-संख्या २६+१२८ है। पर मूल्य २ रुपये है।

इसके आरम्भ में सम्पादक महाशय का लिखा हुआ एक उपक्रम है। उसके एक दो नहीं, सात सफ़ों में बँगला भाषा की महत्ता और उन्नति आदि का वर्णन है। उसमें एक जगह लिखा है—"It is an admitted fact that the rank of a classical language can now be justly claimed for Bengali." यह सब ठीक। बँगला ने बड़ी उन्नति की है। अनेक विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें उसमें हैं। उसके एक लेखक को "नोबल प्राइज़" भी मिला है। तथापि बँगला की जो प्रशंसा इसमें की गई है उसमें यदि किसी को कुछ अत्युक्ति मालूम हो तो भी प्रबंधक महाशय क्षमा के पात्र हैं। क्योंकि वे बङ्गाली हैं और बङ्गाली यदि अपनी भाषा, बँगला, की प्रशंसा उचित से अधिक कर जायँ तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अपनी चीज़ सभी को अच्छी लगती है।

आश्चर्य हमें एक और बात को देख कर हुआ। यह पुस्तक "Indian Literary Year Book" है। कुछ—Bengali Literary Year Book—तो है नहीं। इस

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मैडम रिकेमियर।

के हो गए होते हैं। इस पर बात की बात में चाय तैयार हो जाती है। काश्मीरी अतिथि-सत्कार करना ख़ूब जानते हैं। एक बार उनसे जान-पहचान हो जाने पर वे दावत दिया करते हैं। दावत के पीछे वे तबाह क्यों न हो जायँ, पर दावत से कभी अदावत न करेंगे—दावत ज़रूर देंगे। काश्मीरी हिन्दू स्वभावतः बड़े मिलनसार होते हैं। आज तक मुझे ऐसा कोई पण्डित न मिला जिसने मेरी ख़ातिर तवाज़ो न की हो।

विदेशियों के साथ वे बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं। पारस्परिक ईर्ष्या इनमें बहुत बढ़ी चढ़ी है। यही बात मुझे बहुत खटकी। शिक्षित काश्मीरी भी इसकी शिकायत करते हैं। हाँ, यह बात सही है कि यह दोष प्रायः सभी जातियों में पाया जाता है, पर काश्मीरियों में इसकी मात्रा बहुत बढ़ गई है। प्रायः सभी काश्मीरियों ने, जिनसे मैंने यह प्रश्न किया, एक ही जवाब दिया। वह यह कि हम लोगों में आपस की जलन बहुत है। एक दूसरे की बढ़ती नहीं देख सकता। एक बार मैंने दो चार घोड़े वालों को सवारी के लिए अपने अपने घोड़े लाने को कहा। तुरन्त चार घोड़े वाले घोड़े लाकर हाज़िर हो गये। मुझे दो तीन घण्टे के लिए किराया तै करना था। पर इतने ही के लिए चारों में ख़ासी झगड़ा-बढ़ी देखने का मौक़ा मिल गया। पहले ने १) कहा; दूसरे ने ॥); तीसरे ने ॥) और चौथे ने ।≈) अब चौथे ने ।≈) तक कह डाला पर चारों में लड़ाई और गाली गलौज शुरू हुआ। अन्त में पहले ने कहा—"बाबू, और मैं भी आपको ।≈) में ले दूँगा"। पर मैं ख़ामोश रहा, जल्दी न की। इतने में दूसरे और तीसरे घोड़े वाले ।) पर ही राज़ी हो गये और चौथा तीन आने पर। अब पहले ने देखा कि बाबू मेरा घोड़ा न लेंगे तब वह भी ।) पर राज़ी हो गया। अन्त में मैंने किसी का घोड़ा न लेने का निश्चय किया, क्योंकि मेरे चित्त में यह सन्देह ही रहा कि ।) भी वाजिब है या नहीं। इस घटना से काश्मीरियों की झगड़ा-बढ़ी या ईर्ष्या का अच्छा पता लगता है।

एक तो ग़रीब होने और सदियों से तकलीफ़ भोगने के कारण वे ऐसा असन्तुष्ट हो गये हैं। दूसरे, इनमें झूठ बोलने की भी बड़ी आदत है। जिस चीज़ का दाम ।) है उसका दाम पहले वे २) ज़रूर कहते हैं। परिणाम यह होता है कि होशियार से होशियार आदमी इनके जाल में फँस जाता है। इस प्रकार दो एक सौदों से ही इन्हें काफ़ी बचत हो जाती है। पर मुझे इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि दरिद्रता और अपरिमित दुःख के कारण ही इनमें ये दोष आ गये हैं। जो शिक्षित हैं अथवा धन-सम्पन्न हैं उनमें यह बात नहीं है। एक और कारण यह भी है कि मौसिम में ही इनकी चीज़ें बिकती हैं। जाड़ों में ये हाथ पर हाथ रक्खे रहने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते।

काश्मीरियों का पहनावा प्रायः एक सा और सादा होता है। मर्दों के सिर पर एक मुरेठो और शरीर पर एक लम्बा कुर्ता रहता है, जो घुटनों के नीचे तक लटकता रहता है। पुराने ढँग के काश्मीरी अपने ढँग की अर्थात् काश्मीरी पगड़ी बाँधते हैं। पर शिक्षित तथा पञ्जाबियों के साथ रहने वाले काश्मीरी पञ्जाबी तर्ज़ की पगड़ी बाँधते हैं। स्त्रियों की पोशाक भी ऐसी ही होती है। भेद केवल इतना होता है कि उनके सिर पर पगड़ी के बदले सफ़ेद रङ्ग की एक गोल कँगूरी-नुमा टोपी होती है, जिस पर उनकी चाँदोल चादर पड़ी रहती है। चादर कमर तक लटका करती है। कभी कभी बड़े बड़े रूमालों से भी चादरों का काम निकाल लिया जाता है। ख़ास अवसरों तथा मेलों आदि में बड़े घरों की स्त्रियाँ चुनियापोत और कामदार रेशम की चादरें भी टोपी पर डाल लेती हैं। मुसलमान-पुरुषों और स्त्रियों की पोशाक भी ऐसी ही होती है। भेद इतना ही होता है कि हिन्दू-पुरुषों के फिरन की आस्तीनें चुस्त और मुसलमानों की ढीली ढाली पञ्जाबी ढँग की होती हैं। हिन्दू-स्त्रियाँ अपनी कमर में एक दुपट्टा भी बाँधती हैं। इससे उनकी शोभा और भी बढ़ जाती है। मुसलमान-स्त्रियों के शरीर पर यह दुपट्टा नहीं रहता। साधारणतः मुसलमान-स्त्रियों की टोपी लाल रङ्ग की होती है और हिन्दू-स्त्रियों की सफ़ेद रङ्ग की। हिन्दू-स्त्रियाँ कान में लटकता हुआ एक गहना पहनती हैं। काश्मीरी बोली में उसे ढुर कहते हैं। मुसलमान-स्त्रियों को ढुर पहनते मैंने नहीं देखा। उसके बदले वे एक एक कान में दस दस पन्द्रह पन्द्रह बालियाँ, एक बड़े बाले में पिरो कर, पहनती हैं। साधारणतः हिन्दू-स्त्रियाँ फिरन के नीचे और कोई कपड़ा नहीं पहनतीं। हाँ, पुरुष एक पैजामा सा कपड़ा अवश्य रखते हैं। मुसलमान स्त्रियाँ भी ऐसा ही करती हैं, परन्तु कभी कभी वे नीचे सुथना भी पहन लेती हैं।

महाराजा होलकर के नये दीवान
राव-बहादुर मेजर रामप्रसाद दुबे, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी० ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

फिर क्यों सौन्दर्यनिधान भी कृपा एक ही पर करे ?
क्यों होकर सत्य-स्वरूप न वह सब की तृष्णा को हरे ?

प्रार्थना

भगवन् ! क्या दूँ ? करूँ तुम्हारा मैं क्या आदर ?
है क्या मेरे पास धरूँ जो सम्मुख सादर ?
पतित, पाप में लिप्त, मूर्ख हूँ, शक्तिहीन हूँ।
तुम तो दीनानाथ, और मैं महादीन हूँ ॥
पामर चकोर क्या चन्द्र को दे सकता है कुछ कभी ?
या दिनकर का उपकार कुछ कर सकता है कमल भी ?

प्यार

प्यार ! कौन सी वस्तु प्यार है ? मुझे बता दो।
किसको करता कौन प्यार है यही दिखा दो।
पृथ्वीतल पर भटक भटक कर समय गँवाया।
हाँ हा मैंने बहुत प्यार का पता न पाया।
खो खो करके अपना हृदय पाया मैंने बहुत दुख।
पर यह भी तो ज्ञात नहीं होता है क्या प्यार-सुख ॥

रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए०

स्वामीजी।

(१)

हमारे छोटे से जीवन में भी कितने ही व्यापार घटे हैं, कितने ही हर्ष-शोक के समय आये हैं; पर उस दिन की घटना, यद्यपि उसे आज पूरे बीस वर्ष गुज़र गये, जैसी स्पष्ट याद है वैसी और कोई बात याद नहीं। जब हमारी उम्र चार साल की थी तब की भी हमें एक घटना याद है। उस समय ऊपर चढ़ते समय ज़ीने से हम लुढ़क पड़े थे; चोट भी लगी थी। यह बात हमें आज भी वैसी साफ़ याद है—इन्ट्रेन्स की परीक्षा में इतिहास के पर्चे में क्या पूछा गया था—इस समय बिलकुल याद नहीं। मस्तिष्क-विद्याविशारद ही इन गुत्थियों को खोल सकते हैं।

जून का महीना था। कालेज की छुट्टियाँ थीं। परीक्षा-फल प्रकट हो चुका था। पास होने की ख़ुशी ताज़ी थी। मित्र भी सब पास हुए थे। इस लिए हरद्वार जाने का प्रस्ताव पेश होते ही "मारशल्ला क़ानून" की तरह सर्वसम्मति से "पास" हो गया। उसी दिन रात को पञ्जाब-मेल में सवार होकर मित्रमण्डली दूसरे दिन तड़के ही हरद्वार में दाख़िल हो गई। गङ्गा-स्नान और गङ्गा-तट पर भ्रमण का आनन्द अब लूटा जाने लगा। सच तो यह है कि हम लोग उन दिनों विनोद की गङ्गा में बहे जा रहे थे। किसी को कुछ फ़िक्र न थी—जुलाई की १७ तारीख़ बेशक दूर खड़ी हुई अपना सूखा सा मुँह दिखा कर बन्धन के दिनों की कभी कभी याद दिला देती थी। उसी का खटका था। उस दिन कालेज खुलने को था। इसी लिए समय-विभाग करते समय उस तारीख़ का कभी कभी ज़िक्र आ जाता था। बाक़ी कोई फ़िक्र न थी। मौज ही मौज थी।

हम सब लोग ख़ूब तड़के उठते और हृषीकेश-रोड पर तीन चार मील घूम कर "हर की पैड़ी" पर स्नान किया करते थे। स्नानोपरान्त मिल जुल कर भोजन बनाते। फिर ख़ाली वक़्त का साथी कोई खेल खेलते। शाम को गङ्गा-तट पर घूम कर वहाँ का अपूर्व दृश्य देख मन और आँखों को युगपत् तृप्त करते थे। पर हमारा मित्र नवीनचन्द्र हमारी दिनचर्या में दोपहर तक का शरीक था। वह साधुओं का बड़ा भक्त था। एम० ए० पास करके भी साधुओं को भण्ड समझने की बुद्धि उसमें उत्पन्न न हुई थी। हम लोग उसे ख़ूब छेड़ा करते थे। पर वह हमारे कटाक्षों की रत्ती भर पर्वा न करता था। हम जब कभी किसी साधु की निन्दा करते और उसको नशेबाज़ या कपटी साबित करने की चेष्टा करते तभी वह कहता—उन्हें साधु कहना भूल है। तलाश करो, साधु-सङ्ग पाओगे। इस तरह सर्वव्यापक युवा के द्वारा तो तुम काँटों के साथ

झूसी से भी दूर रहोगे। उसकी बात में कुछ सार था, यह बात उस समय हमें मालूम न थी। मणीन्द्र ने इसी वर्ष संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा नाम-वरी के साथ पास की थी। उसमें साधु-भक्ति की मात्रा भी ख़ूब अधिक थी। इस लिए मित्र-मण्डल-विद्यालय की कौंसिल ने उसको "पण्डितजी" की नामवरी उपाधि से विभूषित करने में अपना भी गौरव समझा। मणीन्द्रचन्द्र दोपहर को भोजनोपरान्त हमसे विदा हो जाता था। उपनिषदों का गुटका और मिसेज़ बिसेन्ट की गीता इसकी भाषानु-लम्बित जेबों में पड़ी रहती थी। उन्हें लेकर वह न मालूम कहाँ कहाँ घूमता, कुछ मालूम नहीं। शाम को भोजन बनाने से एक घण्टा पहले वह हमसे आ मिलता था। भोजन बनाने का भार "पण्डित जी" पर ही न्यस्त था। पर उनकी सेवा के लिए हम सब लोग उपस्थित रहते थे। मण्डली में जाति-भेद नाम को न था। सभी एकाकार थे, ब्राह्मण, कायस्थ और वैश्य सभी एक चौके में खाते थे। भोजन बनाने का काम भी ख़ूब दिल्लगी का काम हो गया था।

एक दिन मणीन्द्रचन्द्र शाम तक वापिस न आया। मण्डली चिन्तित हो गई। अनमने होकर भोजन बनाने का काम शुरू किया गया। शाम के बाद मणीन्द्रचन्द्र लौटा। मित्रों ने तड़ातड़ प्रश्न करने शुरू कर दिये। सब के जवाब में उसने बड़ी शान्ति और धैर्य से कहा—स्वामी नित्यानन्दजी के दर्शन के लिए मुझे आज गङ्गातट पर कई मील दूर जाना पड़ा। वहाँ सत्सङ्ग में देर हो गई। उसने स्वामीजी की शत मुख से प्रशंसा की। उसके कहने से मालूम हुआ कि स्वामीजी नैष्ठिक साधु हैं। दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। [illegible] हैं। दिन में एक बार भोजन करते हैं। यह सुनकर ही मण्डली के मसख़रों की समालोचना शुरू हो गई। किसी ने धैर्य का अर्थ बहुभाव और किसी ने एक समय भोजन करने का भाव पाचन-शक्ति की न्यूनता बताई। मणीन्द्र ने उन सब भिन्न भिन्न समालोचनाओं के उत्तर में एक बड़ी ही दैन्य-भरी चितवन से हमारी ओर देखा। हम उसका मतलब समझ गये। वह हमसे मित्रों की ज़्यादती की शिकायत किया करता था। सच तो यह है कि इन में उसकी पूज्य बुद्धि थी। वह हमारी इन बातों से नाराज़ न था। पर हमारी मानसिक अवस्था के लिए उसे दुख ज़रूर था। हमने मित्रों को फटकार बताई और कहा कि हम सब कल प्रातःकाल स्वामीजी के दर्शनार्थ चलेंगे।

(२)

प्रातःकाल उठ कर हम लोगों ने स्नान के लिए जा कर स्नान किया और स्वामीजी के दर्शन के लिए चल दिये। भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर कई मील चल कर एक छोटा सा मैदान मिला। वहाँ का दृश्य बहुत ही मनोहर था। गङ्गा जी की कलकल-ध्वनि, ज्यों ज्यों हम ऊपर बढ़ते जाते थे, बढ़ती जाती थी। सब तरफ़ सन्नाटा था। इसी मैदान में स्वामीजी कुशासन पर ध्यानमग्न बैठे थे। हम लोग गङ्गाजी के तट पर वहीं एक शिला पर बैठ गये और स्वामी जी के ध्यान-भङ्ग की राह देखने लगे। हममें से मणीन्द्र को छोड़ कर प्रायः सभी नास्तिक थे। ईश्वर या प्रारब्ध पर विश्वास करना मूर्खों का काम समझते थे। ईश्वर-भक्त को मूर्ख और प्रारब्धवादी को आलसी समझने का रोग हमारी मण्डली में ख़ूब ज़ोरों पर था। स्वामीजी की ध्यानावस्थिता देख कर दो एक की [illegible] आँखें एक दूसरी से लड़ कर [illegible] के मारे से मुड़ने लगीं। एक घण्टे बाद स्वामीजी ने आँखें खोलीं। उनके चेहरे से दिव्य आनन्द झलक रहा था। हम सब ने प्रणाम किया। मणीन्द्र ने हम लोगों का संक्षिप्त परिचय स्वामीजी की सेवा में निवेदन किया। बातें होने लगीं। उनके उन्नत नेत्रों से [illegible] प्रकाश

की लहरें निकल रही थीं। उनकी उम्र पचास वर्ष से ज़रूर ऊपर थी, पर उनका शरीर ख़ूब स्वस्थ और सबल था। स्वामीजी की बुद्धि बड़ी पैनी थी। जिस विषय पर बातचीत चलती स्वामीजी उसी विषय की गहरी से गहरी बात को बड़ी आसानी से बाहर निकाल लाते। स्वामी जी हमसे मित्रों की तरह बातचीत कर रहे थे। गुरुडम की भयानक मूर्ति का यहाँ कोसों तक पता न था। हम लोग भी उनकी सरलता पर मुग्ध होकर खुले दिल से बातें कर रहे थे। हमारे साथी रामप्रसाद उर्फ़ मौजीराम ने कहा—महाराज, अब तो कुछ दिनों के लिए लोगों को चाहिए कि साधु बनना बन्द करदें। साधुओं की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती है। स्वामीजी ने हँस कर कहा—लोग कुछ दिनों के लिए गृहस्थ बनना छोड़ दें तो कुछ लाभ होने की सम्भावना है। मनुष्य-संख्या ऐसतरह बढ़ रही है। गृहस्थ न बनने से ही मनुष्यों की बढ़ती में कमी हो जायगी।

मौजीराम चुप हो गये। इसी समय एक गृहस्थ अपने परिवार समेत वहाँ आया। उसने आते ही स्वामीजी को प्रणाम करके नवीन बाबू से पूछा—"कुशलपूर्वक हैं?" गृहस्थ के साथ उसकी स्त्री, षोडशी कन्या और एक दासी थी। ये सब लोग भी गङ्गा-तट पर बैठ गये। बातें हो रही थीं। हमारी मण्डली की ओर से प्रश्नों की और स्वामीजी की ओर से उत्तरों की झड़ी लग रही थी। नवीन के साथ गृहस्थ का पुराना परिचय है, इसका पता लगते ही चुलबुले मित्रों की चपल चितवनियाँ नवीनचन्द्र के विस्तापूर्ण चेहरे की ओर फिर गईं। परन्तु यह स्वामीजी के शान्त आश्रम में बैठा हुआ किसी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। हमारे साथी गदाधर उर्फ़ गप्पो-गोपाल ने बड़े विनीत भाव से पूछा—

स्वामिन्, त्याग का आदर्श क्या है?

स्वामीजी—दूसरों के सुखों के लिए अपने सुखों को छोड़ देना। इस तरह अभ्यास करते करते फिर अपने पराये सुख का भेद नहीं रहता। फिर आनन्द की धारा समान भाव से बहने लगती है।

गदाधर—पर ऐसे महात्मा आज कल बिरले ही हैं, इसका कारण क्या है?

गप्पी गोपाल के कटाक्ष को समझ कर स्वामीजी ने मुसकराते हुए कहा—

इसका कारण गृहस्थों की सिद्धान्तशून्यता है। साधुओं का निकास तो यहीं से है। तुम लोगों में कितने आदमी पारमार्थिक विषयों के लिए न सही, अपनी जाति या देश के लिए ही अपने सुखों का त्याग कर सकते हैं? फिर, साधु होकर तुम विश्वप्रेम में रँग जाओगे और उसके लिए अपने सुखों का ध्यान छोड़ दोगे—इस बात की तुमसे आशा करना व्यर्थ नहीं तो कुछ अधिक ज़रूर है।

गप्पी गोपाल चुप हुए। मन्नूलाल उर्फ़ मस्त-राम ने हाथ जोड़ कर कहा—

जब कोई मोटाताज़ा यात्री धोखे से ड्योढ़े दर्जे में आ बैठता है तब हम उसकी भर्त्सना करके उसको गन्तव्य पथ दिखा देते हैं, और, इस तरह, उसके कुछ पैसे बचाने का अक्षय पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। इस लिए हमें एकदम उपकारशून्य कहना कुछ बहुत सङ्गत प्रतीत नहीं होता।

स्वामीजी इस बात पर खिलखिला कर हँस पड़े। उनकी खिलखिलाहट में परितृप्ति और सन्तोष की मात्रा ख़ूब अधिक थी। वासना-तप्त पुरुषों के हृत्कमल में परितृप्ति का यह भाव कहाँ मिल सकता है?

गङ्गाजी का प्रवाह अनन्त के मार्ग में अनन्त से मिलने के लिए भागा आ रहा था। हमारी बातें भी अनन्ताकाश के गर्भ में छिपी चली जाती थीं। बातें भी अनन्त रूप धारण कर रही थीं। स्वामीजी भी ख़ूब प्रफुल्लचित्तता से बातें कर रहे थे। वहीं

ही चाहते थे कि स्वामीजी ने अर्थपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देख कर कहा—

नवीन, विधि के विधान के विरुद्ध बोलने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। बाबू कृष्णदास हमारे बाल्य-सखा हैं, यह बात इच्छा न रहते भी हमें आज कहनी पड़ी है। ये रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर हैं। बड़े सज्जन हैं। इनकी एक मात्र कन्या शारदा को हमने गोद खिलाया है। इस निस्पृहा अवस्था में भी हमें उससे सन्तान की तरह स्नेह है। इसका कारण भारवि के शब्दों में यही है—"भवन्ति मर्मेषु हि पक्षपाताः"

जब से हम साधुवेश में रहते हैं तब से बराबर कृष्णदास बाबू साल में एक बार हमसे मिलने आते हैं। अपनी कन्या के सम्बन्ध के विषय में ये कई वर्षों से चिन्तित हैं। इन्होंने कल तुमसे बात-चीत कर के बहुत आनन्द पाया था। हमसे यह जान कर कि तुम अनूढ़ हो, उन्होंने कल ही तुमसे यह प्रस्ताव करने का निश्चय कर लिया था। यदि आज यह घटना न होती तो भी तुमसे यह प्रस्ताव किया ही जाता। किन्तु अब तो जिस रत्न का तुमने स्वयं उद्धार किया है उस पर तुम्हारा स्वयं भी अधिकार हो गया है। शारदा बड़ी सुशीला और शुभगुण-सम्पन्ना लड़की है। तुम जैसे विद्वान हिन्दू की पत्नी बनने के लिए वह सर्वथा योग्य है। हमारा तुम्हारा कुछ ही दिनों का परिचय है। फिर भी तुम्हारी हम पर श्रद्धा न सही, तो कृपा ज़रूर ही है। इस छोटे से रिश्ते से ही हम तुमसे यह प्रार्थना करने की धृष्टता कर रहे हैं। आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर के हमारे मित्र का उपकार करने में अब तुम आगा पीछा न करोगे।

नवीन ने—"मुझे आपकी आज्ञा अविचार्य्य रूप से मान्य है"—कह कर सिर झुका लिया। उस दिन शाम को "पण्डितजी" के ट्रंक का ताला तोड़ कर उसमें जितने रुपये थे निकाल लिये गये और उनकी मिठाई और फलों से बदल कर मित्र-मण्डल ने गङ्गा तट पर षोडशोपचार से पेट-भगवान् की पूजा की। उस दिन पण्डित जी को भोजन बनाने की तकलीफ़ भी न उठानी पड़ी।

(३)

अगले सहालग में ही सुलतानपुर में कृष्णदास बाबू के निवास-स्थान पर नवीन का विवाह बड़ी सादगी से सम्पन्न हो गया। मित्र-मण्डली उपस्थित थी। स्वामीजी भी पधारे थे। ख़ूब सत्सङ्ग रहा। पण्डित मदनमनोहर शास्त्री, एम० ए०, को स्वामी चिद्घनानन्द के रूप में देख कर सुलतानपुर-निवासी बड़े आश्चर्य्यान्वित हुए। हम लोगों के आश्चर्य्य की भी, यह जान कर कि स्वामी चिद्घनानन्द उस समय सुलतानपुर में डिप्टी कलेक्टर थे जिस समय बाबू कृष्णदास वहाँ के तहसीलदार थे, सीमा न रही। स्वामीजी ने तुलसीकृत रामायण की एक प्रति शारदा को और अपने पढ़ने की "चित्सुखी" नवीन को उपहार-स्वरूप भेंट की। उस दिन से स्वामीजी का पता और किसी को तो क्या, उनके अभिन्न-हृदयी मित्र कृष्णदास बाबू को भी न लगा।

बीस बरस हो गये, पर हरद्वार की वह यात्रा और शारदा का गोते खाया हुआ वह म्लान चेहरा, हमें आज भी ख़ूब याद है। स्वामीजी का स्मरण आते ही उनके प्रति श्रद्धा का भाव हमारे हृदय में आज भी वैसा ही फिर हो जाता है। दिन चले गये, पर स्मृति-पट पर उस समय का चित्र वैसा ही खिंचा हुआ है।

ज्वालादत्त शर्म्मा

हिन्दुस्तानी रिसाला फ़्रान्स के एक गाँव से आ रहा है।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

समझ कर इसे अपने हृदयों में रखते हो, सो भी नहीं । यह है वास्तव में उनका मुख्य काव्य, उनका सच्चा हृदयोद्गार ।

यदि रामायण में केवल कल्पना ही के आधार पर सारी रचना की गई होती तो यह कभी सम्भव न था कि हम राम को राम और परमेश्वर तथा रामायण को अपनी प्रीति और भक्ति का मुख्य पात्र मानते । यदि यह हमारी गृह-कथा—हमारे गृहस्थाश्रम की बातों का भाण्डार न होता तो रामायण की उतनी कदर कदापि न होती ।

ऐसे ग्रन्थ को यदि विदेशी समालोचक अपने विचारों के आदर्श के अनुसार अप्राकृतिक ठहरावें तो भी उनके ऐसा से भारत की महत्ता अधिक ही सिद्ध होती है । भारतवर्ष ने जो कुछ चाहा उसे उसने रामायण में प्राप्त कर लिया है ।

रामायण और महाभारत दोनों ही हमारी दृष्टि में एक ही मत से सम्मिलित देख पड़ते हैं । इन ग्रन्थरत्नों के सरल और सरस अनुरूप वर्णनों से भारतवर्ष का हज़ारों वर्ष का हाल झलकने लगता है ।

रामायण के विषय में मुझे इतना और कहना है कि पाठक, रामचरित को वाल्मीकि की रचना समझ कर, उसे केवल कवि का ही काव्य न समझें । वह सारे भारतवर्ष की रामायण है । उसे केवल महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना न समझिए । वह वास्तव में पुरुषोत्तम अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न मानव का उत्तम चरित्र है । भारतवर्ष ने इसी बात को अपना आदर्श मान कर इस चरित को सुनना चाहा है और हज़ारों वर्षों से आज तक एक ही भाव से उसे सुनता आ रहा है । आप यह कभी मत सोचें कि यह केवल कहानी है—यह केवल एक काव्य-कथा है । भारतवासियों को उनका घर, धन और जन इतना सच्चा और इतना प्यारा नहीं जितने सच्चे और प्यारे उन्हें उनके राम, लक्ष्मण और सीता हैं ।

भारतवर्ष उत्तमता को उसी दृष्टि से देखता है जिस दृष्टि से कि वह ईश्वर को देखता है । गीता के उपदेश के अनुसार जिन जिन वस्तुओं में उत्तमता की मात्रा अधिक है वे सभी ईश्वर से ही सम्बन्ध रखती हैं । इस बात को भारतवर्ष अनुभव नहीं समझता और न इस पर अविश्वास ही करता है । यही कारण है कि वह पुरुषोत्तम, अर्थात् उत्तम गुणों वाले, रामचन्द्र के चरित्रों को बड़े आदर से सुनता और पढ़ता है । इसी उत्तम चरित्र का वर्णन करके महाकवि ने भारतवर्ष के मनुष्यों का हृदय रामायण द्वारा तृप्त किया है । इसी उपकार के वशीभूत होकर भारत की जनता महर्षि वाल्मीकि की चिरऋणी हो रही है ।

जो जाति छोटी छोटी बातों को सत्य मानती है, जो वास्तविक सत्य की खोज में पीछे नहीं हटती, जो काव्य को प्रकृति का सौन्दर्यदर्शक मानती है, वह संसार में बहुत कुछ कर सकती है । वह धन्य है । मनुष्य-जाति उसकी ऋणी है । पर जो "भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः"—कह कर पूर्ण परिणाम को ही अखण्ड सत्य का सुख और समस्त सांसारिक विरोधों का शान्ति-विधायक मानती है उसका ऋण भी संसार किसी तरह नहीं चुका सकता ।

यदि संसार ऐसी जाति के कार्यों को भूल जाय, यदि वह उसके निश्चित किये हुए मार्गों से दूर हट जाय, तो फिर उसका निबाह नहीं । फिर वह जाकर ऐसे गड्ढे में गिरेगा जहाँ उसका चकनाचूर होना सर्वथा सम्भव है । रामायण उन्हीं के लिए अमृत समान है जो उसके भक्त हैं—उसके वर्णन किये हुए चरित्रों पर जिनका विश्वास और जिनकी श्रद्धा है । रामायण में पितृभक्ति, स्वामिभक्ति, भ्रातृप्रेम और दाम्पत्यप्रेम की जो धारा बही है वह क्या संसार के अन्य काव्यों में कहीं दिखाई देती है ? पातिव्रत और सत्यपरता आदि का जो दृश्य रामायण में है वह अन्य देशों के ग्रन्थों में शायद ही ढूँढ़े मिले । संसार यदि ऐसे ही काव्यों को अपना मार्ग-दर्शक माने तो उसकी शान्ति और उसके सुख का कहीं छोर छोर न रहे ।

(बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के—प्राचीन साहित्य—के एक लेख का भावार्थ ।

विश्वप्रेम ।

यह अपना है या नहीं—यह अति क्षुद्र विचार ;
है उदार जन के लिए निज कुटुम्ब संसार ।
किसी भग्न प्राचीर में खिला एक प्राचीन ,
खिला पुष्प उस बीच है नाम-गोत्र से हीन ।
दृष्टि-पात करता नहीं उस पर लोक-समाज—
सूर्य्य सुबह उठ पूछता—बन्धु ! कुशल है आज ?

अनुवादक—पारसनाथसिंह, बी० ए०

इकट्ठे हुए थे उनमें बहुतेरे उस सुधा-पूर्ण वंशी-ध्वनि को सुन ही न सके। इससे मैंने, अत्यन्त आश्चर्यान्वित होकर, विद्याधरी से इसका कारण पूछा। उसने कहा—"उस बृहत् पर्वत के पूर्व के जो तीन बड़े बड़े पर्वत देख रहे हो उन पर एक एक राक्षस रहता है। वे देवताओं के सदृश पोशाक पहन कर एक एक कुञ्ज-वन में रहते हैं और मनुष्यों के हृदय का आकर्षण करते हैं। उन तीनों राक्षसों ने जिसका मन खींच रक्खा है वे अन्य किसी विषय में मन नहीं लगा सकते। उनका नाम क्या है, जानते हो? अज्ञान, आलस्य और आमोद"।

विद्याधरी ने जो कहा, वास्तव में वही ठीक निकला भी; समस्त हीन-बुद्धि, अकर्मण्य, क्षुद्र मनुष्य ही उन कुटिल-स्वभाव, विश्व-वञ्चक राक्षसों की कुमन्त्रणा सुन कर उनके मधुर वचनों से मुग्ध हो रहे थे। केवल उन्नत बुद्धि वाले तेजीयान मनुष्य ही कीर्त्ति-देवी का वंशी-रव सुन कर बड़े उत्साह से उस महान् शैल पर जाने को प्रस्तुत हुए। वह पीयूष-पूर्ण सुमधुर ध्वनि उन लोगों के कानों में जितना ही प्रवेश पाने लगी उतनी ही अधिक मीठी मालूम होने लगी। इससे उन लोगों का उत्साह भी ख़ूब ही बढ़ने लगा।

मैंने देखा कि अत्यन्त प्रसन्न मन से वे उस पर्वत पर चढ़ रहे हैं। जो जो वस्तुयें साथ लेकर उस पर्वत पर चढ़ा जा सकता है, प्रत्येक मनुष्य कोई न कोई वैसी वस्तु साथ लेकर चला। किसी ने एक तेज़ तलवार ली, किसी ने पुस्तक, किसी ने सुन्दर दूरबीन और किसी ने एक गोल यन्त्र इत्यादि। इससे, देखता हूँ कि मनुष्य की बनाई हुई समस्त प्रधान वस्तुयें वहाँ इकट्ठी हो गई हैं। यात्री टोलियाँ बना बना कर भिन्न भिन्न रास्तों से ऊपर चढ़ने लगे। ऐसे सङ्कीर्ण रास्तों से चढ़ने लगे कि कुछ दूर चढ़ कर उन्हें ठहर जाना पड़ा। भूमण्डल के कितने ही शिल्पी और ग्रन्थकार इस सङ्कीर्ण रास्ते के यात्री थे।

बाईं ओर मैंने एक और समुदाय देखा। उसके लोग ऊँचे और नीचे बीहड़ रास्तों से आ रहे थे। अतएव उन्हें सर्वदा विभ्रम हो जाता था। इससे वे विपथ-गामी हो जाते थे। परिश्रम और कार्य-कुशलता में वे अन्य किसी समुदाय से पीछे नहीं। तिस पर भी अधिक ऊँचे चढ़ने में वे असमर्थ ही रहे। कोई कोई, एक पहर तक कष्ट उठा कर जितनी दूर चढ़े थे, अकस्मात् एक बार पैर फिसल जाने के कारण पल भर ही में उसके दूने नीचे चले आये। मैंने क्या देखा कि राज-नियम-व्यवसायी कितने ही विख्यात मनुष्य इसी पथ के पथिक थे।

ये सब अद्भुत घटनायें देखते देखते मैं पर्वत के ऊपर, बहुत दूर तक, चढ़ गया। ऊपर जाकर देखा कि पर्वत के चारों ओर जितने रास्ते मैंने देखे थे वे सब यहाँ आकर दो बड़े बड़े रास्तों से मिल गये हैं। अतएव उन सब रास्तों के यात्री आप ही इन दो पथों में प्रवेश करके दो समुदायों में विभक्त हो गये।

इन दोनों रास्तों के प्रवेश-द्वार पर एक एक भीषणाकार राक्षस खड़ा था। उनमें से एक था धूम्र-वर्ण, दीर्घदन्त और कुटिल नेत्र वाला। वह चमड़े की पोशाक पहन कर खड़ा था। उसके हाथ में लोहे का एक बड़ा दण्ड था। जो लोग उसके सामने वाले रास्ते से जाते थे उनके सामने वह उस दण्ड को बड़े ज़ोर से घुमाने लगता था। मनुष्य उसे देख कर मारे डर के काँपने लगते थे। वे पीछे भाग कर "मृत्यु" "मृत्यु" कह कर चिल्लाते थे। जो राक्षस दूसरे द्वार पर था उसका नाम है—द्वेष। यद्यपि उसके हाथ में यम-दण्ड की तरह कोई शस्त्र न था, तथापि वह इस प्रकार विकट मुख-भङ्गी करके विष-पूर्ण स्वर से बोलने और अद्भुत भ्रूभङ्गी करके सब मनुष्यों की ओर देखने लगता था कि लोगों को वह मृत्यु से भी अधिक भयानक ज्ञात होता था। हमारे

गोरखों के सामान—पैसे आदि—का मुआइना हो रहा है। ये लोग अपनी कुकरियाँ दिखा रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

रहा था कि इतने ही में मेरी सङ्गिनी विद्याधरी ने कहा—"नहीं जानते हो ? उन लोगों का जन्म भारतवर्ष में हुआ है। उन्होंने वहाँ बड़े बड़े काम किये हैं। भूमण्डल में पाण्डव और कौरव की पदवी इन्हीं को दी गई है। परन्तु इस श्रेणी का प्रधान आसन कुछ प्रबल प्रताप-शाली और बलवान् विदेशी मनुष्यों ने प्राप्त किया है"। विद्याधरी ने उन सबके नाम और गुण का कीर्त्तन भी किया। एक का नाम शायद अलेक्-ज़ाण्डर, दूसरे का सीज़र और तीसरे का हनिबाल बताया। जो पण्डित यात्रियों को सङ्ग लेकर आये थे उन्होंने प्रत्येक यात्री के पास जा जाकर कीर्त्ति-देवी को उनका परिचय कराया।

कीर्त्ति-देवी की दाहिनी ओर का दृश्य कुछ निराला था। वहाँ जो महानुभव विराजमान थे उनका प्रफुल्ल मुख-मण्डल देखते ही शोकपूर्ण मनुष्य का हृदय भी एक बार खिल जाता था। उनका सहास्य वदन, सुधामय मधुर वचन और आनन्द-पूर्ण स्वच्छ नयन-द्वय देख कर मैं प्रीति के अमृत-रस में डूब गया। वे लोग कीर्त्ति-देवी की दक्षिण ओर एक पंक्ति में बैठे थे। कुछ परम सुन्दरी प्रिय-वादिनी रमणियाँ चित्र-विचित्र पोशाक और शोभाकर मनोहर अलङ्कार पहन कर उनकी सहयोगिनियाँ बन रही थीं। वे पुरुष तो कवि की पदवी से और उनकी ललनायें "रागिणी" के नाम से मख्यात हैं। पूर्वोक्त वीर-गण जिस प्रकार एक एक पण्डित के साथ वहाँ गये थे, कवि को उस प्रकार कोई न लिवा ले गया। वे तो आपही चले गये। यही नहीं, कितने ही धैर्य्य-शाली और गुणवान् मनुष्यों की सहायता भी कीर्त्ति-निकेतन में प्रवेश करते समय उन्होंने की। कवि हाथ में पुस्तकें लिये हुए थे। अवश्य ही उनमें कोई मनो-हारिणी शक्ति होगी। क्योंकि दरबान ने उन्हें देखते ही उनके जाने के लिए रास्ता छोड़ दिया। इस श्रेणी के बीच में दो सहास्य वदन प्राचीन पुरुष अपूर्व सिंहा-सन पर बैठे थे। प्राचीन लोगों में ऐसा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा गया। विद्याधरी ने बताया कि एक का नाम वाल्मीकि और दूसरे का नाम होमर है। दाहिनी ओर होमर और बाईं ओर वाल्मीकि एक एक दिव्य पुस्तक लेकर बैठे थे। वाल्मीकि की बाईं ओर एक परम रूपवान्, सुन्दर पोशाक पहने, विविध अलङ्कारों से विभूषित कुसुम के आसन पर विराज-मान था। उसके आसन की सुगन्ध से समस्त स्थान पुलकित हो रहा था। वे उज्जयिनी के राजाओं की सभा के सभासद् और राजा से सौगुने अधिक कीर्त्ति-देवी के प्रिय-पात्र कालिदास थे। उनकी बाईं ओर भारवि, भवभूति, तुलसीदास इत्यादि अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार परम शोभाशाली उत्कृष्ट आसनों पर बैठे थे। परन्तु वृद्ध वाल्मीकि का भाव जितना स्वाभाविक और सरल तथा अनुपमशोभा-शाली था उतना न तो किसी का भाव ही था, न शोभा ही। वे शोभाशील थे, इसमें सन्देह नहीं; पर अधिकांश के शरीर-सौन्दर्य्य से वस्त्रालङ्कार की शोभा ही अधिक थी। किसी किसी ने तो इतनी जटिल पोशाक पहनी थी कि बहुत यत्न और कष्ट करके देखने पर ही उनका किञ्चित् स्वाभाविक सौन्दर्य्य मालूम होता था, अन्यथा नहीं। कभी कभी तो वह भी छिप जाता था। उस तरफ़, होमर की बग़ल में, मिल्टन, शेक्सपियर, बायरन इत्यादि सुप्रसिद्ध कवि अपनी अपनी योग्यता के अनुसार आसन पर विराजते थे। शेक्सपियर जिस रत्नमय सिंहासन पर बैठे थे वह इस दरजे के सब आसनों से ऊँचा और देदीप्यमान था। इस दरजे की अपूर्व शोभा देख कर मैं अत्यन्त मोहित हो गया।

होमर इत्यादि कविगण तो सुख से रहते थे, पर वाल्मीकि और कालिदास की एक बात सुन कर मैं बहुत ही दुःखित हुआ। उन्होंने कहा कि भाई रोहिणी के हमारे सजातीय भवयुवक हम लोगों का तो नहीं, परन्तु विजातीय कवियों का अत्यधिक आदर करते हैं। तथापि सन्तोष की बात इतनी ही है कि भिन्न

हितकारिणी विद्याधरी ने कहा—तुम भी इस भवन में एक आसन लेकर क्यों नहीं बैठ जाते ? मैंने कहा—विद्याधरि ! आपका आदेश शिरोधार्य्य है । पर मुझे यश की किञ्चिन्मात्र इच्छा नहीं । जो सुख्याति दूसरों के मुख से निकले हुए थोड़े से शब्द-समूह मात्र से होती है उसके लिए किसी स्थायी और बहुत बड़े धन को न छोड़ना चाहिए । कीर्त्ति-देवी पर मेरी किसी प्रकार अश्रद्धा नहीं । पर उनका प्रसाद पाने के लिए मैं व्याकुल भी नहीं हूँ । जिस देवता की जितनी सेवा करनी चाहिए उतनी मैं करूँगा । पर मैं तो देवताओं के राजधर्म्म की आराधना में ही अधिक रत रहूँगा । इससे यदि कीर्त्ति-देवी प्रसन्न होकर मुझ पर कृपादृष्टि करें तो मैं आनन्द-पूर्वक उन्हें अपने हृदय-मन्दिर में स्थान दूँगा । निष्पाप और निष्कलङ्क होकर समस्त मनुष्यों से अज्ञात रहना अच्छा है, पर पाप से कलङ्कित होकर कीर्त्ति की प्राप्ति करना अच्छा नहीं ।

इस प्रकार चिन्ता का वेग क्रमशः प्रबल होने लगा । पर इतने में मेरी निद्रा सहसा भङ्ग हो गई । उस समय आँखें खोल कर देखता हूँ तो न वह कीर्त्ति-पीठ है, न वह कीर्त्ति-निकेतन । मैंने जिन परम-पूजनीय मूर्त्तियों का दर्शन किया था वे भी नहीं हैं । मैंने अपने को उसी शिला-खण्ड के ऊपर सोता पाया जिसका वर्णन पहले कर चुका हूँ* ।

जगदीशप्रसाद

शारद नदी ।

अशनि-पात, भयानक गर्जना,
　　विषम वात, भड़ी दिन रात की ।
मिट गई, दिन पावस के गये
　　शरद शान्त सुखप्रद काल है ॥१॥

भ्रमिष-सेवन को दिन एक मैं
　　नगर से तटिनी-तट को गया ।
सरस रागमयी रवि-बृन्द की
　　सुखद शीतल सुन्दर साँझ थी ॥२॥

गगन-मण्डल निर्मल नील था ;
　　सुखद मारुत मन्द मनोज्ञ था ।
कर रही कलनाद प्रवाहिनी,
　　मुदित मैं मन में अति ही हुआ ॥३॥

रजत के कण सी सित रेणुका
　　बिछ रही सब ओर विलोक के ।
फिर हुआ सिकता पर मैं वहाँ
　　दृग लगे जलधार निहारने ॥४॥

सरित को जब के अति-दुर्बला
　　परिमिता, श्रमता, शुचि, शोभिता
सहित विस्मय मैं कहने लगा—
　　अयि तरङ्गिणि ! है यह क्या ? बता ॥५॥

तरल तुङ्ग तरङ्ग-बलावली,
　　युगल तीर खड़े तरु तोड़ती ।
उछलती, तरणी-गण फेंकती
　　समय नाविक को करती हुई ॥६॥

अमित वेगवती अति गर्विता
　　गरजती तुम थी बरसात में ।
अब कहो वह गर्व कहाँ गया ?
　　अतुल यौवन का मद क्या हुआ ? ॥७॥

सलिल बीच प्रतिध्वनि भी हुई
　　तुरत उत्तर यों मुझको मिला—
"विभव अस्थिर है; सब की दशा
　　न रहती जग में नित एक सी" ॥८॥

रामनरेश त्रिपाठी

---

* बङ्गाल के प्रसिद्ध लेखक बाबू अक्षयकुमार दत्त के एक प्रबन्ध का भावार्थ ।

ही चला जाता है। अपना पक्ष गिर जाने पर भी—अपनी भूल मालूम हो जाने पर भी—वह हार नहीं मानता, वह सत्य का स्वीकार नहीं करता। ऐसे दृश्य प्रायः देखने में आया ही करते हैं। फिर भी न मालूम लोग क्यों शास्त्रार्थ करते और शास्त्रार्थ के लिए ललकारा करते हैं। ऐसे शास्त्रार्थों से बहुत ही थोड़ा लाभ हो सकता है। शास्त्रार्थ के समय उपस्थित जनता में जो लोग शास्त्रज्ञ अथवा साक्षर होते हैं वे तो अवश्य जान जाते हैं कि किसका पक्ष गिर गया। और लोग नहीं जान सकते। इन पिछले लोगों ही की संख्या अधिक होती है और वे फिर भी अपनी अपनी डफली बजाते ही रहते हैं। कभी कभी तो यह तमाशा देखा जाता है कि जो पुरुष शास्त्रार्थ के विषय से बहुत ही थोड़ी, अथवा शून्यांश के बराबर, अभिज्ञता रखता है वह सभापति या मध्यस्थ बना दिया जाता है। ऐसी दशा में भी जो लोग सत्य के निर्णय की आशा रखते हैं वे बालू से तेल निकालना चाहते हैं।

जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं सब की भित्ति श्रद्धा और विश्वास है। उनके सिद्धान्त यदि न्यायशास्त्र के नियमों की कसौटी पर कसे जायँ तो उनमें से कितने ही उड़े उड़े फिरें। सच यह है कि इन मतों और सम्प्रदायों के सभी प्रचारक न्यायदर्शन, न्यायवार्तिक, शब्द-शक्तिप्रकाशिका, गदाधरी और जागदीशी को कण्ठ में धारण न किये रहते थे। उन्होंने न्याय के तराजू पर तौल तौल कर अपने धर्म, सम्प्रदाय और मत के सिद्धान्त नहीं स्थिर किये। अतएव इन विषयों पर न्यायसम्मत शास्त्रार्थ करना समय को व्यर्थ बरबाद करना है। ऐसे शास्त्रार्थों से वैमनस्य की वृद्धि ही हाथ लग सकती है। कुछ सुशिक्षित जन इस सिद्धान्त के क़ायल हैं कि जो बात बुद्धि न स्वीकार करे—जो बात विचारान्त में ठीक न जँचे—उसका त्याग ही करना चाहिए। शास्त्रार्थों में जो अधिक हाज़िर-बुद्धि और न्यायशास्त्र का अधिक ज्ञाता होता है वही बहुधा बाज़ी मार ले जाता है। इस दशा में पूर्वोक्त सुशिक्षित सज्जनों पर बुरा असर पड़ता है। उनके धर्म या पन्थ की जो बातें विचार में नहीं उतरतीं उनको वे भ्रान्ति-मूलक मान लेते हैं। फल यह होता है कि उनकी श्रद्धा उनके धर्म पर नहीं रहती। शास्त्रार्थ प्रायः सदा ही अभिमान के आवेश से होते हैं, सत्य की खोज के आवेश से नहीं। अतएव यह असम्भव नहीं कि ऐसे शास्त्रार्थों में न्यायशास्त्र के कोटिक्रम का आभास दिखा कर विपक्षी के साथ छल किया जाय और उसका सत्य पक्ष भी असत्य सिद्ध कर दिया जाय।

ऐसे शास्त्रार्थों से तभी अभीष्ट लाभ हो सकता है जब दोनों पक्ष सत्य की खोज के हृदय से इच्छुक हों और दोनों ही न्यायशास्त्र के ज्ञाता भी हों। ऐसा होने से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति भी हो सकती है और श्रोताओं को शास्त्रार्थ सुनने से आनन्द की प्राप्ति भी। नजीबाबाद के शास्त्रार्थ का जो विवरण जैन-गज़ट में छपा है उसे पढ़ने से ज्ञात होता है कि न्यायशास्त्र में पण्डित बनारसीदास का अच्छा प्रवेश है। उनमें यथेष्ट तर्क-शक्ति है। उनके कोटिक्रम और उत्तर-प्रत्युत्तर पढ़ कर यह धारणा हुए बिना नहीं रहती कि वे अच्छे तार्किक हैं। विपरीत इसके उनके विपक्षी पूर्वोक्त स्वामिद्वय तर्कशास्त्र के पण्डित नहीं। उन्होंने पण्डितजी के मुक़ाबले में बार बार हार खाई—बार बार वे निग्रह-स्थान में ढकेल दिये गये—तिस पर भी उन्होंने अपना राग अलापना न छोड़ा। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं कि उनका पक्ष ही ठीक न था। यदि पण्डित बनारसीदास के मुक़ाबले में कोई अच्छा प्रतिभाशाली, प्रखर-बुद्धि, न्यायशास्त्रज्ञ खड़ा किया जाता तो, बहुत सम्भव है, वह पण्डितजी को न्याय की दृष्टि से निरुत्तर कर देता। यथायथ और योग्यतायोग्यता का विचार किये बिना ही जिन्होंने इन स्वामिद्वयों को शास्त्रार्थ के लिए खड़ा किया उनके साहस की प्रशंसा कोई भले ही करे, उनके विवेक की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

पण्डित बनारसीदास से हमारी प्रार्थना है कि वे हर्बर्ट स्पेन्सर का—फ़र्स्ट प्रिंसिपल्स—नामक ग्रन्थ पढ़ें और देखें कि योरप के प्रतिष्ठित विद्वान् इस जगत् की उत्पत्ति और लय के विषय में क्या कहते हैं। पदार्थों में जो गुण हैं वे उन्हीं के हैं अथवा और कहीं से उन्हें प्राप्त हुए हैं। संसार में जो शक्तियाँ काम कर रही हैं उनका ज्ञान तर्क और विचार से कहाँ तक प्राप्त हो सकता है और कहाँ तक नहीं। यदि इस जगत् की कोई शक्तियाँ अज्ञेय हैं तो उनका कारण क्या है। स्पेन्सर के निर्दिष्ट सिद्धान्तों का मुक़ाबला यदि वे अपने तत्त्वविचार-विषयक शास्त्रों से करेंगे तो, सम्भव है, उन्हें कुछ नई बातें मालूम हों। पर नई बातों से मनुष्य

तभी काम उठा सकता है जब वह अपने पूर्व-संस्कारों को छोड़ने के लिए तैयार हो और दुराग्रह को दूर ही रक्खे।

३—मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा।

अच्छी बात है। शुभ लक्षण हैं। जागृति के चिह्न हैं। अन्ध-विश्वास का परदा हट रहा है। विवेक-सूर्य्य की किरणें फैलने लगी हैं। पाश्चात्य सभ्यता के अभिमानी और अँगरेज़ी भाषा के ज्ञानी भी अब जागे हैं। अपनी भाषा के द्वारा शिक्षा देने के लाभ उनकी समझ में आने लगे हैं। वे अँगरेज़ी के समाचारपत्रों और पुस्तकों में लेख प्रकाशित कर करके यह मानने लगे हैं कि अपनी भाषा में शिक्षा देने से कितना उपकार और न देने से कितना अपकार होता है और हो रहा है। विपक्षी दल का बल अभी बहुत अधिक है। पर उसका पक्ष न्याय्य नहीं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि किसी दिन इस दल के विरोधियों ही की जीत होगी।

जन-साधारण की भाषा में शिक्षा देने की उपयोगिता को गवर्नमेंट ने भी प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया है। इसी से उसने इन प्रान्तों के स्कूलों की कुछ कक्षाओं को छोड़ कर औरों में इतिहास, भूगोल और गणित आदि की शिक्षा मातृभाषा ही के द्वारा दी जाने का नियम कर दिया है। पञ्जाब, मदरास और बम्बई के विश्व-विद्यालयों में तो कालेज-क्लासों में भी किसी हद तक विद्यार्थियों की भाषा का प्रवेश हो गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अँगरेज़ी न पढ़ें। नहीं, हम अँगरेज़ी पढ़ेंगे। उसे पढ़ना ही चाहिए। उसकी शिक्षा से हमारी ज्ञान-वृद्धि होगी। उसकी शिक्षा से हमारा भी हित है और गवर्नमेंट का भी। पर उस भाषा का ज्ञान-सम्पादन करने ही के लिए हमें उसे सीखना चाहिए। उसके द्वारा अन्यान्य विषयों की ज्ञान-प्राप्ति के लिए नहीं। एक और एक दो होते हैं। यह गणित-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञानांश है। इसे हम अपनी ही भाषा में क्यों न प्राप्त करें? इसके लिए दूसरी भाषा का आश्रय क्यों? पहले अपरिमित श्रम और अनन्त शक्ति का व्यय करके हम दूसरी भाषा सीखें। फिर उसके द्वारा हम सांसारिक ज्ञान का अर्जन करें! क्या ऐसा दृश्य इस भू-मण्डल पर और भी किसी सभ्य देश में देखने को मिल सकता है? यह इतनी मोटी बात कितने ही महात्माओं—बड़े बड़े ज्ञानियों और विज्ञानियों—की समझ में नहीं आती। यह इस देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए।

जिस संस्कृत भाषा में अतुल-ज्ञान-राशि भरी हुई है, जो अपने गुणों के कारण देव-भाषा कहाती है, जो हमारे पूज्य पूर्व-पुरुषों की भाषा थी और जिन वेदों को असंख्य भारतवासी अपौरुषेय बतलाते हैं वे वेद जिस भाषा में हैं—वही भाषा, हमारे धर्म-ग्रन्थों की वही संस्कृत—हम लोग मैक्समूलर और भाण्डारकर की बनाई हुई अँगरेज़ी पुस्तकों की सहायता से सीखने की चेष्टा करते हैं। अज्ञान और अविवेक की पराकाष्ठा हो गई! जो बात हम अपनी भाषा में एक दिन में सीख सकते हैं उसी को हम दूसरी भाषा का अवलम्ब करके तीन दिनों में सीखते हैं और फिर भी कहते हैं कि यही मार्ग सुकर, सीधा और स्वल्प-श्रम-साध्य है!!! यदि फ़्रान्स वालों से कोई यह कहे कि तुम्हें लैटिन और ग्रीक सीखना हो तो उन्हें अपनी भाषा की सहायता से नहीं, जर्मन भाषा पढ़ कर उसकी सहायता से सीखो तो कहने वाला पागल समझा जायगा और उसकी बात पर कोई ध्यान न देगा। पर भारत एक ऐसा देश है जहाँ इस अस्वाभाविकता का प्रायः अखण्ड राज्य है। यहाँ तो इस सिद्धान्त के परिपोषक भी सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं, लाखों होंगे।

अस्तु। ज्ञानोदय और सुबुद्धि का अङ्कुर दिखाई देने लगा है। आशा है, जड़मन में यह अभिलाषा फल न पावे, धैर्य्य रखना चाहिए। सत्य का पीछा न छोड़ना चाहिए, प्रयत्न करते रहना चाहिए। दबाने से भी सत्य सदा नहीं दबा रह सकता। किसी न किसी दिन उसकी जीत अवश्य ही होती है।

४—मराठी-ग्रन्थोत्तेजक कमिटी, इन्दौर।

महाराजा होल्कर की रियासत में हिन्दी बोलने वालों की संख्या अधिक है। मराठी बोलने वाले भी कुछ हैं, पर बहुत कम। जिनकी भाषा मराठी है वे अधिकतर इन्दौर ही में हैं। महाराजा इन्दौर की कृपा मराठी पर भी है और हिन्दी पर भी। इस कृपा की मात्रा में न्यूनाधिकता होना स्वाभाविक है। जिसकी जो भाषा होती है उस पर उसका अधिक स्नेह होता ही है। इसका सबूत इन्दौर के महाराज होल्कर, समय समय पर, दिया ही करते हैं। यदि महाराज होल्कर की कृपा हिन्दी पर न होती तो वे सम्भवतः हिन्दी का विरोध शुरू करा करते। अभी कुछ ही दिन हुए

लेखक ने लिखा था कि कारणवश मैं हिन्दी के विषय में अपनी राय नहीं प्रकट करना चाहता। यह कारण महाराजा होलकर की कृपा—हिन्दी के विषय में उनकी नीति—के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। बात सब कहीं एक ही है। राज्य-भाषा को प्रायः सर्वत्र ही प्रधानता दी जाती है। अस्तु।

मराठी में अच्छे अच्छे ग्रन्थ निकलें, इसलिए, अब की, महाराज होलकर ने ढाई हज़ार रुपया दिया था। इस पर कोई एक दर्जन लेखकों की बीस पुस्तकें मराठी-ग्रन्थोत्तेजक कमेटी ने पसन्द कीं। पुस्तकें अनेक विषयों की हैं; पर उनके नाम देखने से जान पड़ता है कि विशेष महत्त्व की उनमें एक भी नहीं। इन लेखकों को सिर्फ़ ८०० रुपया मिला। तीन महाशयों को सौ सौ रुपया दिया गया, और बाक़ी को इससे भी कम। एक को केवल १२ रुपये और एक को केवल २१ रुपये। राव-बहादुर चिन्तामणिराव वैद्य नामी विद्वान् और नामी लेखक हैं। उनको—"श्रीकृष्णचरित्र" लिखने के लिए एक ही सौ रुपया उत्तेजना-स्वरूप मिला। इससे सिद्ध है कि या तो ये पुस्तकें छोटी छोटी हैं या महत्त्व की नहीं। क्योंकि यह कम सम्भव है कि पुस्तकें बड़ी और महत्त्व की होने और पास बहुत सा रुपया रहने पर भी उत्तेजना देने में कंजूसी की जाती।

महाराजा होलकर ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिए भी कुछ रुपया दिया था ऐसे का वादा किया है। मालूम नहीं, उसका क्या हुआ। कुछ पुस्तकें लिखाई या प्राप्त की गईं या नहीं।

५—पुरातत्त्व-विभाग की अफ़सरी।

१० सितम्बर १९१९ को बड़े लाट के कौंसिल की जो मीटिंग शिमले में हुई उसमें माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने पुरातत्त्व-विभाग (Archæological Department) की अफ़सरी इत्यादि के विषय में कई प्रश्न किये। उत्तर में अनेक अज्ञात बातें मालूम हुईं। कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

इस महकमे में इस समय १८ अफ़सर हैं। उनमें से ९ विलायती, ६ हिन्दू, २ मुसलमान और १ पारसी हैं। इस महकमे के सबसे बड़े अफ़सर सर जान मार्शल, एम० ए०, हैं। आपको नौकरी करते १७३ वर्ष हुए। एक हज़ार रुपये मासिक वेतन पर आप मुक़र्रर हुए थे। इस समय आपको १५ सौ रुपये मिलते हैं। उनसे पद पर डाक्टर स्टीन का नम्बर है। आपका वेतन १७३ सौ रुपये है। इस समय विलायत में आप कोई विशेष काम कर रहे हैं। तीन विलायती विद्वान् विलायत ही से भरती होकर आये हैं। ये तीनों ही सुपरिंटेंडेंट हैं। असिस्टंट सुपरिंटेंडेंटों का वेतन ३००—२५—२०० रुपये है। पर सेक्रेटरी आव् स्टेट को अधिकार है कि जो लोग विलायत में भरती हों उन्हें वे ७००—२५—९०० मासिक पर ले सकें। और यह बात वे बराबर करते भी आ रहे हैं। अन्यथा योरोपियनों और भारतवासियों के वेतन आदि में कोई भेद-भाव नहीं। गवर्नमेंट का कथन है कि इस महकमे में अफ़सरों की नियुक्ति के सम्बन्ध में उसने योग्यतासूचक किसी निश्चित उपाधि या पदवी की क़ैद नहीं रक्खी। जो उसकी दृष्टि में योग्य समझा जाता है वह नियत कर दिया जाता है। यह बड़े सुभीते की बात है। गवर्नमेंट को इस महकमे के लिए यहाँ सुयोग्य पात्र बहुत कम मिलते हैं। इसी से उसे विलायत से विद्वान् मँगाने पड़ते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए वह छात्रवृत्ति देकर यहीं योग्य कर्मचारी तैयार करती है। इस तरह तैयार किये गये कर्मचारियों की नामावली मालवीयजी ने माँगी। उत्तर मिला—अच्छा, दी जायगी (I shall furnish a list) पर कौंसिल की कारवाई के काग़ज़ों में यह नामावली हमारे देखने में नहीं आई। पूछने पर गवर्नमेंट ने यह भी कहा कि संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें खोजना, मोल लेना, उन्हें रक्षित रखना और उनका सम्पादन करना इस महकमे का काम नहीं। तथापि सर जान मार्शल और डाक्टर स्टीन ने कृपा करके ऐसी बहुत सी पुस्तकें गवर्नमेंट के लिए प्राप्त की हैं। जब गवर्नमेंट से यह पूछा गया कि, अच्छा, जिन पुस्तकों का सम्पादन लन्दन में हो रहा है वे क्या भारत में ही किसी पुस्तकालय में रक्खी जायँगी? तब उत्तर मिला—इस समय इसका जवाब नहीं दिया जा सकता। अस्तु। जिन प्रश्नों का उत्तर दिया गया उन्हीं से बहुत सी बातें काम की मालूम हो गईं।

६—पुलिस की रिपोर्ट।

संयुक्त-प्रान्त के महकमे पुलिस की रिपोर्ट की एक कापी हमें मिली है। यह रिपोर्ट १९१९ की है और पुलिस

तभी काम बन सकता है जब वह अपने पूर्व-संस्कारों को छोड़ने के लिए तैयार हो और दुराग्रह को दूर ही रक्खे।

३—मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा।

अच्छी बात है। शुभ लक्षण हैं। जागृति के चिह्न हैं। अन्ध-विश्वास का पर्दा हट रहा है। विवेक-सूर्य्य की किरणें फैलने लगी हैं। पाश्चात्य सभ्यता के अभिमानी और अँगरेज़ी भाषा के शायी भी अब जागे हैं। अपनी भाषा के द्वारा शिक्षा देने के लाभ उनकी समझ में आने लगे हैं। वे अँगरेज़ी के समाचारपत्रों और पुस्तकों में लेख प्रकाशित कर करके यह मानने लगे हैं कि अपनी भाषा में शिक्षा देने से कितना उपकार और न देने से कितना अपकार होता है और हो रहा है। विपक्षी दल का दल अभी बहुत अधिक है। पर उसका पक्ष न्याय्य नहीं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि किसी दिन इस दल के विरोधियों ही की जीत होगी।

जन-साधारण की भाषा में शिक्षा देने की उपयोगिता को गवर्नमेंट ने भी प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया है। इसी से उसने इन प्रान्तों के स्कूलों की कुछ कक्षाओं को छोड़ कर औरों में इतिहास, भूगोल और गणित आदि की शिक्षा मातृभाषा ही के द्वारा दी जाने का नियम कर दिया है। बङ्गाल, मदरास और बम्बई के विश्व-विद्यालयों में तो कालेज-क्लासों में भी किसी हद तक शिक्षार्थियों की भाषा का प्रवेश हो गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अँगरेज़ी न पढ़ें। नहीं, हम अँगरेज़ी पढ़ेंगे। उसे पढ़ना ही चाहिए। उसकी शिक्षा से हमारी ज्ञान-वृद्धि होगी। उसकी शिक्षा से हमारा भी हित है और गवर्नमेंट का भी। पर उस भाषा का ज्ञान-सम्पादन करने ही के लिए हमें उसे सीखना चाहिए। उसके द्वारा अन्यान्य विषयों की ज्ञान-प्राप्ति के लिए नहीं। एक और एक दो होते हैं। यह गणित-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञानांश है। इसे हम अपनी ही भाषा में क्यों न प्राप्त करें? इसके लिए दूसरी भाषा का आश्रय क्यों? पहले अपरिमित श्रम और अगम्य शक्ति का व्यय करके हम दूसरी भाषा सीखें। फिर उसके द्वारा हम सांसारिक ज्ञान का अर्जन करें। क्या ऐसा दृश्य इस भू-मण्डल पर और भी किसी सभ्य देश में देखने को मिल सकता है? यह इतनी मोटी बात कितने ही महाशयों—बड़े बड़े ज्ञानियों और विज्ञानियों—की समझ में नहीं आती। पर इस देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए।

जिस संस्कृत भाषा में अतुल-ज्ञान-राशि है, जो अपने गुणों के कारण देव-भाषा कहाती है, जो पूज्य पूर्व-पुरुषों की भाषा थी और जिन वेदों को भारतवासी अपौरुषेय बतलाते हैं वे वेद जिस भाषा में हैं वही भाषा, हमारे धर्म-ग्रन्थों की वही भाषा, हम कृष्ण वैनर्जी और भाण्डारकर की बनाई हुई पुस्तकों की सहायता से सीखने की चेष्टा करते हैं!!! अविवेक की पराकाष्ठा हो गई! जो बात हम अपनी भाषा में एक दिन में सीख सकते हैं उसी को हम अँगरेज़ी का अवलम्ब करके तीन दिनों में सीखते हैं और कहते हैं कि यही मार्ग सुगम, सीधा और स्वाभाविक है!!! यदि फ़्रान्स वालों से कोई यह कहे कि लैटिन और ग्रीक सीखना हो तो उन्हें अपनी भाषा द्वारा से नहीं, जर्मन भाषा पढ़ कर उसकी सहायता से सीखना चाहिए, तो कहने वाला पागल समझा जायगा और उसकी बात पर कोई ध्यान न देगा। पर भारत एक ऐसा देश है जहाँ अस्वाभाविकता का साम्राज्य अखण्ड राज्य है। यहाँ तो ऐसे न्याय-स्थान के परिपोषक भी सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं, लाखों होंगे।

अस्तु। ज्ञानोदय और सुबुद्धि का अङ्कुर दिखाई देने लगा है। आशा है, शीघ्र ही यह अभिलाषा सिद्ध होगी। धैर्य्य रखना चाहिए। सत्य का पीछा न छोड़ना चाहिए। प्रयत्न करते रहना चाहिए। दबाने से भी सत्य नहीं दबाया जा सकता। किसी न किसी दिन उसकी जीत अवश्य होती है।

४—मराठी-ग्रन्थोत्तेजक कमिटी, इन्दौर।

महाराजा होल्कर की रियासत में हिन्दी बोलने वालों की संख्या अधिक है। मराठी बोलने वाले भी कुछ हैं, पर बहुत कम। जिनकी भाषा मराठी है वे अधिकतर इन्दौर में हैं। महाराजा इन्दौर की कृपा मराठी पर भी है और हिन्दी पर भी। इस कृपा की मात्रा में न्यूनाधिकता होना स्वाभाविक है। जिसकी जो भाषा होती है उस पर उसका अधिक स्नेह होता ही है। इसका सबूत इन्दौर के महाराज, लेखक, समय समय पर, दिया ही करते हैं। यदि महाराजा होल्कर की कृपा हिन्दी पर न होती तो वे मालवा हिन्दी का विशेष उत्तम पुरस्कार करते। अभी कुछ ही दिन हुए

लेखक ने लिखा था कि कारणवश मैं हिन्दी के विषय में अपनी राय नहीं प्रकट करना चाहता। यह कारण महाराजा होल्कर की कृपा—हिन्दी के विषय में उनकी नीति—के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। बात सब कहीं एक ही है। राज-भाषा को प्रायः सर्वत्र ही प्रधानता दी जाती है। अस्तु।

मराठी में अच्छे अच्छे ग्रन्थ निकलें, इसलिए, गत वर्ष, महाराजा होल्कर ने ढाई हज़ार रुपया दिया था। इस पर कोई एक दर्जन लेखकों की बीस पुस्तकें मराठी-ग्रन्थोत्तेजक मण्डली ने पसन्द कीं। पुस्तकें अनेक विषयों की हैं, पर उनके नाम देखने से जान पड़ता है कि विशेष महत्त्व की पुस्तक एक भी नहीं। इन लेखकों को सिर्फ़ ८०० रुपया मिला। तीन महाशयों को सौ सौ रुपया दिया गया, और सबको इससे भी कम। एक को केवल १२ रुपये और एक को केवल २१ रुपये। राय-बहादुर चिन्तामणिजी वैद्य नामी विद्वान् और नामी लेखक हैं। उनको—"श्रीकृष्णचरित्र" लिखने के लिए एक ही सौ रुपया उत्तेजना-स्वरूप मिला। इससे सिद्ध है कि या तो ये पुस्तकें छोटी छोटी हैं या महत्त्व की नहीं। क्योंकि यह कम सम्भव है कि पुस्तकें बड़ी और महत्त्व की होने और पास बहुत सा रुपया रहने पर भी उत्तेजना देने में कंजूसी की जाती।

महाराजा होल्कर ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिए भी कुछ रुपया दिया या देने का वादा किया है। मालूम नहीं, उसका क्या हुआ। कुछ पुस्तकें लिखाई या प्राप्त की गईं या नहीं।

५—पुरातत्त्व-विभाग की अफ़सरी।

१० सितम्बर १९१९ को बड़े लाट के कौंसिल की जो मीटिंग् शिमले में हुई उसमें माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने पुरातत्त्व-विभाग (Archæological Department) की अफ़सरी इत्यादि के विषय में कई प्रश्न किये। उत्तर में अनेक अज्ञात बातें मालूम हुईं। कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

इस महकमे में इस समय १८ अफ़सर हैं। उनमें से ९ विलायती, ६ हिन्दू, २ मुसलमान और १ पारसी हैं। इस महकमे के सबसे बड़े अफ़सर सर जान मार्शल, एम० ए०, हैं। आपको नौकरी करते १२३ वर्ष हुए। एक हज़ार रुपये मासिक वेतन पर आप मुक़र्रर हुए थे। इस समय आपको १० सौ रुपये मिलते हैं। उनसे उतर कर डाकुर स्पूनर का नम्बर है। आपका वेतन १२३ सौ रुपये है। इस समय विलायत में आप कोई विशेष काम कर रहे हैं। तीन विलायती विद्वान् विलायत ही से भरती होकर आये हैं। ये तीनों ही सुपरिंटेंडेंट हैं। असिस्टंट सुपरिंटेंडेंटों का वेतन ६००—२५—२०० रुपये है। पर सेक्रेटरी आव् स्टेट को अधिकार है कि जो लोग विलायत में भरती हों उन्हें वे ४००—२५—६०० मासिक पर ले सकें। और यह बात वे बराबर करते भी आ रहे हैं। अन्यथा योरोपियनों और भारतवासियों के वेतन आदि में कोई भेद-भाव नहीं। गवर्नमेंट का कथन है कि इस महकमे में अफ़सरों की नियुक्ति के सम्बन्ध में उसने योग्यतासूचक किसी निश्चित उपाधि या पदवी की क़ैद नहीं रक्खी। जो उसकी दृष्टि में योग्य समझा जाता है वह नियत कर दिया जाता है। यह बड़े सुभीते की बात है। गवर्नमेंट को इस महकमे के लिए यहाँ सुयोग्य पात्र बहुत कम मिलते हैं। इसी से उसे विलायत से विद्वान् मँगाने पड़ते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए वह छात्रवृत्ति देकर यहीं योग्य कर्म्मचारी तैयार करती है। इस तरह तैयार किये गये कर्म्मचारियों की नामावली मालवीयजी ने माँगी। उत्तर मिला—अच्छा, दी जायगी (I shall furnish a list) पर कौंसिल की कारवाई के काग़ज़ों में यह नामावली हमारे देखने में नहीं आई। पूछने पर गवर्नमेंट ने यह भी कहा कि संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें खोजना, मोल लेना, उन्हें रक्षित रखना और उनका सम्पादन करना इस महकमे का काम नहीं। तथापि सर जान मार्शल और डाक्टर स्टीन ने कृपा करके ऐसी बहुत सी पुस्तकें गवर्नमेंट के लिए प्राप्त की हैं। जब गवर्नमेंट से यह पूछा गया कि, अच्छा, जिन पुस्तकों का सम्पादन लन्दन में हो रहा है वे क्या भारत में ही किसी पुस्तकालय में रक्खी जायँगी? तब उत्तर मिला—इस समय इसका जवाब नहीं दिया जा सकता। अस्तु। जिन प्रश्नों का उत्तर दिया गया उन्हीं से बहुत सी बातें काम की मालूम हो गईं।

६—पुलिस की रिपोर्ट।

संयुक्त-प्रान्त के महकमे पुलिस की रिपोर्ट की एक कापी हमें मिली है। वह रिपोर्ट १९१९ की है और पुलिस

के इन्स्पेक्टर जनरल की लिखी हुई है। इसकी कुछ बातें सुनिए—

१९१५ में फ़ी दस हज़ार मनुष्यों में ११.६ जुर्म हुए। यह संख्या मध्यप्रदेश, बम्बई, बङ्गाल, पञ्जाब और मदरास से अधिक, पर ब्रह्मदेश से कम है। तो ब्रह्मदेश को छोड़ कर और सब प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ अधिक जुर्म हुए। पुलिस के जितने मुक़दमे भेजे उनमें से ४,२२० झूठे समझे जाने अथवा और कारणों से ख़ारिज कर दिये गये। उन पर कुछ भी कारवाई न की गई। जिन जुर्मों की तहक़ीक़ात पुलिस ने की उनमें से सिर्फ़ फ़ी सदी ३८.२ में मुजरिमों को सज़ा हुई। इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि पुलिस का काम अच्छा नहीं रहा। जिन लोगों का चालान पुलिस ने किया उनमें से भी सिर्फ़ ७७ फ़ी सदी को सज़ा मिली। पुलिस के काम की यह बुरी दशा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। १९११ में यह फ़ी सदी ४३.५, १९१२ में फ़ी सदी ४३.९, १९१३ में फ़ी सदी ४१.४, १९१४ में फ़ी सदी ३८.८ और १९१५ में फ़ी सदी ३८.२ जुर्मों में यह मुजरिमों को सज़ा दिला सकी। अर्थात् बाक़ी के जुर्मों में यह मुजरिमों का ठीक ठीक पता न लगा सकी। डकैती और क़त्ल के सम्बन्ध में भी पुलिस का काम अच्छा नहीं रहा। इन सब बातों के कई कारण इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने बताये हैं। उनमें से एक यह भी बताया है कि सर्व-साधारण जन पुलिस की मदद नहीं करते। यह यथार्थ है। पर पुलिस को भी मदद का मुस्तहक़ बनने की चेष्टा करनी चाहिए। जब तक सर्व-साधारण के साथ उसका यथार्थ सम्बन्ध का न होगा और जब तक वह अपने काम से यह न साबित कर देगी कि वह प्रजा की रक्षा के लिए है—तब तक काफ़ी मदद मिलने की कम आशा है।

रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि पुलिस में कितने कर्म्मचारी क्रिश्चियन, कितने हिन्दू और कितने मुसलमान हैं। इस विषय में इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने लिखा है—

"I trust the day is distant when the principle of Communal representation will be applied to the police."

१९१५ में ९० पुलिस अफ़सर बरख़ास्त कर दिये गये और १०९ को सज़ायें मिलीं। पुलिस के अन्य कर्म्मचारियों में से ६८० को महकमे से सज़ायें मिलीं और २११ निकाले गये। ८३ आदमी काम छोड़ कर भाग गये और १८९१ ने इस्तीफ़े दे दिये। १७,११२ कर्म्मचारियों में से केवल ८,०१८ लिख पढ़ सकते थे। बाक़ी सब अपढ़ थे। फिर क्या आश्चर्य जो पुलिस का काम अच्छा न हो और प्रजा उससे पूरी पूरी सहानुभूति न रक्खे।

७—पुस्तकों का समर्पण।

कुछ लोग "समर्पण" की महत्ता का सत्यानाश बुरी तरह कर रहे हैं। वे न तो पात्रापात्र का विचार करते हैं, न देश-काल का। जिन्हें वे पुस्तक समर्पण करते हैं उनकी अवस्था और मान मर्य्यादा का भी ख़याल नहीं रखते। कोई कवियों का संग्रह करता है, कोई पावस के कवियों का, कोई बारहमासियों का। कोई नायिका-भेद के पुलिन्दे प्रकाश करता है। कोई किसी कहानी का अनुवाद लिख डालता है। इन संग्रहों और कहानियों को वह जिसे समर्पण करना चाहता है उसके पास फ़ुलस्केप भेज देता है और एक लम्बी चिट्ठी लिख कर आज्ञा देता है कि यह पुस्तक मैं आपको समर्पण करता हूँ, क़बूल कीजिए। जिस भलेमानुस के पास ये पुस्तकें आती हैं उसे उनके पैकेट खोलने पड़ते हैं, हस्त-लिखित कापियाँ देखनी पड़ती हैं, चिट्ठियाँ बाँचनी पड़ती हैं, उनके उत्तर लिखने पड़ते हैं और कापियों के पैकेट बना कर उन्हें फिर लौटाना पड़ता है। इसमें समय और श्रम का व्यर्थ नाश होता है और कभी कभी बदमज़गी भी पैदा हो जाती है। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं। वे बिना पूछे और अनुमति लिये ही पुस्तकों का समर्पण कर देते हैं और छप जाने पर उनकी एक दो कापियाँ पुरस्कार भेज देते हैं। यह प्रथा अत्यन्त निन्द्य और शिष्टाचार-नाशक है। जो ऐसा काम करते हैं वे अपने अभिभावकों की इच्छा के पात्र तो होते नहीं, रोष और घृणा के पात्र अवश्य होते हैं। किसी राजा-रईस के पास को यदि कोई आप ही सस्ता पुस्तक समर्पित की जाय तो जितनी निन्दा और जितने आक्षेप की बात है। पर समझ, भावना, सुरुचि और सुशीलता के पुतले इसकी कुछ भी परवा नहीं करते। एक बात इधर तो यहाँ तक देखा गया है कि जिस अपरिचित पुस्तक के लेख चुन कर बिना अनुमति के ही लोग उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करते हैं उन्हें उसी मासिक पुस्तक के सम्पादक को वे समर्पित भी कर देते हैं। इस कारण, इस

निर्भीकता, इस स्वाधीनता का कुछ ठिकाना है ! कुछ बिगड़े दिल देश-भक्त कठोर और आक्षेप-योग्य विचारों से पूर्ण पुस्तकें लिखते हैं। फिर वे उन्हें, बिना अनुमति लिये ही, ऐसे मनुष्य के नाम समर्पित कर देते हैं जो ऐसे विचारों को पास ही नहीं फटकने देता। वे यह नहीं सोचते कि यदि उनकी ऐसी पुस्तकों में कोई बात विधि-विरुद्ध निकल आय तो जिसे वे उस पुस्तक को समर्पित करते हैं उसकी कितनी हित-हानि हो।

बहुत कष्ट उठाने के कारण आज हमें इतना लिखना पड़ा है। आशा है, पुस्तक-प्रणेता और समर्पयिता सज्जन इस सम्बन्ध में अब सावधान हो जायँगे।

८—विलायती पत्रों के लेखकों को पुरस्कार।

लन्दन से विक्टोरियस नाम का एक समाचार-पत्र निकलता है। वह साप्ताहिक है। विन्स्टन चर्चिल साहब ने उसमें—महा-युद्ध के चार अध्याय—नामक चार लेख लिखे। उनके लिए उन्हें १२ हज़ार रुपया दक्षिणा मिली ! जिन संस्थाओं में उनके ये लेख निकले उनमें से प्रत्येक की ११ लाख कापियाँ बिकीं !!! बिक्री खूब होने और विज्ञापन खूब मिलने से ही प्रकाशक अधिक रुपया देकर लेख लिखाने में समर्थ होता है। योरप में जितने देश उन्नत दशा में हैं उनमें प्रायः सारा ही वयस्क नर-नारी-समूह लिख-पढ़ सकता है। जापान का भी प्रायः यही हाल है। इसी से वहाँ बहुत अधिक लोग अख़बार पढ़ सकते हैं। इन सब देशों में बड़े बड़े कारख़ाने और बड़े बड़े व्यवसाय हैं। वे प्रायः सभी वहीं के निवासियों के हाथ में हैं। इसीसे इन देशों के अख़बार ख़ूब विज्ञापन पाते हैं। इसके सिवा इन सभी देशों के निवासियों को देश-प्रबन्ध-सम्बन्धी अधिकार भी यथेष्ट प्राप्त हैं। अतएव अपने देश के काम-काज जिस तरह करना उन्हें अभीष्ट मालूम होता है उसी तरह करने की वे चेष्टा करते हैं। इस चेष्टा में वे सफल-मनोरथ भी होते हैं, चाहे शीघ्र हो चाहे कुछ विलम्ब से। यही कारण है जो अख़बारों में राष्ट्रीय विषयों की आलोचना पढ़ना उन्हें अच्छा लगता है। पश्चिम में जितने सभ्य देश हैं उन सब की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी है। इससे, तथा अन्य कारणों से भी, जो लोग अख़बार पढ़ते हैं, मोल लेकर पढ़ते हैं, माँग-जाँच कर अपना काम नहीं निकालते। हमारे देश के अख़बारों और मासिक पुस्तकों की भी उन्नति हो सकती है और उनकी बिक्री भी बढ़ सकती है। शर्त यह है कि सभी लोग लिख-पढ़ सकें और अख़बार तथा पुस्तकें पढ़ें; अपने ही देश वालों के बड़े बड़े कारख़ाने और व्यवसाय हों, और वे विज्ञापन छपावें, भारतवासियों को राष्ट्रीय अधिकार मिलें और उनके हाथ में भी कुछ शक्ति हो, आर्थिक सुभीता और आत्म-मर्य्यादा का ख़याल हो। अतएव सभी पाठक दाम देकर अख़बार और मासिक पुस्तकें मोल लें।

९—कैसर विलियम के सम्पत्तिवर्धक व्यवसाय।

लन्दन मैगेज़ीन नामक एक मासिक पुस्तक में जर्मनी के बादशाह कैसर विलियम पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि कैसर बादशाही भी करते हैं और अपनी निज की सम्पदा बढ़ाने के लिए व्यवसाय भी करते हैं। इस समय आपके पास कम से कम ३० करोड़ रुपये की सम्पदा कूती जाती है। गुप्त रीति से वे कितने ही व्यवसाय करते हैं, जर्मनी ही में नहीं और देशों में भी। अमेरिका, यहाँ तक कि कनाडा, के भी कितने ही कारख़ानों में उनका रुपया लगा हुआ है। सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि जर्मनी में तोप-बन्दूक आदि बनाने का दुनिया में जो सबसे बड़ा कारख़ाना है उसके भी आप हिस्सेदार हैं। यह कारख़ाना क्रप का कारख़ाना कहाता है। इसका वर्णन सरस्वती में छप चुका है। इस कारख़ाने को जो मुनाफ़ा होता है उसमें से कुछ कैसर को भी मिलता है। और अधिक मुनाफ़ा तभी हो सकता है जब अधिक काम हो। वर्तमान युद्ध के कारण इस कारख़ाने में काम अत्यधिक बढ़ गया है। इस दशा में मुनाफ़ा भी अत्यधिक होगा। उसका उचित अंश कैसर की भी पाकेट में आवेगा, इस दृष्टि से इस महायुद्ध के कारण कैसर को बेहद धन-प्राप्ति होगी। इसी से शायद कैसर ने यह युद्ध छेड़ने का पुण्य लूटा है। दिखाने का कारण और, पर भीतरी कारण और हो भी सकता है।

१०—इन्दौर के नये दीवान।

महाराजा होल्कर ने एक नई बात की है। आपने राज्य-कार्य्य-पटु एक कर्मनिष्ठ सज्जन को अपना दीवान बनाया है। उनका नाम है—राय-बहादुर मेजर रामप्रसाद दुबे, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०। मेजर महाशय के यहाँ कई पीढ़ियों से राज्य का आश्रय चला आ रहा है।

आपके पूर्वज इस राज्य में ऊँचे ऊँचे पदों पर थे। आपके पिता जनरल पारसकुमार दुबे होलकर की सेना के कमाण्डर-इन-चीफ़ रह चुके हैं। मेजर रामप्रसाद दुबे का जन्म इन्दौर ही में हुआ। विश्वविद्यालय की ऊँची ऊँची परीक्षायें आपने बड़ी नामवरी के साथ पास कीं। १८८४ में आपने होलकर की सेना में ग्रेजुएट बन कर प्रवेश किया। १८९८ में आप मेजर बनाये गये। १९०० में फ़ौजी महकमे से आपकी बदली हो गई। आप इन्दौर-दरबार के जुडिशल सेक्रेटरी हुए। स्टेट कौंसिल के सेक्रेटरी और सिविल जज का भी काम आपने कुछ समय तक किया। इसके बाद आपको स्टेट गैज़ेटियर की रचना का काम मिला, जिसका सम्पादन आपने बड़ी योग्यता से किया। इसके बाद कई सालों तक आपने बन्दोबस्त (Settlement) का काम किया। आपके इस काम से अफ़सर इतने ख़ुश हुए कि गवर्नमेंट आफ़ इंडिया की आज्ञा से आप, देवास और ग्वालियर की रियासतों में भी यह काम आपको करना पड़ा। कुछ समय तक आपने दुर्भिक्ष और प्लेग-निवारण का भी काम किया। १९१० में आप कौंसिल के रेविन्यू मेम्बर नियत हुए। १९१२ में आप महारानी होलकर और राजकुमार तथा राजकुमारी के साथ विलायत गये। वहाँ की आपने ख़ूब सैर की। १९१३ में आप जुडिशल कमिटी के मेम्बर बनाये गये। आपके किये हुए बन्दोबस्त के काम से ख़ुश होकर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने आपको, १९१३ में, रायबहादुर का ख़िताब दिया। जब से आप रेविन्यू मेम्बर बनाये गये तब से आपने इन्दौर राज्य में अनेक हितकर सुधार किये। आपकी योग्यता और कार्य्य-कुशलता को देख कर महाराजा होलकर ने अब आपको अपना प्रधान सचिव अर्थात् दीवान बनाया है। इन्दौर-नरेश और इन्दौर-राज्य की प्रजा को आपसे बहुत कुछ आशा है। लोगों को विश्वास है कि मेजर दुबे अपने काम से अपने को दीवान के पद के पात्र सिद्ध करेंगे और राजा तथा प्रजा दोनों के विश्वासभाजन बनेंगे।

११—आयुर्वेद-विद्यापीठ, हरद्वार।

आज मैं आपके सर्वमान्य पत्र के पाठकों का ध्यान एक ऐसी संस्था की ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ, जिस पर अब तक समाज का ध्यान बिलकुल ही नहीं गया है। यह संस्था भारत के हित के लिए तन, मन, धन से इस तरह परिश्रम कर रही है कि आज तक सार्वजनिक चन्दों से चलने वाली जितनी बड़ी बड़ी संस्थायें हैं उनमें इस ढंग की शायद ही कोई हो।

हरद्वार के ऐसे पवित्र तीर्थस्थान में, जहाँ अन्यान्य संस्थायें स्वार्थमूलक परन्तु सार्वजनिक धन से चल रही हैं, यह संस्था केवल अपने पुरुषार्थ तथा परिश्रम से अपने ही पैरों पर, बिना सार्वजनिक चन्दा और ग्रामटों की दया के, खड़ी है। ऐसी संस्थाओं की हमारे भारत को उतनी ही आवश्यकता है जितनी मछलियों को पानी की।

वर्तमान समय में भारत हर तरह निर्बल और निस्तेज हो रहा है। विद्यार्थि-समुदाय बी॰ ए॰ और एम॰ ए॰ के सर्टिफ़िकेट्स सम्पादन करने के लिए दिन रात आकाश पाताल एक कर करके, या तो सर्टिफ़िकेट्स सम्पादन करने से पहले ही भगवान् क्षयिताप्रसूत के शिकार बन जाते हैं, या उसके पश्चात्। कर्म-धर्म-संयोग से यदि कुछ बच रहे तो उनमें अधिकांश ऐसे होते हैं जो फूँक से उड़ जायँ।

साधारण जन-समाज भी प्रायः मिथ्या आहार-विहारों से बुरी अवस्था को पहुँचा जा रहा है। धनी लोग तो धन बल से किसी प्रकार थोड़ा बहुत, स्वास्थ्य-लाभ कर भी लेते हैं, पर निर्धन जनों और विद्यार्थियों का कोई त्राता नहीं।

सैराती अस्पताल बहुतेरे हैं, पर जिस तरह दीवानी की अदालतों में मुवक्किलों को (निर्धनों को) मुवक्किली का सर्टिफ़िकेट लेने के लिए अपनी मुवक्किली का प्रमाण देना बिना धन की सहायता के असम्भव है उसी तरह निर्धनों के दुर्दैव भी सब जगह उनके माथे पर सर्वकाल सवार रहते ही हैं। इस कारण निर्धन बेचारे, बिना मिले ही, अपने को यमदूतों के हाथों में सौंपना देते हैं।

इस भयङ्कर अवस्था को देखते हुए जब हम हरद्वार पहुँचे तब आयुर्वेदमार्तण्ड, आयुर्वेदाचार्य्य, श्रीयुत पण्डित शिवकण्ठजी वैद्य के "आयुर्वेद-विद्यापीठ, हरद्वार" को देख कर हमारी इस घोर अन्धकारपूर्णता में अनुराग—उत्साह—का सञ्चार हो गया।

यह संस्था क्या है, हमारे भारत के स्वास्थ्य की अँधेरी गुफा में प्रकाश फैलाने के लिए बिजुलीघर बनाने का कारख़ाना है। इसमें वनिकजी के निज के परिश्रम और धन से अब तक एक सौ बावन औषध तैयार हो चुके हैं। और वे अपने

प्रकाश से उस गुहा में अँधेरा फैला रहे हैं। कारख़ाना जारी है।

यह विद्यालय एक मात्र विद्या ही का आलय नहीं है। वरन् औषधालय भी है, जिसमें भारत के मृत कलेवर में प्राण सञ्चार करने के लिए आयुर्वेदविधि के अनुसार बनाई हुई हज़ारों रुपयों की लागत की दवाइयाँ पण्डितजी के मित्र के धन से तैयार रहती हैं और बनाई जा रही हैं। उनका उपयोग निर्धनों के लिए विशेषता से होता है।

इस औषधालय में निर्धनों का इलाज इस सहानुभूति से किया जाता है, मानों रोगी के जीवन-मरण के श्रेय या अपवाद की अधिकारिणी यही संस्था है।

इस विद्या-पीठ में एक सौ बाईस विद्यार्थी, जिनको ज्ञान दीपक का रूपक दिया गया है, दैव बन कर भिन्न भिन्न स्थानों में दीपक द्वारा अपने बाल-बच्चों का सुख-पूर्वक निर्वाह और स्वस्थ भारत का अंततः उद्धार कर रहे हैं।

मैंने स्वयं अनुभव किया है। मैं सात वर्ष से अनेक भयङ्कर बीमारियों से कष्ट पा रहा था। निर्बलता इतनी आ गई थी कि उठने बैठने की शक्ति नहीं थी। इसी में ज्वर, खाँसी और श्वास तथा कफ़ ने भी ज़ोर जमा लिया। ज्वर की यह दशा थी कि दिन रात कर्ज़ माँगने वाले की तरह शरीर में हाज़िर बना रहता था। सारे शरीर में और विशेषतः हाथ पैरों की उँगलियों में अत्यन्त दाह होता था। काशी, प्रयाग और गोरखपुर के अनेक वैद्यों, डाक्टरों और हकीमों ने 'राजयक्ष्मा' या 'हेक्टिक' का प्रादुर्भाव होना बतलाया था। इस रोग का रोगी अधिक से अधिक एक हज़ार दिन तक जी सकता है। मुझे उन लोगों ने गङ्गा किनारे रहने की सलाह दी। उनका अभिप्राय यह था कि मृत्यु का समय समीप है, अतः गङ्गा का सान्निध्य आवश्यक है। जब मैं हरद्वार आया, मुझे विश्वास नहीं था कि एक सप्ताह से अधिक समय तक मैं संसार में निवास कर सकूँगा। और जो मनुष्य मेरे चेहरे को देखता था वह ऐसा ही विश्वास करता था।

मैं मृत्यु की बाट जोह रहा था। अकस्मात् मुझे पण्डित शिवचन्द्रजी के मकान पर साइनबोर्ड लगा दिखाई पड़ा, जिसमें लिखा था कि अनाथों और निर्धनों को दवाई बिना मूल्य दी जाती है। मैं पण्डितजी से मिला। उन्होंने मुझे दिलासा दिया और मुफ़्त में दवाइयाँ देना आरम्भ किया और आवश्यकतानुसार, समय समय पर, उन मित्रों का अपने पास से २५) नक़द पथ्यादिक के लिए भी दिये। अनाथों और निर्धनों का इस तरह तन, मन, धन से इलाज करने वाला ऐसा उदार वैद्य शायद ही भारत में कोई हो।

अब तक मैंने जहाँ जहाँ इलाज किये हकीमों, वैद्यों और डाक्टरों ने सैकड़ों रुपये दवाई के मूल्य और फ़ीस के निमित्त से लिये। सब मिट्टी में गये। कुछ काम न हुआ। परन्तु पण्डित शिवचन्द्रजी ने मुझे मौत के पञ्जे से खींच कर बचा लिया और नये सिरे से जीवन दिया। विशेषता यह कि यद्यपि मैं उनका २५) शीघ्र अदा कर दूँगा, परन्तु आप उसकी वापसी की भी परवा नहीं करते।

यह भी उनकी तारीफ़ है कि मैं एक अपरिचित मनुष्य था—मेरा निवास दूर देश था। न तो पण्डितजी से मेरी पहचान, न सिफ़ारिश कराने का कोई साधन! केवल उनकी हार्दिक परोपकार-बुद्धि और उदारता ही इस मसाले का कारण है।

मैंने लगभग चार मास तक पण्डितजी से इलाज कराया। इस अवसर में मैंने प्रत्यक्ष देखा कि बीसों रोगियों के साथ उन्होंने ऐसा ही व्यवहार किया।

कहा जाता है कि हरद्वार के कुम्भ-मेले के अवसर पर, जिसमें लगभग पाँच लाख आदमी एकत्र हुए थे, पण्डितजी ने स्थान स्थान पर तीन औषधालय स्थापित किये थे। उनसे मेले के यात्रियों को मुफ़्त दवाई दी गई। बदरीनारायण के यात्रियों को रास्ते में पानी लगने से अकसर बीमारियाँ हो जाती हैं। उनके आराम के लिए पण्डितजी प्रति वर्ष हज़ारों पुड़ियाँ दवाई की मुफ़्त देते हैं।

मैं ईमान से कहता हूँ कि डाक्टरों और विशेषतः गवर्नमेंट के पेन्शनर सिविलसर्जनों ने 'फ़िरोज़ सिरप आफ़ हायपो फ़ास्फ़ाइट्स', 'हायपो फ़ास्फ़ाइट आफ़ लाइम', 'फ़ास्फ़ेट मिक्सचर आफ़ लाइम', 'सेने टोजन', 'काड् लिवर आइल', 'मीमास्ट का माल्ट शर्बत' आदि कितनी ही विलायती दवाइयों की बीसों बोतलें साफ़ करा दीं। परन्तु पण्डितजी की दवाइयों ने एक मास में जितना गुण दिखलाया, विलायती दवाइयों ने सात वर्षों में भी उतना नहीं दिखलाया।

दुःख का विषय है कि मतमतान्तर के प्रचार आदि जितने ही अनावश्यक कामों में धनी लोग हज़ारों रुपया ख़र्च कर डालते हैं, परन्तु जिससे मृत भारत के कलेवर में जीवन का संचार हो सकता है उस संस्था की उन्नति की ओर लोगों का ध्यान नहीं पहुँचता !

पण्डितजी इस बात को पसन्द नहीं करते कि जिस तरह अण्ड बण्ड दवाइयों के प्रचार करने वाले लोग, लम्बे चौड़े और झूठे नोटिस छपवा कर, अपनी दवाइयों की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा संसार में करते फिरते हैं उसी तरह आप भी करें। इसी लिए मैंने इस लेख को विस्तृत रूप से लिखा है। यदि संक्षेप से लिखता तो केवल इतना ही लिखना काफ़ी हो जाता कि परमेश्वर ने पण्डितजी को रोगी भारत के उद्धार के लिए अवतार रूप से भेजा है।

पण्डितजी की इस संस्था की उन्नति के लिए भारत का धनी-समाज अब भी सहायता न करे तो भारत के दुर्दैव का इससे अधिक मोटा प्रमाण दुर्लभ है।

भवदीय सेवक—
भौंरासा (ज़िला उज्जैन—मालवा) निवासी
बैजनाथ उपाध्याय,
प्रोप्राइटर औदुम्बर प्रेस, काशी।

पुस्तक-परिचय।

१—विज्ञप्ति-त्रिवेणिः—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ६९+७०; मूल्य १० आने; सम्पादक, मुनि जिनविजय; प्राप्ति-स्थान, जैन-आत्मानन्द-सभा, भावनगर। जैनों में पर्युषणपर्व बड़े महत्त्व का है। पूर्वकाल में उस समय जैनों के संघ अपने अपने आचार्यों के पास क्षमापना पत्र भेजते थे। उनमें आचार्यों की स्तुति, अपने कृतापराधों के लिए क्षमा की याचना, तथा अन्यान्य धार्मिक कार्यों का उल्लेख किया जाता था। आचार्यों से अपने यहाँ पधारने की विज्ञप्ति भी की जाती थी। इस तरह के विज्ञप्ति-पत्र बड़ी आलङ्कारिक भाषा में लिखे जाते थे। कोई गद्यमय होते थे, कोई पद्यमय, कोई गद्यपद्यमय। उनमें चित्र भी रहते थे। वे पुराने जन्मपत्रों की तरह पचास पचास हाथ लम्बे होते थे। कब से इनका प्रचार हुआ, यह तो ठीक ठीक नहीं ज्ञात, पर इस पुस्तक के सम्पादक महाशय का कहना है कि उन्हें विक्रम की तेरहवीं सदी तक के एक पत्र का कुछ अंश ताड़पत्र पर लिखा हुआ मिला है। प्रस्तुत पुस्तक में एक ऐसा ही विज्ञप्ति-पत्र प्रकाशित है। इस पत्र में अध्याय या सर्गों के बदले तीन त्रिवेणियाँ या तीन धारायें हैं। इसी से इसका नाम विज्ञप्ति-त्रिवेणि है। इसकी रचना विक्रम-संवत् १४८४ की है। इसके लेखक का नाम जयसागर उपाध्याय है। यह पत्र आचार्य जिनभद्रसूरि के नाम है। सिन्ध के मल्लिकवाहन नामक स्थान से यह लिखा गया था। उपाध्याय महाशय ने संवत् १४८३ में फरीदपुर नामक स्थान से नगरकोट (वर्तमान काँगड़े) की यात्रा की। उसी का वर्णन इस पत्र में है। इस वर्णन के पाठ से काव्यानन्द भी मिलता है और तत्कालीन अनेक ऐतिहासिक तथा सामाजिक बातों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। कल्पना कहीं कहीं बहुत सरस है। इसमें अनेक शब्दचित्र भी हैं। विज्ञप्ति गद्यपद्यात्मक है। इसमें जो कुछ लिखा है उसे पढ़ने से ज्ञात होता है कि चार पाँच सौ वर्ष पहले पञ्जाब में जैन धर्म्म का बहुत प्रचार था।

पुस्तक के प्रथम ६९ पृष्ठों में सम्पादक महोदय ने विज्ञप्तियों की प्राचीनता आदि के विषय में अच्छा प्रकाश डाल कर प्रस्तुत विज्ञप्ति का संक्षिप्त आशय हिन्दी में दिया है। साथ ही विज्ञप्ति-लेखक और आचार्य जिनभद्र सूरि तथा उनके शिष्यों आदि का हाल भी बड़ी खोज से लिखा है। तदनन्तर नगरकोट का भी ऐतिहासिक वर्णन दिया है। उपरान्त के ७० पृष्ठों में विज्ञप्ति-त्रिवेणि को मूल संस्कृत में ज्यों की त्यों प्रकाशित की है। पुस्तकारम्भ में इस विज्ञप्ति के एक पृष्ठ का फ़ोटो भी है।

यह पुस्तक अपने ढंग की पहली ही है। अब तक ऐसी विज्ञप्ति कहीं प्रकाशित न हुई थी। अनेक दृष्टियों से यह बड़े महत्त्व की है। सम्पादक जिनविजयजी ने इसे प्रकाशित करके बड़ा काम किया। यदि ऐसी ही और भी विज्ञप्तियाँ प्रकाशित हो जायँ तो जैन-साहित्य ही की नहीं, भारतीय इतिहास की भी बहुत श्रीवृद्धि हो सकती है।

*

२—आत्मकुमारी—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १०+११+११६+८१, मूल्य १ रुपये, छपाई बढ़िया, काग़ज़ बढ़िया,

वैवाहिक विचार में मग्न कुमार सिद्धार्थ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

प्रकाशक—केदारनाथ पाठक एंड सन्स, राजा दरवाज़ा, बनारस, से प्राप्य। बाबू चण्डीचरण सेन बँगला के बहुत प्रसिद्ध लेखक हो गये हैं। उनकी कुछ पुस्तकों का बड़ा आदर है। "टाम काका कुटीर"—उन्हीं की रचना है। वह अँगरेज़ी पुस्तक—"Uncle Tom's Cabin" का बँगला अनुवाद है। वह अब इंडियन प्रेस के द्वारा हिन्दी में भी प्रकाशित हो गई है। उसका नाम है—"टाम काका की कुटिया"। जिन्होंने इस कुटिया को पढ़ा होगा उन्हें अवश्य ही मालूम हो गया होगा कि चण्डीचरण बाबू की पुस्तकें कैसी होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं की बँगला पुस्तक—"एइ कि रामेर अयोध्या"—का अनुवाद है। मूल पुस्तक में कुछ ऐतिहासिक नामों आदि में त्रुटियाँ रह गई थीं। वे अनुवाद में दूर कर दी गई हैं। मूल पुस्तक में चित्र न थे। इस अनुवाद में २० हाफ़टोन चित्र हैं। ये चित्र अवध के बादशाहों, वज़ीरों और अन्य कर्मचारियों के हैं। मार्क्विस आव् हेस्टिंग्स, सर चार्ल्स मेटकाफ़ और लार्ड विलियम बेंटिंक के भी चित्र हैं। इनके सिवा शाही इमारतों आदि के तथा मूल लेखक और अनुवादक के भी चित्र हैं। आरम्भ में चण्डीचरण सेन का जीवनचरित और अन्त के ८१ पृष्ठों में उन सब ऐतिहासिक व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय है जिनके नाम इस पुस्तक में आये हैं। है तो यह उपन्यास, पर इसे पढ़ने से इतिहास के पाठ का सा आनन्द आता है। इस पुस्तक के नायक बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के समय में जो अनेक ऐतिहासिक घटनायें हुई हैं उनमें से सभी मुख्य मुख्य घटनाओं का उल्लेख इस पुस्तक में है। इसके अनुवादक बाबू मदनचन्द्र की भाषा भी मज़े की—बोलचाल की—है। कहानी बड़ी मनोरञ्जक है। इसमें एक त्रुटि रह गई है। इसके प्रकाशक श्रीयुत केदारनाथ पाठक का भी एक चित्र होना चाहिए था।

☼

३—संस्कृत-प्रबोध—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १००, मूल्य १२ आने; लेखक—पण्डित बदरीदत्त शर्मा, मिलने का पता—इंडियन प्रेस, प्रयाग; लेखक ही से प्राप्य। यह इस पुस्तक का दूसरा संस्करण है। "इस पुस्तक में वर्णोद्देश से लेकर तद्धित-पर्यन्त व्याकरण के सम्पूर्ण विषय क्रमशः उदाहरण और उत्पत्तिपूर्वक इस रीति पर समझाये गये हैं कि जिनको मननपूर्वक अवलोकन करने से संस्कृत-भाषा के जिज्ञासु बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे"। बात ऐसी ही है। हिन्दी की सहायता से जो लोग संस्कृत व्याकरण सीखना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक बहुत काम की है।

☼

४—The Thirteenth Report of the Indraprastha Hindu Girls, High School. देहली में हिन्दू लड़कियों के लिए एक हाई स्कूल है। उसी की यह तेरहवीं रिपोर्ट है। यह स्कूल चन्दे से चलता है। देहली की म्युनिसिपैलिटी भी इसे मदद देती है। इसका सञ्चालन एक सभा करती है। उसमें अनेक बड़े बड़े आदमी हैं। अध्यापिकाओं में कई मिस्ट्रिसन (शायद अँगरेज़-कुमारिकायें) भी हैं। कितनी ही अध्यापिकायें उच्च परीक्षायें पास हैं। लड़कियों की संख्या ३०० के ऊपर है। खाना बनाने, सीने-पिरोने और संस्कृत की भी शिक्षा दी जाती है। अनेक उच्चपदस्थ लोगों ने इसका मुआइना करके प्रसन्नता प्रकट की है। यह स्कूल सर्वसाधारण जनों के अनुग्रह का पात्र है। रिपोर्ट से मालूम होता है कि इसमें बहुत अच्छी शिक्षा दी जाती है।

☼

५—सभापति का भाषण। गत अक्टोबर में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन झाँसी में हुआ। उसके सभापति बाबू गौरीशङ्करप्रसादजी थे। आप बनारस में वकील हैं, हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं; उसकी प्रचार-वृद्धि के लिए सदा कार्य्य-तत्पर रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपके भाषण की प्रति-लिपि है। उसमें आपने जो कुछ कहा है सभी विचारवान् सज्जन उससे सहमत होंगे। यदि हम लोग बाबू साहब की दी हुई शिक्षाओं को ग्रहण करें और हिन्दी को अपनी मातृभाषा समझ कर उसकी उन्नति के उपाय में लग जायँ तो उसे समृद्धिशालिनी होते बहुत देर न लगे। इसके साथ ही ज्ञान-लाभ, शिक्षा-विस्तार आदि अन्य काम भी हमें हों। सभापति महाशय का यह भाषण अनेक दृष्टियों से प्रशंसनीय है।

☼

६—दो जासूसी पुस्तकें। गहमर, ज़िला गाज़ीपुर, के "जासूस" ने दो पुस्तकें भेजने की कृपा की है। दोनों

हुआ था, पर यह बात उसकी उक्तियों से सिद्ध होती है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते उन्हें इस अनुवाद से श्रीरत्नाकर की कविता का बहुत कुछ आनन्द मिल सकेगा। खेद है, इस काव्य के अनुवाद में कहीं कहीं पर सावधानता से काम नहीं लिया गया। भाषा भी कई जगह दुर्बोध हो गई है। इसके पहले सर्ग में कथा का आरम्भ इस श्लोक से हुआ है—

अस्ति [illegible] ।
[illegible] पूर्णमन्दरः ॥

अर्थात् दूसरे द्वीप में पूर्णमन्दर नाम का एक पर्वत है। उसके शिखर इतने ऊँचे हैं कि वे अमरावती के भवनों से लगते या उनको छूते हैं। वह पके हुए आम की मञ्जरी के समान सुनहली किरणों से, आकाश में, बिना मेघ वाली बिजली की शोभा या छटा छिटकाता है।

इसका अर्थ लिखा गया है—

(१) दूसरे द्वीप [illegible] पूर्णमन्दर नाम पहाड़ है। (२) उसके ऊँचे शिखर देवताओं की पुरी को छू रहे हैं। (३) उसके [illegible] की, पके आम की मंजरी के समान सुनहली किरणें आकाश में बिजली की [illegible] छिटकाती हैं।

मूल में "तडित्पिञ्जं" का विशेषण "अमेघां" है। उस "अमेघां" (अर्थात् मेघहीन) का अर्थ अनुवाद में छोड़ दिया गया है। यह विशेषण यहाँ पर बड़े काम का था। इसे छोड़ देने से अर्थ में खामी आ गया। अनुवाद के "प्रकाश" शब्द का वाचक कोई शब्द मूल में नहीं। तथापि उसके प्रयोग से कुछ हानि भी नहीं। हाँ, अनुवाद के अंश (१) में "एक" शब्द "पहाड़" के पहले रक्खा जाता तो ठीक था। और, अनुवाद के दूसरे अंश की इबारत यदि इस तरह लिखी जाती तो उसका मतलब समझने में अधिक सुभीता होता—

पके आम की मञ्जरी के समान, उसके [illegible] की किरणें आकाश में—इत्यादि

इस प्रकार भाषा और अनुवाद के कुछ छोटे मोटे दोषों के रह जाने पर भी यह पुस्तक अच्छी है। भाषा प्रायः सरल है।

श्रीकण्ठ-चरित काव्य पहले पहल बम्बई की काव्य-माला में निकला था। इस बात को कोई २७ वर्ष हुए। पर किस प्रति के आधार पर यह अनुवाद किया गया है, यह इस पुस्तक में कहीं नहीं लिखा। पुस्तकारम्भ में सर्गों की सूची भी नहीं दी गई; पर कवि के समय के निर्देशक और उसकी कविता के महत्त्व के सूचक, दो निबन्ध, अवश्य जोड़ दिये गये हैं। छपाई इन तीनों पुस्तकों की सुन्दर है।

❋

९—वेदसर्वस्व, प्रथम भाग। इस पुस्तक की एक कापी लाला खुशीरामजी, पेन्शनर, देहरादून, ने भेजने की कृपा की है। सवा रुपये में यह उन्हीं से मिलती है। इसमें कोई दो सौ सफ़े हैं। इसकी छपाई और इसका काग़ज़ साधारण है। पर विषय इसका असाधारण है। इसके लेखक— "श्रीमन्निखिलशास्त्रनिष्णातपण्डितस्वामिहरिप्रसाद वैदिकमुनि"—ने इसमें वेदों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ज्ञातव्य बातों की चर्चा की है। आपकी राय है कि— "वेद की शिक्षा मनुष्य के हृदय-क्षेत्र में देशहित, जातिहित तथा आत्महित का बीज यथोचित रीति से बो देती है"। यह बात कहाँ तक ठीक है, यह तो वेदज्ञ विद्वान् ही बता सकते हैं। हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक में आपने जो कुछ लिखा है उससे पढ़ने वालों को वैदिक साहित्य का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। वेदों की उत्पत्ति, वेदों का काल, वेदों का नामान्तर, संहिताओं के अवान्तर विभाग, वेदों की शाखायें—आदि प्रायः सभी वैदिक विषयों की चर्चा और आलोचना आपने की है। आपके लेख से सूचित होता है कि वैदिक साहित्य का आपने अच्छा परिशीलन किया है। अतएव, आपकी सभी बातों से कोई सहमत हो या न हो, वेदपूजकों और वेदप्रेमियों को आपकी पुस्तक का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। जानने योग्य अनेक बातें जो भिन्न भिन्न ग्रन्थों में बिखरी हुई पड़ी हैं उन सब को आपने इस पुस्तक में एकत्र करके वैदिक साहित्य के अनुरागियों पर बड़ी कृपा की है। आपकी पुस्तक का यह पहला ही भाग है। अगले दो भागों में आप ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों पर भी अपने विचार प्रकट करेंगे। तब कहीं आपका यह वेदसर्वस्व समाप्ति को पहुँचेगा।

❋

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) सत्यानन्द-तरङ्गिणी—रचयिता, पं० विद्यानाथ शर्म्मा, बनारस।

श्रीयुत महाराजा दरभङ्गा-नरेश, महाराजा अलीपुर, महाराजा मनीपुर आदि बड़े बड़े राजाओं से प्रशंसा-प्राप्त
अलीगढ़ शहर के प्रसिद्ध खानदानी वैद्य, गवर्नमेन्ट संस्कृत परीक्षा पास

पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री की बनाई ।

गवर्नमेन्ट से रजिस्ट्री की हुई ।

सज्जनो ! लीजिये आपकी इच्छा पूरी हुई अब आप अपने प्यारे बालकों को वैद्यकशास्त्र का पूरा हाल न जानने वाले पंसारी अत्तारों की मनगढ़न्त घुटी यानी सोंफ, उन्नाव, अमलतास वग़ैरह का शुल्लाब या कडुआ काढ़ा पिला पिला कर कमज़ोर और क्षीण-शरीर न बनाइए । हमने बालरक्षा घुटी वैद्यकशास्त्र के अनुसार अर्क रूप में स्वादिष्ट, मीठी बनाई है । इसके पिलाने से बालक पुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं और रोगों से बचे रहते हैं । कमज़ोर बालक मोटे ताज़े और ताकतवर हो जाते हैं । रोगी बालकों के ज्वर, अजीर्ण, दस्त, ऐंठ, सर्दी, कफ, खाँसी, पसली चलना, दूध डालना, पाखाने में कीड़े आना, पेट बढ़ना, शरीर घटना और दाँत निकलने के सब विकार निश्चय आराम होते हैं । मूल्य फी शीशी ॥) डाक महसूल ।)

कुछ नये प्रशंसापत्र ।

अमृत के समान तत्काल गुण दिखाती है । श्रीमान् बाबू लक्ष्मीनारायणजी दीक्षित मु० पो० भिण्ड राज्य ग्वालियर—से लिखते हैं मान्यवर ! नमस्ते । बालक को बालरक्षाघुटी सेवन कराया जाता है । अमृत के समान तत्काल गुण दिखाया है, दो शीशी और भेजिए ।

दवा नहीं सुधा है—बाबू महावीरप्रसादजी तुलसीपुर जि० गोंडा से लिखते हैं आपकी बालरक्षाघुटी मँगाई थी जैसा गुण लिखा है वैसा ही पाया दवा नहीं सुधा है ।

दो घंटे में पसली को आराम—श्रीमान् ज्वालाप्रसादजी जिमींदार सुरजपुर जि० बदायूँ । शास्त्रीजी ! मेरी लड़की की पसली चलती थी बालरक्षाघुटी पिलाने से दो घंटे बाद तंदुरुस्त होगई । परमात्मा आपके औषधालय की तरक्की करें ।

कुकुरखाँसी जाती रही—बाबू गुलज़ारीलालजी ओवरसियर कठौती जि० मण्डारा महोदय ! बालरक्षाघुटी के सेवन से बालक की कुकुरखाँसी को बिलकुल फ़ायदा होगया है, दो शीशी और भेजिये ।

बड़ी ही लाभ दायक है—श्रीमान् रायसाहिब बाबू भगवन्तरामजी सेक्रेटरी म्युनिसिपलबोर्ड अलीगढ़ । एक ऐसी औषध की बड़ी ज़रूरत थी कि जिससे बच्चों के रोग दूर हों और वे हृष्ट-पुष्ट बने रहें, ख़ुशी की बात है कि यह ज़रूरत अलीगढ़ शहर के विद्वान् और विश्वासयोग्य प्रतिष्ठित वैद्य पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री ने पूरी करदी है । मैंने बालरक्षाघुटी अपने बच्चों को पिलाई है । यथार्थ में यह बड़ी ही लाभ-दायक है ।

मरते मरते बच गया—श्रीमान् पं० गोपीनाथजी शर्मा—फर्रुखाबाद वैद्यजी ! मेरा नाती शीत से दब कर अत्यन्त शोकदायक दशा में पहुँच गया था बालरक्षा से मरते मरते बच गया । परमात्मा आपकी बड़ी अवस्था करें ।

विदुषी स्त्री का कथन—श्रीमती तारादेवीजी C/o बाबू कृपारामजी मेहता वकील सानेवाल लुधियाना—बड़ी कृपा हुई । बालरक्षा ने बहुत काम किया है, दो शीशी भेजो ।

पता—पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री, सुधावर्धक औषधालय नं० ७, अलीगढ़ सिटी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें अब तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' में अब तक इतनी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित्र बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ।।) आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य ।।)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण है कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। मूल्य ।।)

बालमनुस्मृति।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद किया गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ।।)

बालभागवत—पहला भाग।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ।।) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ।।)

बालगीता।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ।।)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था । उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालआरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प किस्से कहानियों के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरञ्जक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के फंदे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण ।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ।।) आठ आना

बालगीतावलि ।

१९—इसमें महाभारत में से ९ गीताओं का संग्रह किया गया है। उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ।।) आठ आने।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई २१ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—इसमें १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हम अठारह महापुराणों का सारांश 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल।

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का सारांश "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सब हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

बाल-कालिदास ।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ा मनोहारी हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और धार्मिक 'मन्त्रों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को कण्ठस्थ कर लेने से बालक चतुर बनेंगे और समय समय पर काम देती रहेगी। मूल्य केवल ।) चार आने है

नूतनचरित्र ।

(बाबू रामचन्द्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

राजर्षि ।

मूल्य ।।।=) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप कर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़याल से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान् उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं।

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के सर्वोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

धोखे की टट्टी ।

मूल्य ।=)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेक-नीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फ़ोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "आरब्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ।।।)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ।ı)

श्रीगौरांगजीवनी।

मूल्य =) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; किन्तु वैष्णव-धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

यवनराजवंशावली।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़)

इस पुस्तक से आप को यह विदित हो जायगा कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्पण कब से हुआ। किस किस बादशाह ने कितने दिन तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी कि कौन बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। बादशाहों की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें उल्लेख किया गया है। मूल्य =)

कालिदास की निरङ्कुशता।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक जो लेख-माला प्रकाशित की थी वही पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य देखेंगे। मूल्य केवल ।) चार आने।

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा।

यह पुस्तक सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी की लिखी हुई है। बिल्हण-कवि-रचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण-कवि की कविता के नमूने भी जहाँ तहाँ दिये हुए हैं। इनके सिवा इसमें बिल्हण-कवि का भी संक्षिप्त जीवनचरित लिखा गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य ≈)

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा।

[डाक्टर सम्पूर्णानन्द-स्मारक पुस्तकावली सं० १]

जब किसी आदमी के चोट लग जाती है और शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है तब उसको बड़ा कष्ट होता है। जहाँ डाक्टर नहीं हो वहाँ और भी दिक़त होती है। इन्हीं सब बातों को सोच कर, इन्हीं सब दिक़तों को दूर करने के लिए, हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सब प्रकार की चोटों की प्रारम्भिक चिकित्सा, घावों की चिकित्सा और विषचिकित्सा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में आघातों के अनुसार शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की ६५ तसवीरें भी छाप कर लगा दी हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य ।।।)

सुखमार्ग।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

नाट्य-शास्त्र।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, रङ्गमञ्च, जवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

बहराम-बहरोज़।

यह पुस्तक मुंशी देवीप्रसादजी, मुंसिफ़ की लिखी हुई है। उन्हों ने इसे तवारीख़ रौज़ेतुलसफ़ा से उर्दू भाषा में लिखा था, उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। उर्दू पुस्तक को यू० पी० के विद्याविभाग ने पसन्द किया, इसलिए वह कई बार छापी गई। अनेक विद्याविभागों में उसका प्रचार रहा। बहराम और बहरोज़ दो भाई थे। उन्हीं का इसमें वर्णन क़िस्से-रूप में है। तेरह क़िस्सों में यह पूरी हुई है। पुस्तक बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। लड़कों के बड़े काम की है। मूल्य ≈) तीन आने।

खेलतमाशा।

यह भी हिन्दी पढ़नेवाले बालकों के लिए बड़े मज़े की किताब है। इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरों के साथ साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है। इसे बालक बड़े चाव से पढ़ कर याद कर लेते हैं। पढ़ने का पढ़ना और खेल का खेल है। मूल्य ≈)

सचित्र

देवनागर-वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।≈)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी। इसमें प्राय: प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है। देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बड़े काम की किताब है। बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पाते ही वह खेल भूल कर किताब के सौन्दर्य्य के देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा। खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है।

हिन्दी का खिलौना।

इस पुस्तक को लेकर बालक ख़ुशी के मारे कूदने लगते हैं और पढ़ने का तो इतना शौक़ हो जाता है कि घर के आदमी मना करते हैं पर वे किताब हाथ से रखते ही नहीं। मूल्य ।–)

बालविनोद।

प्रथम भाग–) द्वितीय भाग –)। तृतीय भाग ≈) चौथा भाग ।≈) पाँचवाँ भाग ।≈) ये पुस्तकें लड़के लड़कियों के लिए प्रारम्भ से शिक्षा शुरू करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इसमें से पहले तीनों भागों में रंगीन तसवीरें भी दी गई हैं। इन पाँचों भागों में सदुपदेशपूर्ण अनेक कवितायें भी हैं। बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इनमें से पहले तीनों भागों को अपने स्कूलों में जारी कर दिया है।

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड २] दिसम्बर, १९१६ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २०४

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।॰)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची।

चित्र-सूची।

सूचना।

सर्वसाधारण को विदित ही है कि आज कल कागज़ और स्याही आदि पुस्तक छापने का सभी सामान अधिक महँगा हो गया है, इससे पुस्तकों के छापने में ख़र्च बहुत बढ़ गया है। अतएव हम को विवश हो कर अपने यहाँ की सब तरह की पुस्तकों के कमीशन का रेट घटाना पड़ा है। वह इस प्रकार कि १ जनवरी सन् १९१७ से स्कूली पुस्तकों तथा लॉ बुक्स पर १०) दस रुपया सैकड़ा और साधारण पुस्तकों पर ५) और ५) से ऊपर की पुस्तकें लेने पर १२॥) सैकड़ा कमीशन दिया जायगा, अधिक नहीं।

Owing to abnormal rise in the price of paper and other printing materials, we regret, we have been obliged, from January 1, 1917, to reduce our rates of commission as under:—

(1) On Books approved by the Text-Book Committee ... ... 10 %
(2) On Law Books ... ... 10 %
(3) On General Books ... from Rs. 5 and upwards ... ... 12½ %

निवेदक
मैनेजर इंडियन प्रेस,
प्रयाग।

छोटे बच्चों के लिये
हिंदुस्थान में मशहूर हुआ
के० टी०
डोंगरे
कंपनी
गिरगांव
बम्बई.
यह बालामृत
छोटे बच्चे
खुशी से पीते हैं.
का
बालामृत.
शीशी का दाम ॥।) डा. म. ।)
इस बालामृत से
छोटे बच्चे
ताकतवर होते हैं.
एजंटों की
जरूरत है ।
प्रशंसापत्र
सेठ कानजी गोविंदजी, हजरा स्ट्रीट कलकत्ता लिखते हैं:—
"डोंगरे का बालामृत बच्चों के वास्ते आशीर्वाद के समान है । एक दफ़ पिलाने से बच्चा फिर आप ही से मँगा लेता है । बालामृत पीने में मीठा और पुष्टिकारक है । इसलिये हर एक कुटुंबियों से हम सिफ़ारिश करते हैं कि बच्चों को (डोंगरे का) बालामृत देके आज़माइश कर लेवें ।"
प्रशंसापत्र

आधा दाम! आधा दाम!!

केवल एक महीने के लिये।

पसन्द न होने से मूल्य वापस।

हमारे नये थालाम की रेलवे रेगुलेटर वाच, देखने में सुन्दर, मज़बूत, और जंटिलमेनों के लिए घड़ी ही उपयुक्त है। मूल्य ७) अभी आधा ३॥) । सुविख्यात निकल सिलवर वाच, असली दाम ११) रु० अभी ५॥) । अठरोज़ी वाच (हफ़्ते में एक दफ़े चाभी की) असली दाम १८) अभी ९); सोने की छोटे साइज़ की असली दा० ३२) अभी १६); कलाई में बाँधने की घड़ी चमड़े सहित आ० दा० १०) अभी ५); हर एक घड़ी के साथ एक चेन और ६ घड़ी एक साथ लेने से एक घड़ी इनाम दी जाती है।

फूटबाल।

मुफ़स्सिल वासियोंका अनेक दिन का अभाव दूर करने के लिये हमने अनेक प्रकार के फूटबाल मँगाये हैं। आशा है इससे स्कूल, कालेज के विद्यार्थियों का अभाव दूर हो जायगा। इसके भीतर का रबड़ का ब्लाडर और बाहर का चमड़ा खूब मज़बूत तथा सुन्दर है। जल्दी ख़राब होने का बिल्कुल डर नहीं। दाम १ नं० ३), २ नं० ४), ३ नं० ५), ४ नं० ६), ५ नं० ७॥), पीतल का पम्प ॥)

पता—कम्पीटीशन वाच कम्पनी
२५ नं० मदनमित्र लेन, (S) कलकत्ता।

आरोग्य-शास्त्र।

वर्तमान समय के कुसंग से पैदा हुए भयंकर रोगों से मुक्ति दिला कर सदा सहज आरोग्य-मार्ग बताने वाली सुंदर पुस्तक विनामूल्य स्वप्नदोष को जड़ से नाश कर मनुष्य की मानसिक चिंता को दूर करने वाली अनुभूत सिद्ध औषधि—

मौक्तिकासव।
१ शीशी का मूल्य १॥) डा० म० ।)

राजवैद्य किशोरीदत्त शास्त्री, कानपुर

समाचारपत्रों में प्रशंसित पसंद न हो वापिस

हाथरस के असली पक्के चाकू.

विलायती रामस चाकुओं से कहीं बढ़ कर अच्छे पक्के सस्ते और मज़बूत हैं की० लकड़ी मूठ ।=) ॥) ॥) =)॥ -)॥ चंदन मूठ १=) ।=) ।-) ।) ॥) =)॥ सरोता ॥) ।=) कैंची ।॥) ॥=) उस्तरा ॥) ।-) चेनबेधा ।, ॥) =) बढ़िया हींग १=) १२) सेर।

पता—भारतहितकारी का० नं० ७०
हाथरस सिटी. यूपी। Hathras

जयपुर।

सागानेर का साफ़ा, धोती, रुमाल, छाल, पत्थर की मूर्त्तियाँ, प्याला, गिलास, चन्दन, पीतल के खिलौने, रङ्गीन चित्र पञ्चा, चूनड़ी, गोटा, ऊनी नमदा, आसन वगैरह सूचीपत्र आध आने का टिकट आने से।

पता—स्टारट्रेडिंग कम्पनी
जयपुर सिटी।

मालती-विहार तैल।

मालती-विहार—राजा महाराजों की प्यारी वस्तु है।
मालती-विहार—राजमहिलाओं के व्यवहार की सामग्री है।
मालती-विहार—धर्मीत्माओं के जी में आनन्द देती है।
मालती-विहार—कार्यकर्ताओं की तबियत खुश करती है।
मालती-विहार का मूल्य १) दर्जन का दाम १०) महसूल अलग।

ठिकाना—आर. डी. दास, प्रोप्राइटर—मदन पञ्चरंगी।
नं० १ पोस्ट—जमहोर, ज़िला गया।

पताः—जे० एन-एण्ड सन्स (ली) बड़ा बाज़ार कलकत्ता।

अन्धेरे में भी देखिये।

इस "रोशन" वाच जेबी घड़ी का डायल ऐसी धातु का बना है कि बिना रोशनी के घोर अन्धेरी रात में भी ठीक समय दिखलाई पड़ता है। मज़बूती तथा सुन्दरता की गारंटी ६ वर्ष क़ीमत ४) तथा चार रुपये नम्बर १ की क़ीमत ८॥) आठ रुपये बारह आने यही कलाई पर बांधने वाली की क़ीमत ७) सात रुपये यही सब से बढ़िया ३०) तीस रुपये डाकपैकिंग खर्च ।-) पांच आने।

नेत्राञ्जन

आंखों की सब बीमारियों की एक मात्र दवा है हम दावे के साथ कहते हैं कि शुरू हालत में जाले फूले तक को भी हटा देती है। क़ीमत १) एक रुपया डाक पैकिंग ख़र्च ।-) पांच आने, सलाई मुफ़्त।

बालवीरचरितावली

सरस्वती-प्रयाग, हिन्दी-बंगवासी, सद्धर्म-प्रचारक, पाटलीपुत्र, प्रताप, साप्ताहिक प्रताप, नवजीवन और मिथिला-मिहिर आदि समाचार पत्रों में प्रशंसित बालवीरचरितावली मँगाकर अवश्य पढ़िये, बालवीरचरितावली ही एक ऐसी पुस्तक है जो स्त्री, पुरुष बालक से बूढ़े तक सबको आनन्दित और उत्साहित करती है। क़ीमत ॥) आठ आने, डाकख़र्च =) दो आने।

मँगाने का पता—

जे० एन-एण्ड सन्स,

(ली) बड़ा बाज़ार—कलकत्ता।

व्यापारियों तथा विज्ञापन-दाताओं को लाभ !

हमारे द्वारा नोटिस बँटवाने, इश्तिहार चिपकवाने तथा अन्य विचित्र शैली द्वारा विख्यात कराने के लिये पत्र-व्योहार का पता—देवीदास खन्ना, एण्ड को०।

बनारस सिटी.

Advertisement by means of Funny Jokers !!!

काश्मीर के अनमोल रत्न !

[illegible] केसर १।-) [illegible] ११-) [illegible] कस्तूरी ११) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ७) [illegible] १) [illegible] कस्तूरी [illegible] १), [illegible] [illegible] १) [illegible] ११) [illegible] १-) [illegible] इत्यादि की सूची [illegible]।

पताः—काश्मीर स्टोर्स, श्रीनगर नं० ४६

खुली चिट्ठी

लीजिये ! जो चीज़ हिन्दी भाषा में कभी थी ही नहीं वह भी अब छप कर तैयार है। कोई भी हिन्दी पढ़ा ऐसा न होगा जो इससे पूरा पूरा काम न उठा सके। ज़मींदार, नम्बरदार, तहसीलदार, सेठ, साहूकार, पटवारी, ठेकेदार, ओवरसियर, मिस्त्री व मालिक मकानों के लिये तो यह वो रत्न समझिये। आप ज़रूर देखियेः—

१—"सिविल इंजीनियरिङ्ग" इसमें नये मकान बनाने, पुरानों की मरम्मत कराने के कुल सामान, ईंट पत्थर, चूना सीमेंट लकड़ी आदि का सुझाया बयान है। सब तरह के कच्चे-पक्के कुए और तालाब बनवाने, मरम्मत कराने और उनसे खेती में पानी देने के नये नये तरीक़े चित्र दे दे कर समझाये हैं। इसमें सड़कों के बनाने, मरम्मत कराने का भी पूरा बयान है। इन सब के अलावा और भी अनेक उपयोगी बातों का बयान है। सचित्र पक्की जिल्द का ३।)

२ "सर्वेइंग और लेवलिंग" मू० ॥) [illegible]

पं० गिरधरचन्द्र गौड़, १२० [illegible]

Ujjain [illegible] C.I.

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध ।

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान १०० पृष्ठ, सजिल्द—मूल्य केवल ३॥)

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामायण का यह हिन्दी-भाषानुवाद अपने ढँग का बिल्कुल ही नया है। इसकी भाषा सरल और सरस है। इस धर्मपुस्तक के पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—पाँच काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में रहेंगे जो कि जल्दी छप कर प्रकाशित होगा। अवश्य पढ़िए।

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य्य वर्षों से उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे, जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए सहस्रों आर्य्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्य समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य्य को यह ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है। कुल मिला कर रायल आठ पेजी साँची के ६१५+५० पृष्ठ हैं।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी का मूल्य केवल ४) ही है। जल्द मँगाइए।

सम्पत्तिशास्त्र ।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

आप जानते हैं जर्मन, अमरीका, इँग्लेंड और जापान आदि देश दिन दिन क्यों समृद्धिशाली होते जाते हैं? क्या आपको मालूम है कि भारतवर्ष दिन पर दिन क्यों निर्धन होता जाता है? ऐसी कौनसी चीज़ है जिसके होने से दूसरे देश मालामाल होते चले जाते हैं और जिसके अभाव से यह भारत ग़ारत हो रहा है? लीजिए, हम बताते हैं, बस चीज़ का नाम है "सम्पत्तिशास्त्र"। इसी के न जानने से आज यह भारत—भूखों मर रहा है, दिन दिन निर्धन होता चला जा रहा है। आज तक हमारे देश में, हिन्दी भाषा में, ऐसा उत्तम ग्रन्थ कहीं नहीं छपा था। लीजिए, इसे पढ़ कर देश की दशा सुधारिए। मूल्य सजिल्द का २॥) ढाई रुपये।

कविता-कलाप ।

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)

इस पुस्तक में ४६ प्रकार की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल्, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रँगीन भी हैं। मूल्य केवल २॥) रुपये।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

शिक्षा ।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

बाल-बच्चोंदार मनुष्यों को चाहिए कि स्पेन्सर की शिक्षा-सम्बन्धिनी मीमांसा को पढ़ें और अपनी सन्तति की शिक्षा का सुप्रबन्ध कर के अपने पितृत्व धर्म्म से उद्धार हों । जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर अवश्य आरूढ़ होंगे । इससे उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए । पुस्तक की भाषा क्लिष्ट नहीं है । पृष्ठ-संख्या ४०० से ऊपर है । कागज़ चिकना और मोटा है । छपाई साफ़ सुथरी है । सुवर्णाक्षरों से अलङ्कृत मनोहर जिल्द बँधी हुई है । आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है ; हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित है । पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है । ऐसी अनमोल पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ २॥) ढाई रुपया रक्खा गया है ।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला ।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं । दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं । हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं । प्रत्येक भाग में ४० हाफ़्टोन चित्र दिये गये हैं । मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये ।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित ।

इसमें सीताजी की जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवनघटनाओं का महत्त्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है । यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है । भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए । इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं । क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी । आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे ।

पृष्ठ २३५ । कागज़ मोटा । सजिल्द । पर, मूल्य केवल १।) सवा रुपया ।

प्रकृति ।

मूल्य १) एक रुपया

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है । बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है । यह वैज्ञानिक है । इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जानने वालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा । इसमें सौर जगत् की उत्पत्ति, आकाश-तरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं ।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया ।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'अद्भुतउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः क़िस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदयाकर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने ।

रॉबिन्सन क्रूसो ।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ताकर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है। कूपमण्डूक की तरह घर घर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। मूल्य १।)

कविता-कुसुम-माला ।

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी १०९ कविताओं का संग्रह है। मूल्य ॥=) दस आने ।

तरलतरंग ।

पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक संग्रह-रूप में है। इसमें—अपूर्व शिक्षक का प्रथम अध्याय—एक बढ़िया उपन्यास है। और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं। यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और उपदेशप्रद भी है। मूल्य ॥=) दस आने।

नवीन संशोधित तथा परिवर्धित द्वितीय संस्करण

क्षय-रोग ।

(अनुवादक—पं० बालकृष्ण शर्म्मा)

भारतसन्तानो! यदि इस रोग-राक्षस से अपनी तथा अपने प्यारों की रक्षा चाहते हो तो यह पुस्तक पढ़ो। यह तुम्हें बतावेगी कि सभ्य संसार ने किन सरल युक्तियों द्वारा ऐसे भयंकर रोगों पर विजय प्राप्त की है। यह हज़ारों में आशा का संचार करती है। संसार भर की मुख्य भाषाओं ने इसे अपनाया है। इसकी भाषा बड़ी सरल है। कोई १२० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ।-) पाँच आने।

कुमारसम्भवसार।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार दुबारा छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदीजी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने।

संक्षिप्त वाल्मीकीय-रामायणम्

(सम्पादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से सम्पादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। तो भी पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। विद्यार्थियों के बड़े काम की है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

योगवासिष्ठ-सार।

(वैराग्य और मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण)

योगवासिष्ठ ग्रन्थ की महिमा हिन्दू-मात्र से छिपी नहीं है। इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्रजी और गुरु वसिष्ठजी का उपदेशमय संवाद लिखा हुआ है। जो लोग संस्कृत-भाषा में इस भारी ग्रन्थ को नहीं पढ़ सकते उनके लिए हमने योगवासिष्ठ का सार-रूप यह ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किया है। इससे धर्म, ज्ञान और वैराग्यविषयक उत्तम शिक्षायें मिलती हैं। मूल्य ॥=)

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल जुत्शी, एम० ए० उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। उक्त पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगा कर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है:—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में)	२॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में)	।=)
हिन्द में मग़रबी तालीम (उर्दू में)	।=)

मानस-दर्पण।

(लेखक—श्री० ... पद्ममौलि ठाकुर, एम० ए०)

इस पुस्तक को हिन्दी-साहित्य का अलङ्कारग्रन्थ समझना चाहिए। इसमें अलङ्कारों आदि के लक्षण संस्कृत-साहित्य से और उदाहरण रामचरितमानस से दिये गये हैं। प्रत्येक हिन्दी-पाठक को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। मूल्य ।—)

संक्षिप्त इतिहासमाला।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई २०,२२ संख्याओं में पूर्ण होगी। अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।≡)
३—रूम का इतिहास	...	।=)
४—इंगलैंड का इतिहास	...	॥=)
५—स्पेन का इतिहास	...	।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' में अब तक इतनी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य।)

बालनीतिमाला।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ॥) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालोपदेश।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प किस्से कहानियों के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरञ्जक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के कामों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

वन में पाण्डवों का समुदाय ।

[इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ग्राहकों से निवेदन

बड़े हर्ष की बात है कि सरस्वती का यह सत्रहवाँ वर्ष भी सानन्द सम्पूर्ण हो गया। इस दिसंबर की संख्या के साथ जिन महाशयों का वार्षिक चन्दा समाप्त हो चुका है उनकी सेवा में आगामी जनवरी १९१७ ईसवी की संख्या चार रुपये के वी० पी० द्वारा भेजी जायगी। हमें दृढ़ आशा है कि हमारे समस्त हिन्दी-हितैषी ग्राहक महाशय सरस्वती का वी० पी० स्वीकार कर अपनी मातृभाषा के प्रचार और प्रतिष्ठा की वृद्धि में अवश्य सहायक बनेंगे।

जो महाशय आगामी वर्ष में ग्राहक नहीं रहना चाहते वे कृपा करके एक कार्ड द्वारा जल्दी सूचित कर दें, जिससे वी० पी० व्यर्थ न भेजना पड़े।

निवेदक,

मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सूचना

लड़ाइ के कारण छपाई का सामान कितना महँगा हो रहा है यह बात किसी से छिपी नहीं है। जिस सुगमता से काम पहले चलता था वह अब नहीं रही। इसलिए लाचार होकर हमें सरस्वती में विज्ञापनों की छपाई का रेट बढ़ाना पड़ा है। जनवरी १९१७ से हम निम्नलिखित निर्ख पर ही विज्ञापन छाप सकेंगे। आशा है कि विज्ञापन-दाता इसे अनुचित न समझ कर हम पर पहले के सी ही कृपा बनाये रक्खेंगे। निर्ख इस तरह है:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	...	...	१६) प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,,	...	...	९) ,,
⅓ ,, या ⅔ ,, ,,	...	...	५) ,,
¼ ,, या ½ ,, ,,	...	...	३) ,,

१—विज्ञापन के बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपाने वाले को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक साथ पेशगी देनेवालों से ≈) फी रुपया कम लिया जायगा।

निवेदक

मैनेजर, सरस्वती।

भाग १७, खण्ड २] दिसंबर १९१६—मार्गशीर्ष १९७३ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २०४

स्वदेश ।

(अमेरिकन कवि लावेल की एक कविता का भाव)

(१)

महत्व पुरुष का देश कहाँ है ? उसका कहाँ स्वदेश ?
होता है स्पष्ट कहाँ वह—सीमा में निक्षेप ।
किंचित् तुच्छ किसी घेरे में बच सकते हैं भाव ?
या उसमें रह कर क्या मन ही पा सकता है चाव ?
तो फिर ! वही ठीक होगा बस महत्व पुरुष का देश—
नील गगन-सा मुक्त चतुर्दिक् विस्तृत और सु-देश !

(२)

जहाँ सदा ही स्वतन्त्रता का गूँजा करता गान—
और मनुष्य मनुष्य जहाँ हैं, मान्य जहाँ भगवान ।
महत्व पुरुष का वही देश है ? उसमें बढ़ कर मान्य—
पाकर यथा न प्रवासी आत्मा देगा समधिक शान्त ?
तो फिर ! वही ठीक होगा बस महत्व पुरुष का देश—
नील गगन-सा मुक्त चतुर्दिक् विस्तृत और सु-देश !

(३)

जहाँ जहाँ पहना करते हैं मानव बारंबार—
दुःख-शोक की विकट बेड़ियाँ, सुख-सुमनों के हार ।
जहाँ तपस्वी आत्मा साधन करके कर्म्म कठोर,
बढ़ता रहता है शिव, सुन्दर और सत्य की ओर ।
वही ठीक है महत्व पुरुष का अपना सच्चा देश,
नील गगन-सा मुक्त चतुर्दिक् विस्तृत और सुदेश !

(४)

जहाँ एक भी जन रोता है पाकर कोई क्लेश,
हो बस उस विधुपर के घर से वही हमारा देश ।
पोंछे जहाँ एक सज्जन कर दुखी के दो नेत्र,
वही हमारा और तुम्हारा बने जीवन-क्षेत्र ।
मातृभूमि के सहित वही है महत्व पुरुष का देश,
नील गगन-सा मुक्त चतुर्दिक् विस्तृत और सु-देश !

भारतीय

पण्डित रमावल्लभ मिश्र, एम० ए०।

गया के पास दधपा नाम का एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पण्डित बाल-गोविन्द मिश्र नाम के एक शाकद्वीपीय ब्राह्मण रहते थे। वे अच्छे विद्वान् तथा क्रियावान् थे। उन्हीं के प्रथम पुत्र पण्डित रमावल्लभ मिश्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १९२८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी मङ्गलवार, १० आक्टोबर १८७१ ईसवी, को हुआ। १८८७ ईसवी में आपने हज़ारीबाग़ के ज़िला स्कूल से एंट्रन्स परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। छोटा-नागपुर के सब स्कूलों के उत्तीर्ण छात्रों में आपका दूसरा नम्बर हुआ। इसलिए सरकार से आपको दो वर्षों तक १५ रुपया मासिक छात्रवृत्ति मिली। १८८९ ईसवी में आपने पटना-कालेज से एफ़० ए० की परीक्षा दी। उसमें भी आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और दो बरसों तक २० रुपया मासिक छात्रवृत्ति पाई। इसी कालेज से १८९१ ईसवी में आपने संस्कृत के साथ बी० ए० की परीक्षा दी। इस परीक्षा में आप कलकत्ता-विश्व-विद्यालय में सर्वप्रथम हुए। अतएव आपको सरकार से दो सुवर्ण-पदक और दो बरसों तक २५ रुपया मासिक छात्रवृत्ति मिली। १८९३ ईसवी में आपने कलकत्ता-संस्कृत-कालेज से संस्कृत में एम० ए० परीक्षा दी। उसमें आप कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के उत्तीर्ण छात्रों में द्वितीय हुए। इसलिए आपको सरकार से एक रजत-पदक और २५० रुपये की पुस्तकें पारितोषिक में मिलीं।

१८९३ ईसवी में आप हज़ारीबाग़ में सबडिपुटी कलेक्टर हुए। दस महीने बाद प्रतियोगिता (कम्पि-टेटिव) परीक्षा में पास होकर डिपुटी कलेक्टर हुए। छः महीने मुँगेर में रहने के अनन्तर क्लोज़ल के काम पर आपकी नियुक्ति हुई। तब आप मनि-हारी भेजे गये। मासिक वेतन आपका ४०० रुपया नियत हुआ। फिर आप भागलपुर में छः महीने के लिए डिपुटी-मैजिस्ट्रेट हुए। इसके बाद पटने के कमिश्नर साहब के "पर्सनल असिस्टेंट" हुए। फिर ढाई वर्ष के लिए बोर्ड-कलेक्टर के सेक्रेटरी हुए। इस समय आपका वेतन १२०० रुपया नियत हुआ। इस के बाद आप सेक्रेटरी बोर्ड आफ़ रेविन्यू बनाये गये। तब आपको मासिक वेतन १८०० रुपये मिलने लगा। १९११ में आप बीरभूम के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट बनाये गये और १९१२ के मार्च में पुरी के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट। पिछले पद पर आप १९१३ ईसवी के दिसम्बर में मुस्तक़िल हो गये और पुरी में ज़िले का पूर्ण अधिकार प्राप्त करके बड़ी योग्यता से अपना कार्य करने लगे। फिर १९१४ ईसवी में आप बालासोर ज़िले के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। पुरी के तथा यहाँ के लोग भी आपके न्याय तथा शासन से बहुत प्रसन्न थे।

इसी समय आपके पिता का शरीरान्त हुआ। आप ही ने पिता का श्राद्ध-कृत्य किया। इसी काम ही में आपके शरीर में ज्वर का प्रवेश हुआ। तथापि सब कार्य समाप्त करके १९१४ ईसवी के मार्च में फिर बालासोर जाकर आप अपना काम करने लगे। बालासोर में आप राजयक्ष्मा से ऐसे पीड़ित हुए कि छुट्टी लेकर चिकित्सा के लिए आपको कलकत्ते जाना पड़ा। यहाँ भी आप अच्छे न हुए। अत-एव मँसूरी-देहरादून गये। वहीं एक जुमाई १९१५ ईसवी के प्रातःकाल, आठ बजे, आपका शरीरान्त हो गया।

पण्डित रमावल्लभ की मृत्यु से शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की बड़ी हानि हुई। वे अपनी जाति के मुकुट-मणि थे। श्रीमान् लाट साहब ने भी आपके

सुकार्य्य की प्रशंसा की थी। आपने अपनी कार्य्य-कुशलता से ही इतना बड़ा पद पाया था।

पण्डितजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। व्याकरण तथा काव्य में आपकी अच्छी गति थी। स्वभाव आपका बड़ा कोमल तथा नम्र था। वैदिक धर्म पर आपकी पूर्ण श्रद्धा थी। पितृभक्तों में आप अद्वितीय थे। आप कलेक्टर का पद पाकर भी शमला, अपकन, पाया, चादर, आदि सभ्य हिन्दुस्तानी पोशाक ही धारण करते थे। संस्कृत के अतिरिक्त व्रजभाषा में भी आप कुशल थे। हिन्दी के तो आप बड़े ही प्रेमी थे। हिन्दी के प्रचारार्थ सदा अनेक कार्य्य किया करते थे। राजा-महाराजों तथा बन्धु-वर्गों के साथ भी हिन्दी ही में वार्तालाप तथा पत्रव्यवहार करते थे। आपका हिन्दी-प्रेम प्रशंसनीय था।

अक्षयवट मिश्र

डेनमार्क के किसानों की सहकारिता और उनका सम्मिलित व्यापार।

कृषि-कार्य्य में योरप के देशों में डेनमार्क सबसे बढ़ कर है। उस देश का मुख्य रोज़गार खेती करना और खेती की पैदावार से उपयोगी वस्तुयें बनाना और उनको बेचना है। वहाँ खेती के साधारण कामों को प्रत्येक किसान अकेले ही करता है, पर असाधारण काम और उपज से उपयोगी वस्तुयें बनाना और बेचना मिलजुल कर किया जाता है। प्रत्येक गाँव, तहसील और ज़िले के सब किसान, या किसानों के लोग, मिल कर, ऐसी दशा में, अपना माल साझे में बनाते और बेचते हैं। यह साझेदारी अद्भुत प्रकार की है। उससे होने वाले काम आश्चर्य-जनक हैं। अतएव इस लेख में उसी साझेदारी का वृत्तान्त लिखा जाता है।

डेनमार्क योरप के उत्तरी भाग में एक छोटा सा स्वतन्त्र देश है। उसकी आबादी केवल २७,२१,००१ है और विस्तार १७,११२ वर्गमील है। वहाँ के लोग ईसाई मत के हैं। वहाँ के कृषक खेती, गोपालन और वाणिज्य—तीनों काम करते हैं। यही तीन काम हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में वैश्य के लिए बताये गये हैं। पर भारतवर्ष के किसान खेती ही करते हैं। नहीं मालूम उन्होंने शेष दो काम कब से छोड़ दिये हैं। सन् १८८२ ईसवी के पहले डेनमार्क के किसानों की आर्थिक दशा प्रायः वैसी ही थी जैसी आज कल भारतवर्ष की है। परन्तु अब दुनिया भर के कृषकों में डेनमार्क के कृषक सबसे ज़ियादह धनाढ्य, शिक्षित और कृषि-कार्य्य में निपुण हैं। उनकी उन्नति उनके परस्पर मेल-जोल और साझे के व्यापार से हुई है। डेनमार्क का मुख्य रोज़गार खेती है। वहाँ खेती-सम्बन्धी अधिक काम सहकारिता से होते हैं। भारत का भी मुख्य रोज़गार और जीवन-व्यापार खेती ही है। इस लिए भारतवासियों को डेनमार्क का अनुकरण करना उचित है।

भारत के कृषक ही क्या, सभी लोगों की आर्थिक दशा बहुत हीन है। वे खेती ही के कारण सुखी या दुखी होते हैं। जिस साल ज़मीन की पैदावार अच्छी होती है उस साल प्रजा सुख पाती है; जिस साल खेती की पैदावार कम होती है उस साल सभी लोग पीड़ित होते हैं। इस दशा में खेती और खेती करने वालों की दशा सुधारने में सहायता देना सब का कर्तव्य है।

गाँवों में तो किसान, (जिनमें ब्राह्मण और क्षत्री भी शामिल हैं) बढ़ई, लुहार, चमार, नाई, बारी, धोबी, कहार, पासी वग़ैरह सभी जातियाँ खेती पर ही गुज़र करती हैं। ये सब अपना अपना हिस्सा फ़सल के तैयार होने पर पाती हैं और साल भर किसानों को काम में मदद देती हैं। भारत के लोगों की पुरानी सहकारिता का यह चिह्न अभी तक शेष है। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि भारतवर्ष के प्राचीन मनुष्यों में कितना भारी मेल-मिलाप रहा होगा। वह मेल-मिलाप अब बहुत कुछ जाता रहा है, और उसके न रहने से ही लोगों की दुर्दशा हुई है। इस दुर्दशा को दूर करने के लिए मेल-मिलाप के पुनः सञ्चार की बड़ी आवश्यकता है।

आपस की फूट से भारत के प्रायः सभी लोग ग़ारत हुए हैं; पर किसानों पर उसका असर बहुत ही अधिक हुआ है।

से बढ़ रहा है। यहाँ पर हम उस फूट की तरफ़ इशारा नहीं करते जो मुक़द्दमेबाज़ी से सम्बन्ध रखती है, बल्कि हमारा आशय एक और ही फूट से है जिससे भारत के निवासी बहुत कुछ अपरिचित हैं। इस फूट को आप तभी समझेंगे जब डेनमार्क के कृषकों की एकता को जान लेंगे। गुरु गोविन्द-सिंह ने अपने पदों में कहा है—"भर अचेत पाप मैं कर रे"। हमारे कृषक वैसा ही एक अचेत पाप कर रहे हैं। जब तक उस पाप का प्रायश्चित्त पूरे तौर से वे न कर लेंगे तब तक उनकी आर्थिक दशा सुधरने की सम्भावना नहीं।

भारतवासियों में घोर अविद्या और उससे उत्पन्न घोर फूट को देख कर बहुधा लोग कह उठते हैं कि भारतवासियों में मेल-मिलाप से काम होना असम्भव है। यह ख़याल बिलकुल ग़लत है। मुक़द्दमेबाज़ी चाहे रहे चाहे न रहे, पर हमको पूरा विश्वास है कि जिस समय हमारे किसान सह-कारिता के लाभों को और उसके अभाव से होनेवाली घोर हानियों को, जो अब हो रही हैं, समझ जायँगे, उस समय वे उसकी तरफ़ ख़ुद बख़ुद, खिंच खिंच कर दौड़ेंगे, क्योंकि जान बूझ कर कोई अपना नुक़सान नहीं चाहता और न अपना फ़ायदा ही छोड़ देता है। भारत के किसान अनाज अधिक बोते हैं। उसके दाम उन्हें कम मिलते हैं। उसके बदले दूसरी बढ़िया चीज़ों को बोने और मिल कर काम करने से उनकी आमदनी बढ़ सकती है। इसके सिवा वे आज कल अपनी कितनी ही पैदावार का पूरा दाम नहीं पाते। उनके अनाज तो बड़े कम दामों में, बहुधा लागत से भी कम दामों में, चली जाती हैं, जिससे वे हमेशा क़र्ज़दार बने रहते हैं। इस भेद को वे नहीं जानते। हम आगे इसी भेद का सविस्तर वर्णन करेंगे। इसके पहले यह बता देना आवश्यक है कि हमने इस भेद को कैसे समझा।

बहुत काल से हमारे चित्त में अभिलाषा थी कि हम यह जान जायँ कि योरप के साधारण लोगों के मुक़ाबले भारत के साधारण जन कैसे हैं। इस इच्छा को पूरा करने के लिए हमने सन् १९३१ ईसवी में योरप की यात्रा की। हमारा मुख्य अभिप्राय यह था कि हम अपने नेत्रों से योरप की दशा देखें कि वहाँ के लोग किस तरह रहते हैं, उनकी वास्तविक दशा कैसी है, किन किन बातों में हमारा देश उनसे पिछड़ा हुआ है और किन बातों में योरप हमसे आगे बढ़ा है। इन बातों की खोज में हम योरप के बड़े बड़े नगरों में घूमे। पर वहाँ की दशा से हमें सन्तोष न हुआ। हमने अपना बहुत सा समय भारत के गाँवों में व्यतीत किया है। इस लिए हमें योरप के भी ग्रामीण जनों की दशा जानने की उत्कट अभिलाषा थी। तदनुसार हमने वहाँ के गाँवों में घूम फिर कर उनके रहने के, उठने-बैठने के, सोने के, खाने-पीने के तरीक़ों का भली भाँति अवलोकन करके उनकी वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त किया, जो नित्य प्रति अपनी डायरी (रोज़नामचे) में लिखते गये।

इस यात्रा में कितनी ही नई बातें और नये दृश्य हमने देखे। उनमें से तीन मुख्य बातें भारत की उन्नति के लिए हमें बहुत ही आवश्यक मालूम हुईं। एक तो सर्व-साधारण मनुष्यों और स्त्रियों में उपयोगी शिक्षा का प्रचार, दूसरे कृषकों की सहकारिता और उनका सम्मिलित व्यापार, तीसरे नाना प्रकार के पदार्थ बनाने के कारख़ाने। इन तीनों बातों में योरप के देशों से भारत बहुत पिछड़ा हुआ है। इनके सिवा हमारे देश में और भी बहुत बातों की कमी है, पर उनका ज़िक्र करना यहाँ ज़रूरी नहीं। इन तीन बातों में भी कृषकों की सहकारिता और उनका सम्मिलित व्यापार कृषिप्रधान देशों की उन्नति का मूल बीज है। इसका पूरा पूरा हाल हम एक पुस्तक में छपा रहे हैं। छप चुकने पर उसे देखने से पाठकों को इस विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होगा। तब तक उसकी बानगी मात्र इस लेख में दिखाई जाती है।

कहा जा चुका है कि डेनमार्क के कृषक केवल खेती ही नहीं करते, किन्तु कृषि की पैदावार से उपयोगी वस्तुएँ तैयार करने और उनको अच्छे प्रकार बेचने का काम भी ख़ुद ही करते हैं। जोतने-बोने और फ़सल को इकट्ठा करने का अधिक काम हर एक कृषक आप ही करता है, पर दूसरा माल तैयार करने और बेचने में वह अकेला ही अपना बल और ज़ोर नहीं लगाता, किन्तु अपने पड़ोसी कृषकों की सहकारिता से कार्य करता है।

आपस मिल कर किसी काम में मेल रखने को सहकारिता कहते हैं। अँगरेज़ी-भाषा में इसे कोआपरेशन (Co-operation) कहते हैं। दूध के कारख़ानों में भिन्न भिन्न व्यक्ति के माल को मिला कर उससे उपयोगी पदार्थ तैयार करके

परलोकवासी पण्डित रमावल्लभ मिश्र, एम० ए०।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

और उन्हें बेचने को हम सम्मिलित व्यापार कहते हैं। कृषि-कर्म के सिवा डेनमार्क के किसान क्रय-विक्रय के काम भी परस्पर मेल-मिलाप अर्थात् सहकारिता से करते हैं।

सहकारिता में सहकारी जनों के मेल की आवश्यकता है—नक़द पूँजी के मेल की नहीं। नक़द पूँजी तो उनके मेल के प्रभाव से सहज ही में प्राप्त हो जाती है। सहकारिता का आशय यह है कि जैसे धनवान् मनुष्य महान् कार्य्यों को करते हैं वैसे ही निर्धन जन भी आपस के मेल से उन्हें कर सकें।

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः।
साधयन्त्याशु कार्य्याणि काककूर्ममृगाखुवत्॥

तरह तरह के कार्य्य, जिन्हें एक मनुष्य अकेले नहीं कर सकता, अपने हम-पेशे वालों के साथ मिल कर वह आसानी से कर लेता है। यही सहकारिता है।

सम्मिलित व्यापार अनेक प्रकार से होता है। एक रीति है ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों की, दूसरी रीति हमारी सरकार की चलाई कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटीज़ (Co-Operative Credit Societies) हैं। परन्तु डेनमार्क के कृषकों की सहकारिता और उनके सहकारी व्यापार इन दोनों से अलग हैं। उनके मूल सिद्धान्त ये हैं—

(१) कम्पनियों की पूँजी हिस्सों (Shares) से एकत्र की जाती है। सहकारिता में हिस्सों की पूँजी की ज़रूरत नहीं। व्यापार के लिए आवश्यक धन बैंकों से मुनासिब ब्याज पर मिल जाती है। हर एक समासद अपनी हैसियत के मुताबिक उसका ज़िम्मेदार होता है।

(२) कम्पनियों के हिस्सों की हदबन्दी रहती है, जिससे नये या अधिक हिस्से लेने वाले समान शर्तों पर शरीक नहीं हो सकते। सहकारिता के द्वार हमेशा खुले रहते हैं। नया समासद जब चाहे समान शर्तों पर शामिल हो सकता है, जिन पर पुराने समासद सम्मिलित हुए थे।

(३) कम्पनियों के कार्य्य के प्रबन्ध में राय देने का अधिकार हिस्सों की तादाद पर अवलम्बित रहता है। सहकारिता में छोटे बड़े सभी समासदों को राय देने का समान हक़ होता है। इससे बड़े समासद छोटे समासदों की राय को दबा नहीं सकते।

(४) कम्पनियों के हिस्सेदारों की ज़िम्मेदारी उनके हिस्सों के अनुसार होती है। सहकारिता में प्रत्येक समासद सब के लिए और सब समासद प्रत्येक के लिए (One for all and all for one) ज़िम्मेदार होते हैं। इससे उनको क़र्ज़ लेने में बड़ा सुभीता होता है। डेनमार्क के कृषकों को मामूली ब्याज चार आने आठ पाई और ज़ियादह से ज़ियादह छः आने आठ पाई सैकड़ा मासिक देना पड़ता है।

(५) सम्मिलित व्यापारों का इन्तज़ाम समासदों की सम्मति से ही होता है। समासद ही उनके मालिक होते हैं। सब समासद मिल कर एक कारबारी कमिटी के पञ्चों का चुनाव करते हैं। चुने हुए पञ्च कारख़ाने का, क्रय-विक्रय का और हिसाब का उचित प्रबन्ध करते हैं, योग्य कर्मचारियों को नौकर रखते हैं। हर छमाही पर सब समासद मिल कर कारोबार का हिसाब समझते हैं। जहाँ कोई त्रुटि होती है उसकी दुरुस्ती का इन्तज़ाम वहीं करते हैं और सब कामों पर पूरी निगरानी रखते हैं।

डेनमार्क के कृषकों की सहकारी-मण्डलियों (Co-Operative Unions and Societies) का आरम्भिक काम इस क्रम से होता है। एक या अनेक काम करने वाले कृषक आपस में मिल कर सम्मिलित कार्य्य की बातचीत करके एक प्रतिज्ञापत्र तैयार करते हैं। उस पर शामिल होने वाला हर एक आदमी अपने दस्तख़त करता है। उस पत्र में दो मूल प्रतिज्ञायें की जाती हैं—

(१) प्रत्येक समासद अपनी खेती से प्राप्त हुई, बिकने या दूसरा माल बनाने योग्य, सम्पूर्ण वस्तु को अपनी ही सहकारी-मण्डली की मारफ़त तैयार करावेगा अथवा बेचेगा, किसी दूसरे प्रकार से उसका कुछ भी हिस्सा अलग न करेगा।

(२) अपने सहकारी कारख़ाने या दुकानदारी के लिए जो पूँजी उधार ली जावेगी उसके लिए प्रत्येक समासद सब के लिए और सब समासद प्रत्येक के लिए ज़िम्मेदार होंगे।

इस प्रकार का प्रतिज्ञापत्र लिख जाने पर, कारख़ाना या दूकान खड़ी करने के लिए जो पूँजी दरकार होती है

वह किसी बैंक में उधार ले ली जाती है। कारख़ाना ऐसी जगह पर बनाया जाता है जो समासदों के लिए सुविधा-जनक हो और समीप पड़े। इस कारख़ाने में सब समासदों की खेती का माल लाकर बिक्री के लिए तैयार रक्खा जाता है अथवा जिस अन्य उद्देश से मण्डली स्थापित की गई हो उसकी सिद्धि वहाँ की जाती है।

कृषकों की सहकारी-मण्डलियों के मुख्य दो विभाग हैं। एक वाणिज्य-सम्बन्धी, दूसरा खेती के उपयोगी कार्य्य-सम्बन्धी। दूसरे प्रकार की मण्डलियाँ पशुओं की वृद्धि के लिए तथा गायों की परवरिश और उन्नति के लिए हैं। वाणिज्य-सम्बन्धिनी मण्डली के उद्देशों में इन इन विषयों का समावेश होता है—

(१) सहकारी डेयरी—दूध से मक्खन, पनीर वग़ैरह बनाना।

(२) सम्मिलित बिक्री के कारख़ाने और दूकानें, जिनमें गेहूँ, आलू, गोभी, शलजम वग़ैरह बेचे जाते हैं।

(३) ख़रीदने और बाँटने की दूकानें, जिनमें किसानों की चीज़ें—बीज, खाद, चारा, दाना, हल, बर्तन, वग़ैरह—किसानों को बेची जाती हैं।

(४) सहकारी बीमे की मण्डलियाँ।

यद्यपि भारत के किसान भी आपस में मिल कर कुछ काम किया करते हैं—जैसे बारी बारी से हल के बैलों को बदलना और सम्मिलित बेलहुओं का बाग़ियों से बने लेना—तथापि यह कार्य्य डेनमार्क की सहकारिता के सामने कोई चीज़ नहीं। डेनमार्क के खेतिहरों की सहकारिता का विस्तार बहुत है। उसके संगठन में भी बड़ी चतुराई से काम लिया गया है। खेती की भिन्न भिन्न उपज से तरह तरह की चीज़ें बनाने के लिए अनेक प्रकार के बड़े बड़े कारख़ाने बना रक्खे गये हैं, जिनमें उत्तमोत्तम कलों से काम होता है। प्रत्येक गाँव या गाँवों के जोड़ में कई प्रकार के कार्य्यालय हैं। प्रत्येक प्रकार के काम या व्यापार के लिए जुदे जुदे कार्य्यालय हैं, जैसे—

(१) घोड़ों की पैदाइश के लिए।

(२) गायों और बैलों की पैदाइश के लिए।

(३) भेड़ों और बकरियों की पैदाइश के लिए।

(४) गायों की दूध और मक्खन देने की शक्ति बढ़ाने के लिए।

(५) दूध से मक्खन वग़ैरह बनाने के लिए।

इस तरह प्रत्येक जोड़ में अनेक कार्य्यों के लिए जुदी जुदी मण्डलियाँ और उनके जुदे जुदे कार्य्यालय हैं। यद्यपि डेनमार्क को कृषि-प्रधान (Agricultural) देश कहते हैं तथापि वहाँ के कृषक अपनी कृषि की पैदावार से सम्बन्ध रखने वाले दस्तकारी के काम (Manufacturing work) भी करते हैं। कृषि की बे-बनी चीज़ों अर्थात् पैदावार को बेच देने से किसानों को कुछ नफ़ा नहीं होता, नफ़ा उनको बना कर बेचने से होता है। जो चीज़ें बिना बनाये काम में आ जाती हैं उनको बीच के व्यापारियों या दूकानों के हाथ न बेचना चाहिए, क्योंकि ये लोग मुनाफ़ा लेकर उन्हें उन काम में लाने वालों (Consumers) के हाथ बेचते हैं। डेनमार्क के कृषक बीच वालों को छोड़ कर अन्तिम ख़रीदने वालों ही को किफ़ायतदार अपनी पैदावार बेचते हैं। इससे बीच वालों का नफ़ा कृषकों और ख़रीदने वालों में ही बँट जाता है—इन दोनों को ही लाभ होता है।

पूर्वोक्त प्रकार के जुदे जुदे कामों की जुदी जुदी समितियाँ (Unions) प्रत्येक गाँव या गाँवों के जोड़ में हैं। उनमें गाँवों के कृषक शामिल हैं। फिर प्रत्येक तहसील के गाँवों की प्रत्येक काम की सब समितियों ने मिल कर अपने अपने काम की एक एक संयुक्त तहसील-समिति बना ली है। इसी प्रकार ज़िले की सब तहसीलों की संयुक्त समितियों ने अपने अपने काम की ज़िला-समितियाँ बनाई हैं। सूबे के सब ज़िलों ने मिल कर एक सूबा-समिति क़ायम की है। फिर उस देश के सब सूबों ने मिल कर सब समितियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक मण्डली सभा बना रक्खी है। इस प्रकार डेनमार्क की सहकारी-मण्डलियों का मेल गाँवों से लेकर देश भर में सर्वत्र फैला हुआ है। ये सब समितियाँ अपना अपना ठीक हुआ काम आपस में सलाह करके करती हैं। इससे उनके काम में एकता—एक-रूपता (Uniformity)—का प्रादुर्भाव होता है और एक समिति दूसरी के विरुद्ध काम नहीं कर सकती। एक दूसरे के विरुद्ध जाने से अन्त में सब किसानों को नुक़सान उठाना पड़ता है। ऐसा नुक़सान बचाने के लिए ही उन्होंने आपस में मेल किया है।

पूर्वोक्त संगठन (Organisation) से डेनमार्क के कृषक अपना व्यवसाय कार्य्य—पशुओं की पैदाइश, उनके

की उन्नति, शिल्प-कार्य्य, क्रय-विक्रय, इत्यादि इत्यादि—आपस की सहकारिता से साझे में करते हैं। जुदे जुदे घरों के माल को बेचने का एक ही प्रबन्ध है। माल ऐसे ढँग से बेचा जाता है मानो वह एक ही मालिक का हो। प्रबन्ध और व्यापार का ख़र्च प्रत्येक कृषक पर हिस्सेवार बँट जाता है। अर्थात् जिसका जितना माल समिति में आकर खपता या बिकता है उसको उतने ही हिस्से पर ख़र्च का अंश देना पड़ता है। उसका माल गाँव के सब किसानों के साथ बनाया और बेचा जाता है। उस माल की बिक्री का धन इकट्ठा, एक ही खाते में, जमा होता है। उससे ख़र्च की रकम काट कर जो मुनाफ़ा होता है वह सम्पूर्ण सभासदों में उनके माल के वज़न के हिसाब से बँट जाता है।

अनेक खेतों या घरों का माल एक ही क़िस्म का नहीं हो सकता। कोई उत्तम होता है और कोई मध्यम। अतएव उसका भाव भी एक ही नहीं हो सकता। अतएव किसानों को नुक़सान से बचाने के लिए एक कमिटी या एक नियम रहता है जिसके अनुसार माल की कमी-बेशी के अंश को ध्यान में रख कर हर एक व्यक्ति के माल का हिसाब किया जाता है। इससे किसी को असर नहीं पड़ती। इस काम के लिए नियम, सब सभासदों की सम्मति से, बनाये जाते हैं।

इस प्रकार गाँव की सारी जिनसें एक ही सम्मिलित दूकान में बनने या बिकने से कृषकों को अनेक लाभ होते हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

(१) सारा माल एक साथ तैयार होने से लागत कम लगती है और उपज अधिक बैठती है; माल ऊँचे दरजे का बनता है और कम बिगड़ता या ख़राब जाता है।
(२) बिक्री पर क़ीमत ज़ियादह आती है, क्योंकि बेचने वालों की आपस में चढ़ा ऊपरी (Competition) नहीं होती और एक ही कार्य्यालय में, उत्तम प्रबन्ध होने से, भूल चूक भी नहीं होती।
(३) व्यापारियों का नफ़ा बच जाता है।
(४) बाज़ार में किफ़ायत होती है और जिनस अच्छी होने से कृषकों और ख़रीदारों दोनों को लाभ होता है।

पहला और बड़ा लाभ तो यही है कि जिनस की तैयारी में ख़र्च कम पड़ता है और माल अधिक बैठता है, क्योंकि इकट्ठा बनाने वाले, तथा अन्य व्यापार करने से माल अच्छा और बिगड़ता कम है। ख़र्च कम होने से माल भाव में सस्ता पड़ता है और बेचने में सुगमता होती है। सभा के प्रबन्धकर्त्ता होशियार होते हैं। वे देश-देशान्तरों का भाव समाचार-पत्रों तथा चिट्ठी-पत्री द्वारा अच्छी तरह से जाँच करके, अवसर पर, माल पूरे मूल्य पर ही बेचते हैं। भारत के किसान बहुधा सरकार की किस्त पटाने के लिए अथवा महाजन को रुपये देने के लिए असमय ही में अपनी उपज सस्ते भाव में, दिसावर का भाव जाने बिना ही, बेच डालते हैं। कभी कभी तो फ़सल तैयार होने के महीनों पहले ही व्यापारियों को अपनी जिनस दे डालने का वादा कर लेते हैं। ऐसे व्यापार से कृषकों को नुक़सान पड़ता है। ऐसा नुक़सान डेनमार्क के कृषक नहीं होने देते, क्योंकि उनकी समिति फ़सल के तैयार होने पर उनका माल ले लेती है और उसका अन्दाज़न मूल्य तुरन्त उनको दे देती है; जिससे उनका काम चला जाता है। फिर छमाही पर, अथवा वर्ष बाद, जब समिति का पक्का हिसाब बन कर तैयार हो जाता है तब, मुनाफ़े का रुपया सब सभासदों में, उनके माल के वज़न के हिसाब से, बाँट दिया जाता है। वह मुनाफ़े का रुपया पाकर डेनमार्क के कृषक उसे व्यर्थ नहीं उड़ाते। बल्कि अपनी खेती के सामान की उन्नति में अथवा अधिक पशुओं की ख़रीद में लगाते हैं।

डेनमार्क में कहावत है कि एक और एक का जोड़ दो से अधिक होता है। भारत में भी एक ऐसी ही कहावत है कि १ और १ मिल कर ११ होते हैं। यह बात सम्मिलित व्यापार पर अच्छी तरह चरित होती है। सिकन्दरनामे के कर्त्ता हज़रत निज़ामी ने सच कहा है—

دو دل یک شود بشکند کوه را
پراگندگی آرد انبوه را

अर्थात् दो दिल एक हो जायँ तो पहाड़ को तोड़ दें और जमाव को तितर-बितर कर दें।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि थोड़े परिमाण में अलग अलग तैयार करने की अपेक्षा इकट्ठा माल उठाने-धरने तथा बनाने और बेचने में कम मिहनत, कम समय और कम लागत लगती है। पाठकों को अच्छी तरह से मालूम है कि हलवाई की दूकान पर मिठाई या पूड़ियाँ जितनी सस्ती

मिलती हैं। परन्तु थोड़ी थोड़ी अलग अलग एक एक घर में बनाने से लागत बहुत लगती है। कृषकों के सम्मिलित व्यापार सङ्गठन से वैसी ही किफ़ायत होती है।

डेनमार्क की खेती से सबसे भारी रक़म गोरस की होती है। चारे की भारी पैदावार, जो आदमियों की आवश्यकता से अधिक होती है, गायों को खिला दी जाती है। इन गायों के दूध से ज़मींदारों का सब काम चलता है। गायों के दूध से ही उनको अधिक आमदनी होती है। डेनमार्क के कृषकों को चाहे ग्वाले कहिए चाहे अहीर—दोनों शब्द उन पर चरितार्थ होते हैं। अपने देश के ख़र्च के लिए वे गेहूँ, जव, जई (Oats) वग़ैरह अनाज बोते हैं, पर अनाज वे विदेश नहीं भेजते। कारण इसका यह है कि अनाज के अधिक बोने से ज़मीन कमज़ोर हो जाती है और मोल कम आता है। इसके विपरीत गायों का चारा और दाना अधिक पैदा करने से दूध की वृद्धि होती है, जिससे मुनाफ़ा बहुत होता है। डेनमार्क की खेती की सारी पैदावार का दो तिहाई हिस्सा तो अकेला गोरस है, बाक़ी एक तिहाई हिस्से में और सब जिन्सें। १९,००,००,००० क्रोन (एक क्रोन ॥=) आने का होता है) का गोरस हर साल डेनमार्क से बिकता है। इसमें से ११,६४,८४,००० क्रोन का मक्खन ग़ैर मुल्कों को जाता है।

हर एक किसान एक या अनेक गायें पालता है। बड़े बड़े ज़मींदारों के पास पाँच पाँच सौ गायें होती हैं।

घी-दूध के व्यापार में डेनमार्क का एक उदाहरण लीजिए। उस देश के कृषकों का मुख्य रोज़गार गायों का दूध और घी बेचना है। दूध के व्यापार से ही वहाँ के कृषक मालामाल हो रहे हैं। दूध-मक्खन की वृद्धि से डेनमार्क ने एक चमत्कार सा कर दिखाया है। इसी एक व्यापार के लिए बग़ैर सारे देश की सम्मिलित समितियाँ और गोकुल-व्यापार-गृह हैं। इनमें से तीन प्रकार की समितियों का संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

खेती के लिए पहला काम पशुओं का उत्पादन और पालन है। डेनमार्क के ज़िलों के हर एक कोने में अनेक जाति के पशुओं की पैदाइश के लिए एक एक समिति है। समिति कम से कम एक उत्तम जाति का साँड़ रखती है, जो समिति के सभासदों के पशुओं के काम आता है। साँड़ का मूल्य और रखने का ख़र्च समिति देती है। उसका कुछ भाग सरकार से मिलता है, शेष ख़र्च सभासदों से पशुओं की संख्या के अनुसार ले कर सभासदों से ही लिया जाता है। उत्तम साँड़ों पर समिति बड़ा ध्यान देती है। एक एक बैल या घोड़े पर हज़ारों रुपये लगाती है। इसका फल यह होता है कि उनकी नस्ल उत्तमोत्तम होती जाती है। गायों का अधिक दूध या मक्खन वाली होना उनकी नस्ल के गुणों पर अवलम्बित नहीं है, बल्कि वे गुण पिता से मिलते हैं। इस लिए साँड़ चुनने में बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। डेनमार्क में कितने ही महाशयों ने अच्छे साँड़ों और दुधारी गायों के उत्पादन और विक्रय का ही पेशा कर लिया है। उनको बड़ा लाभ होता है। साँड़ों का मूल्य ७०० से २२०० क्रोन (Krone) तक होता है। साधारण गायों का मोल ११२ से १८० क्रोन तक।

डेनमार्क ने अच्छी तरह से अनुभव करके निश्चय कर लिया है कि विदेशी साँड़ों या विदेशी गायों की सन्तान उत्तम नहीं होती। अतएव उन्होंने गायों का Cross-breeding—विदेशी साँड़ों से नस्ल पैदा करना—बन्द कर दिया है। जो तरक़्क़ी उन्होंने की है वह उनके देशी साँड़ों और देशी गायों के मेल से हुई है।

उत्तम गायों की पैदावार में उन्होंने एक उन्नति की है—यहाँ तक कि उत्तम जानवरों के ज़िले ही (Breeding Centres) अर्थात् उत्पादन-केन्द्र बन गये हैं, जिनमें सब तरह की नस्लों के जानवर मिलते हैं। इन जानवरों के बाप और दादे मशहूर होते हैं। वे व्यापारियों के काम मिलते हैं। जिस किसी को उत्तम गायों की ज़रूरत होती है वह इनसे मनमानी, दूरी और नस्ल के जानवर ख़रीद लेता है। यहाँ ख़रीदारों को किसी तरह का धोखा नहीं होता। जो जिस तरह का जानवर चाहता है उसको उसी तरह का जानवर उचित मूल्य पर मिलता है।

दूसरे प्रकार की दुग्ध-सम्बन्धिनी [illegible] समितियाँ (Control Unions) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने गायों को कामधेनु बना दिया है। वे [illegible] दूध-की देवी हैं।

गायों की हिफ़ाज़त और देख-रेख का काम उनकी नस्ल की उन्नति के लिए बहुत ज़रूरी है। इसी कारण से डेनमार्क के

लन्दन की मीरियन डेविस नामक नटी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

लन्दन की रोमी केवाग नामक नटी।

कृषकों की आर्थिक दशा सुधरी है। यह कार्य्य सर्वत्र करने योग्य है। इसकी विधि थोड़े में सुन लीजिए—

प्रत्येक ज़िले में एक प्रबन्धक समिति है। उसकी तरफ़ से एक योग्य और निपुण आदमी इस काम, अर्थात् गायों की हिफ़ाज़त और निगरानी, के लिए तैनात रहता है। कृषि की पाठशालाओं में यह काम विशेष करके सिखाया जाता है। वह आदमी प्रत्येक पखवाड़े अथवा मास में एक दिन प्रत्येक समासद के घर जाकर समासद की प्रत्येक गाय का दिन रात का दूध अपने सामने दुहा कर नाप लेता है और उस दूध का थोड़ा सा नमूना एक छोटी शीशी में रख लेता है। वह गाय के चारे दाने का भी हिसाब लिख लेता है। अपने दफ़्तर में जाकर वह सब हिसाब प्रत्येक गाय के रजिस्टर में दर्ज करता है और दूध के नमूने को एक कल (Gerber Apparatus) में रख कर उसके मक्खन का अन्दाज़ निकालता है और उसे भी रजिस्टर में लिख लेता है। प्रत्येक गाय का ऐसा हिसाब हर साल तैयार होता है, जिससे यह मालूम होता है कि गाय ने कितना दूध दिया और कितना चारा-दाना खाया। अर्थात् उसके रखने से कितना नफ़ा या नुकसान मालिक को हुआ।

इन समितियों के ख़र्च का भी कुछ भाग सरकार से मिलता है। शेष ख़र्च किसानों पर गायों की संख्या के मुताबिक़ बँट जाता है। इस काम के फ़ायदे किसान ख़ूब समझ गये हैं और ख़ुशी से इसका ख़र्च देते हैं। प्रत्येक सूबे से हर साल सब समितियों की गायों के हिसाब का ब्योरा पुस्तकाकार छपवाया जाता है, जो सारे देश में बड़े ध्यान से पढ़ा जाता है। प्रत्येक गाय पर ३।=) से लेकर २) रुपये तक का सालाना ख़र्च इस काम में पड़ता है। इसके फ़ायदों के सामने यह ख़र्च कोई चीज़ नहीं। इस परीक्षा से गायों की मक्खन देने की शक्ति बहुत बढ़ गई है। उसका हिसाब सुनिए—

सन् १८८१ में मक्खन प्रति गाय प्रति वर्ष ३० सेर था,
सन् १८९१　"　"　"　४८　"　हुआ,
सन् १९०८　"　"　"　११०　"　"

ऊपर दिये अङ्क हज़ारों गायों की औसत उपज के हैं, पर सन् १९०८ में उत्तम जाति की गायों से ३११ सेर तक मक्खन प्रति वर्ष प्रति गाय हुआ था, जो कोई १ सेर प्रति दिन के हिसाब से पड़ा। सन् १९१२ में साधारण गायों से ४०३२ सेर दूध प्रति गाय प्रति वर्ष हुआ और विशेष प्रकार की गायों से ७६०८ सेर दूध प्रति गाय प्रति वर्ष। इसका दैनिक औसत क्रम से ११ और २०¾ सेर होता है। गायों से दूध और मक्खन की इतनी उपज बहुत अधिक है। इन अङ्कों से प्रबन्धकारिणी समितियों का उपयोग स्पष्टतापूर्वक ज्ञात होता है। यह उन्नति सहसा नहीं हुई है। यहाँ के विद्वानों ने कंट्रोल के द्वारा लगातार ४० वर्षों की मेहनत से यह अद्भुत उन्नति प्राप्त की है, जिससे केवल दूध और मक्खन की उपज ही नहीं बढ़ गई है बल्कि दूध का भाव भी सस्ता हो गया है। सन् १९१२ में सम्मिलित दुग्धशालाओं को जो आमदनी हुई थी वह सवा आने सेर के भाव सम्पूर्ण (असली) दूध (Whole-milk) पर पड़ी थी। लेकिन हमारे यहाँ अजमेर में दूध का भाव ≈) सेर है और बम्बई में ।-) पाँच आने सेर। डेनमार्क की रहन-सहन बहुत ऊँची है और मज़दूरी भी बहुत मँहगी है। तिस पर भी दूध का भाव वहाँ भारत से सस्ता है। यह सस्तापन सम्मिलित समितियों के किफ़ायती इन्तज़ामों का फल है।

दूध के व्यापार से सम्बन्ध रखने वाली तीसरे प्रकार की समितियों को "सम्मिलित दुग्धशाला" (Co-Operative Dairies) कहते हैं। इनमें दूध पकाना, मलाई अलग करना, मलाई जमा कर मथना और मक्खन निकाल कर तोलना, दूध और मट्ठे से पनीर बनाना, तरह तरह के दूध, दही, मट्ठे वग़ैरह तैयार करना है। ये सब कार्य्य कलों से किये जाते हैं। इससे ख़र्च कम पड़ता है और मक्खन वग़ैरह अधिक और उत्तम (स्वादिष्ट, स्वच्छ, सुगन्धित और अधिक समय तक रहने लायक़) बनता है। इसके सिवा दूध का प्रत्येक भाग तरह तरह के कामदायक पदार्थों के बनाने में काम आ जाता है, सो अलग। दूध, दही और मट्ठे का कोई भी अंश व्यर्थ नहीं जाता।

हर एक कृषक इस समिति का समासद होता है। उसके घर में जितना दूध अपने ख़र्च से बचता है वह सब नित्य समिति के कार्यालय में आ जाता है। समिति की गाड़ी उसके घर से उसे ले आती है। वज़न करके उसकी तौल उसके खाते में जमा होती है और समय समय पर उसके दूध में मक्खन के अंश की जाँच एक कल से कर ली
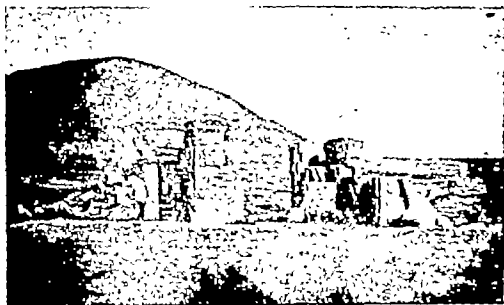
अवन्तिपुर के भग्न मन्दिर ।

मार्तण्ड-नामक भग्न मन्दिर ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

बड़ी ज़रूरत है। उनके भाव यहाँ बहुत चढ़ गये हैं। सन् १८८१ ईसवी में हम पहली बार काश्मीर गये। तब वहाँ घी का भाव एक रुपये का ४॥ सेर था। सन् १८८० में घी का सिर्फ़ चार सेर सर वाल्टर लारेन्स (Sir Walter Lawrence) ने अपनी Valley of Kashmir (काश्मीर की तराई) नामक पुस्तक के पृष्ठ ३३२ पर दिया है। उन दिनों (सन् १८८१ के पहले) रावलपिण्डी में भी दो तीन सेर के हिसाब से घी मिलता था। अब भारत में सर्वत्र एक सेर या तीन पाव का भाव हो रहा है। ग़रीब लोगों को घी-दूध मिलता ही नहीं। ऐसी दशा में भारतवर्ष के कृषकों को घी-दूध की पैदावार बढ़ाने और सस्ता करने की तरफ़ ध्यान देना उचित है। डेनमार्क की प्रणाली का अवलम्बन करने से यह बात बहुत सम्भव है—

कृषि-गौरक्ष्य-वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।

भगवद्गीता के इस वाक्यानुसार वैश्यों के तीन कर्म हैं। अर्थात्—

(१) खेती,

(२) गोपालन और

(३) वाणिज्य।

ये तीनों कर्म डेनमार्क के कृषक पूरी तरह निबाहते हैं। भारत में वैश्यों ने पहले दो कर्म छोड़ दिये—अकेले अन्तिम पेशे को ही अपना रक्खा है। वैश्य अपने पहले दो कर्म फिर से करने लगें, यह बात ज़रा कठिन सी प्रतीत होती है। पर हमारे कृषक ही यदि सच्चे वैश्य बन जायँ तो काम आसानी से हो सकता है। वे खेती का कठिन काम तो करते ही हैं, अब दूसरे दो काम भी करने लगें तब कहना चाहिए कि वे डेनमार्क के कृषकों का अनुकरण करते हैं। कृषकों में बहुतेरे लोग गाय-भैंस पालते हैं। उनकी संख्या वे बढ़ा दें और डेनमार्क की तरह पशु-उत्पादन और परीक्षण (Control work) में विज्ञान की मदद लें, क्रय-विक्रय का काम भी अपने क़ब्ज़े में रक्खें, तो उनकी दशा सुधरने में कोई सन्देह न रहे। इसी अन्तिम काम में फ़ायदा है। दूसरे कामों में तो मिहनत ही मिहनत है। जब वे कठिन परिश्रम करते ही हैं तब तीसरा आसान काम उन्हें क्यों न करना चाहिए। कृषकों में शिक्षा की कमी है। उसको यथा-साध्य दूर करना चाहिए। डेनमार्क के कृषक पूरे सुशिक्षित हैं। शिक्षा ही के बल से—विज्ञान ही की सहायता से—उन्होंने सहकारिता और उसके साथी अन्य साधन खोज निकाले हैं।

भारत के किसान मामूली अनाज की क़िस्में ज़ियादह बोते हैं। इससे ज़मीन कमज़ोर पड़ती जाती है और दाम कम खड़े होते हैं। इसके बदले यदि वे गायों के चारे और दानों की क़िस्में अधिक बोवें तो गायों और भैंसों के दूध-घी की उपज बढ़ जाय और उनको बड़ा लाभ हो।

भारतवासी सहकारिता के काम के अयोग्य नहीं। भारत की प्राचीन रीतियों की बुनियाद सहयोग के तत्त्वों पर ही है। गाँवों की स्वतन्त्रता, पञ्चायत और जाति-कर्म सब इसी नींव पर थे और अब भी कहीं कहीं हैं। लुहार, बढ़ई, नाई, बारी, कुम्हार, धोबी, पासी, चमार वग़ैरह सभी कृषकों के सहकारी हैं। कृषकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्ण कुछ शामिल हैं। पिता, पुत्र, भाई तथा उनकी स्त्रियाँ आदि सब सम्बन्धियों का एक में रहना (Joint-family System), विवाहादि अवसरों पर भिन्न भिन्न जाति के लोगों का एक दूसरे को सहायता देना, इत्यादि सब सहकारिता के चिह्न हैं। यद्यपि हमारी पुरानी रीति किसी क़दर मिट गई है, तथापि उसके चिह्न अब भी बने हुए हैं। इसकी कई प्रकार की सहकारिता में आज कल अप्रामाण्य कहा जाता है। उस देश में भी पुरानी सहकारिता भारत के सदृश ही थी। इसी ने अपने पुराने तत्त्वों को बढ़ा कर वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचा दिया है। तब भारतवासी अपने पुराने पश्चिमी भाइयों की राह पर क्या न चलेंगे? कोई कारण नहीं कि इससे वे अयोग्य समझे जायँ। इसके लिए किसी असाध्य उद्योग की ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत है एकता परस्पर मेल की। सो मेल सर्व-साधारण में शिक्षा के प्रचार से अवश्य हो सकेगा। सहकारिता के मूल-तत्त्व सचाई, मिहनत और परस्पर विश्वास हैं। ईश्वर ने ये तीनों गुण मनुष्य मात्र को दिये हैं। ये गुण सब के हृदय-स्थल में विद्यमान हैं। इन गुणों को जाग्रत करना है। निश्चय रखिए, उनके प्रकाश से भारत का भूखण्ड प्रकाशमान् हो जायगा। भारत की दरिद्रता और हीन-दशा उसी के प्रभाव से दूर होगी। भारतवासियों को सहकारिता के मूल-मन्त्र का अवलम्बन करना इस समय अत्यन्त आवश्यक

कैसे कपिल-कणाद काम-साधन करते थे—
ये करके उपदेश देश के दुख हरते थे ॥१६॥
यदि करना कल्याण देश का सही विचारा,
सब का सब में समझ आप तो भाईचारा।
यदि तुम हो कृतकृत्य स्वयं निज सुख पाने से,
तो क्या होगी हानि तुम्हारे मर जाने से ? ॥१७॥
जहाँ प्लेग, दुष्काल प्रबल के दृश्य दिखावें,
धाकधाकी दौड़ वहीं हम नहीं बचावें।
ऐसे देश-दुर्दशा पसीजी तनिक न छाती,
सुविधा फिर भी बने रहे, क्यों लाज न आती ? ॥१८॥
बिना हुए निःस्वार्थ काम क्या चल सकता है ?
बिना गले क्या बीज कभी भी फल सकता है ?
यदि सबके ही स्वार्थ समझ निज, स्वार्थ सने हो।
तब तो मनुष्य बने, नहीं तो स्वांग बने हो ॥१९॥
वस्त्र-हीन गृह-हीन हमारे लाखों भाई—
कलप रहे हैं, किन्तु हमें कुछ दया न आई।
लाखों ऐसी जन्तु यहीं भूखों मरते हैं,
पर हम उनकी ओर नहीं दृग भी करते हैं। ॥२०॥
बहु भाषायें पढ़ीं सही तुमने, निज भाषा—
जो न पढ़ी तो कभी न पूजेगी अभिलाषा।
जिस दीपक ने तम न हटाया निज पैरों का—
उसने क्या उपकार किया धिक् धिक् ग़ैरों का ॥२१॥

रामचरित उपाध्याय

बनारस के हिन्दू-विश्व-विद्यालय के नियम ।

बनारस का हिन्दू-विश्वविद्यालय पाँच छः महीने बाद काम करने लगेगा। बहुत से लोग शङ्का मचा रहे हैं कि इस विद्यालय में हिन्दी में शिक्षा देने का कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं किया। पर प्रश्न यह है कि क्या यह विश्वविद्यालय केवल हिन्दी-भाषा बोलने वालों का है ? यह तो सारे भारतवर्ष का है। मुसलमानों, पारसियों और क्रिश्चियनों तक ने इसके लिए चन्दा दिया है। सभी चन्दा देने वालों की मातृभाषा हिन्दी नहीं। फिर कैसे सम्भव था कि बँगला, मराठी, गुजराती और तामील बोलने वालों की भाषाओं का अतिक्रमण करके हिन्दी को ही प्रधानता दी जाती ? क्या अन्य भाषायें बोलने वाले प्रान्तों के निवासी छात्र इसमें अध्ययन करने न आयेंगे या न आ सकेंगे ? और इसका सबूत ही क्या कि विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने हिन्दी को प्रधानता देने की चेष्टा नहीं की ? सम्भव है की हो, पर अनेक कारणों से वे सफल-मनोरथ न हुए हों। इस विश्व-विद्यालय के सञ्चालन से सम्बन्ध रखने वाले नियम गवर्नमेंट के मंज़ूर किये हुए हैं। उन्हें पढ़ने से ही मालूम हो जाता है कि इसके अधिकारियों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। यदि वे कहते—हम बी० ए० और एम० ए० की सारी शिक्षा हिन्दी में ही देना चाहते हैं, तो शायद न विश्व-विद्यालय-सम्बन्धी क़ानून ही बनने की नौबत आती और न सञ्चालन-सम्बन्धी नियमावली निकलने ही की।

कुछ महाशयों की बड़ी भारी शिकायत है कि इस विश्वविद्यालय के अधिकारी अपने काग़ज़-पत्र हिन्दी में भी क्यों नहीं प्रकाशित करते। पर सोचना चाहिए कि जिन सज्जनों की बदौलत यह विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया है वे सभी हिन्दी के लेखक और उसके अच्छे ज्ञाता नहीं। जो हैं भी उनको, सम्भव है, इतना अवकाश ही न मिला हो कि वे अँगरेज़ी-काग़ज़ों का तरजुमा हिन्दी में करें। इसके सिवा अँगरेज़ी में अधिक अभ्यास होने के कारण जिस काम को वे एक घण्टे में उस भाषा में कर सकते हैं उसे हिन्दी में करने के लिए कई घण्टे चाहिए। फिर, हिन्दी के काग़ज़-पत्रों से केवल दो ही तीन प्रान्तों का काम चल सकता है। अँगरेज़ी के काग़ज़ पत्र मदरास, बम्बई, बङ्गाल, आसाम सब कहीं चल

अन्य भारतीय भाषाओं की ओर भी ध्यान रखना पड़ेगा, क्योंकि यह विश्वविद्यालय अकेले इसी प्रान्त का नहीं, सारे देश का है। तिस पर भी इसने एक प्रकार से हिन्दी का पक्षपात किया है। इसके पूर्वोक्त विभाग की प्रवेशिका परीक्षा में संस्कृत पढ़ने वालों को हिन्दी भी पढ़नी होगी। यह परीक्षा देने वालों के लिए तो इसने बँगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तामील और तेलुगी भाषायें पढ़ाने का भी नियम कर दिया है। पर मध्यमा और शास्त्री परीक्षा के लिए हिन्दी को ही प्रधानता दी है। और देशी भाषाओं के लिए सिर्फ़ यह कह दिया है कि हो सकेगा तो वे भी पढ़ाई जायँगी। अतएव यह विश्वविद्यालय हिन्दी की उपयोगिता और आवश्यकता को भूला नहीं। यह सन्तोष की बात है।

इस विश्वविद्यालय के एक विभाग से हिन्दू-शास्त्रों के भी आचार्य्य निकलेंगे। उनको वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, ज्योतिष, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद्, आयुर्वेद आदि पढ़ाये जायँगे। उनको—

(१) स्मृतिरत्न

(२) स्मृतिसागर

(३) धर्म्मशास्त्री

(४) धर्म्माचार्य्य

की उपाधियाँ दी जायँगी। शैवों, शाक्तों, वैष्णवों, जैनों और बौद्धों को ध्यान से देखना चाहिए कि उनके भी कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ इन परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में रक्खे गये हैं या नहीं। न रक्खे गये हों तो अब भी लिखापढ़ी करने के लिए समय है।

वन और राज्य।

हुआ विफल-प्रयास—भ्रातसुख, शयन-भवन में पहुँचे राम,
राज्य का पेखाई भाव था शून्य, विधाता की गति वाम!
था समीर, बस पर ही रक्खा प्रभु ने परिम्लान निज भाल,
देदीप्य देखाव भीता भक्त सदृश था उनका हाल!
भेखनीर से भींग, छोड़ते हुए वहाँ कातर निश्वास,
हो नतजानु भूमि पर, बोले—सच है, अब तक था वनवास,
मणिमाणिक्य और मुक्ताफल, इनसे रिक्त सदा थे हाथ;
पर, लक्ष्मी! अमल रूप से तू फिरती थी मेरे साथ!
आज राज्य का मैं अधीश हूँ, किन्तु रहेगी तू क्यों पास!
अब देखा मैं मम हृदय को प्रतिमाशून्य अन्धकार!!
अहा! विलखुल दीन वेश से चला गया फिर वन की ओर,
स्वर्णमयी पर चिरव्यथा रह गई राम के साथ कठोर!

[अनुवादित]

पारसनाथसिंह, बी॰ ए॰

विधवा।

(१)

राधाचरण की अकाल मृत्यु से उसके घर-वालों को बहुत शोक हुआ। किन्तु अभागिनी पार्वती के लिए तो संसार ही अन्धकारमय हो गया। उसके लिए तो संसार में आशा, उत्साह और सुख का सोलहों आने नाश हो गया। उसने इस घोर दुःख को, इस असह्य वज्रपात को, दिल का खून करके, किसी तरह सहन किया। वह न रोई, न चिल्लाई। उसने इस असह्य दुःख को मन की पूरी ताक़त से चुपचाप सहन किया। शोक के भारी बोझ से पार्वती का सुकोमल मन निस्सन्देह चूर चूर हो गया। किन्तु विधि के इस विपरीत विधान में किसी का क्या वश था!

राधाचरण के चचा, रामप्रसाद, औसत दरजे के आदमी थे। राधाचरण के पिता, गुरुप्रसाद, का देहान्त, जब उसकी अवस्था ४ वर्ष की थी तभी, हो गया था। सुनीति माता भी, पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही, स्वर्ग-लोक-गामिनी हो गई थी। इस लिए बालक राधाचरण का पालन-पोषण चचा रामप्रसाद और उनकी स्त्री रामदेवी ने ही किया था। उनके पास कुछ पैतृक मिलकियत थी, जिसकी आमदनी से घर का खर्च चलता था। रहने का पक्का मकान था। पर इस पैतृक मिलकियत और रहने के मकान में—जायदाद का क्षय-रोग—कर्ज़ के कीटाणुओं ने प्रवेश कर लिया था।

कुमारियों का चित्र दिखा कर अन्त में कहा—"पुस्तकें पढ़ कर ही तू राधे को चट कर गई। अब किसे चट करेगी! तू नार नहीं नागिन है! भगवान् भगवान्! मेरे घर में ऐसी डायन कहाँ से आ गई! वह था—तबाह कर गया; तू है—तबाह करने की फ़िक्र में है"।

हिरन के बच्चे पर शेरनी को ग़ुर्राता देख कर जिस तरह उसका प्रणयी शेर भी गरजने लगता है उसी तरह रामप्रसाद भी ग़रीब पार्वती पर टूट पड़ा। उसने भी स्वस्तिवाचन के बाद कहा—"ठीक तो कहती है, यह नार नहीं है, नागिन है। कहीं को मुँह काला भी तो नहीं करती। मैं ऐसी नागिन को पालना नहीं चाहता। उसे खा गई। अब मुझे खायगी क्या?"

इधर रामप्रसाद बक रहा था, उधर पार्वती के हृदय में अनेक तरंगें उठ रही थीं। उन्हीं तरंगों में उसने अपने पति राधाचरण के दर्शन किये। इस समय उसकी आँख में कातरता के साथ साथ दुःख भी था, विषाद भी था और अभागिनी पार्वती के लिए थी—गहरी सहानुभूति। स्माइल्स साहब की आत्मा भी अबला पार्वती को पुस्तक के रूप में मूक पथ-प्रदान कर रही थी। पार्वती ने पुस्तक को बन्द कर दिया। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर सोने के अक्षरों में छपे "Self-Help" के मनोहर शब्द पार्वती के अश्रुपूर्ण नेत्रों को अपनी ओर खींचने लगे।

(२)

दूसरे दिन प्रातःकाल पार्वती ने बड़ी शान्ति से अपनी सास को समझा दिया कि वह कुछ दिनों के लिए अपने भाई के पास जाना चाहती है। आप उसे एक चिट्ठी लिखवा दीजिए।

सास को मनचाही बात हाथ लग गई। उसने उसी समय स्त्री-जन-सुलभ नमक मिर्च लगा कर अपने पति रामप्रसाद से कह दिया। उन्होंने पहले तो 'हाँ' 'हूँ' की। फिर धर्म और स्वभाव की साथिनी स्त्री के कहने सुनने पर सुन्दरलाल को एक चिट्ठी लिख दी।

चार दिन बाद बहू चली जायगी—इस लिए बहू के साथ अधिक कठोर व्यवहार न करना चाहिए, यह सोच कर रामप्रसाद-दम्पती का व्यवहार पार्वती के साथ अच्छा हो गया है। घर के कामों के साथ अब उ... का बोझ वहन नहीं करना पड़ता। पर फुँकारों के वाण का ज़िक्र यथा-नियम प्रति दिन एक दो बार हो जाता है।

राधाचरण को मरे अभी पूरा एक वर्ष भी नहीं हुआ था। इसी थोड़े से समय में ही घर की हर एक चीज़ उसके लिए बिलकुल बदल गई थी। घर के आदमियों के साथ घर के दरो-दीवार भी उसे काटने दौड़ते थे। सूरत शक्ल न होने के कारण अभी तक उसके नाम कुछ समाचार-पत्र आते थे। पार्वती, समय मिलने पर, उन्हें पढ़ लेती थी। आज के "हितकारी" में उसने "आत्मरक्षा" के लेख को बहुत ग़ौर से पढ़ा।

तीसरे दिन जवाब आ गया कि शनिवार की रात को सुन्दरलाल बहन को लेने के लिए आवेगा। [illegible] को पत्र लिखा था। पार्वती को सिर्फ़ दो रोज़ का मिहमान समझ कर सास और ससुर का कठोर हृदय और ढीला पड़ गया। पार्वती की सेवा और उसके कभी न दिखने वाले शील में उन्हें अब बहुत कुछ भलाई दिखाई देने लगी। विच्छेद के विचार ने निस्सन्देह उनकी मानसिक कलुषता को बहुत कुछ दूर कर दिया।

काल भगवान् किसी की अपेक्षा नहीं करते। सूर्य के रथ का धुरा कभी नहीं टूटता। काल भगवान् के प्रधान सहचर सूर्यदेव सुखी, दुःखी—सभी—को पीछे छोड़ते हुए रथ बढ़ाये चले ही जाते हैं। शनिवार की रात को सुकुमार—दैन्य और शराफ़त की मूर्ति सुन्दरलाल—आ गया। बहन को गले लगा कर वह बहुत रोया। दूसरे दिन *प्रातःकाल की ट्रेन से वह पार्वती को लेकर घर को रवाना* हो गया।

पार्वती ने चलते समय सिर्फ़ अपने पति की पुस्तकों का एक ट्रंक अपने साथ लिया। बाक़ी न कोई ज़ेवर और न दो धोतियों को छोड़ कर कोई कपड़ा। भरा हुआ घर, जो उसके लिए पहले ही ख़ाली हो चुका था, उसने भी ख़ाली कर दिया। चलते समय सास ने ऊपरी मन से जल्द आने के लिए कहा और स्त्री-जन-सुलभ अश्रुवर्षण का परिहास भी *दिखाया*।

मन से जिस समय सास के ऊपर ... आँसुओं की कुछ बूँदों ने भी ... के साथ प्रतियोगिता की!

एक उस सर... के ...

निशात-बाग (श्रीनगर)

अच्छाबल-बाग और झरने ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

(१)
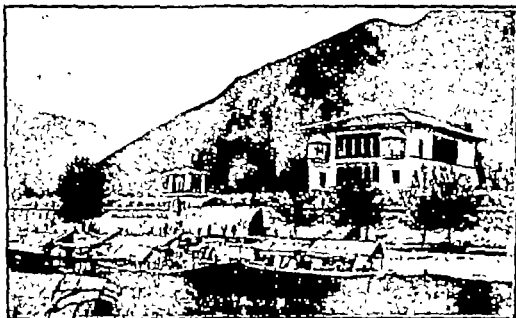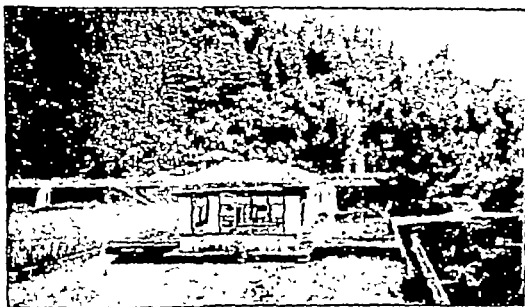
पार्वती के आने से सुखदयाल का गरीबी का घर पैतृक—और इसीलिए पक्का—घर स्वर्ग बन गया। उसके बालक, जो निर्धनता के कारण शिक्षा न पा सकते थे, अब पार्वती से पढ़ने लगे। सुखदयाल की बड़ी लड़की शान्ति उससे हिन्दी-शिक्षा के साथ साथ सिलाई का काम भी सीखने लगी। थोड़े ही दिनों में पार्वती और शान्ति की सुई के प्रताप से कुछ कम दो रुपये रोज़ की आमदनी होने लगी। पार्वती के कहने पर सुखदयाल एक अच्छी गाय ख़रीद लाया। अब उसके घर में सब कुछ था। विद्या थी, धन था और गोरस था। सुखदयाल की स्त्री चमेली पार्वती को अपनी समृद्धि का मूल कारण समझती थी। वह उसे साक्षात् देवी समझती थी। प्रातःकाल उठ कर उसके चरण छूती थी। घर का हर काम उसकी आज्ञा लेकर करती थी।

एक वर्ष बीत गया। पार्वती हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल में हिन्दी पढ़ाती है। इसी वर्ष उसने प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली है। ४०) मासिक वेतन मिलता है। अब सुखदयाल के बालक, जो एक वर्ष पहले लावारिस और आवारा घूमते फिरते थे, साफ़ कपड़े पहन कर भले बालकों की तरह बग़ल में पुस्तकें दबाये स्कूल जाते हैं। लड़की शान्ति भी पार्वती के साथ स्कूल में काम करती है। देवि-स्वरूपिणी बहन पार्वती की बदौलत भाई सुखदयाल ने भी चपरास के कर्कश हाथों से छुटकारा पाकर सौदागरी की दुकान खोल ली है।

सुखदयाल का घर भी अच्छा ख़ासा बालिका-विद्यालय था। महल्ले भर की छोटी बड़ी अनेक लड़कियाँ स्कूल से इतर समय में पढ़ने और सुई का काम सीखने आती थीं। विद्यालय का द्वार सदा उन्मुक्त रहता था। पार्वती के परोपकार आदि सद्गुणों की प्रशंसा महल्ले से बढ़ कर शहर भर में फैल गई थी।

× × × × ×

चार वर्ष और बीत गये। पार्वती ने प्राइवेट तौर पर पहली कक्षा में बी॰ ए॰ पास किया। रायपुर के कलेक्टर की पत्नी ने अपने हाथ से पार्वती की सफ़ेद साड़ी पर प्रतिष्ठा-सूचक मेडल पहनाया। हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल की प्रधान अध्यापिका (लेडी प्रिंसिपल) के पद पर (जिसकी शोभा, उपयुक्त हिन्दू पण्डिता के न मिलने के कारण, अब तक क्रिश्चियन लेडियाँ बढ़ाती रही थीं) पण्डिता पार्वती का चुनाव किया गया। शहर भर में पार्वती का यशोगान होने लगा। वेतन भी एकदम २१० हो गया।

(२)

रविवार का दिन था। स्कूल के बड़े कमरे में प्रबन्ध-कारिणी समिति के सभ्यों की अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। मेम्बर सभी स्त्रियाँ थीं। राय रामकिशोर बहादुर की पत्नी, जो स्कूल की आनरेरी सेक्रेटरी थीं, प्रबन्ध-सम्बन्धी अनेक विषय पेश कर रही थीं। राय बहादुर की पत्नी ने कहा—अब मैं आज की बैठक का आख़िरी विषय अर्थात् स्कूल के चपरासी के काम के लिए आई हुई दरख़ास्तें पेश करती हूँ। मेरी सम्मति में जिन लोगों की दरख़ास्तें हैं उन्हें बिना देखे नौकर रखना ठीक न होगा। चपरासी पुरुष तो होगा ही, पर साथ ही साथ चिड़चिड़ा या ज़ियादह कमज़ोर भी न होना चाहिए और यह ऐसी बात है जो बिना देखे ठीक नहीं हो सकती। अब मैं इस विषय में आपकी या बाई जी की (मतलब था प्रिंसिपल पार्वती से) जैसी आज्ञा हो वैसा करूँ।

उपस्थित अन्य तीन महिलाओं ने एक स्वर से कहा—इस विषय में बाई जी के आज्ञानुसार ही काम होना चाहिए, क्योंकि बाई जी की आज्ञायें ग्रहण करने और बजाने के लिए ही चपरासी की नियुक्ति होगी।

पार्वती ने अपने शान्त, पर प्रभापूर्ण, मुख-कमल को खिलाते हुए कहा—मैं राय बहादुर की पत्नी से सहमत हूँ। आदमी को देख कर ही रखना अच्छा होगा। मनुष्य के चेहरे से उसके गुण-दोषों का बहुत कुछ पता लग जाता है। उस दिन "रिव्यू आफ़ रिव्यूज़" में मिस्टर आर्नल्ड का, आपने, सेक्रेटरी महोदया! इसी विषय पर एक लेख पढ़ा था?

राय-बहादुर की पत्नी ने कहा—पढ़ा तो था। पर समझा था कम। आज कल आपका पूरा समय और शक्ति "विधवा-आश्रम" की स्थापना में लग रही है। इस तरह आप देश की बड़ी भारी सेवा कर रही हैं। आपका कुछ भी समय ख़ाली होता तो मैं आपसे अँगरेज़ी-साहित्य का थोड़ा बहुत अध्ययन करके अपनी इस कमी को ज़रूर पूरा करती। पर मेरे मूर्ख रह जाने से देश की विधवाओं की दुःख-भरी शोचनीय अवस्था को सुधार देने वाले "विधवाश्रम" की स्थापना कहीं बढ़ कर आवश्यक और एकान्त कर्तव्य है।

इसके साथ ही इन देशों की जनता में नाटक देखने का प्रेम भी बहुत है। अमीर और ग़रीब, राजा और प्रजा, विद्वान् और अपढ़, स्त्री और पुरुष, बूढ़े और बच्चे—सभी नाटक के प्रेमी हैं। लन्दन नगर की किसी भी नाटक-शाला में जाइए, वह सदा ही भरी हुई मिलेगी। अनेक नाटक-शालाओं में दिन में और रात में भी दो बार एक ही नाटक खेला जाता है। तिस पर भी दोनों बार नाट्य-मन्दिर भरे ही हुए मिलते हैं।

वर्तमान युद्ध ने योरोप की सभी सामाजिक संस्थाओं में गड़बड़ मचा रक्खी है। युद्ध-सम्बन्धी बातों को छोड़ कर सभी बातों में ढीलापन आ गया है। कालेज और स्कूल, मेले और तमाशे, सभी में न्यूनता आ गई है। जिधर देखिए उधर ही युद्ध की चर्चा, युद्ध के प्रबन्ध, युद्ध की सामग्री—युद्ध ही युद्ध के सामान चारों ओर दिखाई देते हैं। मर्दों में बच्चों, बूढ़ों और अपाहिजों को छोड़ कर अधिकतर लोग फ़ौज की ख़ाकी पोशाक पहने नज़र आते हैं। यहाँ तक कि सुन्दरी और कोमलाङ्गी युवतियाँ भी ख़ाकी वर्दी पहने हुए चलते फिरते अथवा मोटर चलाते देख पड़ती हैं। इन युवति-योद्धाओं को किसी शनिवार की सन्ध्या को हाइड पार्क के मैदान में क़वायद करते भी देख सकते हो।

केवल लन्दन नगर में स्थान स्थान पर सैकड़ों नाटक-शालायें हैं। हज़ारों नटों और नटियों की जीविका नाटकों से चलती है। जिस प्रकार अन्य व्यवसायों से हटा कर नवजवान अपने देश के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए ख़ुशी से या ज़बरदस्ती भेजे गये हैं उसी प्रकार नाट्यशालाओं से भी हटा कर पन्द्रह सौ से अधिक युवा नट लड़ाई पर भेज दिये गये हैं। तिस पर भी नाट्यशालाओं को किसी प्रकार की हानि होती हुई नहीं दिखाई पड़ती।

युद्ध के कारण यद्यपि अनेक व्यवसायों को न्यूनाधिक धक्का पहुँचा है तथापि नाट्यव्यवसाय में किसी प्रकार की कमी नहीं दिखाई पड़ती। हानि के बदले नाट्यशालाओं को दूना चौगुना फ़ायदा हो रहा है, जिससे दिन पर दिन नये नये नाटकघर बन कर खुलते जा रहे हैं और नये नये शानदार नाटक उनमें खेले जा रहे हैं। इसके कई कारण हैं।

(१) युद्ध के कारण घर घर में शोक और चिन्ता छा रही है। उससे बचने के लिए अधिक लोग थियेटरों में जाने लगे हैं कि किसी प्रकार चित्त बहल जाय।

(२) युद्ध पर मर्दों के चले जाने से स्त्रियों और बचे हुए मनुष्यों की माँग तोप-गोली बनाने के कारख़ानों आदि में हो रही है। इस कारण उन्हें मज़दूरी कहीं अधिक मिलने लगी है। काम की अधिकता होने से उन्हें काम भी अधिक करना पड़ता है। इससे अधिक रुपया जेब में होने और अधिक काम करने के कारण थक जाने से कुछ आराम पाने के लिए ये बचे हुए मर्द और स्त्रियाँ थियेटरों में अधिक जाने लगे हैं। स्त्रियों के पति और प्रेमी इस समय युद्ध पर हैं। इस कारण उनकी स्वतन्त्रता बढ़ गई है। अपनी मिहनत से पैदा किया हुआ धन पास होने और किसी का दबाव न रह जाने से थियेटर की ओर उनका झुकाव अधिक हो गया है।

(३) लन्दन और दूसरे नगरों में लाखों घायल सिपाही अस्पतालों में रक्खे जाते हैं। युद्ध के कष्ट भूल जाने तथा बेकारी के दिन काटने के लिए, कुछ अच्छे हो जाने और चल फिर सकने पर, सबसे पहले ये सिपाही थियेटर की ओर दौड़ते हैं। इनके अच्छे हो जाने की ख़ुशी में इनके सम्बन्धी और प्रेमी भी इनके साथ थियेटरों की यात्रा करते हैं।

(४) युद्ध-स्थल से कुछ दिनों की छुट्टी पर आये हुए सिपाहियों को सबसे पहले थियेटर जाकर मनोविनोद करने की इच्छा होती है। युद्धक्षेत्र में किसी प्रकार का ख़र्च न होने के कारण, उनके पास

शङ्कराचार्य्य (तख़्ते सुलेमान) श्रीनगर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भग भी, फ़िज़ूलख़र्ची के लिए, काफ़ी होता है। इसके सिवा उन्हें युद्ध से ज़िन्दा लौट आने की ख़ुशी और लौट कर फिर युद्ध में जाने के विचार से खेल देखने में कुछ भी सङ्कोच नहीं होता।

इन कारणों से इस देश में थियेटर ख़ूब चमक रहे हैं। युद्ध के कारण एक और भी बड़ी विचित्र बात देखने में आती है। हमारे देश में नाट्य-व्यवसाय का पद हीन समझे जाने के कारण स्त्रियों का स्वतन्त्र पार्ट (वेश) बहुधा पुरुष ही लेते हैं। इस देश में, इस समय, मर्दों की कमी हो जाने और स्त्रियों में स्वतन्त्रता होने के कारण थियेटरों में पुरुषों के पार्ट स्त्रियाँ लेती हैं और पुरुषों की बुलन्द आवाज़ की नक़ल करती हैं।

यद्यपि यहाँ के थियेटर, ऊपर लिखे कारणों से, आज कल अधिक भरे हुए पाये जाते हैं तथापि इन्हीं कारणों से इनमें खेले जाने वाले नाटक अब वैसे निर्दोष और शिक्षाप्रद नहीं होते जैसे युद्ध के पूर्व होते थे। मन बहलाने के लिए दिल्लगी, मज़ाक के साथ कुछ गन्दगी भी इनमें आ गई है। आज कल शेक्सपियर इत्यादि प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक देखने की रुचि लोगों में कम है, किन्तु बेसिर-पैर के आधुनिक नाटक, जिन्हें Revue कहते हैं, उनकी अधिक माँग है। ये एक प्रकार के मिश्रित खेल हैं, जिनमें बायस्कोप और जिमनास्टिक से लेकर नाटक के कुछ दृश्यों तक सभी प्रकार की बातें आ जाती हैं। इन नाटकों के नाम भी अजीब होते हैं—जैसे, "High Jinks," "Ye Gods," "Pell Mell," "This and That," "The Best of Luck," "Some,"—इन नामों के तमाशे आज कल यहाँ अधिक खेले जा रहे हैं। इन नामों का सम्बन्ध नाटक से कुछ भी नहीं होता। नाम तो तमाशबीनों को नाटक की ओर आकर्षित करने के लिए रक्खे जाते हैं।

ये नाटक यहाँ के लोगों को बहुत रोचक होते हैं। लोगों की रुचि का पता इसी बात से लग सकता है कि इनमें से अनेक नाटक ऐसे हैं जो एक ही स्थान में लगातार एक दिन में दो बार साल भर तक बिना दृश्य बदले खेले जाते हैं। यहाँ वाले एक ही तमाशे को बार बार जाकर देखते हैं। नतीजा यह होता है कि खेलने वाले नट और नटी बार बार एक ही नाटक को खेलते रहने से अपने काम में बड़े निपुण हो जाते हैं। वे बड़ी स्वाभाविक रीति से खेल करते हैं। लन्दन में कई नाटकघर ऐसे हैं जो दो, तीन या इससे भी अधिक सालों तक लगातार एक ही नाटक खेलते रहते हैं। कई साल बाद लोगों को ऊब गया देख दूसरे नगर में जाकर फिर वही नाटक खेलते हैं।

आज कल लन्दन में कई नाटक ऐसे हो रहे हैं जिन्हें देख कर नेत्रों के सामने चकाचौंध आ जाती है। इनकी शान, इनके दृश्य और इनकी झलक में लाखों रुपयों की रक़म ख़र्च हुई है। एम्पायर नामक थियेटर में आज कल Razzle Dazzle नामक तमाशा हो रहा है, जिसमें अनेक विचित्र दृश्य दिखाने के लिए क़रीब छः लाख रुपये ख़र्च हुए हैं। इस नाटक में खेलने वाले भी बड़े बड़े प्रसिद्ध नट और नटी हैं, जैसे हैरी टेट नामक प्रसिद्ध दिल्लगीबाज़ नट तथा प्रसिद्ध सुन्दरी शर्लो केलाग और लीलियन डेविस नामक नटियाँ, जिनकी आमदनी दो हज़ार रुपये मासिक से अधिक है। दो दो तीन तीन लाख की लागत वाले दृश्यों के तो कई तमाशे आज कल यहाँ हो रहे हैं। इतना ख़र्च करने पर भी इन नाटक वालों को बहुत अधिक आमदनी हो रही है।

जगन्नाथ खन्ना, बी॰ एस-सी॰

(लन्दन)

कारमीर की यात्रा।

(२)

दर्शनीय स्थान।

यहाँ मैं पाठकों को उन स्थानों की सैर कराना चाहता हूँ जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य्य, जल-वायु की विशेषता, कला-कौशल और प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्हें देखना तथा इनके आस पास रहना, कारमीर देखना और वहाँ का आनन्द प्राप्त करना है।

शङ्कराचार्य्य (अथवा तख़्ते सुलेमान)—श्रीनगर पहुँचने पर जो वस्तु सबसे अधिक कौतूहलोत्पादक है वह सामने, पूर्व की ओर, निकटवर्ती पहाड़ी पर स्थित, शङ्कराचार्य्य का मन्दिर है। दूर से नील वर्ण के पर्वत की सर्वोच्च चोटी पर सिर उठाये हुए यह बहुत सुन्दर और मनोहर देख पड़ता है। यह नगर से दो मील है। मन्दिर की ऊँचाई कोई १००० फ़ीट है। कहा जाता है कि पहले पहल इसे सन्धिमान ने (ईसवी सन के पहले २६२९—२५६४) बनाया था। इसके बाद गोपादित्य (ईसवी सन के पहले ४२६–३६५) और ललितादित्य ने (ईसवी ६९७—७३३ में) इसकी मरम्मत कराई। जो हो, सिकन्दर बुतशिकन ने कृपा कर इसे नहीं तोड़ा, क्योंकि महमूद ग़ज़नवी ने यहाँ ईश्वर की प्रार्थना की थी। जैनुल-आबदीन ने भी इसकी छत की मरम्मत कराई थी। सुनते हैं वितस्ता के किनारे से लेकर मन्दिर तक यहाँ पहले पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। इन्हीं से नूरजहाँ ने शहर की पत्थर वाली मसजिद बनवाई थी।

आधुनिक इमारत देखने से मालूम होता है कि मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं है। इसमें शिवजी का एक बड़ा लिङ्ग है, जिसकी पूजा और दर्शन के लिए प्रति दिन कुछ न कुछ लोग आते ही रहते हैं।

शालामार बाग़—जिन लोगों ने लाहौर का शालामार बाग़ देखा है वे, यहाँ के भी शालामार बाग़ का कुछ अन्दाज़ा कर सकेंगे। यह बाग़ लाहौर वाले बाग़ की तरह बुरी दशा में नहीं और न यहाँ केवल नाम के ही वृक्ष हैं। यह भी एक कम्पी-चौड़े दो खेतियों में विभक्त है। पहले को फ़रहबख़्श और दूसरी को फ़ैज़बख़्श कहते हैं। पहले को, जहाँगीर ने १६१९ ईसवी में और दूसरी को शाहजहाँ की आज्ञा से कारमीर के मुग़ल अधिकारी ज़फ़रख़ाँ ने १६३० ईसवी में बनवाया था। दोनों में सङ्ग मरमर का मरमरा सा फ़र्श और फूलों की क्यारियाँ देखने लायक़ हैं। पीछे की ओर से एक छोटे पहाड़ी नाले से पानी आता है, जो कई सीढ़ियों से गुज़रता हुआ अन्त में डल झील में गिरता है। इससे कई प्रपातों की सृष्टि हो गई है। इन प्रपात के नीचे की मोरी में, जिसमें पानी गिरता है, फ़ौवारे हैं। प्रत्येक रविवार को फ़ौवारे खोल दिये जाते हैं। उस समय का दृश्य देखते ही बनता है। यह जगह श्रीनगर से कोई ११-१२ मील है। जहाँगीर और नूरजहाँ का प्रसिद्ध ब्याह इसी बाग़ में हुआ था।

नसीम बाग़—यह बाग़ भी डल झील के किनारे, शालामार से कुछ पश्चिम, है। इसे शाहजहाँ ने १६३५ ईसवी में बनवाया था। इसमें केवल चिनार ही के वृक्ष हैं। उनके नीचे, गर्मियों में, यहाँ के निवासी तथा दर्शक लोग मैं कई सप्ताह बिता देते हैं। सामने डल की शोभा देखने योग्य है। अभी तक प्राचीन दीवारों तथा सीढ़ियों के भग्नांश दिखाई पड़ते हैं।

निशात बाग़—यह कारमीर का सबसे प्रसिद्ध तथा सुन्दर बाग़ है। यह भी डल के ही किनारे, पहाड़ की तराई में, है। यह शहर से सिर्फ़ ७—८ मील है। इसमें सात सीढ़ियाँ भीतर और तीन चार बाहर हैं। प्रत्येक सीढ़ी पर फूलों की क्यारियाँ और फलों के पेड़ हैं। प्रत्येक सीढ़ी के बीच में पानी बहने के लिए काफ़ी चौड़ी मोरी है। प्रत्येक मोरी का पानी, जो पहाड़ से आता है, प्रपात के द्वारा नीचे की दूसरी मोरी में गिरता है। इस प्रकार जितनी सीढ़ियाँ हैं उतने ही प्रपात हैं। प्रत्येक मोरी में कई फ़ौवारे हैं। वे प्रायः रविवार को ही छुटते हैं। उस दिन दर्शकों की ख़ासी भीड़ होती है। मित्रों की कई टोलियाँ आती हैं और दिन भर आनन्द मना कर शाम को शिकारे पर घर लौट जाती हैं। बड़ा ही सुन्दर और रमणीक बाग़ है। विशेषता यह है कि सामने इसके डल झील है और पीछे ऊँची पर्वत-श्रेणी। इसे जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ के भाई आसफ़ख़ाँ ने, १६३३ ईसवी में, बनवाया था। इसे

देखने पर शाहेजहाँ को रश्क हुआ था। फल यह हुआ कि जिस स्थान से इसमें पानी आता था और जिसके कारण इसकी रौनक़ थी, उसे बन्द कर देने की उसने आज्ञा दे दी। कुछ दिनों बाद पानी न मिलने से बाग़ वीरान सा हो गया। यह देखते ही आसफ़ख़ाँ बेहोश होकर गिर पड़ा। उसकी यह दशा माली से न देखी गई। उसने शाहंशाह के हुक्म के ख़िलाफ़ पानी आने के स्थान को खोल दिया, जिससे बाग़ फिर लहलहाने लगा। इस पर पहले तो बादशाह को ग़ुस्सा आया, पर पीछे से उसने माफ़ी दे दी।

चश्माशाही—यह भी झील के किनारे और निशात बाग़ के पास ही, दो तीन मील की दूरी पर, है। शहर से यह केवल ६ मील है। इस चश्मे का पानी बहुत हाज़िम है। पानी ठण्डा, हलका और पीने लायक़ है। शाहेजहाँ ने इसके आगे तीन सीढ़ियों का एक बाग़ भी, १६३२ ईसवी में, लगवाया था। यह अभी तक मौजूद तो है; पर शोचनीय अवस्था में। यहाँ रोज़ दस पाँच यात्री अवश्य पानी पीने आते हैं। लोग इस चश्मे के पानी की बड़ी तारीफ़ करते हैं। मैं भी यहाँ एक सप्ताह रहा हूँ।

परी-महल—यह स्थान चश्माशाही से सिर्फ़ एक मील है। पर्वत के एक निकले हुए भाग पर यह बना है। इमारत इसकी पाँच-मञ्ज़िला है। दूर से देखने में कई दरजों वाला घर जान पड़ता है। फलित-ज्योतिष सिखाने के निमित्त दाराशिकोह ने इसे अपने गुरु मुल्लाशाह के लिए बनाया था। काश्मीर में इसके सम्बन्ध में बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। सबसे प्रसिद्ध किंवदन्ती यह है कि इस महल को जहाँगीर ने परियों के लिए बनवाया था। जो परी इसमें एक बार घुस जाती थी वह फिर न निकल सकती थी।

पाण्डरेथन—यह एक छोटा सा पुराना मन्दिर है। श्रीनगर से कोई ३ मील दूर, अनन्त-नाग जाने के रास्ते पर, यह बना है। इस समय इसके बीच में तथा चारों ओर चश्मे से निकले हुए गन्दे पानी के *सिवा और कुछ नज़र नहीं* आता। श्रीयुत आनन्द कौल ने अपनी "Geography of Kashmir & Jammu" नाम की पुस्तक में लिखा है कि, राजा पार्थ (ईसवी ९०६—९२१) के समय में उसके प्रधान मन्त्री, मेरु, ने इसे बनवाया था। इसमें शिवजी के लिङ्ग की स्थापना की गई थी। इसका नाम मेरुवर्धन-स्वामी रक्खा गया था। प्राचीन श्रीनगर इसी के इर्द गिर्द बसा हुआ था। पीछे, ९६० ईसवी में, यह जल गया। इसका प्राचीन नाम पुराणाधिष्ठान बिगड़ कर पाण्डरेथन हो गया है। पर पुराणाधिष्ठान का पाण्डरेथन होना कुछ अस्वाभाविक सा मालूम होता है। मेरा विचार और है। काश्मीर के प्रायः *सब प्राचीन मन्दिर पाण्डवों के स्थान समझे जाते हैं।* अत-एव यह पहले पाण्डवस्थान कहा जाता होगा। पीछे बिगड़ कर पाण्डरेथन हो गया जान पड़ता है। अब यहाँ शिवलिङ्ग आदि कुछ भी नहीं है।

अब तक मैंने उन स्थानों का वर्णन किया जो श्रीनगर के आस पास हैं। ये प्रति दिन देखे जा सकते हैं। अब मैं *आपको श्रीनगर से जम्मू जाने वाली सड़क के किनारे किनारे* अर्थात् वितस्ता नदी के उद्गम स्थान की ओर ले चलता हूँ।

सबसे पहले दर्शनीय वस्तु पुष्करायन है। उसके कुछ दूर आगे पाँपुर (पद्मपुर) गाँव के पास केसर के खेत देखने में आते हैं। खेती देखने का मज़ा कार्तिक में आता है। जिस समय मैं वहाँ गया था उस समय वहाँ कुछ भी न था। *पाँपुर का घी मशहूर है।*

अवन्तिपुर का मन्दिर—आगे बढ़ने पर अवन्तिपुर नामक गाँव मिलता है। यह नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ दो प्राचीन मन्दिर हैं। उनकी खुदाई हो रही है। मन्दिर देखने लायक़ हैं। उनसे प्राचीन हिन्दुओं के कला-कौशल और मूर्ति निर्माण-विद्या का अच्छा पता लगता है। बड़े मन्दिर से निकली हुई विष्णु की मूर्ति देखने से आश्चर्य होता है। मन्दिर की विशालता, कारीगरी और बनावट देखते ही बनती है। छोटे मन्दिर की लम्बाई १०० क़दम और चौड़ाई ८० क़दम है। पत्थर के बड़े बड़े टुकड़ों को देख कर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार वे छत पर चढ़ाये गये होंगे। बड़ा मन्दिर तो और भी आश्चर्य-जनक है। उसके चारों ओर दीवारें थीं, जिनमें मूर्तियाँ रखने के लिए कई स्थान बने हुए थे। स्थानाभाव से इसका सविस्तर वर्णन नहीं किया जाता।

अनन्तनाग (इसलामाबाद)—कई मील आगे, श्री-नगर से ३४ मील पर, इसलामाबाद नाम का क़स्बा है। यहाँ अनन्तनाग नाम का एक चश्मा है। इसका पानी एक छोटी

नाले में जाकर गिरता है। यहाँ भी देखने लायक चीज़ लालसिरी मछलियाँ हैं। इन्हें मारने की आज्ञा नहीं। पास ही गन्धक का एक चश्मा है। सिक्खों की एक धर्मशाला भी है।

मार्तण्ड (मटन)—यह स्थान अनन्तनाग से उत्तर-पूर्व कोई ३ मील की दूरी पर है। यह काश्मीरी हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है। इसे यहाँ वाले अपना गया-तीर्थ मानते हैं। यहाँ वे पिण्ड-दान करते हैं। यहाँ, एक छोटी पहाड़ी की जड़ में, महाराज रणबीरसिंह का बनवाया हुआ एक मन्दिर है। उसमें सूर्य्य की प्रतिमा विराजमान है। उसके नीचे एक चश्मे से पानी निकलता है। वह दो बावलियों में एकत्र होता है। पानी बड़ा ठण्डा है। इसमें भी अनन्तनाग की तरह लाल-सिरी मछलियाँ हैं। इन्हें मारने की मुमानियत है। आध मील आगे, पहाड़ के किनारे, एक बड़ी और एक छोटी गुफा है। ये किसी पुराने हिन्दू राजा के समय की बनी हुई हैं। छोटी छोटी गुफाओं को देखने से मालूम होता है कि ये किसी समय ऋषियों का निवास-स्थान थीं। ऐसी एक छोटी गुफा में शिवजी का एक पुराना मन्दिर है। उसके सामने लिदर (लम्बोदर) नाम के एक नाले की सुन्दर तराई मन को मोह लेती है।

पहलगाँव—यदि हम इसी लिदर नाले के किनारे किनारे इसके उद्गम स्थान की ओर चलें तो हम एक सुन्दर स्थान पर पहुँच जायँगे। उसे पहलगाँव कहते हैं। यह स्थान ही नहीं, सारी लिदर तराई, ऐसी सुन्दर और चित्त-हर्षिणी है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। हज़ारों दर्शक यहाँ आकर अपने अपने ख़ेमों में सप्ताहों रहते हैं। यहाँ के जल-वायु की प्रशंसा जितनी की जाय, थोड़ी है। किसी ने इसे संसार का सबसे सुन्दर स्थान बताया है। इसके आगे, उत्तर की ओर, फिर आबादी नहीं है। यहीं से अमरनाथ-तीर्थ को रास्ता जाता है। अमरनाथ का मेला प्रति वर्ष श्रावण की पूर्णमासी को होता है। उसमें हिन्दुस्तान से हज़ारों साधु-महात्मा तथा गृहस्थ आते हैं।

अच्छाबल—यह अनन्तनाग से दक्षिण-पश्चिम, ६ मील की दूरी पर, काश्मीर के प्रसिद्ध स्थानों में से है। यहाँ का भी जल-वायु बड़ा अच्छा है। यहाँ एक सुन्दर पर्वत-श्रेणी है, जिसके एक हरे भरे भाग के नीचे, तराई में, एक ही जगह तीन चश्मे हैं। चश्मों के सामने सुन्दर बाग़ बना हुआ है। ऐसे सुन्दर चश्मे काश्मीर भर में और नहीं। इनका जल बड़ा ठण्डा और पाचक है। कुँग पराने में, रिकवर्ध नाम की पहाड़ी के नीचे, पूंपी नाम की एक नदी भाग है जाती है। कहा जाता है कि वही यहाँ, चश्मे के रूप में, फिर निकलती है। पर्वत के इस भाग को सोसनवार कहते हैं। बाग़ शाहेजहाँ की शहज़ादी जहान-आरा बेगम का बनवाया हुआ है। यह १६४० ईसवी में बना था। इसमें भी तीन चश्मे हैं। बाहर ख़ेमे गाड़ कर रहने के लिए एक बड़ा सुन्दर हरा भरा मैदान है। मैं यहाँ कोई एक सप्ताह रहा था। अच्छाबल अक्षवल का अपभ्रंश है। अक्षवल नाम का एक राजा था। उसने ईसवी सन् के ७३६ वर्ष पहले से ७११ तक यहाँ राज्य किया था। यहाँ से कुछ दूर पर लूर नामक एक स्थान है। यहाँ पुराने मकानों तथा मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। राज्य की सेना गर्मियों में यहीं रहती है।

वेरीनाग—अनन्तनाग से यह स्थान १६ मील पर है। यहीं से वितस्ता (झेलम) निकलती है। यहाँ सुन्दर घने पहाड़ के एक भाग में एक चश्मा है। पानी एक छोटे अठकोने तालाब में एकत्र होता है। यहाँ से निकल कर यही चश्मा वितस्ता नदी में परिणत हो जाता है। यह तालाब अथवा कुण्ड ५० फ़ीट गहरा है। १६१२ ईसवी में जहाँगीर ने इसे बनवाया था। पश्चात् १६२६ ईसवी में यह सुन्दर मीनारें सहित एक वाटिका भी लगाई गई। यह अब तक वर्तमान है। यह स्थान बहुत ऊँचे पहाड़ की तराई में है। इस कारण इस स्थान में ठण्ड बहुत पड़ती है। जम्मू आने के समय यहीं से बानिहाल घाटी की चढ़ाई आरम्भ होती है।

कोकरनाग—यह अनन्तनाग से कोई १६ मील दूर है। स्थान भी बहुत सुन्दर है। यह अपने जल-वायु के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ भी एक चश्मा है। यहाँ काश्मीर के वासी कम से कम एक दो सप्ताह अवश्य रहते हैं।

जिन स्थानों का ऊपर वर्णन किया गया है सब अनन्तनाग के आस पास, वितस्ता के उद्गम स्थान की ओर, हैं। अब आप श्रीनगर को लौट चलिए। श्रीनगर की ओर सिन्धु नामक नाले की सैर कीजिए। यहाँ वितस्ता और सिन्धु नाले का संगम होता है। यह स्थान शादीपुर के नाम से प्रसिद्ध

है। यही काश्मीरियों का प्रयाग है। यहाँ कुम्भ का मेला होता है। सङ्गम से किश्ती सिन्धु नाले में घुसती है। इस नाले का पानी बर्फ़ की तरह ठण्डा, दूध सा सफ़ेद और बहुत पाचक है। इसकी धारा बड़ी प्रखर है। पाँच मील जाने पर काश्मीर का प्रसिद्ध स्थान गांधरबल मिलता है। यह श्रीनगर से सड़क के रास्ते कोई १२-१२ मील है। यह बड़ा ही रम्य और सुहावना स्थान है। जल-वायु तो इसका बहुत ही हितकर है। जुलाई भर यहीं किश्ती में रहना चाहिए। यहाँ से १ मील, पहाड़ की ढाल पर, रम्पुर नामक एक स्थान है। यह अङ्गूर के बाग़ों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कितने ही दर्शनीय बाग़ हैं। अगस्त में यहाँ गरमी पड़ने लगती है। इसलिए यह महीना सोनमर्ग या गुलमर्ग में व्यतीत करना चाहिए।

गांधरबल की विशेषता यह है कि यहाँ सिन्धु नाला के किनारे चिनार और बेत के वृक्ष हैं, जिनकी छाया में बैठना बड़ा हितकर है। सवारी के टट्टू यहाँ बहुत मिलते हैं। चार आने में चार घण्टे के लिए सवारी किराये पर की जा सकती है।

सोनमर्ग—यह पहाड़ी स्थान गांधरबल से ३० मील दूर है। यहाँ गांधरबल से भी अधिक सर्दी पड़ती है। ग्रीष्म गाल कर रहने के लिए यह स्थान बड़ा ही सुन्दर है।

क्षीरभवानी (तुलमुला)—यह गांधरबल से मील भर है। रास्ता पैदल का है। शादीपुर से किश्ती में जाने का दूसरा रास्ता एक छोटी नदी द्वारा है। यहाँ एक चश्मा है। उसका पानी एक कुण्ड में एकत्र होता है। कहते हैं, उसके पानी का रङ्ग बदला करता है। पर मैंने या मेरे अन्य साथियों ने रङ्ग बदलते नहीं देखा। रायसाहब पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी की भी यही सम्मति है। इस कुण्ड में महाराज का बना हुआ एक छोटा सा सुन्दर मन्दिर है। यहाँ प्रत्येक अष्टमी को नर-नारियों की बड़ी भीड़ होती है। स्थान दर्शनीय है।

मानसबल—यह झील है। यह क्षीर-भवानी से कोई २ मील है। यह अपनी मनोरमता के लिए काश्मीर में मशहूर है। किश्ती पर बैठ कर झील के बीच में जाने से बड़ा आनन्द आता है। पास ही एक बाग़ भी है, जहाँ कई नार के वृक्ष हैं। चिनार के सुन्दर वृक्ष भी हैं।

चलिए, अब फिर श्रीनगर की ओर चलें। हाँ, इधर गांधरबल और हरिमुकुट-गङ्गा आदि स्थान भी दर्शनीय हैं।

गुलमर्ग—श्रीनगर से रावलपिण्डी जाते समय, रास्ते से १० मील हट कर, काश्मीर का बहुत प्रसिद्ध स्थान गुलमर्ग है। इसे यूरोपियनों ने एक प्रकार से अपना उपनिवेश सा बना लिया है। यह स्थान एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। यहाँ का जल-वायु बहुत अच्छा है। यहाँ सर्दी बहुत अधिक पड़ती है। अगस्त में कुछ दिन यहाँ रहा जाय तो बड़ा अच्छा है। क्योंकि अगस्त में श्रीनगर में ख़ूब गरमी पड़ती है। गांधरबल के सदृश स्थानों में भी गरमी कम नहीं रहती। स्थानाभाव से इसका सविस्तर वर्णन करना कठिन है। केवल इतना ही कहना बस होगा कि इसे देखे बिना काश्मीर की यात्रा पूरी नहीं कही जा सकती।

ऊलरझील—अन्तिम दर्शनीय स्थान, जिसका मैं ज़िक्र करना चाहता हूँ, ऊलरझील है। जो लोग रावलपिण्डी जाते समय बारामूला तक किश्ती से जाते हैं उन्हें यह झील पार करनी पड़ती है। भारतवर्ष में यही सबसे बड़ी झील है। सन्ध्या को ख़तरनाक हवा इसमें चलती है। अतएव झील को पार करते समय हवा से बचने के लिए साथ में काफ़ी माँझी हों, इस बात का पूरा ख़याल रखना चाहिए। इसकी लम्बाई कोई १२ मील है। इससे निकलने के बाद वितस्ता नदी झेलम के नाम से पुकारी जाती है।

पाण्डुस्थान—मार्तण्ड का ज़िक्र करते हुए मैं वहाँ के इस प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना भूल गया था। मन्दिर एक ऊँचे मैदान में बना हुआ है, जिसे करीवा कहते हैं। यह भी मुसलमानों द्वारा नष्ट किया गया था।

चितावनी।

अन्त में मैं पाठकों का ध्यान इन कई बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जिनसे प्रत्येक यात्री को होशियार रहना चाहिए। यात्रियों को किश्ती वालों से अवश्य काम पड़ता है। अतएव पहले मैं उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ कहता हूँ। किश्ती वाले प्रायः चालाक होते हैं। वे सदा यही चाहते हैं कि जिस प्रकार बने यात्री से रुपये ऐंठ लें। इसके लिए वे नाना प्रकार के उपाय रचते हैं। वहाँ की मशहूर चीज़ें बेचने वालों को वे लाते हैं और उन्हें ख़रीदने की सिफ़ारिश करते हैं। यात्री बेचारे इन चालाकियों से अनजान होते हैं। अतएव वे धोखे में आ जाते हैं और

वावली में आकर गिरता है। यहाँ की देवने लायक चीज़ रङ्गबिरङ्गी मछलियाँ हैं। इन्हें मारने की आज्ञा नहीं। पास ही गन्धक का एक चश्मा है। सिक्खों की एक धर्मशाला भी है।

मार्तण्ड (मटन)—यह स्थान अनन्तनाग से उत्तर-पूर्व कोई ३ मील की दूरी पर है। यह काश्मीरी हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है। इसे यहाँ वाले अपना गया-तीर्थ मानते हैं। यहाँ वे पिण्ड-दान करते हैं। यहाँ, एक छोटी पहाड़ी की जड़ में, महाराज रणबीरसिंह का बनवाया हुआ एक मन्दिर है। इसमें सूर्य्य की प्रतिमा विराजमान है। इसके नीचे एक चश्मे से पानी निकलता है। यह दो बावलियों में एकत्र होता है। पानी बड़ा ठण्डा है। इसमें भी अनन्तनाग की तरह रङ्ग-बिरङ्गी मछलियाँ हैं। इन्हें मारने की मुमानियत है। आध मील आगे, पहाड़ के किनारे, एक बड़ी और एक छोटी गुफा है। ये किसी पुराने हिन्दू राजा के समय की बनी हुई हैं। छोटी छोटी गुफाओं को देखने से मालूम होता है कि ये किसी समय ऋषियों का निवास-स्थान थीं। ऐसी एक छोटी गुफा में शिवजी का एक पुराना मन्दिर है। इसके सामने लिदर (लम्बोदर) नाम के एक नाले की सुन्दर तराई मन को मोह लेती है।

पहलगाँव—यदि हम इसी लिदर नाले के किनारे किनारे इसके उद्गम स्थान की ओर चलें तो हम एक सुन्दर स्थान पर पहुँच जायँगे। उसे पहलगाँव कहते हैं। यह स्थान ही नहीं, सारी लिदर तराई, ऐसी सुन्दर और चित्त-हारिणी है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। हज़ारों दर्शक यहाँ आकर अपने अपने ख़ेमों में सप्ताहों रहते हैं। यहाँ के जल-वायु की प्रशंसा जितनी की जाय, थोड़ी है। किसी ने इसे संसार का सबसे सुन्दर स्थान बताया है। इसके आगे, उत्तर की ओर, फिर आबादी नहीं है। यहीं से अमरनाथ-तीर्थ को रास्ता जाता है। अमरनाथ का मेला प्रति वर्ष श्रावण की पूर्णमासी को होता है। उसमें हिन्दुस्तान से हज़ारों साधु-महात्मा तथा गृहस्थ आते हैं।

अच्छाबल—यह अनन्तनाग से दक्षिण-पश्चिम, ६ मील की दूरी पर, काश्मीर के प्रसिद्ध स्थानों में से है। यहाँ का भी जल-वायु बड़ा अच्छा है। यहाँ एक सुन्दर पर्वत-श्रेणी है, जिसके एक हरे भरे भाग के नीचे, तराई में, एक ही जगह तीन चश्मे हैं। चश्मों के सामने सुन्दर बाग़ बना हुआ है। ऐसे सुन्दर चश्मे काश्मीर भर में और नहीं। जल बड़ा ठण्डा और पाचक है। बृंग परगने में, हिमालय नाम की पहाड़ी के नीचे, कुंभी नाम की एक नदी बहती है। आती है। कहा जाता है कि यही नदी, चश्मे के रूप में, फिर निकलती है। पर्वत के इस भाग को सोसनवार कहते हैं। बाग़ शाहेजहाँ की बहन जहाँआरा बेगम का बनवाया हुआ है। यह १६४० ईसवी में बना था। इसमें भी तीन इमारतें हैं। बाहर ख़ेमे गाड़ कर रहने के लिए एक बड़ा सुन्दर हरा भरा मैदान है। मैं यहाँ कोई एक सप्ताह रहा था। अच्छाबल अच्छबल का अपभ्रंश है। अच्छबल नाम का एक राजा था। उसने ईसवी सन् के ७६६ वर्ष पहले से ७२६ तक यहाँ राज किया था। यहाँ से कुछ दूर पर एक नामक एक स्थान है। यहाँ पुराने मकानों तथा मन्दिरों के भग्नांश हैं। राज्य की सेना गर्म्मियों में यहीं रहती है।

वेरिनाग—अनन्तनाग से यह स्थान १६ मील दूर है। यहीं से वितस्ता (झेलम) निकलती है। यहाँ सुन्दर घने पहाड़ के एक भाग में एक चश्मा है। पानी एक ऐसे अठकोने तालाब में एकत्र होता है। यहाँ से निकल कर यही चश्मा वितस्ता नदी में परिणत हो जाता है। यह तालाब अथवा कुण्ड ४० फ़ीट गहरा है। १६१२ ईसवी में जहाँगीर ने इसे बनवाया था। पश्चात् १६२६ ईसवी में यहाँ सुन्दर फ़ौवारे सहित एक वाटिका भी लगाई गई। वह अब तक वर्तमान है। यह स्थान बहुत ऊँचे पहाड़ की तराई में है। इस कारण इस स्थान में ठण्ड बहुत पड़ती है। जम्मू जाने के समय यहीं से बानिहाल घाटी की चढ़ाई आरम्भ होती है।

कोकरनाग—यह अनन्तनाग से कोई १२ मील दूर है। स्थान भी बहुत सुन्दर है। यह अपने जल-वायु के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ भी एक चश्मा है। यहाँ काश्मीर के यात्री कम से कम एक दो सप्ताह अवश्य रहते हैं।

जिन स्थानों का ऊपर वर्णन किया गया वे सब अनन्तनाग के आस पास, वितस्ता के उद्गम स्थान की ओर, हैं। अब आप श्रीनगर को लौट चलिए। श्रीनगर की ओर सिन्धु नामक नाले की सैर कीजिए। यहाँ वितस्ता और सिन्धु नाले का सङ्गम होता है। यह स्थान शादीपुर के नाम से प्रसिद्ध

है। यही काश्मीरियों का प्रयाग है। यहाँ कुम्भ का मेला होता है। सङ्गम से मिलती सिन्धु पाले में घुसती है। इस नाले का पानी बर्फ़ की तरह ठण्डा, दूध सा सफ़ेद और बहुत पाचक है। इसकी धारा बड़ी प्रखर है। पाँच मील जाने पर काश्मीर का प्रसिद्ध स्थान गाँधरबल मिलता है। यह श्रीनगर से सड़क के रास्ते कोई १४-१२ मील है। यह बड़ा ही रम्य और सुहावना स्थान है। जल-वायु तो इसका बहुत ही हितकर है। जुलाई भर यहीं किश्ती में रहना चाहिए। यहाँ से ६ मील, पहाड़ की ढाल पर, रघपुर नामक एक स्थान है। यह अङ्गूर के बग़ीचों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कितने ही दर्शनीय बाग़ हैं। अगस्त में यहाँ गरमी पड़ने लगती है। इसलिए यह महीना सोनमर्ग या गुलमर्ग में व्यतीत करना चाहिए।

गाँधरबल की विशेषता यह है कि यहाँ सिन्धु नदी के किनारे चिनार और बेत के वृक्ष हैं, जिनकी छाया में बैठना बड़ा हितकर है। सवारी के टट्टू यहाँ बहुत मिलते हैं। चार आने में चार घण्टे के लिए सवारी किराये पर की जा सकती है।

सोनमर्ग—यह पहाड़ी स्थान गाँधरबल से ६४ मील दूर है। यहाँ गाँधरबल से भी अधिक सरदी पड़ती है। ग्रीष्म ऋतु भर रहने के लिए यह स्थान बड़ा ही सुन्दर है।

क्षीरभवानी (तुलमुला)—यह गाँधरबल से मील भर है। रास्ता पैदल का है। शादीपुर से किश्ती में जाने का दूसरा रास्ता एक छोटी नदी द्वारा है। यहाँ एक चश्मा है। उसका पानी एक कुण्ड में एकत्र होता है। कहते हैं, उसके पानी का रङ्ग बदला करता है। पर मैंने या मेरे अन्य साथियों ने रङ्ग बदलते नहीं देखा। रायसाहब पण्डित श्रीकृष्णप्रसाद त्रिपाठी की भी यही सम्मति है। इस कुण्ड में सङ्गमरमर का बना हुआ एक छोटा सा सुन्दर मन्दिर है। यहाँ प्रत्येक अष्टमी को नर-नारियों की बड़ी भीड़ होती है। स्थान दर्शनीय है।

मानसबल—यह झील है। यह क्षीर-भवानी से कोई ६ मील है। यह अपनी प्रशान्तता के लिए काश्मीर में मशहूर है। किश्ती पर बैठ कर झील के बीच में जाने से बड़ा आनन्द आता है। पास ही एक बाग़ भी है, जहाँ कई तरह के फल हैं। चिनार के सुन्दर वृक्ष भी हैं।

चलिए, अब फिर श्रीनगर लौट चलें। हाँ, इधर गाँधरबल और हरिमुकगङ्गा आदि स्थान भी दर्शनीय हैं।

गुलमर्ग—श्रीनगर से रावलपिण्डी जाते समय, रास्ते से १० मील हट कर, काश्मीर का बहुत प्रसिद्ध स्थान गुलमर्ग है। इसे यूरोपियनों ने एक प्रकार से अपना उपनिवेश सा बना लिया है। यह स्थान एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। यहाँ का जल-वायु बहुत अच्छा है। यहाँ सरदी बहुत अधिक पड़ती है। अगस्त में कुछ दिन यहाँ रहा जाय तो बड़ा अच्छा है। क्योंकि अगस्त में श्रीनगर में ख़ूब गरमी पड़ती है, गाँधरबल के सदृश स्थानों में भी गरमी कम नहीं रहती। स्थानाभाव से इसका सविस्तर वर्णन करना कठिन है। केवल इतना ही कहना बस होगा कि इसे देखे बिना काश्मीर की यात्रा पूरी नहीं कही जा सकती।

ऊलरझील—अन्तिम दर्शनीय स्थान, जिसका मैं ज़िक्र करना चाहता हूँ, ऊलरझील है। जो लोग रावलपिण्डी जाते समय बारामूला तक किश्ती से जाते हैं उन्हें यह झील पार करनी पड़ती है। भारतवर्ष में यही सबसे बड़ी झील है। सन्ध्या को ख़तरनाक हवा इसमें चलती है। अतएव झील को पार करते समय हवा से बचने के लिए साथ में काफ़ी माँझी हों, इस बात का पूरा ख़याल रखना चाहिए। इसकी लम्बाई कोई १२ मील है। इससे निकलने के बाद वितस्ता नदी झेलम के नाम से पुकारी जाती है।

पाण्डुस्थान—मार्तण्ड का ज़िक्र करते हुए मैं यहाँ के इस प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना भूल गया था। मन्दिर एक ऊँचे मैदान में बना हुआ है, जिसे करीवा कहते हैं। यह भी मुसलमानों द्वारा नष्ट किया गया था।

चितावनी।

अन्त में मैं पाठकों का ध्यान उन कई बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जिनसे प्रत्येक यात्री को होशियार रहना चाहिए। यात्रियों को किश्ती वालों से अवश्य काम पड़ता है। अतएव पहले मैं उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ कहता हूँ। किश्ती वाले प्रायः चालाक होते हैं। वे सदा यही चाहते हैं कि जिस प्रकार बने यात्री से रुपये ऐंठ लें। इसके लिए वे नाना प्रकार के उपाय रचते हैं। यहाँ की मशहूर चीज़ें बेचने वालों को वे लाते हैं और बाद में उन्हें ख़रीदने की सिफ़ारिश करते हैं। यात्री बेचारे इन चालाकियों से अनजान होते हैं। अतएव वे मैंगुने दाम दे देते हैं और

किश्ती वाला तथा दुकानदार दोनों अपनी जेबें भर लेते हैं। बाज़ार से कोई चीज़ उनकी मारफ़त मँगाई जाय तो उससे भी वे कुछ न कुछ अवश्य बचा लेते हैं। लकड़ी तथा खाने-पीने की साधारण चीज़ें चुराने में ये ख़ूब सिद्धहस्त हैं। हाँ, इनके सिवा और कोई चीज़ ये नहीं चुरा सकते। वे ऐसा कभी करते भी नहीं। चोरी का भय वहाँ बिलकुल नहीं। मेज़ पर रुपया चाहे इकट्ठा पड़ा रहने दीजिए, पर कोई पूछेगा भी नहीं। दूसरी बात, जो काश्मीर के सम्बन्ध में आम तौर से मशहूर है, यह कि वहाँ व्यभिचार बहुत अधिक है। अतएव इस सम्बन्ध के पेचों से यात्रियों को बचना चाहिए।

काश्मीरियों से चीज़ ख़रीदते समय बड़ी जानकारी की आवश्यकता है। बिना किसी परिचित आदमी की राय के कोई चीज़ न ख़रीदना ही अच्छा है। क्योंकि वहाँ के लोग प्रायः तिगुना चौगुना दाम माँगते हैं। किश्ती वालों से अधिक बातचीत न करना तथा उन्हें मुँह न लगाना अच्छा है। वहाँ सिधाई से काम नहीं निकलता। यदि वे तंग करें, तो शीघ्र ही मोहमिद, दरबार, मामक अफ़सर को शिकायत लिख भेजना चाहिए।

जो लोग कट्टर हिन्दू अथवा जैन हैं उन्हें अपने साथ अपना रसोइया तथा नौकर ले जाना चाहिए। उन्हीं स्थानों में नदी अथवा नाले नहीं हैं। अतएव ऐसे की आवश्यकता पड़ती है। इस लिए घर से ही दोअबारी भी साथ ले लेना अच्छा है। वहाँ काश्मीर-प्रचारक-एजेंसी तथा और किसी दुकान से भी सात आठ रुपये महीने के किराये पर वह मिल जाती है।

जहाँ ताँगा नहीं जा सकता वहाँ जाना हो तो असबाब के लिए टट्टू कर लेना चाहिए। क्योंकि थक जाने पर मनुष्य भी उस पर चढ़ सकता है। साथ उसका मालिक भी होता है, जिससे बहुत कुछ काम लिया जा सकता है।

खाने-पीने की चीज़ें श्रीनगर के बाहर कहीं कहीं सस्ती और कहीं कहीं महँगी मिलती हैं। श्रीनगर में रहते समय, तरकारी के सिवा आटा, चावल तथा घी बाहर के किसी गाँव से लेना चाहिए। शहर और गाँव के निर्ख़ में बड़ा अन्तर रहता है। फलों के लिए यथासम्भव बाग़ों में जाना चाहिए। वहाँ कम से कम दाम लगें तो अवश्य ही मिलते हैं। बाग़ वाले प्रायः अधिक दाम माँगा करते हैं। पर चतुर आदमी बाज़ार से कम दर में उन्हें पा सकता है।

काश्मीर में मच्छड़ तथा पिस्सू बहुत होते हैं। इस लिए साथ में मसहरी ज़रूर होनी चाहिए। वर्षा की अधिकता के ख़याल से बरसाती ओवरकोट भी ले जाना चाहिए।

चिट्ठियाँ पोस्टमास्टर, श्रीनगर, की मारफ़त मँगानी चाहिए। दूसरे स्थान में जाना हो तो पोस्टमास्टर को पत्र द्वारा सूचना दे देनी चाहिए, जिसमें चिट्ठियाँ ठीक वहाँ मिल जायँ। बार बार पता बदलने की आवश्यकता नहीं। काश्मीर में डाकख़ाने का प्रबन्ध बहुत ही अच्छा है।

जो लोग फ़ोटोग्राफ़ी या चित्रकारी जानते हैं उन्हें अपने साथ इसका सब सामान ले जाना चाहिए।

सुदर्शनदास गुप्त, बी॰ ए॰

जापान में संस्कृत का प्रचार।

प्रसन्नता की बात है, देववाणी संस्कृत का आदर सुदूर जापान में भी है। कोई बारह सौ वर्षों से वहाँ संस्कृत का पठन-पाठन होता आया है। भारत के लिए यह बड़े गौरव की बात है। जापान में आज तक संस्कृत के अनेकानेक योग्य विद्वान् हो चुके हैं। वहाँ के पुस्तकालयों में संस्कृत की हस्त-लिखित अनेक दुष्प्राप्य पुस्तकें भी सुरक्षित हैं।

इस सम्बन्ध में "माडर्न रिव्यू" के अक्टोबर १९१६ के अङ्क में, हेरम्ब चन्द्र मैत्रेय के आधार पर, एक नोट निकला है। उसका भावार्थ आगे दिया जाता है—

भारत के बाहर किसी अन्य देश में इतने दिनों से संस्कृत का पठन-पाठन नहीं होता आया, और न कहीं उसका इतना अधिक प्रचार ही है जितना जापान में है। जापान में संस्कृत के पठन-पाठन का प्रारम्भ कब से हुआ, यह बात ठीक ठीक बतलाना असम्भव है। हाँ, साधारण तौर से यह कहा जा सकता

है कि जापान में संस्कृत का प्रचार बौद्ध-धर्म्म के प्रचार के साथ ही साथ हुआ होगा। ईसाई सन् की छठी सदी में बौद्ध-धर्म्म ने जापान में प्रवेश किया। इतिहास से जाना जाता है कि सातवीं सदी में कुछ जापानी बौद्ध-पुरोहित चीन की बौद्धीय-अनुवाद-संस्था में प्रसिद्ध भारत-यात्री ह्वेनसांग और उसके शिष्यों से संस्कृत पढ़ते थे। परन्तु जापानियों में संस्कृत के विशेष पठन-पाठन का आरम्भ सन् ७३५ ईसवी से हुआ है। यह वह समय है जब बुद्धिसेन और फैत्रीत नाम के दो भारतीय बौद्ध-पुरोहितों का आगमन जापान में हुआ था। ये लोग पहले कुछ समय तक चीन की राजधानी में ठहरे। वहाँ उनका मेलजोल उन जापानी राजनीतिज्ञों से हो गया जो बहुधा राजनैतिक मामलों के कारण जापान से चीन आया-जाया करते थे। ये दोनों इन्हीं लोगों के साथ जापान गये।

इन भारतीय पुरोहितों की उपस्थिति ने जापान में संस्कृत के पठन-पाठन को ऐसा प्रोत्साहन दिया कि जापान में संस्कृत-साहित्य के आलोचकों का एक दल तैयार हो गया। इन लोगों में से कुछ विद्वान् बौद्धधर्म्म के आचार्य्य माने जाने लगे। जापान ही में नहीं, चीन में भी ये लोग आचार्य्य-पद से सम्मानित किये गये। इतिहासों में लिखा है कि रेइज़न नामक एक जापानी पुरोहित फैकोबैशी के साथ सन् ८०५ में चीन गया। संस्कृत का पूर्ण पण्डित होने के कारण बौद्धीय अनुवाद-संस्था का वह प्रधानाध्यक्ष नियुक्त किया गया। प्राज्ञ नाम के एक भारतीय बौद्ध-पुरोहित की सहकारिता में उसने एक बौद्धीय सूत्र-ग्रन्थ का अनुवाद किया। यह ग्रन्थ शिम्पीकांगयो नाम से प्रख्यात है। अब तक वह ग्रन्थ अपने विषय का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। रेइज़न ने अपना शेष जीवन चीन ही में व्यतीत किया। उसका वहाँ बड़ा आदर-सत्कार हुआ। रेइज़न ही एक ऐसा जापानी संस्कृत-पण्डित न था जिसने चीन में काम किया हो और वहीं अपना जीवन भी व्यतीत किया हो; और भी अनेक जापानियों ने उसका अनुसरण किया। इन लोगों में एक का नाम कोक्रो था। उसने सन् ८१४ ई० में चीन से भारत की यात्रा की। भारत में कुछ काल ठहर कर वह चीन वापस गया। यह बात बिना सन्देह कही जा सकती है कि उसने बहुत कुछ भारतीय ज्ञान प्राप्त किया होगा।

दूसरा जापानी यात्री एक बड़ा ही उच्च श्रेणी का पुरुष था। वह था स्वयं जापान-सम्राट् साग का उत्तराधिकारी। उसका नाम था राजकुमार ताकाओका। यह राजकुमार कोचीन के रौस नामक स्थान तक ही पहुँच सका। दुर्भाग्यवश वह वहाँ बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। जिस उद्देश से उसने यात्रा आरम्भ की थी वह अपूर्ण ही रहा।

जब से जापान में संस्कृत का प्रवेश हुआ तब से तोकूगावा के समय तक, कोई बारह सौ वर्षों में, केवल जापान ही में तीन सौ से अधिक संस्कृत के पण्डित पैदा हुए। ये लोग संस्कृत-साहित्य के पूर्ण ज्ञाता थे। इन्होंने संस्कृत के व्याकरण और अन्यान्य विषयों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इनके लिखे हुए अधिकांश ग्रन्थ युद्ध आदि के कारण नष्ट हो गये। तथापि कोई डेढ़ सौ जिल्दें, इन लोगों के पाण्डित्य-प्रदर्शन-स्वरूप, अब भी प्राप्य हैं। इसके सिवा संस्कृत की अनेक हस्त-लिखित प्राचीन पुस्तकें, लेख और ताम्र-पत्र आदि जापान में अब भी पाये जाते हैं, जो या तो सीधे भारत से लाये गये होंगे या चीन होकर। ये सब वस्तुयें बहुमूल्य हैं, क्योंकि वे भारत की प्राचीन लेखन-प्रणाली के नमूने हैं। कुछ नमूने तो ऐसे हैं जिनका मूल्य वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही अधिक है।

इन पिछले प्रकार के नमूनों में होरियूजी नामक मन्दिर में रक्षित ताल-पत्र वाली कुछ पुस्तकें भी हैं। मैक्स-मूलर साहब ने आक्सफोर्ड में इनका समा-

दन और प्रकाशन किया है। ये बहुत प्राचीन लेख हैं। अभी हाल ही में, उसी ज़माने अर्थात् पाँचवीं सदी की, एक ताल-पत्र की पुस्तक क्यूटो के चियान-इन नामक मन्दिर में खोज निकाली गई है। अन्य भी कितनी ही पुरानी चीज़ें यामातो के होरियूजी, कोफ़ीजी और कैरियूजी, योमी के मीडेरा और सेंकियोजी, और कोयासन के धर्म-मन्दिरों में रक्खी हुई हैं।

भारतीय प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों और काग़ज़-पत्रों का जापानी संग्रहालय, डाक्टर जुनजीरो ताकाकूसू और रेवरेन्ड इकाई फ़ाग़ागूसी के द्वारा संगृहीत वस्तुओं से और भी अधिक हो गया है। ये सब पुस्तकें अब डाक्टर ताकाकूसू के तत्त्वावधान में देखी भाली जा रही हैं। डाक्टर साहब के परिश्रम का फल सर्व-साधारण को शीघ्र ही प्राप्त होने वाला है।

सन् १८९८ से जापान में शिक्षा का जो नया प्रबन्ध हुआ है उससे संस्कृत के पठन-पाठन की ओर भी उन्नति हो गई है। इस नई अध्ययन-प्रणाली के प्रभाव से कितने ही होनहार जापानी युवक योरप के भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों में शिक्षा-सम्पादनार्थ भेजे जा चुके हैं। फल यह हुआ है कि इस समय जापान में योरप के ढंग की संस्कृत-शिक्षा पाये हुए विद्वानों का एक समुदाय बन गया है। इन विद्वानों में से कुछ के नाम ये हैं—

हिगाशी-हागबानजी, डा० जुनगूतानसू, टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डा० जुनजीरो ताकाकूसू, डा० योगिहारा और प्रोफ़ेसर डा० वटेनाबी, क्यूटो के राजकीय विश्वविद्यालय के डा० साकाकी और ओटेनी-सम्प्रदाय के डा० वाटानाबी।

इन लोगों में से डा० वागीहारा और डा० वाटानाबी ने स्ट्रासबर्ग में प्रोफ़ेसर लेमन से संस्कृत पढ़ी है। अन्य लोगों ने अधिकतर मैक्समूलर से आक्सफ़ोर्ड में पढ़ा है। टोकियो और क्यूटो के राजकीय विश्व-विद्यालयों में तथा बौद्ध-धर्म के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों द्वारा संस्थापित कालेजों में संस्कृत पढ़ाई जाती है। राजकीय विश्वविद्यालयों में जो विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते हैं उनकी संख्या साठ है। परन्तु बौद्ध धर्म की संस्थाओं में संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या सौ से कम न होगी।

जापान में भारतीय विचारों का प्रचार और संस्कृत का अधिकाधिक पठन-पाठन जापानियों के मानसिक और आध्यात्मिक जीवन पर अपना प्रभाव डाल रहा है। संस्कृत की कठिन और पेचीदा इबारत जापानी लोगों को एक प्रकार के ऐसे विचार और स्वभाव से परिचय कराती है जो उनकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। ये लोग संस्कृत-साहित्य का जितना ही अधिक परिश्रम-पूर्वक अध्ययन करते जाते हैं उतना ही ये अपने पुराने भारतीय मित्रों का परिचय पाते जाते हैं।

इन सब बातों से यह प्रकट है कि जापानियों पर भारत का आध्यात्मिक प्रभाव कितना है और आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में उन लोगों को इस देश से कितनी सहायता मिली है।

जापानियों में संस्कृत-ज्ञान के प्रसार से जापान और भारत के बीच सद्भाव और सहानुभूति की उत्पत्ति होने की पूर्ण आशा है। भारत के संस्कृतज्ञों को जापानी संस्कृतज्ञों के साथ पत्र-व्यवहार करना चाहिए और संस्कृत की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों, काग़ज़-पत्रों और ताम्र-पत्रों की प्रतिलिपियाँ अपने विश्वविद्यालयों और कालेजों के पुस्तकालयों के लिए प्राप्त करना चाहिए। हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्थापकों को विशेषतया इस ओर ध्यान देना चाहिए।

देवीदत्त शुक्ल

चित्र और चित्रकार।

[लेखक, बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा]

चित्र क्या वस्तु है, यह समझना और समझाना बहुत कठिन है। इस विद्या को अच्छी तरह समझाने वाला शायद ही कोई हुआ हो। सच बात तो यह है कि जो चित्रकार है वही चित्र-विद्या के रहस्य को जान सकता है। जिस प्रकार माता के स्नेह को कोई कह कर नहीं बता सकता उसी प्रकार चित्र-विद्या का रहस्य भी कहने सुनने से नहीं प्रकट हो सकता। हाँ, उसके विषय में मोटी मोटी बातें अलबत्ते कही जा सकती हैं।

चित्र उसे कहते हैं जिससे चित्तरञ्जन हो। प्रत्येक चित्र में तीन गुण होने चाहिए—(१) मनोरञ्जकता (२) आकर्षण-शक्ति और (३) प्रभावोत्पादकता।

चित्र में मनोरञ्जकता लाने के लिए कितनी ही बातों पर ध्यान रखने की आवश्यकता है। चित्रकार को चाहिए कि सबसे पहले वह चित्र के भाव को अपने हृदय में अङ्कित करले। तब चित्र निकालने की चेष्टा करे। चित्र का भाव जब तक चित्रकार के हृदय पर अङ्कित नहीं हो जाता तब तक वह दूसरे के, अर्थात् प्रेक्षकों के, हृदय पर भी अङ्कित नहीं हो सकता—वह उन पर प्रभाव नहीं डाल सकता। मान लीजिए कि आपको किसी बाग़ीचे का चित्र निकालना है। इस दशा में आप को बाग़ीचे में कौन कौन सी चीज़ें होती हैं, वहाँ जाने पर हृदय में कौन कौन से भाव उदित होते हैं, मन पर बाग़ीचे के दृश्यों का क्या असर पड़ता है, इत्यादि बातें ध्यान में रखनी चाहिए। प्रत्येक वृक्ष, पौधा, लता, पत्ती, फल, फूल इत्यादि साफ़ साफ़ चित्रित होने चाहिए। इन सब के आकार-प्रकार में इतनी स्पष्टता होनी चाहिए कि देखने वाला तुरन्त ही जान जाय कि यह अमुक वृक्ष, अमुक पौधा या अमुक लता है। तसवीर देखते ही दर्शक को प्रत्यक्ष बाग़ीचे के दृश्य का अनुभव होना चाहिए। चित्र को देखते ही जब प्रेक्षक तल्लीन हो जाय—अपने आप को भूल जाय—तभी कह सकेंगे कि चित्तरञ्जन हुआ है। जिस चित्र को देख कर इस तरह चित्तरञ्जन न हो उसका होना न होना बराबर है।

चित्र खींचते समय भावों पर भी ध्यान रखना चाहिए। हिन्दू के चित्र में प्रत्येक जगह हिन्दूपन चाहिए और मुसलमान इत्यादि के चित्रों में उन्हीं के भावों का दर्शन होना चाहिए। हिन्दुओं में भी ब्राह्मण के चित्र में ब्राह्मणत्व का बोध होना चाहिए। किसी देवी या देवता का चित्र हो तो उसमें देवत्व की झलक देख पड़नी चाहिए। यदि रामचन्द्र और बुद्धदेव के चित्र में दोनों के भावों का पृथक् पृथक् दर्शन न हो तो ऐसे चित्रों से लाभ ही क्या।

चित्र में सामयिकता लाने की भी परम आवश्यकता है। कोई व्यक्ति या इमारत जिस काल से सम्बन्ध रखती हो उसी समय की शैली का अनुसरण उसके चित्र में किया जाना चाहिए। जैसी चाल ढाल, रङ्ग ढङ्ग, पहनाव, गहने, बरतन इत्यादि जिस समय में हो उस समय के चित्र में उन्हीं का स्पष्ट रूप से निदर्शन होना चाहिए। अर्थात् चित्र का दर्शन करते ही दर्शक को यह अनुमान हो जाना चाहिए कि यह चित्र अमुक समय का है।

आकर्षकता होने से चित्र की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होता है और प्रभावोत्पादकता से उनके मन पर उसका यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। चित्रकला में यही तीन गुण मुख्य हैं। इनमें से एक भी गुण न हो तो उस चित्र को निष्फल समझना चाहिए, क्योंकि चित्रों से होने वाले किसी भी फल की प्राप्ति उससे नहीं होती।

सच्चे काम करने वाले।

छपुका।

दुखों की गरज क्यों न धरती हिलावे,
लगातार कितने कलेजे कँपावे।
विपद पर विपद क्यों न आँखें दिखावे,
बिगड़ काम ही सामने क्यों न आवे।
कभी सूरमे हैं न जीवट गँवाते,
बलायें भगाते हैं चुटकी बजाते ॥१॥

इकावट उन्हें है नहीं रोक पाती,
उन्हें उलझनें हैं नहीं धर दबाती।
न पेचीदगी ही उन्हें है सताती,
न कठिनाइयाँ हैं उन्हें कुछ जनाती।
बिचलते नहीं हैं कभी आन वाले,
उन्होंने ससल कब न बाले कसाले ॥२॥

पड़े भीड़ जीवट उन्होंने दिखाये,
दुखों से कसौटी कठिन पर कसाये।
निखरते मिले वे विपद आँच पाये,
बने ठीक कुन्दन गये जब तपाये।
सभी आँच में जो सके फूल से फब,
खिले वे न कठि दुखों में मिले कब ॥३॥

न समझा कठिन पाँव बन में जमाना,
कभी कुछ बड़े परबतों को न माना।
हँसी खेल जाना समुन्दर थहाना,
पड़े काम आकास पाताल पाना।
कठिन से कठिन काम भी जो सके कर,
उन्होंने मुहिम कौन सी की नहीं सर ॥४॥

उन्हें काठ उल्टे हुए का फलाना,
उन्हें दूब का पत्थरों पर जमाना।
उन्हें धार गङ्गा उलट कर बहाना,
उन्हें ऊसरों बीच बीये उगाना।
बहुत ही सहज काम सा है जनाता,
भला साहसी क्या नहीं कर दिखाता ॥५॥

अड़ों में अगाना न कुछ काम आया,
वहीं गिर गया पाँव जिसने बढ़ाया।
दिया साथ जब कंमजों को बहाया,
न तब भी उन्हें धीरजों ने डिगाया।
जिन्हें काम कर डालने की लगी धुन,
सदा ही सके फूल काँटों में वे चुन ॥६॥

जिन्होंने न औसान अपना गँवाया,
जिन्होंने कभी भी न बोदा बनाया।
हिचकना जिन्हें भूल कर भी न भाया,
जिन्होंने बिड़ा काम कर ही दिखाया।
न जाना उन्होंने बखेड़ों का खेना,
न जाना कि कहते किसे हैं "न होना" ॥७॥

भले लाख गहरी नहीं वे बिचकते,
नहीं वे कतर ब्योंत से हैं दहलते।
किये लाख चतुराइयाँ हैं न टलते,
फँसे फन्द में हाथ वे हैं न मलते।
उन्हें तङ्गियाँ हैं नहीं तङ्ग पातीं,
न लाचार लाचारियाँ हैं बनातीं ॥८॥

पिछड़ना उन्हें है न पीछे हटाता,
फिसलना उन्हें है न नीचे गिराता।
बिचलना उन्हें है सँभलना सिखाता,
गया दाँव है और हिम्मत बँधाता।
उलझ गुत्थियाँ हैं उन्हें जो सतातीं,
पड़े बेड़ियाँ हैं धड़क खोल जातीं ॥९॥

बड़ा जी लगा काम का ढङ्ग जाना,
बखेड़ों, दुखों, उलझनों को न माना।
जिन्होंने हवा देख कर पाल ताना।
जिन्हें आ गया बात बिगड़ी बनाना।
उन्होंने करामात कब ही दिखाये,
भला कब तरैया न वे तोड़ लाये ॥१०॥

हरिऔध

मानटेसरी की शिक्षा-पद्धति।

जिस देश के बच्चों पर अज्ञानान्धकार का पूरा प्रभुत्व रहेगा, जहाँ बचपन ही से शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न किया जायगा, जहाँ की शिक्षा प्रारम्भ से ही अधूरी रहेगी, वहाँ बच्चों में भी कुशिक्षा और कुशिक्षाजनित दोषों का होना अवश्यम्भावी है। भारत में चारों ओर अविद्यान्धकार फैले रहने का कारण यही है कि यहाँ बालकों को प्रतिकूल ही

चित्र नं० ४

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

चित्र नं० १

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
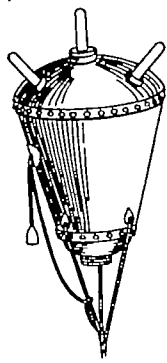
शिक्षा दी ही नहीं जाती और दी भी गई तो उसका प्रारम्भ दस ग्यारह वर्ष की उम्र से होता है। फलतः तीन वर्ष से लेकर दस वर्ष की अवस्था तक बच्चों में असद्व्यवहार, दुष्टी-कता, दुश्चरित्रता आदि इतने अवगुण आ जाते हैं कि उनको दूर करना कठिन हो जाता है, अधिक अवस्था में तो असम्भव सा ही हो जाता है। इस लिए बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा, किस ढँग से, देनी चाहिए, यही मान्टेसरी की शिक्षा-पद्धति में समुचित रूप से दिखाया गया है।

फ़िबेल नाम के एक साहब ने शिक्षा देने का एक नया और सुगम ढँग निकाला था। उसके प्रचार के लिए शिष्य खोजते समय उन्होंने सोचा कि देश की माताये ही उपयुक्त शिष्य होंगी, क्योंकि बचपन का अधिकांश समय ऐसा ही होता है जिस पर माता का पूरा अधिकार रहता है। इस लिए वे माताओं को एकत्र करके यह सिखाने लगे कि बच्चों को किस ढँग से शिक्षा दी जाय। इसका तात्पर्य्य यह था कि बचपन ही में सुशिक्षा का देना अधिक मनोरञ्जनीय है। फ़िबेल की इस शिक्षा-पद्धति का प्रचार हुए आज कोई ५० वर्ष हुए। आधुनिक समय में फ़िबेल साहब की तरह एक इटालियन महिला ने कुन्दज़ेहन बालकों को सहज ही में शिक्षा देने का एक नया ढँग निकाला है। आप का नाम डाक्टरेस मान्टेसरी (Doctoressa Montessori) है।

मान्टेसरी के निकाले हुए ढँग के विषय में कुछ लिखने के पहले यह बतला देना आवश्यक होगा कि उनका जीवन किस प्रकार का था और किस प्रकार उन्होंने बच्चों को शिक्षा देने के लिए नये ढँग का आविष्कार किया। वे अपने पिता की इकलौती बेटी थीं। उनके माता-पिता इटालियन थे और रोम में रहते थे। इटली देश की स्त्रियाँ भी, भारतीय स्त्रियों की तरह, परदे में रक्खी जाती हैं। मान्टेसरी बड़ी चतुर बालिका थी। डाक्टरी पढ़ने के लिए माता-पिता की आज्ञा पाने के पहले उन्हें अपनी मानसिक अकर्म्मण्यता और सामाजिक परम्परा से घोर संग्राम करना पड़ा। एक-कौमार्य लड़की होकर वह वैद्यक शास्त्र का अध्ययन करे, यह उस इटालियन परिवार में एक नई घटना थी। जो कुछ हो, इस संग्राम में मान्टेसरी ने आत्मसंयम और स्वाधीनता का सबक सीख ली। रोम में पहले पहल आपने ही डॉक्टरी डिग्री पाई। चतुर होने के अतिरिक्त आप स्वभावतः और कार्य्य-कुशल भी थीं। वैद्यक-शास्त्र में ग्रेजुएट की डिगरी पाने पर वे मेडिकल स्कूल के उस विभाग की सहायक कार्य्य-कर्त्री बनीं जिसमें मस्तिष्क-सम्बन्धिनी शिक्षा ही को प्रधान स्थान दिया गया था। वे बच्चों के मस्तिष्क-सम्बन्धी रोगों का अध्ययन बड़ी सावधानी से करने लगीं। क्रमशः उनका ध्यान विशेष कर उन बालकों की ओर आकृष्ट होने लगा जिनमें मानसिक बल की कमी थी।

पाठक देखेंगे कि मान्टेसरी ने शिक्षा-मन्दिर में एक नये पथ द्वारा प्रवेश किया। आपके तथा आपके समकालीन विद्वानों के गुणों में बहुत अन्तर पाया जाता है। किस प्रकार बच्चों के मस्तिष्क-क्षेत्र में प्रवेश किया जाय, इसी की विवेचना करते करते आप एक अद्वितीय विदुषी हो गईं। इस गूढ़ रहस्य का पता लगाने में अपना सारा समय वे अस्पतालों में ही बिताने लगीं। इसी की उधेड़बुन में उन्हें बहुधा घर घर फेरी लगानी पड़ती थी। कुछ समय बाद अस्प-ताल का काम उन्हें सन्तोष-प्रद न जान पड़ा, क्योंकि उसमें अनेक प्रकार के रोगियों का निरीक्षण करना पड़ता था, जिससे उनके उद्देश की सिद्धि में बाधायें उपस्थित होती थीं। उद्देश उनका एक मात्र यही था कि कुन्दज़ेहन बालकों को किस ढँग से शिक्षा दी जाय। फलतः उन्हें आर्थिक लाभ पर लात मार कर अस्पताल के कामों से इस्तेफ़ा देना पड़ा। अपने जीवन की इस दशा का वर्णन करते हुए मान्टेसरी ने लिखा है—"एक महान् विश्वास ने मुझे उत्तेजित किया। मेरा उद्देश सफल होगा, यह मैं कदापि न जानती थी, तथापि मैंने और सब धन्धों को तिलाञ्जलि दे दी। यह इस लिए कि मेरे हृदय भाव का मूल मेरे हृदय में दृढ़ हो और उसका नित्य विकास होता रहे। मैं एक अज्ञात उद्देश की सिद्धि के लिए बद्धपरिकर हो गई।"

अब आप उस स्कूल की प्रधानाध्यापिका बन गईं जिसमें कुन्दज़ेहन बालकों को शिक्षा दी जाती थी। सारा दिन वे बच्चों के साथ खेलतीं और उन्हें पढ़ाती थीं। वे बच्चों को बहुत प्यार करतीं और बच्चे भी उन्हें ख़ूब प्यार करते थे। दिन भर के अध्यापन-कार्य्यों से जो अनुभव लाभ होता उस पर वे रात को ख़ूब मनन करतीं और उससे कोई सिद्धान्त निकालने का प्रयत्न करतीं। अन्त में उन्हें एक आश्चर्य-जनक फल देख पड़ा। एक बहुत ही कुन्दज़ेहन लड़का, जिसे

उन्होंने अपने ढँग से पढ़ाया था, किसी अन्य विद्यालय की परीक्षा में बड़ी आसानी से और साधारण छात्रों से अधिक नम्बर पाकर उत्तीर्ण हुआ। ऐसा ही नतीजा कई बार देखने में आया। यहाँ तक कि लोग पहले ही से कहने लगते कि इनके सिखाये हुए छात्रों की कैसी ही परीक्षा क्यों न की जाय वे अवश्य ही उत्तीर्ण होंगे।

सन् १९०० में मानटेसरी ने दुर्बलेन्द्रिय बालकों के स्कूल का परित्याग करके सात वर्ष तक इस विषय पर बड़ी सावधानी से विचार और मनन किया। फिर उन्होंने मनो-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और रोम के अन्यान्य स्कूलों की देख भाल में लगीं। वहाँ झुण्ड के झुण्ड बालकों को प्राकृतिक कर्मण्यता से हाथ धोकर डेस्क में बँधे हुए से बैठे और शिक्षा पाते देख कर वे बहुत ही आश्चर्यान्वित हुईं। वे बच्चों की बातों का अध्य-यन इस प्रकार करती थीं जैसे कोई विज्ञानी रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र और वनस्पति-विज्ञान का अध्ययन करता हो। जो टस से मस न हों और मुख से चूँ तक न निकालें, ऐसे बालकों की गति-विधि का अध्ययन उनकी दृष्टि में असम्भव जान पड़ा। स्कूलों की देख भाल में उन्होंने इस बात का पता लगाने की कोशिश की कि उनके ग्राम क्यों कर इतनी उन्नति कर जाते हैं और पुराने ढँग से पढ़ाये हुए लड़के इतनी कम उन्नति क्यों करते हैं। उनके विचार में यह बात आई कि पूरी स्वाधीनता उनके सदृश वैज्ञानिक जिज्ञासु के लिए ही नहीं, बल्कि छोटे छोटे बच्चों के लिए भी नितान्त आवश्यक है। ऐसे ही सुअवसर पर मानटेसरी की भेंट रोमदेशीय किसी देशभक्त से हुई। वे रोम के ग़रीबों के लिए घर बनवाने में लगे थे। मानटेसरी ने देखा कि उन घरों में पाँच-सात वर्ष के बच्चों को उनकी माताएँ सारा दिन अकेले ही छोड़ कर काम करने चली जाती थीं। लड़के क्रमशः दुराचारी होते चले जाते थे। उनकी दशा मानटेसरी के ढँग पर शिक्षा देने के लिए उपयुक्त थी। मानटेसरी के आग्रह करने पर घर के मालिक ने हर एक किता मकान में एक एक कमरा बालकों के लिए अलग कर दिया और मानटेसरी ने उन बालगृहों (Houses of Children) के इन्तज़ाम का भार अपने ही सिर पर लिया। फल यह हुआ कि जिस काम को रोम-देशीय एक महिला ने १० वर्ष पहले किया था उसकी चर्चा आज संसार के प्रायः सभी देशों में हो रही है। इँगलैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, नारवे, चीन आदि देश अपने यहाँ के शिक्षकों को डाक्टरेसा मानटेसरी से भेंट करके उनकी शिक्षा-पद्धति को सीखने के लिए रोम भेज रहे हैं। सौभाग्य का विषय है, यहाँ एक भारतीय शिक्षक भी मदरास-प्रान्त से शिक्षा-लाभ करने गये हैं।

अब मैं पाठकों को ऐसे स्कूल का दिग्दर्शन कराता हूँ जिसमें मानटेसरी के बताये हुए ढँग से शिक्षा दी जाती है। स्कूल की इमारत विशाल है। उसमें बड़े बड़े कमरे हैं। कमरों की बनावट इस प्रकार की है कि उनमें हवा और रोशनी ठीक तौर से आ सके। इन कमरों में बहुत सी नीची मेज़ें हैं, जिन पर लड़कों के व्यवहार में आने योग्य छोटे छोटे यन्त्र रक्खे हैं। इनमें कुछ इतनी छोटी और हलकी मेज़ें हैं, जिन्हें वे लड़के मिल कर सुगमता से उठा सकें। बच्चों के लायक़ छोटी छोटी कुरसियाँ भी हैं। लड़कों के कपड़े साफ़-सुथरे हैं। कमरे में इधर उधर शिक्षक लोग प्रसन्न-चित्त अपने अपने कामों में लगे हैं। यहाँ ऐसे ही शिक्षक नियत किये जाते हैं जो देखने में सुन्दर हों, जिनकी बोली कर्णकटु न हो और जो अपने को सब प्रकार साफ़सुथरे रख सकें। शिक्षक भली प्रकार जानते हैं कि उनका काम बच्चों की आत्मा को केवल जाग्रत कर देना है, जिससे वे अपनी शक्ति और कर्तव्य को भले प्रकार समझने लगें। कमरे के एक कोने में, सहन पर, एक मुलायम बिछौना बिछा है। लड़के थक कर, समय समय पर, अपने कामों को छोड़ उस पर लेट कर कुछ काल के लिए विश्राम करते हैं। यहाँ बच्चों पर रोब दिखाया मना है। लड़के घर से आकर एक एक करके कमरे में प्रवेश करते हैं और मनमाना यन्त्र ला कर मेज़ पर बैठ अपने अपने कामों में लग जाते हैं। कुछ ही समय के बाद वे उनमें इस प्रकार निमग्न हो जाते हैं कि उन्हें कहाँ क्या हो रहा है इसका भी ज्ञान नहीं रहता। वे शिक्षक की आज्ञा की प्रतीक्षा कभी नहीं करते। जब किसी समय शिक्षक उनके पास आते हैं तब वे अपने कामों की छोटी से छोटी सफलता का भी वर्णन बड़े चाव से करते हैं, जिससे शिक्षक प्रसन्न हों और उनके उत्साह को बढ़ावें। वे इस प्रकार अपने को भूल जाते हैं कि बहुधा उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि क्लास में कौन आता जाता है। जो किसी सज्जन को आते देखते भी हैं तो वे इस प्रकार मुस-

झुका देते हैं मानो वे आगन्तुक का स्वागत कर रहे हों। तब अध्यापक का ध्यान आगन्तुक की ओर आकृष्ट होता है। शिक्षक के दूसरी ओर मुख फेर लेने पर भी बच्चे अपने कामों को नहीं छोड़ते। कारण इसका यही है कि वे शिक्षक की आज्ञा की बाट नहीं जोहते। वे तो अपनी सच्ची और आन्तरिक इच्छा से ही काम करते हैं। यह एक कमरे की कथा हुई। अब दूसरे कमरे में चलिए—

यहाँ एक मेज़ के चारों तरफ़ कुछ लड़के इकट्ठे हैं। सम्भवतः कोई खेल हो रहा है। एक लड़के की आँख में पट्टी बँधी हुई है। वह भिन्न भिन्न आकार की लकड़ी के टुकड़ों को दूसरी लकड़ी में खुदे हुए सूराखों में ठीक ठीक बैठाने का प्रयत्न कर रहा है। उसके चारों ओर कुछ लड़के उसके प्रयास को बड़े ग़ौर से देख रहे हैं। वे उसकी सफलता पर हँस कर या बोल कर उसकी तारीफ़ करते हैं और उसकी विफलता पर आनन्द के लिए केवल मज़ाक करते हैं। पाठशाला के कमरे के सामने ही एक बग़ीचा है, जिसमें लड़के इच्छानुसार आया जाया करते हैं। तारीफ़ तो यह है कि इतने पर भी ज़रा भी हल्ला नहीं होने पाता। बग़ीचे में बहुत से छोटे छोटे पालतू जानवर हैं। उनकी ख़बरगीरी लड़के ही करते हैं। छोटे छोटे पौधों को सींचने का काम भी बच्चों ही को सौंपा गया है।

ऐसे ही समय, मान लीजिए, कि शिक्षक ने पियानो बाजे पर कोई सुर छेड़ा। जो लड़के काम में लगे थे वे अपना अपना काम छोड़ कर कर क़तार बाँध कर आये और कमरे में पियानो के चारों तरफ़ खड़े हो गये। बच्चों को इस प्रकार इकट्ठा करने में शिक्षक को तनिक भी प्रयास नहीं उठाना पड़ा। जो अपने काम में लगे रहे उनके साथ ज़रा भी छेड़ छाड़ नहीं की गई।

अब थोड़ी देर के लिए स्नानागार में चलिए। यहाँ बच्चों के उसने योग्य कुछ छोटे, कुछ बड़े, बरतन नहाने के लिए रक्खे हुए हैं। यहाँ उन्हें नहाने और ठीक तौर से कपड़े पहनने में कुछ सहायता भी दी जाती है। भोजन के पहले लड़के यहाँ आकर छोटे छोटे बरतनों में जल लेकर भले प्रकार अपने हाथ, पैर और मुख धोकर पोंछ लेते हैं। इसके बाद वे भोजन करने जाते हैं। भोजन की सामग्री लड़के ही वहाँ परस रखते हैं। किसी लड़के की पोशाक ख़राब होने पर उसको उसे ही स्वयं ठीक कर लेना पड़ता है। शिक्षक केवल समय समय पर ठीक करने का उपाय भर सुझा देते हैं। सारा स्कूल आत्म-शिक्षा (Self-education) का एक नमूना है। कोई काम ऐसा नहीं जिसे लड़के न कर सकें; यहाँ तक कि स्कूल आकर वे झाड़ू और झाड़न लेकर समूचे स्कूल को अपने हाथ से ही साफ़ कर डालते हैं। इस प्रकार वे परिश्रम के महत्त्व को सीखते हैं। वे यह जानते हैं कि किताबों से नहीं, बल्कि घर के मामूली कामों से भी अनेकों शिक्षायें मिल सकती हैं। उन्हें ९ बजे दिन को स्कूल आना पड़ता है। मध्याह्न में भोजन और सोने का प्रबन्ध स्कूल में ही किया जाता है। वे स्कूल की और वहाँ की अन्यान्य सामग्रियों को अपनी निज की सम्पत्ति समझते हैं।

पाठक इस प्रकार की शिक्षा से और उस शिक्षा से जो आपके घरों में दी जाती है, ज़रा तुलना तो कीजिए। ज्योंही लड़के ने कुछ छुआ, बस बड़े बूढ़े चिल्ला उठते हैं—'मत छुओ'। यहीं ठीक इसका उलटा है। यहाँ मना करने के बदले छूने के लिए और भी उत्साह दिया जाता है।

मानटेसरी के निकाले हुए यन्त्रों के विषय में कुछ कहने के पहले उस सिद्धान्त को बता देना आवश्यक है जिसका आश्रय लेकर आपने इन यन्त्रों का निर्माण किया है। फ़्रोबेल की भाँति मानटेसरी ने सोचा कि बालक-जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में कर्म्मेन्द्रियों द्वारा ही शिक्षा देना उपयुक्त है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्हीं के द्वारा बच्चे सांसारिक पदार्थों का अनुभव कर सकते हैं। बिना इनकी सहायता के उनका अस्तित्व भी नहीं जान सकते। मानटेसरी इस बात को भी भले प्रकार जानती थीं कि बच्चे अपना काम आप ही करना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा यन्त्र बनाया जिससे लड़के सभी कामों को स्वयं ही करने करने सीख जायँ। ज्ञान-लिप्सा अपने ही मन से उत्पन्न होनी चाहिए। बच्चों की शिक्षा अपने आप ही होती है। बाहरी दबाव से उनकी शिक्षा उस ख़ूबी के साथ कदापि नहीं हो सकती। अतएव मानटेसरी का ध्यान प्रधानतः बच्चों की आत्मशिक्षा (Self-education) की ओर ही रहा। इसी इरादे से उन्होंने ऐसे ही यन्त्र बनाये जिनका व्यवहार लड़के स्वयं ही कर सकें। इन यन्त्रों में विशेष गुण यह है कि वे बच्चों की भूल का संशोधन स्वयं ही कर देते हैं। इससे यह लाभ होता है कि

लड़के स्वयं जान जाते हैं कि उनका कार्य्यक्रम ठीक है या नहीं। शिक्षक के सही या ग़लत बताने की कोई ज़रूरत नहीं। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि इनमें बहुत से यन्त्र ऐसे हैं जो केवल यूरोपीय बच्चों ही के काम के हैं। इन्हें भारतीयों के व्यवहार योग्य बनाने में बहुत रद्दोबदल की आवश्यकता है।

बच्चों में स्पर्श द्वारा पहचानने की शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी होती है। देख कर पहचानने की शक्ति उनमें ६ वर्ष के बाद आती है। इस लिए ६ वर्ष के पहले उन्हें किताब पढ़ने का कष्ट देना अच्छा नहीं। रूखे-चिकने, सीधे-टेढ़े अथवा बड़े-छोटे में क्या भेद है, पहले यही सिखाना उचित है। इन्हीं सब विचारों से मान्टेसरी ने सबसे पहले ऐसा यन्त्र बनाया जिससे स्पर्श द्वारा पहचानने की शक्ति बढ़े। इसका व्यवहार करते समय वे कभी कभी बच्चों की आँख पर पट्टी भी लगा दिया करती हैं।

उपर्युक्त यन्त्र की बनावट यों है—लकड़ी के दस टुकड़े हैं, जो एक दूसरे से कुछ बड़े हैं। उनको रखने के लिए दूसरी लकड़ी में भिन्न भिन्न आकार के ऐसे सूराख़ हैं जिनमें वे लकड़ियाँ ठीक ठीक बैठाई जा सकें। बच्चों को छूकर ही बताना पड़ता है कि कौन लकड़ी किस सूराख़ में ठीक ठीक बैठ जायगी। कभी कभी उनकी आँखें भी खोल दी जाती हैं। स्पर्श-शक्ति की उन्नति के और भी उपाय हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के सैन्डपेपर (Sand Paper) दिये जाते हैं। उनमें कुछ तो बहुत रूखे और कुछ बहुत मुलायम होते हैं। बच्चों को उन्हें क़ायदे के साथ रखना पड़ता है। सबसे रूखा पहले और सबसे मुलायम अन्त में। इसके अतिरिक्त बहुत सी और चीज़ें रख दी जाती हैं, जिनका नाम स्पर्श द्वारा ही बताना पड़ता है।

बड़े और छोटे का भेद बताने के लिए काठ के दस छोटे छोटे डण्डे दिये जाते हैं। उनमें सबसे छोटे की लम्बाई सबसे बड़े से दशांश कम होती है। उनको, बड़े के बाद उससे छोटा और अन्त में सबसे छोटा, इस क़ायदे से रखना पड़ता है। मुटाई या पतलापन बताने की रीति भी यही है। भेद केवल इतना ही है कि इन लकड़ियों में मुटाई का थोड़ा बहुत अन्तर रहता है। इन सब कामों को बिना देखे ही करना पड़ता है।

देखने की शक्ति बढ़ाने के लिए कुछ कार्डों में भिन्न भिन्न रङ्ग की ऊन लपेट दी जाती है। प्रत्येक रङ्ग के एक प्रकार के भिन्न भिन्न नमूने रहते हैं। किसी का रङ्ग खूब गाढ़ा और किसी का खूब फीका होता है। इन्हें भी देख कर क़ायदे के साथ रखना पड़ता है। तीन वर्ष के बच्चे भी इन कामों को बड़ी सुगमता से कर सकते हैं।

कुछ यन्त्र मानव शरीर के आकार के होते हैं, जिनमें कपड़े लपेट कर बटन, हुक अथवा फीते से पहना दिये जाते हैं। लड़के इन्हें खोलते और पहनाते हैं। इससे यह लाभ होता है कि लड़के अपना कपड़ा, जूता इत्यादि स्वतः पहनना जान जाते हैं। भारत में इस प्रकार के यन्त्रों का अभाव है। यहाँ बच्चों को उपयुक्त काम न मिलने के कारण वे अकर्मण्य हो जाते हैं। उन्हें अपने कपड़े तक पहनना नहीं आता।

मान्टेसरी ने मानसिक शक्ति के साथ साथ शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का भी यन्त्र बनाया है। आपकी धारणा है कि ३ वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक बच्चों के लिए व्यायाम की आवश्यकता है; क्योंकि इस अवस्था में उनके शरीर का सङ्गठन ठीक नहीं होता। धड़ बहुत बड़ा होता है और पैर इतने पतले और कमज़ोर होते हैं कि उन पर आवश्यकता से अधिक बोझ पड़ता है। इसके लिए आपने एक ऐसा यन्त्र बनाया है, जिसमें दो डण्डे समानान्तर से लगे रहते हैं। लड़के एक डण्डे पर पैरों के बल खड़े होकर दूसरे को झुक कर हाथ से पकड़ते हैं। इससे उनके शरीर का बोझ पैर और हाथ दोनों ही पर पड़ता है। कहीं कहीं छोटे छोटे हिंडोले लटके रहते हैं। उन पर लड़के पैर लटका कर बैठते हैं और पैरों से ज़मीन अथवा सामने की दीवार पर धक्का देकर उन्हें झुलाते हैं। कहीं कहीं घुमाऊ और कहीं कहीं रस्सी की बनी सीढ़ियाँ रहती हैं। बच्चों को उन पर चढ़ना पड़ता है।

इँगलैंड और अमेरिका आदि में मान्टेसरी के सिद्धान्तों पर बड़ी आलोचना हो रही है। आपका कहना है कि बच्चों को सबसे पहले स्वाधीनता की शिक्षा देनी चाहिए। अँगरेज़ और अमेरिकावासियों की राय है कि सबसे पहले उन्हें आज्ञाकारी बनाना चाहिए। पर हमारी समझ में आज्ञाकारिता तो एक प्राकृतिक गुण है। हम लोग किसी भी

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

काम को बहुधा दूसरों की देखा-देखी ही करते हैं। ऐसे मनुष्य संसार में कुछ भी नहीं कर सकते। कर सकते हैं वही जिनके सोचने और करने के ढंग स्वतन्त्र होते हैं। सुव्यवस्था स्वाधीनता ही से आ सकती है, अन्यथा नहीं।

बच्चे आत्मसंयम किस प्रकार सीख सकते हैं, इसका साफ़ उपाय यही है कि वे हमेशा किसी न किसी काम में लगा रक्खे जायँ। जहाँ वे उस काम में तन-मन से लगे—ज्यों ज्यों उसको पूरा करने की इच्छा प्रबलवती हुई—त्यों त्यों उनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ एकाग्र होंगी और उनकी इच्छा-शक्ति दृढ़ होती जायगी। जहाँ बच्चों ने आज्ञापालन न किया हो वहाँ समझना चाहिए कि या तो उन्होंने आज्ञा को समझा ही नहीं या वे उसके पालने में असमर्थ हैं। जब हम किसी वृक्ष को रोपते हैं तब हम बल का प्रयोग करके उसे नहीं उगा सकते। हम केवल उसके चारों तरफ़ से हानिकारक वस्तु को साफ़ कर देते हैं। पौधे का उपजना और न उपजना उसी पर अवलम्बित है। बच्चों की भी यही दशा है। हमें केवल उनके पास से हानिकारक चीज़ों को दूर कर देना चाहिए। शेष काम वे अपने आप ही कर लेंगे।

नीति-शिक्षा भी यहाँ अच्छे प्रकार दी जाती है। एक दूसरे को दिक़ करना अथवा हानि पहुँचाना मना है। दूसरे का खिलौना कदापि न छूना चाहिए, दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप न करना चाहिए। ये सब शिक्षायें आरम्भ से ही दी जाती हैं। पौधों और छोटे जानवरों के भरण-पोषण का अधिकार भी बच्चों ही के हाथ है। इससे उनके हृदय में दया और सहानुभूति का सञ्चार होता है और वे अपने कर्तव्य को समझने लगते हैं। बताइए, इससे बढ़ कर और कौन सी नीति-शिक्षा हो सकती है? संसार में कौन ऐसा धर्म्म है जिसमें यह शिक्षा न पाई जाती हो?

नीति-शिक्षा शान्ति-पाठ द्वारा दी जाती है। यह शिक्षा यहाँ भी सुगमता से दी जा सकती है। इस कारण इसका वर्णन करना उचित है। कुछ लड़के काम में लगे हैं, कुछ कमरे में और कुछ खेल रहे हैं। कुछ भनभनाहट का शब्द भी हो रहा है। इतने में ज़ोर से एक शब्द हुआ। शब्द होते ही सब लड़के चुपचाप हो गये। नज़र उठा कर ज्योंही उन्होंने देखा, सामने काले बोर्ड पर ख़ूब मोटे अक्षरों में "चुप" लिखा हुआ देख पड़ा। छोटे बच्चे, जो उसे पढ़ नहीं सकते, वे भी बड़ों की देखा-देखी उस पर टकटकी ध्यान लगाये हुए हैं। शिक्षक चुपचाप शान्त भाव से बोर्ड के पास में खड़ा है। कुछ लड़के उसको देख कर ही शान्त हैं। कुछ समय बाद शिक्षक ने खिड़कियों को बन्द कर दिया। कमरों में कुछ अन्धकार फैलते ही लड़कों ने अपने सिर पर हाथ रख लिया। मानो वे किसी की प्रार्थना कर रहे हैं। कोई चूँ तक नहीं करता। आठ ही दस मिनट बाद खिड़कियाँ खोल दी जाती हैं। उजियाला आने लगता है। लड़के नज़र उठा कर देखते हैं तो "चुप" शब्द का बोर्ड पर पता नहीं। बस, लड़के फिर अपने अपने काम में लग जाते हैं।

शिवाधीन मिश्र, बी० ए०

जीविका और नागरिक जीवन।

महादेव गोविन्द रानडे, भारतीय अर्थशास्त्र के आदि-आचार्य, इस देश में राष्ट्रीयता के भाव के जन्मदाता और उसके एक मात्र पोषक थे। आपने अपने ही समय के विचारणीय विषयों की व्याख्या नहीं की, आने वाले सामाजिक भय और सङ्कट की चितावनी देने तथा उनसे रक्षा के उपाय बताने में भी आपने वैसे ही गम्भीर विचार और दूरदर्शिता का परिचय दिया है। दृष्टान्त-स्वरूप यहाँ पर जीविका-उपार्जन करने के सम्बन्ध में उनका एक वचन ले लीजिए। वे कहते हैं—"भविष्य में, देश की जन-संख्या के बढ़ने पर, हम लोगों की भोजन-वस्त्रादि की आवश्यकतायें बढ़ने लगेंगी। उस समय यदि खेती-बारी के भरोसे हम उनकी पूर्त्ति करने की आशा करते रहें तो हमारे लिए बहुत कठिन समय उपस्थित हो जायगा। इससे बचने का केवल एक उपाय है। वह यह कि हम कृषि के अतिरिक्त जीविका के अन्य साधन भी ढूँढ़ें और देश में फैले जनसमूह की

कि वह मज़दूरों की छुट्टी, काम करने की जगह, सफ़ाई, कलों से उनके प्राण की रक्षा इत्यादि के सम्बन्ध में उनके स्वामियों पर हस्तक्षेप कर सके। पहले क़ानून में जो त्रुटियाँ रह गई थीं उनकी पूर्त्ति १९११ ईसवी के क़ानून द्वारा हो गई है। अतएव अब मज़दूरों के किसी हितचिन्तक को यह भय न होना चाहिए कि हमारे भोले-भाले मज़दूरों के साथ पश्चिमी देशों की उन्नीसवीं शताब्दी का अमानुषिक व्यवहार फिर से यहाँ दुहराया जावेगा। इसके अतिरिक्त हाल में सिविक्स (Civics) नामक नगर-निर्माण-सम्बन्धी विज्ञान की जैसी चर्चा हो रही है, तथा प्रोफ़ेसर जेड्स ने भविष्यत् में नगरों के सुधार का जो आदर्श हमारे सम्मुख रक्खा है उससे पूरी आशा होती है कि अब नगरों में भी हम सुखमय और आरोग्यमय जीवन व्यतीत कर सकेंगे। इस समय भी गाँवों और नगरों की सालाना मृत्यु-संख्या (Vital Statics) पर एक दृष्टि डालने से जो अन्तर देख पड़ता है उसके लिए म्युनिसी-पैल्टियों के सुप्रबन्ध की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

इस प्रकार जब हम नगरों के पूर्वकाल के दोषों और विकारों से अपने समाज की रक्षा का उचित और सन्तोष-जनक उपचार सोच लेंगे तब हम देखेंगे कि ३० करोड़ भारतवासियों के संकीर्ण, आलसी, रक्षण-शील जीवन में परिवर्तन करने वाला नागरिक जीवन के सदृश दूसरा साधन ही नहीं। अपनी दरिद्रता में मस्त, अल्प से सन्तुष्ट, सात पीढ़ियों से आज तक निरक्षरता में मग्न, भीरु, साहसहीन, अपने अधिकारों के प्रति उदासीन, असंख्य भारतीयों की आँखें खोलने में इसके तुल्य सहायक और उपाय ही नहीं। जिनको नागरिक जीवन का थोड़ा बहुत भी अनुभव है वे बता सकेंगे कि नगर में आते ही मनुष्य पर कितनी तरह की शक्तियाँ अपना असर डालती हैं और वह देखते ही देखते कितना चैतन्य हो जाता है। उदाहरण के लिए, शिक्षा और रहन-सहन ही को लीजिए। पर और सैकड़ों प्रकार की चीज़ें और तरह तरह की घटनाओं को देखकर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरी ओर रात-दिन पढ़े लिखे लोगों के सम्पर्क से साक्षर होने की रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। रेल, डाक, तार, बैङ्क, छापाख़ाना, कचहरी, अस्पताल सभी उसे एक एक पाठ पढ़ा देते हैं। उसके हृदय में आशा की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। अपने ऊपर उसे भरोसा हो जाता है। वह सब बातों में साहस और दृढ़ता से काम लेने लगता है और इसी तरह अपनी आर्थिक अवस्था सँभालने की चेष्टा में अधिक सम्पत्ति की उत्पत्ति में विशेष योग देता है। दूसरे पक्ष में, नगरों में आते ही दूसरों की देखा-देखी मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ जाती हैं। जहाँ गाँव में दो धोतियों, दो गमछों, से साल भर काम चलता था वहाँ कुर्ते, सलूके, दुपट्टे और साफ़े से भी अब में पर्व-त्योहार पर सन्तोष नहीं होता। एक अच्छा जोड़ा बनवाना पड़ता है। तरकारी, घी, चीनी, सालन, सुरती, फल, मिष्टान्न का ख़र्च बढ़ जाता है। रोग और पीड़ा में वैद्य-हकीमों की भी पूजा करनी पड़ती है। मतलब यह कि जब मनुष्यों को सुख से रहने का अभ्यास हो जाता है तब उसके लिए परिश्रम करके चार पैसे अधिक कमाने की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा, थोड़े ही से निर्वाह करने वाला व्यर्थ क्यों उद्यम करने लगा?

सच तो यह है कि नागरिक जनता ही के द्वारा इस देश में उस नवीनता का भाव उत्पन्न किया जा सकता है जिससे हम और देशों से किसी बात में पीछे रहने में अपना अपमान मानने लगें और संसार की जीवित और पराक्रमी जातियों की मण्डली में स्थान पाने की अभिलाषा करें।

गोपालनारायणसेनसिंह
(बी॰ ए॰)

चित्र-रामायण के कर्ता

श्रीमान् पन्त-साहब प्रतिनिधि (औंध के रईस)।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सामुद्रिक "माइन" अर्थात् सुरङ्ग ।
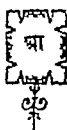
आज कल समाचारपत्रों में बहुधा यह पढ़ने को मिलता है कि आज अमुक जहाज़ माइन से टकरा कर डूब गया, कल अमुक । परन्तु जनसाधारण को यह मालूम नहीं कि यह माइन क्या बला है और इससे शत्रु के जहाज़ों का नाश कैसे किया जाता है । इस लिए हम पाठकों को इसकी कुछ बातें बतलाना चाहते हैं ।

ये माइन एक प्रकार के भक् से उड़ जाने वाले बम हैं । समुद्र पर दो तरह की माइन (सुरङ्ग) काम में लाई जाती है । एक तो वह जो जहाज़ आदि के छू जाने से ही जल उठती है । उसे स्पर्श-माइन कहते हैं । दूसरी वह जिसमें किनारे से अथवा किसी जहाज़ के ऊपर से बिजली द्वारा तोड़ा लगाया जाता है ।

स्पर्श-माइन कई तरह की होती हैं । परन्तु सब में डाइनामाइट बारूद की तरह भक से उड़ जाने वाली वस्तुयें भरी रहती हैं । उसमें आग लगाने की विधि जुदा जुदा होती है । किसी में जहाज़ की टक्कर ही से आग लग जाती है । किसी में टक्कर लगने पर बिजली की धारा द्वारा किनारे पर सूचना पहुँचती है । तब किनारे पर मुस्तैद कर्मचारी चाहें तो एक बटन दबा कर माइन में आग लगा दें और टकराने वाले जहाज़ का नाश कर दें, और चाहें तो उसे चैन से जाने दें ।

चित्र नम्बर १ में एक रासायनिक स्पर्श-माइन है । उसके ऊपर जो तीन खूँटियाँ सी हैं उनके भीतर काँच की नली में गन्धक का तेज़ तेज़ाब भरा रहता है । ऊपर उनके सीसे का एक गिलाफ़ होता है, जो बहुत नरम होता है (देखो चित्र नं० २) जहाज़ वगैरह से टक्कर लगते ही सीसे का गिलाफ़ और काँच की नली फूट जाती है । तब गन्धक का तेज़ाब क्लोरेट आफ़ पोटाश (Chlorate of Potash) पर जा गिरता है । उससे आग की लपट उत्पन्न हो जाती है । यह भक से उड़ने वाली वस्तु को जला देती है और माइन फट जाती है । जब तक यह माइन समुद्र में नहीं डाली जाती तब तक इसकी खूँटियों के ऊपर सीसे के गिलाफ़ के ऊपर पीतल का एक और खोल चढ़ा रहता है, जिससे इसके फटने का डर बिलकुल नहीं रहता ।

चित्र नम्बर ३ भी एक स्पर्श-माइन का है । इसमें बन्दूक के तोड़े की तरह एक आग-टोपी लगी होती है । जब एक सुई इस टोपी से बड़े वेग से टकराती है तब अग्नि उत्पन्न होकर माइन चल जाती है । चलने से पहले इस सुई का (ख) भाग सँड़सी के मुँह (क) में फँसा रहता है । सँड़सी का यह मुँह नल के (च) (छ) भागों में रहता है । वहाँ उसके खुलने के लिए जगह नहीं रहती । इस सँड़सी के नीचे के भाग में एक चक्र (ग) होता है । उसके नीचे एक डण्डी उसे, रस्सी के ज़ोर से, नीचे खिंच जाने से रोकती है ।

जब टक्कर लगती है तब यह डण्डी एक ओर को हट जाती है । रस्सी तन जाती है और सँड़सी की डण्डी को नीचे खींच लेती है । इसके दो फल होते हैं । एक तो खुली जगह मिलने से सँड़सी का मुँह खुल जाता है । दूसरे आग लगाने की सुई के और नीचे खिंच जाने से पेचदार फ़ौलाद की तार (ज) में सुई को बड़े वेग से ऊपर ले जाने की शक्ति और भी बढ़ जाती है । परिणाम यह होता है कि सुई बड़े वेग से आग-टोपी से टक्कर खाती है और माइन चल जाती है ।

इस प्रकार की माइन किस तरह समुद्र में एक ही जगह पर पानी के पन्द्रह बीस फ़ुट नीचे खड़ी रहती है, यह समझने के लिए इसके लङ्गर-बक्स की ओर ध्यान देना चाहिए । उसकी बाहरी बनावट

एक छोटे से बक्स से मिलती है। उसके भीतर एक चर्खी पर तार की रस्सी लिपटी रहती है। जब माइन समुद्र में फेंकी जाती है तब गोलाकार माइन तो तैरती रहती है, परन्तु लङ्गर-बक्स डूब जाता है (देखो चित्र ४ का नं० १) साथ ही पन्द्रह फ़ुट लम्बी रस्सी से बँधे हुए भार के बोझ से एक चटख़नी खुल जाती है, जिससे चर्खी घूमने लगती है, उसके ऊपर का तार खुलता जाता है और लङ्गर-बक्स नीचे ही नीचे चला जाता है। (देखो चित्र ४ का नं० २) जब भार समुद्र की तह में जा लगता है (देखो नं० ३) तब भार की रस्सी का तनाव जाता रहता है। अतएव चटख़नी आप ही आप बन्द हो जाती है और तार का खुलना भी बन्द हो जाता है। उस समय लङ्गर समुद्र की तह पर जाकर टिक जाता है और माइन समुद्र की सतह से पन्द्रह फ़ुट नीचे आने जाने वाले जहाज़ों का सर्वनाश करने के लिए तैयार हो जाती है।

निरञ्जनदास धीर, बी० ए०

---

*वीर बालक।

(१)

नृप दिलीप का भू-मण्डल पर फैला तेज प्रताप अपार,
अश्वमेध करने का उसने निज मानस में किया विचार।
ऋषि-मुनियों को बुला बुला कर किये यज्ञ के सारे कृत्य;
छोड़ा घोड़ा एक अलङ्कृत, चला अश्व वह करता नृत्य।

(२)

यज्ञ-तुरङ्ग की रक्षा का तब नृप ने सुत को सौंपा भार,
अल्प-वयस्क वीर बालक रघु सज कर शीघ्र हुआ तैयार।
पूज्य जनों को कर प्रणाम फिर चला मुदित हो हय के सङ्ग,
यद्यपि था शिशु, पर नस नस में भरा हुआ था रण का रङ्ग।

(३)

रघु से अश्व छीन लेने का कर न सका कोई उत्साह,
जहाँ पहुँचता वहाँ आप ही साफ़ पड़ी मिलती थी राह।
होनहार पुरुषों का होता शैशव से ही प्रकट प्रभाव,
क्या शिशु-रवि से अन्धकार का पुञ्ज न डर जाता [illegible]

(४)

सुरपति स्वार्थी ने सोचा, इस अश्व-मेध का जब परिणाम,
स्वर्गासन के छिन जाने के भय से हुआ पूर्ण हराम।
स्वार्थी जन क्या कभी किसी का भला देख सकते सहर्ष,
अपना वैभव विपुल बढ़ाते करके औरों का अपकर्ष।

(५)

पास पितामह के जाकर तब बोला इन्द्र जोड़ कर हाथ—
"अश्व-मेध कर नृप दिलीप क्या लेगा स्वर्ग-धाम हे नाथ
आश्रित हैं हम लोग आपके, अतः आपही करें त्राण,
जिससे मख न पूर्ण हो पावे, करिए करिए शीघ्र [illegible]"

(६)

तब विरिञ्चि ने कहा—"चुराओ मख के घोड़े को तत्काल
बिना अश्व के यज्ञ किस तरह पूर्ण कर सकेगा भूपाल"
निकट अश्व के आया तब वह किये हुए तस्कर का भेष,
दिन में अन्धकार अति करके अश्व चुरा ले गया सुरेश

(७)

अन्धकार का नाश हुआ जब देखा सबने दृष्टि पसार,
किन्तु न घोड़े को पाया, सब हुए खोज करके लाचार।
तब दिलीप-नन्दन ने अपने मन में यों सोचा उस क्षण—
"बिना इन्द्र के और कौन यों हर सकता है हय तत्क्षण"

(८)

दस भी पूरे नहीं हुए थे नवें वर्ष में था वह बाल,
साहस करके स्वर्ग-धाम को निज-रथ चलवाया तत्काल।
मारुत-गति से चला, शीघ्र ही रथ पहुँचा सुरपति के द्वार,
वहाँ पहुँच कर बड़े ज़ोर से रघु ने वासव को ललकार-

(९)

"हर कर अश्व छिपे क्यों घर में? आओ विकल सुरेन्द्र समर
नहीं बचोगे, नहीं बचोगे, शीघ्र बचाओ घर के सब"।
सुन कर यों कोलाहल, होकर ऐरावत गज पर आरूढ़,
बाहर आकर कहा इन्द्र ने "क्या कहता है बालक मूढ़

(१०)

क्या मरने के लिए स्वर्ग में आया है तू मेरे पास?
तब तो कुछ भी तुझे नहीं है मेरे वज्र-अस्त्र का त्रास।
पुष्प कीट क्या सह सकता है कभी बड़े पर्वत का भार?
दब जावेगा बालक तू भी सह न सकेगा प्रबल प्रहार"

---

* बँगला की कृत्तिवासीय रामायण के आधार पर रचित।

(११)

रघु ने कहा—"सत्य है, मैं हूँ बालक, आप वीर विख्यात,
किन्तु अभी कुछ पल में ही सब स्पष्ट हुआ जाता है ज्ञात ।
स्त का सकती आयु, हृदय तो प्रौढ़ हमारा है सुरराज !
त्यों साहस भी शिशु न हमारा, अब देखो वीरोचित काज" ।

(१२)

यों कह कर उसने कोदण्ड से मारे तीन बाण तत्काल,
अग्नि-समान बाण से व्याकुल गज के युक्त हुआ सुरपाल ।
किन्तु सँभल करके सुरपति ने छोड़े दस शर तीक्ष्ण कराल,
दस ही बाणों से रघु ने वे दिये काट कर भू पर डाल ।

(१३)

दृश्य फिर क्या था, उन दोनों को हो आया तब क्रोध अपार ;
बड़ी कुशलता से डट डट कर करने लगे प्रचण्ड प्रहार ।
बाणों की धारा थी किंवा होती थी नभ से जल-वृष्टि,
अन्धकार सा फैल रहा था, काम न कर सकती थी दृष्टि ।

(१४)

अब पाशुपत का ज्ञाता था वह दिलीप-नन्दन बलवान ;
अवसर देख कर किया सुरेश्वर पर झट वही बाण-सन्धान ।
लगते उसके गज से सुरपति पड़ा भूमि पर हो निष्प्राण,
घोड़े की साँकल से रघु ने शीघ्र कस लिया उसे निदान ।

(१५)

फिर गिर कर सैन्य इन्द्र की, करके विजय-केतु उड्डीन,
अपना अश्व उन्हों से फिर लिया शीघ्र ही रघु ने छीनि ।
अश्व सहित आया वह बालक बन्दी देवराज के साथ ;
अवधपुरी में आकर रक्खा पूज्य-पिता के पद पर माथ ।

(१६)

कुछ दिवस सुरपति को रक्खा सादर वहीं कैद में बन्द,
तब विरंचि देवों को लेकर आये भूप के घर सानन्द ।
कहा भूप से धाता ने तब—"धन्य ! धन्य ! हे भूप दिलीप—
वंश-वंश-अवतंस प्रतापी सर्व-मान्य हो महा-महीप ।

(१७)

यह रघु पुत्र तुम्हारा होगा तुमसे भी विशेष बलवान,
आगे इसके नाम युक्त हो वंश चलेगा, पयोनिधिपान ।
सुत के अस्तु कर सुरपति को बन्धन से करवाओ मुक्त,
पूर्ण हो चुका यज्ञ भूप ! इसको कर दो विदा प्रेम-संयुक्त" ।

(१८)

तब दिलीप-नन्दन ने सत्वर बन्धन काट दिये तत्काल,
फिर यह माँगा—"अनावृष्टि से कभी अवध में न हो अकाल" ।
सुन सुरपति ने कहा कि "प्रिय-सुत ! तव यह सोच करो आराम;
अवध-धाम के खेतों का मैं सदा करूँगा शुभ-परिणाम" ।

(१९)

यों कह देवराज धाता के साथ गया सुख से सुरलोक,
फैलने लगा त्रिलोकी में रघु की कीर्त्ति, तेज, यश का आलोक ।
रघुवंशज लोगों ने पाया तब से ही रघुवंशी नाम,
इसी वंश में रामचन्द्र का है अवतार हुआ सुखधाम ।

(२०)

हे भगवान ! पुनः भारत में कब होंगे ऐसे सुत वीर,
जिनके पद-विक्रम से वासव तक भी होते रहे अधीर ।
सम्प्रति तो प्रतिकूल दशा है, बिगड़ रहा युगों का ढङ्ग,
हे जगदीश्वर ! तुम्हीं कृपा अब करो न छोड़ो इसका सङ्ग ॥

द्वारकाप्रसाद गुप्त

विद्यावारिधि पण्डित ज्वाला-प्रसाद मिश्र ।
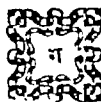
इस कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन, अर्थात् ९ नवम्बर सन् १९१६ ईसवी को, दोपहर के समय, गढ़मुक्तेश्वर के मेले में, भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर, पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र का परलोकवास हो गया । पण्डित जी कई महीनों से बीमार थे । यों तो उनके स्वास्थ्य का ह्रास पिछले कई वर्षों से हो रहा था, किन्तु आठ नौ महीने से वे निरन्तर बीमार थे । अनेक हकीमों, वैद्यों और डाक्टरों की चिकित्सा हुई, पर कोई सुफल न निकला । सुना जाता है, पण्डितजी के पिता पण्डित सुखानन्दजी भी इसी तिथि को गढ़मुक्तेश्वर में ही गङ्गा-तट पर स्वर्गगामी हुए थे ।

पण्डितजी का जन्म संवत् १९१९ विक्रम में हुआ था । मुरादाबाद में ही आपने वहाँ की तत्कालीन पण्डित-मण्डली के गुरु श्रद्धेय पण्डित भवानीदत्तजी

किया था। वेद-विषयक बातचीत में वे पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी की बड़ी प्रशंसा करते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि मिश्रजी ने जिन संस्कृत-ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद किया, पहले भी उनका हिन्दी-अनुवाद हो चुका था। किन्तु मिश्रजी ने उनको अच्छे रूप में लिख कर हिन्दी-भाषा का बहुत कुछ उपकार किया। मिश्रजी की अधिक ख्याति दो ग्रन्थों के कारण हुई। एक दयानन्द-तिमिर-भास्कर, दूसरा गोस्वामी तुलसीदास की रामायण पर तिलक। पहली पुस्तक से धार्मिक-वाद-प्रिय हिन्दुओं में और दूसरी पुस्तक से शान्तिप्रिय भक्त हिन्दुओं में मिश्रजी का नाम फैल गया है।

मिश्रजी बँगला आदि कई प्रान्तिक भाषायें जानते थे। साधारण अँगरेज़ी भी जानते थे। पहले कविता भी करते थे। किन्तु इधर कुछ वर्षों से सनातन-धर्म्म के कार्य्य में ही संलग्न रहते थे। पण्डितजी ने अपने ही बाहुबल और विद्याबल से यश सम्मान और साथ ही ख़ासा धन भी पैदा किया। पण्डितजी की मृत्यु से सनातन-धर्म्म के एक अच्छे उपदेशक और दाता का अभाव हो गया, जिसकी पूर्त्ति जल्दी होती दिखाई नहीं देती।

पण्डितजी की वृद्धा माता को यह असहनीय शोक सहना पड़ा, यह अत्यन्त दुःख की बात है। किन्तु विधि के विधान को कौन रोक सकता है।

पण्डितजी की विधवा स्त्री, छोटे भाई पण्डित कन्हैयालाल मिश्र और उनके दो पुत्र हैं। ईश्वर उन्हें शान्तिप्रदान करे।

ज्वालादत्त शर्म्मा

आँसू।

(१)

देख कर प्रिय को पड़ा अवसाद में,
वेदना होती हृदय-धन को सदा।
शोक-विह्वल वह कराह कराह कर,
आँसुओं की धार देता है बहा॥

(२)

या सहन सकता न जब उस ताप को,
हाय! प्रेमी का हृदय हिम-खण्ड है।
हो स्वयं संतप्त और पसीज कर,
डालता वह अश्रु-वारि अखण्ड है॥

(३)

क्या हृदय-नभ से गिरा कर ओस-कण—
नेत्र-कमलों के भरे ये गोद हैं?
यों बढ़ा करके सहज सौन्दर्य्य को,
स्वर्ग में लाया सुखद आमोद है॥

(४)

या हृदय यह मुक्ति-साधन को हुआ
विष्णु-पद सम भव-जलधि का पोत है?
है जहाँ से आँसुओं के रूप में
बह रहा यह सुरसरी का स्रोत है॥

(५)

या हृदय निस्सीम सागर-गर्भ है,
विपुल जल की राशि जिसमें है भरी?
है जहाँ से लोचनों की राह से,
निकलती अनमोल मोती की लड़ी॥

(६)

प्रेमियों के हृदय-सागर से कढ़े,
यत्न से इन मोतियों को गूँथ कर।
जो बनाता हार अपने कण्ठ का
भाइयो! है विश्व में वह धन्य नर॥

मुकुटधर

भारतवर्ष की व्यावसायिक उन्नति।

(लेखक, बाबू गौरदासप्रसाद, एम॰ ए, वकील, हार्डोई)

योरप में इस समय जो घोर युद्ध हो रहा है उसके कारण धनन-धान्य बढ़ाने वाले साधनों में बहुत कुछ बाधा आ पड़ी है।

वाणिज्य और व्यापार की उन्नति शान्ति पर अवलम्बित है। युद्ध की अशान्ति के कारण व्यापार की वृद्धि रुक जाय तो

जे० एच० पिवेद, एम० ए० प्रिंसिपल,
ट्रेनिंग कालेज, बाँकीपुर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कोई आश्चर्य्य नहीं। इस भयानक समय के पहले जो प्रचण्ड शान्ति फैल रही थी उसके कारण सभ्यता की उन्नति और व्यावसायिक वृद्धि प्रायः सभी देशों में बहुत हुई। प्रत्येक देश में चलने-फिरने और वस्तुओं को ले जाने के साधन सुगम हो गये। धुएँ के वेग से चलने वाली कलों के द्वारा जितनी उन्नति हुई वह विद्युत्-शक्ति की सहायता से और भी अधिक बढ़ गई। लेन-देन की उन्नति का मुख्य कारण साख है। उस पर इसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। सभी देशों में पूँजी लगाने में धनिकों का साहस बढ़ता गया। इस कारण वाणिज्य और व्यवसाय बढ़ाने वाली रेल की सड़कों तथा कारख़ानों की अत्यन्त वृद्धि हुई। यद्यपि कभी कभी इधर उधर के पारस्परिक झगड़ों से शान्ति में कुछ विघ्न-बाधा भी उपस्थित हुई तथापि वह अशान्ति ऐसी न थी जो वर्तमान समय के सदृश उन्नति में विशेष बाधक होती। आज-कल की सभ्यता ने सब देशों में जीवन-निर्वाह के उपायों के साथ साथ सुख को भी बढ़ा दिया और समय की इतनी बचत हो गई कि व्यवसाय की वस्तुओं को शीघ्र बनाने में जो कठिनाइयाँ थीं वे जाती रहीं। इसी तरह, दूरी के कारण वाणिज्य-विस्तार में जो बाधा थी, वह भी जाती रही। नये प्रदेशों में जो बस्तियाँ बसाई गईं उनसे भी बड़ा लाभ हुआ। जल और स्थल, दोनों ही पर, यान-शक्ति की उन्नति के कारण, सैनिक-शक्ति भी बढ़ गई। इँगलेंड, फ्रांस, और अमेरिका—आदि सभी ने इन साधनों से लाभ उठाया। इन देशों के बड़े बड़े बैंकों ने एक एक वर्ष में कई सहस्र करोड़ रुपयों का लेन-देन किया। एक साल इँगलेंड के बैंकों द्वारा कोई १०,००० करोड़ का लेन-देन हुआ। और व्यावसायिक देशों में भी इसी तरह धन की आश्चर्य्य-जनक उन्नति हुई। धन की इतनी उन्नति भी इन देशों में पारस्परिक विरोध का कारण हुई। क्योंकि परस्पर मेल-जोल में अपने धन और स्वत्व को अधिक बढ़ाने की जो इच्छा स्वभावतः जर्मनी इत्यादि में उत्पन्न हुई उसने इसमें पूरा विघ्न डाला। भारतवर्ष में इँगलेंड के धन से ३५ हज़ार मील लम्बी रेल की सड़कें बन गईं और ८० हज़ार मील तार फैल गया है। १८५१ ईसवी में केवल १,६०० मील रेल और ११,००० मील तार था। १८९० ईसवी में सर्वसाधारण की चालीस करोड़ पूँजी व्यापार में लगाने के लिए मिल सकती थी। १९१२ ईसवी में नब्बे करोड़ रुपये लोगों के बैंकों इत्यादि में अमानत के तौर पर ऐसे मौजूद थे जो व्यापार की उन्नति के कामों में लगाये जा सकते थे। १९०० ईसवी के पहले १२ वर्षों में केवल दो करोड़ सत्तर लाख पौंड सोना और एक अरब पन्द्रह करोड़ सोना-चाँदी भारत-वर्ष में ख़र्च हुई। इसके बाद १९११ ईसवी तक १२ वर्षों में ग्यारह करोड़ साठ लाख पौंड सोना और एक अरब साठ करोड़ तोले चाँदी काम में आई। भारतवर्ष में बाहर के अन्य देशों से आने वाले माल का मूल्य, सन् १८९० ईसवी में, साठ करोड़ रुपये था। १९१२ ईसवी में यह एक सौ तीस करोड़ हो गया। गवर्नमेंट की सहायता से भी बहुत लाभ हुआ। सरकार ने नहरें बनाकर बहुत से स्थानों को उपजाऊ कर दिया। इस कारण कृषि-कर्म की अधिक उन्नति हुई। कितने ही स्थानों पर गवर्नमेंट ने अफ़ूल माफ़ कर दिया। यहाँ पर रबर और चाय की खेती करने की आज्ञा लोगों को दे दी।

यहाँ पर एक सूची उन भिन्न भिन्न कारख़ानों की दी जाती है जो हाल में बनाये गये हैं। इससे यहाँ की व्यावसायिक अवस्था का अन्दाज़ा कुछ कुछ हो जायगा—

(१) रुई ओटने के कारख़ाने
(२) शराब बनाने के कारख़ाने
(३) आटा बनाने के कारख़ाने

(४) मोमबत्ती बनाने का कारख़ाना	१
(५) दरी बनाने के कारख़ाने	२३
(६) धातु और ओषधियाँ बनाने के कारख़ाने	१६
(७) कहवे के कारख़ाने	१४
(८) रुई की मिलें	२६६
(९) दूध के कारख़ाने	८०
(१०) आटे की कलें	१९
(११) शीशे के कारख़ाने	६
(१२) लोहे के कारख़ाने	११३
(१३) जूट के कारख़ाने	८५
(१४) लाख के कारख़ाने	१६
(१५) दियासलाई के कारख़ाने	५
(१६) तेल की मिलें	११०
(१७) काग़ज़ की मिलें	७
(१८) मिट्टी के बरतनों के कारख़ाने	५५
(१९) रस्सी बनाने के कारख़ाने	१२
(२०) रेशम के कारख़ाने	१८
(२१) साबुन के कारख़ाने	२०
(२२) चीनी के कारख़ाने	२९
(२३) सुर्ख़ी-चूना बनाने के कारख़ाने	७
(२४) सीमेण्ट बनाने के कारख़ाने	२
(२५) चमड़े के कारख़ाने	३०
(२६) तम्बाकू-सुर्ती इत्यादि के कारख़ाने	२९
(२७) लकड़ी के कारख़ाने	८
(२८) तेज़ाब बनाने के कारख़ाने	६

इससे प्रकट है कि भारतवर्ष में थोड़ी बहुत व्यावसायिक उन्नति अवश्य हुई। परन्तु वर्तमान युद्ध के कारण हमारे देश की आवश्यकतायें बढ़ गई हैं। बहुत सा ऐसा माल जो जर्मनी से आता था अब नहीं आता। ऐसी दशा में यह एक ऐसा अवसर है जिसमें व्यवसाय और व्यापार की विशेष उन्नति की जा सकती है। यहाँ पर यह भी कह देना चाहिए कि इस देश में दुर्भिक्ष इस कारण होता है कि कृषि के साथ साथ व्यवसाय की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस देश में धन की वृद्धि अन्य देशों के समान नहीं होती। इसी से यहाँ की आन्तरिक दशा बुरी है। रुई और गन्ना यहाँ जितना चाहिए उतना नहीं पैदा किया जाता। अन्न भी मनुष्यों की संख्या के अनुसार नहीं होता। अन्य अनेक देशों में आबादी के खर्च से अधिक अन्न उत्पन्न होता है। यहाँ आबादी तो बढ़ती जाती है, परन्तु भूमि का उपजाऊपन न बढ़ने से अन्न की पैदावार में वृद्धि नहीं होती। साथ ही साथ यहाँ के अन्न की माँग बाहर के देशों में दिन पर दिन अधिक होती जाती है। जितनी भूमि कृषि के योग्य है उस पर खेती की जा रही है और जो भूमि ऊसर पड़ी है वह इस योग्य नहीं है कि वहाँ मनुष्य बस कर अपना निर्वाह कर सकें। इस लिए उसको उपजाऊ बनाने का उद्योग करना निष्फल है। आबादी की वृद्धि रोकने के लिए गवर्नमेंट यदि क़ानून द्वारा कोई उपाय कर सकती तो अच्छा होता। वर्तमान दशा में जीवन-निर्वाह के हेतु सर्व-साधारण को व्यवसाय की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। मैसोर के सुयोग्य दीवान सर विश्वेश्वरैया कहते हैं कि व्यावसायिक शिक्षा न होने से यहाँ के लोग साहसहीन हैं। चेष्टा, प्रयत्न और श्रम करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं। इसके लिए अन्य उन्नत देशों के समान सङ्घ स्थापित करके मिलजुल कर व्यवसाय की उन्नति करनी चाहिए। इसको कोआपरेटिव अर्थात् सहकारिता की रीति से व्यवसाय करना कहते हैं। योरप और अमेरिका में मज़दूरी बड़ी महँगी है। वहाँ के कल-कारख़ाने कलों के द्वारा चलते हैं। अतएव मज़दूरी की आवश्यकता कम हो जाती है। परन्तु जिन स्थानों में ये होते हैं वहाँ का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों को भी बड़ी हानि पहुँचती है। इसी लिए कुछ लोग इस देश में कलों के प्रचार के विरुद्ध हैं। परन्तु पाश्चात्य देशों में

यही कल-कारख़ाने उत्तम समझे जाते हैं। सहृ द्वारा व्यवसाय किया जाय, कलें और कारख़ाने खोले जायँ, साथ ही साथ व्यक्तियों को भी अपने तौर पर व्यवसाय करने का अवसर दिया जाय—यही उन देशों में उत्तम समझा जाता है।

व्यवसाय के लिए धन, मज़दूरी और कच्चा माल चाहिए। इस देश में कच्चे माल की कमी नहीं। मज़दूरी भी यहाँ सस्ती है। यहाँ मज़दूर भी मिल जाते हैं। सर्वसाधारण का धन यहाँ कोई सौ करोड़ के लगभग जमा है। भूमि और मकानों का मूल्य इतना बढ़ता जाता है कि छः फ़ी सदी पर धन लगाने के लिए लोग तैयार हैं। अतएव यदि कुछ ऐसे भी व्यवसाय उनके सम्मुख उपस्थित किये जायँ जिनमें बेखटके रुपये लगाये जा सकें तो आशा है कि लोगों की रुचि उधर अवश्य हो जायगी। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि व्यापारियों के नेता स्वयं ही इन व्यवसायों के उत्तर-दाता रहें। यह सन्तोष की बात है कि इस समय बाज़ार में इस देश की साख बढ़ गई है। परन्तु बड़े बड़े व्यावसायिक कारख़ानों को चलाने के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता है, जो बिना सर्वसाधारण के पूर्ण विश्वास के नहीं मिल सकती। यह पूर्ण विश्वास तभी हो सकता है जब अनुभवी व्यापारी इन व्यवसायों और कारख़ानों के प्रबन्धकर्ता और निरीक्षक हों। यदि मिल सके तो गवर्नमेंट की सहायता भी इस विषय में बहुत काम करे। इंडस्ट्रियल (औद्योगिक) कमीशन इस पर विचार कर भी रहा है। मज़दूरों का यहाँ बुरा हाल है। मिस्टर दत्त कहते हैं कि सन् १९०१ और १९११ ईसवी के बीच असंख्य मज़दूर और कारीगर, कारख़ानों के बन जाने से, अपने पूर्वजों के व्यवसाय को छोड़ने पर बिना रोज़गार के हो गये। यदि इन कारीगरों को अपने पैतृक धन्धों के अनुसार काम सिखाया जाय तो आशा है कि कलों के द्वारा देशी व्यवसायों की बहुत उन्नति हो। अनुभव कहता है कि इस देश के मज़दूर और कारीगर परिश्रमी देश वालों से कम परिश्रमी नहीं। उचित शिक्षा देने से वे वैसे ही काम करने वाले हो जायँगे।

हम ऊपर कह चुके हैं कि भारतवर्ष में कच्चे माल की कमी नहीं है। बाहर जाने वाले कुछ कच्चे माल का विवरण तथा बाहर से इस देश में आने वाले पक्के माल का ब्योरा नीचे दिया जाता है—

कच्चा माल जो बाहर जाता है (१९११-१२ का हिसाब)

कच्ची रुई	२९५६ लाख रुपये
कच्ची लकड़ी	८९६ ,, ,,
कच्चा रेशम	४६ ,, ,,
रङ्ग इत्यादि	११६ ,, ,,
तिलहन इत्यादि	२७७७ ,, ,,
लाही	३०१ ,, ,,
अन्न और दाल इत्यादि	५१४७ ,, ,,

बना हुआ माल जो इस देश में आता है (१९११-१२ का हिसाब)

रुई का माल	४७३४ लाख रुपया
लकड़ी का माल	३३५ ,, ,,
रेशम का माल	२५९ ,, ,,
तैयार रङ्ग	१२३ ,, ,,
चीनी	९९१ ,, ,,
बना हुआ तम्बाकू	६४ ,, ,,

अतएव इस समय अत्यन्त आवश्यकता है कि वाणिज्य और व्यवसाय के नेता इस बात की काफ़ी चेष्टा करें कि जो बाहर का माल इस देश में आता है वह यहीं बनाया जाय। देखिए, सन् १८८१ ईसवी में बम्बई में रुई की केवल एक "मिल" थी, पर अब २६६ हैं और अनेक अन्य कारख़ाने भी खुल गये हैं।

इस दशा में यदि नेता लोग इस ओर ध्यान दें और आवश्यक कल-कारख़ाने खोला करें और लोगों को भी उस ओर प्रवृत्त करें तो भारत की बहुत कुछ दरिद्रता दूर हो जाय।

द्विये फ़ोनोग्राफ़ ने अर्थान्तर के साथ ज़िलाधीश की सेवा में पहुँचा दिया; परन्तु ज़िलाधीश ने अर्थान्तर स्वीकार न किया। किन्तु लेख की भाषा और भाव पर अपना सन्तोष प्रकट किया।

दूसरा लेख एक सिक्ख महाशय—सन्त मानसिंह शास्त्री—ने पढ़ा जिसमें आपने सिक्ख-गुरुओं के द्वारा की गई हिन्दी-सेवा का उल्लेख किया और उनकी हिन्दी-कविता के उदाहरण बताये। आपने इस बात पर आश्चर्य्य प्रकट किया कि हिन्दी-लेखकों और पाठकों को इस बात का पूरा पूरा पता ही नहीं कि सिक्खों ने अनेक सङ्कट सह कर भी हिन्दी की उन्नति की है। यदि खोज की जाय तो अब भी कई एक हिन्दी-ग्रन्थ पञ्जाब में मिल सकते हैं। सिक्खों और हिन्दुओं के परस्पर मेल का यह नवीन समाचार सुन कर लोगों ने बड़ा ही आनन्द प्रदर्शित किया।

तीसरा लेख—मध्य-प्रदेश की क़ानूनी हिन्दी—बाबू श्यामसुन्दरदास के किसी मित्र का लिखा हुआ था, जिनकी अशक्यता के कारण बाबू दुर्गाप्रसाद गोयलीय ने उसे पढ़ा। इस लेख में यह बताया गया कि मध्य-प्रदेश की अदालतों में हिन्दी के नाम से जो भाषा प्रचलित है वह लिपि में तो हिन्दी है; पर रचना में पूरी उर्दू है। लेखक ने अपने लेख में इस अदालती हिन्दी के कई दोष बताये, जिनको सुन कर वकील और हाकिम लोग इस भाषा में परिवर्तन करने और कराने का विचार करने लगे। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि मध्य-प्रदेश में हिन्दी भाषा का मार्ग केवल कचहरियों में कुण्ठित है। उनके बाहर उसकी सत्ता में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

इस सम्मेलन में विद्यार्थी भी सम्मिलित थे, जिन्होंने समय समय पर स्वागत, वन्दना, देशभक्ति, भारत-गौरव और मनोरञ्जन के कई एक गीत गाये। एक विद्यार्थी ने व्याख्यान भी दिया। इन भावी नागरिकों का उत्साह भी प्रशंसनीय था। स्वयं-सेवकों के काम की प्रशंसा प्रायः सभी ने की है। इन लोगों ने मराठों की क़वायद भी दिखाई थी।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व हम एक बहुत ही उपयोगी प्रस्ताव का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं, जो सातवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में, कदाचित् समयाभाव के कारण, उपस्थित होते होते रह गया, और जिससे हिन्दी की यथार्थ उन्नति की आशा की जा सकती है। यह प्रस्ताव योग्य लेखकों को, उत्तम ग्रन्थ लिखने पर, पुरस्कार देने के सम्बन्ध में था। यथार्थ में सम्मेलन का यह एक मुख्य कर्तव्य है कि वह छपे हुए उत्तम ग्रन्थों पर पुरस्कार देकर, अथवा उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करके, लेखकों का उत्साह बढ़ावे। इस प्रकार के व्यवहारी कार्य्य करने ही से सम्मेलन की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। यद्यपि इस वर्ष सम्मेलन ने एक नया प्रस्ताव स्वीकृत करके राजा-महाराजाओं से, लेखकों और ग्रन्थकारों को अपनी राजसभा में स्थान देने के लिए, प्रार्थना की है, तथापि उसने स्वयं कुछ काम करके अभी तक नहीं दिखाया। जो ग्रन्थकार आधे पेट रह कर हिन्दी की सेवा करते हैं उन्हें तो सम्मेलन फूटी कौड़ी न दे, पर जो प्रतिनिधि अपने खाने पीने का प्रबन्ध स्वयं कर सकते हैं, उनके खाने पीने के लिए हज़ार से भी अधिक रुपया उड़ा दे! आशा है कि स्वागत-कारिणी सभा अपनी बचत से इस काम का आरम्भ कर देगी और आगामी सम्मेलन अपने धन का सदुपयोग करेगा। हम लोगों को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि संसार में विद्या के समान धन भी एक बड़ी भारी शक्ति है।

सम्मेलन में बाहरी प्रतिनिधि पाँच सौ से ऊपर आये थे और दर्शकों की दैनिक संख्या ४००० के लगभग रहती थी।

बाबू अम्बिकाचरण मजूमदार।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

केवल शब्दालङ्कारियों के लिए "सप्तम साहित्य-सम्मेलन" में अनुप्रास की विशेषता थी ।

खेद है कि इस सम्मेलन में स्वागत-कारिणी सभा के सभापति दीवान-बहादुर सेठ वल्लभदासजी और मन्त्री राय-साहिब पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदीजी कौटुम्बिक दुर्घटनाओं के कारण सम्मिलित न हो सके ।

कामताप्रसाद गुरु

विविध विषय ।

१—प्रान्तिक कान्फ़रन्स में हिन्दी ।

अक्टोबर के आरम्भ में जो राजनैतिक कान्फ़रन्स झाँसी में हुई उसकी १० तारीख़ वाली बैठक में शिक्षा के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया । उस प्रस्ताव का एक अंश यह भी था कि मैट्रिक्युलेशन तक शिक्षा देशी भाषाओं के द्वारा दी जाय, अँगरेज़ी अवश्य पढ़ाई जाय, पर भाषा के नाते । यह बात लखनऊ के वकील माननीय पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र को पसन्द न आई । देश-भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने से उन्होंने देश की हानि समझी । अतएव आपने कहा कि प्रस्ताव का यह अंश निकाल डाला जाय । आपके कथन का अनुमोदन ए-चाइल्स नाम के किसी सज्जन ने किया । इस पर माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय और माननीय राय आनन्द-स्वरूप बहादुर ने देश-भाषाओं के पक्ष का समर्थन बड़ी योग्यता से किया । फल यह हुआ कि मिश्रजी अपनी सूचना को वापस लेने पर राज़ी हो गये । पर चाइल्स महाशय ने न सुनी । वे अपने अनुमोदन पर अड़े रहे । अन्त को सम्मतियाँ ली गईं तो केवल सात प्रतिनिधियों ने देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने के प्रतिकूल मत दिया । शेष सभी ने प्रस्ताव के इस अंश का समर्थन किया । मिश्रजी और चाइल्स महोदय की सूचना व्यर्थ गई । प्रस्ताव पास हो गया । इससे सिद्ध है कि इस पिछड़े हुए प्रान्त के समझदार सज्जन भी देशी-भाषाओं की क़दर करने लगे हैं और यह जान गये हैं कि अपनी ही भाषा में शिक्षा देने से यथेष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है ।

तथापि इस राजनैतिक कान्फ़रन्स के सभापति, "लीडर" नामक दैनिक पत्र के सम्पादक, माननीय सी॰ वाई॰ चिन्तामणि, नहीं चाहते कि इन लोगों को अपनी भाषा में विशेष शिक्षा मिले । अपनी वक्तृता या व्याख्यान का भाव दूर दूर तक पहुँचाने के लिए उसका हिन्दी-अनुवाद करा कर बाँटने की तो आप आवश्यकता समझते हैं, पर हिन्दी में अधिक शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं समझते । इस विषय में एक नोट सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो चुका है । अतएव यहाँ पर हमें केवल एक ही दो बातें अधिक लिखना है ।

बड़े बड़े शास्त्रों और शास्त्रीय विषयों का अध्ययन मैट्रिक्युलेशन तक नहीं होता । मान लीजिए कि हमारी भाषा इन वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा देने योग्य नहीं । अच्छा तो क्या वह इस योग्य भी नहीं कि मैट्रिक्युलेशन तक विज्ञान और अन्य शास्त्रीय विषयों की शिक्षा दे सके ? यदि नहीं, तो दो एक उदाहरण तो देते कि अमुक अमुक विषय हिन्दी-उर्दू में नहीं पढ़ाया जा सकता । व्यर्थ की वितण्डा क्यों ? अब बी॰ ए॰, एम॰ ए॰ में देशी भाषाओं के प्रवेश की चर्चा छिड़ती तभी विरोध करते । बम्बई, मदरास और बङ्गाल के स्कूलों और कालेजों में वहाँ की भाषाओं का जो विशेष प्रवेश है उससे शिक्षा की महत्ता क्या कुछ कम हो गई है ? चिन्तामणि जी की राय है कि बिना अँगरेज़ी पढ़े स्वाधीन चिन्ता की उत्पत्ति नहीं हो सकती । पर प्रार्थना यह है कि अँगरेज़ी की शिक्षा चाहता कौन नहीं ! उसे एक अनिवार्य्य भाषा समझ कर उसका ज्ञान-सम्पादन किया जाय । इतिहास, गणित और दर्शन आदि शास्त्रों में ऐसी बात है कौन सी जो देशी भाषाओं द्वारा समझ में न आ सके ? फिर क्यों आप हमें अँगरेज़ी में पढ़ा कर बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट किया चाहते हैं ? आपका "लीडर" आप ही के मत का पोषक नहीं । उसके द्वारा आपको यदि विचार प्रचार करने अभीष्ट हों तो अधिकांश सर्वसाधारण [illegible] [illegible] के हैं जिनकी [illegible] "लीडर" है । [illegible] प्रतिनिधियों की उपस्थिति में जिस बात का अनुमोदन केवल ७ आदमियों ने किया उस पर ज़ोर देना और उस

सान के पक्ष-समर्थन के लिए लम्बे लम्बे लेख लिखना अपने पत्र की मर्य्यादा के बाहर जाना है।

२—देहाती कृषकों के लड़कों को कृषि की शिक्षा।

देहाती मदरसों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें कहीं कहीं कृषि की भी कुछ बातें रहती हैं। खाद कैसे तैयार की जाती है, उससे क्या क्या लाभ होते हैं, कौन फ़सल किस के बाद बोनी चाहिए, किस फ़सल के लिए कितनी गहरी जुताई होनी चाहिए—इस तरह की बातें छोटे छोटे दस दस बारह बारह वर्षों के लड़कों को सिखाने से बहुत ही कम लाभ होता है। पहले तो उन्हें ये बातें अच्छी तरह समझ ही नहीं पड़तीं। और, यदि समझ भी पड़ती हैं तो कार्य्य-कारण का ठीक ठीक ज्ञान न होने से, बड़े होने पर, वे इनसे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। इन विषयों की कुछ अधिक शिक्षा उन्हें मिलनी चाहिए। शिक्षा के अनुसार उनसे खेती का काम भी कराना चाहिए। काम करा कर उन्हें दिखाना चाहिए कि देखो इससे इस प्रकार यह लाभ हुआ। तभी वे अच्छे कृषक हो सकेंगे और तभी उनकी कृषि-विषयक शिक्षा सफल होगी।

गवर्नमेंट के ध्यान में यह बात आ गई है। अतएव उसने जाँच के तौर पर एक नये प्रकार का कृषि-विद्यालय पहले पहल बम्बई प्रान्त में खोला। यह विद्यालय लोनी नामक नगर में खोला गया। कृषकों के जो लड़के देहाती मदरसों की चौथी क्लास पास कर चुकते हैं और जिन की उम्र १५ से १८ तक होती है वे इस स्कूल में भरती किये जाते हैं। उन्हें दो साल इसमें पढ़ना पड़ता है। कोई ३ घण्टे तक उन्हें पुस्तकों और व्याख्यानों के द्वारा साधारण शिक्षा दी जाती है। इसके बाद इतने ही समय तक उनसे खेतों पर काम कराया जाता है। उनसे खेत जुताये जाते हैं, बीज बुवाया जाता है, सिंचाई कराई जाती है और कटाई कराई जाती है। जो बातें उन्हें पढ़ाई जाती हैं उनका तजरिबा हाथ से काम करके उन्हें हासिल कराया जाता है। हल-फाल आदि बनाने और मरम्मत करने की भी शिक्षा दी जाती है। किस तरह औज़ारों को रखना चाहिए, यह भी सिखाया जाता है। पशु और पेड़ का अनुक्रम बनाने की तरकीबें भी उन्हें सीखनी पड़ती हैं। सारी शिक्षा देशी भाषा में दी जाती है। दो वर्षों में यह शिक्षा समाप्त हो जाती है। जो लड़के इस स्कूल से शिक्षा पाकर निकले हैं उन्होंने उसे अपने घर जाकर अपने पैतृक व्यवसाय खेती की अच्छी उन्नति की है। अतएव इस स्कूल से कृषकों को बहुत लाभ हुआ है। इसमें यथासम्भव कृषकों ही के लड़के भरती किये जाते हैं। कुछ लड़के इसमें ऐसे भी भरती होते हैं जिनके घर वालों का पेशा कृषि-कार्य्य नहीं। ऐसे लड़के यदि स्कूल छोड़ने पर कृषि का काम न करें तो उनकी शिक्षा व्यर्थ हो जाय। अतएव जिन्हें खेती करनी होती है वही प्रायः इस स्कूल में भरती होते हैं। इस स्कूल की सफलता को देख कर उस प्रान्त में इसी तरह के कुछ स्कूल अब और भी खुल गये हैं। उनमें से कुछ तो गवर्नमेंट के खर्च से और कुछ चन्दे से चल रहे हैं। ऐसे स्कूलों की संयुक्त-प्रान्तों ही में नहीं और प्रान्तों में भी बड़ी ज़रूरत है। बिना इस तरह की शिक्षा के कृषि की उन्नति शीघ्र न हो सकेगी।

३—सामाजिक परिषद् के सभापति की वक्तृता।

इस प्रान्त की जो सामाजिक परिषद् इस साल आगरे में हुई उसके सभापति माननीय राय आनन्दस्वरूप बहादुर थे। आपकी वक्तृता की एक पुस्तकाकार कापी हमें प्राप्त हुई है। उसकी पृष्ठ-संख्या ७२ है। वक्तृता अँगरेज़ी में है। यदि यह वक्तृता हिन्दी में होती तो बहुत अच्छा होता। राजनैतिक कानफ़रन्स के सभापति की वक्तृता का तो हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हो, पर सामाजिक परिषद् के सभापति की वक्तृता अँगरेज़ी में निकले, यह ज़रा खटकने वाली बात है। समाज-सुधार की बातों का सम्बन्ध तो अधिकतर ऐसे ही लोगों से है जो अँगरेज़ी नहीं जानते। इस दशा में सामाजिक संशोधन से सम्बन्ध रखने वाली बातें देशी भाषाओं ही में प्रकाशित होने से अधिक लाभ हो सकता है। इस बात को राय-बहादुर अवश्य ही जानते होंगे, और, सम्भव है, उनकी वक्तृता हिन्दी में अलग छपी भी हो। अस्तु।

यह वक्तृतात्मक पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। समाज और धर्म्म के विषय में जो बातें लिखी गई हैं युक्ति-पूर्वक और यथाशक्य अनुकूल प्रमाणों से पुष्ट किन्नी गई हैं। भारत की प्राचीन, सामाजिक और धार्म्मिक, स्थिति का मिलान उसकी वर्तमान स्थिति से खूब किया गया है। वक्ता महाशय ने समाज से सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सभी प्रश्नों का विचार किया है और उन प्रश्नों में जो दोष आ गये हैं

विलायत को जो डाक यहाँ से जाती और वहाँ से यहाँ आती है उसके दो मार्ग हैं। एक ब्रिंडिसी होकर थल से, दूसरा जिब्राल्टर होकर जल से। युद्ध के कारण थल-मार्ग बन्द रहा। जून १९१२ तक जल-मार्ग से ही डाक आती जाती रही। इसके बाद विलायत की चिट्ठियों की डाक मारसेल्स के थल-मार्ग से आने लगी। पर पारसल की डाक जिब्राल्टर से ही आती जाती रही। युद्ध के कारण सर्व-साधारण को दो बहुत बड़ी हानियाँ उठानी पड़ीं। परशिया और मलोजा नाम के दो जहाज़ विलायत से डाक लिये भारत को आ रहे थे। राह में वे दोनों डुबो दिये गये। परशिया के डूबने से इतनी हानि हुई—

(१) ८,५६४ मामूली पारसल—

(२) १,१०३ बीमाशुदा पारसल—

(३) ४,३३८ थैले चिट्ठियों के

और मलोजा के डूबने से—

(१) ४,११२ मामूली पारसल—

(२) १,००१ बीमाशुदा पारसल—

(३) ०६१ थैले चिट्ठियों के—

ये सारे पारसल और थैले समुद्रतल में चले गये; एक भी न मिला। इनके सिवा लूसीटानिया नामक जहाज़ के डूबने से भी डाक के दो थैले नष्ट हो गये। अभी गत नवम्बर में विलायती डाक लाने वाला परोदिया नामक जहाज़ भी भूमध्यसागर में डुबो दिया गया। उसके डूबने से भी डाक की बड़ी हानि हुई। यदि गवर्नमेंट इतनी ख़बरदारी न रखती तो इससे भी अधिक हानि की सम्भावना थी।

जल-मार्ग पर गवर्नमेंट का पूर्ण अधिकार है। इसी से ऐसे भयङ्कर समय में भी विलायत से बराबर डाक आती जाती है। यों तो राहज़नी और डकैती कहाँ नहीं होती ? उसकी तो बात ही जुदा है।

६—माइसोर में शिक्षा-विस्तार की गति।

माइसोर का राज्य-प्रबन्ध बहुत ही अच्छा है। वहाँ हर विषय में उन्नति हो रही है। प्रजा के आराम, सुख-समृद्धि और सुभीते के लिए नये नये यत्न किये जाते हैं। सब से अधिक प्रयत्न शिक्षा-प्रचार और उसके विस्तार के लिए किया जाता है। १९१४ में वहाँ ४,३०८ सरकारी स्कूल थे। उनमें १,६६,३३६ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। १९१५ में इन स्कूलों की संख्या बढ़ कर ४,५३६ और विद्यार्थियों की १,९२,१६८ हो गई। सबसे अधिक वृद्धि प्रारम्भिक स्कूलों और उनमें पढ़नेवाले छात्रों की हुई। यह न समझिए कि इस राज्य में केवल सरकारी अर्थात् राज्य के ही स्कूल हैं। नहीं, साधारण लोगों के खोले हुए भी अनेक स्कूल हैं। इन स्कूलों की संख्या १,८२३ और छात्रों की २४,१११ थी। इस प्रकार सरकारी और ग़ैर सरकारी स्कूलों की संख्या गत वर्ष, ७,२२८ और छात्रों की २,१६,११९ थी। १९१४ में ये संख्यायें क्रमानुसार से ६,११० और २,१०,११६ थीं। देखिए, एक ही साल में कितनी उन्नति हुई है। इसका मतलब यह हुआ कि १०० मनुष्यों में से स्कूल जाने योग्य उम्र के कोई ४९ लड़कों ने शिक्षा पाई। लड़कियों की शिक्षा का भी वहाँ अच्छा प्रबन्ध है। सौ में कोई १० लड़कियों को यहाँ, गत वर्ष, शिक्षा मिली।

माइसोर में सबसे बड़ी बात यह है कि यहाँ की तरह वहाँ भी प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य है। स्कूल जाने योग्य लड़कों को बलपूर्वक शिक्षा दी जाती है। सारे राज्य में अभी यह बात नहीं। इसका प्रचार धीरे धीरे किया जा रहा है। १९१४ में १२ सरकल ऐसे थे जहाँ शिक्षा अनिवार्य थी। गत वर्ष १२ सरकल और बढ़कर उनकी संख्या २४ हो गई। इन सरकलों में ३० स्कूल नये खोले गये और २६०० लड़के उनमें दाख़िल किये गये। इनके सिवा एक हज़ार से भी अधिक नये प्रारम्भिक स्कूल अन्यत्र खोले गये। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च कक्षा के—सभी प्रकार के विद्यालयों की वृद्धि माइसोर में हो रही है। वृद्धि का यदि यही क्रम जारी रहा तो किसी दिन वहाँ एक भी निरक्षर मनुष्य न रह जायगा। इस देश में माइसोर ही पहला देशी राज्य है जहाँ विश्वविद्यालय खुलने वाला है।

७—एक अद्भुत आविष्कार।

सरस्वती में, कई वर्ष पहले, एक्सरेज़ पर एक सचित्र लेख प्रकाशित हो चुका है। इन एक्स (X) नाम की किरणों की सहायता से शरीर की भीतरी हड्डियों के चित्र लिये जा सकते हैं और यदि शरीर के किसी अवयव या घाव में आलपीन, सुई, गोला, गोली आदि का कोई छोटे से भी छोटा टुकड़ा हो तो उसका पता लगाया जा सकता है। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड हार्डिंग की लाइन में

...न, ऐसी काली दुर्गंधता के कारण, हो गया था वह ...अच्छा न हुआ। दर्द भी दूर न हुआ। तब बाद ...र ऐक्स-रे गये। वहाँ इन एक्स-किरणों का यन्त्र ...उपयोगिनी अन्य सामग्री भी है। परीक्षा करने पर वहाँ ...म हुआ कि बाव में गोले के कुछ छोटे छोटे टुकड़े रह ...हैं। वे निकाल डाले गये। बस, फिर क्या था। बाद ...पुरुष भले चंगे हो गये। अतएव शस्त्र-चिकित्सा के ...वे किरणें अनमोल हैं। इनके प्रयोग में न्यूनता इतनी ...कि इनके द्वारा हड्डियों ही आदि का चित्र लिया जा ...है, सो भी अँधेरे में, प्रकाश में नहीं।

...स फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने इन किरणों से भी बढ़ ...क युक्ति निकाली है। इस नये आविष्कार की जाँच ...कमी में हो रही है। यह आविष्कार और भी अद्भुत ...इससे अनन्त उपकार होने की आशा है। ब्रिटिश ...र अख़बार में प्रकाशित हुआ है कि इसकी बदौलत ...के किसी भी भीतरी अवयव या अंश का चित्र उतर ...ा सकता है—अँधेरे में नहीं, प्रकाश में। हृदय, ...फेफड़ा, गुर्दा, आमाशय, मांस-नलिकायें, मस्तिष्क ...किस अवयव की स्थिति का ठीक ज्ञान हो सके ...र चित्र खींचा जा सकता है। यदि किसी का कोई अवयव ...काम ठीक ठीक न करता हो या उसमें कुछ विकार ...या हो तो चिकित्सक उसका चित्र लेकर फ़ौरन जान ...कि उसमें क्या ख़राबी है। आँतों में यदि घाव हो ...आशय में यदि फोड़ा हो जाय और मस्तिष्क में यदि ...र, एक जमा हो जाय तो इन विकारों का पता और ...इनका यथार्थ ज्ञान इस नये आविष्कार से हो ...। अब यह होगा कि दवा देने, चीरने-फाड़ने और ...म दुःख-दर्द दूर करने में बहुत सुभीता होगा। जिस ...वैज्ञानिक ने यह आविष्कार किया है उसने मानव-...त बहुत बड़ा उपकार किया।

८—चावल किस तरह खाना चाहिए।

...रत में कृषि-विषयक जाँच के लिए एक शाखा है। ...सरकार पर आवश्यक विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित ...रती है। हाल में उसने बिहार और उड़ीसे में पैदा ...ले चावलों पर एक बहुत अच्छी पुस्तक प्रकाशित ...। उसमें चावलों के सम्बन्ध में अनेक रासायनिक तथा अन्यान्य बातें हैं। उसमें एक जगह लिखा है कि चावल के ऊपर जो कालिमा लिये हुए एक पतला परत रहता है वह बड़े काम की चीज़ है। मगर शौक़ीन लोग उसे पसन्द नहीं करते। जो चावल बिलकुल सफ़ेद नहीं—जिसका लाल परत बिलकुल ही नहीं निकल गया—वह उन्हें अच्छा ही नहीं लगता। चावल की कालिमा को वे बहुत बड़ा दोष समझते हैं। पर प्रस्तुत पुस्तक के लेखक, जो रसायन-शास्त्री हैं, कहते हैं कि वह कालिमा बहुत बलकारिणी है, तथा उसमें और भी कितने ही गुण हैं। उसके कारण भात अधिक स्वादिष्ट भी हो जाता है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि चावल का माँड़ भी न निकालना चाहिए। पानी इतना रखना चाहिए कि माँड़ निकालने की ज़रूरत ही न पड़े। इसी से, सुनते हैं, जापान में चावल इतना नहीं कूटा जाता कि उसका ऊपरी परत निकल जाय। वहाँ माँड़ भी नहीं निकाला जाता। हम लोग भी ऐसा ही क्यों न किया करें?

९—भारतवर्ष के गरम चश्मे।

काँगड़ा (पञ्जाब) के पास कुल्लू नाम की एक तराई है। उसमें मणिकर्ण नाम का एक गाँव है। वह व्यास नदी की सहायक पार्वती नाम की नदी के दाहने किनारे पर बसा हुआ है। मणिकर्ण गरम पानी के चश्मों के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ के मन्दिरों की भी बड़ी प्रशंसा है। चश्मों से निकलने वाला पानी इतना गरम होता है कि उसमें रखने ही चावल पक जाते हैं। वह पानी दवाओं का भी काम देता है। लोग उसे दवा के तौर पर पीकर रोग दूर करते हैं। उसमें स्नान करने से भी कितनी ही बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। इस कारण पञ्जाब-प्रान्त के कितने ही स्थानों से लोग वहाँ रोज़ आया-जाया करते हैं।

पार्वती के किनारे ही से पहाड़ शुरू होता है। पहाड़ से गरम पानी के बड़े बड़े सोते निकल कर नदी में गिरते हैं। निकलते समय पानी बहुत गरम होता है। स्नान करने वालों के लिए यहाँ तीन भिन्न भिन्न स्नानागार अर्थात् छोटे छोटे तालाब हैं। एक तो प्रधान मन्दिर, दूसरा उसके पास और तीसरा विश्राम-गृह के पास है।

वहाँ के एक मन्दिर के शिखर में एक अजीब तरह की ... पुस्तक आती है। कहते हैं कि पहले वह मन्दिर पार्वती के

...ब, रोगी काफ़ी दुर्बलता के कारण, हो गया था वह ... अच्छा न हुआ। दर्द भी दूर न हुआ। तब चार ... देहरादून गये। वहाँ एक्स-किरणों का यन्त्र और तत्सम्बन्धिनी अन्य सामग्री भी है। परीक्षा करने पर वहाँ ... कि घाव में गोली के कुछ छोटे छोटे टुकड़े रह गये हैं। वे निकाल डाले गये। बस, फिर क्या था। चार ... पूरे तन्दुरुस्त हो गये। अतएव शल्य-चिकित्सा के लिए ये किरणें अनमोल हैं। इनके प्रयोग में न्यूनता इतनी ही है कि इनके द्वारा हड्डियों ही आदि का चित्र लिया जा सकता है, सो भी अँधेरे में, प्रकाश में नहीं।

अब फ्रांस के एक वैज्ञानिक ने इन किरणों से भी बढ़ कर एक युक्ति निकाली है। इस नये आविष्कार की जाँच [illegible]-शाली में हो रही है। यह आविष्कार और भी अद्भुत है। इससे अनन्त उपकार होने की आशा है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में प्रकाशित हुआ है कि इसकी बदौलत शरीर के किसी भी भीतरी अवयव या अंश का चित्र तुरन्त लिया जा सकता है—अँधेरे में नहीं, प्रकाश में। हृदय, फेफड़े, प्लीहा, गुर्दा, आमाशय, श्वास-नलिकायें, मस्तिष्क आदि जिस अवयव की स्थिति का हाल जानना हो उसी का चित्र लिया जा सकता है। यदि किसी का कोई अवयव अपना काम ठीक ठीक न करता हो या उसमें कुछ विकार हो गया हो तो चिकित्सक उसका चित्र लेकर फ़ौरन जान सकेगा कि उसमें क्या ख़राबी है। आँतों में यदि घाव हो गया, पेट में यदि फोड़ा हो जाय और मस्तिष्क में यदि [illegible] पर [illegible] जमा हो जाय तो इन विकारों का पता और उनकी दशा का यथार्थ ज्ञान इस नये आविष्कार से हो सकेगा। अब यह होगा कि दवा देने, चीरने-फाड़ने और [illegible] से [illegible] दूर करने में बहुत सुभीता होगा। जिस [illegible] ने यह आविष्कार किया है उसने मानव-जाति का बहुत बड़ा उपकार किया।

८—चावल किस तरह खाना चाहिए।

[illegible] में कृषि-विषयक जाँच के लिए एक शाखा है। [illegible] समय समय पर आवश्यक विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करती है। हाल में उसने बिहार और उड़ीसे में पैदा होने वाले चावलों पर एक बहुत अच्छी पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें चावलों के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य तथा अन्यान्य बातें हैं। उसमें एक जगह लिखा है कि चावल के ऊपर जो कालिमा लिये हुए एक पतला परत रहता है वह बड़े काम की चीज़ है। मगर शौक़ीन लोग उसे पसन्द नहीं करते। जो चावल बिलकुल सफ़ेद नहीं—जिसका लाल परत बिलकुल ही नहीं निकल गया—वह उन्हें अच्छा ही नहीं लगता। चावल की कालिमा को वे बहुत बड़ा दोष समझते हैं। पर प्रस्तुत पुस्तक के लेखक, जो रसायन-शास्त्री हैं, कहते हैं कि यह कालिमा बहुत बलकारिणी है, तथा उसमें और भी कितने ही गुण हैं। उसके कारण भात अधिक स्वादिष्ट भी हो जाता है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि चावल का माँड़ भी न निकालना चाहिए। पानी इतना रखना चाहिए कि माँड़ निकालने की ज़रूरत ही न पड़े। इसी से, सुनते हैं, आसाम में चावल इतना नहीं कूटा जाता कि उसका ऊपरी परत निकल जाय। वहाँ माँड़ भी नहीं निकाला जाता। हम लोग भी ऐसा ही क्यों न किया करें?

९—भारतवर्ष के गरम चश्मे।

काँगड़ा (पंजाब) के पास कुल्लू नाम की एक तराई है। उसमें मणिकर्ण नाम का एक गाँव है। वह व्यास नदी की सहायक पार्वती नाम की नदी के दाहने किनारे पर बसा हुआ है। मणिकर्ण गरम पानी के चश्मों के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ के मन्दिरों की भी बड़ी प्रशंसा है। चश्मों से निकलने वाला पानी इतना गरम होता है कि उसमें रखते ही चावल पक जाते हैं। वह पानी दवाओं का भी काम देता है। लोग उसे दवा के तौर पर पीकर रोग दूर करते हैं। उसमें स्नान करने से भी कितनी ही बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। इस कारण पंजाब-प्रान्त के कितने ही स्थानों से लोग वहाँ रोज़ आया-जाया करते हैं।

पार्वती के किनारे ही से पहाड़ शुरू होता है। पहाड़ से गरम पानी के बड़े बड़े सोते निकल कर नदी में गिरते हैं। निकलते समय पानी बहुत गरम होता है। स्नान करने वालों के लिए वहाँ तीन भिन्न भिन्न स्नानागार अर्थात् छोटे छोटे तालाब हैं। एक तो [illegible] पर, दूसरा उसके पास और तीसरा विश्राम-गृह के पास है।

वहाँ के एक मन्दिर के [illegible] में एक प्राचीन [illegible] पूजी जाती है। कहते हैं कि पहले यह मन्दिर [illegible] के

किनारे था। यह स्थान वर्तमान स्थान से कोई २० फ़ीट दूर है। एक बार नदी में बड़े ज़ोर की बाढ़ आई। मन्दिर में स्थित देवता नदी की धरधराहट सुन कर बहुत अप्रसन्न हुए। इससे बचने के लिए उन्होंने एक तरकीब सोची। सवेरे उठते ही गाँव के लोग क्या देखते हैं कि मन्दिर मूर्ति-सहित अपने असली स्थान से २० फ़ीट दूर चला गया है।

मणिकर्ण में ठहरने के लिए बँगले बने हुए हैं। वसन्त के आरम्भ में और हेमन्त के अन्त में यहाँ लोग बहुत आते हैं। यही समय यहाँ आने के लिए हितकर है।

१०—एक हिन्दी-प्रेमी यूरोपियन।

श्रीमान् जे॰ एच॰ थिकेट साहब (J. H. Thickett Esq. M. A, M. M.) ने सन् १९०८ में इन्स्पेक्टर आफ़् स्कूल्स, पटना डिवीज़न के पद पर रह कर बड़ी योग्यता से एक बरस के लगभग काम किया। फिर आप पटना के ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सिपल हुए। १९०९ ईसवी से आज तक आप उसी पद पर कार्य्य कर रहे हैं। पटना के ट्रेनिंग कालेज में बी॰ टी॰ और एल॰ टी॰ (B. T. and L. T) की पढ़ाई होती है। आप प्रोफ़ेसर और एक प्रिन्सिपल हैं। यह कालेज १९१८ ईसवी से बिहार-विश्वविद्यालय में *सम्मिलित किया जायगा।*

जबसे आप इस कालेज के प्रिन्सिपल हुए तभी से आपका प्रेम हिन्दी से हो गया। आपने बड़े परिश्रम से हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें पढ़ कर हिन्दी की हाई प्रोफ़िशियन्सी परीक्षा दी। इस परीक्षा के लिए तुलसीकृत रामायण का अयोध्याकाण्ड, लल्लूलाल-कृत राजनीति और प्रेमसागर, भाषा-प्रभाकर आदि कई पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। इसमें आप बड़ी योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। फिर आपका चित्त हिन्दी के समाचारपत्रों की ओर झुका। आप नियमित रूप से सरस्वती, भारतमित्र और शिक्षा का पाठ करने लगे। फिर आपने १९१४ ईसवी में शिक्षा का सम्पादन-भार, अवैतनिक रूप से, अपने ऊपर लिया। एक वर्ष तक आपने बड़े संतोषपूर्वक यह कार्य्य किया। आपने बहुत से हिन्दी-उपन्यास, नाटक, तथा काव्य के ग्रन्थों का अवलोकन किया है। आप बड़े ही *गुणग्राही, हिन्दी-हितैषी, सज्जन तथा नम्र* हैं। यदि आपही के समान और भी यूरोपियन विद्वान् हिन्दी की ओर झुकें और हिन्दी की सर्वगुणाकरता, सरलता, सुगमता और सुन्दरता पर रीझने तो हिन्दी अत्यन्त उन्नति करती और बहुत शीघ्र राष्ट्र-भाषा बन जाती।

जयचन्द्र मिश्र
(पटना-कालेज)

११—अनन्त-महाप्रभु का परलोक-गमन।

कुछ समय हुआ, अनन्त-महाप्रभु नामक महात्मा का सचित्र जीवनचरित सरस्वती में प्रकाशित हुआ था। [illegible] (ज़िला गोरखपुर) के बाबू लक्ष्मीनारायणसिंह लिखते हैं कि गत कार्तिक में उन्होंने शरीर छोड़ दिया। मरने के समय उनकी उम्र ११० वर्ष की थी। वे अच्छे साधु और पूरे योगी थे। सुनते हैं, इनका जीवनचरित पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है।

१२—आस्ट्रिया-हङ्गरी के सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़।

आस्ट्रिया-हङ्गरी के सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ का जन्म १८ अगस्त १८३० ईसवी को हुआ था। १८ वर्ष की उम्र में, अर्थात् १८४८ ईसवी में, वे आस्ट्रिया के सम्राट् हुए। इसके कोई १९ वर्ष बाद, अर्थात् १८६७ ईसवी में, हङ्गरी की प्रजा ने उन्हें अपना राजा स्वीकार किया। आस्ट्रिया के सम्राट् तो वे थे ही, १८६७ से वे हङ्गरी के राजा भी हो गये। ८६ वर्ष की उम्र में, ६८ वर्ष राज्य करके, आप २१ नवम्बर १९१६ को परलोकवासी हो गये।

आस्ट्रिया और हङ्गरी दो जुदा जुदा देश हैं। पहला १७ और दूसरा ४ भागों में विभक्त है। दोनों का रकबा कोई ढाई लाख वर्ग मील है। आबादी चार करोड़ के लगभग है।

ईसा की तेरहवीं सदी में रूडल्फ़ वॉन हैप्सबर्ग नाम का एक जर्मन सरदार था। पीछे से वही जर्मनी का सम्राट् हुआ। आस्ट्रिया-हङ्गरी का शाही खानदान उसी का वंशज है। इस राज्य में अनेक जाति और अनेक-भाषा-भाषी लोग रहते हैं। इनमें से स्लाव-जाति की संख्या कुछ कम आधी होगी। इसके बाद मगयार अर्थात् हङ्गरी के मूल निवासियों की संख्या है। फिर जर्मन, पोल, चेक, रूमानियन आदि जाति के लोग हैं।

आस्ट्रिया-हङ्गरी के सम्राट् को खर्चे के लिए डेढ़ करोड़ के लगभग वार्षिक वेतन मिलता है। इसमें से आधा आस्ट्रिया को देना पड़ता है, आधा हङ्गरी को।

जबसे इस राज्य की स्थापना हुई तब से इस पर अनेक बार संकट आये। न मालूम कितने युद्धों में इसे फँसना पड़ा, कितने आन्तरिक विद्रोह इसे दमन करने पड़े और कितनी दफ़े इसे हार खानी पड़ी। कभी इसका कुछ अंश और देश ले गये, कभी इसने औरों का कुछ अंश दबा लिया।

सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ योरप के सबसे बूढ़े बादशाह थे। "Living Rulers of Mankind" नामक पुस्तक के लेखक पादरी एच॰एन॰ हचिन्सन ने उनके अनेक गुणों का गान किया है। गुणी और प्रजारञ्जक होने पर भी वे हङ्गरी की प्रजा को प्रसन्न न रख सके। इससे अनेक फ़साद हुए। अन्त को इन्हें हङ्गरी वालों की शर्तें बहुत कुछ माननी पड़ीं। तब कहीं शान्ति की स्थापना हुई। आस्ट्रिया का पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल अलग करना पड़ा और हङ्गरी का अलग। शासन-प्रबन्ध भी दोनों का अलग अलग हुआ और भाषा भी अलग अलग। सेना दोनों की सम्मिलित है। परकीय देशों से सम्बन्ध रखना या न रखना, सम्राट् का काम है। इस काम में पार्लियामेंट हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ का गार्हस्थ्य जीवन बहुत कुछ दुःखमय ही बीता। १० सितंबर १८९८ को, जेनेवा में, उनकी पत्नी की जान एक हत्यारे ने ले ली। स्वयं सम्राट् पर एक बार एक हत्यारे ने हाथ चलाया। पर वे बच गये। १८८९ की ३१ जनवरी को उनके पुत्र और राज्याधिकारी रूडल्फ़ ने आत्मघात कर लिया। तब सम्राट् के भाई आर्कड्यूक कार्ल लडविग के पुत्र फ्रांसिस फ़र्डिनेंड आस्ट्रिया-हङ्गरी के राजासन के उत्तराधिकारी हुए। उनको सेराजेवो में एक हत्यारे के हाथ से जान खोनी पड़ी। वर्तमान युद्ध का मूल कारण यही हत्या मानी जाती है। फ़र्डिनेंड के न रहने से उनके छोटे भाई आर्कड्यूक चार्ल्स सम्राट् के उत्तराधिकारी हुए। वही अब सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ़ के बाद आस्ट्रिया के सम्राट् और हङ्गरी के राजा हुए हैं।

देखें नये सम्राट् के समय में युद्ध की गति कैसी रहती है। आस्ट्रिया-हङ्गरी में जर्मनी का प्रभुत्व इतना बढ़ गया है कि वह देश स्वतन्त्रतापूर्वक युद्ध-सम्बन्धी कोई काम नहीं कर सकता। उसकी दशा नट-मर्कट की सी है। जर्मनी उसे जैसा नचाता है वैसे ही उसे नाचना पड़ता है। खबरों से तो यही जान पड़ता है कि आस्ट्रिया-हङ्गरी की दशा बहुत ही हीन हो रही है। यदि जर्मनी उसकी सहायता न करता तो अब तक वह रूस का कौर हो गया होता।

पुस्तक-परिचय।

१—चित्र-रामायण। बम्बई प्रान्त में एक ज़िला सतारा है। उसके अन्तर्गत औंध नाम की एक रियासत है। श्रीमन्त भवानराव श्रीनिवासराव पण्डित, उर्फ़ बाला साहब पन्त-प्रतिनिधि, बी॰ ए॰, इस रियासत के मालिक हैं। आप सुशिक्षित ही नहीं, शिक्षा-प्रचार के पक्षपाती और सहायक भी हैं। इसके सिवा आप कला-कौशल के भी बड़े प्रेमी हैं। ललित-कलाओं में चित्रविद्या बड़े महत्त्व की कला है। उस पर आपका पूरा पूरा अधिकार मालूम होता है। आपने समग्र वाल्मीकि-रामायण की मुख्य मुख्य घटनाओं के दृश्य मनोहर चित्रों में अङ्कित कर दिये हैं। इन चित्रों की संख्या १० के ऊपर है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं चित्रों का संग्रह है। इसी से इसका नाम चित्र-रामायण है। सभी चित्र रङ्गीन हैं। हर चित्र के ऊपर एक एक पतला काग़ज़ है। उसके ऊपर वाल्मीकि-रामायण का एक या एकाधिक पद्य संस्कृत में है। वह उस चित्र की घटना आदि का बोधक है। इस पतले काग़ज़ से चित्र की रक्षा भी होती है और उस पर छपे हुए रामायण के मूल श्लोक से चित्र का भाव भी समझ में आ जाता है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनके सुभीते के लिए चित्र वाले पृष्ठ के सामने, दाहनी तरफ़, दूसरे पृष्ठ पर, सुन्दर सुडौल देवनागरी अक्षरों में चित्र-सम्बन्धिनी संक्षिप्त कथा भी दे दी गई है। इस कथा की भाषा हिन्दी है। हिन्दी भी ऐसी वैसी नहीं, अच्छी हिन्दी है। चित्रों के गुण-दोषों का विचार तो इस कला के ज्ञाता ही कर सकते हैं, हम तो केवल यही कहने के अधिकारी हैं कि देखने में चित्र बड़े ही मनोहारी हैं। प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण तो और भी मनोरम्य है। भय, हर्ष, शोक आदि विकारों का ज्ञान भी चित्रों की मुखमुद्रा आदि से अच्छी तरह हो जाता है। रङ्ग भी प्रायः सर्वत्र गहरे और चटकीले हैं। यह पुस्तक, अर्थात् इसका कथा-भाग, और

घटनाओं का उल्लेख इसमें है। छठी पुस्तक—गृह-शिक्षा—है। इसमें ३२ पृष्ठ हैं। मूल्य २ आना है। यह किसी का अनुवाद है। पर अनुवादक—मुरलीधर भण्डारी—ने उसका नाम नहीं दिया। पुस्तक उपयोगिनी है। इसका विषय इसके नाम ही से प्रकट है। सातवीं पुस्तक—"सटीकं शिवमहिम्नः स्तोत्रम्"—है। इसमें ३३ पृष्ठ हैं। मूल्य इसका २ आने है। इसका अनुवाद आदि पण्डित शिवप्रसाद शर्म्मा ने किया है। इसका क्रम इस प्रकार है—पहले मूल श्लोक, फिर अन्वय, फिर हिन्दी में भावार्थ। अर्थ ठीक ठीक किया गया है। भाषा कहीं कहीं पण्डिताऊ है। कुछ समय हुआ, एक महाशय ने महिम्न-स्तोत्र पर एक लेख सरस्वती में प्रकाशित कराया था। उन्हें उज्जयिनी से कुछ दूर अमरेश्वर के मन्दिर में महिम्न का बहुत पुराना एक लेख मिला था। उनका वह लेख उसी के सम्बन्ध में था। शिवप्रसादजी महाशय कहते हैं कि उन्होंने उसी प्राचीन लेख को देख कर इस महिम्न का पाठ-निर्णय किया है। पर आपने यह बताने की मुतलक ज़रूरत नहीं समझी कि उस पाठ की नक़ल आपको कहाँ से मिली। शायद आप स्वयं ही वहाँ जाकर उसकी नक़ल कर लाये हों। उस तोड़े हुए स्तोत्र की ख़बर आपको कहाँ से मिली, इसके उल्लेख की भी आपने कुछ भी ज़रूरत नहीं समझी। आठवीं पुस्तक है—चरित्र का प्रभाव। इस छोटी सी पुस्तक का मूल्य दो आने है। स्माइल्स की अँगरेज़ी पुस्तक—"इनफ्लुएन्स आव् कैरेक्टर"—का यह अनुवाद है। इस पुस्तक की छपाई अच्छी पूरी नहीं। पहले ही फ़ार्म की दो कापियाँ इसमें लगी हैं। इसके पृष्ठों का हिसाब है—१ से १६ और फिर १ से १६। मूल पुस्तक छोटी होने पर भी बड़ी अच्छी है। अनुवादक को चाहिए था कि जिन व्यक्तियों के सिद्धान्तों और कथनों आदि का उल्लेख इसमें है उनका कुछ हाल भी—दो दो चार चार सतरों में—लिख देते। ऐसा करने से इस पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता।

जिन महाशयों ने ये पुस्तकें हमें भेजी हैं उनकी नीति कुछ समझ में नहीं आती। क्योंकि एक ही आकार के ३०४ पृष्ठों की पुस्तक का भी मूल्य दस ही आने रक्खा है और ११२ पृष्ठों की पुस्तक का भी उतना ही।

६—अलङ्कार-मञ्जूषा। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २३६, छपाई और काग़ज़ साधारण। मूल्य एक रुपया। इसका विषय इसके नाम ही से प्रकट है। इसमें अलङ्कारों के नाम, लक्षण और उदाहरण हैं। टीका-टिप्पणियाँ भी हैं। इसकी रचना और इसका क्रम समय के अनुकूल है। अलङ्कारों का ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए यह बहुत उपयोगी है। मिलने का पता—बाबू रामसहायलाल, विद्यार्थी बुक डिपो, कचहरी रोड, गया।

*

७—विवाह-प्रबन्ध। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ११, मूल्य १ आने, लेखक गुरुम्बीलाल, प्रकाशक—गायत्री प्रेस, देहरादून। इस छोटी सी पुस्तक में ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से विवाह की व्याख्या और उसके विकास का संक्षिप्त वर्णन है। इसका अधिकांश अनुमानमूलक और अवशिष्ट प्रमाणमूलक है। पर अनुमान निराधार नहीं। इस विषय की पुस्तकें अँगरेज़ी में तो बहुत हैं, पर हिन्दी में अब तक एक भी न थी। इस निबन्ध ने एक की सृष्टि कर दी।

*

८—साधुसर्वस्व। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १६, मूल्य १ आने, मिलने का पता—बाबू रामनारायणलाल, बगहा, चम्पारन। तुलसीकृत रामायण के अनेक उत्तमोत्तम पद्यों की छाया लेकर इसमें हिन्दी और संस्कृत-भाषा में पद्यरचना की गई है। उदाहरणार्थ—महिमा जासु जान गनराऊ—प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ। इस चौपाई को ऊपर देकर नीचे एक रेखा में उसका अर्थ पद्यबद्ध किया गया है। फिर रेखा के नीचे उसी अर्थ का द्योतक एक अनुष्टुप् संस्कृत में लिखा गया है। इसी तरह इस पुस्तक की रचना हुई है। श्रीरामनारायणलाल मास्टर (बगहा चम्पारन) ने यह रचना की है। आपकी संस्कृत-रचना कई अंशों में है और अच्छी है।

*

९—पौराणिक चरित। कलकत्ते की एक कम्पनी ने दो छोटी छोटी पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली का नाम ध्रुवचरित है। इसमें १२ पृष्ठ हैं और चार आने ख़र्च करने से मिलती है। इसमें ध्रुव की पौराणिक कथा है। दूसरी पुस्तक का नाम है—अभिमन्यु-चरित।

आस्ट्रिया-हङ्गरी के सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ़।।

इंडियन प्रेस, प्रयाग

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग १७, खण्ड २

जुलाई—दिसंबर

१९१६

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

वार्षिक मूल्य चार रुपये

Printed and published by Apurva Krishna Bose at the
Indian Press, Allahabad.

लेख-सूची।

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र

सादे चित्र

रंगीन चित्र ६

सादे चित्र ७६

कुल ८२

नूतनचरित्र ।

(बाबू रूपचन्द बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

राजर्षि ।

मूल्य ||=) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप कर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निष्कलङ्क भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़याल से दिमाग़ भर आता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान् उद्देश्य को अच्छी-भाँति समझ सकते हैं।

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

धोखे की टट्टी ।

मूल्य |=)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "आरब्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ||)

सरस्वती के नियम।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ३) है। ग्राहक वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक या जुलाई से जून तक गिना जाता है। बीच में ग्राहक होने वालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रति संख्या का मूल्य ।=) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ प्रायः नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ॥) प्रति संख्या से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए। जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आये उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। उनको दूसरी संख्या भेज दी जायेगी। लेकिन इस अवधि के बाद जिनके पत्र आवेंगे उनको दूसरी संख्या तभी भेजी जायेगी जब वे डाकमहसूल सहित एक संख्या का मूल्य ।=)॥ पत्र के साथ भेजेंगे। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा, चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आयें। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ। ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलिएगा।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, तथा उसे लौटाने या न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर कर उसका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक या अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक या धर्म-सम्बन्धी लेख न छापे जायँगे जिनका सम्बन्ध वर्तमानकाल से होगा।

१०—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो उसे प्रकाशक देंगे।

११—यदि लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार करेंगे, तो सरस्वती के नियमों के अनुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता-पूर्वक दिया जायगा।